कलशामृत-४

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी समयसार कलश टीका के सन् १९७७-७८ के प्रवचन)

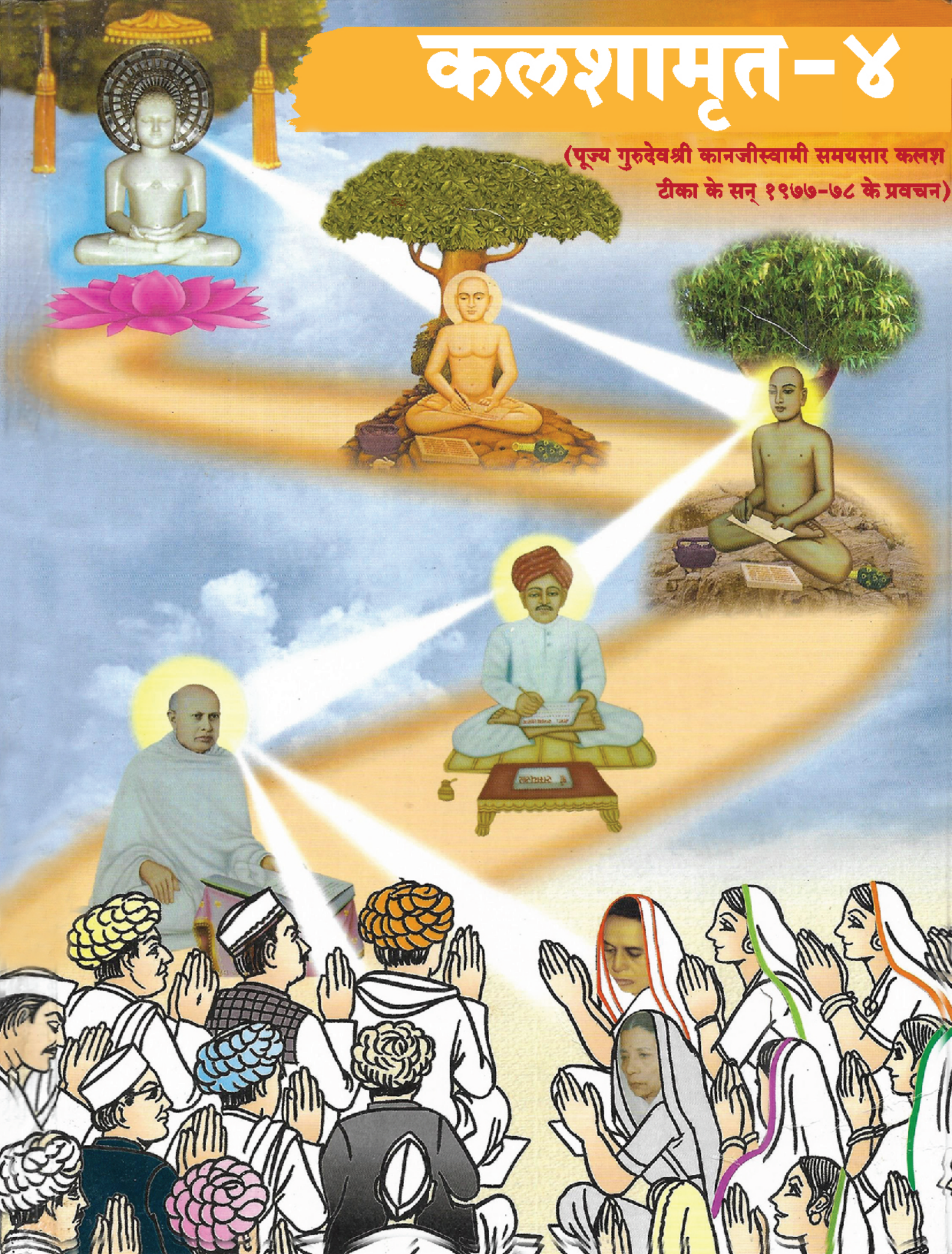

ॐ

परमात्मने नमः

कलशामृत

(समयसार कलशटीका प्रवचन)

भाग-4

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत **परमागम समयसार** की **श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव** रचित **आत्मख्याति टीका** में समागत **समयसार कलश** की **पाण्डे राजमलजी** कृत टीका पर **परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के स्वानुभवमुद्रित आध्यात्मिक शब्दशः प्रवचन

कलश 117 से 153 तक, प्रवचन नं. 115 से 160 तक

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2079	2549	2022

—: प्रकाशन :—

कार्तिक अष्टाह्निका महापर्व

नवम्बर 2022

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

अहो! उपकार जिनवर का कुन्द का ध्वनि दिव्य का,
जिन कुन्द ध्वनि दाता अहो! श्री गुरु कहान का॥

वर्तमान चौबीसी के, मोक्षमार्ग के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव से महावीरस्वामी पर्यन्त समस्त तीर्थंकरों की अचल तीर्थधरा पर जैनदर्शन की अनमोल सम्पत्ति को प्रदान करनेवाले, द्वितीय श्रुतस्कन्ध को लिपिबद्ध कर अलभ्य जैन वाग्धारा को जयवन्त करनेवाले चारणऋद्धिधारी आचार्यवर श्री कुन्दकुन्ददेव हुए। यह जैन संस्कृति की अनाहत प्रवाह की परिपाटी में आचार्य श्री अमृतचन्द्रदेव हुए। उनके द्वारा अविच्छिन्नरूप से प्रवाहित जैनधारा की शृंखला में पण्डित श्री राजमल्लजी पाण्डे हुए। उत्तरोत्तर चली आयी अस्खलित धारा में अपने मुक्तिदूत पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी हुए। इन सर्व सन्तों की स्वानुभवरूप यात्रा के अन्तर्गत उपलब्ध परमागमों का प्रबुद्ध दर्शन मिला। इस बहुमूल्य आत्मदर्शन की चरम सौख्यधारा अक्षुण्ण बहती हुई भव्य जीवों के अन्तरांचल में स्थित होने के साथ ही अनादि से चली आयी विकृतियों का विसर्जन हुआ।

श्री अमृतचन्द्रदेव ने स्वयं रचित काव्यरूप कलशों में अध्यात्म गूढ़ रहस्यों को समाविष्ट किया है। उस गम्भीर्य अर्थ को टीकाकार पण्डितश्री राजमल्लजी पाण्डे ने अपनी निज स्वानुभवमयी सूक्ष्म प्रज्ञा के बल से.... सरल भाषा में प्रकाशित किया है।

उन्होंने शुद्धात्मा की अतिशयता को तो मुखरित किया ही है परन्तु उसके साथ शुद्धात्मा को अनुभव करने की सम्यक् कला भी बतायी है। टीका में वाक्य... वाक्य में... शुद्धता को प्रत्यक्ष आस्वादो.... प्रत्यक्ष आस्वादो का नाथ प्रमुखरूप से ध्वनित होता है। अनेक रहस्यों को विशद्ता से उद्घाटित करनेवाली उनकी टीका में शुद्ध जीव वस्तु को आत्मसात् करानेवाली प्रेरणात्मक शैली का तो सहज दर्शन होता है, तदुपरान्त प्रयोगात्मक विधि को सर्वांग हृदयंगम करानेवाली सचोट, सरल और मधुर टीका के भी स्पष्ट दर्शन होते हैं।

बालावबोध टीका के रचियता द्रव्यदृष्टिवन्त, सम्यक् प्रज्ञावन्त श्री राजमल्लजी साहेब का चित्रपट जो श्री राजकोट दिगम्बर जिन मन्दिर के स्वाध्याय भवन में अंकित है, वही फोटो इस कलशामृत में लिया गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री अर्थात् निज ध्येय के ध्यानी, आत्मज्ञानी, अध्यात्म के योगी, और अतीन्द्रिय आनन्दरस के भोगी, ऐसे आदर्श विश्व विभूति हुए। उनके द्वारा जो शुद्धात्मतत्त्व का वास्तविक विश्लेषण हुआ, वह पूर्व के सैकड़ों शताब्दियों में नहीं हुआ था, वैसा स्पष्टीकरण मिला है।

आस्त्रव अधिकार

यह अधिकार बहुत ही सूक्ष्म होने से ज्ञान की सूक्ष्मता बिना इस अधिकार का रहस्य समझा नहीं जा सकता। यह अधिकार संसार के कारणों की चर्चा करनेवाला होने पर भी सन्तों ने एक-एक श्लोक में और एक-एक पंक्ति में सम्यग्दर्शन की ही प्राधान्यता दर्शायी है, वह इस अधिकार की विशिष्ट विशेषता है। साधक आत्मा सदा निरास्त्रवी है, इस बात की स्पष्टता अनेक दृष्टिकोणों से की गयी है।

आस्त्रव शब्द का अर्थ 'आना' ऐसा होता है। आचार्य पूज्यपादस्वामी सर्वार्थसिद्धि टीका में फरमाते हैं कि—'**शुभाशुभ कर्मागमद्वाररूप आस्त्रवः**' जिससे शुभाशुभ कर्मों का आगमन हो, वह आस्त्रव है। शुभराग के हेतु से शुभकर्मों का आना होता है, इसलिए जड़ कर्मों को भी आस्त्रव कहा जाता है। समग्र प्रकार के कषायभाव वे भावास्त्रव हैं, और उनके निमित्त से जो द्रव्यकर्म बँधते हैं, उन्हें द्रव्यास्त्रव कहते हैं।

1. पूर्वबद्ध सत्ता में पड़े हुए पुराने कर्मों का उदय आता है, वह द्रव्यास्त्रव है।

2. पुराने कर्मोदय के लक्ष्य से होनेवाले मिथ्यात्वादि कषायभाव, वे भावास्त्रव हैं।

3. भावास्त्रवों का निमित्त पाकर बँधते नूतन जड़कर्म, वह द्रव्यास्त्रव है।

इस प्रकार निमित्त-नैमित्तिक भाव से रचित कर्मचक्र भी ज्ञानधारा प्रगट होने पर रुक जाता है।

आस्त्रवों के मुख्यरूप से चार भेद कहे हैं। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग। इन आस्त्रवों को द्रव्यास्त्रव के कारण कहे होने पर भी मिथ्यात्व आस्त्रव के अभाव में होनेवाले द्रव्य प्रत्ययों को मूल बन्धक कहा नहीं, क्योंकि बन्ध का मूल कारण मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी कषाय को ही गिनने में आया है। इसलिए साधक के अस्थिरताजन्य बन्ध के मूल कारण को नहीं प्राप्त करता। वास्तव में तो वह रागादिभाव भी संसार की असमर्थता का सूचक है।

श्री जयसेन आचार्यदेव ने समयसार की तात्पर्यवृत्ति टीका की 174 गाथा में मिथ्यात्व को ही बन्ध का मूल कारण कहा है। द्रव्यप्रत्यय उदय के समय... शुद्धात्मा की स्वानुभूति को छोड़कर... जो जीव रागादिरूप परिणमन करता है, तो उसे बन्ध होता है। परन्तु कर्मोदय मात्र ही बन्ध का कारण होवे तो.... कर्मों से छूटने का अवकाश ही न रहे!! क्योंकि संसारी अवस्था में कर्मोदय तो रहता है। इसलिए मिथ्यात्व की ग्रन्थी टूटी, वहाँ बाकी के कर्मों से छुट्टी मिल गयी। मिथ्यादर्शन का अभाव होने पर अन्य आस्त्रव क्रमशः अवसान को प्राप्त होते जाते हैं। इस प्रकार जड़कर्म की दशायें भी उनके स्वकाल में अकर्मरूप होने लगी।

सम्यग्दर्शन की महिमा कोई अद्‌भुत और अचिन्त्य है। ध्रुव चैतन्य अक्षय सत्ता में... पर्याय का एकत्व स्थापित हुआ है। उस धर्मीजीव को अब अस्थिरताजन्य दोष खड़ा होता है, परन्तु उसमें उसका स्वामित्व नहीं होने से उसे मिथ्यात्व का आस्त्रव प्रगट नहीं होता। वह दुःखरूप रागादि भावों से छूटने का सतत् उद्यमशील रहता है।

दृष्टि की अपेक्षा से तो ज्ञानी सदा निरास्रवी है ही परन्तु उसे अविरति, कषाय और योगास्रव में भी एकदेश अशुद्धता का नाश हुआ है। इस प्रकार देखने से अन्य आस्रवों से भी आंशिक निवृत्त हुआ है। सम्यग्दर्शन होने पर निष्कम्प ऐसी निष्क्रियत्व शक्ति का अकम्पपने का परिणमन आंशिक व्यक्त हुआ है। चौथे गुणस्थानवाले को भी द्रव्य योगास्रव में आंशिक आस्रव का क्षय हुआ है.... इसलिए उसे प्रतिजीवी गुण की निर्मल दशा आंशिक खिल उठी है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने—'सर्व गुणांश वह समकित' इस प्रकार कहा है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने 'सर्व गुणों का एकदेश निर्मल परिणमन शुरु होता है'—ऐसा कहा है।

करणानुयोग की ओर से देखने पर भी यह बात सिद्ध होती है। तो ज्ञानी किस प्रकार निरास्रवी है ? ज्ञानी, चारित्रमोह के उदय में जुड़ता है। तो उसे उतना बन्ध भी होता है। उस अल्पबन्ध की स्थिति में भी उसके कर्मबन्ध का प्रकार बदल गया है। द्रव्य प्रत्यय जो अविरति, कषाय और योग में भी आंशिक कर्मबन्ध होना रुक गया है। उसमें भी स्थिति और अनुभाग रस पतला पड़ा है। यह बात आगम युक्त है। क्योंकि नवीन कर्मबन्ध के कारणभूत ऐसे रागादि के अभाव से द्रव्यबन्धरूप कार्य का अभाव स्वत:सिद्ध होता है। सारांश यह है कि—'ज्ञानी सदा निरास्रवी है।'

उपरोक्त बात का समर्थन देते हुए कलश टीकाकार श्री शुभचन्द्र आचार्यदेव—परम अध्यात्म तरंगिणी में कहते हैं कि—भाव प्रज्ञापननय की अपेक्षा से साधक को सर्व भावास्रव के अभाव का निर्देश किया है। क्योंकि अनन्त संसार के समुत्पादक ऐसे मिथ्यात्व का नाश होने से शेष कर्मजनित आस्रवों का अभाव तो अति सन्निकट है। इस प्रकार ज्ञानी को सर्व भावास्रवों का अभाव कहा है, यह उसका फलितार्थ है; जो युक्तियुक्त और आगमोक्त है।

संवर अधिकार

भेदविज्ञान अर्थात् राग से भिन्नता और स्वभाव से अभिन्नता ऐसी भावना का नाम है संवर। जब संवर तत्त्व का उदय होता है, तब ही उसकी परिणति में शुद्धात्मा की उपलब्धि का मंगलाचरण होता है।

परमाध्यात्म तरंगिणी में संवर अधिकार की टीका करने से पहले टीकाकार शुभचन्द्राचार्य 'ॐ नम:' की मंगल स्थापना करते हैं। क्योंकि अप्रतिबुद्ध जीव ने पूर्व में कभी भी संवर प्रगट नहीं किया। जो जीव शुद्धात्मा की महिमा में अनुरक्त होता है, उसे चिद्रूपता धरता ज्ञान और जड़रूपता धरता राग, ये दोनों प्रगटरूप से पृथक् भासित होते हैं।

संवर अधिकार में भेदविज्ञान की प्रेरणा देते हुए सन्त कहते हैं कि—भेदज्ञान का सतत् उद्यम करते रहना, वह प्रत्येक मुमुक्षु का परम लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि आत्मोपलब्धि का मूल कारण भेदविज्ञान ही है। भेदज्ञान के प्रगट अभ्यास से परमात्मतत्त्व की उपलब्धि होती है। शुद्धतत्त्व की प्राप्ति होने पर राग समूह का विलय हुआ; राग समूह का विलय होने से कर्मों का संवर हुआ। कर्मों का अभाव होने पर शरीरादि नोकर्म उत्पन्न नहीं हुआ। नोकर्म के अभाव से संसार का अभाव हुआ। यह सब प्रताप और प्रभाव भेदविज्ञान का ही है।

'**आस्रव निरोधः संवरः**' आस्रव का निरोध करके जो शुद्धपर्याय प्रगट हुई, वह संवर है। यह नास्तिपरक व्याख्या हुई। अस्ति से व्याख्या करें तो शुद्धात्माभिमुखवाले अपूर्ण शुद्ध निर्मल परिणाम वह संवर है। जिसे निश्चयमोक्षमार्ग कहा जाता है। संवरदशा की प्रगटता बिना कभी किसी जीव को धर्म की शुरुआत ही नहीं होती। साधकदशा की प्रारम्भता संवरतत्त्व का जन्म होने से होती है। जो एकदेश निर्मल पर्याय का नूतन प्रवाह शुरु हुआ और अशुद्धता का धाराप्रवाह वहाँ रुक गया। श्री पंचास्तिकाय की 144 गाथा की टीका में अमृतचन्द्र आचार्यदेव संवर की परिभाषा बाँधते हैं कि—'**शुभाशुभ परिणाम निरोधः संवरः शुद्धोपयोग**' आनन्दमयी आत्मतत्त्व के स्वसंवेदनरूप शुद्धोपयोग में आस्रवों की उत्पत्ति ही नहीं, उसका नाम संवर है। मैं तो प्रगट परमात्मा हूँ, ऐसी आनन्दमय अनुभूति की धारा आस्रवों को संवर करती हुई ही उदय होती है।

तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी ने आस्रव अधिकार के बाद बन्ध अधिकार लिखा, क्योंकि आस्रवपूर्वक बन्ध होता है। जबकि समयसार में कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने आस्रव अधिकार के बाद संवर अधिकार लिखा! तो दोनों आचार्यदेवों के अधिकार के क्रम में अन्तर किसलिए? तत्त्वार्थसूत्र आगमप्रधान ग्रन्थ होने से वहाँ व्यवहार की मुख्यता से क्रम रचा है। जबकि समयसार दृष्टिप्रधान ग्रन्थ होने से निश्चय की मुख्यता से क्रम रचा है। जो जीव समयसार का भाव से अध्ययन से अर्थात् कि आत्मा और आस्रवों का भेदज्ञान करे, उसे आस्रव के निरोधपूर्वक संवर दशा ही प्रगट होती है।

निर्जरा अधिकार

ज्ञानी को जो ज्ञान-वैराग्य का सामर्थ्य प्रगट हुआ है; उसका अद्‌भुत माहात्म्य बतलानेवाला यह अधिकार है। जो संवररूप शुद्धता प्रगट हुई है, उसकी वृद्धि होना, इसका नाम निर्जरा है। धर्मी जीव को ज्ञायक को अवलम्बन करनेवाली ज्ञातृधारा निरन्तर वर्तती होने से उसे प्रतिसमय शुद्धि की वृद्धि होती ही रहती है और अशुद्धता की हानि प्रतिक्षण होती रहती है। पुण्य-पाप से विरक्ति ऐसा वैराग्य; अर्थात् रागादि भावों से रहित दशा का नाम वैराग्य है और स्वस्वभाव के साथ एकत्वरूप वृद्धिगत होता हुआ ज्ञान, वह ज्ञान है।

श्री प्रवचनसार में निर्जरा की व्याख्या की है—'**इति स्वरूप विश्रांतनिस्तरंग चैतन्य प्रतपनाच्यतपः**' और '**तपसा निर्जराच**'

1. साधक को पुराने कर्म उदय में आकर खिर जाते हैं, उसे निर्जरा कहा।

2. वर्तमान पर्याय शुद्धात्मा के लक्ष्य से परिणमती होने से आस्रवों की उत्पत्ति न होना, उसे निर्जरा कहते हैं।

3. चैतन्यस्वभाव के लक्ष्य से शुद्धि की वृद्धि होना—वह भाव निर्जरा है। इस प्रकार निर्जरा के तीन प्रकार कहे हैं।

1. द्रव्यकर्म की निर्जरा कही, वह असद्भूतव्यवहारनय से कहा है।

2. अशुद्धभावकर्म की निर्जरा कही, वह अशुद्ध निश्चयनय से कहा है।

3. शुद्धि की वृद्धि को निर्जरा कहा, वह सद्भूतव्यवहार से कहा है।

ज्ञानी जीव कर्म की सामग्री के मध्य में रहता हुआ दिखता है; चेतन, अचेतन पदार्थों का भोग-उपभोग करता दिखने पर भी वह रागादि से रंगता नहीं है। वह भोग और भोग के भाव से कैसा निर्लेप-उदासीन रहता है, इसका स्पष्ट अवलोकन कराया है।

इष्टोपदेश में कहा है कि जैसे-जैसे स्व-पर पदार्थों के भेदविज्ञान द्वारा आत्मा का उत्तम स्वरूप, संवेदन में विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे सहज प्राप्त रमणीय पंचेन्द्रिय के विषय भी रुचते नहीं, अर्थात् उनके प्रति उपेक्षा और उदासीनता उत्पन्न होती है। ज्ञानी की भावना तो पूर्ण ज्ञान और आनन्द को प्रगट करने की ही है; शुद्धात्मा की सन्मुखतावाला वेग साध्यदशा की ओर कैसा प्रगतिमान हो रहा है। बाहर के उदय, प्रसंग, सामग्रियों के मध्य वह कैसा जलकमलवत् अलिप्त रहता है, उसका विश्लेषण करनेवाला अधिकार अर्थात् निर्जरा अधिकार।

आध्यात्मिक सन्तपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा इस चौथे भाग के कुल 46 प्रवचन आस्रव अधिकार, संवर अधिकार तथा निर्जरा अधिकार के अक्षरशः प्रकाशित करते हुए हम धन्यता का अनुभव करते हैं।

इन समग्र प्रवचनों को सी.डी. से गुजराती में अक्षरशः कम्प्यूटराईज्ड करने का कार्य आत्मार्थी भाईश्री नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा तथा सुनकर चैक करने का कार्य श्री मणीभाई गाला, देवलाली द्वारा किया गया है। समग्र प्रवचनों को पढ़कर कोष्ठक भरने और चैक करने का कार्य श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर आत्महित साधे, इस उद्देश्य से प्रस्तुत कलशामृत भाग - 4 का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। हम सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में परिपूर्ण परमात्मा का स्वरूप समझकर, संवररूप धर्म प्रगट करके आत्मिक आनन्द को आस्वादकर सभी जीव तृप्त बनें, ऐसी भावनापूर्वक....

प्रस्तुत ग्रन्थ www.vitragvani.com एवं vitragvani app पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	कलश नं.	दिनांक	पृष्ठ नं.
११५	११७-११८	०७-१०-१९७७	००१
११६	११८-११९	०८-१०-१९७७	०१९
११७	१२०	०९-१०-१९७७	०३६
११८	१२०-१२१	१०-१०-१९७७	०५०
११९	१२१-१२२	११-१०-१९७७	०६४
१२०	१२२-१२३	१३-१०-१९७७	०८१
१२१	१२३	१४-१०-१९७७	०९५
१२२	१२४	१५-१०-१९७७	१११
१२३	१२४-१२५	१६-१०-१९७७	१२६
१२४	१२५	१७-१०-१९७७	१४४
१२५	१२५	१८-१०-१९७७	१५६
१२६	१२६	२०-१०-१९७७	१७१
१२७	१२६-१२७	२१-१०-१९७७	१८५
१२८	१२८	२२-१०-१९७७	२००
१२९	१२९-१३०	२३-१०-१९७७	२१७
१३०	१३०-१३१	२४-१०-१९७७	२३४
१३१	१३२	२५-१०-१९७७	२५०
१३२	१३३	२७-१०-१९७७	२६८
१३३	१३४	२८-१०-१९७७	२८५
१३४	१३४	२९-१०-१९७७	३०१
१३५	१३५-१३६	३०-१०-१९७७	३१८
१३६	१३६	३१-१०-१९७७	३३६
१३७	१३६-१३७	०१-११-१९७७	३५१

১৩৮	১৩৭	০২-১১-১৯৭৩	৩৬৭
১৩৯	১৩৭	০৩-১১-১৯৭৩	৩৮৪
১৪০	১৩৮	০৫-১১-১৯৭৩	৪০১
১৪১	১৩৮	০৬-১১-১৯৭৩	৪১৭
১৪২	১৩৮-১৪০	০৭-১১-১৯৭৩	৪৩২
১৪৩	১৪০-১৪১	০৮-১১-১৯৭৩	৪৫০
১৪৪	১৪০	০৯-১১-১৯৭৩	৪৬৬
১৪৫	১৪১	১০-১১-১৯৭৩	৪৮৩
১৪৬	১৪১	১১-১১-১৯৭৩	৫০০
১৪৭	১৪১-২৬৮	১২-১১-১৯৭৩	৫১৫
১৪৮	১৪১-১৪২	১৩-১১-১৯৭৩	৫৩১
১৪৯	১৪২-১৪৩	১৪-১১-১৯৭৩	৫৪৩
১৫০	১৪৪	১৫-১১-১৯৭৩	৫৬৫
১৫১	১৪৪	১৬-১১-১৯৭৩	৫৮৪
১৫২	১৪৫	১৩-১১-১৯৭৩	৬০০
১৫৩	১৪৫-১৪৬	১৮-১১-১৯৭৩	৬১৫
১৫৪	১৪৩	২০-১১-১৯৭৩	৬৩১
১৫৫	১৪৮-১৪৯	২১-১১-১৯৭৩	৬৪৩
১৫৬	১৪৯-১৫০	২২-১১-১৯৭৩	৬৬৩
১৫৭	১৫০	২৩-১১-১৯৭৩	৬৮০
১৫৮	১৫১	২৪-১১-১৯৭৩	৬৯৫
১৫৯	১৫১-১৫২	২৫-১১-১৯৭৩	৭১০
১৬০	১৫২-১৫৩	২৩-১১-১৯৭৩	৭২৬

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

कलशामृत

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
श्री समयसार कलश पर प्रवचन)
(भाग - ४)

कलश-११७

(अनुष्टुप्)

सर्वस्यामेव जीवन्त्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः।।५-११७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — यहाँ कोई आशंका करता है — सम्यग्दृष्टि जीव, सर्वथा निरास्रव कहा और ऐसा ही है, परन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्यपिण्ड जैसा था, वैसा ही विद्यमान है। तथा उस कर्म के उदय में नाना प्रकार की भोगसामग्री जैसी थी, वैसी ही है। तथा उस कर्म के उदय में नाना प्रकार के सुख-दुःख को भोगता है, इन्द्रिय-शरीरसम्बन्धी भोगसामग्री जैसी थी, वैसी ही है। सम्यग्दृष्टि जीव, उस सामग्री को भोगता भी है। इतनी सामग्री के रहते हुए, निरास्रवपना कैसे घटित होता है, ऐसा कोई प्रश्न करता है — 'द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ सर्वस्यामेव जीवन्त्यां ज्ञानी नित्यं निरास्रवः कुतः' [द्रव्यप्रत्यय] जीव के प्रदेशों में परिणमा है पुद्गलपिण्डरूप अनेक प्रकार का मोहनीयकर्म, उसकी [सन्ततौ] सन्तति-स्थितिबन्धरूप बहुत कालपर्यन्त जीव के प्रदेशों में रहती है। [सर्वस्यां] जितनी होती, जैसी होती, [जीवन्त्यां] उतनी ही है, विद्यमान है, वैसी ही है। [एव] निश्चय से फिर भी [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव, [नित्यं निरास्रवः] सर्वथा सर्व काल

आस्रव से रहित है, ऐसा जो कहा सो [कृत:] क्या विचार करके कहा 'चेत् इति मति:' [चेत्] भो शिष्य! यदि [इति मति:] तेरे मन में ऐसी आशंका है तो उत्तर सुन, कहते हैं।।५-११७।।

भाद्र कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक - ०७-१०-१९७७, कलश-११७-११८, प्रवचन-११५

कलशटीका। ११७।

सर्वस्यामेव जीवन्त्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मति:।।५-११७।।

यहाँ प्रश्न होता है कि सम्यग्दृष्टि को निरास्रव कहा है, जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप और अनन्त गुण का भण्डार, उसकी सम्यग्दर्शन में प्राप्ति हुई तो सारे पूर्ण आत्मा की प्रतीति हुई। उसे ज्ञेय बनाकर पूरा आत्मा ज्ञान में जानने में आया। तब उसकी दृष्टि में पुण्य-पाप के भाव की रुचि छूट गयी और पुण्य-पाप के फल की भी रुचि छूट गयी। तो उसका परिणमन सम्यग्दर्शन की अपेक्षा उसे शुद्ध परिणमन है। अशुद्ध परिणाम की मिठास चली गयी और अशुद्ध परिणाम के फलरूप संयोगी चीज़ में भी मिठास उड़ गयी। आहाहा!

धर्मीजीव को आनन्द में मिठास आती है, स्वरूप में मिठास आती है। आहाहा! अज्ञानी को पुण्य और पाप के भाव और उनके फल संयोगों में मिठास आती है। आहाहा! इतनी दिशाभेद दशा हो गयी। मिथ्यादृष्टि की दशा में पुण्य-पाप के भाव मिठास-मेरे हैं, ऐसा मानकर कर्ता-भोक्ता होता था। आहा! और वह पुण्य आदि का फल मिले, उसे मिथ्यादृष्टि, अपनी स्वसम्पदा की तो खबर नहीं तो बाहर की सम्पदा में मिठास, प्रेम करता था। वह सम्यग्दृष्टि हुआ तो यह प्रेम उड़ गया। आहाहा! तो सम्यग्दर्शन में राग का प्रेम और पर की मिठास उड़ गयी, इसलिए उसे बन्ध नहीं है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई!

शिष्य का यह प्रश्न है कि, यह सब तो है और तुम कहते हो, आस्रवरहित। आस्रवरहित (हो गया)।

खण्डान्वय सहित अर्थ - यहाँ कोई आशंका करता है... आशंका का अर्थ? आप कहते हो, वह मिथ्या है, ऐसा नहीं, परन्तु आप क्या कहते हो, वह मुझे समझ में नहीं आता। इसका नाम आशंका। **आशंका करता है - सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा निरास्त्रव कहा...** उसे कोई पुण्य-पाप का आस्त्रव है ही नहीं? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! **और ऐसा ही है।** शिष्य भी कहता है। आहाहा! क्योंकि जो पुण्य और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम मेरे हैं और उनसे मुझे लाभ है, ऐसा मिथ्यादृष्टिपना था, वह मिथ्यादृष्टिपना सम्यग्दृष्टि में उड़ गया। आहाहा! तो वह पुण्य और पाप होने पर भी, और उस पुण्य-पाप के फलरूप संयोग होने पर भी, उसे मिठास उड़ गयी, स्वामित्व उड़ गया। आहाहा! ऐसा मार्ग सूक्ष्म पड़े। छह खण्ड का राज मेरी चीज़ नहीं, मुझमें नहीं... आहाहा! और मैं उसमें नहीं। मैं जहाँ हूँ, वहाँ तो आनन्द, ज्ञान और शान्ति पड़ी है। आहाहा! ऐसी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि होने से उसे निरास्त्रव किस प्रकार कहा? उसे राग है, पुण्य है, भाव तो आता है। कर्म भी विद्यमान है और पुण्य की सामग्री भोगता हुआ भी दिखता है। बहुत सूक्ष्म बात है।

सर्वथा निरास्त्रव कहा और ऐसा ही है। शिष्य कहता है, ऐसा होता तो है, बराबर लगता है। **परन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्यपिण्ड जैसा था, वैसा ही विद्यमान है...** समकिती को अभी आठ कर्म हैं, वे तो हैं। आत्मा के प्रदेश पर आठ कर्म जड़ हैं, वे हैं और आप कहते हो, निरास्त्रव है। एक बात। **तथा उस कर्म के उदय में नाना प्रकार की भोगसामग्री जैसी थी, वैसी ही है।** आहाहा! भगवान आत्मा अपने अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ, तब से उसे कर्म और कर्म से प्राप्त सामग्री में रुचि—रस उड़ गया। समझ में आया? इसलिए जैसी सामग्री थी, वैसी हो। सम्यग्दर्शन हुआ तो कहीं बाहर की सभी सामग्री चली जाती है? हो। आहाहा! **तथा उस कर्म के उदय में नाना प्रकार के सुख-दुःख को भोगता है...** आहाहा! जरा सुख-दुःख की कल्पना में आता है, वेदता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का माहात्म्य वर्णन करते हैं। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? और सम्यग्दर्शन का विषय भगवान परमानन्दस्वरूप अनन्त गुणभण्डार, आहाहा! वह जिसके विषय में आया, उसे सब पर विषय छूट गये। (पर विषय) दृष्टि का विषय रहा नहीं। आहाहा!

इन्द्रिय-शरीर-सम्बन्धी भोग सामग्री... समकिती को **इन्द्रिय-शरीर-सम्बन्धी भोग सामग्री जैसी थी, वैसी ही है।** आहाहा! देव जिसकी सेवा करे और रत्न-हीरा के थाल, मणिरत्न की कटोरी। वाटका को क्या कहते हैं? कटोरी। उसमें बादाम की सब्जी और पिस्ता का पापड़ (खाये)। सामग्री तो है। भोगता भी है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : आजकल तो पिस्ता के पापड़ नहीं बनते।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी भी गृहस्थों के यहाँ बनते हैं। तुम्हारे यहाँ नहीं बनते होंगे। मुम्बई में देखा है? मुम्बई में। मुम्बई में जहाँ बड़े-बड़े अधिकारी बैठते हैं न? वे सोने के सिंहासन हैं। मुम्बई। हमने देखा है और गये थे न! सवेरे दूध और दूध में बादाम और पिस्ता का माल आवे। मसाला। मूढ़ जीव प्रेम से भोगता है। आहाहा! मैं उसका भोक्ता और मैं उसका कर्ता। आहाहा! ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव भोगता है।

सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! वह विषय **भोग सामग्री जैसी थी, वैसी ही है।** वैसी ही है। ऐसा कहा न? **इन्द्रिय-शरीर-सम्बन्धी भोग सामग्री जैसी थी, वैसी ही है। सम्यग्दृष्टि जीव उस सामग्री को भोगता भी है।** आहाहा! समकिती चक्रवर्ती होता है न? शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे, कामदेव थे। उनकी दासी, करोड़ों रुपये का एक हीरा होता है, उस हीरा को ऐसे... दासी भी इतनी ताकतवाली होती है कि हीरा को ऐसे चूरा कर देती है। समझ में आया? चक्रवर्ती को तिलक करे और करोड़ों अरबों रुपये की हीरा की भस्म बनावे। और भस्म बनाकर रसोईया उसका भोजन बनावे और वह भोजन... चक्रवर्ती तीर्थंकर अभी मुनि न हुए हों, भोजन में आते हैं। आहाहा! हीरा का थाल, मणिरत्न की कटोरी और देव पंखा से हवा करते हैं। ऐसा तो है। तो समकिती निरास्रव है, (ऐसा) कैसे कहते हो? आहाहा! सुन तो सही, प्रभु! एक बार सुन तो सही। आहाहा!

इतनी सामग्री के रहते हुए निरास्रवपना कैसे घटित होता है... यह शिष्य का प्रश्न है। इतनी-इतनी सामग्री... आहाहा! और देवों ने बनाये हुए बड़े मकान। क्या कहलाते हैं? महल। अरबों की कीमत। अरबों की कीमत (का) तो एक-एक हीरा चिपकाया हो उसकी होती है। चक्रवर्ती को ऐसे तो पाँच बड़े महल हैं। उसमें रहता है।

आहाहा! भरत चक्रवर्ती है सम्यग्दृष्टि। आहाहा! कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि तो ऐसी सामग्री में पड़ा हुआ दिखता है न? भोगता हुआ दिखता है न! आहाहा! समझ में आया? **इतनी सामग्री के रहते हुए निरास्त्रवपना कैसे घटित होता है, ऐसा कोई प्रश्न करता है।** यह सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और मिथ्यादृष्टि की नीचता कितनी है, यह लोगों को खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जिसे पुण्य और दया, दान, व्रत के परिणाम में धर्म है, ऐसी मान्यता है, वह मिथ्यादृष्टि है। वह मुनि हुआ, हजारों रानियों का त्याग किया परन्तु अन्दर में राग की रुचि और राग का प्रेम है। भगवान आनन्द का प्रेम छूट गया है। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि एक बार खाये अथवा महीने-महीने के अपवास भी करे तो भी उसे आस्त्रवसहित गिनने में आया है। मिथ्याश्रद्धा है, इसलिए आस्त्रवसहित गिनने में आया है। आहाहा! और ऐसी की ऐसी सामग्री में समकी जीव पर में उदास है। आहाहा! पर का सब प्रेम छूट गया है। पूरी दुनिया। आहाहा! जिसकी पर्यायबुद्धि छूट गयी। एक अंश का जो आत्मा का विकास है, उसकी भी रुचि छूट गयी। जहाँ त्रिकाली भगवान पूर्णानन्दस्वरूप ध्रुवस्वरूप नित्यानन्द प्रभु का जहाँ अनुभव हुआ और सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया... आहाहा! वहाँ आगे ऐसी सामग्री होने पर भी स्वाद की बुद्धि छूट गयी है। रस रहा नहीं, रस नहीं रहा। आहाहा!

'द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ सर्वस्यामेव जीवन्त्यां ज्ञानी नित्यं निरास्त्रवः कुतः' जीव के प्रदेशों में परिणमा है, पुद्गल पिण्डरूप अनेक प्रकार का मोहनीयकर्म,... पड़ा है, **उसकी सन्तति-स्थितिबन्धरूप बहुत कालपर्यन्त जीव के प्रदेशों में रहती है।** होता है। आत्मा के प्रदेश में कर्म की स्थिति भी रहती है। आहाहा! और तुम कहते हो कि वह तो निरास्त्रव है। सूक्ष्म बात, बापू! सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन दो चीज़ की बात सूक्ष्म है। लोग बाहर से मान बैठते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, समकित है, अब व्रत और तप करो। बिल्कुल मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! जिसे एक शुभराग मात्र आता है तो सम्यग्दृष्टि को काला नाग, जहर दिखता है। और अज्ञानी को अशुभराग में भी रस में मिठास... मिठास (आती है)। आहाहा! यह दृष्टि भेद से कौन सी सृष्टि उत्पन्न होती है, यह अलौकिक बातें हैं! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! आप समकिती को निरास्रव कहते हो। उसके आत्मप्रदेश पर आठों कर्म पड़े हैं और उसकी स्थिति वहाँ रहेगी भी सही। आहाहा! उनकी सन्तति रहती है। **जितनी होती, जैसी होती, उतनी ही है...** पड़े हैं उतनी स्थिति में। **विद्यमान है, वैसी ही है। निश्चय से फिर भी सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा सर्व काल आस्रव से रहित है...** ऐसा क्यों कहा? ऐसा होने पर भी सर्व काल सर्वथा पुण्य-पाप के भाव उसे हैं ही नहीं, उनका फल भी उसे है ही नहीं, ऐसा क्यों कहा? आहाहा! अरे! मिथ्यादृष्टि की दिशा पर के ऊपर है, इसलिए उसकी दशा में मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की दशा में उसकी दिशा ध्रुव पर है। आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु अनन्त गुण का भण्डार निधान है। चक्रवर्ती के निधान तो अल्प मर्यादित हैं। यह तो महानिधान। अन्तर में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, ईश्वरता, प्रभुता ऐसी अनन्त शक्ति का सागर भगवान, उसका सम्यग्दर्शन में जो अनुभव हुआ तो सम्यग्दृष्टि को कर्म की स्थिति विद्यमान होने पर भी निरास्रव क्यों कहा? ऐसा शिष्य प्रश्न करता है। आहाहा! सर्वथा सर्व काल। देखा? '**नित्यम्**' अर्थात् सर्व काल। सर्व काल निरास्रव है। **आस्रव से रहित है, ऐसा जो कहा सो क्या विचार करके कहा? भो शिष्य! यदि तेरे मन में ऐसी आशंका है तो उत्तर सुन, कहते हैं।** आहाहा!

कलश-११८

(मालिनी)

विजहति न हि सत्तां प्रत्यया: पूर्वबद्धा:
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपा:।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासा–
दवतरति न जातु ज्ञानिन: कर्मबन्ध:।।६–११८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तदपि ज्ञानिन: जातु कर्मबन्ध: न अवतरित' [तदपि] तो भी, [ज्ञानिन:] सम्यग्दृष्टि जीव के [जातु] कदाचित् किसी भी नय से, [कर्मबन्ध:] ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलपिण्ड का नूतन आगमन–कर्मरूप परिणमन [न अवतरति] नहीं होता। अथवा जो कभी सूक्ष्म अबुद्धिपूर्वक राग–द्वेष परिणाम से बन्ध होता है, अति ही अल्प बन्ध होता है, तो भी सम्यग्दृष्टि जीव के बन्ध होता है, ऐसा कोई तीनों कालों में कह सकता नहीं। आगे कैसा होने से बन्ध नहीं। 'सकलरागद्वेषमोहव्युदासात्' जिस कारण से ऐसा है, उस कारण से बन्ध नहीं घटित होता। [सकल] जितने शुभरूप अथवा अशुभरूप [राग] प्रीतिरूप परिणाम–[द्वेष] दुष्टपरिणाम–[मोह] पुद्गलद्रव्य की विचित्रता में आत्मबुद्धि — ऐसा विपरीतरूप परिणाम, ऐसे [व्युदासात्] तीनों ही परिणामों से रहितपना, ऐसा कारण है, इससे सामग्री के विद्यमान होते हुए भी, सम्यग्दृष्टि जीव, कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है। विद्यमान सामग्री जिस प्रकार है, उस प्रकार कहते हैं — 'यद्यपि पूर्वबद्धा: प्रत्यया: द्रव्यरूपा: सत्तां न हि विजहति' [यद्यपि] जो ऐसा भी है कि [पूर्वबद्धा:] सम्यक्त्व की उत्पत्ति के पहले, जीव, मिथ्यादृष्टि था, इससे मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणाम के द्वारा बाँधे थे जो [द्रव्यरूपा: प्रत्यया:] मिथ्यात्वरूप तथा चारित्रमोहरूप पुद्गलकर्मपिण्ड, वे [सत्तां] स्थितिबन्धरूप होकर, जीव के प्रदेशों में कर्मरूप विद्यमान हैं, ऐसे अपने अस्तित्व को [न हि विजहति] नहीं छोड़ते हैं। उदय भी देते हैं, ऐसा कहते हैं — 'समयं अनुसरन्त: अपि' [समयं] समय–समय प्रति अखण्डित धाराप्रवाहरूप [अनुसरन्त: अपि] उदय भी देते हैं; तथापि सम्यग्दृष्टि, कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है — कोई अनादि काल का मिथ्यादृष्टि जीव, काललब्धि को प्राप्त करता हुआ, सम्यक्त्वगुणरूप परिणमा; चारित्रमोहकर्म की सत्ता

विद्यमान है, उदय भी विद्यमान है, पंचेन्द्रिय विषयसंस्कार विद्यमान है, भोगता भी है, भोगता हुआ ज्ञान-गुण के द्वारा वेदक भी है, तथापि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव, आत्मस्वरूप को नहीं जानता है, कर्म के उदय को आप कर जानता है, इससे इष्ट-अनिष्ट विषयसामग्री को भोगता हुआ राग-द्वेष करता है, इससे कर्म का बन्धक होता है; उस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव, आत्मा को शुद्धस्वरूप अनुभवता है, शरीर आदि समस्त सामग्री को कर्म का उदय जानता है, आये उदय को खपाता है परन्तु अन्तरंग में परम-उदासीन है; इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव को कर्मबन्ध नहीं है। ऐसी अवस्था सम्यग्दृष्टि जीव के सर्व काल नहीं। जब तक सकल कर्मों का क्षय कर निर्वाणपदवी को प्राप्त करता है, तब तक ऐसी अवस्था है; जब निर्वाणपद प्राप्त करेगा, उस काल का तो कुछ कहना ही नहीं — साक्षात् परमात्मा है।।६-११८।।

कलश - ११८ पर प्रवचन

११८ (कलश)

विजहति न हि सत्तां प्रत्यया: पूर्वबद्धा:
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपा:।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासा-
दवतरति न जातु ज्ञानिन: कर्मबन्ध:।।६-११८।।

आहाहा! इसमें से ले, वे लोग उठाते हैं कि समकिती को बिल्कुल दु:ख नहीं और राग नहीं। यहाँ तो अनन्त संसार का कारण राग-द्वेष और उसका फल छूट गया। अल्प संसार है, उसे यहाँ गौण करके और त्रिकाली चीज़ को सत्य कहकर, मुख्य कहकर 'है' ऐसा कहा और पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर 'नहीं' ऐसा कहा। आहाहा! क्या कहा? भूतार्थ जो भगवान आत्मा एक समय में त्रिकाली आत्मदल, वह सत्य है—ऐसा कहा और पर्याय है, तथापि उसे गौण करके 'नहीं'—ऐसा कहा। 'नहीं' ऐसा कहा तो है ही नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुणरत्नाकर प्रभु, उसे ही सत्य कहा और

उसकी पर्याय है, चाहे तो निर्मल पर्याय हो तो भी वहाँ असत्य कहा, 'है नहीं' ऐसा कहा। वह तो गौण करके 'है नहीं' ऐसा कहा। इस प्रकार यहाँ सम्यग्दृष्टि को अन्तर में मिथ्यात्व और मिथ्यात्व सम्बन्धी राग-द्वेष का नाश हुआ, इसलिए उन मिथ्यात्व सम्बन्धी के राग-द्वेष का नाश हुआ तो अस्थिरता का भाव है, उसे गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब कहाँ समझने की दरकार है?

भगवान आत्मा एक समय में नित्यानन्द प्रभु '**भूदत्थं**' भूतार्थ '**ववहारोऽभूदत्थो**'। पर्यायमात्र असत्य है, ऐसा कहा। और '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ त्रिकाली सत्यसाहेब प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, वही सत्य है। पर्यायमात्र असत्य कही। उस पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर असत्य कहा है और मुख्य वस्तु सत्य को मुख्य करके, निश्चय कहकर, उसे सत्य कहा है। समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ सम्यग्दृष्टि को उसे मुख्य स्वभाव का आश्रय है, इसलिए राग-द्वेष है और कर्म भी है, उन्हें गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वहाँ पकड़ बैठे कि हो रहा, सम्यग्दर्शन हुआ तो अब आस्रव, बन्ध है ही नहीं। स्वच्छन्दी हो जायेगा। आस्रव, बन्ध तो दसवें गुणस्थान तक हैं। परन्तु...

मुमुक्षु : अपने में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने में नहीं, अपने में है ही नहीं; पर में हैं परन्तु अपना स्वामीपना नहीं। स्वामित्व स्वभाव का है, इस अपेक्षा से कर्म है, विकार होता है, सामग्री है परन्तु उसका स्वामित्व नहीं, इसलिए आस्रव नहीं। उसे सामग्री नहीं। भोगता है, तथापि भोक्ता नहीं—ऐसा कहने में आया है। कठिन बातें, बापू! वीतराग का धर्म ऐसा सूक्ष्म है। अभी तो जैन के नाम से कुछ का कुछ चलाते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा... आहाहा! 'जिन सो ही आत्मा'। वीतरागस्वरूपी परमात्मा जहाँ प्रतीति में—श्रद्धा में, ज्ञान में अनुभव में आया तो उस समकिती को पूर्व के मिथ्यात्व सम्बन्धी कर्म बाँधे थे, वे मौजूद हैं, उनकी स्थिति भी है और उनके फल में सामग्री भी है, सामग्री का भोक्ता भी दिखता है, तथापि उसे गौण करके, उसे है नहीं, आस्रव नहीं, बन्ध नहीं—ऐसा कहा गया है। सम्यग्दर्शन के

माहात्म्य की मुख्यता देखकर। आहाहा! ऐसा कहाँ समझने जाये? एक तो धन्धा (के कारण) निवृत्ति नहीं मिलती। संसार के पाप के धन्धे पूरे दिन। उसमें निवृत्ति नहीं मिलती और निवृत्त हो तो ऐसी सामग्री (बात) सुनने को नहीं मिलती। आहाहा! अरेरे! कहाँ जायेगा? कहाँ होगा? क्या होगा? खबर नहीं होती इसकी। आहाहा! और वापस इस अपेक्षा से एकान्त खींच जाये कि लो, सम्यग्दृष्टि हुआ तो आस्रव और बन्ध नहीं। तो दसवें में आस्रव-बन्ध है न? यहाँ तो मुख्य समकित दृष्टि और समकित के आश्रय के (विषय का) स्वामी गिनकर, उसका स्वामीपना उसकी चीज़ में नहीं, ऐसा गिनकर उसे आस्रव और बन्ध नहीं है, (ऐसा कहा है)। आस्रव और बन्ध है, वे कर्मधारा में जाते हैं और कर्मधारा का तो ज्ञानी ज्ञेयरूप से जाननेवाला है। आहाहा! इस अपेक्षा से गिनने में आया है। बहुत काम...

राज छोड़कर, पूरी जिन्दगी ब्रह्मचर्य पालता हो, परन्तु राग के प्रेम में मिथ्यादृष्टि पूर्ण आस्रव और बन्ध में पड़ा है। और समकिती ९६ हजार स्त्रियों के भोग में दिखाई दे। वह उसमें नहीं है। आहाहा! 'नोआखली' में हुआ था न? 'नोआखली'। गाँधीजी गये थे। मुसलमान का बहुत जोर। हिन्दुओं को बहुत मारते थे। 'नोआखली'। हिन्दू का पच्चीस-पच्चीस वर्ष के जवान लड़का और ४५ वर्ष की माँ। उन्हें नंगा करके मुसलमान विषय लेने को इकट्ठे करते। अरर! लड़के को लगे, अरेरे! प्रभु! यह (धरती) मार्ग दे तो समा जाऊँ। यह क्या है? है रस? नग्न करके देह ऐसे इकट्ठी करे। अरर! बहिन और भाई जवान को नग्न करके इकट्ठे करे।

इसी प्रकार धर्मी को... आहाहा! पुण्य और पाप के भाव और सामग्री, (पुत्र को) जैसे माता के भोग का प्रेम उड़ गया है, वैसे उड़ गया है। आहाहा! सुना था न? 'नोआखली' का। गाँधीजी गये थे। बहुत क्रूरता, मुसलमानों की हिन्दुओं पर बहुत क्रूरता। माता को और पुत्र को, बहिन को और भाई को नग्न करके भोग लेने के लिये ऐसे इकट्ठे करते। अरर! इसी प्रकार यहाँ सम्यग्दृष्टि... आहाहा! मैं तो भगवानस्वरूपी परमात्मा राग और राग के फल से और बन्ध से भिन्न हूँ। अबन्धस्वरूपी राग के सम्बन्ध बिना की मेरी चीज़ है। ऐसा दृष्टि में-अनुभव में आया, उसे संयोग के भोग, माता के भोग में जैसे जहर दिखता है, वैसे उसे जहर दिखता है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू!

अज्ञानी मुनि हुआ हो, पंच महाव्रत पालता हो, परन्तु वह राग के प्रेम में, राग की रुचि में मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसे भगवान आनन्द के नाथ की, उसे खबर नहीं है।

मुमुक्षु : सब छोड़ने के बाद किसका राग रह जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ छोड़ा नहीं। राग को अपना माना है, इसलिए जरा भी छोड़ा नहीं। क्या छोड़ा? धूल छोड़ा है? सेठ! अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम जो राग है, वह मेरी चीज़ है—ऐसा माननेवाले को पूरी दुनिया का त्याग नहीं। और एक राग का कर्ता है, वह पूरी दुनिया का करता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! दया, दान, व्रत का विकल्प उठता है, उसका जो मिथ्यादृष्टि कर्ता होता है, वह पूरे जगत का कर्ता है। उसके अभिप्राय में पूरे जगत का मैं कर्ता हूँ। आहाहा! ऐसा है। सम्यग्दृष्टि को पूरा अभिप्राय छूट गया है। पूरे जगत का और रागमात्र का मैं कर्ता नहीं। आहाहा! भाई! अगम्यगम्य की बातें हल्की-फुल्की जैसी लगे। बापू! मार्ग ऐसा, नाथ!

यहाँ कहते हैं कि ऐसे हैं तो उसे निरास्रव कैसे कहा? सुन। आहाहा!

विजहति न हि सत्तां प्रत्यया: पूर्वबद्धा:
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपा:।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासा-
दवतरति न जातु ज्ञानिन: कर्मबन्ध:।।५-११८।।

खण्डान्य सहित अर्थ - 'तदपि ज्ञानिनः जातु कर्मबन्धः न अवतरति' तो भी... इतना होने पर भी **सम्यग्दृष्टि जीव के कदाचित् किसी भी नय से...** यहाँ तो एकदम जोर देना है। आहाहा! वह तो ज्ञेय का ज्ञाता हो गया। आहाहा! व्यवहार दया, दान और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग आवे, परन्तु उसका भी ज्ञाता हो गया। समकिती ने (उसे) परज्ञेय में डाल दिया। आहाहा! समझ में आया? **किसी भी नय से...** भाषा देखो! व्यवहारनय से (भी) नहीं। आहाहा! वस्तु तो यह है। आहा! आत्मा का सम्यग्दर्शन, बापू! वह क्या चीज़ है! यह अनन्त काल में अनन्त बार जैन दिगम्बर साधु हुआ। मिथ्यादृष्टि, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु अन्दर में राग का-विकल्प का प्रेम छूटा नहीं, उसकी रुचि छूटी नहीं तो कुछ छूटा नहीं। और ज्ञानी को राग की रुचि

और पूरी दुनिया की रुचि छूट गयी तो सर्व संयोग होने पर भी अन्दर छूट गया है। आहा! कठिन बातें हैं। दिशा बदलने से दशा बदल गयी। समकिती की दिशा अपनी वस्तु में है। ध्रुव चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु, उसके ऊपर दृष्टि पड़ी है। आहाहा! वह मेरा सत् है और रागादि मुझमें त्रिकाल में है नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि की अपेक्षा से उसे आस्रव तथा बन्ध किसी नय से कहने में नहीं आते हैं। आहाहा!

ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलपिण्ड का नूतन आगमन-कर्मरूप परिणमन... नये-नये आते हैं यह **नहीं होता।** समकिती को ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण नहीं होता। आहाहा! निरावरण अनाकुल आनन्दस्वरूप प्रभु, ऐसे आनन्द के प्रेमी और आनन्द में जिसकी एकता हुई, उसे ज्ञानावरणादि कर्म आते ही नहीं। क्योंकि वह भाव ऐसा नहीं कि ज्ञानावरणीय आवे। आहाहा! और भाव जो अल्प रागादि है, उनका प्रेम, रुचि नहीं। अपने से भिन्न है। आहाहा! **कर्मरूप परिणमन नहीं होता।**

अथवा जो कभी सूक्ष्म अबुद्धिपूर्वक राग-द्वेष परिणाम से बन्ध होता है,... क्या कहते हैं? देखो! समकिती को अन्दर जरा तीन कषाय का भाव, राग है। पंचम में दो कषाय का, छठवें में एक कषाय का ऐसा राग है। आ गया। जीव को ऐसा कोई अन्यबन्ध, **सूक्ष्म अबुद्धिपूर्वक राग-द्वेष परिणाम से बन्ध होता है, अति ही अल्प बन्ध होता है...** अनन्त संसार का बन्ध जो मिथ्यात्व में था... आहाहा! चाहे तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम (हों), परन्तु वे परिणाम होने हैं, ऐसी मिथ्यादृष्टि की दृष्टि में अनन्त संसार का कारण होता था। आहाहा! ऐसी बातें। कहाँ बेचारी दुनिया पड़ी है!! भटकता भिखारी। आहा! यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ, स्त्री लाओ, इज्जत लाओ, पैसा लाओ, मकान बनाओ और यह करो। अरेरे! कहाँ गया तू? प्रभु! तुझमें तो अनन्त सम्पदा पड़ी है न, नाथ! तेरी सम्पदा तो अखूट खजाना है। उसका तुझे प्रेम नहीं, रुचि नहीं, आश्रय नहीं, अवलम्बन नहीं। आहाहा! और जो तेरी चीज़ में नहीं, ऐसे दया, दान, व्रतादि के परिणाम में तेरी रुचि, प्रेम और अवलम्बन है, बस! यही मिथ्यात्व, यही संसार कहा, वह आस्रव, बन्ध का कारण है। समकिती को वह बन्ध नहीं। अल्प स्थिति आदि है, वह तो यहाँ कहते हैं... आहाहा!

अति ही अल्प बन्ध होता है... अबुद्धिपूर्वक अति अल्प बन्ध (होता है)। **तो भी**

सम्यग्दृष्टि जीव के बन्ध होता है, ऐसा कोई तीनों कालों में कह सकता नहीं। इस राग की धारा में बन्ध हो, स्वभावधारा में है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। अरे! जैन में जन्मे, उसे सुनने को मिले नहीं बेचारे को और मजदूर की मजदूरी करके... ऐई! हसमुखभाई! क्या नाम भाई का? प्रवीणभाई। यह प्रवीणभाई संसार के। प्रवीण कहते न? आहाहा! यहाँ तो प्रभु तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं, जिसे आत्मा के दर्शन हुए, पुण्य और पाप के राग से भिन्न यह भगवान की भेंट हुई, यह भगवान की भेंटवाले को आस्रव-बन्ध कहाँ है? ऐसा कहते हैं। अल्प आस्रव-बन्ध है, उसे गिनने में नहीं आया, गिनने में आया नहीं। जैसे पर्याय है, समकिती को। भूतार्थ है, उसे सत्य कहा; पर्याय है, उसे असत्य कहा। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा के सम्यग्दर्शन का भान हुआ, उसमें रागादि है, बन्ध है। है, उसे नहीं—ऐसा गिनने में आया है। इस अपेक्षा से। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसे कहे छठवें गुणस्थान में मुनि हों, सन्त महा भावलिंगी मुनिराज बाह्य में नग्नदशा होती है, अन्दर पंच महाव्रत का विकल्प आता है, परन्तु उससे रहित स्वसंवेदन आनन्द की प्रचुर दशा मुनि को वर्तती है। आहाहा! उन्हें राग आया तो उतना भी बन्ध है। आचार्य कहते हैं, मैं द्रव्यदृष्टिवन्त हूँ। मेरी चीज़ शुद्ध चैतन्यघन है। मेरी दृष्टि में द्रव्यदृष्टि हुई है। इस कारण से तो मैं शुद्ध हूँ। परन्तु अनादि से मुझे अभी राग की परिणति (चलती है)। मुनि, हों! सच्चे मुनि भावलिंगी। अकेला नग्नपना और पंच महाव्रत की क्रिया, वह कहीं साधु नहीं। साधु तो अन्तर में स्वसंवेदन अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में प्रचुर वेदन हो। ऐसा भावलिंग जिसे प्रगट हुआ, वह साधु है। उसे भी जरा राग है तो कहते हैं, हमको यह राग आया। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। यह कलश करनेवाले टीका में कहते हैं। समझ में आया? यह राग के परिणाम '**कल्माषितायाः**'। अरेरे! हमको कलुषितता आती है। शास्त्र लिखने का भाव, विकल्प, वह भी '**कल्माषितायाः**' कलुषित भाव है। आहाहा! मुझमें कलुषितता है, वहाँ ऐसा कहा। यहाँ कहते है कि सम्यग्दृष्टि को (राग) नहीं है।

मुमुक्षु : मुनि को है, सम्यग्दृष्टि को नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से? मुनि कहते हैं कि मुझमें अभी राग का

कल्माषित भाव है। यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को (आस्रव नहीं)। किस अपेक्षा से? यह राग का स्वामित्व नहीं और प्रेम उड़ गया है। आहाहा! आनन्द के प्रेम में पूरी दुनिया का प्रेम उड़ गया है। पूरे जगत का प्रेम (उड़ गया है)। सम्यग्दृष्टि को छियानवें हजार स्त्रियाँ हों परन्तु अन्दर में रुचि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? तो इस अपेक्षा से अल्प रागादि होते हैं और आस्रव, बन्ध भी होता है, अल्प स्थिति भी पड़ती है। परन्तु उसे यहाँ गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव के बन्ध होता है, ऐसा कोई तीनों कालों में कह सकता नहीं। आगे कैसा होने से बन्ध नहीं? 'सकलरागद्वेषमोहव्युदासात्' जिस कारण से ऐसा है, उस कारण से बन्ध नहीं घटित होता। किस कारण से? **जितने शुभरूप अथवा अशुभरूप प्रीतिरूप परिणाम, द्वेषरूप परिणाम...** आहाहा! आत्मबुद्धि छूट गयी है। धर्मी की पुण्य और पाप में प्रेम की आत्मबुद्धि—मेरे हैं, ऐसी बुद्धि छूट गयी है। आहाहा! धर्मी, पहली श्रेणी का धर्मी-समकिती। कहते हैं कि पुण्य और पाप का प्रेम जिसे छूट गया है। क्योंकि पुण्य और पाप के भाव जहर है। काला नाग है। काला नाग देखकर जैसे डर (लगता है), वैसे पुण्य-पाप के भाव को धर्मी काला नाग देखता है। आहाहा! ऐसी बातें सुनने को मिलती नहीं। अरेरे! वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ का यह पुकार है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को पुण्य की प्रकृति में अनुभाग अधिक पड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़ता है, विशेष पड़ता है। तथापि उसे नहीं, छूट गया न! उसे रुचि छूट गयी है। वह मेरी चीज़ नहीं, मुझमें नहीं, मेरी चीज़ में नहीं, मेरी मिठास में नहीं। हो तो हो, मुझमें नहीं। आहाहा!

उस कारण से बन्ध नहीं घटित होता। जितने शुभरूप अथवा अशुभरूप प्रीतिरूप परिणाम, दुष्ट परिणाम, पुद्गलद्रव्य की विचित्रता में आत्मबुद्धि... आहाहा! **ऐसे विपरीतरूप परिणाम, ऐसे तीनों ही परिणामों से रहितपना ऐसा कारण है,...** इस कारण से कहा है। आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, लोगों को खबर नहीं होती और उसके बिना व्रत, तप और अपवास करके धर्म होगा। धूल भी नहीं होगा। भटक मरनेवाले हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं, धर्मी को-सम्यग्दृष्टि को पुण्य-पाप और पुद्गल

में आत्मबुद्धि उड़ गयी है। दया के, व्रत के परिणाम आते हैं, परन्तु वे मेरे हैं, ऐसी आत्मबुद्धि छूट गयी। आहाहा! पश्चात् उसके फलरूप से यह धूल आदि चक्रवर्ती का राज मिले, आत्मबुद्धि छूट गयी है। आहाहा! मैं तो अकेला आनन्दस्वरूप हूँ। मेरी चीज़ मुझमें है। बाहर की चीज़ बाहर है, मुझमें नहीं। आहाहा! इतना अन्तर अन्दर पड़ गया है। है?

तीनों ही परिणामों से रहितपना... तीनों अर्थात्? पुण्य के भाव का प्रेम—राग, द्वेषभाव और मोहभाव। सबसे आत्मबुद्धि हट गयी। **ऐसे विपरीतरूप परिणाम, ऐसे तीनों ही परिणामों से...** तीनों ही परिणामों से **रहितपना ऐसा कारण है,...** आहाहा! **इससे सामग्री के विद्यमान होते हुए भी...** छह खण्ड का राज हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, परन्तु मेरेपन की बुद्धि छूट गयी है। मेरेपन की बुद्धि छूट गयी है तो रखता है क्यों? रखता ही नहीं। अपने में है ही नहीं। ऐसी बातें। जिन की—वीतराग की व्याख्या, अरे! कहीं है नहीं। जिसे पुण्य और पाप का प्रेम और द्वेष छूट गया और विपरीत बुद्धि—परवस्तु मेरी, राग मेरा (ऐसी) विपरीत बुद्धि नाश हो गयी है। आहाहा! इसलिए **सामग्री के विद्यमान होते हुए भी सम्यग्दृष्टि जीव कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है।** क्योंकि राग आता है, उसका कर्ता नहीं। आहाहा! यह तो ज्ञाता का राग ज्ञेय—परज्ञेय हो गया। परज्ञेय हो गया तो मुझमें उससे आस्रव आवे, यह रहा कहाँ? आहाहा! इस अपेक्षा से। समझ में आया? बाकी जितनी अस्थिरता है, आसक्ति है, रुचि छूट गयी, स्वामित्व छूट गया, परन्तु आसक्ति है, उतना आस्रव है और उतना बन्ध है परन्तु उसे गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा गया है। आहाहा! परन्तु एक ही पकड़ ले, बस, पर्याय असत्य है। (तो ऐसा नहीं है)।

एक व्यक्ति कहता था, मुम्बई में कोई एक थे न? नाथूराम, नाथूराम प्रेमी। नाथूराम प्रेमी (थे)। उन्होंने ऐसा कहा था, यह समयसार में लिया है कि व्यवहार अभूतार्थ है। तो यह वेदान्त के ढाले में ढाल दिया है, ऐसा कहते थे। अरे! ऐसा नहीं है, भाई! क्योंकि उसमें ऐसा कहा कि, पर्यायमात्र है नहीं। ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा है। व्यवहार अभूतार्थ, पर्याय अभूतार्थ / झूठी है। इसलिए उन्होंने ऐसा कहा कि समयसार वेदान्त के ढाले में ढाला है। ऐसा नहीं है, भाई! पर्याय को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा

है। और द्रव्य त्रिकाली वस्तु को मुख्य करके, निश्चय कहकर; निश्चय करके मुख्य नहीं, परन्तु मुख्य करके निश्चय कहकर सत्य कहा है। पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर 'नहीं' ऐसा कहा है। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ सम्यग्दृष्टि को आसक्ति का राग होता है, परन्तु उसका स्वामी नहीं है, रुचि नहीं है, विपरीत बुद्धि नहीं है। इसलिए उसे राग का आस्रव नहीं है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! कितनी शर्तें! आहाहा! ऐसी शर्तें, लो। अब एकान्त वे पकड़े, ज्ञानचन्दजी और जयकुमार को अभी शंका है। ऐसा कि समकिती को आस्रव और दुःख नहीं और यह फिर आस्रव, दुःख (कहाँ से आये) ? अरे! सुन तो सही! तुझे अभी खबर नहीं। सेठिया को यह था सही न ? दीपचन्दजी (को) ज्ञानी को दुःख नहीं होता। वह तो किस अपेक्षा से ? दृष्टि और दृष्टि के विषय की अपेक्षा से दुःख नहीं है। परन्तु पर्याय के ज्ञानरूप से देखे तो जितना राग है, उतना दुःख है और दुःख का वेदन भी ज्ञानी को है। आहा!

मुमुक्षु : साहेब! रुचिपूर्वक नहीं, इसलिए गिनती में नहीं लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गिनने में नहीं आया। रुचि नहीं, स्वामी नहीं-मेरे नहीं, इस अपेक्षा से इनकार किया। समझ में आया ? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है। क्योंकि वह राग का भी कर्ता नहीं, वहाँ कर्मबन्ध का कर्ता कहाँ से आया ? आहाहा! अशुभभाव का कर्ता तो समकिती-धर्मी भी नहीं परन्तु शुभभाव का कर्ता समकिती नहीं। ऐसी बात! भाव आते हैं, कर्ता नहीं, ज्ञाता है।

मुमुक्षु : क्यों आते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं, निर्बलता-कमजोरी के कारण आते हैं, निर्बलता से आते हैं परन्तु उसका ज्ञाता है। ज्ञेयरूप से जानता है। आहाहा! समझ में आया ? अरे! इतनी सब बातें। अब कहाँ... एक ओर दसवें गुणस्थान में अबुद्धिपूर्वक राग अल्प है, है उसका ज्ञाता है। छह कर्म का बन्ध है। अब यहाँ चौथे गुणस्थान में कहे कि आस्रव भी नहीं और बन्ध भी नहीं। किस अपेक्षा से ? समझ में आया ? विपरीत बुद्धि छूट गयी

है, इस अपेक्षा से नहीं। राग और पुण्य और पुण्य के फल में यह मेरे हैं, ऐसी विपरीत बुद्धि छूट गयी है। मेरा नहीं, फिर दुनिया में भले चाहे वह चीज़ हो। मेरे साथ उसका सम्बन्ध नहीं। आहा! इस अपेक्षा से कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है। आहाहा!

विद्यमान सामग्री जिस प्रकार है, उस प्रकार कहते हैं—'यद्यपि पूर्वबद्धाः प्रत्ययाः द्रव्यरूपाः सत्तां न हि विजहति' जो ऐसा भी है कि सम्यक्त्व की उत्पत्ति के पहले... पूर्व में मिथ्यात्व से जो कर्म बँधे थे, पूर्व में मिथ्यादृष्टि था। समकित होने से पहले मिथ्यादृष्टि था, तब कर्मबन्ध था। आहा! **इससे मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणाम द्वारा बाँधे थे जो... 'द्रव्यरूपाः प्रत्ययाः' मिथ्यात्वरूप तथा चारित्रमोहरूप पुद्गल कर्मपिण्ड...** समकित हुआ है परन्तु अभी अन्दर थोड़े परिणाम बाकी है न? क्षायिक न हो, तब तक है। समकितमोह के परिणाम भी हैं। आहाहा!

मिथ्यात्वरूप तथा चारित्रमोहरूप पुद्गल कर्मपिण्ड, वे स्थितिबन्धरूप होकर जीव के प्रदेशों में कर्मरूप विद्यमान हैं... मिथ्यात्व है, इसका अर्थ क्या? अन्दर अभी प्रकृति पड़ी है। क्षयोपशम समकित हुआ। यहाँ वर्तमान समकिती की बात है न? क्षयोपशम समकित हुआ परन्तु अन्दर सत्ता में पड़े हैं। वे उदय में आते हैं तो क्षय हो जाते हैं। उदय आते हैं, वे क्षय हो जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! और समकिती को भी चारित्रमोह का उदय—राग आता है, परन्तु राग उदय आकर खिर जाता है। ऐसा गिनने में आया है। आहाहा! **पुद्गल कर्मपिण्ड, वे स्थितिबन्धरूप होकर जीव के प्रदेशों में कर्मरूप विद्यमान हैं, ऐसे अपने अस्तित्व को नहीं छोड़ते हैं।** हो। सम्यग्दृष्टि को कर्म के परमाणु हो। आहाहा! और उसमें स्थिति भी हो, वह अपना स्वरूप छोड़ते नहीं। आहाहा! उदय भी होता है। अनेक कर्म पड़े हैं, उसका उदय—पाक भी आता है। आहाहा!

'समयं अनुसरन्तः अपि' समय-समय प्रति अखण्डित धाराप्रवाहरूप उदय भी होते हैं... समय-समय में अखण्डित धाराप्रवाहरूप से उदय भी होता है। हो, वह परम में है, मेरे स्वरूप में नहीं। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है।** आहाहा! ऐसा होने पर भी, **सम्यग्दृष्टि (जीव) कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है।** आहाहा! उसमें गड़बड़ घोटाला करे। न समझे वह (ऐसा करे)। अभी सम्यग्दृष्टि किसे कहना, यह

खबर नहीं। यह देव-गुरु-शास्त्र को माना और हम समकिती हैं। और व्रत, तप करो, वह चारित्र है। धूल भी नहीं, सुन न!

मुमुक्षु : पंचम काल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल है तो क्या है? आटे का, शक्कर का और घी का हलुवा होता है। तो पंचम काल में मिट्टी का हलुवा होता है? और घी के बदले पेशाब डालते हैं? आटे के बदले धूल डालते हैं? शक्कर के बदले अफीम डालते हैं? हलुवा कहते हैं न? हलुवा... हलुवा। पंचम काल का हलुवा हो या चौथे काल का हलुवा हो, हलुवा तो हलुवा ही है। सेठ! ऐसा कितने ही कहते हैं। पंचम काल है न! परन्तु पंचम काल है तो क्या है? पंचम काल के तिर्यंच का समकित और सिद्ध का समकित; समकित एक सरीखा है। आहाहा! (समकित में) अन्तर है? चारित्र में स्वरूप की रमणता में कमी है, इतना अन्तर हो।

भावार्थ इस प्रकार है - कोई अनादि काल का मिथ्यादृष्टि जीव... अनादि काल से पुण्य और पाप के भाव का कर्ता होकर, दृष्टि स्वभाव से हटकर विकारी परिणाम पर अनादि से पर्यायबुद्धि होकर मिथ्यादृष्टि था। आहाहा! पर्यायबुद्धि और मिथ्यादृष्टि कहीं आया था। पहले कहीं आया था। पहले में आया होगा। बाद में... बाद में। पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि के बाद के श्लोक में आया था।

मुमुक्षु : २७७।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ आया था। पर्यायार्थिकनय से मिथ्यादृष्टि। चौथी लाईन है। है न? पर्यायनय मिथ्यादृष्टि। यह राग और पर्याय पर दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि। आहाहा! और द्रव्य पर दृष्टि है, वह सम्यग्दृष्टि। इस अपेक्षा से विशेष बात कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक - ०८-१०-१९७७, कलश-११८-११९, प्रवचन-११६

कलश-टीका, ११८ कलश है। भावार्थ है, भावार्थ। **भावार्थ इस प्रकार है...** है? **'समयं अनुसरन्तः अपि' समय-समय प्रति अखण्डित धाराप्रवाहरूप उदय भी देते हैं; तथापि सम्यग्दृष्टि कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है।** उसके बाद भावार्थ है। मिला? सेठ! हिन्दी में तो १०३ पृष्ठ है। **भावार्थ इस प्रकार है - कोई अनादि काल का मिथ्यादृष्टि जीव...** अनादि काल का। निगोद से लेकर अनन्त-अनन्त नरक, निगोद के भव किये। अनादि काल से मिथ्यादृष्टि अर्थात् जिसकी पर्यायबुद्धि है। वर्तमान ज्ञान की विकास अवस्था जो एक समय की है, उस पर जिसकी रुचि है और दया, दान के विकल्प आदि शुभराग पर जिसकी रुचि है, वह पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि कहलाता है। आहाहा! अनादि काल का **मिथ्यादृष्टि जीव काललब्धि को प्राप्त करता हुआ...** निज स्वभाव के पुरुषार्थ से काललब्धि को प्राप्त करता हुआ। निज आत्मा शुद्ध चैतन्यघन अनन्त गुणरत्नाकर प्रभु, ऐसा अपना निधान, उस निधान पर नजर पड़ने से सम्यग्दृष्टि होता है। अपने पुरुषार्थ से होता है, ऐसा कहते हैं। काललब्धि में पुरुषार्थ आया। अकेली काललब्धि नहीं। पुरुषार्थ की काललब्धि, स्वभाव की काललब्धि, भवितव्यता की काललब्धि, काल की काललब्धि, निमित्त के अभाव की काललब्धि। पाँच बोल साथ में हैं। एक साथ पाँच बोल हैं। समझ में आया? आहाहा! इसका अर्थ—जिसकी वर्तमान में अनादि काल से वर्तमान... वर्तमान प्रगट पर्याय अंश और राग, विकल्प जो विकार पर जिसकी दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। अब वह पलटा मारता है। आहाहा! ऐसी बात है।

एक समय में प्रभु अनन्त गुण से भरपूर निधान, सामान्य ध्रुव चैतन्यवस्तु, उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन—स्वरूप की प्राप्ति होती है। पर्यायबुद्धि में पर्याय और राग की प्राप्ति थी। अनादि काल से पर्यायबुद्धि में वर्तमान पर्याय का अंश और राग की प्राप्ति थी। वह मिथ्यादृष्टि है। अनन्त संसार में भटकनेवाला जीव। उसने गुलाँट खायी। एक समय की पर्याय जितना मैं नहीं। मैं पूर्ण परमात्मस्वरूप पूर्णानन्दस्वरूप भगवान हूँ। परन्तु यह बात उसे अभ्यास बिना अन्तर्मुख हुए बिना बैठती नहीं। राग से भिन्नपने का अभ्यास करने से और अभेद वस्तु का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। जिसकी

रुचि में पूरा संसार रागादि और राग का फल, उसमें से जिसकी रुचि हट जाती है। और अपना आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, उस पर दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन अथवा शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले में अकेला आनन्द कहते परन्तु शान्ति शब्द अधिक बराबर लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शान्ति, शान्ति। चारित्र की शान्ति साथ में है। आनन्द है, वह तो आनन्द सुख की लहजत है। परन्तु साथ में अकषायस्वभाव वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है तो उसके अनुभव से वीतरागता अर्थात् शान्ति पर्याय में आती है। अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर शान्ति आती है। आहाहा! ऐसा मार्ग सुना नहीं हो अब। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्राप्त करके क्या हुआ? **सम्यक्त्व गुणरूप परिणमा...** गुण शब्द से पर्याय। सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप परिणमा। आहाहा! अनन्त काल से राग और एक समय की पर्याय का परिणमन विकृत था। और विकृत अवस्था मेरी है, ऐसा मानकर अनुभव करता था, वह मिथ्यादृष्टि। आहाहा! यह अपना स्वरूप चिदानन्द नित्य, उत्पाद-व्यय पर्याय से भिन्न, ध्रुव है। द्रव्यस्वभाव पूर्ण परमात्मस्वभाव का अन्तर में आश्रय करने से शान्ति, सुख, प्रभुता आदि पर्याय का वेदन प्रगट होता है। आहाहा!

अज्ञान में राग-द्वेष का वेदन था। मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष का वेदन था। वह भगवान आत्मा अपनी पूर्ण शक्ति की सामर्थ्यवाला तत्त्व, उसका आश्रय करने से उसे सम्यग्दर्शन और शान्ति साथ में उत्पन्न होती है। क्योंकि मिथ्यात्व में मिथ्यात्व का और राग-द्वेष का वेदन था; यहाँ समकित में शान्ति का वेदन है। आहाहा! समझ में आया?

वह **सम्यक्त्व गुणरूप परिणमा...** अपनी चीज़ पूर्ण है, वह प्रतीतिरूप से, ज्ञान के अनुभव में दशा प्रतीतिरूप हुई। आहा! **चारित्रमोह कर्म की सत्ता विद्यमान है...** परन्तु अभी अन्दर चारित्रमोह की अस्ति है। यह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। जैसी वस्तु थी, वैसी ज्ञान में ज्ञेय बनाकर उसमें प्रतीति का परिणमन हुआ। समझ में आया? यह तो अभ्यास थोड़ा हो तो समझ में आ जाये ऐसा है। अनन्त काल हुआ... एल.एल.बी. और एम.ए. पढ़ने जाये... हें?

मुमुक्षु : दर्शनगुण क्या, चारित्रगुण क्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो हसमुखभाई के सामने देखकर कहा।

दर्शनगुण है, वह प्रतीतिरूप शक्ति है और चारित्रगुण है, वह स्वरूप में रमणतारूप है। तो जब प्रतीति और सम्यग्दर्शन हुआ, तथापि स्वरूप की रमणता नहीं और आत्मप्रदेश पर चारित्रमोह नाम का एक कर्म है, उसकी स्थिति पड़ी है। आहाहा! और उसके निमित्त से... देखो! **चारित्रमोह कर्म की सत्ता विद्यमान है...** चारित्रमोह अर्थात् कषाय के भाव अनन्तानुबन्धी के अतिरिक्त तीन कषाय के भाव कर्मरूप से प्रकृतिरूप विद्यमान है। समझ में आया? **उदय भी विद्यमान है,...** सत्ता में तो है परन्तु विपाक में भी विद्यमान है। उदय भी आता है। आहाहा! **पंचेन्द्रिय विषयसंस्कार विद्यमान है...** आहाहा! और अभी ज्ञानी को सम्यग्दर्शन हुआ, तथापि पंचेन्द्रिय विषय में से सुखबुद्धि उड़ गयी, परन्तु पंचेन्द्रिय विषय के संस्कार अभी हैं। आहाहा! आसक्ति का भाव है। आहा!

मुमुक्षु : नहीं समझ में आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आता?

यह आत्मा शुद्ध अनाकुल अनीन्द्रियस्वरूप है। उसका अनुभव हुआ, प्रतीति हुई, सम्यक्रूप से परिणमन हुआ, तथापि वीतरागता यहाँ अभी नहीं; इसलिए चारित्रमोह की सत्ता में चारित्रमोह पड़ा है। तीन कषाय की प्रकृति पड़ी है और उस प्रकृति का उदय-विपाक भी है। विपाक है और यहाँ पंचेन्द्रिय के विषय के संस्कार भी हैं। उसके कारण से नहीं।

फिर से, आहाहा! देखो! **उदय भी विद्यमान है, पंचेन्द्रिय विषयसंस्कार विद्यमान है...** ऐसा कहना है। क्या कहते हैं? कर्म का उदय तो समकिती को अन्दर है, परन्तु उदय तो जड़ में आया। यहाँ आत्मा की पर्याय में भी पंचेन्द्रिय विषय के संस्कार हैं। चारित्रदोष के संस्कार हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : निमित्त-उपादान....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ में चारित्रमोहकर्म का उदय भी है—सत्ता। उदय भी

है—पाक। यहाँ संस्कार तो स्वयं से है। पाँच इन्द्रिय के विषय के संस्कार चारित्रमोह के निमित्त के लक्ष्य से संस्कार है। कर्म के कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव हुआ होने पर भी विषय की रुचि में सुखबुद्धि थी, वह चली गयी, परन्तु अभी विषय की वासना के संस्कार नहीं गये। क्योंकि चारित्र का दोष है, वह गया नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अभ्यास चाहिए, भाई! एक एल.एल.बी. और बी.ए. पढ़े तो भी अभ्यास में दस-बीस वर्ष निकालता है न? अभ्यास हो तो समझ में आये। आहाहा!

यह आत्मा महाप्रभु... इतना तो नहीं आया? कल नहीं कहा था? '**अप्पा सो परमअप्पा।**' सेठ! तारणस्वामी में बहुत आता है। '**अप्पा सो परमअप्पा**' यह आत्मा, वही परमात्मा है। परमात्मा हो गये, वे तो व्यक्तरूप हो गये। यह भगवान आत्मा परम आत्मा, परम स्वरूप, परमपारिणामिक ज्ञायकभावस्वरूप। सब आत्मायें ऐसे हैं। ऐसे परमात्मस्वरूप की दृष्टि होना और दृष्टि होकर सम्यक्त्व का परिणमन होना, इसका नाम तो सम्यग्दर्शन, अनुभव, धर्म की पहली सीढ़ी कहा जाता है। ऐसा होने पर भी उसे चारित्रमोहकर्म सत्ता में जड़ विद्यमान है। और पाक में भी चारित्रमोह का उदय आता है। विपाक—उदय। और यहाँ आत्मा में पाँच इन्द्रिय के विषय के संस्कार स्वयं से भी हैं। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : पाँच इन्द्रिय के विषय के संस्कार में भूल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कार में भूलते नहीं। यहाँ समकितदर्शन है और पंचेन्द्रिय के संस्कार हैं, दोनों हैं। यहाँ संस्कार है, यह सिद्ध करना है। सम्यग्दृष्टि को अन्तर भान हुआ होने पर भी पंचेन्द्रिय के विषय के संस्कार हैं तो उससे आत्मा को भूल जाता है, ऐसा नहीं है। आत्मा ध्रुव तो दृष्टि में तैरता ही है। ध्रुव में दृष्टि पड़ी है, वह ध्रुव में से कभी हटती नहीं। तथापि पर्याय में पाँच इन्द्रिय के विषय के संस्कार खड़े हैं, इतना दोष खड़ा है। उसमें द्रव्य को भूल जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! द्रव्य का तो ज्ञान है, भान है, परन्तु स्वरूप की स्थिरता नहीं है। अमुक स्थिरता है। अनन्तानुबन्धी का भाव गया, उतनी (स्थिरता है)। परन्तु दूसरे कषाय के अभाव से जो स्थिरता चाहिए, वह नहीं है।

सम्यग्दृष्टि को—धर्मी को—आत्मज्ञानी को भी चारित्रमोह के निमित्त में अपने पाँच इन्द्रिय के विषय के संस्कार खड़े हैं। आहाहा! विषय की आसक्ति खड़ी है। विषय में सुखबुद्धि गयी है। समझ में आया? अरे! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : दोनों धारा....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों धारा एक साथ चलती है। ज्ञानधारा स्वभावसन्मुख है, रागधारा परसन्मुख से विकार की वृत्ति उत्पन्न होती है। समकिती को भी। मिथ्यादृष्टि को तो अकेली मिथ्यादृष्टि है। वह तो आत्मा को भी भूला है और राग-द्वेष में भी भूला है। सबमें भूल है। सम्यग्दृष्टि में आत्मा की भूल नहीं होती। आहाहा! चक्रवर्ती का छह खण्ड का विशाल राज्य होता है। सम्यग्दर्शन धारावाही आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रभु, उसकी पर्याय में ज्ञान और शान्ति की धारा चलती है, परन्तु पूर्ण शान्ति नहीं। इसलिए अशान्ति अर्थात् पंचेन्द्रिय विषय के संस्कार खड़े हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

पंचेन्द्रिय विषयसंस्कार विद्यमान है, भोगता भी है,... आहाहा! भोगने का अर्थ राग का परिणमन होता है। विषयसंस्कार के राग का वेदन भोगता है। आहाहा! एक ओर आनन्द को भी भोगता है तथा एक ओर राग को भी भोगता है। यह तो सम्यग्दृष्टि को चारित्र नहीं, यह बात सिद्ध करनी है न! समझ में आया? आहाहा! राग भी भोगता है। है? **भोगता हुआ ज्ञानगुण के द्वारा वेदक भी है....** आहाहा! ज्ञान द्वारा वेदन में भी आता है। देखा? श्रद्धा द्वारा, यह बात नहीं की। ज्ञान द्वारा ख्याल में आता है कि राग वेदन में आता है। ज्ञान जानता है। है? यह तो शान्ति से समझने की अलौकिक चीज़ है, बापू! आहाहा!

अज्ञानी को तो विषय के संस्कार में प्रेम है, सुखबुद्धि है। अज्ञानी को अनादि काल में विषय के संस्कार में रुचि सुखबुद्धि है। ज्ञानी को विषय के संस्कार हैं, परन्तु उसमें सुखबुद्धि नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उसे चारित्र का दोष होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्रदोष है। और यह गोम्मटसार में आया है—अविरति

पंचेन्द्रिय के विषय से निवृत्त नहीं है। गोम्मटसार में श्लोक है। समझ में आया? आहाहा! जानता है कि आनन्द तो मुझमें है। ऐसा होने पर भी राग की आसक्ति के परिणाम उत्पन्न होते हैं और राग को वेदते भी हैं। राग संस्कार है और राग वेदे नहीं, ऐसा कहाँ से आया? पहले तो इनकार किया कि सम्यग्दृष्टि वेदता नहीं। यह तो किस अपेक्षा से? आहा! समझ में आया? यहाँ वापस पकड़े। सम्यग्दृष्टि को राग का वेदन है ही नहीं और कुछ है नहीं। यह किस अपेक्षा से? यह तो मिथ्यात्व के साथ के राग-द्वेष का वेदन नहीं है, उसका दुःख नहीं है, उसका आस्रव नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग।

कहते हैं कि, आत्मा में आनन्द है, ऐसा अनुभव हुआ। निधान भगवान आत्मा। निधान का ताला खोल दिया। जो अनादि से राग और स्वभाव की एकताबुद्धि में राग सुख है, ऐसी एकताबुद्धि में, चैतन्यनिधान को ताला लगा दिया था। आहाहा! खजाने में ताला लगा दिया था। उस खजाने की चाबी मिली, खोल दिया। सम्यग्दर्शनरूपी चाबी से खजाना खोल दिया। परन्तु अभी खजाना पूर्ण बाहर नहीं आया। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : एक बार चाबी मिले, फिर छूटती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन छूटता नहीं, परन्तु चारित्रदोष है न! यह बात चलती है।

मुमुक्षु : ज्ञानधारा....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानधारा कायम रखती है और रागधारा भी रहती है। दूसरी बात है, दूसरी बात है। यह बात दूसरी है। यह तो नया समझने का है। आहाहा!

जितना आत्मा का अनुभव हुआ, उतना तो शुद्धता का वेदन है, परन्तु पूर्ण शुद्धता नहीं है, इसलिए विषय के संस्कार का भी वेदन है। यदि वह वेदन न हो तो वीतराग हो जाये और उस वेदन में सुखबुद्धि हो जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : यह तो पंचम काल का दोष है न, जीव का कहाँ दोष है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! महापापी यह जीव स्वयं है। पर की कहाँ बात है यहाँ? यह सम्यग्दृष्टि भी पाप का सेवन करता है, इतना पापी है। आहाहा!

मुमुक्षु : गोम्मटसार में आता है। सम्यग्दृष्टि पाप करे तो भी पुण्य बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से? दूसरी बात है। यहाँ यह बात नहीं लेना। यहाँ तो संस्कार है और वेदन है। क्योंकि पूर्णदशा प्रगट हुई नहीं तो सम्यग्दर्शन के काल में भी पाँच इन्द्रिय के विषय के संस्कार का राग करता है, वेदता है - ऐसा लेना है। आहाहा! राग न वेदता हो तो वीतराग हो जाये और राग में सुखबुद्धि हो, तब तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : एक ओर ऐसा कहते हो, महाराज! ज्ञानी का भोग निर्जरा का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्या अपेक्षा है? वह दूसरी बात कही। यह बात हो गयी। वह तो दृष्टि का जोर बतलाने के लिये। ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु हो तो भोग छोड़कर चारित्र अंगीकार करने का रहा नहीं उसे। (परन्तु) ऐसा नहीं है।

यहाँ तो भोग की वासना सम्यग्दृष्टि को भी होती है। वासना अर्थात् चारित्रदोष है। तथापि उसमें सुखबुद्धि नहीं। मजा है, ऐसी बात नहीं। जहर है। आहाहा! मेरी कमजोरी से मुझमें पाँच इन्द्रिय के विषय का राग होता है। समझे, भाई! यहाँ तो वीतरागमार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रत्येक अपेक्षा....

पूज्य गुरुदेवश्री : जो-जो अपेक्षा हो, उसे समझना चाहिए। एक ओर कहे कि ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। एक ओर कहे कि ज्ञानी को भोग है ही नहीं, वह तो आनन्द का ही भोगी है। एक ओर कहते हैं कि उसे ज्ञान का भोग है और राग का भी भोग है। चारित्रदोष बतलाना है। आहाहा! वह कोई कर्म के कारण से नहीं। अपने कारण से। यहाँ पंचेन्द्रिय के संस्कार विद्यमान हैं, ऐसा कहा। ऐसा नहीं कहा (कि) कर्म के कारण यह संस्कार हुए हैं। तीन बोल लिये। एक तो कर्म सत्ता में पड़ी हुई प्रकृति, पश्चात् उदय-पाक आया—दूसरी (बात)। और यहाँ पंचेन्द्रिय के संस्कार आत्मा में स्वयं से हुए, यह तीसरी (बात)। बातें बहुत सूक्ष्म हैं। हसमुखभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : इस समय रुचि अच्छी बतायी इन्होंने।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। ठीक। आहाहा! अरे! यह चौरासी के अवतार में

भटक-भटककर हैरान दु:खी है। जिसकी दृष्टि राग और पुण्य और पर्याय के ऊपर है, वह महादु:खी है। और यहाँ से गुलांट खाता है, प्रभु आत्मा आनन्दस्वरूप पलटा मारता है। पर्याय में द्रव्य के स्वभाव का अनुभव हुआ, तब राग से एकताबुद्धि छूट गयी और स्वभाव के साथ एकताबुद्धि हुई। ऐसा होने पर भी पंचेन्द्रिय के विषय के संस्कार की राग की विद्यमानता है। चारित्रदोष है। समझ में आया?

तथापि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव... देखा? **आत्मस्वरूप को नहीं जानता है...** मिथ्यादृष्टि तो आत्मा का स्वरूप ही जानता नहीं। **कर्म के उदय को आप कर जानता है,...** अज्ञानी तो कर्म के उदय को अपना मानकर खड़ा है। **इससे इष्ट-अनिष्ट विषयसामग्री को भोगता हुआ...** अज्ञानी इष्ट-अनिष्ट विषयसामग्री को भोगता हुआ **राग-द्वेष करता है,...** आहाहा! राग-द्वेष करता है। यहाँ राग-द्वेष होते हैं, उसके संस्कार हैं, इतना सिद्ध करना है। करनेयोग्य हैं, इसलिए करता है—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **इससे कर्म का बन्धक होता है, उस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है।** सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा नहीं है।

सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा को शुद्धस्वरूप अनुभवता है... देखा! पहले कहा न इसमें? मिथ्यादृष्टि आत्मस्वरूप को जानता नहीं। तब कह दिया कि **सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा को शुद्धस्वरूप अनुभवता है...** आहाहा! शुद्ध आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसका शान्ति का वेदन आत्मा का है। आहाहा! **शरीर आदि समस्त सामग्री को कर्म का उदय जानता है,...** शरीर, कुटुम्ब, कबीला, लक्ष्मी, इज्जत, वह सब कर्म का उदय-शत्रु का उदय है। वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह सब शत्रु का लश्कर है। कर्म जड़ शत्रु का लश्कर इज्जत, कीर्ति, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, मकान। आहाहा! कर्म वैरी का यह फैलाव है। तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! ऐसा धर्मी जानता है, ऐसा कहते हैं।

शरीर आदि समस्त सामग्री को कर्म का उदय जानता है, आये उदय को खपाता है... उदय आवे उसका नाश करने का प्रयत्न भी है। **परन्तु अन्तरंग में परम उदासीन है,...** परम उदासीन है, राग आता है। आहाहा! **इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव को**

कर्मबन्ध नहीं है। यह अपेक्षा से कहा। पंचेन्द्रिय के विषय के संस्कार हैं, परन्तु वे दु:खरूप हैं, ऐसा जानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : उदय को खपाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय आता है। जितना आत्मा की ओर ढलता है तो शीघ्र खपता है—नाश पाता है। जितना आत्मा की ओर झुकाव है, उतना-उतना राग खपता है। नाश पाता है। यहाँ तो खपाता ही है, ऐसा कहते हैं। परन्तु संस्कार है न? उसमें से ले न! वह कहते थे न? सेठ यह कहते थे। उदय आवे, उसे खपाते हैं। खपावे भी है न? है, उसे खपाते हैं या नहीं है, उसे? है, इतना-इतना स्वरूप का आश्रय लेकर नाश करता है। आहाहा! खपाता है तो है या नहीं? है तो खपाता है या नहीं है और खपाता है? आहाहा! कठिन बात, भाई! यहाँ तो बारीक से बारीक बात हो वह जानना चाहिए। एक भी न्याय में कुछ अन्तर आवे तो पूरी वस्तु बदल जाये। आहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि जीव को कर्मबन्ध नहीं है। ऐसा होने पर भी स्वामीपना नहीं, अपनापन नहीं, इस अपेक्षा से कर्मबन्ध नहीं—ऐसा कहने में आता है। **ऐसी अवस्था सम्यग्दृष्टि जीव के सर्वकाल नहीं।** सम्यग्दृष्टि की ऐसी अवस्था सर्व काल नहीं रहती। **जब तक सकल कर्मों का क्षय कर निर्वाणपदवी को प्राप्त करता है...** आहाहा! आत्मा की अनुभव धारा करते... करते... करते... करते... जहाँ अनुभव सर्वज्ञ परमात्मा हो जाये। आहाहा! **तब तक ऐसी अवस्था है...** निर्वाण-मोक्ष न हो, तब तक ऐसी अवस्था है। कौन सी अवस्था है? आत्मा का अनुभव भी है और कर्म भी है, उदय है और संस्कार भी है और उसका थोड़ा-थोड़ा नाश भी करता है। पूर्ण पदवी को **प्राप्त करता है, तब तक ऐसी अवस्था है...** आहाहा!

जब निर्वाणपद प्राप्त करेगा, उस काल का तो कुछ कहना ही नहीं—साक्षात् परमात्मा है। पर्याय में। दृष्टि में परमात्मा आया और पर्याय में जरा संस्कार रहे, उसे भी खपाता जाता है, परन्तु वह खपाता जाता है कहाँ तक? कि पूर्ण परमात्मा हो, तब तक ऐसी बात है। फिर कुछ नहीं। आहाहा! संस्कार भी नहीं और संस्कार का नाश करना भी नहीं। ऐसी बातें अब। वह एकेन्द्रिया और दो इन्द्रिया सीखते हों। तस्सूतरी करणेण

प्रायश्चित करणेण। उसमें यह बात कहाँ? आहा! यही तो अपवास कर अधिक। उस तपस्वी का सम्मान करो। वह बड़ा तपस्वी है। मिथ्यादृष्टि है। यह क्रियाकाण्ड जो राग का है, उसमें धर्म मानता है। और मैंने आहार छोड़ा, ऐसा उसमें जड़ का अभिमान है।

मुमुक्षु : पंचरंगीया करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचरंगीया करे। नौ रंगीया करे नहीं। आहा!

जहाँ विकल्प से रहित, राग से रहित शुद्ध चिदानन्द आत्मा दृष्टि में नहीं आया और शुद्ध परिणमन नहीं हुआ, तब तक सब बात व्यर्थ-फोगट है। आहाहा! यह अपवास करे या सामायिक करे या प्रोषध करे या प्रतिक्रमण करे और दो-दो महीने के संथारा-सल्लेखना करे। सब बिना एक के शून्य है। आहाहा!

उस काल का तो कुछ कहना ही नहीं... आहा! यहाँ तो जरा संस्कार है, नाश करता जाता है, अनुभव भी वर्तमान वर्तता है। ऐसी पूर्ण दशा निर्वाण न हो, तब तक होती है। निर्वाण होने के पश्चात् कुछ रहता नहीं। संस्कार भी नहीं और नाश करना भी (रहा) नहीं। वह तो पूर्ण कृतकृत्य हो गया। आहाहा! जैसी वस्तु पूर्णानन्द का नाथ तो कृतकृत्य ही है। वस्तु तो कृतकृत्य ही है, उसे कुछ करना-फरना नहीं। परन्तु पर्याय में जहाँ पूर्णता हुई तो कृतकृत्य हो गया। समझ में आया? जब तक अपूर्ण है, तब तक अभी राग है। राग का नाश करना, ऐसा भी है। आहाहा! इसका अर्थ कि स्थिरता करना, ऐसा। आत्मा में स्थिरता करना कि इससे राग का नाश होता है। ऐसी रीति साधकजीव हो, तब तक होता है। निर्वाण होने के बाद क्या कहना? आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ पर्याय में कृतकृत्य हो गया। जैसे द्रव्य कृतकृत्य है, वैसी पर्याय कृतकृत्य हो गयी। कुछ करना बाकी रहा नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी पुरुषार्थ करते हैं। साधक में राग है, स्वभावसन्मुख पुरुषार्थ करता है (और) राग का नाश करता है। ऐसी क्रिया है। निर्वाण के बाद कुछ कहने का है नहीं। आहाहा! यह ११८ (कलश पूरा) हुआ।

कलश-११९

(अनुष्टुप्)

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः।
तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम्।।७-११९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि जीव के बन्ध नहीं है, सो ऐसी प्रतीति जिस प्रकार होती है, उस प्रकार और कहते हैं— 'यत् ज्ञानिनः रागद्वेषविमोहानां असम्भवः ततः अस्य बन्धः न' [यत्] जिस कारण [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीव के [राग] रंजकपरिणाम, [द्वेष] उद्वेग, [विमोहानाः] प्रतीति का विपरीतपना, ऐसे अशुद्धभावों की [असम्भवः] विद्यमानता नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीव, कर्म के उदय में रंजायमान नहीं होता; इसलिए रागादिक नहीं हैं, [ततः] उस कारण से [अस्य] सम्यग्दृष्टि जीव के [बन्धः न] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म का बन्ध नहीं है। 'एव' निश्चय से ऐसा ही द्रव्य का स्वरूप है। 'हि ते बन्धस्य कारणं' [हि] जिस कारण [ते] राग, द्वेष, मोह—ऐसे अशुद्धपरिणाम, [बन्धस्य कारणं] बन्ध के कारण हैं। भावार्थ इस प्रकार है—कोई अज्ञानी जीव ऐसा मानेगा कि सम्यग्दृष्टि जीव के चारित्रमोह का उदय तो है, वह उदयमात्र होनेपर, आगामी ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध होता होगा? समाधान इस प्रकार है—चारित्रमोह का उदयमात्र होनेपर, बन्ध नहीं है। उदय के होनेपर जो जीव के राग, द्वेष, मोहपरिणाम हो, तो कर्मबन्ध होता है; अन्यथा सहस्र कारण हो तो भी कर्मबन्ध नहीं होता। राग, द्वेष, मोहपरिणाम भी, मिथ्यात्वकर्म के उदय के सहारा है; मिथ्यात्व के जाने पर, अकेले चारित्रमोह के उदय के सहारा का राग, द्वेष, मोहपरिणाम नहीं है। इस कारण सम्यग्दृष्टि के राग, द्वेष, मोहपरिणाम होता नहीं; इसलिए कर्मबन्ध का कर्ता, सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होता।।७-११९।।

कलश - ११९ पर प्रवचन

११९। यह तो शान्ति से समझने की चीज़ है, बापू! आहाहा! वीतरागमार्ग सूक्ष्म—बारीक बहुत। अपूर्व मार्ग! कभी एक समय भी पता लिया नहीं। आहाहा! इस

मार्ग को समझने के लिये बहुत प्रयत्न चाहिए। आहाहा! ११९।

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः।
तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम्।।७-११९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि जीव के बन्ध नहीं है, सो ऐसी प्रतीति जिस प्रकार होती है, उस प्रकार और कहते हैं—विशेष कहते हैं; पहले तो कह गये, (अभी) विशेष कहते हैं। '**यत् ज्ञानिनः रागद्वेषविमोहानां असम्भवः ततः अस्य बन्धः न' जिस कारण सम्यग्दृष्टि जीव को रंजकपरिणाम...** राग में रंगे हुए परिणाम होते नहीं। आहाहा! राग आता है तो उसमें एकताबुद्धि नहीं। रंग नहीं चढ़ जाता। रंजक परिणाम नहीं। राग में रंग जाये, ऐसा नहीं; ज्ञानी भिन्न रहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और '**उद्वेग...**' द्वेष अर्थात्। वह भी नहीं होता। '**विमोहानां' प्रतीति का विपरीतपना ऐसे अशुद्ध भावों की विद्यमानता नहीं है।** ऐसे अशुद्धभाव की विद्यमानता धर्मी को नहीं है। इस अपेक्षा से। राग में एकताबुद्धि नहीं, विपरीत मान्यता नहीं; इसलिए उसे विकार विद्यमान नहीं। **विद्यमानता नहीं है।** आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीव कर्म के उदय में रंजायमान नहीं होता,... देखो! कर्म के उदय में उसे रंग चढ़ता नहीं। आहाहा! रस नहीं चढ़ता। एकताबुद्धि नहीं होती। आहाहा! शुभराग आता है तो भी एकताबुद्धि नहीं होती तो अशुभ में तो एकताबुद्धि कहाँ? आहाहा! परद्रव्य मेरे हैं, यह बुद्धि तो अन्दर से नाश हो गयी है। आहाहा! मार्ग कठिन, भाई! सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव, आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ, ऐसा धर्मीजीव—जैनी जीव, वह जैन, **कर्म के उदय में रंजायमान नहीं होता, इसलिए रागादिक नहीं हैं...** इस कारण रागादिक नहीं है। राग में एकताबुद्धि नहीं, इसलिए उसमें राग नहीं। आहाहा!

उस कारण से सम्यग्दृष्टि जीव के ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म का बन्ध नहीं है। इस अपेक्षा से ज्ञानावरणी का बन्ध है नहीं। राग में एकताबुद्धि नहीं। पृथक्बुद्धि भेदज्ञान वर्तता है, इसलिए उसे राग नहीं है और बन्धन नहीं है। समझ में आया? '**एव' निश्चय से ऐसा ही द्रव्य का स्वरूप है।** '**एव**' निश्चय से द्रव्यस्वरूप ऐसा ही है। आहाहा! एक

समय के विकार में से रंजायमान छूट गया। आहाहा! एक समय की भूल। राग मेरा, ऐसी मिथ्यात्वबुद्धि एक समय की। एक समय की भूल पर्यायबुद्धि में है। वह द्रव्यबुद्धि से छेद कर दिया। मैं तो ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन हूँ। उससे यह संस्कार का नाश हुआ; इसलिए उसे कर्मबन्धन नहीं। आहाहा! **ऐसा ही द्रव्य का स्वरूप है।**

'हि ते बन्धस्य कारणं' जिस कारण राग, द्वेष, मोह ऐसे अशुद्ध परिणाम बन्ध के कारण हैं। राग-द्वेष और मिथ्यात्व परिणाम, वह बन्ध का कारण है। वह बन्ध का कारण रहा नहीं। सम्यग्दर्शन के जोर की बात करते हैं। आहाहा! एक ओर ऐसा कहे। और दूसरी ओर (ऐसा कहे), सम्यग्दृष्टि को चारित्रदोष है तो उतना बन्ध है। समझ में आया? आहाहा! जिस अपेक्षा से कहा हो, उस अपेक्षा से समझना। स्याद्वाद मार्ग है, अनेकान्त मार्ग है। दृष्टि के जोर की अपेक्षा से राग है नहीं और राग से बन्ध है नहीं। परन्तु अस्थिरता की अपेक्षा से राग है और राग का बन्ध भी है। ऐसी बातें। इसमें करना क्या?

मुमुक्षु : श्रद्धा की अपेक्षा से या चारित्र की अपेक्षा से?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र की अपेक्षा से। चारित्र की अपेक्षा। चारित्र-अपेक्षा से राग है और बन्ध है। दृष्टि की अपेक्षा से एकताबुद्धि नहीं, इसलिए बन्ध नहीं, ऐसा कहा गया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अरे! इसने कभी निर्णय किया नहीं। वास्तविक स्वरूप की यथार्थता क्या है, उसकी इसने दरकार नहीं की। आहाहा! दुनिया के उत्साह में हर्षित हो गया। दुनिया का उत्साह। यह बाहर के पुण्य और पाप के फल में हर्षित हो गया। सन्निपात हो गया।

मुमुक्षु : दरकार करानेवाला नहीं मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : दरकार स्वयं ने नहीं की। आहाहा! अनन्त बार भगवान मिले। समवसरण में अनन्त बार सुना। केवली आगळ रह गया कोरा। परन्तु वहाँ भी रूखा रह गया। इसने अपनी दरकार नहीं की। आहाहा! समझ में आया? समवसरण में अनन्त बार गया। साक्षात् तीन लोक के नाथ के दर्शन किये, वाणी सुनी, पूजा की, ऐसे जय नाथ। हीरा के थाल और मणिरत्न के दीपक और कल्पवृक्ष के फूल (लेकर पूजा की),

जय प्रभु! उसमें क्या हुआ? वह तो राग हुआ। राग में एकताबुद्धि है तो मिथ्यादृष्टि है। कठिन बात है, बापू! धर्म अपूर्व बात है। लोग साधारण मान बैठे कि यह अपवास किये और यह सामायिक की और यह प्रौषध किये और प्रतिक्रमण किये, हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। मिथ्यात्व का पोषण है। राग की मन्दता की क्रिया को धर्म माना तो मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा!

ऐसा ही द्रव्य का स्वरूप है... 'हि ते बन्धस्य कारणं' जिस कारण राग, द्वेष, मोह ऐसे अशुद्ध परिणाम बन्ध के कारण हैं। द्रव्य का स्वरूप बन्ध का कारण नहीं है। आहाहा! कहा है न ऊपर? **बन्ध नहीं है। निश्चय से ऐसा ही द्रव्य का स्वरूप है।** और द्रव्य का स्वरूप भूलकर राग, द्वेष, मोह के अशुद्ध परिणाम करता है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है—कोई अज्ञानी जीव ऐसा मानेगा कि सम्यग्दृष्टि जीव के चारित्रमोह का उदय तो है, वह उदयमात्र होने पर आगामी ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध होता होगा?**

समाधान इस प्रकार है—ऐसा नहीं। आहाहा! जड़ कर्म का उदय भले हो। **चारित्रमोह का उदयमात्र होने पर बन्ध नहीं है।** जड़ कर्म है, उसका उदयमात्र होने पर बन्ध होता हो तो उदय तो सभी सदा रहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? जड़ कर्म जो पड़े हैं, उसका पाक होता है। पाक हो तो क्या है? वह तो जड़ में पाक आया। आत्मा उसमें जुड़े तो राग-द्वेष हो। उपयोग उसमें न लगावे तो कुछ बन्ध नहीं होता। आहाहा! अटपटी बातें! आहाहा! अरे! अनन्त काल में कुछ किया नहीं। जैन साधु हुआ। वह कौन जैन साधु? नग्न मुनि। वस्त्रवाले तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। वह तो कुलिंग है। समझ में आया? द्रव्यलिंग नग्नपना अनन्त बार धारण किया। पंच महाव्रत भी अनन्त बार ले लिये। उसमें क्या हुआ? वह तो राग है और राग की एकताबुद्धि में मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! कठिन काम, भाई!

चारित्रमोह का उदयमात्र। 'उदयमात्र' होने से बन्ध नहीं, ऐसा। यदि उदय में जुड़े, राग-द्वेष करे तो बन्ध होता है, ऐसा। **उदय के होने पर जो जीव के राग, द्वेष, मोहपरिणाम हो तो कर्मबन्ध होता है, अन्यथा सहस्त्र कारण हो तो भी कर्मबन्ध नहीं होता।** आहाहा! अन्दर चाहे जितना उदय हो। वह जड़ में है। उसमें क्या हुआ? लाख

बात की बात अन्दर करे। **सहस्त्र कारण हो तो भी कर्मबन्ध नहीं होता। राग, द्वेष, मोहपरिणाम भी मिथ्यात्व कर्म के उदय के सहारा है,...** देखो! यह लेना है। यह मुद्दे की रकम। राग-द्वेष-मिथ्यात्वपरिणाम भी मिथ्यात्वकर्म के सहारे है। जिसमें मिथ्यात्वभाव है, उसके सहारे के राग-द्वेष को गिनने में आये हैं। मिथ्यात्व नहीं, फिर वहाँ राग-द्वेष गिनने में आये नहीं। आहाहा! **मिथ्यात्व कर्म के उदय के सहारा है,...** मिथ्याश्रद्धा, उसके साथ राग-द्वेष है, उसे राग-द्वेष गिनने में आया है।

मिथ्यात्व के जाने पर... मिथ्याश्रद्धान का नाश होने पर। आहाहा! अपना ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द प्रभु अन्तर में दृष्टि में और अनुभव में आने पर, आहाहा! **अकेले चारित्रमोह के उदय के सहारा का राग, द्वेष, मोहपरिणाम नहीं है।** आहाहा! जो चारित्रमोह के अस्थिरता के राग-द्वेष के परिणाम हैं, उनको यहाँ गिनने में आया नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन और अनुभव की प्रधानता गिनने में आयी है। उसमें राग-द्वेष होते हैं, वे मिथ्यात्व के सहारे के नहीं। मिथ्याश्रद्धा की सहायता में जो राग-द्वेष होते हैं, वे राग-द्वेष गिनने में आते हैं। आहाहा! ऐसा पढ़कर एकान्त ले लेवे कि ज्ञानी को राग-द्वेष बिल्कुल है ही नहीं। किस अपेक्षा से? समझ में आया? यहाँ तो सम्यग्दर्शन के जोर में आत्मा के आश्रय के अनुभव में राग-द्वेष, मिथ्यात्व नहीं तो राग-द्वेष है ही नहीं, ऐसा गिनने में आया। राग-द्वेष होने पर भी मिथ्यात्व साथ में नहीं तो राग-द्वेष है नहीं, ऐसा कहते हैं। एकताबुद्धि नहीं तो राग-द्वेष नहीं। आहा! यह सब समझने का ऐसा सूक्ष्म। आहाहा!

चारित्रमोह के सहारा का राग, द्वेष, मोह... मोह शब्द से यहाँ सावधानी लेना। समझ में आया? मोह शब्द से वहाँ मिथ्यात्व नहीं लेना। **चारित्रमोह के सहारा का राग, द्वेष, मोहपरिणाम नहीं है।** वहाँ मोह शब्द से मिथ्यात्व नहीं। मोह शब्द से पर में सावधानी, इतना (आशय है)। समझ में आया? है? **अकेले चारित्रमोह के (उदय) सहारा का राग, द्वेष, मोहपरिणाम नहीं है।** वहाँ मोह शब्द से मिथ्यात्व नहीं लेना। चारित्रमोह के सहारे के जितने राग-द्वेष हैं, परसन्मुख की सावधानी को वहाँ लिया गया है। **इस कारण सम्यग्दृष्टि के राग, द्वेष, मोहपरिणाम होता नहीं...** आहाहा! इसलिए लिया न? जयसेनाचार्य ने टीका में लिया है कि यहाँ पंचम गुणस्थान उपरान्त की बात

है। टीका में सब जगह ऐसा लिया है। यहाँ सम्यग्दृष्टि लेना, परन्तु पंचम गुणस्थान मुख्यरूप से। मुख्यरूप से पंचम गुणस्थान उपरान्त के सम्यग्दृष्टि की बात ली है, ऐसा लिया। गौणरूप से आता है। क्या कहा?

यह सब बात है उनकी जयसेनाचार्यदेव की टीका में ऐसी टीका है कि सम्यग्दृष्टि को राग-द्वेष नहीं, वह पंचम गुणस्थान उपरान्त की बात कही गयी है। मुख्यरूप से, हों! गौणरूप से तो सम्यग्दृष्टि में मिथ्यात्व के राग-द्वेष नहीं। यह भी निषेध किया गया है। आहाहा! कितनी अपेक्षाएँ। आहाहा! पाँचवें उपरान्त गिनने में आये हैं, ऐसा पाठ है। मुख्यरूप से, हों! परन्तु मुख्यरूप से ऐसा है। गौणरूप से चौथा आता है। आहाहा! छठवें गुणस्थान में जहाँ वीतरागी चारित्र है, तीन कषाय का अभाव है, मुनि जंगल में रहते हैं। आहाहा! उन्हें चारित्रमोह का राग है, उसे राग गिनने में आया नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है। मुख्यरूप से। गौणरूप से भी गिनने में आता है।

इस कारण सम्यग्दृष्टि के राग, द्वेष, मोहपरिणाम होता नहीं... मोह शब्द से यहाँ मिथ्यात्व नहीं लेना। **इसलिए कर्मबन्ध का कर्ता सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होता।** आहाहा! इस कारण से... सहजात्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप सहजस्वरूप परमपारिणामिकस्वभाव ज्ञायकभाव, ऐसा अनुभव हुआ, उस सम्यग्दृष्टि को राग-द्वेष गिनने में आते नहीं। यह दर्शन की प्रधानता की अपेक्षा से। (विशेष लेंगे)....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१२०

(वसन्ततिलका)

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्न-
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः
पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारम्।।८-१२०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ये शुद्धनयं एकाग्र्यं एव सदा कलयन्ति' [ये] जो कोई आसन्नभव्य जीव, [शुद्धनयं] निर्विकल्प शुद्धचैतन्यवस्तुमात्र का, [ऐकाग्र्यं] समस्त रागादि विकल्प से चित्त का निरोध कर, [एव] चित्त में निश्चय लाकर, [सदा एव] सर्व काल ही [कलयन्ति] अखण्डित धाराप्रवाहरूप अभ्यास करते हैं। कैसा है? 'उद्धतबोधचिह्नं' [उद्धत] सर्व काल प्रगट जो [बोध] ज्ञानगुण, वही है [चिह्नं] लक्षण जिसका, ऐसा है। क्या करके 'अध्यास्य' जिस किसी प्रकार मन में प्रतीति लाकर। 'ते एव समयस्य सारं पश्यन्ति' [ते एव] वे ही जीव, निश्चय से [समयस्यं सारं] सकल कर्म से रहित, अनन्त चतुष्टय विराजमान परमात्मपद को [पश्यन्ति] प्रगटरूप से पाते हैं। कैसा पाते हैं? 'बन्धविधुरं' [बन्ध] अनादि काल से एकबन्धपर्यायरूप चला आया था ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्डत, उससे [विधुरं] सर्वथारहित हैं। भावार्थ इस प्रकार है — सकल कर्म के क्षय से हुआ है शुद्ध, उसकी प्राप्ति होती है, शुद्धस्वरूप का अनुभव करते हुए। कैसे हैं वे जीव? 'रागादिमुक्तमनसः' राग, द्वेष, मोह से रहित है परिणाम जिनका, ऐसे हैं। और कैसे हैं? 'सततं भवन्तः' [सततं] निरन्तरपने [भवन्तः] ऐसे ही हैं। भावार्थ इस प्रकार है — कोई जानेगा कि सर्व काल प्रमादी रहता है; कभी एक जैसा कहा, वैसा होता है सो इस प्रकार तो नहीं; सदा सर्व काल शुद्धपनेरूप रहता है।।८-१२०।।

भाद्र कृष्ण १२, रविवार, दिनांक - ०९-१०-१९७७, कलश-१२०, प्रवचन-११७

१२० कलश है न? १२० कलश है।

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्न-
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः
पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारम्।।८-१२०।।

खण्डान्वय सहित अर्थ — 'ये शुद्धनयं ऐकाग्र्यं एव सदा कलयन्ति' 'ये' जो कोई आसन्न भव्य जीव... आसन्नभव्य जीव—जिसका संसार निकट, अन्त है। आहाहा! परिभ्रमण का अन्त जिसे अब निकट है। ऐसे आत्मा को... जीव, यह कहा न? आसन्नभव्य जीव। '**ये**' का अर्थ इतना किया। लायक, भव्यप्राणी, योग्य। क्या करना? धर्म करना हो तो क्या करना? '**शुद्धनयम्**' आहाहा! शुद्धनय की व्याख्या ही यह की। **निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यवस्तुमात्र...** आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर शरीर से भिन्न, कर्म से पृथक्, पुण्य-पाप के भाव दया, दान विकल्प रागादि से भिन्न, एक समय की पर्याय से भी पृथक्—ऐसा जो शुद्धनय अर्थात् वस्तु। यहाँ शुद्धनय को ही वस्तु कहा। वरना नय है, वह विषय है और सामने चीज़ विषयी है। अरे! अब ऐसी बातें!

सम्यक् शुद्ध चैतन्य का परिणाम—नय, वह ज्ञान का अंश है। और उसका विषय चिदानन्द भगवान पूर्ण आत्मा, वह उसका विषय है। परन्तु यहाँ तो शुद्धनय ही उसे कहा। जो वहाँ ग्यारहवीं गाथा में कहा। '**भूदत्थो देसिदा दु सुद्धणओ**' बहुत सूक्ष्म, बापू! यह आत्मा एक समय में भूतार्थ सत्यार्थ प्रभु अनन्त गुण का समुदाय एक वस्तु। विकाररहित और पर्याय से भी रहित, ऐसा एक समय में भगवान आत्मा निर्विकल्प भेदरहित, पर्याय और यह द्रव्य, ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! निर्विकल्प की यह व्याख्या। शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा अन्दर। कौन? शुद्ध चैतन्य। वह चैतन्य कैसा? वस्तुमात्र। वस्तु, वस्तु। आहाहा! जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द बसे हैं, जिसकी बस्ती अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि है। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा

विराजमान है, पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन है, उसे यहाँ शुद्धनय कहा गया है। चेतनजी! रात्रि को प्रश्न था न? आहा! शुद्धनय, इस वस्तु को शुद्धनय कहा। आहाहा! भाषा समझना कठिन पड़े। परिभ्रमण करते अनन्त काल गया।

अपनी चीज़ अन्दर परिपूर्ण पड़ी है। अनन्त आनन्द आदि, ज्ञान आदि गुण का निधान भगवान आत्मा है। परमात्मस्वरूप ही है। शक्ति से-स्वभाव से-स्वरूप से परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! उसे यहाँ शुद्धनय कहते हैं। आहाहा! वह शुद्धनय अर्थात् अभेद शुद्ध चैतन्यवस्तुमात्र। आहा! उस चीज़ में एकाग्र होना। आहाहा! है? **'ऐकाग्र्यं' समस्त रागादि विकल्प से चित्त का निरोध कर...** आहाहा! कोई भी विकल्प जो गुण-गुणी का भेद। गुणी भगवान आत्मा और अनन्त आनन्द गुण, ऐसा भेद करना, वह भी एक राग है, विकल्प है। आहाहा! तो उस विकल्प से रहित चित्त होकर... आहाहा! समस्त रागादि विकल्प। कोई भी राग का विकल्प जो वृत्ति उठती है, आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का राग, वह तो स्थूल विकल्प है, परन्तु अन्दर में गुणी यह आत्मा शुद्ध चेतन अखण्ड है, अभेद है - ऐसी वृत्ति उठाना, वह भी एक राग है। आहाहा! उससे **समस्त रागादि विकल्प से चित्त का निरोध कर...** आहा!

'एव' चित्त में निश्चय लाकर... 'एव' है न? निश्चय। **'एव'** अर्थात् निश्चय। अर्थात् चित्त शब्द से ज्ञान की पर्याय में... आहाहा! भगवान पूरा ज्ञायकस्वरूप प्रभु, उसका लक्षण ज्ञान, उस ज्ञान लक्षण से लक्षित करके... आहाहा! अपूर्व बातें हैं, प्रभु!

मुमुक्षु : चित्त में निश्चय लाकर अर्थात् श्रद्धा लाकर?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्ज्ञान की पर्याय में निर्णय करके। चित्त शब्द से ऐसा लेना। वर्तमान जो ज्ञानपर्याय है, वह त्रिकाली का लक्षण है। उसका ज्ञानपर्याय में निर्णय करके। यह तो मन्त्र है। अरे! अनन्त काल में कभी किया नहीं। व्रत, तप, जप, भक्ति, पूजा, दान और दया अनन्त बार किये। वह तो राग है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उस राग से भी रहित, परन्तु सूक्ष्म विकल्प उठे, निर्विकल्प कहा न? सूक्ष्म (विकल्प) कि यह आत्मा चैतन्य पूर्ण अखण्ड अभेद है, ऐसी भी राग की वृत्ति उठे, उस समस्त राग को छोड़कर। आहाहा! ऐसा मार्ग है। भगवान जिनेन्द्रदेव,

तेरा अन्त:करण अन्तर का मार्ग क्या है, वह कहते हैं। कभी सुना नहीं, समझा नहीं। वह भगवान अन्दर एक सेकेण्ड के असंख्यभाग में अनन्त ज्ञान, बेहद वस्तु है न? वस्तु। वस्तु का स्वभाव है, स्वभाव; स्वभाव में मर्यादा नहीं होती। अमर्यादित ज्ञान, अमर्यादित दर्शन, अमर्यादित आनन्द, अमर्यादित वीर्य, ऐसी संख्या से अनन्त शक्तियाँ। अमर्यादित संख्या और अमर्यादित सामर्थ्य। आहाहा! क्या कहते हैं यह? ऐसा जो यह भगवान आत्मा... अमर्यादित शक्ति अर्थात् अनन्त शक्ति-गुण। और एक-एक शक्ति अमर्यादित, वह अनन्त स्वभाव। आहाहा! ऐसे आत्मा में सर्व विकल्प से रहित होकर, ज्ञान की पर्याय में निश्चय करके। चित्त का अर्थ यह। आहा! बहुत सूक्ष्म मार्ग, प्रभु! धर्म-सम्यग्दर्शन की बात चलती है। अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी। पहला सोपान। आहाहा! अरे! दु:खी चार गति में भटकता, रुलता महामिथ्यात्व के पाप से परिभ्रमण करता हुआ महादरिद्र दु:खी है। उसकी दरिद्रता टालने में जिसमें अनन्त सम्पदा प्रभु आत्मा में पड़ी है।

निर्विकल्प चीज़ कही न? आत्मा में अनन्त-अनन्त लक्ष्मी पड़ी है। अनन्त लक्ष्मी। ज्ञानलक्ष्मी, दर्शनलक्ष्मी, आनन्दलक्ष्मी, स्वच्छता, विभुता, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, जीवत्व, चित्ति आदि शक्तियाँ अनन्त सम्पदा से भरी पड़ी हैं। सम्पदावान प्रभु है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ का **चित्त में निश्चय लाकर...** ज्ञान की पर्याय में ऐसा निर्णय करके। **अखण्डित धाराप्रवाहरूप अभ्यास करते हैं...** आहाहा! **'कलयन्ति'** अनुभव से अभ्यास करते हैं। आहाहा! मैं आनन्दस्वरूप पूर्ण अखण्ड ज्ञायकस्वरूप का चित्त में-ज्ञान की पर्याय में निर्णय करके, अखण्ड धाराप्रवाही, उस निर्णय में अखण्ड धाराप्रवाही आत्मा की ओर का झुकाव करके। आहाहा! श्लोक बहुत ऊँचा है।

परमात्मा जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं कि तुझे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो तो क्या करना? और उसकी रीति और विधि क्या? आहाहा! अभी तो प्रथम सम्यग्दर्शन। आस्रव अधिकार है न? तो सम्यग्दृष्टि को आस्रव नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। मिथ्यादृष्टि को आस्रव है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! आत्मा में अनन्त आनन्द और शान्ति का सागर प्रभु है, ऐसी ज्ञान की वर्तमान पर्याय-दशा में निर्णय करके, स्वरूप-सन्मुख का अखण्ड धारा अभ्यास कर। आहाहा! अन्तर्मुख में अखण्ड धाराप्रवाह से अभ्यास कर।

ऐसा है। क्योंकि भगवान आत्मा निरन्तर अखण्डस्वरूप है। वस्तु अखण्डस्वरूप है तो उसके अभ्यास में अखण्ड धाराप्रवाह अभ्यास चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभी तो सम्यग्दर्शन के लिये बात है। श्रावकपना जो पाँचवाँ गुणस्थान, वह तो क्या चीज़ है, वह तो दूसरी चीज़ है। और मुनि, वह तो कोई अलौकिक बातें, बापू! आहाहा! अभी तो वह मुनिपना क्या है... आहाहा! सुनने में कठिन पड़ जाये, ऐसी चीज़ है।

प्रभु अन्दर आत्मा अखण्ड धाराप्रवाही वस्तु है, ऐसे अभ्यास में अखण्ड धाराप्रवाह लगा दे। क्या कहा? आहाहा! भगवान ध्रुवस्वरूप, निर्विकल्प चैतन्यस्वरूप अखण्ड धारा अर्थात् ध्रुवधारा, ऐसा का ऐसा रहता है, ऐसी चीज़ में अखण्ड धाराप्रवाह अभ्यास लगा दे। ऐसी बात है। समझ में आया? प्रभु! यह तो भगवान के महामन्त्र हैं। यहाँ तो कहे, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय की दया पालो और व्रत करो और अपवास करो, धर्म (हो जायेगा)। बापू! तुझे उस वस्तु की खबर नहीं। भाई! तुझे भगवान सम्यग्दर्शन कैसे हो? सम्यक् सत्यसाहेब प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, उसका नाम सम्यक् अर्थात् जैसा है, वैसे सत्य की प्रतीति, उसका दर्शन होना, प्रतीति होना, वह अलौकिक चीज़ है। समझ में आया?

भगवान के दर्शन होना... आहाहा! भगवान स्वयं, हों! इसलिए कहा न? **निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यवस्तु...** यह भगवानस्वरूप आत्मा। आहाहा! भग अर्थात् लक्ष्मी और वान अर्थात् स्वरूप। जिसका ज्ञान, आनन्द स्वरूप है, ऐसा भगवानस्वरूप प्रभु अन्दर है। कैसे जँचे? एक बीड़ी, दो बीड़ी ठीक से पीवे तो दस्त उतरे, पाखाने में जाये। ऐसे तो व्यसन। अब उसे कहना कि आत्मा ऐसा है। सवेरे चाय पीवे डेढ़, पाव सेर पीवे तो मस्तिष्क ठिकाने रहे। आज चाय पिये बिना सुनने आया हूँ। मस्तिष्क बराबर ठिकाने नहीं। आहाहा! प्रभु! तू क्या करता है? ऐसे को ऐसा कहना कि प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है न। आहाहा! कभी तू राग में आया नहीं और कभी तू पर्याय में आया नहीं। ऐसा भगवान चैतन्य का चौसला।

एक बार दृष्टान्त नहीं दिया था? मुम्बई। बर्फ की शिला होती है। २५-२५ मण की, ३०-३० मण की ५० मण की बर्फ की शिला। हम तो ऐसे निकलते हों तो देखें।

वे ट्रक निकले न ? बड़ी शिलायें। पाँच-सात हाथ लम्बी और डेढ़ हाथ मोटी और डेढ़ हाथ दल। आहाहा! वह बर्फ की शिला है। उसी प्रकार यह भगवान आनन्द और शान्ति की बड़ी शिला है। वह तो परिमित है और यह तो अपरिमित स्वभावी है। उसे प्राप्त करना हो तो क्या करना ?

पहले तो द्रव्य चीज़ क्या है ? गुण क्या है ? पर्याय क्या है ? राग क्या है ? उसे पहले बराबर समझना। समझकर द्रव्यस्वभाव में एकाग्र होना, सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी प्राप्त करने का उपाय है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : वह तो आपने बता दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का तो इसे है न।

मुमुक्षु : करना कैसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे करना है ? सेठ! पैसे के लिये कितनी मेहनत करते हैं। पूरी जिन्दगी उसमें निकाली। तम्बाकू और धूल में। कितने वर्ष हुए ? ७९ ? ७९ की तारीख कल है। ७९ लगेगा या ८० ? ७९। मैंने कहा न ? १३वीं तारीख को।

मुमुक्षु : शरीर की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की ही बात करते हैं न ? भगवान की स्थिति तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! तीन लोक का नाथ चैतन्य भगवान अन्दर विराजता है, उसकी तो अनादि-अनन्त स्थिति है। परन्तु कहते हैं कि वह अनादि-अनन्त है, ऐसा अनुभव में, प्रतीति में कैसे आवे है ?

कहते हैं, कि निर्विकल्प चीज़ के प्रति... आहाहा! **'एकाग्र्यं एव' 'एकाग्र्यं एव सदा कलयन्ति' 'सदा'** यह चार शब्द पड़े हैं। यह तो महामन्त्र हैं, भाई! आहाहा! वह सर्प काटता है न ? फिर मन्त्र गिनते हैं न ? जहर उतरता है। वह न उतरे, उतरे, यह अलग बात है। यह तो मन्त्र है। जिसमें मिथ्यात्व का जहर निकल जाता है। आहाहा! मिथ्यात्व की श्रद्धा ने तो लोगों को मार दिया है। साधु हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ परन्तु पंच महाव्रत पालन किये वह राग, वह धर्म है—ऐसा माना। आहाहा! वह मिथ्याश्रद्धा महामिथ्यात्व है। अरेरे! चार शब्द हैं।

शुद्धनय में अर्थात् कि निर्विकल्प चैतन्यवस्तु अभेद अखण्डानन्द में। वह वस्तु। अब एकाग्र, वह वर्तमान पर्याय। समझ में आया? त्रिकाली ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड दल, वह वस्तु। उसमें एकाग्रता होना, वह (वर्तमान) पर्याय। आहाहा! '**एकाग्र्यं एव**' अर्थात् निश्चय। एकाग्रता निश्चय से करना। आहाहा! और '**कलयन्ति**' यह निश्चय से एकाग्रता परन्तु **अखण्डित धाराप्रवाहरूप अभ्यास करते हैं...** आहाहा! अन्तर में अखण्डधारा से ज्ञायकमूर्ति में अन्दर में '**कलयन्ति**' अनुभव का अभ्यास करना। राग से भिन्न भगवान का अभ्यास करना। यह अभ्यास करते हैं न? अंग्रेजी का स्कूल। पाप का। यह कहते हैं, यह एक अभ्यास तो कर, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ अभ्यास करें तो छड़ी की मार पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ मार पड़े। यहाँ अभ्यास नहीं करे तो चौरासी के अवतार की मार पड़ेगी, ऐसा कहते हैं। बाहर में सब पैसे करोड़ों रुपये हुए। (लोग कहे), दानवीर। और वे खण्डवावाले कहें, जैनरत्न। दोनों सेठियाओं के नाम दे। आहा! बापू! जैन होना, वह महाकठिन है।

जिनस्वरूपी भगवान को अनुभव में लेना, वह जैन है। आहाहा! कठिन बात, भाई! त्रिलोकनाथ परमात्मा जिनेन्द्रदेव का यह फरमान है। भाई! तूने सुना नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ तो अन्तर अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द का दल। क्या कहा यह? पाट। बर्फ की शिला (हो) वैसे यह शान्तिरस की शिला अन्दर पड़ी है। आहाहा! शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अर्थात्? अकषायस्वभाव। ऐसा अकषायस्वभाव से भरपूर शिला ऐसा आता है। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! वीरडा में से जैसे पानी उलेचते हैं, वैसे अन्दर से निकला ही करता है। वीरडा होता है न? वीरडा को क्या कहते हैं? नदी के (किनारे) रेत में थोड़ा खड्डा करे न? पानी भरे। बाहर तो पाँच सेर पानी हो। भरते-भरते भरते अन्दर से निकलता ही जाये, पानी आता ही जाये। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त आनन्द का सागर प्रभु, उसमें एकाग्र होने पर जो आनन्द की धारा आवे। आहाहा! वह धारा टूटे नहीं। आहाहा! वह अखण्ड अभ्यास आनन्द का। त्रिलोकनाथ परमात्मा अपने निज स्वरूप में अखण्डित धाराप्रवाह अभ्यास

करके। अन्तर में एकाग्रता का अखण्ड अभ्यास करके। आहाहा! **सर्व काल...** वापस सदा। एक क्षण या एक समय किय, ऐसा नहीं। आहाहा! यह छोटी पीपर होती है न? छोटी पीपर नहीं? छोटी पीपर। चौंसठ पहर घूँटते हैं न? उसमें एक मिनिट भी विश्राम नहीं। वढवाण में करते थे। हमारे डाह्याभाई थे न? डाह्या जेठा। वे घर में पीपर घिसते थे। बहुत वर्ष की बात, हों! ७५ वर्ष पहले की बात है। तो आठ भैया रखे। चार सवेरे के और चार रात के। घिसने में एक मिनिट का खण्ड न पड़े। पीपर-छोटी पीपर। चौंसठ पहर तक अखण्ड धारा। एक मिनिट भी घिसे बिना न रहे, तब चौंसठ पहरी प्रगट होती है। वे डाह्या जेठा करते थे। पश्चात् गरीब को देते। कोई भी गरीब व्यक्ति हो (उसे देते)। गृहस्थ व्यक्ति। कोई आवे तो रुपयाभार, आधा भार, पाव भार चाहिए हो तो ले जाओ, ले जाओ। गृहस्थ व्यक्ति। यह सेठ करते हैं न? सेठ हीरा की भस्म बहुत करते हैं। एक तो अपना है और कोई आवे उसे दे। हीरा की भस्म और अमुक की और ढीकना की... अपने को कुछ खबर नहीं। घर में इतनी भस्म रखते हैं।

यहाँ कहते हैं कि परमात्मा त्रिलोकनाथ तू है न, नाथ! आहाहा! अरे! तेरी चीज़ की महिमा और माहात्म्य तुझे नहीं आया, प्रभु! तूने माहात्म्य राग और पुण्य के, दया, दान के, बाहर की चीज़ के माहात्म्य के समक्ष प्रभु! तेरा माहात्म्य तू भूल गया। आहाहा! भूल गया तेरा माहात्म्य। एक बार तो पर का माहात्म्य छोड़कर स्व का माहात्म्य कर। आहाहा! निरन्तर अखण्ड धारा अभ्यास। जैसे चौंसठ पहरी पीपर घूँटे, उसमें एक मिनिट भी (खण्ड न पड़े)। नम्बर से (घिसे)। एक थक जाये तो दूसरा भैया (घिसे)। चौंसठ पहर तक। आठ, दस, बारह भैया रखे। नम्बर से किया ही करे। चौंसठ पहर। रात्रि में भी (बन्द) नहीं। सोने का नहीं। आहाहा! इसी प्रकार प्रभु आत्मा... आहाहा! अन्दर चौंसठ पहर अर्थात् रुपया-रुपया जैसे तिखाश—चरपराई पड़ी थी तो पूरी प्रगट होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा पूरा-पूरा आनन्द, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, विभुता, प्रभुता आदि पूर्ण शक्ति का पिण्ड पड़ा है। आहाहा!

उसे **अखण्डित धाराप्रवाहरूप अभ्यास...** अभ्यास का अर्थ '**कलयन्ति**'। आहाहा! अन्तर वस्तु में एकाग्र होकर अभ्यास करते... करते... आहाहा! कितना काल? **सदा काल...** पूर्ण प्रगट न हो, तब तक घिसना। अन्दर एकाग्रता घिसना। आहाहा! ऐसा मार्ग

है। अरेरे! कुछ का कुछ मार्ग कर डाला लोगों ने। जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली जाती है। जैन परमेश्वर ने जो मार्ग कहा है, उस मार्ग की खबर ही नहीं। यहाँ (कहते हैं), **सदा काल...** कैसी है चीज़? भगवान आत्मा वह चीज़-वस्तु कैसी है? '**उद्धतबोधचिह्नं**'। '**उद्धत**' जिसका ज्ञान प्रगट है। आहाहा! ज्ञानपर्याय में लक्षण प्रगट है। उस ज्ञानलक्षण से पूरी चीज़ ज्ञान में आती है। आहाहा! ज्ञान वर्तमान जो प्रगट है, वह '**उद्धत**' है। वह प्रगट ज्ञान किसी को गिनता नहीं। आहाहा! '**उद्धतबोध**', '**उद्धतबोध**', है। जैसे लोग नहीं कहते कि यह व्यक्ति उद्धत है? वैसे ज्ञानलक्षण किसी को गिनता नहीं। आहा! अपने लक्षण में रहनेवाली ज्ञानपर्याय '**उद्धतबोध**', वह बोध ज्ञानगुण उद्धत है, सर्व काल प्रगट है। आहाहा!

'**चिह्नं**' **लक्षण जिसका...** क्या कहते हैं? इस पर्याय में वर्तमान में ज्ञान ज्ञात होता है न? राग को जाने, पर को जाने, वह जाने तो ज्ञान जानता है न? वह ज्ञान की पर्याय प्रगट '**बोध चिह्नं**' आत्मा का लक्षण चिह्न प्रगट है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात, भाई! श्लोक ऐसा आया है। **ज्ञानगुण, वही है लक्षण जिसका,...** '**चिह्नं**'। वर्तमान में ज्ञान की पर्याय प्रगट उद्धत किसी को गिनती नहीं। मैं ज्ञानलक्षण हूँ और लक्षण से लक्ष्य ज्ञान में आता है। ज्ञानलक्षण से आत्मा का भान होता है। ऐसा लक्षण उद्धत है। आहाहा! ऐसा उपदेश कैसा यह? वह बातें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिया... तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। जाओ। ताव काय ठाणेणं माणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसरे। जाओ, आत्मा वोसराया। आत्मा क्या और वोसराना क्या, कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! सिद्धासिद्धि मम दिसंतु। सिद्ध भगवान सिद्धपद देना। क्या है इसकी खबर नहीं होती।

एक बार लींबड़ी में बात नहीं की थी? सेठ का उपाश्रय है न? सेठ का उपाश्रय। लींबड़ी में दो उपाश्रय—एक संघवी का वीसाश्रीमाली का और एक दशाश्रीमाली का। बहुत वर्ष पहले वीसाश्रीमाली को और दशाश्रीमाली दोनों को विवाद था, विरोध था। उसमें दशाश्रीमाली की एक बुढ़िया सामायिक करने बैठी। उसमें आया, विहुयरयमला। आता है न? लोगस्स में नहीं आता? विहुयरयमला। अर्थ की खबर नहीं होती। फिर वह वीसा को और दशा को विवाद था न? बाई बोली कि वीसा रोई मळया। विहुयरयमला

शब्द है। वीसा रोई मळया। वह कहे, अपना विवाद यहाँ कहाँ से आया? लोगस्स में कहाँ से आया यह? 'एवं मये अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा'... पहाड़े की भी खबर नहीं होती। समझ में आया? तब वह कहे, अपने वीसा और दशा को विवाद, इसमें कहाँ से आया? देखो तो सही। यह पाठ में कहाँ से आया? देखो तो विहुयरयमला। हे नाथ! परमात्मा! आप वि-विशेष, हुय-टाले हैं रज—कर्मरूपी जड़ रज-मल। और पुण्य-पाप के भाव जो विकारी अरूपी, वह मल। रज वह जड़। विहुयरयमला। टाले हैं वि-विशेष, हुय अर्थात् जैसे पंखड़ी, धूल होती है, उसे ऐसे झाड़ती है, वैसे आत्मा आनन्द के स्वरूप में रमने से हे नाथ! आपने तो विशेष हुय अर्थात् टाले हैं। जड़ आठ कर्म की रज और मल अर्थात् पुण्य-पाप के मलिन भाव। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह मल है। प्रभु! आपने तो टाले हैं। विहुयरयमला। ऐसा अर्थ है। लोगस्स के बोलनेवाले को खबर नहीं होती। जय नारायण! किया था या नहीं? तब लोगस्स-बोगस्स करते थे न? साथ में करते थे, पण्डित के साथ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! आहा! देखो! वहाँ रयमला में दो शब्द पड़े है। रज अर्थात् कर्मरज—आठ कर्म की धूल। और मल अर्थात् पुण्य-पाप के भाव जो मैल है हैं वे। भावकर्म। रज द्रव्यकर्म। दोनों को प्रभु ने टाला है। समझ में आया? आता है न लोगस्स में? अर्थ की खबर है? जय भगवान। पहाड़े रट जाये।आहाहा!

ज्ञानगुण वही है लक्षण (चिह्न) जिसका,... आहाहा! क्या कहते हैं? जैसे रुई की गाँठ होती है बड़ी। धोकड़ा को क्या कहते हैं? गाँठ। बड़ी पच्चीस मण। उसमें से रुई का नमूना निकालते हैं न? नमूना है, वैसी पूरी रुई है। उसी प्रकार आत्मा की वर्तमान प्रगट पर्याय में ज्ञान जिसका चिह्न है। उसके द्वारा पूरा आत्मा जानने में आता है। आहाहा! **ज्ञानगुण वही है लक्षण जिसका, ऐसा है। क्या करके जिस किसी प्रकार मन में प्रतीति लाकर।** आहाहा! किसी भी प्रकार से पुरुषार्थ की जागृति से भगवान आत्मा जागृतस्वरूप, जागृतस्वरूप। त्रिकाल जागृतस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप। किसी भी प्रकार से जागृति की पर्याय द्वारा। आहाहा! ज्ञान चिह्न कहा न? उसे जागृति कही। आहाहा!

जिस किसी प्रकार मन में... ज्ञानलक्षण द्वारा प्रतीति लाकर। आहाहा! यह विधि।

जिस किसी प्रकार... कुछ भी पुरुषार्थ द्वारा। काललब्धि द्वारा, पुरुषार्थ द्वारा, स्वभाव द्वारा। आहाहा! किसी भी प्रकार से अन्तर्मुख में प्रतीति लाकर। मैं तो भगवान पूर्ण हूँ, ऐसे ज्ञान की पर्याय में जो उसका चिह्न है, उसके द्वारा प्रतीति लाकर। **'ते एव समयस्य सारं पश्यन्ति'** आहाहा! **'त एव' वे ही जीव... 'ते एव'** ऐसा है न? वही, ऐसा। ऐसे जो जीव है, अन्दर आनन्दकन्द में रमते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में अन्तर में रमते हैं, आहाहा! उसे आत्मा प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। **वे ही जीव...** अर्थात् कि वही निश्चय जीव।

'समयस्य सारम्' सकल कर्म से रहित, अनन्त चतुष्टय विराजमान... भगवान प्रगट होता है। एकदम केवलज्ञान लिया। अन्तर में अभ्यास करते-करते सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। अनन्त चतुष्टय अन्दर विराजमान है, वह प्रगट हुए। और विशेष अन्दर में अनुभव करते-करते केवलज्ञान हो गया। आहाहा! अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त करने की पद्धति भी अन्तर के अनुभव का साधन। आहाहा! यह सब व्रत, तप, भक्ति और यह तो सब शुभराग है। वह कोई साधन-फाधन नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन काम। पूरी दुनिया से विरुद्ध। आहाहा!

हमारे बाप-दादा करते आये, वह सब खोटा? ऐसा कितने ही कहते हैं। परन्तु पूर्व के तेरे कोइ बाप-दादा थे, वे मोक्ष में गये हैं, वह तुझे खबर नहीं? अनन्त बाप हुए हैं। अनन्त भव में अनन्त बाप में कितने ही बाप तो आत्मा का भान करके मोक्ष गये हैं। और कितने ही बाप और माँ पड़े हैं इस पीपल में, नीम में। एक पत्ते में तेरे पूर्व के माँ-बाप पड़े हैं। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। उसका सहारा लेकर उन्होंने किया इसलिए (हम करते हैं)। परन्तु सत्य क्या है? आहाहा! हमारा बाप-दादा का मार्ग नहीं छोड़ा जाता, ऐसा कितने ही कहते हैं। बाप-दादा तो वह नहीं पहनते थे। टोपी पहनते थे। वह क्यों छोड़ दी? पगड़ी पहनते थे। बाबूभाई कहते हैं। केडिया थे। ऐसे केडिया था। दो कस बाँधा हुआ। आहाहा! तेरा पिता करता था, वह करता है, तो यह छोड़ दिया। यह सत्य हो तो खोटा छोड़ दे। समझ में आया?

सकल कर्म से रहित, अनन्त चतुष्टय विराजमान... परमात्मा आत्मा **परमात्मपद**

को... ऐसे आत्मा के अन्तर में राग और विकल्प से रहित स्वरूप में एकाग्रता के अभ्यास द्वारा उसे पर्याय में परमात्मपद प्राप्त होता है।

मुमुक्षु : प्रगट....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रगट, प्रगट होता है। शक्तिरूप से आत्मा परमात्मा है ही। पर्याय में प्रगट होता है। इनलार्ज होता है। समझ में आया? आहाहा! वस्तु में तो परमात्मस्वरूप ही आत्मा अनादि से है। शक्ति और स्वभाव परमात्मस्वरूप ही उसकी शक्ति है। आहाहा! उसने पामररूप से माना है। मैं मनुष्य हूँ और मैं राग हूँ और मैं पुण्य हूँ, मैं लक्ष्मीवाला और मैं दरिद्र हूँ और स्त्री हूँ और पुरुष हूँ और नपुंसक हूँ। माना है, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? प्रगट। '**पश्यन्ति**' का अर्थ प्रगट किया है। देखता है, ऐसी फिर भाषा है। जो कोई आत्मा में पूर्ण आनन्द के नाथ में एकाग्रता का अन्तर अभ्यास करता है, वह पूर्ण आत्मा को देखता है। देखता है, इसका अर्थ प्रगट करता है—ऐसा अर्थ किया। समझ में आया? ऐसा उपदेश। क्या कहते हैं इसमें? नये प्रकार का उपदेश। बापू! भगवान का मार्ग अनादि का यह है। नये प्रकार का नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। अनादि-अनन्त तीर्थंकर (ऐसा ही कहते हैं)। महाविदेह में तो प्रभु विराजते हैं, यही उपदेश वहाँ चलता है। यहाँ भी महावीर परमात्मा आदि अनन्त तीर्थंकर इसी मार्ग से चले हैं और यही मार्ग कहा है। परन्तु यह बात अभी बाहर में लोप जैसी हो गयी। दूसरे रास्ते चढ़ गये। जो मार्ग नहीं, उस रास्ते चढ़कर (मार्ग मानते हैं)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! पूर्णानन्द का नाथ पताला कुँआ एक बार फोड़। आहाहा! पाताल कुँआ। नहीं कहा था? 'जनडा', बोटाद के पास जनडा गाँव है। वहाँ हम निकले थे। अठारह कोस बहता है, अठारह कोस पानी। अठारह कोस समझते हो? रहंट। पानी। कम नहीं होता। अन्दर पाताल में से पानी आया है। एक व्यक्ति ने कुँआ बहुत खोदा। खोदते-खोदते थक गया और छोड़ दिया। पाताल पानी में एकाध पत्थर रह गया। एक पत्थर। नीचे पाताल पानी। थक गया तो छोड़ दिया। उसमें एक बारात आयी। बारात। भोजन करने बैठी। कुँआ है तो पानी होगा इसमें। ऐसे देखे तो पानी नहीं मिलता।

अरे! दस, साढ़े दस बजे। उसमें एक व्यक्ति कहे, ऊपर पच्चीस मण का (पत्थर) है। डालो इसमें। डाला और पाताल में से पानी की सीर फूट गयी। सीर फूटी अन्दर से जोरदार। क्योंकि नीचे पाताल में पानी चला जाता है न! एकदम पानी सब भरने लगे। बारात थी, वह खा-पीकर (चली गयी)। तब से अठारह रहँट भरते हैं।

इसी प्रकार भगवान का पताला कुँआ... आहाहा! जिसमें अनन्त ज्ञान, आनन्द अन्दर में पड़े हैं। उस पाताल में राग की एकता की जो तड़ थी, उसे तोड़ डाला। आहाहा! और स्वभाव की एकाग्रता की जागृति में-जागृत में जागृति प्रगट की। प्रगट करते-करते उसे परमात्मा प्रगट होता है, कहते हैं। तब अरिहन्तपद प्राप्त होता है। समझ में आया?

कैसा पाते हैं? 'बन्धविधुरं' विधुर, विधुर। यह लोग नहीं कहते? पत्नी मर जाये तो पति विधुर हो गया। पति मर जाय तो पत्नी विधवा हो गयी, ऐसा कहते हैं। पत्नी मर जाये तो पति विधुर हुआ, विधुर। और पति मरे, तब पत्नी विधवा हो गयी। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि जब आत्मा... आहाहा! अपने स्वरूप का अनुभव करते हुए परमात्मा हुआ तो बन्ध से विधुर हो गया—बन्ध का नाश हो गया। आहाहा! विधुर शब्द है न? **'बन्धविधुरं'** आहाहा! **अनादि काल से एकबन्धपर्यायरूप चला आया था...** अनादि काल से राग की पर्याय में एकत्व चला आया था और **ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड, उससे सर्वथा रहित है।** आहाहा! विधुरम् का अर्थ किया। आत्मा कर्मबन्धन से रंडुवा—विधुर। विधुर हो गया। आहाहा! प्रभु! तू पूर्ण जगा और बन्ध का नाश हो गया, ऐसा कहते हैं। पूर्ण दशा की उत्पाद दशा हुई, बन्ध की पर्याय नाश को प्राप्त हुई और ध्रुव का आश्रय तो है। ऐसा धर्म और यह क्या कहते हैं परन्तु? यह सामायिक करना और प्रौषध करना और प्रतिक्रमण करना। कुछ नहीं था ऐसी बात में। धूल की भी सामायिक नहीं थी। सामायिक कहाँ थी तुझे? आत्मा की चीज़ है, उसकी प्रतीति और अनुभव नहीं, उसके बिना समता आयी कहाँ से? आहाहा! सामायिक तो समता का लाभ। आय-लाभ समता का। समता का लाभ हो, उसे सामायिक कहते हैं। समता वीतरागमूर्ति प्रभु, उसकी प्रतीति में ज्ञान में आया नहीं तो प्रतीति में वीतरागता आयी नहीं, तो पर्याय में वीतरागता आयी कहाँ से? अरे! गप्प चलाया है सबने। आहाहा!

'**बन्धविधुरम्**' बन्ध से रहित हुआ। **भावार्थ इस प्रकार है—सकल कर्म के क्षय से हुआ है शुद्ध,...** रागादि और कर्म का नाश हो गया। परमात्मा पर्याय में शुद्ध हुआ। वस्तु तो शुद्ध थी। वस्तु तो पवित्र-शुद्ध थी। उसमें अन्तर एकाग्रता करते-करते पर्याय में-अवस्था में शुद्ध परमात्मा हो गया। अरे! ऐसी बातें। एक घण्टे में शब्द सब दूसरे प्रकार के। अभी तक सुने हों, उसमें का कुछ इसमें नहीं आता। क्या हो? भाई! बापू! यह मार्ग पड़ा रहा, भाई! आहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा के पंथ में-मार्ग में जाना, वह मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान में एकाग्रता होकर अनुभव करते-करते निरन्तर धारा से, राग से भिन्न भेदज्ञान करते-करते आगे पूर्ण दशा की जहाँ प्राप्ति हुई, अरिहन्त पद हुआ तो '**बन्धविधुरम्**' बन्ध का नाश हो गया। आहाहा! अनादि काल का बन्ध था, उसका नाश हुआ।

उसकी प्राप्ति होती है... सकल कर्म के क्षय से हुआ है शुद्ध, उसकी प्राप्ति होती है... आया? वाँचन सूक्ष्म है, भाई! यह सेठ घर में पढ़े तो भी समझ में आये, ऐसा नहीं है। इन्हें पैसे का सब सूझता है। ऐ... सेठ! इस शब्द के अर्थ भी समझे नहीं। पुस्तक तो होगी घर में? पुस्तक तो है न! हमारे सेठ तो पढ़ते हैं न! सेठ को तो रस अधिक है। आहाहा! बापू! इसकी एक कड़ी भी कठिन। **सकल कर्म के क्षय से हुआ है शुद्ध, उसकी प्राप्ति होती है...** आहाहा! **शुद्धस्वरूप का अनुभव करते हुए।** क्या कहते हैं? शुद्ध की प्राप्ति कैसे हुई? कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव करते हुए। आहाहा! आत्मा अरिहन्तपद को प्राप्त हुआ, वह मोक्ष-भावमोक्ष है। कर्म छूट जायेगा तो द्रव्यमोक्ष—सिद्ध होगा। वह मोक्ष कैसे हुआ? आहा! **शुद्धस्वरूप का अनुभव करते हुए।** आहाहा! कहो, शान्तिभाई! है या नहीं? कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते मोक्ष हुआ है, ऐसा नहीं है। उससे तो भिन्न पड़ा। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई!

भगवान आत्मा पवित्र पिण्ड प्रभु शुद्ध त्रिकाल, उसका वर्तमान में शुद्धस्वरूप का अनुभव करते-करते, उस शुद्धस्वरूप का वर्तमान में राग और विकल्प से रहित पवित्रता का अभ्यास करते-करते... आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, ये तीनों पवित्र हैं, यह शुद्धस्वरूप का अनुभव है। समझ में आया? ओहो! एक श्लोक में तो कमाल कर दिया! अरे! प्रभु! तुझे लगे तो न! दुनिया के साथ देखने जायेगा तो मिलान नहीं

खायेगा। वीतराग परमात्मा का मार्ग यह है। क्या? शुद्धस्वरूप का अनुभव करते हुए शुद्धता प्राप्त हुई, ऐसा कहते हैं। यह सिद्धपद कैसे प्राप्त हुआ? कि शुद्ध परमात्मा अपना, उसका पर्याय में अनुभव (करने से हुआ)। शुद्ध तो त्रिकाली है। उसकी पर्याय में शुद्धता। पुण्य-पाप के भाव तो अशुद्ध हैं। उनसे रहित शुद्धता का अनुभव करते-करते मोक्ष प्राप्त होता है। आहाहा! वे ऐसा कहें, व्रत करो और अपवास करो। व्रत करो, वह संवर और अपवास करो, वह निर्जरा है। अरे! भगवान! कहाँ मर गया? ऐसे अपवास महीने, दो-दो महीने के अनन्त बार किये हैं और व्रत, पंच महाव्रत तो अनन्त बार लिये और पालन किये हैं। वह तो आस्रव है। आस्रव अधिकार है न? वह तो आस्रव है। उससे मोक्ष प्राप्ति होती है? उससे तो बन्ध होता है। आहाहा! बहुत अन्तर। उसमें जिन्दगी चली जाये। हो गया, जाओ! चौरासी की भवाब्धि। भवरूपी अबधि-समुद्र बड़ा चौरासी लाख योनि का। वहाँ अवतरित होकर कितने अवतार करेगा! आहाहा! उसे छूटने का तो एक रास्ता यह है। समझ में आया?

कैसे हैं वे जीव? अब वे जीव कैसे हैं? '**रागादिमुक्तमनसः**' '**मनसः**' शब्द लिया है। परन्तु परिणाम लेना। रागादि विमुक्त जिसके परिणाम हैं, ऐसा। शुद्धस्वरूप का अनुभव करते-करते (उसमें) अस्ति ली। और राग-द्वेष-मोह से रहित। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प राग हैं, उनसे रहित और शुद्धता का अनुभव करते-करते और अशुद्धता का नाश करते-करते। आहाहा! अस्ति-नास्ति। **परिणाम जिनका, ऐसा है।** आहाहा! **और कैसे हैं?** विशेष आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक - १०-१०-१९७७, कलश-१२०, १२१, प्रवचन-११८

कलशटीका, १२० कलश। अन्तिम लाईन है न थोड़ी? भावार्थ से फिर से। अन्तिम भावार्थ है न? छह-सात लाईन। १२० कलश। **सकल कर्म के क्षय से हुआ है शुद्ध...** क्या कहते हैं? कि आत्मा जो अन्दर वस्तु है, वह तो शुद्ध चैतन्यघन ध्रुव है। उस शुद्ध ध्रुव का पर्याय में अनुभव करता है, वह शुद्ध का अनुभव करता है। वर्तमान पर्याय में जो राग-द्वेष का अनुभव अनादि से है, उसे छोड़कर शुद्ध जो ध्रुव शुद्ध, अन्दर सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है। आत्मा में—ध्रुव में सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है। सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु आत्मा है, आहाहा! यह सर्वज्ञस्वरूपी वह शुद्ध है। वह शुद्ध उसकी, **प्राप्ति होती है...** कर्म का नाश करके ऐसे शुद्ध की पर्याय में प्राप्ति होती है। आहाहा! किस प्रकार? **शुद्धस्वरूप का अनुभव करते हुए।** आहा! जहाँ अन्तर में अविनाशी शुद्धता ध्रुव में शुद्धता (भरी है), वह ध्रुव शुद्ध है, उस शुद्ध की वर्तमान दशा में, उस शुद्ध का अनुभव करने पर, शुद्ध सन्मुख होकर अनुभव करने पर पर्याय में पूर्ण शुद्धता प्राप्त होती है। आहाहा!

कैसे हैं वे जीव? आहाहा! शक्तिरूप और पवित्र ध्रुवरूप आनन्द और सर्वज्ञ शुद्धस्वरूपी प्रभु आत्मा है। उसमें वर्तमान पर्याय में उसके ऊपर दृष्टि करने से और उसका अनुभव करने से। आहाहा! सर्व कर्म का क्षय होकर पर्याय में, शक्ति में जितनी पूर्ण शुद्धता है, वैसी पर्याय में शुद्धता आनन्दसहित प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात, भाई! इसे जब तक अपना द्रव्य शुद्ध है, इसके अतिरिक्त अन्य अनेक पदार्थ में विशेषता जब भासित होती है, तब तक अन्तर में जा नहीं सकता। आहाहा! जहाँ खास चीज़ पड़ी है, अनन्त आनन्द और अनन्त सर्वज्ञपना... आहाहा! जिसके ध्रुव दल में शुद्ध आनन्दकन्द पड़ा है, उसकी जब महिमा आवे, तब उसे पर की महिमा छूट जाती है। चाहे तो शरीर हो, लक्ष्मी हो, कीर्ति हो, पुण्य-पाप के भाव हों, आहाहा! उसकी अधिकता, विशेषता छूट जाती है। आहाहा!

अपना भगवान पूर्णानन्द प्रभु जो ध्रुव में शुद्धता के तल में जो पर्याय अन्दर गयी... आहाहा! तो पर्याय में शुद्धता की प्राप्ति होती है। अब ऐसी बातें! इसमें धर्म

करना किसे सूझे? भाई! जिसे धर्म करना है, उसे धर्म तो वीतरागी पर्याय धर्म है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, ये तीनों वीतरागी पर्याय है। तो वीतरागस्वरूप शान्तस्वरूप तल में, दल में, ध्रुव में अकेली शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायस्वभाव, वीतरागस्वभाव का आश्रय करके, उसकी महिमा में जो रुचि और स्थिरता होती है, वह सब शुद्ध है। समझ में आया? जहाँ पर्याय में विशेष क्षयोपशम हो, उसकी भी जहाँ विशेषता छूट जाती है। उससे अधिक, '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' ३१ गाथा (समयसार)। ज्ञान और आनन्दस्वभाव से पर्याय से अधिक—भिन्न प्रभु पड़ा है। आहाहा! उसकी शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति। उस शान्ति को स्पर्श करने से पर्याय में शुद्धस्वरूप का अनुभव हो, वह शान्ति का अनुभव है। उससे आठ कर्म का क्षय होकर पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति होती है। इतनी शर्तें हैं। आहाहा!

'**रागादिमुक्तमनसः**' जिसके परिणाम में शुद्धता आयी, शुद्धता शक्तिरूप परमानन्दरूप है, उसके सन्मुख होकर अनुभव करने से वर्तमान पर्याय में शुद्धता-पवित्रता आयी, उस स्थान में राग-द्वेष के परिणाम नहीं होते। आहाहा! ऐसी बातें अब। '**रागादिमुक्तमनसः**' **राग, द्वेष, मोह से रहित है परिणाम जिनका,...** जिसके परिणाम—पर्याय त्रिकाली परमात्मा शान्तरस का कन्द नाथ, उसकी दृष्टि हुई और उसमें स्थिर हुआ तो पर्याय में शान्ति... शान्ति वीतरागता (प्रगट हुई)। उस समय में उसे राग-द्वेष-मोह के परिणामरहित है। शुद्ध परिणामसहित है, विकार परिणामरहित है, ध्रुव का आश्रय लिया है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तक तो कल आया था।

और कैसे हैं? आहाहा! '**सततं भवन्तः**' आहाहा! जैसे अनादि अज्ञानी निरन्तर राग और द्वेष का अनुभव निरन्तर करता था। आहाहा! '**सततं भवन्तः**' भगवान आत्मा स्वरूप से जहाँ जाग उठा तो जैसे वह स्वरूप निरन्तर ध्रुव है तो परिणति में भी निरन्तर शुद्धता ही है। आहाहा! ऐसी बात अब! आहाहा! '**सततं भवन्तः**' **निरन्तरपने ऐसे ही है।** आहाहा! धर्मीजीव को धर्म जो वीतरागता अन्तर में से प्रगट हुई हो, वह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम तो सब राग है, वह धर्म नहीं। आहाहा! ऐसी बात, प्रभु! यह राग और मोह से तो जिसके परिणाम रहित हैं। आया न? आहाहा! और अन्तर प्रभु सर्वज्ञ और सर्व आनन्द ध्रुव में भरा है, उसका अनुभव करने से। '**सततं भवन्तः**' निरन्तर शुद्ध

परिणति का होना ही होता है। आहाहा! यह क्या आया? ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया? '**सततं भवन्तः**' निरन्तर ऐसा ही है। जो आत्मा पवित्र भगवान पिण्ड पड़ा है, उस ओर झुकने से जो वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की परिणति हुई, वह निरन्तर '**भवन्तः**' वह कायम रहती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह बाहर का मोह मार डालता है न! अन्दर की सावधानी छोड़कर... मोह शब्द से पर में सावधानी। आहाहा!

शुभ और अशुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव और काम, क्रोध, मान, माया के भाव, दोनों विकार हैं। विकार में सावधानी, वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? जिसने उस पर में सावधानी छोड़ दी और भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा आत्मा-पवित्र आनन्दकन्द प्रभु आत्मा में जिसने सावधानी की, वह निरन्तर रहती है। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो शुभ-अशुभराग आता है, तथापि शुद्धता तो निरन्तर रहती है। उसे धर्म और धर्मी कहते हैं। आहाहा! ऐसा धर्म।

भावार्थ इस प्रकार है... क्या कहते हैं? कि आत्मा जो द्रव्यस्वभाव पवित्र शुद्ध चैतन्यघन की दृष्टि—सम्यग्दर्शन हुआ, शुद्धता हुई तो स्व में प्रमादरहित उसका प्रयत्न वर्तता है। किसी समय ऐसा होगा और किसी समय प्रमाद करेगा, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग कैसा? अभी तो कहे, व्रत करो और अपवास करो और तपस्या करो, यह उपधान करो। होली है सब। राग की क्रिया, वह तो संसार है। भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु! तू उस रागरूप है ही नहीं। आहाहा! वह तो वीतरागी शान्तरस का कन्द है, दल है। उसका अनुभव करने से निरन्तर शुद्ध परिणति बहती है और कभी प्रमाद हो जाये और कभी निरन्तर रहे, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अभी तो पहली चीज़ क्या है, वह समझना कठिन पड़े। आहा! अरे! जिन्दगी चली जाती है। निर्धनपने में निर्धनता में दुःख मानकर चली जाती है, सधनपने में हम ठीक सधन हैं, ऐसी मान्यता में भ्रमणा में जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

मेरा नाथ आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द शान्तरस से (भरपूर है)। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... ऐसा जो मेरा स्वभाव वह ध्रुव पड़ा है। उसके अन्दर जाने से जिसकी शुद्ध धारा निरन्तर होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **कोई जानेगा कि**

सर्व काल प्रमादी रहता है,... बहुत काल तो राग और पुण्य में रहता है, ऐसा कहते हैं। **कभी एक जैसा कहा, वैसा होता है...** क्या कहते हैं? आहाहा! बहुत काल तो धर्मीजीव राग में, पुण्य और दया, दान में रहता होगा। वह तो प्रमाद है। आहाहा! **सो इस प्रकार तो नहीं,... कभी एक जैसा कहा, वैसा होता है...** किसी समय ऐसी शुद्ध-परिणति रहती है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव का यह पुकार है, अरे! दुनिया सुन तो सही एक बार! तेरे अन्तर खजाने में तो महा भण्डार पड़ा है न, प्रभु! तुझे खबर नहीं। तेरे अन्तर खजाने में तो अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता, अरे! सर्वज्ञपना ही पड़ा है पूरा। आहाहा! उस पर दृष्टि पड़ने से, उसके स्वरूप में सावधान होने से वह सावधानपना निरन्तर वर्तता है। आहाहा! किसी समय वर्ते और बहुत समय बाहर ऐसे दिखाई दे न कि यह राग में वर्तता है, दया में और पूजा, भक्ति में वर्तता है, इसलिए उसमें ही वर्तता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? मानो धर्मी तो पूजा में, भक्ति में, भगवान की स्तुति में वर्ते तो वह तो राग है। इसलिए उस समय राग में ही वर्तता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उस समय भी शुद्धता में ही वर्तता है। आहाहा! है न? कितनी टीका की है, देखो न! आहाहा! ऐसा कैसे कहा?

सर्व काल प्रमादी रहता है,... अर्थात् बहुत काल तो ऐसा लगे कि कोई व्यापारी हो तो व्यापार में बैठा हो, वाँचन में बैठा हो, भगवान की भक्ति में बैठा हो तो वह तो शुभराग है। वह तो प्रमाद है। तो बहुत काल तो वहाँ रहता होगा और किसी काल शुद्ध स्वरूप की परिणति में आता होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : हमेशा अपने में ही रहता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य की जो शुद्धि प्रगट हुई है, वह शुद्धि कायम रहती है। भले राग आओ, परन्तु राग के समय भी राग से पृथक् शुद्धता में ही वह वर्तता है। राग में नहीं।

मुमुक्षु : .... कहते हैं, प्रमाद में वर्तता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह प्रमाद है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... वह प्रमाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाद है। भगवान की भक्ति का भाव- राग भी प्रमाद है। शास्त्र श्रवण का भाव- राग, वह प्रमाद है। आहाहा! उपदेश करना, उसका विकल्प राग, वह प्रमाद है। आहाहा! तो बहुत काल तो ऐसा दिखता है न। ऐसा तुझे दिखता है। ऐसा है नहीं। आहाहा! उस राग के काल में भी अपने स्वभाव की शुद्धता में ही वर्तता है। आहाहा! ऐसा जिनेश्वर प्रभु का मार्ग है। बापू! जिनेश्वर... आहाहा! अभी तो मार्ग को राग और पुण्य और दया, दान और व्रत, भक्ति में समाहित कर दिया। अरे! प्रभु! उसमें कल्याण नहीं। नाथ! उसमें तेरा उद्धार नहीं।

सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर निधान पड़ा है न, नाथ! तू भगवत्स्वरूप है। आहाहा! तेरा शुद्ध स्वभाव तो भगवानस्वरूप ही है। आहाहा! उस स्वरूप का जहाँ अनुभव हुआ तो जैसे राग और द्वेष का वेदन अनादि काल से निरन्तर था, एक समय भी बीच में खण्ड नहीं पड़ता था, आहाहा! वैसे भगवान आत्मा शुद्ध का भान सम्यग्दर्शन, ज्ञान में हुआ और सम्यग्दर्शन, ज्ञान की शुद्ध परिणति उत्पन्न हुई, वह शुद्ध में ही वर्तता है। कहो, हिम्मतभाई! यह शब्द क्यों रखा है? **कोई जानेगा कि सर्व काल प्रमादी रहते हैं,...** अर्थात्? आहाहा! धर्मी-समकिती जीव को कोई ऐसा देखे कि यह तो यहाँ खाने में, पीने में, भक्ति में, पूजा में, दान में, व्रत में वर्तता है न? राग की क्रिया है, उसमें (वर्तता है)। भाई! तुझे खबर नहीं। वह राग में वर्तता ही नहीं। वह रागरहित भगवान आनन्दस्वरूप की जो प्रतीति, ज्ञान, शुद्धता-पवित्रता प्रगट हुई, उस पवित्रता में निरन्तर वर्तता है। आहाहा! ऐसा क्या कहते हैं यह?

धर्मी जीव को विषय की वासना भी आती है और भोग की क्रिया दिखती है, कहते हैं। वह तो प्रमादी दिखता है, ऐसा कहते हैं। सुन तो सही! आहाहा! जिसे भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ वीतरागदेव ने कहा, ऐसा आत्मा, हों! अन्य दूसरे आत्मा कहते हैं, उन्हें आत्मा की खबर नहीं है। आहाहा! जिनेश्वरदेव ने जो आत्मा अन्दर पवित्र का पिण्ड शुद्धता का सागर (देखा)... आहाहा! उसका जिसे अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ। तो सम्यग्दर्शन में आत्मा की अनुभूति होती है। समझ में आया? तो कहते हैं कि उस अनुभूति की दशा में ही वह वर्तता है, शुद्धता में ही वर्तता

है। अशुद्धता दिखती है कि यह अशुद्धता में है। समझ में आया? पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! गजब बात करते हैं न!

जहाँ प्रभु आत्मा अन्दर ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु... सहजानन्द में एक बार और कोई ऐसा कहता था कि यह सहजानन्द तो स्वामीनारायण को होता है, अपने को होता है? और ऐसा कहता था। अरे! सहजानन्द आत्मा सहज आनन्दस्वरूप ही है। आहाहा! वह सहजानन्द अलग चीज़, यह अलग चीज़ है। यह तो स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा है। आहाहा! उस आनन्द के नाथ को जहाँ जगाया... आहाहा! सम्यग्दर्शन में और सम्यग्ज्ञान में जिसे जागृत स्वभाव की जागृति पर्याय में हुई... आहाहा! वह जागृति निरन्तर रहती है। वह तुझे बाह्य में यह विकल्प में दिखता है या इस काम में दिखता है न! वह तुझे दिखता है। अन्दर ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। पोपटभाई!

मुमुक्षु : संघाडा में नहीं सुनी।

पूज्य गुरुदेवश्री : है नहीं कहीं। अभी सम्प्रदाय में कहीं नहीं है। हमने तो सब देखा है न! आहाहा! बाहर की क्रियायें करो और यह उपधान करो और यह अपवास करो और व्रत पालन करो। द्रव्य कम खाओ। पच्चीस द्रव्य में पाँच लो और बीस छोड़ दो। ऐसी बातें सब। आहाहा! वह तो सब क्रियाकाण्ड के राग की बातें हैं। भगवान आत्मा के स्वभाव की वह बात नहीं है। वीतराग जिनेन्द्रदेव कहते हैं, वह बात नहीं, भाई! समझ में आया? आहाहा!

कोई जानेगा... यह क्यों लिया है इन्होंने? कि सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धता के परिणाम में आया और ऐसा दिखता है कि व्यापार में बैठे हैं, धन्धा करते हैं, ऐसा लगे। परमात्मा की भक्ति करते हैं, शास्त्र वाँचते हैं, शास्त्र पूजते हैं, वह तो सब राग में वर्तते हैं, ऐसा दिखता है। समझ में आया? मीठालालजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! प्रभु! तुझे तेरे स्वरूप के माहात्म्य की खबर नहीं। जिसे अन्तर स्वरूप के आनन्द के माहात्म्य की दशा प्रगट हुई, उसे रागादि है, तथापि राग में वर्तता नहीं। आवे तो भी उसमें वर्तता नहीं। वर्ते शुद्ध स्वभाव में। आहाहा! ऐसा है।

अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह कुछ नया धर्म है। यह वह कहीं जैनधर्म होगा? क्या करे? अरेरे! उसे जैनधर्म क्या है? भाई! 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिनप्रवचन का मर्म।' भगवान अन्दर जिनस्वरूपी प्रभु है। वह अपने जिनस्वरूप में जहाँ एकाग्र होता है, तब पर्याय में जैनता प्रगट हुई, वह जैन है। उसका नाम जैन। यह वाडा में जैन पड़े हैं और यह णमो अरिहंताणं करे, और भक्ति करे, इसलिए जैन; वे जैन है ही नहीं। आहाहा! जैन तो परमेश्वर उसे कहते हैं कि जिसकी पर्याय में राग को जीतकर राग से भिन्न अपनी परिणति वर्तती है। आहाहा! ऐसा सुनने को भी कभी मिले ऐसा है। सेठ! आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त काल में किसी समय मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा समय है, बापू! आहाहा! क्या हो?

भगवान एक समय की पर्याय के पीछे पूरा तत्त्व पिण्ड आनन्द का नाथ पड़ा है वह तो। आहाहा! विकल्प उठता है, वह राग और उस राग का ज्ञान करने की जो एक समय की पर्याय है, उस पर्याय के समीप पूरा तत्त्व भगवान पूर्णानन्द का नाथ आत्मा पड़ा है। आहाहा! हाथी होता है न? हाथी। हाथी को खिलावे। क्या कहलाता है? कैंथ (फल)। भूल जाते हैं तुम्हारे नाम। वह देखा हुआ है, नजर से देखा हुआ है। उमराला में हाथी आया था। यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है। वहाँ कैंथ बहुत होते हैं। नदी के किनारे कैंथ (होते हैं)। काळुभार नदी है। उसे नदी के किनारे हैं, हाथी को खिलावे। खिलावे तो वह खोखा पूरा का पूरा निकले। पूरा का पूरा। कस ले लिया हो। आहाहा! देखा है, नजरों से देखा है, हों! छोटी उम्र में। ऐसे कैंथ। पूरा आकार ऐसा का ऐसा होता है। अन्दर से रस ले लिया हो।

इसी प्रकार धर्मी जीव ने पुण्य और पाप के विकल्प के काल में भी अपने आनन्द का रस ले लिया है। वह राग का खोखा उड़ा दिया है। आहाहा! यह तो सब नजरों से देखकर सब निर्णय किये हैं, हों! ऐसे के ऐसे नहीं मानते। आहाहा! हमारे उमराला में दरवाजे के बाहर हाथी आया था तो हम देखने गये थे। वहाँ कैंथ पड़ा था। हो पूरा, चूरा न हो। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान में आत्मा का रस आया तो राग के खोखा ऐसे के ऐसे दिखते हैं। इसी

प्रकार क्रिया में दिखे कि यह राग करते हैं, ऐसा करते हैं। परन्तु वह राग में है नहीं; वह तो आत्मा के रस में है। आहाहा!

मुमुक्षु : सवेरे सर्वज्ञ की महिमा कितनी बतायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जंगल जाते हुए रास्ते में कहा था आज। कहा, बापू! यह तो सर्वज्ञ प्रभु है, हों! आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। सर्वज्ञस्वभावी कहो या सर्वज्ञस्वरूप ही है। आहाहा! यह 'ज्ञ' स्वभाव, ज्ञानस्वभाव अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव। सर्वज्ञस्वभाव अर्थात् 'ज्ञ' स्वभाव, पूर्ण स्वभाव। वह सर्वज्ञ प्रभु ही आत्मा है। आहाहा! पर्याय में सर्वज्ञ होता है, वह कहाँ से होता है? परमात्मा अरिहन्तदेव जिनेश्वरदेव केवलज्ञान को प्राप्त हुए, वह सर्वज्ञता कहाँ से आयी? कहीं बाहर से केवलज्ञान आता है? जो अन्तर में सर्वज्ञपना पड़ा है। आहाहा! उस सर्वज्ञ की जहाँ अन्तर अनुभव में दृष्टि हुई... आहाहा! वहाँ शुद्धता के परिणमन के काल में धर्मी को निरन्तर शुद्धता ही वर्तती है। आहाहा! चाहे तो बाहर में दिखाई दे। ऐसा कहा न?

कोई जानेगा कि सर्व काल प्रमादी रहता है,... पूरे दिन धन्धे में हो, ऐसा दिखाई दे। परन्तु बापू! तुझे खबर नहीं। धर्मी की दृष्टि तो जो शुद्ध पर पड़ी है और परिणमन है, उसमें से दृष्टि फिरती नहीं। आहाहा! वह सर्व काल अर्थात् मानो बहुत काल, ऐसा। मानो इस राग में वर्ते, या अशुभ में, या शुभ में। ऐसा मानो। **कभी एक जैसा कहा वैसा होता है,...** किसी काल में उसे शुद्ध परिणमन होगा, ऐसा कोई माने। आहाहा! ऐसी बात सुनने को मिलना मुश्किल पड़ गयी। परन्तु जिनेन्द्रदेव ने कहा! आहाहा! साधु होकर— नाम धरावे और दया, दान, पंच महाव्रत के परिणाम वह तो राग है। राग की अधिकता में वह तो पड़ा है। आहाहा! उसके रस में पड़ा है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आया और शुद्धदशा (प्रगट हुई), शक्ति में शुद्धता थी, वैसी सम्यग्दर्शन, ज्ञान में व्यक्तता शुद्धता की प्रगट हुई तो किसी काल में वह शुद्धता रहती होगी और बहुत काल में तो मानो पुण्य-पाप के परिणाम में वर्तता है, ऐसा दिखता है। आहाहा! ऐसा नहीं है। कहो, वीरचन्दभाई! वीरचन्दभाई कहे, यह सब धन्धे में... श्रीमद् राजचन्द्र लाखों का व्यापार करते थे। मोती का। लोग ऐसा माने कि यह तो उसमें वर्तते लगते हैं। सुन, प्रभु! आहाहा! जहाँ

सम्यग्दर्शन, आत्मा पूर्णानन्द के नाथ का जहाँ अनुभव और प्रतीति और रमणता हुई, उस रमणता के काल में सदा रमणता ही रहती है। यह बाहर में दिखता है कि इस काल में ऐसा दिखता है, इसलिए राग करता है और यह करता है। ऐसा नहीं है। बाहर से धर्मी का माप नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! धर्मी के अन्त:करण—हृदय का (माप) अन्तर के माप से माप होता है। आहाहा! ऐसी कैसी बात होगी? आहा! वे डेढ़-डेढ़ महीने के उपधान करते हैं न? उसमें मानते हैं कि मानो धर्म हुआ। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! अभी आत्मा आनन्द का नाथ कौन है, उसकी तो खबर नहीं, उसकी दृष्टि नहीं, उसकी शुद्धता की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत कठिन काम, भाई! जगत के साथ मिलान खाना बहुत कठिन है। आहाहा! और उसमें पैसा खर्च करे वह मानो कि हमने बड़ा धर्म किया। पाँच लाख खर्च करो, जाओ, करो उपधान। धूल में भी धर्म नहीं, सुन तो सही।

मुमुक्षु : मान बढ़ाई के लिये करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई मान बढ़ाई के लिये करे, तब तो अकेला पाप है। परन्तु कोई मान बढ़ाई के कारण न करे, राग की मन्दता हो तो भी वह तो शुभराग है। वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! और राग की रुचि में पड़े हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! गजब बातें, नाथ! तेरी बात कठिन बहुत। आहाहा! समझ में आया? इतने शब्द में इन्होंने बहुत समाहित कर दिया है।

कोई जानेगा कि सर्व काल प्रमादी रहता है,... दिखता है तो ऐसा मानो। आहाहा! किसी समय ऐसा शुद्धता का अनुभव हो जाता होगा। आहाहा! प्रभु! जैसे निरन्तर अनादि काल का अज्ञानी पुण्य और पाप के विकारी भाव में निरन्तर वेदन में है। चाहे तो वह भक्ति में बैठा हो या भगवान के समवसरण में गया हो तो भी वह राग के वेदन में है। निरन्तर राग का वेदन है। आहाहा! ऐसे परमात्मा आत्मस्वरूप जो परम आत्मा, परमस्वरूप सर्वज्ञस्वरूप पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसका अन्तर में सम्यग्दर्शन, ज्ञान में अनुभव हुआ, वह तो शुद्ध परिणति में ही सदा रहता है। विकल्प दिखता है परन्तु वह तो ऊपर-ऊपर है। उसका तो ज्ञाता-दृष्टा होकर रहता है। राग में नहीं रहता। राग का ज्ञान अपने ज्ञान में वह तो रहता है। शान्तिभाई! ऐसी बातें बहुत, भाई! अरे! जगत से बहुत उल्टी। और

वाड़ावाले सुने उन्हें तो ऐसा लगे कि अरर्र! यह तो सब क्या कर डाला? सब लोप कर डालते हैं। अरे! सुन रे भाई, सुन! आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ऐसा फरमाते हैं, महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं, उनकी यह सब वाणी है। आहाहा! समझ में आया? दूसरी शास्त्रों में तो ऐसी बात भी नहीं है। आहाहा! भले पढ़ा करे तो सब निकला करे। राग की क्रिया, यह और वह। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **कोई जानेगा कि सर्व काल प्रमादी रहता है,...** सर्व काल अर्थात् पूरे दिन वह राग में और पुण्य में और पाप के परिणाम में मानो दिखता है। आहाहा! **कभी एक जैसा कहा वैसा होता है, सो इस प्रकार तो नहीं,...** सो इस प्रकार तो नहीं है। आहाहा! **सदा सर्व काल शुद्धपनेरूप रहता है।** आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को विषयवासना का विकल्प उत्पन्न होता है और भोग की क्रिया दिखती है। भरत चक्रवर्ती ९६ हजार स्त्री, ९६ करोड़ सैनिक। उसमें राग (आता है), परन्तु वहाँ राग से अपना भिन्न स्वरूप है, उसमें ही रमते हैं। वह राग में आता ही नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग। समझ में आया? अज्ञानी दुकान, धन्धा, व्यापार छोड़कर दया, दान, व्रत, भक्ति में वर्तता है तो वह तो निरन्तर राग में ही वर्तता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

सदा सर्व काल... देखा? दो भाषा प्रयोग की है। सदा और सर्व काल। आहाहा! मैं तो ज्ञायक आनन्दकन्द हूँ।—ऐसी दृष्टि समकिती को सदा—निरन्तर चालू है। आहाहा! समझ में आया? इसमें कहीं घर में समझ में आये, ऐसा नहीं है। सेठ! सदा सर्व काल का अर्थ करे तो। वहाँ समझे कहाँ? वहाँ बीड़ी और तम्बाकू का सूझे। उसकी क्या, यह सबकी बात है न! पोपटभाई की। यह तो बड़े लोगों को... आहाहा! और अज्ञानी निरन्तर पुण्य की क्रिया में वर्तता हो.. समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तो भी वह अज्ञान में है। निरन्तर अशुद्धता में वर्तता है। आहाहा! **सदा सर्व काल शुद्धपनेरूप रहता है।** आहाहा! जहाँ प्रभु आत्मा पवित्र शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव का परिणमन-पर्याय में शुद्धता प्रगट हुई, वह पुण्य-पाप के राग के विकल्प से भिन्न, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, वह सब राग की क्रिया है। आहाहा! उसमें वह धर्म मानता है। वहीं का वहीं रह गया। राग में रुक गया। भगवान आत्मा का स्वरूप एक ओर पड़ा रहा। आहाहा! समझ में आया? यह १२० कलश हुआ।

कलश-१२१

(वसन्ततिलका)

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम्।।९-१२१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तु पुनः' ऐसा भी है — 'ये शुद्धनयतः प्रच्युत्य रागादियोगं उपयान्ति ते इह कर्मबन्धं विभ्रति' [ये] जो कोई उपशम-सम्यग्दृष्टि अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि जीव, [शुद्धनयतः] शुद्धचैतन्यस्वरूप के अनुभव से [प्रच्युत्य] भ्रष्ट हुए हैं तथा [रागादि] राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्धपरिणाम [योगं] रूप [उपयान्ति] होते हैं, [ते] ऐसे हैं जो जीव वे [कर्मबन्धं] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड [विभ्रति] नया उपार्जित करते हैं। भावार्थ इस प्रकार है — सम्यग्दृष्टि जीव, जब तक सम्यक्त्व के परिणामों से साबुत रहता है, तब तक राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्धपरिणाम के नहीं होने से, ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध नहीं होता। (किन्तु) जो सम्यग्दृष्टि जीव थे, पीछे सम्यक्त्व के परिणाम से भ्रष्ट हुए, उनको राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्धपरिणाम के होने से, ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध होता है, क्योंकि मिथ्यात्व के परिणाम अशुद्धरूप हैं। कैसे हें वे जीव। 'विमुक्तबोधाः' [विमुक्त] छूटा है [बोधाः] शुद्धस्वरूप का अनुभव जिनका, ऐसे हैं। कैसा है कर्मबन्ध? 'पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालं' [पूर्व] सम्यक्त्व के बिना उत्पन्न हुए [बद्ध] मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणाम के द्वारा बाँधे थे जो [द्रव्यास्रवैः] पुद्गलपिण्डरूप मिथ्यात्वकर्म तथा चारित्रमोहकर्म, उनके द्वारा [कृत] किया है [विचित्र] नाना प्रकार [विकल्प] राग, द्वेष, मोहपरिणाम, उसका [जालं] समूह ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है — जितने काल जीव, सम्यक्त्व के भावरूप परिणमा था, उतने काल चारित्रमोहकर्म, कीले हुए सर्प के समान अपना कार्य करने के लिए समर्थ नहीं था। जब वही जीव, सम्यक्त्व के भाव से भ्रष्ट हुआ; मिथ्यात्वभावरूप परिणमा, तब उकीले हुए सर्प के समान अपना कार्य करने के लिए समर्थ हुआ। चारित्रमोहकर्म का कार्य ऐसा, जो जीव के अशुद्धपरिणमन का

निमित्त होना। भावार्थ इस प्रकार है — जीव के मिथ्यादृष्टि होनेपर, चारित्रमोह का बन्ध भी होता है। जब जीव, सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, तब चारित्रमोह के उदय में बन्ध होता है परन्तु बन्धशक्ति हीन होती है; इसलिए बन्ध नहीं कहलाता। इस कारण सम्यक्त्व के होनेपर, चारित्रमोह को कीले हुए सर्प के समान, ऊपर कहा है। जब सम्यक्त्व छूट जाता है, तब उकीले हुए सर्प के समान चारित्रमोह को कहा, सो ऊपर के भावार्थ का अभिप्राय जानना।।९-१२१।।

कलश - १२१ पर प्रवचन

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम्।।९-१२१।।

आहाहा! अब इससे विरुद्ध कहते हैं।

खण्डान्वय सहित अर्थ—'तु पुनः' ऐसा भी है—'ये शुद्धनयतः प्रच्युत्य रागादियोगं उपयान्ति ते इह कर्मबन्धं विभ्रति' जो कोई उपशमसम्यग्दृष्टि अथवा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धचैतन्यस्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट हुए हैं... आहाहा! यह दया, दान के विकल्प के प्रेम में आ गया, वह शुद्धस्वरूप से भ्रष्ट हुआ। यहाँ तो समकिती भी भ्रष्ट हुआ, उसकी बात की है। यदि उसकी रुचि वापस राग में आ गयी... आहाहा! क्षायिक समकिती तो गिरता नहीं। श्रेणिक राजा। भगवान के भगत श्रेणिक राजा। अन्तर आत्मा के अनुभव की दृष्टि, क्षायिक। उस समकित से केवलज्ञान लेंगे। भले अभी नरक में हैं। श्रेणिक राजा पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं। ढाई हजार वर्ष गये, साढ़े इक्यासी (हजार वर्ष) बाकी है। वहाँ तो शुद्ध समकित में शुद्ध में वर्तते हैं। आहाहा! राग है, उसे जानते हैं। जानने में वर्तते हैं। आहाहा! ऐसी कठिन बातें! समझ में आया?

यदि उपशम और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि, वेदक अर्थात् क्षयोपशम, **शुद्धचैतन्यस्वरूप**

के अनुभव से भ्रष्ट हुए हैं... आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन भगवान आत्मा के अनुभव से भ्रष्ट हुए अर्थात् पुण्य के परिणाम, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम की रुचि में आ गया तो स्वरूप से भ्रष्ट हो गया। शान्तिभाई! वहाँ दिल्ली में कुछ मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! बहुत कठिन! आहाहा! यह शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसकी रुचि में पोषाण था, वह दृष्टि हट गयी और कोई शुभ-अशुभराग के प्रेम में स्वरूप से भ्रष्ट हुआ। समझ में आया? यह तो आनन्दघनजी कहते हैं, श्वेताम्बर में हुए हैं न? जिसे राग का प्रेम है, उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। 'द्वेष अरोचक भाव' ऐसा पाठ है। 'संभवदेव ते धुरे... सेवो सदा रे... लही प्रभु सेवनभेद, सेवनकारण प्रथम भूमिका अभय अद्वेष अखेद' आहाहा! जिसे वह दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभभाव आया और उसकी रुचि में घुस गया, वह समकित से भ्रष्ट हो गया। समझ में आया? आहाहा! ऐसा बताकर निरन्तर दृष्टि में रखे, ऐसा बतलाना है, हों! तात्पर्य-भावार्थ तो यह निकालना है। आहाहा! परन्तु निज स्वरूप का भान हुआ, परन्तु यदि वापस उस राग की रुचि अनादि की थी, वह रुचि वापस हो गयी। स्वरूप की दृष्टि से भ्रष्ट हुआ। समकित से भ्रष्ट हुआ, मिथ्यात्व में गया। आहाहा!

शुद्धनय अर्थात् स्वरूप, शुद्ध चैतन्यस्वरूप। देखो! शुद्धनय की व्याख्या यह। शुद्धस्वरूप। चैतन्यस्वरूप की दृष्टि **अनुभव से भ्रष्ट होता है...** आहाहा! **तथा राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणामरूप होते हैं...** आहाहा! और यह पुण्य और पाप के रागरूप परिणमन करता है। समझ में आया? जो सम्यग्दर्शन में शुद्ध चैतन्य का शुद्ध परिणमन था, उसकी दृष्टि छूट गयी और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के शुभभाव में उत्साह में आ गया और उसके प्रेम में घुस गया। वह समकित से भ्रष्ट हुआ। आहाहा! ऐसा काम है, भाई! क्या हो?

मार्ग प्रभु का ऐसा है। जिनेन्द्रदेव वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजते हैं। यहाँ तो महावीर परमात्मा आदि मोक्ष पधारे। णमो सिद्धाणं में वे तो गये। महाविदेह में भगवान तो णमो अरिहंताणं में विराजते हैं। आहाहा! उनके पास यह कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में गये थे। आठ दिन रहे थे। यहाँ आकर यह शास्त्र बनाये हैं। उनकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य के कलश है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

इस शुभराग की रुचि, प्रेम हुआ तो स्वरूप के प्रेम की दृष्टि से भ्रष्ट हुआ।

सम्यग्दर्शन में तो ज्ञान में राग आता था, परन्तु राग का जाननेवाला रहता था। मिथ्यादृष्टि राग की रुचि में घुस गया। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। राग की रुचि, वह वीतरागमार्ग नहीं। यह रागी का अज्ञानी का मार्ग है। आहाहा! कठिन काम है। है भाई, क्या हो? दुनिया को जानते हैं। पूरी दुनिया कैसे है, उस सबको जानते हैं। परन्तु यह मार्ग कोई दूसरे प्रकार का है। आहाहा!

भ्रष्ट हुए हैं तथा राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणाम रूप होते हैं... 'उपयान्ति' उसके रूप को पाता है। आहाहा! स्वरूप को प्राप्त भ्रष्ट होकर राग को, द्वेष को पाता है। आहाहा! **ऐसे हैं जो जीव वे 'कर्मबन्धं' ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड नया उपार्जित करते हैं।** अज्ञानी आठों कर्म नये बाँधता है। आहाहा! वह आठ कर्म का क्षय करता था, ऐसा कहा था। शुद्ध स्वरूप का अनुभव करते-करते। तो वह भ्रष्ट हुआ। आहाहा! और यह पुण्य के परिणाम, दया, दान, व्रत, भक्ति शुभराग की रुचि में घुस गया। यह भगवान आत्मा की रुचि से भ्रष्ट हुआ। आहा! वह आठों कर्मों को बाँधता है। समझ में आया? अब ऐसी व्याख्या! क्या होगा? वह यह नया होगा? जैनमार्ग में ऐसा नया मार्ग होगा? अरे! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! जैनधर्म क्या है, इसकी खबर नहीं, बापू! आहाहा! जैनधर्म कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या कहा? **ऐसे हैं जो जीव वे 'कर्मबन्धं' ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड नया उपार्जित करते हैं।** भावार्थ कहेंगे, लो....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १४, मंगलवार, दिनांक - ११-१०-१९७७, कलश-१२१, १२२, प्रवचन-११९

कलशटीका **भावार्थ इस प्रकार है...** सूक्ष्म बात है, प्रभु! बहुत शान्ति से (समझने की चीज़ है)। **सम्यग्दृष्टि जीव जब तक सम्यक्त्व के परिणामों से साबूत रहता है...** आहाहा! क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि जीव जब तक सम्यग्दर्शन से साबूत—सहित रहता है। इसका अर्थ? सहज स्वरूप भगवान पूर्ण ध्रुव, उसकी जो सत्ता ध्रुव सामान्य परमपारिणामिक पंचम भाव, ऐसा ज्ञायकभाव, उसके सन्मुख होकर दृष्टि हुई है—सम्यग्दर्शन (हुआ है)। पूर्ण पंचम पारिणामिकस्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, सामान्य भाव, एकरूप भाव, सहजात्मस्वरूप भाव। आहाहा! उसकी दृष्टि अर्थात् निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हुआ है। जिसमें राग का, विकल्प का भी आश्रय नहीं। अकेला पूर्णानन्द प्रभु ध्रुव सहज वस्तु अनादि-अनन्त अकृत्रिम, अविनाश, अविनाशी ऐसी चीज़ के अनुभव में—उसके ध्रुव स्वभाव को अनुसरकर-अनुभव में जो प्रतीति होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

इस सम्यग्दर्शन के परिणाम से साबूत रहता है। जब तक स्वभाव का आश्रय लेता है, वहाँ तक तो सम्यग्दर्शनसहित है। आहाहा! पंचम स्वभावभाव परमपारिणामिक पंथ, परमपारिणामिकभाव, उसकी परिणति जो परम मोक्ष का पंथ, वह सम्यग्दर्शन। उस सम्यग्दर्शन की स्वभाव के आश्रय से जब तक साबिती—मौजूदगी—अस्ति रहती है, **तब तक राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणाम के नहीं होने से...** वहाँ तो मिथ्यात्व सम्बन्धी मोह और राग-द्वेष वे तो होते नहीं। आहा! समझ में आया? जब तक राग-द्वेष, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत परिणाम वे मेरे हैं, ऐसा भाव वहाँ नहीं है। समझ में आया? व्रत, तप, भक्ति आदि का शुभभाव और हिंसा आदि का अशुभभाव, उसे भी सम्यग्दृष्टि अपने नहीं मानता। समझ में आया? अपनी चीज़ तो परमपारिणामिक सहज स्वभावभाव, उसका ज्ञान होकर प्रतीति—विश्वास—भगवान का भरोसा उसे हो गया। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : तब तक साबूत रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रहता है, कहा न! साबूत अर्थात् रहता है। तब तक समकितसहित रहता है। आहाहा!

भगवान परमात्मा आत्मस्वरूप भगवान अन्दर है। उसमें एकाग्र होकर निर्विकल्प आनन्द के स्वाद के साथ जो सम्यग्दर्शन हुआ... आहाहा! उस सम्यग्दर्शन की जहाँ तक मौजूदगी रहती है, तब तक राग-द्वेष, मोह-मिथ्यात्वसम्बन्धी राग-द्वेष और मोह नहीं होते। समझ में आया? बात तो बहुत सत्य और सरल है परन्तु अनन्त काल में इसने परिचय, आश्रय लिया नहीं। यह चैतन्यदल है, वस्तु है और वस्तु है, वह आदि-अन्त रहित है और वस्तु है, वह तो परिणमन की पर्याय से रहित है। आहाहा! वह परिणमन की जो दशा है, वह त्रिकाल का आश्रय करती है, तब उसे आनन्द के, शान्ति के अनुभव के साथ भरोसा आया कि भगवान तो पूर्ण शान्ति और आनन्दस्वरूप है। आहाहा! भगवान आनन्द (स्वरूप है), ऐसी अन्तर में भगवानस्वरूपी परमात्मा की प्रतीति, अनुभव होकर (हुई है)। अकेली प्रतीति नहीं। यह चीज़ आनन्दस्वरूप है, ऐसा भान होकर प्रतीति हुई है। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन। यह जब तक है, तब तक मिथ्यात्व सम्बन्धी अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अशुद्ध परिणाम नहीं होते। कहो, समझ में आया? है?

नहीं होने से ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध नहीं होता। और कर्मबन्धन भी नहीं होता। अशुद्ध परिणाम भी नहीं होते तो कर्मबन्धन भी नहीं होता। यह मिथ्यात्वसम्बन्धी और अनन्तानुबन्धीसम्बन्धी परिणाम नहीं तो उस सम्बन्धी बन्धन भी है नहीं। उसे यहाँ मुख्य बन्धन कहा है। आहाहा! **(किन्तु) जो सम्यग्दृष्टि जीव थे...** आहाहा! **पीछे सम्यक्त्व के परिणाम से भ्रष्ट हुए,...** आहाहा! पाठ में भी ऐसा है न? '**रागादियोगं उपयान्ति**' पाठ ऐसा है। '**रागादियोगं उपयान्ति**' आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट होता है तो विकारी परिणाम को प्राप्त होता है। '**रागादियोगं उपयान्ति**' राग, विकार—शुभ-अशुभभाव, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे शुभ, उस राग को प्राप्त होता है। वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! '**रागादियोगं उपयान्ति**' विकार के सम्बन्ध को प्राप्त होता है। स्वभाव के सम्बन्ध को तोड़कर विकारी भाव चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, उसके राग के सम्बन्ध को प्राप्त होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ने राग का सम्बन्ध

तोड़ दिया है और स्वभाव का सम्बन्ध जोड़ दिया है। मिथ्यादृष्टि ने स्वभाव का सम्बन्ध छोड़ दिया है और राग का-विकार का सम्बन्ध जोमड़ दिया है। आहाहा! ऐसी बातें।

सम्यग्दृष्टि जीव थे, पीछे सम्यक्त्व के परिणाम से भ्रष्ट हुए, उनको राग, द्वेष, (मोहरूप) अशुद्ध परिणाम के होने से... यह मलिन परिणाम के सम्बन्ध में आ गया। निर्मलानन्द परमात्मा... परमात्मा अर्थात् अपना आत्मा, हों! निर्मलानन्द परमात्मा अपना शुद्ध चैतन्यघन द्रव्य, उसका सम्बन्ध छोड़ दिया। उसका संग, परिचय, असंग चीज़ का संग छोड़ दिया और राग का, पुण्य का, पाप का संग जोड़ दिया। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यादृष्टि हो गयी। वे मिथ्यात्व के परिणाम अशुद्धरूप हैं। देखा! नाम दिया था, राग-द्वेष-मोह अशुद्ध परिणाम से बन्ध होता है। **क्योंकि मिथ्यात्व के परिणाम अशुद्धरूप हैं।** ऐसा लिया है, देखो! समझ में आया? यह वापस साधारण अस्थिरता का राग नहीं। यहाँ तो मिथ्यात्व के परिणाम आये। आहाहा!

जो आत्मस्वभाव चैतन्य आनन्दघन प्रभु, उसके सम्बन्ध में था, तब तक सम्यग्दृष्टि था। परन्तु वह सम्बन्ध छोड़कर राग का विकल्प हो, दया, दान, व्रत, आदि, वह राग का सम्बन्ध जोड़ दिया, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! वे मिथ्यात्व के परिणाम हैं, ऐसा कहते हैं। पहले तीन लिये थे परन्तु वे तीन मिथ्यात्व परिणाम हैं। आहाहा! कठिन काम! सुनने को मिलता नहीं है, ऐसी बातें हैं यह। रात्रि में देखो न, कितने प्रश्न होते थे। सम्यग्दर्शन हो? अभी हो सकता है या नहीं? अरर्र! और यह व्रत और तप वह चारित्र। सम्यग्दर्शन बिना। प्रभु... प्रभु! क्या करते हैं? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हुआ अर्थात् यह पंच महाव्रत के परिणाम जो राग है, उसके साथ सम्बन्ध जोड़ दिया। सम्बन्ध तोड़ा था, वह जोड़ दिया। आहाहा! यहाँ सम्बन्ध जोड़ा था, उसे तोड़ दिया। आहाहा! दिशा पलट गयी। दशा पलटने से दिशा पलट गयी। सम्यग्दर्शन की दशा वह त्रिकाली स्वभाव की दिशा पर दशा है। मिथ्यादृष्टि की दशा पुण्य-पाप के विकार की ओर उसकी दशा की दिशा है। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : किस कारण से?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करता है ? उल्टी दृष्टि करता है इसलिए। क्या कारण, क्या ? उल्टी दृष्टि करता है इसलिए।

मुमुक्षु : कर्म के उदय के कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कर्म-फर्म कुछ नहीं। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' कर्म जड़ हैं। उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

मुमुक्षु : गोम्मटसार में पृष्ठ-पृष्ठ पर लिखा है, कर्म से ऐसा होता है, कर्म से ऐसा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार से कहे। परमार्थ से कर्म का सम्बन्ध आत्मा ने किया। भगवान का सम्बन्ध तोड़कर कर्म का सम्बन्ध स्वतन्त्र किया तो राग के सम्बन्ध में मिथ्यात्वपरिणाम हुए। आहाहा! समझ में आया ? यहाँ ऐसा कुछ नहीं कहा। यहाँ तो ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि जीव था, फिर समकित परिणाम से भ्रष्ट हुआ। ऐसा कहा। दर्शनमोह के कारण भ्रष्ट हुआ, कर्म से भ्रष्ट हुआ—ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव था, उसे छोड़ दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो भ्रष्ट हुआ। आहाहा!

परमानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु, पंचम पारिणामिकभाव के पंथ में पड़ा... आहाहा! पंचम गति के पंथ को ग्रहण किया। उस पंचम स्वभाव की प्रतीति छोड़कर, उदयभाव जो विकारी दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव, उसमें दृष्टि जोड़ दी। राग के योग में '**उपयान्ति**'। विकार के रूप में—स्वरूप में जुड़ गया। आहाहा! मिथ्यात्वभाव कहा न ? बाहर की दया, व्रत इत्यादि की क्रिया ऐसी की ऐसी हो, परन्तु अन्दर में राग के साथ जुड़ गया तो मिथ्यादृष्टि हो गया। आहाहा! ऐसी बात, बापू! बहुत कठिन काम। अरे! दुनिया को मूल चीज़ के ऊपर दृष्टि नहीं है।

पूरी चीज़ महा चिदानन्द प्रभु, एक समय की पर्याय तो एक समय की है। वह पलटती दशा है। नहीं पलटता तत्त्व नित्यानन्द प्रभु भगवत्स्वरूप का जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन में भेंट—आश्रय हुआ, तब तो मिथ्यात्व के परिणाम का नाश हुआ। समझ में आया ? आहाहा! और जब स्वभाव का सम्बन्ध छोड़ दिया और चाहे तो व्रत का, तप

का, भक्ति का शुभराग हो, उस राग में सम्बन्ध जोड़ दिया, वह मिथ्यादृष्टि है। कहो, सेठ! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! प्रभु का मार्ग वह वीरा का-वीर का मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यक्त्व होने के पश्चात् वह छोड़ कैसे देता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत दृष्टि हो गयी। राग की रुचि हो गयी। यहाँ जहाँ रुचि थी, वह रुचि पलट गयी। राग की रुचि हो गयी।

मुमुक्षु : कोई कारण.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण वह मिथ्यात्व, अपने परिणाम। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : कर्म का उदय बलवान आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय-फुदय बलवान-फलवान घर में रहा।

मुमुक्षु : उपादान की योग्यता विपरीत हो गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात यह। 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' यहाँ यहाँ दूसरी बात नहीं। अपना स्वरूप आनन्द का नाथ प्रभु, आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द की... क्या कही बर्फ की? शिला। अतीन्द्रिय आनन्द की ध्रुव शिला प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसकी रुचि में और आश्रय में जब तक था, वहाँ तक तो सम्यग्दृष्टि था। आहाहा! पश्चात् रुचि ने गुलाँट खा गयी। जो द्रव्यस्वभाव की रुचि थी, वह रागस्वभाव की रुचि हो गयी। गुलांट खा गया। मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! लोगों को बेचारों को सुनने को मिला नहीं। अरे! क्या करे? बाहर का यह किया और यह किया और... अपवास किये और व्रत लिये और इतने द्रव्य छोड़े और इतने द्रव्य की छूट रखी। अरे! भगवान! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! एक राग के कण का भी जब तक कर्ता हो, वहाँ तक तू पूरे लोक का कर्ता है। समझ में आया? और जब आत्मा कर्तृत्व छोड़कर अपना आनन्द का कर्ता हुआ, तब पूरे लोक का कर्तृत्व छूट गया। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत थोड़े लोगों को सुनने को मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए कहते हैं, भाग्य हो उसे तो ऐसा कान में पड़े। ऐसी सत्य बात तो पूर्व के भाग्यशाली हों, उन्हें तो कान में पड़ती है। आहाहा! रुचि और दृष्टि करना, वह तो उसके पुरुषार्थ का कार्य है।

यहाँ कहते हैं कि **मिथ्यात्व के परिणाम अशुद्धरूप हैं।** भाषा इतनी ली है। अकेले राग-द्वेष हैं और अकेली अस्थिरता के (परिणाम) हैं, ऐसा नहीं। यहाँ तो राग की रुचि हुई और व्रत, तप और भक्ति के भाव से मुझे धर्म होगा, ऐसे मिथ्यात्व परिणाम हुए, वह अशुद्धता हो गयी। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु! क्या करे? कहाँ कहे? आहाहा! अभी तो पूरा दल बदल गया है। पूरा चक्र बदल गया है। रात्रि में देखो न प्रश्न कितने होते थे? न बैठे बेचारों को। आहाहा!

मुमुक्षु : सुनने का समय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समय नहीं। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या करे बेचारे? वह भी भगवत्स्वरूप है अन्दर। आहाहा! वह परमात्मा है, भगवान है। परन्तु खबर बिना... आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य में भगवान है, पर्याय में कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में भगवान है परन्तु उसे भगवान की खबर नहीं न! पर्याय में भगवान है, इसकी खबर नहीं। पर्याय में राग (-द्वेष) है, ऐसी खबर है।

मुमुक्षु : वहाँ जाकर प्रशंसा करे कि मैंने ऐसा प्रश्न किया, मैंने ऐसा प्रश्न किया...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ जाकर ऐसा कहा था। व्रत करते हैं, तप करते हैं, वह चारित्र है। चारित्र बिना मुक्ति नहीं होती। परन्तु कौन सा चारित्र? प्रभु! यह नग्नपना हो गया और पंच महाव्रत के परिणाम तो अभी है ही नहीं। क्योंकि उसके लिये चौका बनाकर आहार लेते हैं। (उसमें तो) पंच महाव्रत का व्यवहार भी नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन तो नहीं, परन्तु व्रत के परिणाम जो चाहिए, वे भी नहीं। व्यवहार भी है नहीं। अब उसे चारित्र मानना। उसे सम्यग्दर्शन हो नहीं और यह चारित्र है, यह चारित्र है। चारित्र वह (मुक्ति का कारण है)। तीर्थंकरों ने चारित्र ग्रहण किया था। बापू! वह चारित्र कौन, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **क्योंकि मिथ्यात्व के परिणाम अशुद्धरूप हैं।** आहाहा! चाहे तो छोटे में छोटा राग का कण हो, परन्तु उसकी रुचि और उसके ऊपर दृष्टि पड़ी, वह मिथ्यादृष्टि है। वह जैन रहा नहीं। आहाहा! मीठालालजी! **कैसे हैं वे जीव ?** वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि राग के सम्बन्ध में पुण्य के परिणाम के प्रेम में आया, मिथ्यादृष्टि हुआ, वह जीव कैसा है ? **'विमुक्तबोधाः' छूटा है शुद्धस्वरूप का अनुभव... 'बोधाः' 'बोधाः'** अर्थात् ज्ञानस्वरूप अन्दर में छूट गया। दृष्टि में से ज्ञाता चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप ऐसा शुद्ध स्वरूप। **'बोधाः'** का अर्थ यह। ज्ञानस्वरूप त्रिकाल। शुद्धस्वरूप पवित्र भगवान आत्मा, उससे छूटा। रहित-भ्रष्ट हो गया। आहाहा!

राग के सूक्ष्म कण में भी प्रेम में और रुचि में पड़ा, वह **'विमुक्तबोधाः'**। वह स्वरूप के बोध से मुक्त हो गया—रहित हो गया। आहाहा! समझ में आया ? अरे! ऐसी बात सुनने को मिले नहीं बेचारे को। अरेरे! बाहर से लगायी है। यह व्रत किये और तप किये और अपवास किये, भक्ति की। ऐसे सेठिया हो तो कुछ दान किया। उसे दानवीर की उपमा दे देवे। पैसे-बैसे दिये हों तो... ऐ... सेठ! इन्हें दानवीर की उपमा है। पैसे दे इसलिए दानवीर नाम दे। परन्तु बापू! दान किसे कहना ? आहाहा!

आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्यघन पुण्य और पाप के विकल्प से रहित, उसमें सम्प्रदान नाम का एक गुण भगवान में पड़ा है। सम्प्रदान नाम की एक शक्ति-गुण पड़ा है। तो द्रव्य के आश्रय से अपनी पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की जो शुद्धपर्याय हुई, वह स्वयं ने ली और स्वयं ने दी, यह सम्प्रदान है। सम्प्रदान। आते हैं न छह कारक ? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण।

भगवान सम्प्रदान का अर्थ ऐसा करते हैं। प्रभु! तुझमें यह सम्प्रदान नाम का गुण है—शक्ति है। उस सम्प्रदान का कार्य क्या ? कि द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि होने से जो पवित्रता प्रगट होती है। वह पवित्रता लेनेवाला पात्र भी तू और पवित्रता देनेवाला दानी भी तू। उसे दान कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें। यह तुम्हारे पैसा दे, आहार दे... रात्रि में बात नहीं करते थे ? कि भगवान को और मुनियों को आहार देते हैं न। परन्तु सच्चे मुनियों को आहार दे तो वह भाव शुभ है। वह धर्म नहीं। समझ में आया ? क्योंकि

परद्रव्य पर लक्ष्य होकर जो वृत्ति उठती है, वह शुभ है, धर्म नहीं। और दान देने का जो भाव आया, उसे धर्म माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : इस प्रकार से तत्त्व समझाया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वयं समझा नहीं न। समझाया नहीं परन्तु यह समझा नहीं। सेठ बचाव करते हैं कि कोई समझानेवाले मिले नहीं, क्या करें? आहाहा! अपने को आप में समझने की योग्यता हो तो समझानेवाले मिले बिना रहे नहीं। तीन लोक के नाथ विराजते हैं। दिव्यध्वनि चौबीस घण्टे में चार बार होती है। महाविदेह में। सवेरे, दोपहर, शाम और रात्रि में दो-दो घड़ी, चार-चार घड़ी (चलती है)। आहाहा! वहाँ तेरा जन्म क्यों नहीं हुआ? आहाहा! समझमें आया?

यहाँ कहते हैं, '**विमुक्तबोधाः**' राग का प्रेम और रुचि जहाँ हुई, वहाँ मिथ्यादृष्टि हुआ तो '**विमुक्तबोधाः**'। स्वरूप की दृष्टि छूट गयी। शुद्ध स्वरूप में था, ऐसी दृष्टि छूट गयी, नाश हो गयी। आहाहा! बाहर की क्रिया तो ऐसी की ऐसी करता हो। अन्तर में राग की रुचि में '**विमुक्तबोधाः**' सम्यग्दर्शन छूट गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें। '**विमुक्त**' **छूटा है शुद्धस्वरूप का अनुभव जिनका,...** शुद्धस्वरूप का अनुभव था, जो आनन्द का स्वाद था, उस राग की रुचि में आनन्द का स्वाद छूट गया। जहर का स्वाद आया—राग का स्वाद आया। ऐसा मार्ग। **छूटा है शुद्धस्वरूप का अनुभव जिनका, ऐसे हैं।**

कैसा है कर्मबन्ध? अब उसे कर्मबन्धन होता है किस प्रकार? '**पूर्वबद्धद्रव्यास्त्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालं**' **सम्यक्त्व के बिना (पूर्व में) उत्पन्न हुए मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणाम के द्वारा बाँधे थे जो...** पूर्व में समकित बिना मिथ्यात्व के कारण और राग-द्वेष के कारण से जो कर्मबन्ध बाँधे थे, वे हैं। **जो पुद्गलपिण्डरूप मिथ्यात्वकर्म...** जड़, जड़ **तथा चारित्रमोहकर्म उनके द्वारा किया है, नाना प्रकार राग, द्वेष, मोह...** यह निमित्त कर्म है और पर्याय में विकल्प की जाल अब उत्पन्न हुई। शुभ-अशुभराग की जाल उत्पन्न हुई। मिथ्यादृष्टि हुआ, चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से भ्रष्ट हुआ तो पूर्व के बँधे हुए कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में विकल्प की जाल उत्पन्न हुई। आहाहा! चाहै तो शुभ

हो या अशुभ, वह सब विकल्प की जाल है। ऐसी बातें। आहाहा! विकल्प की जाल। है? **राग, द्वेष, मोहपरिणाम...** उसकी जाल अर्थात् समूह। पुण्य और पाप और मिथ्यात्वभाव की जाल उत्पन्न हुई। मकड़ी जैसे लार निकालकर फँसती है, उसी प्रकार अपने चैतन्य शुद्धस्वरूप को भूलकर पुण्य-पाप के और मिथ्यात्व के राग के जाल में फँस गया। आहाहा!

भावार्थ। **भावार्थ इस प्रकार है कि...** शब्दार्थ कहकर वापस उसका टोटल अर्थ करते हैं। आहाहा! **जितने काल जीव सम्यक्त्व के भावरूप परिणमा था...** आहाहा! जितना कालतक राग की रुचि छोड़कर, अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान की अनुभव की दृष्टि थी, आहाहा! **उतने काल चारित्रमोहकर्म कीले हुए सर्प के समान...** था। आहाहा! जैसे सर्प को कीले से बाँधते हैं। हमको तो एक अनुभव हुआ है। दुकान के पीछे बखारी थी। उसमें क्या कहलाता है? पेटी थी। पेटी के नीचे सर्प था। पालेज में। हमारी दुकान थी न वहाँ। बड़ी दुकान थी। कुंवरजीभाई की दुकान के पीछे। हमारी दुकान दूसरी थी। सर्प नीचे घुस गया, अब निकालना किस प्रकार? संडासी घुसे नहीं और ऐसे का ऐसे निकले नहीं। फिर किसी ने कहा कि ठण्डा पानी डालो। ठण्डा पानी डालोगे, वहाँ स्थिर हो जायेगा। फिर पकड़ में आयेगा। ठण्डा पानी डाला। वहाँ तक अब हिल नहीं सकेगा। इसी प्रकार जब तक आत्मा का सम्यग्दर्शन था, वहाँ तक कर्म को जैसे सर्प को ठण्डे पानी से दबाया हो, वैसे दब गया है। आहाहा! समझ में आया? यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष की बात है। आहाहा! बड़ा सर्प था। अब एकदम पकड़ में आये नहीं। ऊपर पेटी है, उसे ऐसे धकेलने जाना हो तो डर लगे। पीछे इस प्रकार थी। कोई एक व्यक्ति मिल गया, वह कहे—ठण्डा पानी छिड़को। बहुत ठण्डा पानी वहाँ छिड़को। हिल नहीं सकेगा। फिर तुम पेटी ऐसे हटाकर पकड़ो। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार जब तक सम्यग्दर्शन था, तब तक चारित्रमोहकर्म भी, जैसे सर्प बँधा हुआ पड़ा है, वैसे कर्म पड़े थे। बस! आहा! है? **कीलित...** बँधे हुए, मूर्छित हुए **सर्प के समान अपना कार्य करने के लिये समर्थ नहीं था।** आहाहा! यहाँ जरा ऐसी बात करते हैं, सम्यग्दर्शन का माहात्म्य वर्णन करते हैं। सम्यग्दर्शन वह चीज़ तो अलौकिक

चीज! जहाँ अनुभव हुआ, आत्मरत्न का जहाँ अनुभव हुआ, वह सम्यग्दर्शन अनन्त काल में हुआ नहीं। मुनिव्रत अनन्त बार लिया। श्रावक के बारह व्रत अनन्त बार लिये—पालन किये परन्तु वह सब मिथ्यादृष्टिरूप से। आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ, उतने काल तक तो चारित्रमोहकर्म बँधे हुए सर्प की भाँति पड़े हैं। चारित्रमोहकर्म पड़ा है, बस। समकिती को बँध नहीं होता। समझ में आया? उदय होता है परन्तु यहाँ अस्थिरता का जुड़ान गिनने में नहीं आया है, राग की एकताबुद्धि की दृष्टि छूट गयी है, अस्थिरता में राग आया है, उसे यहाँ गिनने में नहीं आया है। आहाहा! समझ में आया?

चारित्रमोहकर्म कीले हुए (बँधे हुए) सर्प के समान अपना कार्य करने के लिये समर्थ नहीं था। चारित्रमोह कार्य करने में समर्थ नहीं था। जीव को मिथ्यात्व के राग-द्वेष उत्पन्न करावे, ऐसी चारित्रमोह में ताकत नहीं। आहाहा! **जब वही जीव सम्यक्त्व के भाव से भ्रष्ट हुआ...** आहाहा! यहाँ तो मुख्य यह बात लेनी है। भगवान ज्ञायक चैतन्यस्वरूप प्रभु, जो दृष्टि के विषय में ध्येयरूप से लिया था, वह प्रतीति छूट गयी। आहाहा! समझ में आया? और मिथ्यात्वभावरूप परिणमा था। मिथ्यात्वरूपी राग चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण, पंच परमेष्ठी का स्मरण सब राग है। कठिन बातें! उस राग की रुचि हुई कि मुझे उससे लाभ होगा।

तो मिथ्यात्वभावरूप परिणमा, तब उकीले हुए सर्प के समान... सर्प जैसे जगा न, अन्दर उस प्रमाण में चारित्रमोह का बन्ध होता है। आहाहा! फूँफकार मारता है। चारित्रमोह का तब जोर हो, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व होवे तो। आहाहा! **तब उकीले हुए सर्प के समान अपना कार्य करने के लिये समर्थ हुआ। चारित्रमोहकर्म का कार्य ऐसा जो जीव के अशुद्ध परिणमन का निमित्त होना।** देखो! अशुद्ध परिणाम का निमित्त होना। अशुद्ध परिणाम कर्म कराता नहीं। आहाहा! वह कर्म तो निमित्तमात्र है। जीव अशुद्ध परिणाम जीव करता है तो निमित्तमात्र है। धर्मी—सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व के अशुद्ध परिणाम है नहीं, ऐसा बताना है। समझ में आया? ऐसी बातें अब। **ऐसा जो जीव के अशुद्ध परिणमन का निमित्त होना।** ऐसा कहा। कर्म के कारण से अशुद्ध (परिणमन) हुआ, ऐसा नहीं। कर्म तो निमित्तमात्र पर है, जड़ है, धूल है। अपने परिणाम जो मलिन किये, राग की रुचि की, तब कर्म निमित्त कहने में आया है। आहाहा! यह

बात। यह तो कर्म के जोर के कारण हमको यह है। अरे! मूढ़, सुन न! कर्म बेचारे कौन? वह तो जड़ है, धूल है। जैसे यह स्थूल धूल है, वैसी सूक्ष्म धूल है। वह तो अजीव है। खबर भी नहीं कि हम कर्म हैं या नहीं। उन्हें तो खबर भी नहीं कि हम कर्म हैं या नहीं, जड़ हैं या नहीं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, जब सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हुआ, तब अशुद्ध परिणाम राग की रुचि के—मिथ्यात्व के हुए, तब उन अशुद्ध परिणाम में कर्म निमित्त हुआ। आहाहा! समझ में आया? याद कितना रखना? एक घण्टे में सब प्रकार दूसरे प्रकार आवें, उसमें कितना याद रखना? घर पूछे कि तुमने क्या सुना? कौन जाने कुछ ऐसा और वैसा कहते थे। भाई!

मुमुक्षु : विदेहक्षेत्र में तो चार घण्टे वाणी खिरती होगी। यहाँ ढाई घण्टे खिरती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (वहाँ) चार बार खिरती थी।

चारित्रमोहकर्म का कार्य ऐसा जो जीव के अशुद्ध परिणमन का निमित्त होना। चारित्रमोहकर्म का कार्य ऐसा जो जीव के अशुद्ध परिणमन का निमित्त होना। भावार्थ इस प्रकार है—जीव के मिथ्यादृष्टि होने पर... देखो! आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप के अनुभव से भ्रष्ट हुआ, स्वयं से, हों! कर्म से नहीं। 'कर्म बिचारे कौन? भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात, लोह की संगति पाई।' लोहे में अग्नि प्रविष्ट करती है तो घन पड़ते हैं। अग्नि न प्रवेश करे तो ऊपर घन नहीं पड़ते। उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने को भूलकर पुण्य और पाप के प्रेम में फँस जाये तो अग्नि-पाप के घन पड़ते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक-एक बात में अन्तर है। कर्म से होता है, कर्म से होता है। हमारे (संवत्) १९७१ के वर्ष से बात चलती है। समझ में आया? ६२ वर्ष हुए। ६० और २। स्थानकवासी में वे सब लोग कहते थे, श्वेताम्बर में भी वह, दिगम्बर में आये तो यह बात करते हैं। कर्म से यह होता है, कर्म से होता है, कर्म से होता है। १९७१ के वर्ष। ७० और १। तब से कहते हैं कि कर्म से आत्मा में बिल्कुल नहीं होता। स्वयं अपने को भूलकर विकार करता है तो कर्म निमित्त कहे जाते हैं। ऐसा वीतराग का मार्ग है। तुम ऐसा मानो कि कर्म के कारण हमको विकार होता है, वह मिथ्यादृष्टि स्थूल अज्ञानदशा है। समझ में आया?

कर्म परमाणु तो जड़ अजीव धूल है। उसमें मिथ्यात्व होने की ताकत है? अज्ञानी अपने स्वरूप को भूलकर (मिथ्यात्वरूप परिणमता है)। उस भूल में भी पूर्व के कर्म को निमित्त कहा जाता है। परन्तु भूलता है उसे। आहाहा! समझ में आया? और भूल जाने के बाद अशुद्ध परिणाम मिथ्यात्व के हुए तो उसमें चारित्रमोह का कर्म निमित्त कहने में आता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : डिग्री टू डिग्री।

पूज्य गुरुदेवश्री : डिग्री टू डिग्री है नहीं। एक व्यक्ति यह कहता है। कर्म का उदय आवे इसलिए डिग्री टू डिग्री विकार करना पड़ता है। सेठ ने ठीक याद किया। वह कहता है, हों! सेठ! कहते हैं। रतनचन्दजी कहते थे, यहाँ हमारे मूलशंकर कहते थे। कर्म तो निमित्त होकर आता है, इतना विकार करना ही पड़े। बड़ा लेख था। वर्णीजी को दिया था।

मुमुक्षु : स्वामीजी का पुस्तक पढ़ूँगा तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब विपरीतता है, बहुत विपरीतता है। तीनों सम्प्रदाय विपरीत हैं। समझ में आया? स्थानकवासी में संवत् १९७१ में कहा था। तब गड़बड हो गयी। पश्चात् श्वेताम्बर के पास गये तो वह गड़बड़ हो गयी। कर्म से नहीं होता? यह दिगम्बर में आये तो दिगम्बर में गड़बड़ हो गयी। रतनलालजी ऐसा कहते हैं। कर्म जितने प्रमाण में उदय आवे, उस प्रमाण विकार होता है। यहाँ परमात्मा इनकार करते हैं, ऐसा त्रिकाल नहीं है।

मुमुक्षु : यहाँ जितना विकार करे, उतने कर्म बँधते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कर्म बँधते हैं उसके कारण से। यह भी उसके कारण से। इसके कारण से नहीं। विकार किया और कर्मबन्धन हुआ, वह विकार के कारण से नहीं। कर्म भी अपनी उपादानपर्याय के कारण कर्म बँधते हैं। प्रत्येक बात में अन्तर है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो यह कहना है कि **जीव के मिथ्यादृष्टि होने पर...** आहाहा! चाहे तो साधु की क्रिया पंच महाव्रत (पालता हो), निर्दोष आहार-पानी लेता हो, उसके लिये बनाया

हुआ न लेता हो और दया पालता हो, ऐसी क्रिया करे, परन्तु अन्दर में आत्मज्ञान की दृष्टि से भ्रष्ट होकर राग की रुचि है तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें अब। जिन्दगी में सुनी न हो, इसलिए लोगों को लगे, बापू! मार्ग तो प्रभु का यह है। अनादि से प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। कोई द्रव्य किसी द्रव्य को परतन्त्र कर सके, ऐसी किसी की ताकत नहीं है। स्वयं से परतन्त्र होता है, (तब) दूसरी चीज़ को निमित्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—जीव के मिथ्यादृष्टि होने पर चारित्रमोह का बन्ध भी होता है। देखो! पहले बन्ध नहीं, ऐसा कहते थे। समकित में चारित्रमोह का राग था, परन्तु उसे बन्ध गिनने में नहीं आया। यहाँ तो जहाँ मिथ्यात्व हुआ तो चारित्रमोह का राग भी हुआ, द्वेष भी हुआ। आहा! बन्ध भी होता है। **परन्तु बन्धशक्ति हीन होती है...** समझ में आया? समकित को प्राप्त करता है, तब चारित्रमोह के उदय में थोड़ा बन्ध होता है। **परन्तु बन्धशक्ति हीन होती है...** बहुत थोड़ा बन्ध पड़ता है। सम्यग्दर्शन का अन्दर में जोर है। मैं पूर्णानन्द का नाथ ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन में जोर है। थोड़ा अस्थिरता का राग आता है, परन्तु उसका बन्ध भी अल्प स्थिति, रस पड़ता है। उसे यहाँ गिनने में नहीं आया। आहा! **बन्धशक्ति हीन होती है, इसलिए बन्ध नहीं कहलाता।** देखा? आहाहा!

मिथ्यादृष्टि होने पर चारित्रमोह का बन्ध भी होता है। जब जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, तब चारित्रमोह के उदय में (थोड़ा) बन्ध होता है परन्तु बन्धशक्ति हीन होती है, इसलिए बन्ध नहीं कहलाता। आहाहा! और वह बन्ध आता है, वह भी नाश होने के लिये आता है। जहाँ अन्दर आत्मा का दर्शन, भान हुआ, वह समकित अर्थात् क्या? आहा! मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है। मोक्षस्वरूप ही अन्दर है। पर्याय में मोक्ष होता है, वह मोक्षस्वरूप है तो मोक्ष होता है। आहाहा! ऐसा मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा, उसका जब तक सम्यग्दर्शन और अनुभव रहा, तब तक रागादि अस्थिरता का थोड़ा बन्ध होता है, परन्तु उसे गिनने में नहीं आया।

इस कारण सम्यक्त्व के होने पर चारित्रमोह को कीले हुए सर्प के समान...

बँधा हुआ सर्प **समान ऊपर कहा है।** आहाहा! **जब सम्यक्त्व छूट जाता है, तब उकीले हुए सर्प के समान...** जागृत हुआ सर्प। आहाहा! ऐसे राग का प्रेम, रुचि हुई, वहाँ चारित्रमोह जागृत हुआ। तब उसे राग-द्वेष स्वयं से होगा और बन्ध भी होगा। आहाहा! अटपटी बातें कितनी इसमें। बात-बात में अन्तर, बहुत अन्तर, भाई! जैनधर्म में तो ऐसा ही कहते हैं, बस, कर्म से विकार, कर्म से विकार। कर्म हो तो कर्म मार डाले। उस व्याख्यान में बोले थे न? कर्म से राजा, कर्म से रंक, कर्म ने डाला आड़ा अंक। पहले स्तुति बोले। स्थानकवासी में पहले दस मिनिट स्तुति बोले। उसमें यह बोले। कर्म से राजा कर्म से रंक, कर्म ने डाला आडा अंक। कर्म से राजा और कर्म से रंक, यह तो दूसरी बात है। अघातिकर्म कारण है। परन्तु कर्म ने डाला आड़ा अंक। कर्म ने आत्मा को विरुद्ध कर डाला। यह बात खोटी है। आहाहा! कर्म जड़ परद्रव्य, भगवान चैतन्य अरूपी स्वद्रव्य। इस कर्म को आत्मा स्पर्श नहीं करता और कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं करते। कर्म क्या करे? बहुत अन्तर, बहुत अन्तर, बापू! बहुत अन्तर है। आहाहा! पूरा चक्र बदल गया है। धर्म का चक्र तो बदल गया है, परन्तु कर्म से विकार होता है, ऐसा पूरा चक्र बदल गया है। आहाहा! समझ में आया?

जब सम्यक्त्व छूट जाता है, तब उकीले हुए सर्प के समान चारित्रमोह को कहा, सो ऊपर के भावार्थ का अभिप्राय जानना। तब बन्ध होता है, ऐसा। सम्यग्दर्शन छूटने के बाद चारित्रमोह का बन्ध होता है। अशुद्धता उत्पन्न होती है और अशुद्धता का स्वामी होता है, उसमें कर्म निमित्त है। ज्ञानी को अशुद्धता है नहीं, थोड़ी अस्थिरता स्वयं की निर्बलता के कारण से है। उसे अल्प स्थिति, बन्ध है, उसे गिनने में नहीं आया। आहाहा! ऐसी बात, लो! ऐसा उपदेश वीतराग का। यह परमेश्वर ऐसा कहते हैं। भाई, ऐसा तो हमने कभी सुना नहीं। ऐसा जैनधर्म होगा? जैनधर्म में तो दया पालना, व्रत करना, रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना, प्रत्येक वनस्पति की मर्यादा करना, छह परवी पालना। दूज, पंचम, अष्टमी, ग्यारस, चौदस। स्थानकवासी में पूनम है। चौदस नहीं। यह छह परवी ब्रह्मचर्य पालना, छह परवी कन्दमूल न खाना। अरे! सुन न, बापू! यह सब बातें राग की क्रिया की है। समझ में आया?

भगवान आत्मा में तो यह राग भी नहीं है। इस चीज़ की जब दृष्टि हुई तो कहते

हैं कि चारित्रमोह का बन्ध उसे नहीं होता। अल्प बन्ध पड़ता है, उसे गिनने में नहीं आता। और जब मिथ्यादृष्टि हुआ, अपनी भूल से; कर्म से नहीं। 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' अपनी भूल के कारण से। ज्ञान का चन्द्र, चन्द्र, चन्द्र आत्मचन्द्र, जिनचन्द्र प्रभु आत्मा है। आहाहा! जिन अर्थात् 'जिन सो ही है आत्मा' वह जिनचन्द्र प्रभु। शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... शान्तस्वभाव का पिण्ड आत्मा, अकषायस्वभावी भगवान आत्मा का जहाँ भान हुआ, फिर बन्ध नहीं होता, ऐसा कहते हैं। और भान से छूट गया, फिर अज्ञान से बन्धन होता है। आहाहा! यह तो अन्तर की क्रीड़ा की बात है। आहाहा! अब इस आस्रव का सार कहते हैं।

कलश-१२२

(अनुष्टुप्)

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बन्ध एव हि।।१०-१२२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अत्र इदं एव तात्पर्यं' [अत्र] इस समस्त अधिकार में [इदं एव तात्पर्यं] निश्चय से इतना ही कार्य है। वह कार्य कैसा? 'शुद्धनयः हेयः न हि' [शुद्धनयः] आत्मा के शुद्धस्वरूप का अनुभव, [हेयः न हि] सूक्ष्मकालमात्र भी विसारने (भूलने) योग्य नहीं है। किस कारण? 'हि तत् अत्यागात् बन्धः नास्ति' [हि] जिस कारण [तत्] शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसके [अत्यागात्] नहीं छूटने से, [बन्धः नास्ति] ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध नहीं होता। और किस कारण? 'तत्त्यागात् बन्ध एव' [तत्] शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसके [त्यागात्] छूटने से, [बन्ध एव] ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध है। भावार्थ प्रगट है।।१०-१२२।।

कलश - १२२ पर प्रवचन

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बन्ध एव हि।।१०-१२२।।

आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त। भगवान की वाणी सुनकर कुन्दकुन्दाचार्य ने शास्त्र बनाये। समयसार, प्रवचनसार... उनकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य। वे कहते हैं, '**अत्र इदं एव तात्पर्यं' इस समस्त अधिकार में...** यह सब आस्रव का अधिकार हुआ, **निश्चय से इतना ही कार्य है... 'इदं एव तात्पर्यं'। 'इदं' निश्चय से इतना ही कार्य है। वह कार्य कैसा? 'शुद्धनयः हेयः न हि'** आहाहा! यह शुद्धनय की व्याख्या की। **आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव सूक्ष्म कालमात्र भी विसारने (भूलने) योग्य नहीं है।** विसारने योग्य नहीं है। आहाहा! पूरे आस्रव का सार ऐसा कहने में आया, पूरे शास्त्र का सार ऐसा कहने में आया, भगवान की वाणी में सार ऐसा कहने में आया कि भगवान

आत्मा... **आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव...** दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव से विकल्प से भिन्न ऐसा आत्मा का अनुभव। आहाहा! वह कभी विसारनेयोग्य नहीं है। कभी छोड़नेयोग्य नहीं है। कभी भूलनेयोग्य नहीं है। आहाहा! दृष्टि में तो त्रिकाली शुद्ध आत्मा ही सदा रखना। आहाहा!

ध्रुव चिदानन्द प्रभु आत्मा, उसे तो शुद्धनय ही कहा। आहा! नहीं तो नय तो विषय है, वस्तुस्वरूप जो ध्रुव चिदानन्द प्रभु उसका विषय है। यहाँ तो शुद्धनय को ही वस्तु कहा है। आत्मा भगवान पूर्णानन्द सच्चिदानन्द प्रभु शुद्धस्वरूप का अनुभव, उस शुद्ध चैतन्य का वेदन, उस अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव... आहाहा! कभी छोड़नेयोग्य नहीं है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु है, वह वस्तु। उसका वर्तमान में अनुभव—पर्याय, उसका वेदन, शुद्ध का वेदन, वह कभी छोड़नेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तात्पर्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव हेय नहीं है। कभी हेय नहीं है। कभी विसारनेयोग्य नहीं है। आहाहा! **किस कारण से?...** यह बात आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १, गुरुवार, दिनांक - १३-१०-१९७७, कलश-१२२, १२३, प्रवचन-१२०

कलशटीका, १२२ कलश।

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बन्ध एव हि।।१०-१२२।।

खण्डान्वय सहित अर्थ - '**अत्र इदं एव तात्पर्यं**' '**अत्र एव**' तात्पर्य-रहस्य यह है, सर्व शास्त्र के अधिकार का रहस्य यह है, **इस समस्त अधिकार में... 'इदं एव तात्पर्यं' निश्चय से इतना ही कार्य है।** रहस्य (यह) है। सर्व शास्त्र का सार।

यह निचोर या ग्रंथकौ, यहै परम रसपोख।
तजै शुद्धनय बंध है, गहै शुद्धनय मोख॥१३॥

इसका यह हिन्दी। **यह निचोर या ग्रंथकौ,...** इस ग्रन्थ का निचोड़ यह है। **परम रसपोख...** आत्मा अतीन्द्रिय द्रव्यार्थिकनय का विषय, द्रव्य जिसका प्रयोजन है, ऐसा शुद्धनय, उसका विषय ज्ञायक चैतन्य का अनुभव करना, वह सर्व शास्त्र का रहस्य है। समझ में आया? जो अनादि काल से पुण्य और पाप तथा राग-द्वेष का अनुभव है, वह जहर का अनुभव—दुःख का अनुभव और संसार में भटकने का वह अनुभव है। और भगवान आत्मा...

इतना ही कार्य है। 'शुद्धनयः हेयः न हि' यह सिद्धान्त। आहाहा! '**शुद्धनयः**' अर्थात् **आत्मा के शुद्धस्वरूप का अनुभव...** शुद्धनय की व्याख्या ही यह की है। भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्यार्थिनय से शुद्ध है, पवित्र है, भगवत्स्वरूप है, परमात्मस्वरूप विराजमान आत्मा द्रव्यार्थिकनय से है। आहाहा! उसका अनुभव। उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करना, वह आनन्द का वेदन करना। जो अनादि से पुण्य-पाप के विकार का वेदन है, वह संसार है, संसारवृद्धि है, दुःखरूप है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द का अनुभव सुखरूप है, मोक्ष का कारण है और उसका अनुभव शुद्धि की वृद्धि का कारण है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

'**इदं एव तात्पर्यं**' आया न? सम्पूर्ण शास्त्र के अधिकार का तात्पर्य यह है। आहाहा!

समझ में आया ? आत्मा शुद्ध स्वरूप त्रिकाली, जो द्रव्यार्थिक—द्रव्य का प्रयोजन जिस नय को है, त्रिकाली ज्ञायकभाव ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप, उसे विषय बनाकर—ध्येय बनाकर, उसका अनुभव करना। आहाहा! ऐसी बात है। **'हेयः न हि'** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य का अनुभव करे, वह हेय नहीं है। शुभाशुभभाव होते हैं, वे हेय हैं। उनका अनुभव दुःखरूप है। आहाहा! एकदम शास्त्र का रहस्य आया है। तात्पर्य है न ? रहस्य है। आहाहा! मार्ग कहने का रहस्य यह है। बाहर से वृत्ति को समेटकर अन्दर चिदानन्द ध्रुवस्वरूप ज्ञायक की ओर दृष्टि को झुकाकर अनुभव करना। यह कार्य है। आहाहा! यह कार्य कभी हेय नहीं है, ऐसा कहते हैं। है न ? **'शुद्धनयः हेयः न हि'** आहाहा! किसलिए हेय नहीं है ?

सूक्ष्म कालमात्र भी विसारनेयोग्य नहीं है। आहाहा! मैं ज्ञायक चैतन्य आनन्द हूँ, वह क्षणमात्र भी विसारनेयोग्य नहीं है। समझ में आया ? मैं पवित्र परमात्मस्वरूप हूँ। एक क्षणमात्र भी विसारनेयोग्य नहीं, भूलनेयोग्य नहीं। आहाहा! स्मृति के पट में से निकालनेयोग्य नहीं। समझ में आया ? **किस कारण से ?... 'हि तत् अत्यागात् बन्धः नास्ति' जिस कारण शुद्धस्वरूप का अनुभव,...** त्रिकाली भगवान परमानन्द प्रभु आत्मा का अनुभव अर्थात् उसे अनुसरकर आनन्द का अनुभव होना, वह त्याज्य नहीं है। वह त्याग करनेयोग्य नहीं है। क्यों ? **'तत् अत्यागात् बन्धः नास्ति'** वह **शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसके... 'अत्यागात्' नहीं छूटने से...** नहीं छोड़ने से, ग्रहण करने से। आहाहा! **ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध नहीं होता।** आहाहा! भगवान पवित्र परमात्मस्वरूप का अनुभव एक क्षण भी त्यागनेयोग्य नहीं है। क्यों ? **'तत् अत्यागात्' उसके नहीं छूटने से...** कर्म का बन्ध नहीं होता। समझ में आया ? अरे! दया, दान और व्रत, भक्ति के परिणाम का करना भी कहीं छूट गया। आहाहा!

एक समय की पर्याय पर बुद्धि थी, वह बुद्धि त्रिकाली ज्ञायक की ओर ढलने से जो दृष्टि में आत्मा का अनुभव हुआ, वह **'अत्यागात्'** नहीं छोड़ने से बन्ध नहीं होता। आहाहा! क्योंकि आत्मा परमात्मस्वरूप अबन्धस्वरूप है। अबन्धस्वरूप का अबन्ध परिणाम में अनुभव होने से अबन्धस्वरूप... आहाहा! उसके अबन्धपरिणाम अर्थात्

शुद्धनय का अनुभव, अबन्धपरिणाम से अनुभव करने से, अबन्ध का अबन्धपरिणाम से अनुभव करने से बन्ध नहीं होता। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? धर्मी को यदि कार्य करने का हो, तो यह कार्य है।

मुमुक्षु : एकमात्र यही कार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कार्य है। आहाहा!

भगवान आत्मा पवित्रता का पिण्ड प्रभु, उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं और एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का सामर्थ्य और रूप है। आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति और शक्ति का अनन्त रूप, उसका एकरूप। आहाहा! शुद्धनय का विषय कहना है न? वह त्रिकाली भगवान आत्मा का स्वीकार करने से और निमित्त, राग और पर्याय का स्वीकार छोड़ने से उसे बन्ध नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग अब लोगों को... भगवन्तस्वरूप अबन्धस्वरूप प्रभु है। अबन्धस्वरूप कहो, जैनशासन कहो। वहाँ यह बताया है। चैतन्य भगवान मुक्तस्वरूप विराजता है। सदा मुक्तस्वरूप ही त्रिकाली द्रव्य वस्तु तो है। आहा! उस मुक्तस्वरूप का अनुभव पर्याय हुई। वह कभी छोड़नेयोग्य नहीं। आहाहा! क्योंकि '**अत्यागात् बन्धः नास्ति**' जिसके अनुभव को नहीं छोड़ने से कर्म का बन्ध नहीं होता। आहाहा! बहुत संक्षिप्त। अकेला मक्खन है। अभी तो लोगों को यह दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा करते हैं तो अन्दर जाया जाये। कहते हैं कि वह तो राग है, हेय है। उसकी तो दृष्टि छोड़; और एक समय की पर्याय जो है, उसमें अबद्धस्पृष्ट आत्मा आता नहीं।

चैतन्य ध्रुव ज्ञायकस्वभाव एक समय की प्रगट ज्ञान की अवस्था में वह वस्तु आती नहीं। वस्तु पर्याय से पार—भिन्न है। आहाहा! ऐसी दृष्टि का विषय अन्तर द्रव्य को बनाकर... आहाहा! वेदन करना, ऐसा कहते हैं। मुक्तस्वरूप का मुक्तरूप से वेदन करना। रागरहित अरागपने का वेदन करना। समझ में आया? अरे! ऐसी बात है, भाई! लोगों को बाहर से मानो यह करें और यह करें, दान दें और व्रत पालन करें और तप करें और अपवास करें (तो) कल्याण (होगा)। भाई! यह सब चीज़ें तो बाहर की बहिर्मुख लक्ष्यवाली चीज़ है। अन्तर्मुख लक्ष्यवाली चीज़ तो भगवान (आत्मा) पूर्ण आनन्दस्वरूप,

अन्तर लक्ष्य करके उसका अनुभव करना, कि जिसमें राग का लेशमात्र अनुभव में नहीं। आहाहा! अनुभव में तो अरागी परिणाम का अनुभव है। आहाहा! उसे '**अत्यागात्**' उसे नहीं छोड़ने से बन्ध नहीं होता। ऐसी बात है। पोपटभाई! इसमें पैसा-फैसा तो कहीं रह गया। यहाँ तो व्रत और तप का विकल्प है, वह कहीं साथ में नहीं आता, उसका सथवारा नहीं है। आहाहा! भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव अर्थात् उस ओर की झुकाव दशा है, वह अनुभव दशा '**अत्यागात्**' उसे नहीं छोड़ने से बन्ध नहीं होता। आहाहा!

और किस कारण? 'तत् त्यागात् बन्धः एव' आहाहा! शुद्ध भगवान परमानन्द प्रभु, उसका समीपपना अनुभव छोड़ने से। आहाहा! '**तत् त्यागात्**'। जिसे आत्मा पवित्र प्रभु परमात्मा का अनुभव, उस ओर के झुकाव की दशा छोड़ने से **शुद्धस्वरूप का अनुभव, छूटने से... 'बन्धः एव'** आठ कर्म का बन्ध होगा। आहाहा! बहुत तात्पर्य। इसलिए 'समयसार नाटक' में इसका हिन्दी बनाया। '**यह निचोर या ग्रंथकौ**' समयसार ग्रन्थ का यह निचोड़ है। '**यह निचोर या ग्रंथकौ, यहै परम रसपोख**' आत्मा के परम आनन्दरस का पोषण करना, वह इसका रहस्य है। आहाहा! अरे! इसे सुनने को मिलता नहीं, सुनने को मिलता नहीं, वह कहाँ जाये? वह दुःखी चौरासी के अवतार में यह सेठिया या राजा हो या देव हो, वे दुःख में जल रहे हैं, भाई! वे दुःख में जल रहे हैं। आहाहा!

इस आत्मा को उससे छूटना हो तो अन्तर मुक्तस्वरूप प्रभु का अनुभव छोड़ने से बन्ध होगा। अनुभव के अत्याग से बन्ध नहीं होगा। आहाहा! उसका त्याग करने से और व्यवहाररत्नत्रय का आश्रय लेने से... आहाहा! बन्ध होगा। समझ में आया? पहली यह बात इसके ख्याल में, ज्ञान में निर्णय तो करे। यह चीज़ क्या है? ऐसे का ऐसे हम धर्म करते हैं, धर्म करते हैं। मर गया अनन्त काल से। समझ में आया?

'तत् त्यागात् बन्धः एव' शुद्धस्वरूप का अनुभव,... सम्यग्दर्शन छूटने से **ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध है।** आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव का आश्रय करने से और निज अनुभव का आश्रय छोड़ने से बन्ध होगा। ऐसा कहते हैं।

संसारवृद्धि होगी। आहाहा! समझ में आया? यह पूरे अधिकार का तात्पर्य है। आस्रव अधिकार का तात्पर्य, आहाहा! अथवा पूरे समयसार का तात्पर्य—अन्तर स्वरूप में झुकना और व्यवहार आदि का आश्रय छोड़ना। यह इस ओर झुक जाता है, इसलिए वह छूट जाता है, इसलिए छोड़ना—ऐसा भी नहीं रहा। समझ में आया? आहाहा! बहुत थोड़े शब्दों में तो इतनी बात भरी है। आहाहा! एक-एक पद में इतनी गम्भीरता!

भगवान तो अनन्त गुण का गम्भीर समुद्र है न तू, समुद्र है न! आहाहा! जिसमें अनन्त गुण रत्नराशि उछलती है। आहाहा! उस पर नजर करने से। है तो है। परन्तु उस पर नजर करने से अनन्त रत्न—गुणरत्न पर्याय में उछलते हैं। वह आया न? ज्ञान की पर्याय उछलती है, उसमें अनन्त पर्याय उछलती है, मूल तो यह कहना है। शक्ति की शुरुआत में आया न? आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त गुण की राशि प्रभु, उसका आश्रय और अनुभव करने से ज्ञान की एक समय की सम्यक् पर्याय उछलती है, उसमें अनन्त गुण की पर्याय उछलती है। आया न यह! शक्ति के अधिकार में। आहाहा! और उसका त्याग करने से मिथ्यात्वभाव का उछलना उत्पन्न होता है। आहाहा! राग, विकल्प, शुभराग हो, परन्तु उसकी रुचि करने से और आश्रय करने से, लाभ है—ऐसा मानने से मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। उस मिथ्यात्व के कारण नये आठ कर्म बँधते हैं। आहाहा!

भगवान! तेरी सुन्दरता इतनी रमणीय है कि जगत की सुन्दरता व्यर्थ लगे, ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? थोर का दूध होता है न? थोर... थोर कहते हैं? क्या कहते हैं? कांटा होता है। हाथिया थोर होता है। उसका दूध होता है। वह भी दूध है और गाय का भी दूध (होता है)। आहाहा! वह थोर का दूध रखे तो ऐसी दाह उठे और गाय का दूध मीठा है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा... यहाँ तो ऐसा नजर में आया कि गाय को दुहते हैं न? इसी प्रकार परमात्मस्वरूप की रुचि-दृष्टि से अनुभव में दुहता है तो पर्याय में आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि... पापपरिणाम तो एक ओर रहो, परन्तु शुभपरिणाम की रुचि करने से वह थोर जैसा दूध है, आकुलता उत्पन्न होगी। आहाहा! मार्ग प्रभु का बहुत सूक्ष्म है, बापू! आहाहा! १२२ (कलश हुआ)।

कलश-१२३

(शार्दूलविक्रीडित)

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिं
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम्।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः।।११-१२३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'कृतिभिः जातु शुद्धनयः त्याज्यः न हि' [कृतिभिः] सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा [जातु] सूक्ष्मकालमात्र भी [शुद्धनयः] शुद्धचैतन्यमात्रवस्तु का अनुभव, [त्याज्यः न हि] विस्मरणयोग्य नहीं है। कैसा है शुद्धनय? 'बोधे धृतिं निवध्नन्' [बोधे] आत्मस्वरूप में [धृतिं] अतीन्द्रिय सुखस्वरूप परिणति को [निबध्नन्] परिणमाता है। कैसा है बोध? 'धीरोदारमहिम्नि' [धीर] शाश्वती [उदार] धाराप्रवाहरूप परिणमनशील, ऐसी है [महिम्नि] बढ़ाई जिसकी, ऐसा है। और कैसा है? 'अनादिनिधने' [अनादि] नहीं है आदि, [अनिधने] नहीं है अन्त जिसका, ऐसा है। और कैसा है शुद्धनय? 'कर्मणां सर्वंकषः' [कर्मणां] ज्ञानावरणादि, पुद्गलकर्मपिण्ड का अथवा राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध-परिणामों का [सर्वंकषः] मूल से क्षयकरणशील है। 'तत्रस्थाः शान्तं महः पश्यन्ति' [तत्रस्थाः] शुद्धस्वरूप-अनुभव में मग्न हैं जो जीव, वे [शान्तं] सर्व उपाधि से रहित, ऐसे [महः] चैतन्यद्रव्य को [पश्यन्ति] प्रत्यक्षरूप से प्राप्त करते हैं। भावार्थ इस प्रकार है — परमात्मपद को प्राप्त होते हैं। कैसा है मह? 'पूर्णं' असंख्यात प्रदेश ज्ञान विराजमान है। और कैसा है? 'ज्ञानघनौघं' चेतनागुण का पुंज है। और कैसा है? 'एकं' समस्त विकल्प से रहित, निर्विकल्प वस्तुमात्र है। और कैसा है? 'अचलं' कर्मसंयोग के मिटने से, निश्चल है। क्या करके ऐसे स्वरूप की प्राप्ति होती है? 'स्वमरीचिचक्रं अचिरात् संहृत्य' [स्वमरीचिचक्रं] झूठ है, भ्रम है जो कर्म की सामग्री, इन्द्रिय, शरीर-रागादि में आत्मबुद्धि, उसको [अचिरात्] तत्कालमात्र [संहृत्य] विनाशकर। कैसा है मरीचिचक्र? 'बहिः निर्यत्' अनात्मपदार्थों में भ्रमता है। भावार्थ इस प्रकार है — परमात्मपद की प्राप्ति होनेपर, समस्त विकल्प मिटते हैं।।११-१२३।।

कलश - १२३ पर प्रवचन

१२३।

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिं
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम्।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः।।११-१२३।।

अमृत बरसाया है। '**कृतिभिः जातु शुद्धनयः त्याज्यः न हि**' आहाहा! '**कृतिभिः**' जिसने सुकृत किया। सम्यग्दृष्टि, उसे '**कृतिभिः**' कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? संसारचक्र का नाश किया, इसलिए समकिती को '**कृतिभिः**' कहते हैं। क्या कहते हैं? '**कृतिभिः**' **सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा...** अर्थात् '**कृतिभिः**' क्यों कहा? जहाँ आत्मा की दृष्टि, अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ संसार का अन्त हो गया। संसार के कार्य का अन्त हो गया। आहाहा! समझ में आया? यह नास्ति से कहा। अस्ति से कहो तो शुद्ध चैतन्य का कार्य जो निर्मल हुआ,वह सुकृत हुआ—सुकार्य हुआ। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी दृष्टि करने से, उसका अनुभव करने से...आहाहा! सम्यग्दृष्टि को क्या कहा? धर्मी प्रथम धर्म की सीढ़ी करनेवाला, उसे आचार्य ने कैसा सम्बोधन किया? '**कृतिभिः**' प्रभु! तूने तो कार्य किया, हों! सम्यग्दृष्टि को '**कृतिभिः**' कहा। सम्यग्दृष्टि ने क्या किया?—कि आत्मा चिदानन्द प्रभु की अनुभव दृष्टि की तो '**कृतिभिः**'—संसार के कार्य का तो अन्त किया और सुकार्य जो करने का था, वह शुरु कर दिया। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! अभी सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव उसे कहते हैं, धर्म की पहली सीढ़ी, मोक्षमहल की पहली सीढ़ी, आता है न? यह छहढाला में आता है। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी बिना ज्ञान, चारित्र मिथ्यात्व है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान, चारित्र मिथ्या है। उस सम्यग्दृष्टि को यहाँ '**कृतिभिः**' कहा है। क्या? अपना चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु को जिसने अनुभव में लिया और अनुभव करके प्रतीति की, उसे '**कृतिभिः**' कार्य किया। जो कार्य

करने का था, वह कार्य किया। शान्तिभाई! आहाहा! यह सब बाहर के कार्य कर-करके मानो हमने यह क्या किया? धूल भी किया नहीं। पर का कार्य कब कर सकता है? शरीर, वाणी, मन वह तो सब जड़ मिट्टी धूल है। लक्ष्मी, कुटुम्ब कबीला, वह तो परद्रव्य है। आत्मा उसका कार्य कर सकता है? आहाहा! हाँ; यह राग और द्वेष का कार्य करता है, संसार की वृद्धि करता है। मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष की वृद्धि करता है तो संसार की वृद्धि करता हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो '**कृतिभिः**' पर बात चलती है। प्रभु! तूने कार्य किया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी आनन्दकन्द आत्मा का जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन किया, वह '**कृतिभिः**'—तूने कार्य किया, हों! जो कार्य करने का था, वह कार्य तूने किया। आहाहा! और जो संसार का कार्य था, परिभ्रमण का कार्य था, वह सम्यग्दर्शन में संसार का अन्त आ गया। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब। इसमें क्या करना? बाहर की यह यात्रा करना या भक्ति करना या पूजा करना या दया, दान (करना)? यह सब तो रागक्रिया है। आहाहा! यहाँ कार्य कहा न? सम्यग्दर्शन, वह कार्य है। आहाहा! व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह तो राग का कार्य, संसार की वृद्धि का कारण है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात!

परमात्मा जिनेन्द्रदेव कहते हैं कि जिसने जिनस्वरूपी भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन अनुभव प्रगट किया, तूने कार्य किया। आहाहा! और संसार के कार्य का भी तूने अन्त किया। संसार अब है नहीं। समझ में आया? देखो! यह '**कृतिभिः**'। आहाहा! यहाँ तो बाह्य से जरा व्यापार-धन्धे में बहुत होशियार हो जाये, पाँच-पचास लाख पैदा करे, वहाँ (मानत है कि) बहुत काम किया। संसार बढ़ाया है। सुन न अब! भव की वृद्धि की है। आहाहा!

मुमुक्षु : छह आवश्यक धीरे-धीरे करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आवश्यक राग है और राग करता है, वह संसार की वृद्धि है। समकिती को छह आवश्यक का राग आता है, परन्तु वह हेय है। वह उसका कार्य नहीं। कठिन बात, बापू! वीतराग जिनेन्द्रदेव का पन्थ बहुत सूक्ष्म। बहुत फलदायक।

सूक्ष्म इतना फलदायक। अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति का दाता। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ....जमाने प्रमाण फेरफार हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा फेरफार। तुमने सब फेरफार कर दिया। सेठियों ने इकट्ठे मिलकर। ऐ... सेठ! खोटों को मदद करके। परन्तु खबर नहीं न! मार्ग ऐसा है, प्रभु!

मुमुक्षु : प्रचार की आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे चाहिए हो, वह यहाँ खिंचा आवे। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा!

अरे... कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द लबालब भरा है। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द लबालब भरा है, छलाछल भरा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? वह अतीन्द्रिय आनन्द जो छलाछल है... आहाहा! उसका श्रद्धा में जहाँ स्वीकार हुआ, तो आनन्द की झलक, पर्याय में आनन्द की झलक आयी। आहाहा! उस आनन्द का वेदन, उसमें प्रतीति (हुई) कि यह आत्मा ऐसा पूर्णानन्द है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन का तूने यहाँ कार्य किया, भाई! आहाहा! यह सुकृत उसका नाम कहते हैं। यह दया, दान और व्रत करे, वह सुकृत किया, सुकृत किया, वह दुष्कृत है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बात बहुत कठिन, भाई! भगवान की भक्ति की, यात्रा की, वह शुभराग है। वह सुकृत नहीं। शान्तिभाई! ऐसा अटपटा मार्ग है, नाथ! अरे! तू कौन है, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! महापुरुष प्रभु विराजता है। तेरी पर्याय के समीप में विराजता है। तूने नजर नहीं की। नजर पुण्य और पाप के क्रियाकाण्ड में नजर को रोका। आहाहा! समझ में आया? नजर में निधान देखने की चीज़ थी, वह नजर नहीं की। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा सूक्ष्मकालमात्र भी...** '**जातु**' कोई काल। ऐसा। '**जातु**' का अर्थ ऐसा आता है न? भाई! किसी काल भी। '**जातु**' का अर्थ यह है। सम्यग्दृष्टि जीवों ने... आहाहा! गजब बात है, भाई! श्लोक भी ऐसा आया है न! एक-

एक श्लोक में अमृत झरता है। आहा! यह अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त की वाणी क्या है! आहाहा! एक शब्द में कितना भरा है! उसे '**जातु**' धर्मी जीव ने आत्मा के शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव किया है तो '**जातु**' कोई क्षणमात्र भी उस अनुभव को छोड़ना नहीं और राग के प्रेम में आना नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहते हैं। '**जातु**' शब्द है न? कदाचित् भी। किसी काल भी। **सूक्ष्मकालमात्र भी... 'शुद्धनयः' शुद्धनय अर्थात् शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु का अनुभव...** शुद्धनय की व्याख्या ही यह है। चेतनजी! ग्यारहवीं गाथा में आया, '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' आहाहा! शुद्धनय अर्थात्... आहाहा! है न? **शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु का अनुभव...** पर्याय सहित अनुभव। क्योंकि शुद्ध वस्तु है परन्तु अनुभव में आये बिना शुद्ध है, उसकी प्रतीति उसे कहाँ से आयी? समझ में आया? अन्तर की चीज़ पवित्र भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, परन्तु पर्याय में उसके नमूने में वेदन न आवे, तब तक वह पूर्ण आनन्द है, ऐसी प्रतीति कहाँ आयी? आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। आहाहा!

'शुद्धनयः' शुद्धनय अर्थात् शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु का अनुभव... 'त्याज्यः न हि' विस्मरणयोग्य नहीं। आहाहा! एक समयमात्र भी भगवान आत्मा का अनुभव एक समयमात्र भी छोड़नेयोग्य नहीं। उसके पक्ष में गया, वह पक्ष छोड़नेयोग्य नहीं। राग के पक्ष से... पडखुं समझते हो? क्या कहते हैं? पक्ष। राग के पक्ष में था, वह पक्ष छूटकर भगवान के पक्ष में आया तो राग का पक्ष किंचित्मात्र करना नहीं। ऐसा पक्ष नहीं करना कि दया, दान, व्रत, भक्ति सबसे कल्याण होगा। ऐसा पक्ष मिथ्यादृष्टि करता है, वह तुझे नहीं करना। आहाहा! समझ में आया? बात बापू बहुत...! जगत से निराली है। अरे! दुनिया तो कहीं अभी संसार के पाप के धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होती, फुरसत नहीं। उसे अभी श्रवण करने का योग भी नहीं मिलता और श्रवण करने का योग मिले तो वह शुभभाव है, पुण्य है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, यह वस्तु प्रभु है, उसे शुद्धनय कहा है। ग्यारहवीं गाथा में यही कहा न? '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' सत्यार्थ त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु को ही शुद्धनय कहा। शुद्धनय के विषय का भेद नहीं करके, उसे ही शुद्धनय कहा। आहाहा! नहीं तो नय है, वह विषयी है और शुद्ध चैतन्य द्रव्य उसका विषय-ध्येय है। परन्तु यहाँ

तो भेद भी छोड़ दिया। वह त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यवस्तु को यहाँ शुद्धनय कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? यह करनेयोग्य है। यात्रा और दया, दान, व्रत और अपवास, यह सब राग की क्रिया है। आहाहा! और राग की क्रिया करने से धर्म होगा, यह मिथ्यात्व का भाव पुष्ट करता है। समझ में आया? धर्मी को— समकिती को भी राग आता है परन्तु राग (को) हेयरूप से जानता है। अज्ञानी उस राग को उपादेयरूप से मानता है। मैं ठीक करता हूँ, यह दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? यह कार्य है, वह कार्य कभी नहीं छोड़ना और राग का कार्य कभी ग्रहण नहीं करना। राग मेरा कार्य है—ऐसी दृष्टि कभी नहीं करना। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग।

अरे! जिसे राग की हूंफ चढ़ गयी, उसे भगवान के पक्ष की हूंफ कैसे आवे? आहाहा! जिसे राग के रंग में राग का रंग चढ़ गया, उसे भगवान चिदानन्द प्रभु का रंग कैसे चढ़े? और जिसे आत्मा का रंग चढ़ा... आहाहा! उसे राग का रंग नहीं रहता। सेठ! आहाहा! दिशाफेर। ऐसा मार्ग है। होता है। धर्मी-आत्मज्ञानी को भी भक्ति, पूजा का राग आता है, परन्तु वह हेयरूप से है, दुःखरूप से जानता है, आकुलतारूप से जानता है। अज्ञानी उसे सुखरूप मानता है। आहाहा! समझ में आया?

एक काल भी **विस्मरणयोग्य नहीं। कैसा है शुद्धनय?** आहा! शुद्धनय की व्याख्या यह की है कि **शुद्ध चैतन्यमात्रवस्तु का अनुभव...** उसका अनुभव, हों! क्योंकि वस्तु है परन्तु वस्तु का अनुभव न हो, तब तक वस्तु है—ऐसी कहाँ प्रतीति में आयी? आहाहा! **कैसा है शुद्धनय? 'बोधे धृतिं निबध्नन्' 'बोधे'** बोध अर्थात् ज्ञानस्वरूप आत्मा। **'बोधे'** ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, सर्वज्ञस्वभावी प्रभु आत्मा में **'धृतिं' अतीन्द्रिय सुखस्वरूप परिणति को...** आहाहा! देखो! परिणमता है। **परिणमाता है।** आहाहा! शुद्धनय कैसा है? आहाहा! कि अपना भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप आत्मस्वरूप उसकी **'धृतिं'** अर्थात् वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय सुख परिणति को परिणमता है। अतीन्द्रिय सुख का परिणमन न हो तो चैतन्यवस्तु सुखरूप है, ऐसा नमूना आये बिना जाने कहाँ से? आहाहा! अर्थात् यहाँ तो नमूनासहित जाना, उसने जाना, कहा। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! है तो सरल, सहज वस्तु। आहाहा! परन्तु उसके प्रति प्रयत्न नहीं

और उस प्रकार की सावधानी का प्रेम नहीं; इसलिए लोगों को कठिन लगता है। आहाहा!

निज स्वरूप भगवान अन्दर में विराजता है। उसकी '**धृतिं**' उसके अतीन्द्रिय आनन्द का धरना। आहाहा! जिसने अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा को पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का धारण करना। समझ में आया? उसे **परिणमाता है।** उस अतीन्द्रिय आनन्दरूप परिणमता है, उसे शुद्धनय कहा जाता है। आहाहा! वस्तु शुद्ध है, वह शुद्धनय का विषय। परन्तु विषय शब्द न लेकर वह तो स्वयं आत्मा शुद्धनय, परन्तु उस शुद्धनय का परिणमन हो, शुद्ध वस्तु का परिणमन हो तो शुद्धनय कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब सुनना कठिन पड़े। उसमें बाहर में कुछ पाँच-पचास लाख रुपये हों और शरीर सांढ जैसा हो, रूपवान शरीर हो, जवान पच्चीस वर्ष की उम्र (हो)। हष्ट-पुष्ट सांढ जैसा शरीर (हो)। उसमें ऐसी आत्मा की बातें! तेरे थोथा सब श्मशान की हड्डियाँ हैं। आहाहा! यह चैतन्यसूर्य शुद्ध आनन्दकन्द अन्दर विराजता है। वह तो सब अन्धकार है। शुभाशुभभाव अन्दर हो, वह भी अन्धकार है। आहाहा! समझ में आया?

'**बोधे धृतिं**' का अर्थ किया। समझे न? '**बोधे धृतिं निबध्नन्**' आत्मस्वरूप में परिणति की है। आहाहा! '**निबध्नन्**' इन तीन शब्दों का अर्थ हुआ। '**बोधे धृतिं निबध्नन्**' '**बोधे**' अर्थात् आत्मस्वरूप। बोध अर्थात् आत्मस्वरूप। नहीं तो ज्ञान लेना है। बोध अर्थात् ज्ञानस्वरूप। ज्ञानस्वरूप आत्मस्वरूप। '**धृतिं**' अर्थात् अन्दर आनन्दरूप परिणमना। अतीन्द्रिय सुखरूप से दशा में होना। **कैसा है बोध?** '**धीरोदारमहिम्नि**' आहाहा! **कैसा है बोध?** शाश्वत् है, धीर है। भगवानस्वरूप तो अन्दर शाश्वत् धीर-धीर है। आहाहा! और '**उदार**' है। **धाराप्रवाहरूप परिणमनशील है।** आहाहा! क्या कहते हैं? शुद्धस्वरूप ध्रुव चैतन्य अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसे पर्याय में धारण किया—अनुभव किया तो वह चीज़ कैसी है? शाश्वत् है और वर्तमान में, आहाहा! **धाराप्रवाहरूप परिणमनशील है।** आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी प्रतीति अनुभव की दृष्टि में धाराप्रवाह '**उदार**' है। दशा निकली, इतना ही नहीं, परन्तु '**उदार**' है। धाराप्रवाह '**उदार**' परिणति चलती है। आहाहा! आनन्दधारा, ज्ञानधारा, शान्तिधारा।

सम्यग्दृष्टि को आनन्दधारा कायम चलती है। आहाहा! समझ में आया? '**उदार**' है। '**उदार**' है न? '**धीर**' और '**उदार**'। टिकता और प्रवाहरूप। आहाहा!

धाराप्रवाहरूप परिणमनशील है। आहाहा! **बढ़ाई जिसकी...** यह उसकी महिमा है, यह उसकी महत्ता है। क्या कहते हैं? कि शुद्ध चैतन्यवस्तु पूर्णानन्द का सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ तो वह धारा उदाररूप से कायम चलती ही है। यह उसकी महत्ता और बढ़ाई है। उसमें विघ्न नहीं पड़ता। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को अन्तर स्वरूप का आनन्द का अनुभव हुआ, तो कहते हैं कि वह चीज़ अब धाराप्रवाह चलती है। आहाहा! उदार है। लोग उदार होते हैं न? उदार। कितना चाहिए? वह बोला, दस हजार। बस? उदार व्यक्ति ऐसा कहे, बस? अरे! भूल गया। उदार व्यक्ति कहे, मैंने जाना कि तुम बड़ी कम्पनी के व्यक्ति हो और बड़ी (माँग) लेकर आये होओगे। मेरे पास तो लाख, दो लाख माँगोगे। अरे! वह कहे, भूला। ऐ... सेठ! नहीं समझे? भाषा सादी है। उसमें क्या है? आहाहा! उदार व्यक्ति के पास कोई पैसा लेने आया, तो उदार व्यक्ति को इतना ख्याल था कि कोई बड़ी कम्पनी और बड़ी धर्मशाला चलाती है, तो उसका मुनीम है तो, लाख, दो लाख माँगेगा। तो उसने माँगे दस हजार। तब उदार (व्यक्ति) बोला, बस? आहाहा!

इसी प्रकार प्रभु अन्दर आत्मा आनन्द का नाथ जहाँ सम्यग्दर्शन में अनुभव में आया तो वह प्रवाह इतना चलता है कि शाश्वत् धाराप्रवाह चलता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कहा न? आहाहा! '**धृतिं**', '**बोधे धृतिं निबध्नन्**' ऐसा कहा था न? बोध अर्थात् आत्मस्वरूप में '**धृतिं**' धारण किया है। पर्याय में आनन्द की धारण दशा बहती है। आहाहा! बहुत गम्भीर बात! यह धाराप्रवाह परिणमनशील है। ऐसी '**महिम्नि**' उसकी महत्ता है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु जिसकी दृष्टि में आया और सम्यग्दर्शन में वेदन में आया तो उसकी बढ़ाई यह है कि वह प्रवाह कायम चलता है, यह उसकी महत्ता है। ऐसा कभी सुना नहीं होगा। नहीं? आहाहा! क्या कहते हैं?

प्रभु! तेरे अनुभव की महत्ता, बढ़ाई और विशेषता यह है कि... आहाहा! कि जो आत्मा के आनन्द का वेदन हुआ, वह धाराप्रवाह चलेगा। यह उसकी महिमा और बढ़ाई है। आहाहा! एक समय चले और दो समय चले या घण्टे-दो घण्टे रहा और रुक

गया, ऐसी उसकी बढ़ाई नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! भगवान का सत्य मार्ग सुनने को मिलता नहीं प्रभु को। है तो भगवान, स्वयं प्रभु है। आहाहा! यह भगवान आत्मस्वरूप का अनुभव सम्यग्दर्शन में हुआ तो यहाँ तो कहते हैं कि वह धाराप्रवाह ही बहेगा। अप्रतिहत धारा चलेगी। वह धारा कभी टूटेगी नहीं। आहाहा! ऐसा कहकर कहते हैं कि, हम जब स्वर्ग में जायेंगे तो हमारी धारा तो यह रहेगी। सम्यक् धारा कायम (रहेगी)। आहाहा! क्योंकि हम पंचम काल के मुनि हैं, केवलज्ञान है नहीं। आहाहा! देह छूटेगी। यह देह तो छूटेगी। यह हड्डियाँ तो जड़ हैं। भगवान आत्मा धारा प्रवाह लेकर जाएगा, ऐसा कहते हैं। मीठालालजी! ऐसी बात है। दिगम्बर सन्तों की (बातें) देखो तो सही!

बढ़ाई जिसकी, ऐसा है। और कैसा है? 'अनादिनिधने' नहीं है आदि, नहीं है अन्त जिसका, ऐसा है। वस्तु तो आदि-अन्त रहित चीज़ भगवान आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द नाथ, वह तो आदि और अन्त बिना की चीज़ है। उसका अनुभव किया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनादि-अनन्त चीज़ जो है, वह '**धृतिं**' अर्थात् पर्याय में धारण की। आहाहा! त्रिकाली चीज़ है, वह वर्तमान पर्याय में धारण की। ऐसी धारावाही प्रवाही वस्तु अनादि-अनन्त आत्मा है। आहाहा! **नहीं है अन्त जिसका, ऐसा है।**

और कैसा है शुद्धनय? 'कर्मणां सर्वंकषः' आहाहा! **ज्ञानावरणादि पुद्गल-कर्मपिण्ड का अथवा राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणामों का मूल से क्षयकरणशील है।** आहाहा! यह धर्म। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करते... करते... करते... प्रवाह में चलेगा तो कहते हैं कि आठ कर्म का नाश और पुण्य-पाप दया, दान, रागादि का नाश होगा। आहाहा! उत्पत्ति यह होगी और उनका नाश होगा। आहाहा! है? '**कर्मणां सर्वंकषः**' है न? '**सर्वंकषः**' और सर्व अर्थात् मूल से क्षयकरणशील। नाश करने का। '**सर्वं**' अर्थात् मूल में से '**कषः**' अर्थात् नाशकरण। आहाहा! '**सर्वंकषः**' शब्द पड़ा है न? '**सर्वं**' अर्थात् मूल में से '**कषः**' अर्थात् क्षयकरणशील। आहाहा! भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ और साथ में आनन्द की धारा आयी, वह कर्म और राग का मूल में से नाश करनेवाली चीज़ है। समझ में आया? इस अपेक्षा से कथन किया है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल २, शुक्रवार, दिनांक - १४-१०-१९७७, कलश-१२३, प्रवचन-१२१

कलशटीका चलती है। आस्रव अधिकार। आस्रव का अर्थ—भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में पुण्य-पाप के जो विकल्प उठते हैं, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह पापरूपी राग है। वह आस्रव है, नये कर्म आने का कारण है और दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, तप यह विकल्प है, यह शुभराग विकल्प है। यह शुभ और अशुभराग दोनों नये आवरण का कारण-आस्रव है। जैसे नाव में छिद्र होते हैं तो पानी आता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्दकन्द स्वरूप प्रभु, वह अपना स्वरूप भूलकर ऐसे शुभ-अशुभभाव करता है, उससे नया आस्रव—नया आवरण आता है। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, भाई! यह आवरण टले किस प्रकार? अथवा यह आस्रव टले किस प्रकार? यहाँ यह कहा न?

शुद्ध भगवान आत्मा अन्दर शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप है। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान जिसका अन्तर स्वरूप है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानस्वरूप के बोध को '**धृतिं**'—अनुभव में लेना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। वह कोई बाह्य के क्रियाकाण्ड से धर्म हो जाता है, (ऐसा नहीं है)। व्रत करना और अपवास करना और पूजा और भक्ति करना, यात्रा करना, वह धर्म है—ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो राग विकल्प, आस्रव-बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अपने यहाँ तक आया है। **मूल से क्षयकरणशील है।** यहाँ तक आया है। शुद्ध स्वरूप अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् कायम रहनेवाली चीज़। अविनाशी और चिद् आनन्द-सच्चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द, जिसका कायमी स्वरूप और स्वभाव है भगवान आत्मा का। आहाहा! उसका आश्रय लेने से, उसका अनुभव (होने से), अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन-अनुभव करना... आहाहा! जैसे अनादि से यह पुण्य और पाप, शुभ और अशुभराग के विकल्प का वेदन करता है, वह दुःखवेदन है। वह भगवान आत्मा का

स्वरूप नहीं है। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा... आत्मा वही परमात्मस्वरूप अन्दर विराजमान है। आहाहा!

जैसे शक्कर में मिठास भरी है, वैसे आत्मा में तो अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द भरा है। आहाहा! कठिन बातें हैं, नाथ! यह अतीन्द्रिय आनन्द का शक्ति-स्वभाव जो है, उसका अनुभव करना। वर्तमान दशा में उस अतीन्द्रिय आनन्द का अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करना, आहाहा! वह राग-द्वेष और कर्म के नाश का उपाय है। समझ में आया? जगत से निराली चीज़ है, भाई! आहाहा! अपने यहाँ तक आया है। मूल से क्षयकरणशील है, यहाँ तक आया है।

'**तत्रस्थाः शान्तं महः पश्यन्ति**' भगवान अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु, '**तत्रस्थाः**' उसमें टिकने से। आहाहा! '**स्थ**' '**तत्रस्थ**' भगवान अतीन्द्रिय आनन्दकन्द दल है। समझ में आया? कहा था न? जैसे बर्फ की शिला होती है न? बर्फ... बर्फ। १५-२०-२५ मण की शीतल शिला। उसी प्रकार यह भगवान शरीरप्रमाण भिन्न अतीन्द्रिय आनन्द की शिला है। कैसे जँचे? आहाहा! कभी अभ्यास नहीं, यह बात सुनने को मिलती नहीं और क्रियाकाण्ड करो। व्रत करो और अपवास करो और भक्ति, यात्रा करो, हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। वह तो राग है। सुजानमलजी! प्रभु! तेरी चीज़ में तो उस राग के विकल्प का अभाव है। आहाहा!

भगवन! तेरी चीज़ में तो अतीन्द्रिय आनन्द अनाकुल शान्तरस ठसाठस भरा है। अरे! वह अरूपी चीज़ है। उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है नहीं। उसमें पुण्य-पाप का राग भी नहीं। '**तत्रस्थाः**' है? क्या है? '**तत्रस्थाः**'। '**तत्र**' निज आनन्द प्रभु में स्थ, उसमें अन्तर में टिकने से, स्वरूप में लीन होने से। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें! कहो, पोपटभाई! कहीं सुनने को नहीं मिलती। मुश्किल पड़ गयी है। आहाहा! अरे! ऐसी चीज़, बापू! '**तत्रस्थाः शान्तं महः पश्यन्ति**' आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द अस्ति है, है, मौजूदगी चीज़ है या नहीं? या अभाव है? आहाहा! मौजूदगी। '**तत्रस्थाः**' स्थिर, ध्रुव, ध्रुव चिदानन्द प्रभु, ऐसी चीज़ में स्थ-अन्तर रमणता करना, उस आनन्द प्रभु में रमना-स्थ-मग्न होना। आहाहा!

यह '**शान्तं महः पश्यन्ति**' यह **शुद्धस्वरूप-अनुभव में मग्न...** यह '**तत्रस्थाः**' का अर्थ किया। '**तत्रस्थाः**' का अर्थ **शुद्धस्वरूप-अनुभव में मग्न...** आहाहा! पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन भगवान आत्मा में—शुद्धस्वरूप में मग्न। आहाहा! भाई! अपूर्व बातें हैं, नाथ! आहाहा! अनन्त काल में कभी किया नहीं। और यह व्रत, तप, भक्ति, यात्रा और पूजा की, धर्म हो गया, ऐसा मानकर जिन्दगी चली गयी। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी चीज़ अन्दर कौन है? वस्तु है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? वस्तु है, मौजूद कोई चीज़ है या नहीं? तो वह चीज़ कैसी है? आहाहा! '**शान्तं**' **सर्व उपाधि से रहित...** है। आहाहा! यह दया, दान और भक्ति के विकल्प हैं, वह उपाधि है। आहाहा! कठिन बातें, नाथ! उस उपाधि से रहित प्रभु अन्दर है। आहाहा!

अन्दर में मग्न होने से शान्त... शान्त... शान्त... उपशमरस का कन्द प्रभु, अविकारी स्वभाव का दल... आहाहा! ऐसी शान्त निर्विकल्प चीज़ तेरी अन्दर पड़ी है, प्रभु! ऐसा? '**शान्तं**' '**महः**' तेज। '**महः**' अर्थात् तेज। शान्त चैतन्य का तेज अन्दर पड़ा है। आहाहा! अरे! यह कहाँ... जहाँ नजर डालनी है, वहाँ नजर डालता नहीं और राग और दया और पुण्य-पाप, धूलधाणी, इस पर की सेवा की और पर का यह किया... सब राग है। सुन न! समझ में आया? आहाहा! ये देशसेवा की, गरीबों की सेवा की। वह तो सब रागभाव है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। वह तो विकल्प, पुण्य का राग है। आहाहा! वह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो '**शान्तं महः पश्यन्ति**'। ऐसे शब्द हैं न? '**तत्रस्थाः शान्तं महः पश्यन्ति**' यह शब्द तो बहुत गम्भीर है, प्रभु! यह तो अध्यात्म की बात है। यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। '**तत्रस्थाः**' आनन्द का नाथ प्रभु अविनाशी अनादि-अनन्त आनन्द, सहज आनन्द, सहजात्म स्वरूप से भरपूर प्रभु, उसमें '**स्थ**' उसमें लीन रहने से। आहाहा! पुण्य और पाप के विकल्प को छोड़कर... अरे! ऐसी बातें! यहाँ धन्धे (के कारण) पूरे दिन निवृत्ति नहीं मिलती। उसे यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, भाई! तेरी चीज़ चिन्तामणि रत्न अन्दर पड़ी है। आहाहा!

रावण आदि सब थे न? उनके घर में स्फटिकमणि के महल थे। स्फटिकमणि। यह शिला, पत्थरों की शिलायें नहीं वहाँ। आहाहा! एक-एक स्फटिकमणि की अरबों की कीमत। ऐसे स्फटिकमणि। बड़ा राजा। परन्तु मूढ़ जीव। निज स्वरूप की खबर नहीं। समझ में आया? स्फटिक के तो महल। स्फटिक की सीढ़ियाँ। स्फटिक की टाईल्स। आहाहा! अरे! प्रभु! सुन तो सही! 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे...' प्रभु! जैसा निर्मल स्फटिक है, वैसा तेरा नाथ निर्मल आनन्द, शान्ति का स्वभाव है। प्रभु! तूने तेरी नजर कभी की नहीं। जहाँ निधान पड़ा है, वहाँ नजर नहीं की। और पुण्य, पाप और उसके फल, यह बाहर की धूल मिली। यह करोड़ों रुपये और अरबों रुपये, सब भिखारी है। आहाहा! निज निधान की लक्ष्मी की कीमत नहीं और धूल की बाहर की कीमत। यह पैसे मिले और अरबों रुपये और... करोड़ों के दान दिये और धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं। सुन तो सही! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! यह पुण्य और पाप के विकल्प... आगे कहेंगे, '**मरीचिचक्रम**'। भाई! पुण्य और पाप के भाव और फल '**मरीचिचक्रम्**' है। मृगतृष्णा। मृग होता है न? खारेली जमीन में सूर्य की किरण हो तो जल जैसा दिखता है। जल है नहीं। खारी जमीन होती है न? खारेली। खारेली समझते हो? खार... खार। उसमें जरा सूर्य की किरणें पड़े तो जल जैसा दिखता है। मृगतृष्णा कहते हैं। वह मृगजल तृष्णा। आहाहा! इसी प्रकार यह पुण्य और पाप के विकल्प मृगजल तृष्णा है। गजब बातें, नाथ! और यह धूल उससे मिले, यह पाँच-पचास करोड़, दो करोड़ और पाँच करोड़ और रूपवान स्त्री और शरीर सुन्दर। वह तो मिट्टी धूल है। समझ में आया? वह '**मरीचिचक्रम्**'। आहाहा! वह मृगतृष्णा का जल, उसमें आत्मा नहीं है। आहाहा!

'**तत्रस्थाः**' शब्द बहुत गम्भीर है। यह सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् अविनाशी अकृत्रिम, अनिर्मित, अविनाशी, अनादि-अनन्त—ऐसा जो भगवान आनन्दकन्द प्रभु, उसमें स्थ। आहाहा! उसमें रहने से अतीन्द्रिय आनन्द का ध्रुव स्वरूप प्रभु, उसमें स्थ—टिकने से, उसमें मग्न होने से, उसमें लीन होने से... आहाहा! अरे! ऐसी बातें। बापू! मार्ग ऐसा धर्म का सूक्ष्म है, नाथ! लोगों ने तो कुछ का कुछ समझाकर मार डाला है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, '**तत्रस्थाः शान्तं महः**' अविकारी निर्दोष शान्तरूपी तेज, चैतन्य का तेज। चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर अन्दर पड़ा है। आहाहा! है? '**तत्रस्थाः शान्तं महः पश्यन्ति**' आहाहा! जो कोई आत्मा... आहाहा! समझ में आया? आहाहा! परमानन्द का नाथ प्रभु, अनाकुल शान्तरस का कन्द, उसमें जो अन्तर लीन स्वसन्मुख होकर, पर से विमुख होकर, परपदार्थ चाहे तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर हो, परन्तु उनसे भी लक्ष्य छोड़ दे। वह कहीं तेरी चीज़ में लाभदायक नहीं है। आहाहा! वह परचीज़ है, प्रभु! पर के ऊपर से तू लक्ष्य छोड़ दे। और उसमें तुझे जो शुभराग आता है, भगवन्त! एक बार वहाँ से लक्ष्य छोड़ दे। और वर्तमान दशा जो राग को जाननेवाली है, उस दशा का लक्ष्य भी छोड़ दे। आहाहा! '**तत्रस्थाः**' आहाहा! बापू! यह तो अध्यात्म की बात है, नाथ! यह कोई वार्ता कथा नहीं। आहाहा! प्रभु की कथा है, यह तो आत्मकथा है। आहाहा!

'**तत्रस्थाः**' यह शुद्ध चैतन्यघन ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसमें स्थ-लीन होने से। '**शान्तं महः पश्यन्ति**' शान्त अविकारी शुद्ध चैतन्यघन, '**महः**' अर्थात् चैतन्य का तेज '**पश्यन्ति**' अर्थात् अनुभव करते हैं। आहाहा! '**पश्यन्ति**' का अर्थ देखते हैं। परन्तु देखता का अर्थ यहाँ अनुभव करते हैं। आहाहा! समझमें आया? अथवा '**तत्रस्थाः शान्तं महः पश्यन्ति**' अन्तर में आनन्दकन्द की शक्तिरूप पूरा तत्त्व है, उसमें स्थिर होने से शान्त तेज प्रगट होता है। वर्तमान दशा में पूर्ण आनन्द की शान्ति प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? पाताल में से जैसे फूटे... पाताल कुँआ होता है न? तल टूटे तो शीर छूटती है। इसी प्रकार भगवान के पाताल में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उसमें स्थिर होने से पर्याय में प्रत्यक्ष आनन्द प्रगट होता है। पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा। वस्तु अर्थात् त्रिकाली शक्ति। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! दुनिया ने कहाँ का कहाँ मनवाकर बेचारे को रोका। मनुष्य के भव चले जाते हैं, बापू! आहाहा! पोपटभाई! ऐसा है, बापू!

'**महः पश्यन्ति**' प्रगट होता है। है? **प्रत्यक्षरूप से प्राप्त करते हैं।** आहाहा! उस आनन्दस्वरूप को प्रत्यक्ष वेदन में प्रत्यक्ष करता है। जो वर्तमान अवस्था में राग में वह चीज़ परोक्ष रह गयी (थी)। राग के प्रेम में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव वह

राग है, उस राग के प्रेम में वह चीज़ परोक्ष रह गयी। आहाहा! उस प्रेम को छोड़कर वस्तु में लीन होने से उस वस्तु की शक्ति जो आनन्द है, वह पर्याय में-अवस्था में तुझे प्रत्यक्ष होगी। आहाहा! तू तेरे ज्ञान में प्रत्यक्ष जानेगा कि यह आनन्दस्वरूप आत्मा है। आहाहा! अब ऐसी बातें! शान्तिभाई!

प्रत्यक्षरूप से प्राप्त करते हैं। आहाहा! प्रत्यक्ष का अर्थ—अन्तर स्वरूप जो आनन्द का घन प्रभु, उसमें लीन होने से प्रत्यक्ष प्राप्ति होती है। परोक्ष नहीं रह सकता। जिसमें राग और निमित्त की अपेक्षा नहीं, ऐसा भगवान आत्मा अन्दर स्थिर होने से प्रत्यक्ष प्राप्त होता है। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन पड़े। घर में कोई पूछे कि क्या सुन आये? कौन जाने, ऐसा कहते थे और ऐसा कहते थे। आत्मा ऐसा है। अरे! भगवान! आहाहा!

प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तुझमें अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति पड़ी है, प्रभु! तू आनन्द और शान्ति की खान है, खान है। यह पुण्य-पाप में खोजने जायेगा तो वहाँ आत्मा नहीं है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, **'पश्यन्ति' प्रत्यक्षरूप से प्राप्त करते हैं। भावार्थ ऐसा है...** देखो! यह एक लाईन का अर्थ हुआ। **'तत्रस्थाः शान्तं महः पश्यन्ति'** गजब किया है न आचार्यों ने! सन्त जंगल में रहकर दिगम्बर मुनि, जिन्हें वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं था। नग्न दिगम्बर। अनन्त आनन्द के कन्द में झूलनेवाले। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि तो नग्न ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि तो नग्न ही होते हैं। मुनि की दशा (ऐसी है), उसमें स्वसंवेदन इतना आता है कि जिसमें शरीर पर वस्त्र का टुकड़ा रहने का विकल्प छूट जाता है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! समझ में आया? और नग्न हो जाते हैं; इसलिए स्वसंवेदन होता है, ऐसा नहीं परन्तु अन्तर में स्वसंवेदन इतना अधिक प्रचुर होता है, आनन्द का वेदन, कि जिसमें वस्त्र का टुकड़ा लेने का विकल्प नहीं रहता। नग्न शरीर होता है। जैसा माता से जन्मा वैसा। और अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते हैं। उसमें यह टीका बन गयी। विकल्प आया, वह राग था। परन्तु यह कहते हैं कि मेरी चीज़ तो नहीं, परन्तु आ गया है। तो यह शास्त्र बन गया। आहाहा! शास्त्र बनानेवाला मैं नहीं।

आहाहा! शास्त्र बनने में जो विकल्प, राग उठता था, वह भी मैं नहीं। परन्तु आया था तो परमाणु की पर्याय में टीका हो गयी। आहाहा!

कहते हैं, '**शान्तं' सर्व उपाधि से रहित ऐसे चैतन्यद्रव्य को...** देखता है। **भावार्थ इस प्रकार है - परमात्मपद को प्राप्त होते हैं।** आहाहा! परमस्वरूप की प्राप्ति दशा में होती है। वस्तुरूप से जैसे छोटी पीपर होती है, छोटीपीपर, चौसठ पहरी चरपराहट अन्दर पड़ी है तो बाहर आती है। पर्याय में-अवस्था में चौसठ पहरी पीपर-पीपर अन्दर है, वह आती है। चौसठ अर्थात् रुपया-रुपया। चौसठ कहते हैं न अपने? (पुराने जमाने में) चौसठ पैसा अर्थात् रुपया (होता था)। इस पीपर में चौसठ पैसा अर्थात् रुपया पूर्ण चरपराई अर्थात् तीखाश भरी है। तुम्हारी हिन्दी भाषा में चरपराई, हमारी गुजराती भाषा में तीखाश (कहते हैं)। अन्दर चरपराई-तीखाश पूर्ण भरी है तो घोंटने से पर्याय में बाहर आती है। वह घोंटने से नहीं आयी। घोंटने से आवे तो पत्थर और कोयला चौंसठ पहर घोंटे न, वहाँ कहाँ आती है? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : घोंटे बिना किस प्रकार आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह घोंटे बिना ही आती है। घोंटने का तो निमित्त है। अपने उपादान से प्रगट होती है। ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बातें हैं, बापू! जगत से निराली है, नाथ! आहाहा! अपनी उपादान योग्यता से पर्याय प्रगट होती है। यह कहते हैं न? अपने में स्थिर होने से '**पश्यन्ति**' प्रगट होता है। समझ में आया? अरेरे! ऐसी बातें अब, बापू! ऐसा मनुष्यपना मिला और उसमें ऐसा तत्त्व यदि नहीं समझे तो मनुष्यपना मिला, वह नहीं मिला, ऐसा हो जायेगा। आहाहा! महिमा जगत में... मानो बड़ा महात्मा हो गये और महन्त हो गये और बड़े मठ बनाये करोड़ों के और अरबों के... धूल में भी वहाँ कुछ है नहीं। समझ में आया? इस आत्मा का अन्दर जब मठ बनावे... समझ में आया?

कहते हैं, **परमात्मपद को... 'तत्रस्थाः'** शक्तिरूप जो है, स्वभावरूप आनन्द है, वह अन्दर लीन होने से वर्तमान पर्याय-दशा में परमात्मपद प्राप्त होता है। 'अप्पा सो परमप्पा।' आत्मा परमात्मस्वरूप तो शक्तिरूप से है ही। शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, भावरूप से। उसकी एकाग्रता से वर्तमान दशा में परमात्मपद प्राप्त करता है। आहाहा!

जैसे यह चौंसठ पहरी चरपराई छोटी पीपर में पड़ी ही है, परन्तु जब बाहर आवे, तब चौसठ पहरी (चरपराई) उसकी दशा में प्रगट होती है। इसी प्रकार परमात्मस्वरूप शक्तिरूप तो भगवान आत्मा प्रत्येक परमात्मस्वरूप ही है। अरे! कैसे जँचे? आहाहा! एक बीड़ी बिना चले नहीं। दो बीड़ी, सिगरेट ठीक से पीवे, तब भाई को पाखाने में दस्त उतरे। ऐसे तो लक्षण। ऐसा कहना कि तेरा आत्मा ऐसा है, प्रभु! किस गज से माप करे? आहाहा! सवेरे एक दूध और चाय का प्याला ठीक से हो और उसमें रसगुल्ला हो और थोड़ा... क्या कहलाता है? बिस्किट ठीक से खाये तो... आहाहा! अरे! धूल में भी नहीं, सुन तो सही! आहाहा! उसमें सुखी है और हमको मजा आया।

मुमुक्षु : वह तो खानेवाला जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : खानेवाला जाने। मूढ़ता है। मूढ़ है, वह जानता है कि मुझे मजा आता है। सेठ!

मुमुक्षु : मजा आया किसमें से?

पूज्य गुरुदेवश्री : माना है अज्ञानरूप से। मजा था कहाँ? आहाहा! एक बार बालक का दृष्टान्त नहीं दिया था? बालक वर्ष-डेढ़ वर्ष हो न? ज्येष्ठ महीने की धूप हो। ज्येष्ठ महीना। दूध अधिक पिया हो, दूध। उसकी माँ ने पिलाया हो और दूसरे किसी ने दिया हो। उसमें पतली दस्त हो जाये। नग्न हो। (एक) वर्ष का छोटा शरीर हो। उसे ठण्डा-ठण्डा लगे और बाहर में गर्मी हो। इसलिए हाथ छुआकर... देखा है कभी? यह तो सब हमने देखा हुआ है, अनुभव किया हुआ है। उसे हाथ छुआकर चाटे। इसी प्रकार शक्कर के स्वाद में और खाने के स्वाद में राग का विष्टा का स्वाद है। भगवान आत्मा का स्वाद उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं, नाथ!

कैसा है '**महः**'? कहते हैं कि अन्दर में चैतन्य तेज। जैसे चौंसठ पहरी शक्ति पड़ी है, वैसे यह तेज कैसा है अन्दर? चैतन्य तेज। **असंख्यात प्रदेश ज्ञान विराजमान है।** असंख्य प्रदेश है। यह बात अत्यन्त सूक्ष्म है। जैसे सोने की सांकल होती है न? अभी क्या कहते हैं? जंजीर-चैन। हजार मकोड़े की। वह मकोड़ा प्रत्येक मकोड़ा में सोना है, सोना। ऐसे हजार मकोड़ा की जंजीर है। उसी प्रकार यह आत्मा यहाँ। यहाँ...

उसके प्रदेश-अंश, जैसे मकोड़ा है, वैसे प्रदेश हैं। परन्तु हैं सलंग अखण्ड एक आत्मा। एकदम बहुत सूक्ष्म बात है। यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुई बात है। यह असंख्य प्रदेशी आत्मा है। प्रत्येक प्रदेश में अनन्त आनन्द, ज्ञान सब असंख्य (प्रदेश में) व्यापक है। आहाहा! पैर से सिर तक भगवान भिन्न अन्दर में है। यह (शरीर) तो हड्डियाँ जड़ है, मिट्टी-धूल है। आहाहा! यह तो रूपी है, मूर्त है। भगवान अरूपी है और अमूर्त है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **असंख्यात प्रदेश ज्ञान विराजमान है।** वहाँ तो चैतन्य विराजमान है। चेतन वह भगवान, उसकी चेतना जानन-देखन स्वभाव से भरपूर प्रभु अन्दर है। आहा! सर्वस्व चैतन्य दर्शन और ज्ञान उसके हैं। **और कैसा है? 'ज्ञानघनौघं' 'ज्ञानघनौघं'** वह तो **चेतनागुण का पुंज है।** आहाहा! जैसे रुई की गाँठ होती है न? धोकडुं—गाँठ पच्चीस मण की—पचास मण की। उसी प्रकार यह भगवान ज्ञान की बड़ी गाँठ है। यह चैतन्यगंज प्रभु अन्दर है। भगवान! तूने कभी देखा नहीं। तूने कभी नजर नहीं की। आहाहा! यह **'ज्ञानघनौघं'।** है? **'ज्ञानघनौघं'** तीन शब्द है। ज्ञानचेतना का घन अर्थात् गुण का ओघ अर्थात् पुंज। समझ में आया? यह किसान लोग बड़े ओघा नहीं करते? खेत में। जब पाँच सौ-हजार मण पके तब ओघा (ढ़ेर) करते हैं। उसी प्रकार यह ज्ञान के घन का महा ढ़ेर है। इतने में परन्तु इतना बड़ा! परन्तु अरूपी है न, प्रभु! अरूपी को क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। उसके स्वभाव की महत्ता से भरपूर भगवान अन्दर है। समझ में आया? यह हमारी गुजराती भाषा आ जाती है। समझ में आता है? यह तुम्हारी हिन्दी भाषा है। आहाहा!

मुमुक्षु : दिवाली नजदीक आयी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह लोग जानेवाले हैं न। जायेंगे न? दो महीने से हिन्दी चलती है। आहाहा!

और कैसा है? 'ज्ञानघनौघं'। ज्ञान, चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्यस्वभाव का घन, घन पिण्ड ओघ समूह पुंज है। आहाहा! अरेरे! ऐसा आत्मा इसने सुना नहीं। धूल के पैसे जहाँ इकट्ठे हों, पाँच-पचास लाख, करोड़ हों, वहाँ आहाहा! हम सुखी हैं।

मूढ़ है। समझ में आया? यह पैसे में सुख है, स्त्री के शरीर हड्डियाँ, माँस और चमड़ी, उसके विषय में रमने से मुझे मजा है। यह धूल... धूल। उस धूल को भोगता नहीं परन्तु उस ओर लक्ष्य जाकर, निज आनन्द को छोड़कर, 'वह ठीक है'—ऐसे राग को अज्ञानी अनुभव करता है। उस शरीर का नहीं और आनन्द का नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि एकबार सुन तो सही, प्रभु! तेरी ऋद्धि-सिद्धि अन्दर कितनी पड़ी है? आहाहा!

'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा,
अन्तर की लक्ष्मी सौ अजाची लक्षपति है,
दास भगवंत के उदास रहे जगतसों,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।'

(समयसार नाटक), बनारसीदास (कृत)। आहाहा! समझ में आया? ऋद्धि सिद्धि अन्दर में है, प्रभु! तू वस्तु है या नहीं? अस्ति है या नहीं? तत्त्व है या नहीं? है तो अनादि-अनन्त है या नहीं? अनादि-अनन्त है तो कोई कायम स्वभाव, कायम शक्ति अनादि-अनन्त है या नहीं? आहाहा! यह '**ज्ञानघनौघं**' आहाहा! प्रभु! तू तो चेतनागुण का पुंज है न! यह दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प प्रभु! तेरी चीज़ में है नहीं। उससे धर्म माने, उससे धर्म होगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न! मर जा न करके। वह सब कायक्लेश है। कठिन बात है। सम्प्रदाय में प्रचलित की अपेक्षा यह बात अलग है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **और कैसा है? समस्त विकल्प से रहित निर्विकल्प वस्तुमात्र है।** किसी भी प्रकार की वृत्ति / राग उठे, उन सबसे वह रहित है। निर्विकल्प चिदानन्द अभेद चीज़ अखण्ड आनन्दकन्द है। आहाहा! समझ में आया? एक की व्याख्या की। एकस्वरूप है। वह प्रभु शक्ति और शक्तिवान, ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। वह तो शक्तिवन्त स्वरूप पूरा परमात्मा। परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप। परम स्वरूप—अनादि-अनन्त शान्त आनन्दस्वरूप परमस्वरूप। वह एकरूप चीज़ अन्दर है। आहाहा! अरे! उसके गीत सुने नहीं कभी। आहाहा! वह चीज़ कैसी है, उसमें क्या है, वह इसने सुना नहीं। अरे! जिन्दगी चली गयी। बाहर से माने कि यह पैसे हो गये, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़।

दुनिया भी गहल-पागल, कुछ दान दे पचास लाख और करोड़ का, तो दानवीर की उपमा दे देवे। पागल के पागल सब। कहो, प्रोफेसरजी! यह अपने संस्कृत के प्रोफेसर हैं। जयपुर में बड़े प्रोफेसर हैं। यह प्रोफेसर धूल के हैं। नहीं?

मुमुक्षु : पाप का धन्धा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप का धन्धा। बड़ा प्रोफेसर भाषण दे। एल.एल.बी. और एम.ए. पढ़ा हुआ हो। एक घण्टे भाषण दे प्रोफेसर। ओहो! धूल में क्या है! इस तीन लोक के नाथ को तूने नहीं जाना। आहाहा! समझ में आया? वहाँ तक सब जाना हुआ व्यर्थ है। पाँच-पाँच हजार का वेतन और दस दस हजार का वेतन धूलधाणी है। आहाहा!

भगवान आत्मा कैसा है? एक है। एक की व्याख्या की। किसी भी प्रकार के विकल्प उसमें है ही नहीं। मैं यह शुद्ध अखण्ड हूँ, ऐसी वृत्ति उठे, वह वृत्ति भी अन्दर में है नहीं। समझ में आया? निर्विकल्प चीज़ अभेद चीज़ अन्दर पड़ी है। आहाहा! कैसा है? '**अचलं**' **कर्मसंयोग के मिटने से निश्चल है।** राग के विकल्प का नाश हो गया तो अचल है। नित्यानन्द प्रभु अचल है। अपने आनन्द से चलित नहीं है, राग में आता नहीं। आहाहा! **क्या करके ऐसे स्वरूप की प्राप्ति होती है?** एक-एक शब्द का अर्थ किया है। '**स्वमरीचिचक्रं अचिरात् संहृत्य**' सुनो! '**स्वमरीचिचक्रं अचिरात् संहृत्य**' '**स्वमरीचिचक्रं**' मृगतृष्णा जैसा झूठ पुण्य और पाप के विकल्प और यह सब फल झूठ मायाजाल है। आहाहा! मृगजल है, मृगजल। उस जल में पानी नहीं है। उसी प्रकार पुण्य और पाप तथा पुण्य-पाप के ठाठ यह सब बाहर के—धूल के (ठाठ) मृगजल हैं। आहाहा! समझ में आया?

'**मरीचि**' मृगतृष्णा का समूह। है? '**स्वमरीचिचक्रं**' अपने झूठे विकल्पों का, झूठी तृष्णा का समूह। विकल्प का जाल अन्दर। शुभ-अशुभ अनेक प्रकार के। दया, दान, व्रत, तप, सेवा, भक्ति, पूजा और नामस्करण... यह सब विकल्प का जाल है। अरर्र! कठिन लगे लोगों को। यह '**मरीचिचक्रं**' है। यह मृगतृष्णा का जल जैसा है। उसमें आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प शान्त होने से थोड़ी शान्ति तो होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है। शान्ति कहाँ आयी थी वहाँ? जितने दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा, भक्ति, नामस्मरण प्रभु... प्रभु... प्रभु करे, वह विकल्प है, राग है, दुःख है। वह आत्मा के आनन्द से विपरीत भाव है। सेठ! पैसा-बैसा थोड़ा दे। वहाँ तीन लाख का मन्दिर बनाया। तीन लाख की धर्मशाला बनायी है। वहाँ हम थे न! धूल में तीन लाख क्या, करोड़ दे न, वहाँ कहाँ धर्म था। वह तो जड़ धूल है। धूल का स्वामी होकर दे तब तो मिथ्या भ्रमणा है। पण्डितजी! यहाँ तो यह बात है, भाई! यहाँ कहीं मक्खन-बक्खन नहीं मिलता।

मुमुक्षु : वहाँ तो सब हाँ पाड़नेवाले हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तो सब हाँ पाड़नेवाले हों न, आहाहा!

यहाँ कहते हैं, '**स्वमरीचिचक्रं**' जो विकल्प का जाल सब झूठ, भ्रम, वह सब **कर्म की सामग्री...** आहाहा! यह इन्द्रियाँ पाँच। जड़, मिट्टी, धूल। यह तो मिट्टी है। अजीव है, जड़ है, मूर्त है। पुद्गल परमाणु मिट्टी अजीव है। **इन्द्रिय, शरीर...** यह शरीर। परमाणु रजकणों का पिण्ड-जत्था है यह तो। यह कहीं प्रभु आत्मा नहीं और इसमें आत्मा नहीं। आत्मा तो अन्दर भिन्न चीज़ है। आहाहा! **रागादि में आत्मबुद्धि...** देखो! जितनी कर्म की सामग्री। इन्द्रियाँ मिली, शरीर, राग, पुण्य, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना यह सब विकार है। उसमें आत्मबुद्धि—यह मेरा है—ऐसा मानना वह भ्रमण, अज्ञान, मूढ़ता है। समझ में आया? यह तो बाबा हो जाये तो बैठे, ऐसा एक व्यक्ति कहता था। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। वह अमृतलाल नहीं? झरिया... झरिया। झरिया का है न? धनबाद और धनबाद और झरिया।

मुमुक्षु : अभी मुम्बई आया था। महीने रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न, आता है। बाबा ही है। सुन तो सही! तेरी चीज़ में कोई राग है ही नहीं। तेरी चीज़ है, वह तो अन्दर निवृत्तस्वरूप भगवान विराजता है। तुझे खबर नहीं। समझ में आया? वह चीज़ तो पुण्य-पाप के विकल्प से निवृत्तस्वरूप है। निवृत्तस्वरूप न हो तो निवृत्तस्वरूप आयेगा कहाँ से? समझ में आया? भारी कठिन काम।

यहाँ कहते हैं, '**स्वमरीचिचक्रं**' यह पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभ दया, दान, व्रत, काम, क्रोध, विषयभोग वासना के भाव सब मृगतृष्णा के भाव हैं। उनमें कुछ शान्ति नहीं है, उनमें आत्मा नहीं है। आहाहा! यह '**स्वमरीचिचक्रं**' समूह। उसे **तत्कालमात्र... 'संहृत्य' विनाश करके...** अन्दर में विनाश कर डालता है। आहाहा! शान्त वीतरागमूर्ति प्रभु अन्दर अविकारी आनन्दस्वरूप में स्थिर होने से ऐसे मरीचिचक्र का तो नाश हो जाता है। आहाहा! और परमात्स्वरूप प्रगट होता है। यह विकल्प की जाल का नाश होता है। आहाहा! **तत्काल विनाश करके...** देखो! '**अचिरात्**' आहाहा! '**अचिरात्**' चिर नहीं-दीर्घ काल नहीं। यह भगवान आनन्दकन्द में जहाँ स्थित हुआ, उसी क्षण सर्व विकल्पों का नाश होता है। '**अचिरात्**' तत्काल। आहाहा! प्रकाश हुआ तो अन्धकार का नाश उसी क्षण होता है। समझ में आया? आहाहा!

सबको यह समझनेयोग्य है, बापू! बालक हो, युवक हो, वृद्ध हो, गरीब हो, स्त्री हो, पुरुष हो। वह तो सब देह के धर्म हैं। स्त्री, पुरुष और नपुंसक (देह के धर्म हैं)। पूर्णानन्द के नाथ में स्थिर होने से, नजर बनाकर स्थिर होने से, धीर होने से, स्वरूप को-पूर्ण स्वरूप को दशा में धारने से... आहाहा! यह सब विकल्पों का नाश होता है। यह अनन्त पुरुषार्थ है वहाँ। यह कहीं बातों से वड़ा हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह लोगों को कठिन लगता है। ऐ... सोनगढ़वालों ने तो व्यवहार को उत्थापित कर दिया है। ऐसा कहते हैं। चिल्लाहट मचाते हैं। मचाओ चिल्लाहट। सम्प्रदायवाले विरोध करते हैं। किसका विरोध करते हैं, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ अन्दर रागरहित, विकल्परहित पड़ी है, प्रभु! उसकी बात करते हैं और तू किसका विरोध करता है? आहाहा!

तत्काल विनाश होता है। आहाहा! **कैसा है मरीचिचक्र? 'बहिः निर्यत्' अनात्मपदार्थों में भ्रमता है।** आहाहा! यह पुण्य और पाप तथा पुण्य-पाप के फल यह स्त्री और परिवार, शरीर और धूल धाणी और इज्जत... यह सब मरीचिचक्र का फल है। **अनात्मपदार्थों में भ्रमता है। 'बहिः निर्यत्'** अन्तर स्वरूप में से निकलकर पुण्य और पाप, शुभ-अशुभ के फल में '**बहिः निर्यत्**' बाहर भ्रमता है। आहाहा! भगवान अनन्त

आनन्द के नाथ को छोड़कर यह विकल्प की जाल और विकल्प के बन्ध और उसके फल। '**बहिः निर्यत्**' बाहर निकल गया। अन्तर में से बाहर निकल गया। आहाहा! कोई इज्जत की महिमा की, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। ओहो! फूलकर गोला हो जाये। मूरख परन्तु तू आत्मा है, तेरी महिमा की तो तुझे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा! अभिनन्दन नहीं देते बड़े? लोग इकट्ठे होकर अभिनन्दन दे। तुम ऐसे हो और ऐसे हो। हो नहीं कुछ माल। कुछ पैसा खर्च किये हों और मन्दिर बनाया हो दो-पाँच लाख खर्च करके। इसलिए मानो कि आहाहा! धूल में भी नहीं, सुन न! ऐसी बात है। दुनिया के साथ मिलान खाये ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : उपाधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब उपाधि है। अनात्मपदार्थों में भ्रमता है, कहा न? अनात्म।

आत्मा है, वह तो आनन्दस्वरूप है। उसमें से पुण्य-पाप का विकल्प उठाता है, वह बहिर् भमति-बाहर भ्रमता है। बहिरचला—व्यभिचारी हो गया। आहाहा! ऐसा है। पुण्य की क्रिया के रसिया को तो कठिन पड़े। ऐसा लगे कि अरर! हाय... हाय...! हम ऐसे मन्दिर बनाते हैं। देखो! यह २६ लाख का मन्दिर है। संगमरमर का। यह तो संगमरमर का परन्तु सवेरे याद आया था कि स्फटिकमणि के महल होते हैं, रावण को, अज्ञानी को। उसमें क्या है परन्तु अब? आहाहा! वह बाहर की चीज़ है, धूल है, तुझमें कहाँ आयी और तुझसे कहाँ बनी है? आहाहा! बाहर में चल निकला। आहाहा!

'**बहिः निर्यत्**' आहाहा! अपना ज्ञानानन्द प्रभु, नित्यानन्द प्रभु स्वभाव, उसमें जितनी पुण्य-पाप के शुभ-अशुभ वृत्ति के जितने विकल्प उठते हैं, उसका बन्ध और उसका फल, वह सब '**बहिः निर्यत्**' सब बाहर की चीज़ है। तेरे अन्तर में नहीं और बाह्य चीज़ को अपनी मानना, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? कितना याद रखना इसमें एक घण्टे में? आहाहा! प्रभु! तेरी एक पल भी कहाँ है? भाई! भाषा तो देखो! मरिचीचक्रं—शुभ-अशुभ विकल्प की जाल। यह सब '**बहिः निर्यत्**'। बाहर में है, अन्दर नहीं। आहाहा! अनादि से बाहर में भ्रमा है। मैंने व्रत किये और मैंने शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, वह सब तो विकल्प है। मैंने ब्रह्मचर्य पालन

किया, मैंने स्त्री का त्याग किया है। परन्तु क्या तूने त्याग किया है ? ब्रह्म अर्थात् आत्मा के आनन्द में चरना, रमना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है। शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया और ब्रह्मचारी हो गया, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। ब्रह्मानन्द भगवान ब्रह्मचर्य। ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप प्रभु, उसमें चर्या—चरना, रमना। उस आनन्दस्वरूप में रमना, वह ब्रह्मचर्य है। शरीर से ब्रह्मचर्य तो अनन्त बार पालन किया। वह तो राग की क्रिया है, भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

'बहिः निर्यत्' भावार्थ इस प्रकार है - परमात्मपद की प्राप्ति होने पर समस्त विकल्प मिटते हैं। जो स्वरूप अन्दर है, वह दशा में प्राप्त हुआ तो सब विकल्पों का नाश होकर अकेली अतीन्द्रिय आनन्द की दशा रह जाती है। अतीन्द्रिय आनन्दरूपी दशा, अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, उसका नाम परमात्मपद, उसका नाम मुक्ति है। उसमें फिर कोई विकल्प नहीं है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१२४

(मन्दाक्रान्ता)

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योत किमपि परमं वस्तु संपश्यतोऽन्तः।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत्।।१२-१२४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'एतत् ज्ञानं उन्मग्नं' [एतत्] जैसा कहा है, वैसा शुद्ध [ज्ञानं] शुद्धचैतन्यप्रकाश [उन्मग्नं] प्रगट हुआ। जिसको ज्ञान प्रगट हुआ, वह जीव कैसा है? 'किमपि वस्तु अन्तः संपश्यतः' [किमपि वस्तु] निर्विकल्पसत्तामात्र कुछ (कोई) वस्तु, उसको [अन्तः संपश्यतः] भावश्रुतज्ञान के द्वारा प्रत्यक्षपने अवलम्बता है। भावार्थ इस प्रकार है — शुद्धस्वरूप के अनुभव के काल, जीव काष्ठ के समान जड़ है, ऐसा भी नहीं है; सामान्तया सविकल्पी जीव के समान, विकल्पी भी नहीं है; भावश्रुतज्ञान के द्वारा कुछ निर्विकल्प वस्तुमात्र को अवलम्बता है। अवश्य अवलम्बता है। 'परमं' ऐसे अवलम्बन को वचनद्वार से कहने को समर्थपना नहीं है; इसलिए कहना शक्य नहीं। कैसा है शुद्धज्ञानप्रकाश? 'नित्योद्योतं' अविनाशी है प्रकाश जिसका। किस कारण से? 'रागादीनां झगिति विगमात्' [रागादीनां] राग, द्वेष, मोह की जाति के हैं जितने असंख्यात लोकमात्र अशुद्धपरिणाम, उनका [झगिति विगमात्] तत्काल विनाश होने से। कैसे हैं अशुद्धपरिणाम? 'सर्वतः अपि आस्रवाणां' [सर्वतः अपि] सर्वथा प्रकार [आसवाणां] आस्रव, ऐसा नाम-संज्ञा है जिनकी, ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है — जीव के अशुद्ध रागादि परिणाम को सच्चा आस्रवपना घटता है, उनका निमित्त पाकर, कर्मरूप आस्रवती हैं जो पुद्गल की वर्गणा, वे तो अशुद्धपरिणाम के सहारे की हैं; इसलिए उनकी कौन बात, परिणामों के शुद्ध होनेपर, सहज ही मिटती हैं। और कैसा है शुद्धज्ञान? 'सर्वभावान् प्लावयन्' [सर्वभावान्] जितने ज्ञेयवस्तु अतीत, अनागत, वर्तमानपर्याय से सहित हैं, उनको [प्लावयन्] अपने में प्रतिबिम्बित करता हुआ। किसके द्वारा? 'स्वरसविसरैः'

[स्वरस] चिद्रूपगुण, उसकी [विसरैः] अनन्त शक्ति, उसके द्वारा। कैसी है वे? 'स्फारस्फारैः' [स्फार] अनन्त शक्ति, उससे भी [स्फारैः] अनन्तानन्तगुणी है। भावार्थ इस प्रकार है — द्रव्य अनन्त हैं, उनसे पर्यायभेद अनन्तगुणे हैं। उन समस्त ज्ञेयों से, ज्ञान की अनन्तगुणी शक्ति है। ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। और कैसा है शुद्धज्ञान? 'आलोकान्तात् अचलं' सकल कर्मों का क्षय होनेपर, जैसा उत्पन्न हुआ, वैसा ही अनन्त कालपर्यन्त रहेगा; कभी और-सा नहीं होगा। और कैसा है शुद्धज्ञान? 'अतुलं' तीन लोक में जिसका सुखरूप परिणमन का दृष्टान्त नहीं है। ऐसा शुद्धज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ।।१२-१२४।।

आसोज शुक्ल ३, शनिवार, दिनांक - १५-१०-१९७७, कलश-१२४, प्रवचन-१२२

कलशटीका, १२४ कलश है।

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योत किमपि परमं वस्तु संपश्यतोऽन्तः।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत्।।१२-१२४।।

यह आस्रव का अन्तिम अधिकार है न? अन्तिम।

खण्डान्वयसहित अर्थ - 'एतत् ज्ञानं उन्मग्नं' जैसा कहा है, वैसा शुद्ध... 'ज्ञानं' शुद्ध चैतन्यप्रकाश... आस्रवरहित होकर चैतन्यप्रकाश प्रगट हुआ, यह बतलाना है। शुभ-अशुभराग, वह आस्रव है, मलिन परिणति है। उससे रहित आत्मा का जहाँ अन्तर भान हुआ और अन्तर में लीन होकर शुद्ध चैतन्यप्रकाश प्रगट हुआ। जो आस्रव प्रगट था, उसके स्थान में शुद्धज्ञानप्रकाश हुआ। आहाहा! अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वरूप आस्रवरहित होकर अपने परमानन्द और शुद्ध चैतन्यस्वरूप की प्रगट दशा हुई, इसका नाम आस्रवरहित आत्मदशा। आहाहा! **प्रगट हुआ।**

जिसको ज्ञान अर्थात् शुद्ध चैतन्यप्रकाश प्रगट हुआ, वह जीव कैसा है? जिसे अन्तर में आत्मस्वरूप चैतन्यबिम्ब जो अनादि-अनन्त शान्त और आनन्दरस से भरा है, वह आत्मा किसे प्रगट हुआ? और कैसे हुआ? यह कहते हैं। **'किमपि वस्तु अन्तः**

संपश्यतः' 'किम् अपि वस्तु' निर्विकल्पसत्तामात्र कुछ वस्तु,... 'किम् अपि' अर्थात् कोई भी। चैतन्य आनन्दकन्द निर्विकल्प चैतन्यवस्तु। वह **'अन्तः संपश्यतः'** वह **'अन्तः'** भावश्रुतज्ञान द्वारा अनुभव में आयी है। है ? **'संपश्यतः' भावश्रुतज्ञान के द्वारा प्रत्यक्षपने अवलम्बता है।** क्या कहते हैं ? धर्मीजीव जब अपना चैतन्यस्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द का अवलम्बन लेकर आस्रव का, विकार का नाश हुआ तो **'अन्तः संपश्यतः' 'अन्तः'** चैतन्यस्वरूप को भावश्रुत द्वारा प्रत्यक्ष देखता है। ऐसी भाषा है।

'किमपि वस्तु अन्तः संपश्यतः' सत्ता निर्विकल्प वस्तु है, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मवस्तु को **'अन्तः संपश्यतः'** अन्तर में भावश्रुतज्ञान द्वारा **'संपश्यतः'। 'अन्तः'** की व्याख्या भावश्रुतज्ञान द्वारा। **'संपश्यतः'** का अर्थ **प्रत्यक्षपने अवलम्बता है।** आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। अन्तर निर्मल भावश्रुतज्ञान द्वारा अन्तर में वस्तु को अवलम्बता है। पुण्य और पाप के भाव, मलिन, दुःखरूप भाव का अभाव करके अपना चैतन्यस्वभावभाव **'अन्तः संपश्यतः'** अर्थात् प्रत्यक्षरूप से देखता है। ऐसी बातें हैं। आस्रव की अन्तिम गाथायें हैं न! धर्म, वह बहुत सूक्ष्म वस्तु है। आहाहा!

अन्तर में भगवान आत्मा चैतन्यप्रकाश का सागर भगवान आत्मा है। आस्रव, पुण्य-पाप के भाव जो मलिन और दुःखरूप है, उसका अभाव करके अन्तः चैतन्यवस्तु को अन्तर भावश्रुतज्ञान द्वारा अवलम्बन करता है और प्रत्यक्ष देखता है। यह भाषा है। **प्रत्यक्षपने अवलम्बता है।** यह धर्म की दशा प्रगट होती है। अपने अन्तर में भावश्रुत (द्वारा प्रगट होती है)। द्रव्यश्रुत नहीं, वाणी द्वारा वह प्रगट नहीं होता कि वाणी सुनने में जो विकल्प आता है, उससे भी ज्ञात नहीं होता। बहिर्मुख का लक्ष्य छोड़कर अन्तर्मुख भावश्रुतज्ञान द्वारा अन्तरंग प्रत्यक्ष **'पश्यन्ति'** अवलम्बन करता है। शुद्ध चैतन्य का भावश्रुत द्वारा अवलम्बन करता है। समझ में आया ? आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म।

अनन्त काल से किया नहीं। चार गति में भटकते-भटकते शुभाशुभभाव किये तो शुभभाव से यह मनुष्यपना या स्वर्गादि मिले। वह दुःख है। पाप से नरक और तिर्यंचपना या हल्का मनुष्यपना (मिला), वह दुःख है। चारों गति दुःखरूप है। पुण्य-पाप के फल चार गति के भव दुःखरूप है। जिसने अपने आत्मा को इस आस्रव परिणाम से लक्ष्य

छोड़कर, त्रिकाली आनन्दस्वरूप भगवान चैतन्यसत्ता स्वरूप का भावश्रुतज्ञान द्वारा अवलम्बन लिया, उसे आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव में आया। आहाहा! ऐसी बात है। आस्रव की अन्तिम गाथा (कलश) है न! आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध स्वरूप के अनुभव के काल... क्या कहते हैं? देखो! कोई ऐसा कहता है न कि अन्दर अनुभव में फिर कोई चीज़ वेदन में आती नहीं। लकड़े की भाँति निर्विकल्प हो जाता है। ऐसा नहीं है। **शुद्ध स्वरूप के अनुभव के काल जीव काष्ठ के समान जड़ है, ऐसा भी नहीं है,...** दृष्टि में कोई चीज़ आयी नहीं, ऐसा नहीं है। जड़ की भाँति नहीं है। **सामान्यतया सविकल्पी जीव के समान विकल्पी भी नहीं है,...** क्या कहते हैं? अन्तर भगवान आत्मा आनन्द का धाम प्रभु, स्वयं ज्योति सुखधाम, उस चीज़ को अनुभव करने पर वहाँ लकड़े समान जड़ भी नहीं, वैसे राग के, पुण्य-पाप के विकल्प करनेवाले की भाँति विकल्प भी नहीं। ऐसी वस्तु है। समझ में आया?

मुमुक्षु : लकड़े के समान जड़ भी नहीं और....

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ भी नहीं और सब विकल्प करते हैं, ऐसे विकल्प भी नहीं। वे कहते हैं न, विकल्प छोड़ दो... विकल्प छोड़ दो। परन्तु चीज़ क्या? चीज़ क्या है अन्दर? आनन्द में, ज्ञान में वह चीज़ ख्याल में आती है या नहीं? कि विकल्प छोड़ दो। क्या विकल्प छोड़े? यहाँ यह कहा न? अन्तर चैतन्यस्वरूप का अवलम्बन लिया है। विकल्प छोड़कर लक्ष्य में, अवलम्बन में कुछ है ही नहीं, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया? वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म। अलौकिक बात है। आहाहा! सब दुनिया में अनन्त बार किया। व्यापार-धन्धे का राग किया। राग किया, धन्धा-व्यापार कर नहीं सका। राग किया, द्वेष किया, अरे! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा भी अनन्त बार की। वह तो सब राग की क्रिया है, वह आस्रव की क्रिया है। यहाँ तो अधिकार आस्रव के अन्त का है। आहाहा!

अन्तर स्वरूप आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु के अवलम्बन से विकल्प का अभाव होता है तो वहाँ आगे जड़ जैसा भी नहीं और विकल्पी जैसा रागी और विकल्प उठता

है, ऐसा भी नहीं। वहाँ चैतन्य शुद्ध आनन्द का अवलम्बन है और भावज्ञान में आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव है, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : भंवर की भाँति स्थिर हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भंवर-फंवर यहाँ नहीं। यहाँ तो स्थिर हो जाता है। भंवर तो घूमता है और स्थिर दिखता है। ऐसा नहीं। क्या कहलाता है? वह खेलते हैं न? यह गरियो, गरियो हमारे (गुजराती में) कहते हैं। वह भौंरा ऐसे स्थिर दिखता है परन्तु वहाँ घूमता है। बहुत घूमता है। इसी प्रकार यहाँ स्थिर दिखता है और घूमता है, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो ऐसी गति से घूमता है कि मानो स्थिर हो, ऐसा अज्ञानी को लगता है। बाकी घूमता है। इसी प्रकार आत्मा में रागरहित हो तब भ्रमता है, ऐसा नहीं। अन्दर आत्मा के आनन्द में, ज्ञानस्वरूप में स्थिर होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान चालू रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर ज्ञान स्थिर चालू रहता है अन्दर में। आत्मा में रहता है। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! अनन्त काल हुआ, कभी किया नहीं। अनन्त बार मनुष्यपना मिला, अनन्त बार अरबोंपति हुआ, अनन्त बार भिखारी हुआ। मनुष्यपना निष्फल गया। आहाहा!

यह आत्मा अन्दर वस्तु, वस्तु है। शुद्ध चैतन्य परमानन्द का पिण्ड है। उसके अवलम्बन में कोई जड़ता है, ऐसा भी नहीं और विकल्प है, ऐसा भी नहीं। आत्मा अवलम्बन में है। आनन्दकन्द उसकी दृष्टि में पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? देखो!

मुमुक्षु : ध्रुवस्वभाव का अवलम्बन होवे या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ आनन्द का अनुभव है, अस्ति है। वहाँ जड़ जैसा है नहीं। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... रागरहित... यहाँ पर आस्रवरहित कहना है न? विकल्प है, राग है, दुःख है, उससे रहित। वह तो क्षणिक कृत्रिम दशा थी। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आया। अस्तिरूप से वेदन आया। कोई शून्य है, ऐसा नहीं। आहाहा! अन्दर शून्य है, कुछ खबर नहीं पड़ती, ऐसी चीज़ नहीं। समझ में आया? अन्दर लीन हुआ तो आत्मा आनन्दस्वरूप और ज्ञान का प्रकाश पर्याय में आया।

ज्ञानस्वरूप जो ध्रुव है, उसका जहाँ अवलम्बन हुआ तो पर्याय में ज्ञानप्रकाश हुआ। ऐसे अनन्त गुण का अंश प्रगट हुआ। आहाहा! अरे! ऐसी बातें! लोग बाहर से धर्म मानकर बैठ गये हैं। व्रत किये और कुछ दान किया और दो-पाँच लाख का दान करे तो ऐसा मानते हैं कि हमने कुछ धर्म किया है। धूल भी धर्म नहीं।

मुमुक्षु : लोगों की अपेक्षा से तो धर्म कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी कुछ किया नहीं। राग है, आस्रव है, दुःख है। आहाहा!

यहाँ तो दुःख के जो परिणाम आस्रव को छोड़ने से कोई अस्ति चीज़ दृष्टि में आयी या शून्य है? ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप का अस्तित्व था, वह छूट गया तो अन्दर शून्य हो गया या किसी चीज़ का अनुभव रहा? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, **सामान्यतया सविकल्पी जीव के समान विकल्पी भी नहीं है,...** मैं यह ज्ञान हूँ और आनन्द हूँ, ऐसा जो राग, विकल्प है, वह भी नहीं। तथा शून्य हो जाये, ऐसा भी नहीं। वहाँ आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा के अस्तित्व के अवलम्बन से पर्याय में शान्ति और आनन्द आता है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा धर्म अब! अरे, भाई! यह तो धीर का काम है, बापू! जिसने अनन्त काल में चैतन्यद्रव्य का अवलम्बन एक समय कभी लिया नहीं। ऐसा का ऐसा बहुत तो पर्याय का अवलम्बन, पुण्य-पाप का अवलम्बन, निमित्त का अवलम्बन, उसमें अनादि से पड़ा है।

यहाँ परमात्मा तो ऐसा फरमाते हैं, सन्त कहते हैं, वह परमात्मा ही कहते हैं कि जैसे यह पुण्य-पाप के विकल्प छूट जाते हैं, इसलिए मानो शून्य हो जाये। ऐसा है? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : राग से शून्य होता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से शून्य होता है परन्तु आनन्द से अस्तित्वरूप से अशून्यरूप से भासित होता है। आहाहा!

भावश्रुतज्ञान के द्वारा कुछ निर्विकल्प वस्तुमात्र को अवलम्बता है। देखो! कोई अस्ति तत्त्व महाप्रभु अन्दर ह, उसे अवलम्बता है। विकल्प छूट गये, इसलिए कुछ अवलम्बन रहा नहीं, (ऐसा नहीं है)। लोग ऐसा मानते हैं कि अरे! यह भाव—

शुभभाव यदि छोड़ेंगे तो हम शून्य हो जायेंगे। शुभभाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, विकल्प जो है, वह छोड़ूँगा तो शून्य (जो जाऊँगा)। परन्तु वह छोड़ने से शून्य नहीं हुआ जाता। (उसे) छूटने से अस्ति प्रभु भगवान का अवलम्बन होगा। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा मार्ग। करना क्या, यह सूझ पड़े नहीं। अन्दर जाना, जहाँ चीज़ भगवान विराजता है, वहाँ (जाना)। चैतन्यस्वरूप परमात्मस्वरूप से विराजमान आत्मा है, वहाँ जाना। वहाँ अस्तित्व है। उस अस्तित्व के अवलम्बन से अस्तित्व का वेदन आता है। दुःख का जो वेदन है, उसके जाने से शून्य हो जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा! उस समय कहीं आनन्द नहीं है। शरीर में नहीं, पैसे में नहीं, इज्जत में नहीं, कीर्ति में नहीं। यह पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, उसमें नहीं। ऐसा प्रभु आनन्द आत्मा है। अतीन्द्रिय सुख का सागर प्रभु, उसके अवलम्बन से पर्याय में आनन्द के अस्तित्व की मौजूदगी अनुभव में आती है। आस्रव का अभाव हुआ, परन्तु स्वभाव की शान्ति की मौजूदगी का अनुभव है। आहाहा! ऐसी बात! यहाँ दया पालो और व्रत करो और... शोरगुल करे बेचारे। 'जनदर्शन' (पत्रिका) में तो ऐसा बहुत आता है। आहाहा! अरे! यह सोनगढ़वाले व्यवहार को उत्थापित कर डालते हैं, अमुक करते हैं। अरे! प्रभु! सुन तो सही, भाई!

मुमुक्षु : एक-दो दिन यहाँ आकर सुनना तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने कहाँ। उन्हें वह भाग्य भी कहाँ? ऐसी चीज़ सुनने को भाग्य चाहिए। आहाहा! यह वस्तु, बापू! यह चीज़ कुछ... आहाहा! भवि भागन जोगे,... आता है न? भगवान की ध्वनि भव्य के भाग्ययोग से निकलती है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? क्या तू पुण्य-पाप के आस्रव में है? तू शरीर में है? पर्याय की एक समय की दशा में तेरी पूरी चीज़ है? तेरी चीज़ तो अन्दर पड़ी है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल प्रभु... आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान का कन्द वह, उसके अवलम्बन से—उसके आधार से पर्याय में मौजूदगी शान्ति और आनन्द की तुझे मौजूदगी मिलेगी। आस्रव का अभाव होने से शून्य हो जायेगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश! आया?

भावश्रुतज्ञान के द्वारा कुछ निर्विकल्प वस्तुमात्र को अवलम्बता है। अवश्य

अवलम्बता है। अवश्य अन्दर अवलम्बता है। आहाहा! पुण्य-पाप की वृत्ति, विकल्प छूट गये तो कोई अवलम्बन रहा नहीं, बाहर का अवलम्बन था, वह चीज़ छूट गयी, ऐसा नहीं। छूट गया तो भगवान आत्मा का अवलम्बन आया। आहाहा! पर्याय उस ओर ढली तो आत्मा का-भगवान का साक्षात्कार हुआ। अब ऐसी बातें।

मुमुक्षु : अवलम्बन लेता है, वह निश्चय या व्यवहार?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अवलम्बन लेता है, वह पर्याय है, ऐसा भेद भी वहाँ नहीं है। यहाँ तो समझाना है। अन्तर्मुख दृष्टि हुई तो अवलम्बन लिया, ऐसा कहा जाता है। परन्तु यह दृष्टि है और मैं अवलम्बन लेता हूँ, ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं है। आहाहा! अवलम्बन कौन दे वहाँ? द्रव्य-वस्तु पूरी पड़ी है। पर्याय उस ओर झुकती है तो अवलम्बन लिया, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। कहने में तो ऐसा ही आवे न! भाव तो यह है। उसका आश्रय करना। कौन करे? यह पर्याय उसका आश्रय यह... यह... ऐसा विकल्प उठे, वह तो विकल्प उठा। मात्र वह चीज़ है, उसके सन्मुख हुआ तो आश्रय-अवलम्बन लिया, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! ऐसा मार्ग। प्रभु का मार्ग है शूरों का।

मुमुक्षु : सन्मुख होने की क्या आवश्यकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की आवश्यकता हो, उसे सन्मुख होना। संसार में भटकना हो, उसे विमुख होना। सन्मुख अर्थात् सत्... सत् प्रभु के सन्मुख। उसमें मुख करना। सत् साहेब चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण सत्मुख, उस ओर मुख करना। पर्याय को उस ओर झुकाना। आहाहा! बहुत सूक्ष्म हैं, भाई!

अरे! दुःखी... दु.खी। यह दुःखी प्राणी है, हों! यह कषाय की अग्नि में जल रहे हैं। समझ में आया? यह राजा और सेठिया करोड़पति दिखाई दे, वे कषाय की अग्नि से (सुलग रहे हैं)। 'राग दाह दहे सदा, तातैं समामृत सेविये' इस राग की दाह से जल रहे हैं। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! जैसे जीवित चूहे को अग्नि में सेंके, वैसे इस राग में पूरा चैतन्यजीवन सिंकता है, भाई! तुझे खबर नहीं। छहढाला में यह आता है? नहीं? 'राग दाह दहे सदा'। चाहे तो शुभराग हो या चाहे तो अशुभराग हो। दुकान पर

धन्धे में बैठे, छह घण्टे, सात घण्टे सोवे और छह घण्टे, सात घण्टे दुकान पर बैठे। वह सब कषाय की अग्नि में सुलग रहे हैं। इसकी अपेक्षा और धर्म के नाम से आवे। कोई दया, दान, भक्ति, पूजा (करे) वह भी राग की अग्नि से जल रहे हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

कुछ निर्विकल्प वस्तुमात्र... भगवान (आत्मा) अस्ति महाप्रभु चैतन्यरत्नाकर... आहाहा! उसे अवश्य अवलम्बता है। आस्रव छूटता है तो उसे अवश्य अवलम्बता है। आहाहा! **अवश्य अवलम्बता है। 'परमं' ऐसे अवलम्बन को वचनद्वार से कहने को समर्थपना नहीं है,...** आहाहा! क्या कहना? शब्द क्या कहना? ऐसा कहते हैं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु, वर्तमान पर्याय में अवलम्बन करना, वह कैसे कहना? भाषा क्या करना? समझ में आया? आहाहा! **'परमं' वचनद्वार से कहने को समर्थपना नहीं है, इसलिए कहना शक्य नहीं।** भाषा देखो! यह तो शब्द से ऐसा कहा। दूसरी जगह आता है। वचन से कहा नहीं जाता, परन्तु ज्ञान है, ऐसा कहते हैं, ऐसा आता है। इस ओर कहीं आता है। कलशटीका में। कहा जाता नहीं, परन्तु ज्ञान है, इतना कहते हैं। आहाहा! ज्ञान अर्थात् आत्मा है। उसे राग के विकल्प से रहित होने पर भगवान ज्ञानस्वरूप दृष्टि में आता है, इतना कहते हैं। आहा! समझ में आया? यह कहीं है। इस ओर कहीं है।

कैसा है शुद्ध ज्ञानप्रकाश? भगवान प्रभु कैसा है अन्दर? आहाहा! जिसे वर्तमान भावश्रुतज्ञान अवलम्बता है, वर्तमान निर्मलपर्याय जिसका अवलम्बन करती है, वह चीज़ अन्दर कैसी है? भगवान आत्मा है कैसा? **'नित्योद्योतं'** आहाहा! **अविनाशी है, प्रकाश जिसका।** आहाहा! ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... अविनाशी चैतन्य का प्रकाश वह चीज़ अन्दर है। समझ में आया? अविनाशी ध्रुव वह **'नित्योद्योतं'** प्रभु। नित्य कायम प्रकाशरूप ऐसी चीज़ अन्दर है। आहाहा! **किस कारण से?** ऐसा अविनाशी प्रकाश है, जिसके अवलम्बन से प्रगट हुआ, वह किस कारण से? **'रागादीनां झगिति विगमात्'** आहाहा! राग, द्वेष, पुण्य, पाप, दया, दान, व्रतादि का राग, वह सब **मोह की जाति के हैं जितने असंख्यात लोकमात्र अशुद्धपरिणाम...** आहाहा!

मुमुक्षु : आपने कहा न? १४१ कलश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : १४१ ? यह आया था, एक बार आया था। वह नहीं, दूसरी बात है। कहा नहीं जा सकता परन्तु, ऐसा शब्द है। यह इसमें नहीं आता। वचनमात्र से कहा नहीं जा सकता, ऐसा है। जैसा यहाँ है और वैसा है। आहाहा! क्या कहते हैं ?

यह विकल्पमात्र छोड़कर अवलम्बन लिया तो उस अवलम्बन से इसमें हुआ क्या ? चैतन्यस्वभाव ध्रुव का अनुभव हुआ, श्रुतज्ञान ने अवलम्बन लिया तो हुआ क्या ? **'रागादीनां झगिति विगमात्' राग, द्वेष, मोह की जाति के हैं, जितने असंख्यात लोकमात्र अशुद्धपरिणाम...** आहाहा! शुभपरिणाम भी असंख्य प्रकार के हैं और अशुभभाव भी असंख्य प्रकार के हैं। **उनका... 'झगिति' तत्काल... 'विगमात्' 'झगिति' तत्काल... 'विगमात्' तत्काल विनाश होने से।** जहाँ आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अवलम्बन लिया, वहाँ आस्रव का तत्काल नाश होता है, उस समय में नाश होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : उत्पन्न ही नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उत्पन्न नहीं होता, इसलिए नाश हो गया। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा सूक्ष्म मार्ग। लोगों ने बाहर में सम्प्रदाय में स्थूल कर डाला। आहाहा! अरूपी प्रभु, उसमें भी उसके परिणाम-पर्याय तो बहुत सूक्ष्म, द्रव्य स्वरूप सूक्ष्म, पर्याय—एक समय की दशा सूक्ष्म। आहाहा! वह पर्याय पर्यायवान की ओर झुकी तो तत्काल आस्रव का नाश होता है। आहाहा! यहाँ आनन्द उत्पन्न हुआ, उसी समय में आस्रव की उत्पत्ति नहीं हुई तो उसका नाश हुआ, ऐसा कहने में आता है। भाषा तो बहुत सादी है, भाई! आहाहा!

कैसा है अशुद्धपरिणाम ? पुण्य और पाप के भाव असंख्य प्रकार के, असंख्य प्रकार के। **'सर्वतः अपि आस्त्रवाणां' सर्वथा प्रकार आस्रव ऐसा नाम-संज्ञा है जिनकी,...** लो। कहते हैं कि वे असंख्य प्रकार के शुभ और असंख्य प्रकार के अशुभ, उनका आस्रव नाम—संज्ञा है। आहाहा! उस अशुद्ध परिणाम का आस्रव संज्ञा—नाम है। जिससे नये कर्म आते हैं। आहाहा! **सर्वथा प्रकार आस्त्रव ऐसा नाम-संज्ञा है जिनकी, ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है - जीव के अशुद्ध रागादि परिणाम को सच्चा आस्त्रवपना घटता है।** ऐसा कहते हैं। क्यों ? वे कर्म आते हैं न ? कर्म। वे तो निमित्त। वह तो आस्त्रव

हो तो आते हैं। वास्तविक आस्रव तो पुण्य और पाप और दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, काम, क्रोध के भाव, वे आस्रव हैं। आहाहा! वे मलिन परिणाम हैं। आहाहा!

जीव के अशुद्ध रागादि परिणाम को सच्चा आस्रवपना घटता है। ऐसे कर्म आते हैं न? उसे भी आस्रव कहा जाता है न? कहते हैं, परन्तु वह तो निमित्त है। यहाँ उन्हें सहारा आस्रव का है, उस भाव का सहारा है, तब वे आते हैं। वास्तव में वह आस्रव नहीं, आस्रव तो यह है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, यह पापआस्रव। और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा पुण्यआस्रव है। आहाहा! दोनों आस्रव हैं।

मुमुक्षु : सच्चा आस्रव अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा अर्थात् यह अशुद्ध परिणाम, यह सच्चा (वास्तविक) आस्रव है। कर्म आवे, वह सच्चा आस्रव नहीं। कर्म आवे वह तो उसके सहारे है। आस्रव दोनों को कहा जाता है न? द्रव्यास्रव और भावास्रव। भावास्रव अशुद्ध परिणाम। द्रव्यास्रव रजकण आते हैं वे। परन्तु वह सच्चा आस्रव नहीं है, सच्चा आस्रव यह है।

मुमुक्षु : जीव आस्रव।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, सच्चा यह एक ही है। सच्चा यह एक ही है। आहाहा!

अशुद्ध रागादि परिणाम को सच्चा आस्रवपना घटता है। इतना है। वहाँ यह नहीं लगाया। **उनका निमित्त पाकर...** यह शुभ-अशुभभाव का **निमित्त पाकर कर्मरूप आस्रवती...** कर्मरूपी आस्रवती... **है जो पुद्गल की वर्गणा वे तो अशुद्धपरिणाम के सहारे की हैं,...** वह तो अशुद्ध परिणाम थे तो कर्म आये। वास्तव में तो अशुद्ध परिणाम, वही आस्रव है। समझ में आया? जहाज में छिद्र पड़ा, वही आस्रव है। पानी आता है, वह तो बाद में। इसी प्रकार कर्म रजकण आते हैं, परन्तु उसका सहारा-निमित्त कौन? अशुद्ध भाव। तो अशुद्ध भाव ही सच्चा आस्रव है। आहाहा! चाहे तो यह दया पाले और व्रत करे, अपवास करे और भक्ति करे, दान दे, वे सब परिणाम आस्रव हैं। उनमें कहीं धर्म का अंश नहीं।

मुमुक्षु : परसन्मुख के भाव में....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर परसन्मुख का भाव है। आहाहा! स्व का आश्रय तो उसमें हुआ नहीं। यहाँ लोगों को पुण्य के परिणाम में आने का ठिकाना नहीं होता। पूरे दिन पाप, पाप और पाप। यह कमाना और भोग और यह विषय और यह पुत्र और स्त्री। आहाहा! ऐसे पाप के परिणाम, वे मुख्य आस्रव। उनमें से छूटकर कदाचित् दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा करके, शास्त्र श्रवण किया, शास्त्र वाँचन किया, वह पुण्यास्रव है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, प्रभु! भगवान आत्मा तो आस्रवरहित है।

कहते हैं कि पुण्य और पाप के जितने भाव... इसका विवाद करते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में व्रत को आस्रव कहा है। बाह्य व्रत पालते हैं न? दया, दान, पंच महाव्रत, वह तो आस्रव है। और राग अर्थात् वह सच्चा आस्रव है। आहाहा! फिर नये कर्म आते हैं, वह तो द्रव्यकर्म है। उस द्रव्यकर्म का सहारा तो इस परिणाम का है। इसलिए वास्तव में तो अशुद्ध परिणाम है, वही आस्रव है। आहाहा! भगवान आत्मा तो उस आस्रव से रहित है। आहाहा! लोगों को बेचारों को कठिन लगता है।

अशुद्धपरिणाम के सहारे की हैं, इसलिए उनकी कौन बात... कर्म जो आते हैं, वह तो पुण्य-पाप के अशुद्धभाव के निमित्त से आते हैं। वास्तविक चीज़ तो अशुद्धभाव, वह आस्रव है। कर्म आते हैं, उनकी क्या बात करना? वह तो जड़ है। समझ में आया? आहाहा! **इसलिए उनकी कौन बात, परिणामों के शुद्ध होने पर सहज ही मिटती है।** आहाहा! परिणामों के शुद्ध होने पर, उन शुभ और अशुभ परिणाम से रहित भगवान चैतन्य शुद्ध पवित्र प्रभु का आश्रय लिया, तब शुद्ध परिणाम हुए। शुद्ध परिणाम हुए तो अशुद्ध परिणाम मिट जाते हैं। आहाहा! है? **परिणामों के शुद्ध होने पर...** यह व्रत, तप, भक्ति, अपवास और यात्रा, वे परिणाम तो अशुद्ध हैं, आस्रव हैं। ऐसी बात! लोग उन्हें धर्म मानते हैं। वे अशुद्ध परिणाम, शुद्ध परिणाम होने पर सहज ही मिटते हैं। आहाहा! अर्थात् क्या कहते हैं? आत्मा शुद्ध चैतन्य का अवलम्बन लेकर शुद्ध परिणाम हुए तो अशुद्ध परिणाम उत्पन्न होते ही नहीं, तो सहज मिट जाते हैं। आहाहा!

और कैसा है शुद्ध ज्ञान? अन्दर जो आत्मा प्रगट हुआ, पुण्य-पाप के आस्रव से रहित अन्तर भावश्रुतज्ञान द्वारा चैतन्य का अवलम्बन लिया, अब फिर कहते हैं कि कैसा

ज्ञान प्रगट हुआ? पूर्ण। **सर्वभावान् प्लावयन्' 'प्लावयन्' जितने ज्ञेयवस्तु...** जगत में जाननेयोग्य जितने चीज़—अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, उनकी अनन्त पर्यायें—अवस्थायें। आहाहा! **जितने ज्ञेयवस्तु अतीत, अनागत, वर्तमानपर्याय सहित हैं...** प्रत्येक पदार्थ—आत्मा और परमाणु और धर्मास्ति आदि छह द्रव्य, प्रत्येक चीज़ अपनी पर्यायसहित विराजमान है। किसी के साथ सम्बन्ध नहीं। प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्यायसहित है। आहाहा! पर्यायसहित ही है। प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्यायसहित है। इसका अर्थ क्या? कि यह आत्मा और दूसरे आत्मायें और अनन्त परमाणु, प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्यायसहित है। उसकी पर्याय दूसरा करे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह शरीर है, देखो! यह इसकी पर्याय है। तो ये परमाणु पर्यायसहित ही हैं। आत्मा ने चलाने की पर्याय बनायी, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा निकलती है, वह भी पर्यायसहित परमाणु है। परमाणु जो भाषा के हैं, वह पर्यायसहित ही है। उसकी पर्याय आत्मा बना सके, (ऐसा नहीं है)। इसलिए प्रत्येक द्रव्य, प्रत्येक पदार्थ अनन्त भगवन्त परमेश्वर ने जो देखे, वे प्रत्येक पदार्थ पर्यायसहित है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पर्याय बिना का कोई द्रव्य होगा? पर्याय शब्द से (आशय) अपना कार्य। कार्य बिना का कारण होगा? प्रत्येक द्रव्य में पर्याय का कार्य स्वयं से स्वतन्त्र होता है। आहाहा!

जितनी जाननेयोग्य वस्तु है अतीत—भूतकाल, अनागत—आगामी काल और वर्तमान—तीनों काल में प्रत्येक द्रव्य पर्यायसहित है। आहाहा! अनन्त काल गया तो प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्याय—अवस्थासहित है। वर्तमान में भी जो द्रव्य है, वह अपनी पर्यायसहित है। भविष्य में भी द्रव्य रहेगा, वह अपनी पर्यायसहित रहेगा। आहाहा! **उनको अपने में प्रतिबिम्बित करता हुआ।** आहाहा! भूतकाल, वर्तमान और भविष्य प्रत्येक अनन्त द्रव्य, प्रत्येक द्रव्य पर्यायसहित है, उसे ज्ञान प्रत्यक्ष करता है। आहाहा! है प्रतिबिम्बित करता हुआ। प्रतिबिम्बित अर्थात् जो है, ऐसा यहाँ ज्ञान हो जाता है। आहाहा! भविष्य की अनन्त पर्यायें, उन पर्यायोंसहित द्रव्य है, उसका यहाँ ज्ञान हो जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय का अन्त तो कभी आता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का अन्त नहीं तो अन्त नहीं—ऐसा देखते हैं। अन्त नहीं, पर्यायसहित द्रव्य का अन्त नहीं, ऐसा देखते हैं। आहाहा! यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि प्रत्येक द्रव्य जो वस्तु है, आत्मा और परमाणु आदि छह द्रव्य, छह द्रव्य अनन्त हैं। आत्मा अनन्त हैं, परमाणु अनन्त हैं, कालाणु असंख्य हैं, धर्मास्ति-अधर्मास्ति-आकाश एक (-एक) है। परन्तु प्रत्येक द्रव्य प्रत्येक काल में अपनी पर्यायसहित है। आहाहा! वह प्रत्येक द्रव्य परद्रव्यसहित है—ऐसा तीन काल में कोई नहीं है। आहाहा!

यहाँ आत्मा अपनी पर्यायसहित है, यह शरीर अपनी पर्यायसहित है। शरीर अपनी पर्यायसहित है, आत्मा अपनी पर्यायसहित है। समझ में आया? उसमें कार्मणशरीर है, वह भी अपनी पर्यायसहित शरीर है। तैजसशरीर है वह भी अपनी पर्यायसहित तैजसशरीर है। आहाहा! परपर्यायसहित है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्यायसहित है। अपनी पर्यायसहित प्रत्येक द्रव्य है। आहाहा! अब यह स्त्री, पुत्र आत्मा के, लक्ष्मी आत्मा की कहाँ से आ गयी? लगा है न कुछ।

मुमुक्षु : तैजसशरीर अपनी पर्याय में है, कार्माणशरीर अपनी पर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक-प्रत्येक पदार्थ। प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्यायसहित है। उसकी पर्याय दूसरे से है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह चश्मा है तो अपनी पर्यायसहित है। ऐसे-ऐसे पर्याय होती है (वह उससे होती है)। इस शरीर की पर्यायसहित है, इसलिए चश्मा की पर्यायसहित है, ऐसा नहीं। प्रत्येक परमाणु अपनी पर्यायसहित है। प्रत्येक काल में। आहाहा!

जहाँ आत्मा का भान हुआ, आस्रवरहित, पूर्ण रीति से आस्रवरहित जहाँ हो गया, आहाहा! वहाँ **अपने में प्रतिबिम्बित करता हुआ।** आहाहा! अपने ज्ञानस्वभाव में प्रतिबिम्बित। प्रति अर्थात् जो चीज़ जहाँ जैसी है, वैसी यहाँ ज्ञात होती है। आहाहा! बिम्ब वह है, यहाँ प्रतिबिम्ब होता है। उस प्रकार की पर्याय यहाँ ज्ञान में आ जाती है। उस प्रकार का ज्ञान हो जाता है, हों! पर्याय नहीं आती। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म!

यहाँ कहते हैं कि यह शरीर है, वह अपनी पर्यायसहित है। अपना ज्ञान पररूप से जानता है और अपनी पर्यायसहित है, ऐसा अपने को जानता है। समझ में आया? और पूर्ण ज्ञान जहाँ है, वहाँ तीनों काल के द्रव्य, तीनों काल की पर्यायसहित है, ऐसा जानता है। आहाहा! समझ में आया? भविष्य की पर्याय अभी हुई नहीं, परन्तु यहाँ तो पर्यायसहित द्रव्य होगा, ऐसा ही यहाँ जानता है। आहाहा! ज्ञान का स्वभाव अचिन्त्य है। जो पर को स्पर्श किये बिना, पर का लक्ष्य और अवलम्बन किये बिना, अपने आश्रय से जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसमें तीन काल के द्रव्य पर्यायसहित ज्ञान में ज्ञात होते हैं। आहाहा!

जो अरिहन्त होते हैं, वह केवलज्ञान अभी है और बाद में भी केवलज्ञान पर्यायसहित ही है। तो वह अनन्त केवली, सिद्ध जो हैं, वे प्रत्येक पर्यायसहित हैं। उन्हें यहाँ केवलज्ञान है, वह प्रत्येक पर्यायसहित द्रव्य को जानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा याद कब रखना? पूरे दिन उसमें रहना न... प्रभु! मार्ग ही अलग, भाई! आहा! तेरी ज्ञान की शक्ति इतनी है कि जब पर्याय में प्रगट होती है, तब आस्रवरहित होता है, तब उस पर्याय में केवलज्ञान पर्याय होती है और वह पर्याय तीन काल के द्रव्य की पर्यायसहित द्रव्य ज्ञान में ज्ञात होते हैं। वह पर ज्ञात होते हैं, ऐसा कहना भी व्यवहार है। अपनी पर्याय की सामर्थ्य में तीन काल के पर्यायसहित द्रव्य अपनी पर्याय के सामर्थ्य में ज्ञात (हो जाते हैं)। पर्याय जानी, उसमें ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा!

किसके द्वारा? अपने में प्रतिबिम्बित करता है। आहाहा! '**स्वरसविसरैः**' आहाहा! **चिद्रूप गुण, उसकी अनन्त शक्ति,...** उसमें संदोह शब्द रखा है। सन्दोह-पेटी। यह भगवान ज्ञान की पेटी है। संस्कृत में संदोह शब्द है। संदोह अर्थात् बड़ा सन्दूक। ज्ञानसन्दूक अपना ऐसा है कि अनन्त... अनन्त... अनन्त... सब जाने, ऐसी शक्ति अन्दर में पड़ी है। आहाहा! किसी का कुछ करना, वह इसमें नहीं। सेठ! साईकिल लेकर घूमना और चारों ओर ग्राहक बनाना, वह क्रिया कर नहीं सकता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कुछ तो करना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : राग करता है न! यह तो कहा न? सेठ पहले बहुत घूमते थे।

शुरुआत में साईकिल में जाये और ग्राहक बनावे। ऐसा सुना था, हों! कोई कहे। हम कहाँ देखने गये थे! सेठ जाते थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य कहते हैं। परन्तु वहाँ करते क्या थे? विकल्प, राग। साईकिल लेकर जाते, वह क्रिया तो जड़ की है, क्योंकि पर्यायसहित द्रव्य है। उस पर्याय को आत्मा करे ऐसा तो है नहीं। आहाहा!

कहते हैं, '**स्वरसविसरैः**' अपने रस का बड़ा गोदाम पड़ा है। चिद्रूप गुण है। आहाहा! उसकी अनन्त शक्ति। अन्दर अनन्त गुण का धाम भगवान। अनन्त शक्ति उसमें है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी अनन्त गुण और अनन्त द्रव्य को जाने, ऐसा सन्दूक है। उसकी एक पर्याय जाने, ऐसा संदोह—बड़ा सन्दूक है। आहाहा! अरे! जिसके स्वभाव की क्या बात करना! भले एक समय हो, परन्तु जिसका स्वभाव स्वतः स्वरूप शक्ति स्वतः सहजरूप से पर्याय (होती है)... आहाहा! उस पर्याय में अनन्त शक्ति है। लोकालोक जानने की शक्ति। आहाहा! **अनन्त शक्ति, उसके द्वारा। कैसी हैं वे? 'स्फारस्फारैः' अनन्त शक्ति, उससे भी अनन्तानन्तगुणी है।** आहाहा! एक-एक पर्याय में अनन्त शक्ति, ऐसे-ऐसे अनन्त गुण। ऐसे अनन्त गुण, पर्याय में ज्ञात होते हैं। ऐसी अनन्त पर्याय, पर्याय में ज्ञात होती है। आहाहा! '**स्फारस्फारैः**' अनन्त-अनन्त। आहाहा!

द्रव्य अनन्त है, उनसे पर्यायभेद अनन्तगुणे हैं। उन समस्त ज्ञेयों से ज्ञान की अनन्तगुणी शक्ति है। आहाहा! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में सर्व ज्ञेयों की जितनी सामर्थ्य है, उससे अनन्तगुणी सामर्थ्य है। उससे अनन्तगुणा होता तो भी ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होता, ऐसा बड़ा सन्दूक। पर्याय का सन्दूक इतना है। गुण के, द्रव्य के सन्दूक की तो क्या बात करना! आहाहा! समझ में आया? **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** आहाहा! द्रव्य का स्वभाव है और पर्याय का स्वभाव ऐसा है, ऐसा कहते हैं। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ४, रविवार, दिनांक - १६-१०-१९७७, कलश-१२४, १२५ प्रवचन-१२३

कलशटीका चलती है। अन्तिम चार-पाँच लाईनें हैं। क्या अधिकार है? कि आत्मा जो है, वह तो शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति प्रभु है। उसमें मिथ्याश्रद्धा और शुभ-अशुभभाव, उसे आस्रव कहते हैं। मिथ्याश्रद्धा—पर में सुख है, परपदार्थ से मुझे लाभ है, पाप के परिणाम में मिठास है, शुभभाव में धर्म है, ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व महापाप, महाआस्रव है और इसके साथ शुभ-अशुभ (भाव) होना, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि भाव, वे भी शुभास्रव, पुण्यास्रव है, मलिन परिणाम है। आहाहा और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, यह काम-धन्धे के परिणाम, वे सब पाप हैं। वे पाप के परिणाम—भाव, पुण्य के भाव और मिथ्यात्वभाव, ये तीनों मलिन परिणाम हैं और ये तीनों बन्ध के कारण हैं। तीनों को आस्रव कहते हैं। इस आस्रव को रोंधता है। अन्त में यह (बात) आयी न?

ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। कैसा? निज आनन्दस्वरूप का भान होकर यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, आहा! ऐसे आनन्द का वेदन-अनुभव होकर पुण्य-पाप और मिथ्यात्व के आस्रव का रुक जाना और आत्मा के चैतन्य के प्रकाश का—द्रव्यस्वभाव का प्रगट होना। ऐसी भाषा है। जीतूभाई! ऐसी बात है।

और कैसा है शुद्ध ज्ञान? जो प्रगट हुआ चैतन्यसूर्य। आत्मा अन्दर चैतन्य ज्ञानसूर्य है। आहाहा! यह (बाहर का) सूर्य तो जड़ है। इसका प्रकाश भी जड़ है। इसका प्रकाशक चेतन है। जिसकी सत्ता में यह ज्ञात होता है, वह चैतन्यसत्ता, यह आत्मा है। इस आत्मा के अन्तर में अनुभव होकर ज्ञान का स्वभाव, जो स्वरूप है, वह प्रगट हुआ, उसकी बात करते हैं। **कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'आलोकान्तात् अचलं' सकल कर्मों का क्षय होने पर...** आहा! यह अन्तिम बात है न! पूरा कर्म का क्षय-नाश होने पर। **जैसा उत्पन्न हुआ, वैसा ही अनन्त कालपर्यन्त रहेगा,...** चैतन्यसूर्य अपने स्वभाव में जो अनन्त ज्ञान, आनन्द भरे हैं, उसका अनुभव करके अन्तर्मुख होकर, स्थिरता करके जो शक्ति में था, वह पर्याय में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द प्रगट हुए, वे जैसे प्रगट हुए, वैसे रहेंगे। सेठ! सब अनजानी चीज़ है।

अरे! दुनिया को कहाँ आत्मा की पड़ी है? मेरा क्या होगा? आहाहा! अरे! यह देह पड़ी रहेगी। देह तो हड्डियाँ, चमड़ी, जड़ मिट्टी धूल है। इसका तो नाश हो जायेगा। राख (हो जायेगी)। फिर आत्मा कहाँ जायेगा? आत्मा वस्तु है, वह तो अनादि-अनन्त नित्य वस्तु है। आहाहा! तो भविष्य में वह कहाँ रहेगा? अनन्त काल रहना है। तो जिसने यह पुण्य-पाप और मिथ्यात्वभाव का सेवन किया, उसे भविष्य में अनन्त संसार में भटकना है। समझ में आया? वह तो भविष्य में कौआ, कुत्ता, चींटी, कुंजर, नरक, पशु, ऐसे भव करके परिभ्रमण करेगा।

कहते हैं कि जिसे इस भवभ्रमण का नाश होता है, उसे अपना आनन्दस्वरूप भगवान चैतन्य का पुंज प्रभु, उसके आश्रय से निर्मलदशा जो पूर्ण प्रगट हुई, वह कायम रहेगी। समझ में आया? है? यह तो तत्त्व की बात है। सूक्ष्म है। यह कहीं कथा-वार्ता नहीं। आहाहा! अनन्त काल में कभी किया नहीं। समझ में आया? इस दुनिया के क्रियाकाण्ड में पुण्य और पाप के शुभाशुभभाव करके परिभ्रमण करता है। चौरासी में अवतार (करता है)। वह दु:खी है। यह पैसेवाला जो कहलाता है न? जो करोड़ोंपति और अरबोंपति बड़े भिखारी दु:खी हैं। अपनी चीज़ में क्या भरा है, इसकी तो खबर नहीं और परचीज़ मिले तो प्रसन्न होते हैं। माँगनेवाले हैं, भिखारी हैं। बराबर होगा? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जिसने... आहाहा! मिथ्याश्रद्धा और पुण्य-पाप का आस्रव मलिन, जिसने आत्मा के अनुभव द्वारा रोक लिया... आहाहा! आत्मा में तो ज्ञान और आनन्द भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द, हों! यह इन्द्रिय का सुख जो अज्ञानी मानता है, विषय में सुख है और स्त्री में सुख है और पैसे में सुख है, वह तो मूढ जीव है। सुख कैसा? वहाँ तो दु:ख है। आहाहा! इस अनन्त संसार का जिसने अन्तर में आत्मा का अनुभव करके अन्त किया है... आहाहा! वहाँ तो अपने यह आया था, '**कृतिभिः**'। '**कृतिभिः**' आया था न? आत्मा पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्यवस्तु की जिसने कृति-प्रतीति-कार्य अनुभव, सम्यग्दर्शन किया, वह '**कृतिभिः**' है। अर्थात् उसने भवचक्र का अन्त किया और अपना सुकार्य—सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि सुकार्य किया। वह सुकार्य है।

आहाहा! '**कृतिभिः**' शब्द आया था न? इस ओर आया था न? १२३ में था। १२३ कलश है न? दूसरी लाईन। यह तो सब अनजाना है, सुधीरभाई! यह धीरुभाई और सुधीरभाई दोनों धीर हैं। यह बात जगत से अलग है। आहाहा! जिनेन्द्रदेव वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि '**कृतिभिः**'। आहाहा! जिसने आत्मा आनन्दस्वरूप चिदानन्द का अनुभव करके प्रतीति—सम्यग्दर्शन किया, उसने कार्य किया। बाकी जगत के राग और द्वेष के कार्य करता है, वह मूढ़ चार गति में भटककर परिभ्रमण करेगा। भवभ्रमण में भटकेगा। समझ में आया?

'**कृतिभिः**' के दो अर्थ किये। अपना चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसे अपनी पर्याय में... अभी पर्याय किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। अपनी वर्तमान ज्ञानदशा में पूर्ण चीज़ को ज्ञेय बनाकर ज्ञान और प्रतीति किया, उसने सर्व कार्य किया।

मुमुक्षु : यह एक ही कार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ही कार्य है। दूसरे कार्य तो अज्ञानी मूढ़ मानता है। हमने ऐसा किया और वैसा किया। पाँच, पच्चीस, पचास लाख कमाये और उसमें से दो-पाँच लाख का दान दिया। धूल में भी है नहीं, सुन न! वह सब क्रिया जड़ की है। आहाहा! समझ में आया? उसमें कदाचित् राग मन्द हो तो वह पुण्यास्रव है। आस्रव मलिन भाव है। वह कहीं भव के अभाव का कारण नहीं है। आहाहा! अरे! सिर पर अनन्त भव का बोझा है। जिसे अपना स्वरूप चैतन्य आनन्दकन्द का भान नहीं और यह पुण्य और पाप और उसके फल में अपनापन मानता है, उसके सिर पर अनन्त भव का बोझा सिर पर पड़ा है। बराबर है? लो, यह सेठिया भी प्रसन्न होते हैं कि बराबर है। सेठ! आहाहा! क्या कहा?

जिसने अपना शुद्ध चैतन्यघन प्रभु, अन्दर आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है। यह उसे खबर नहीं। जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ने अनन्त आत्मायें केवलज्ञान में देखे हैं। यह (शरीर) तो मिट्टी जड़ धूल है। यह तो जगत की मिट्टी-धूल है और अन्दर कर्म है, वह जड़-धूल है और अन्दर में पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव होते हैं, वह मलिनभाव है। आहाहा! आत्मा निर्मलानन्द चिदानन्दस्वरूप है। उस निर्मलभाव

से विरुद्ध भाव और वे मेरे हैं, ऐसी मान्यता, (उसके) सिर पर अनन्त भव का बोझा पड़ा है। आहाहा! अरेरे! इसे दया भी नहीं। अपनी दया नहीं, हों!

अरे! मैं कहाँ जाऊँगा? मैं आत्मा नित्य हूँ। अनादि-अनन्त अविनाशी आत्मा (हूँ)। शरीर का नाश होने से कहीं आत्मा का नाश नहीं होता। कहीं जायेगा। यह कहाँ जायेगा? आहाहा! जिसने यह पुण्य और पाप के भाव और उसके फल—यह पैसा-धूल आदि, यह स्त्री, कुटुम्ब मेरी चीज़ है, ऐसा माना है, वह मिथ्यादृष्टि-मिथ्यात्व में सिर पर अनन्त भव हैं। चींटी, कौआ, कुत्ता के अनन्त भव सिर पर बोझा पड़ा है। आहाहा! ऐसी बात है भाई! जगत से उल्टी बात है, बापू! आहाहा! समझ में आया? यह तो जिनेन्द्रदेव तीर्थंकर केवली परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, '**कृतिभिः**'। आहाहा! कहते हैं कि जो अनन्त भव का बोझा सिर पर मिथ्यात्व का था, वह आत्मा की दृष्टि करके वह बोझा उतार दिया—नष्ट कर दिया। आहाहा! अलौकिक बातें हैं, भाई!

जिसने आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, अनन्त ज्ञान की मर्यादारहित जिसका अन्तर आत्मा में स्वभाव है, ऐसे आत्मा को जिसने सम्यग्दर्शन में प्राप्त किया, उसने कार्य किया। उसने कार्य किया। यह सब कार्य की गिनती करते हैं या नहीं? यह किया और यह किया और यह किया। 'थाणा' में इतनी टाईल्स रखी और इतने पैदा हुए, मुम्बई में इतने हैं। यह सब कार्य की गिनती, वह पाप की है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह कार्य एक कार्य है। जो अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी किया नहीं। प्रभु! यह परमात्मा जिनेन्द्रदेव का पुकार है कि जिसने आत्मा... आहाहा! देह से निराला, पुण्य-पाप के राग से निराला और अपनी शक्ति में पूर्ण स्वभाव से भरपूर, ऐसा इसने कार्य-प्रतीति-सम्यग्दर्शन किया, उसने कार्य किया। उसने संसार का अन्त किया। कहो, सुधीरभाई तुम्हारे क्या? धीरुभाई यह तुम्हारी कम्पनी के बड़े-बड़े काम करते हैं न! यह कम्पनी के बड़े व्यक्ति हैं। ऐसा है, भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह जिसने किया, उसने अनन्त ज्ञान प्रगट किया। भले सम्यगदश्रन हो तो भी सम्यग्ज्ञान अनन्त हुआ और वह अनुभव करते... करते... करते... केवलज्ञान हो जाये। वह **अनन्त कालपर्यन्त रहेगा,...** देखो! जहाँ आत्मा है, अनन्त काल रहेगा,

वहाँ आत्मा की दशा प्रगट हुई। केवलज्ञान आदि, वह अनन्त काल रहेगा। आहाहा! समझ में आया? **कभी और सा नहीं होगा।** फिर फेरफार होगा नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः इससे केवलज्ञान प्रगट हुआ, वह अन्यथा नहीं होगा —फेरफार नहीं होगा। यहाँ तो लक्ष्मी में करोड़पति देखे और आज देखे भिखारी घड़ीक में। यह तो बाहर की चीज़ें, भाई! आहाहा! चढ़ती-पड़ती छाया है। छाया आवे और जावे। आवे और जावे। कल का बादशाह हो और आज का भिखारी हो जाये। आहाहा! घड़ीक में। वह एक नहीं था? बिहार में भूकम्प हुआ था। करोड़पति, करोड़पति। घोड़ागाड़ी लेकर घूमने निकला। करोड़पति। उसके पास थोड़ा-बहुत कुछ चाँदी का लगभग आठ हजार रुपये का होगा। घूमकर वापस घर आया... भूकम्प। पूरा परिवार और मकान और शहर समाप्त हो गया। आवे वहाँ कुछ नहीं मिलता। आहाहा! बापू! परन्तु नाशवान में दूसरा क्या होगा? कुछ नहीं मिलता। आहाहा! वह फिर आया था। जामनगर। लगभग आठ हजार रुपये रहे। करोड़ रुपये-करोड़ रुपये, बड़े मकान, स्त्री, पुत्र, परिवार सब (समाप्त हो गया)। आहाहा! बापू! नाशवान में क्या रहेगा? वह जामनगर आया था। वहाँ एक है। वहाँ प्रणाम प्रवज्या का। चरणस्पर्श करे। एक मन्दिर है। वह भाषण करते-करते हार्टफेल हो गया। उन्होंने फिर आश्रय दिया। गृहस्थ व्यक्ति न! पहले कुछ पैसे दिये थे। आश्रय दिया। भाषण करता था वहाँ हार्टफेल। यह दशा संसार की, बापू!

मुमुक्षु : हार्टफेल हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हार्टफेल हो गया। बोलते-बोलते हार्टफेल हो गया। वहाँ सब समाप्त हो गया। यहाँ मन्दिर है, उसमें कुछ पैसे-बैसे दिये होंगे। तो उन लोगों ने सहारा दिया। वहाँ लोगों ने आदर किया, इसलिए कुछ भाषण करता था। भाषण करते-करते हार्टफेल। आहाहा! परन्तु यह देह की स्थिति, यह तो मिट्टी-धूल है। एक समय में तो पृथक् पड़ने का वह समय निश्चित है। भगवान के ज्ञान में जिस समय में देह छूट का निर्णय है, उस समय छूटेगा ही। लाख उपाय करे, इन्द्र को उतारे या डॉक्टर उतारे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि इस आत्मा का जिसने भान किया... आहा! उसे अनन्त ज्ञान

उत्पन्न हुआ। वह अनन्त काल रहेगा। है? **और कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'अतुलं' तीन लोक में जिसका सुखरूप परिणमन का दृष्टान्त नहीं है।** आहाहा! भगवान आत्मा अपने स्वरूप का अनुभव-सम्यग्दर्शन करके, पश्चात् जहाँ केवलज्ञान प्रगट हुआ तो उसमें अनन्त आनन्द आया। उस अनन्त आनन्द की जगत में कोई उपमा नहीं है। कि यह सब अरबोंपति और धूलपति है...

अभी एक है न? कैसा देश कहा? ईराक देश। देश छोटा है, परन्तु उसे पेट्रोल बहुत निकला है। उसके राजा को एक घण्टे में डेढ़ करोड़ की आमदनी है। अभी है। ईराक देश है न? एक घण्टे में डेढ़ करोड़ की आमदनी। आमदनी-पैदावार, हों! आहाहा! वह मुख्य राजा था। थोड़े वर्ष पहले, उसके कुटुम्बियों ने मार डाला और अब वह राजा हुआ। वह भी मरकर सब नरक में जानेवाले हैं। उसका भाई गद्दी पर बैठा। सुना था। अभी थोड़े वर्ष पहले। क्योंकि इतनी अधिक आमदनी और इतना मौज-मजा। भाई सहन नहीं कर सका। उसे मार डाला और स्वयं गद्दी पर बैठा। अब उसे भी मरकर जाना है। एक घण्टे की डेढ़ करोड़ की आमदनी। चौबीस दिन में कितनी हुई? परन्तु मरकर सब नरक में धूल में नीचे जानेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मज्ञानी है, वह मरकर केवलज्ञान पाकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

जिसका सुखरूप परिणमन का दृष्टान्त नहीं है। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसका जो सम्यग्दर्शन हुआ तो उसमें जो आनन्द का स्वाद आता है, (उसकी) कोई उपमा नहीं। वह वेदनेवाला-वेदनेवाला जाने। आहाहा! तो फिर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, उसमें तो अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का कोई दृष्टान्त जगत में नहीं है। इन्द्र के सुख से यह बहुत अनन्तगुणा है, ऐसा भी नहीं है। इन्द्र का सुख तो जहर है। इन्द्र और देवों के सुख की कल्पना तो जहर की है। यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का सुख भगवान आत्मा। आहाहा! उसे कभी दृष्टान्त नहीं। **ऐसा शुद्ध ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ।** लो, यह अधिकार पूरा हुआ।

— ६ —
संवर अधिकार

कलश-१२५

(शार्दूलविक्रीडित)

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव–
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम्।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुर–
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते।।१–१२५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'चिन्मयं ज्योतिः उज्जृम्भते' [चित्] चेतना, वही है [मयं] स्वरूप जिसका, ऐसी [ज्योतिः] प्रकाशस्वरूप वस्तु [उज्जृम्भते] प्रगट होती है। कैसी है ज्योति? 'स्फुरत्' सर्व काल प्रगट है। और कैसी है? 'उज्ज्वलं' कर्मकलंक से रहित है। और कैसी है? 'निजरसप्राग्भारं' [निजरस] चेतनगुण, उसका [प्राग्भारं] समूह है। और कैसी है? 'पररूपतः व्यावृत्तं' [पररूपतः] ज्ञेयाकारपरिणमन, उससे [व्यावृत्तं] परान्मुख है। भावार्थ इस प्रकार है — सकल ज्ञेयवस्तु को जानती है; तद्रूप नहीं होती; अपने स्वरूप रहती है। और कैसी है? 'स्वरूपे सम्यक् नियमितं' [स्वरूपे] जीव का शुद्धस्वरूप, उसमें [सम्यक्] जैसी है, वैसी [नियमितं] गाढ़रूप से स्थापित है। और कैसी है? 'संवरं सम्पादयत्' [संवरं] धाराप्रवाहरूप आस्रवता है ज्ञानावरणादि कर्म, उसका निरोध [सम्पादयत्] करणशील है। भावार्थ इस प्रकार है — यहाँ से लेकर, संवर का स्वरूप कहते हैं। कैसा है संवर? 'प्रतिलब्धनित्यविजयं' [प्रतिलब्ध] पाया है [नित्य] शाश्वत [विजयं] जीतपना जिसने, ऐसा है। किस कारण से ऐसा? 'आसंसार–विरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्यक्कारात्' [आसंसार] अनन्त काल से लेकर [विरोधि] वैरी है, ऐसा जो [संवर] बध्यमानकर्म का निरोध, उसका [जय] जीतपना, उसके द्वारा, [एकान्तावलिप्त] मुझसे बड़ा तीन लोक में कोई नहीं, ऐसा हुआ है गर्व जिसको, ऐसा

[आस्रव] धाराप्रवाहरूप कर्म का आगमन, उसको [न्यक्कारात्] दूर करनेरूप मानभंग के कारण। भावार्थ इस प्रकार है — आस्रव तथा संवर, परस्पर अति ही वैरी हैं; इसलिए अनन्त काल से लेकर सर्व जीवराशि, विभावमिथ्यात्व-परिणतिरूप परिणमती है, इस कारण शुद्धज्ञान का प्रकाश नहीं है। इसलिए आस्रव के सहारे सर्व जीव हैं। काललब्धि पाकर कोई आसन्नभव्य जीव, सम्यक्त्वरूप स्वभावपरिणति परिणमता है, इससे शुद्धप्रकाश प्रगट होता है, इससे कर्म का आस्रव मिटता है। इससे शुद्धज्ञान का जीतपना घटित होता है।।१-१२५।।

कलश - १२५ पर प्रवचन

अब संवर अधिकार। धर्म की शुरुआत कैसे होती है? संवर कैसे होता है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति उत्पन्न हो, वह संवर; और मिथ्याश्रद्धा, राग-द्वेष का नाश हो, वह आस्रव। उस आस्रव का रोधन। और अपना शुद्धभाव प्रगट होना। पुण्य-पाप और मिथ्यात्व अशुद्धभाव का नाश होना और अपना शुद्धस्वरूप जो आत्मा, उसकी पर्याय में शुद्धपना, पुण्य-पाप के भाव से रहित शुद्धभाव का उत्पन्न होना, इसका नाम संवर कहते हैं। आहाहा! उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी कहते हैं। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अधिकार बहुत सरस है। संवर अधिकार।

मुमुक्षु : आस्रव भाव से रहित अवस्था, उसका नाम संवर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। पुण्य-पाप और मिथ्यात्व से रहित जो अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान शान्ति के परिणाम वे संवर है।

यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना और उग्र स्वाद आना, इसका नाम संवर। आहाहा! जो यह राग-द्वेष का स्वाद है, वह दुःख है। और भगवान का स्वाद आना, वह सुख है। आहाहा! भगवान अर्थात् यह आत्मा, हों! आहाहा! समझ में आया? यह अधिकार कहते हैं।

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम्।

व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते।।१-१२५।।

आहाहा! **खण्डान्वयसहित अर्थ—'चिन्मयं ज्योतिः उज्जृम्भते' चेतना, वही है स्वरूप जिसका,...** भगवान आत्मा तो चेतना—जानना-देखना जिसका स्वरूप है। समझ में आया? आहाहा! चेतन आत्मा। उसका चेतनास्वभाव। जानना-देखना, यह उसका स्वभाव है। उसमें पुण्य-पाप और राग-द्वेष, यह उसका स्वभाव नहीं है। यह तो विकार और अधर्म है। आहाहा! क्या कहा? **चेतना, वही है 'मयं' स्वरूप जिसका,...** जैसा अग्नि का उष्णतास्वरूप, शक्कर में मिठास का स्वरूप, लवण का खारा स्वरूप, वैसे भगवान आत्मा का चेतनास्वरूप। आहाहा! जानना-देखना, उसका त्रिकाली स्वरूप है। आहा! है? '**चिन्मयम्**' '**मयं**' का अर्थ स्वरूप किया।

ऐसी ज्योति अर्थात् प्रकाशस्वरूप वस्तु... आहाहा! जैसे चन्द्र में दूज उगती है। फिर पूर्ण चन्द्र में पूर्णिमा होती है। अभी चलता है, वह अलग बात है। शास्त्र के हिसाब से पूर्णिमा में पूर्ण माह होता है और अमावस्या में अर्ध माह होता है। अपने लोक में अभी अमावस को पूर्ण माह करते हैं, वह विरुद्ध है। सिद्धान्त के हिसाब से, तात्विक हिसाब से अमा-वास। अम-अधमास। यह पन्द्रह दिन में अध माह है। और पूर्णिमा को पूर्ण माह है। यह तो तुम्हारी भाषा है। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा में प्रथम सम्यग्दर्शनरूपी दूज उगती है। समझ में आया? यह चिन्मय ज्योति, ज्ञानमय ज्योति प्रभु। आहाहा! उसके अन्तर सन्मुख होकर ज्ञान में आनन्द के स्वादसहित प्रतीति आना, इसका नाम दूज कहते हैं। इसका नाम सम्यग्दर्शनरूपी चन्द्रमा में जैसे दूज, वैसे यह दूज है। और दूज उगी तो फिर १३ दिन में पूर्णिमा होगी, होगी और होगी। उसी प्रकार सम्यग्दर्शनरूपी दूज जिसे प्रगट हुई... आहाहा! उसे थोड़े काल में केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा प्रगट होगी। आहाहा! समझ में आया? जगत से बहुत दूसरा प्रकार है, बापू!

अभी तो सम्प्रदाय में भी सब गड़बड़ चलती है। यह व्रत करो और अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, यह धर्म है, ऐसा मानते हैं। वह तो सब आस्रव-राग है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी राग की क्रिया तो अनन्त बार की है।

वह कोई नयी चीज़ नहीं है। भगवान आत्मा चैतन्य चन्द्र जिनचन्द्र, जिनस्वरूपी वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है। वह वीतरागी चन्द्र शीतलता का पिण्ड है। आहाहा! ऐसा चिन्मयज्योति अनुभव करते-करते प्रकाशमान हुआ। है?

प्रकाशस्वरूप वस्तु प्रगट होता है। आहाहा! भाई! यह तो अध्यात्म की बात सूक्ष्म बात है। अभी तो यह सुनने को मिलती नहीं। पूरे दिन पाप एक तो जगत के। धन्धा, स्त्री, पुत्र, परिवार रचा, पचा बाईस-बीस घण्टे। एक-दो घण्टे सुनने कहीं जाये तो मिले वापस ऐसा। व्रत करो, अपवास करो, दान करो तुम्हें धर्म होगा। मार डाला वहाँ। लूट लिया इसे। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि पुण्य-पाप के परिणाम आस्रव हैं, मलिन परिणाम हैं, दुःखदायक है, जिसका फल संयोग संसार है। उससे रहित चिन्मय ज्योति प्रभु अन्दर है। आहाहा! अब ऐसी बातें। ऐसा कैसा उपदेश यह? परन्तु कुछ सूझ पड़े, ऐसा नहीं, वह क्या करना!

अरे! बापू! भगवान! क्या कहें? परमात्मा पुकार करते हैं। भाई! तेरी चैतन्य ज्योति अन्दर वस्तु पड़ी है न! आहाहा! पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान से चैतन्य वस्तु पड़ी है अन्दर प्रभु। तेरी नजर वहाँ नहीं है। जहाँ तेरी नजर है, वहाँ तो अल्पज्ञता और पुण्य-पाप के भाव हैं। जहाँ तेरी नजर अनादि से है, वहाँ तो अल्पज्ञपना और पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के फल में तेरी नजर है। तो वह होता है। वह तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? तेरी चीज़ अन्दर में वर्तमान दशा को अन्तर में झुकाने से चिन्मय ज्योति प्रकाशमान प्रगट होती है, कहते हैं। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा ऐसी पर्याय में प्रगटदशा होती है। है?

कैसी है ज्योति? 'स्फुरत्' सर्व काल प्रगट है। आहाहा! यह वस्तु तो सर्वकाल प्रगट ही है आत्मा। परन्तु अनुभव करके प्रगट हो, वह भी सर्वकाल ऐसी की ऐसी रहेगी। यहाँ तो बहुत कहेंगे। नित्य शब्द आयेगा न इसमें? है, कहीं नित्य शब्द है। नहीं? पाठ में है न। '**नित्यविजय**' अन्दर है। दूसरे पद में। '**नित्यविजय**' उसमें ऐसा कहना है... गजब बात है! आचार्य, सन्त, दिगम्बर मुनियों की सर्वज्ञ की कही हुई कथनी... आहाहा! कहते हैं कि जिसने... '**नित्यविजय**' पाठ में है और अर्थ में अन्दर होगा कहीं। है कहीं? कहाँ आया?

मुमुक्षु : १३, १४-

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर से ?

मुमुक्षु : ऊपर से छठवीं लाईन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नित्य बस यह। **'नित्य ' शाश्वत् जीतपना जिसने, ऐसा है।** नित्य है अन्दर।

यहाँ दूसरा कहना है कि यहाँ आत्मा चैतन्य चमत्कार प्रभु है। उसका जिसे अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ, उसकी दशा जो केवल आदि की है कि अरे! सम्यग्दर्शन हुआ तो नित्य कायम रहेगा, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया? आहाहा! **'नित्यविजय' जीतपना जिसने, ऐसा है।** विकार, पुण्य-पाप के भाव पर जिसने आत्मा का संवर—सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किया, उसने नित्य विजय प्रगट की। उसने विजय का डंका बजाया। आहाहा! मेरी विजय है और तेरी पराजय है। पुण्य-पाप के आस्रव की पराजय और शुद्धपर्याय की विजय-जय नित्य रहेगी। आहाहा! अरे! ऐसी बातें! इसमें समझना क्या?

वह कहता है भाई! रात्रि में चौविहार करना—आहार-पानी नहीं लेना, 'चारदि', छह परबी कन्दमूल नहीं खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना। समझ में आये तो कहे इसमें समझना? धूल? यह तो वह राग की क्रिया की बातें हैं। आहाहा! यहाँ तो भगवान चिन्मय ज्योति प्रगट हुई। ऐसा आया न? **सर्व काल में प्रगट है।** आहाहा! वस्तु सर्व काल प्रगट है और पर्याय प्रगट रहेगी, वह नित्य कायम रहेगी। आहाहा! जिसने त्रिलोकनाथ आत्मा का आश्रय लिया, ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान पर्याय जो अनन्त काल में कभी नहीं किया। साधु-मुनि भी अनन्त बार हुआ। पंच महाव्रत पालन किये, परन्तु सम्यग्दर्शन कभी नहीं किया। आहाहा! वह यह सम्यग्दर्शन कहते हैं उसने नित्य विजय प्राप्त की। आहाहा! है?

सर्व काल में प्रगट है। और कैसी है? 'उज्वलं' कर्मकलंक से रहित है। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु त्रिकाली द्रव्य भी कर्मकलंक से रहित है और सम्यग्दर्शन हुआ, वह भी कर्मकलंक से रहित है। आहाहा! ऐसा उपदेश अब यह क्या है? पूरे दिन

बेचारे धन्धे में रचे-पचे हैं। अब उसमें से ऐसी भाषा और ऐसी बात... अरर! दुःखी संसारी प्राणी। यह चार गति में दुःखी है। भटकते, रुलते हुए हैरान-हैरान है। आहाहा!

यहाँ प्रभु कहते हैं, जिसने चिन्मय ज्योति प्रभु द्रव्यस्वभाव को जिसने सम्यग्दर्शन में प्राप्त किया, उसने नित्य विजय प्राप्त की। पुण्य-पाप पर विजय प्राप्त की। यह पुण्य-पाप मैं नहीं। यह पुण्य-पाप के धूल का फल पैसा-पैसा, दो-पाँच करोड़ वह तो मिट्टी-धूल है। वह कहाँ तेरी है? वह तो जड़-धूल है। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दर्शन हुआ तो उसने पुण्य-पाप पर जय प्राप्त की। उन्हें पराजय किया। आहाहा! मैं प्रमुख हूँ। शुद्ध चिदानन्दस्वरूप के अनुभव की दृष्टि वह प्रमुख है। समझ में आया? आहाहा!

साधुपना तो बापू! कोई अलग चीज़ है। वह तो लोगों में अभी तो नजर पड़े, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन—संवर जहाँ प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **सर्व काल में प्रगट है। और कैसी है? कर्मकलंक से रहित है। 'निजरसप्राग्भारम्'** आहाहा! चेतनगुण का निजरस अर्थात् चैतन्यरस। चैतन्यरस। ज्ञान, आनन्द रस। उसका **'प्राग्भारम्'** आत्मा तो समूह है। चेतनरस का तो प्रभु आत्मा समूह है। आहाहा! उसमें शरीर-वाणी तो नहीं। वह तो मिट्टी-धूल है। वह तो जगत की मिट्टी है।

यों ही नहीं कहते कुछ? लोहे की कील लगे। क्या कहलाता है? कील-कील। कील। कि भाई! मेरी मिट्टी पकाऊ है। पानी छुआना नहीं। मेरी मिट्टी पकाऊ है। कहे मिट्टी और एक ओर कहे मेरी। यह क्या है? पागल वह कहीं। एक ओर कहे कि मेरी मिट्टी पकाऊ है। मिट्टी-धूल। यह तो मिट्टी-धूल है। राख होगी। श्मशान में तो राख हो जायेगी। रजकण धूल। भगवान आत्मा उससे भिन्न। और पुण्य तथा पाप के, दया, दान, व्रत के परिणाम से भी भगवान अन्दर भिन्न है। उसका जहाँ भान हुआ तो ऐसी चीज़ है, वह तो चेतनगुण के रस से समूह भरपूर है। वह चैतन्य का दल है। वह अतीन्द्रिय आनन्द का दल आत्मा है। अरे! कहाँ बैठे इसे? इसने देखा है कहाँ? आत्मा किसे कहना प्रभु कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह चेतन... चेतन... चेतना... चेतना... चेतना का दल है वह तो। एक समयमात्र

की पर्याय भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसमें निवृत्ति कहाँ? फुरसत नहीं मिलती संसार के पाप के कारण। क्यों फूलचन्दभाई! अभी यह सत्तर वर्ष हों तो निवृत्त होता नहीं। उस नौकरी में पचपन वर्ष में निवृत्त हो जाता है। बीस वर्ष से पैंतीस वर्ष नौकरी करे, पचपन वर्ष में रिटायर्ड। इन बनियों को तो पचपन क्या, सत्तर हो तो भी मजदूर की भाँति जुड़ा ही करते हैं।

मुमुक्षु : घर में बैठकर क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में आत्मा है, वहाँ करने का है, वह तो करता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! और यहाँ तो इसके कितने? २५-५०-६०-७०-८० वर्ष कदाचित् शरीर के। पश्चात् आत्मा तो नित्य है, अनादि-अनन्त है। उसे कहाँ रहना है? यह मेरे... मेरे... मेरे... ममता करके भविष्य में मिथ्यात्व में रहेगा। भ्रमणा में चार गति में रहेगा। आहाहा! ऐसी बात है, बापू!

यहाँ कहे पैसे की कीमत नहीं। कल सब आये थे बड़े डॉक्टर और वह क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : रस्तोगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : रस्तोगी और दो-चार बड़े होंगे बतलाये। यह ऐसा है और यह ऐसा है। कहा, यहाँ हमारे कोई कीमत नहीं। यहाँ तो आत्मा का ज्ञान किये बिना के सब भिखारी हैं, उनकी यहाँ कीमत नहीं। यहाँ दस हजार का वेतन महीने में है, अमुक है और यह बड़ा (वेतनदार) सब भिखारी हैं, कहा। अन्तर आत्मा में अनन्त आनन्द की लक्ष्मी पड़ी है, अतीन्द्रिय सुख का सागर भगवान अन्दर डोलता है। आहाहा! उसकी तो खबर नहीं होती और यह बाहर में झुकाव करके होशियार और चतुर का पुत्र हो गया। आहाहा! चतुर का पुत्र नहीं परन्तु चतुर। आहाहा!

भगवान! बातें ऐसी है प्रभु, हों! तेरी चीज़ अन्दर ऐसी है। आहाहा! चिद्रस से भरपूर है, ऐसा कहते हैं। जैसे रसगुल्ला होता है न, रसगुल्ला? रसगुल्ला दूध का। वैसे आत्मा के चैतन्य का रसगुल्ला आत्मा है। आहाहा! चैतन्य रसगुल्ला। देखो! है? '**निजरस**' '**निजरस**' निजगुण, निज शक्ति, निज स्वभाव, उसका समूह है। आहाहा! अरेरे! ऐसी

बातें सुनी न हो। बेगारी कर-करके मरकर चले जानेवाले हैं। आहाहा! पागल लोग महिमा करे। तुमने बाहुबली से बहुत पैदा किया। तुम्हारे पिता के पास इतनी पूँजी नहीं थी। तुमने इकट्ठे किये दो-पाँच करोड़ रुपये।

नहीं यह तुम्हारे हुआ था इन्हें, इनके पुत्र हैं न मुम्बई में। पूनमचन्द को पाँच करोड़ रुपये। इन मलूकचन्दभाई के पुत्र। पाँच करोड़। सबसे बड़ा है, वह स्वीट्जरलैण्ड में है। उसके पास चार करोड़ है तो एक बार वहाँ बोला था अहमदाबाद में, कि बापू को कहाँ पैसे का रस था। क्या कुछ बोला था।

मुमुक्षु : स्वाद। रस-रस।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्होंने कहाँ पैसे देखे हैं? उनके पास ३०-३५ हजार इतने थे। छोटाभाई के पास। ३५-४०। ८० हजार थे, ऐसा कोई कहता है। ८० हजार तो उसके पास, हों! ३५-४० तुम्हारे पास। वे कैसे दूसरे नहीं? सामने नहीं वह गुजर गया धीरुभाई का पिता। धीरुभाई जोबालिया। कस्तूरभाई, कस्तूरचन्द, यह हसमुखभाई उतरते हैं न। धीरुभाई के पिता थे। उनके पास पैसे (रुपये) ८० हजार। तब (की बात है) यह तो ६४ वर्ष पहले की बात है। इनके पास ३५ हजार। इसलिए इनका पुत्र कहता है कि बापू ने कहाँ पैसे का स्वाद देखा है? उसके पास पैसे हुए चार-पाँच करोड़ (रुपये)। आहाहा! ऐसे के ऐसे हैं। सब रंक-भिखारी हैं। अन्दर की चैतन्य लक्ष्मी की जिन्हें कीमत नहीं। उन्हें बाहर की लक्ष्मी की कीमत में आँकड़ा टाँकते हैं। आहाहा! खबर है मलूकचन्दभाई? खबर है न? इनके पुत्र ने कहा था। अहमदाबाद में। यह सब ऐसा है। सब स्वार्थ के पुतले हैं सब।

भगवान तो ऐसा कहते हैं कि स्त्री, पुत्र, परिवार, पुत्र मिले, वह सब तेरी ठगों की आजीविका की टोली है। ठग आजीविका की टोली तुझे लूट लेगी। आहाहा! और तू मरकर कहाँ जाता है, उन्हें कहाँ पड़ी है? मर जाता है, तब रोते हैं तो वह कहाँ गया, इसके लिये रोते हैं? चाहे जहाँ नरक में गया तो हमारे क्या है? परन्तु हमारी यह सुविधा जाती है, इसके लिये ये रोते हैं।

मुमुक्षु : मर गया उसे कोई पूछता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गया और कहाँ गया, उन्हें कहाँ पड़ी है। ढोर में गया तो वह जाने। हमारे क्या है? आहा! गजब है, बापू! परन्तु हमारी दुकान चलाते थे और दुकान में सामने मजदूर की भाँति काम करते थे। वे गये, इसके लिये रोता है। बराबर है? सत्य है?

मुमुक्षु : अक्षर-अक्षर सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, हमारे सेठ कहते हैं। बात तो ऐसी है। परन्तु खतौनी करे फिर दूसरे प्रकार से।

मुमुक्षु : यह बात अनुभवसिद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अनुभवसिद्ध ही है। यहाँ तो भाई! हमको तो ८८ वर्ष हुए। यहाँ तो निवृत्ति पहले से है पूरी जिन्दगी। ६४ वर्ष तो दीक्षा लिये हो गये। दुकान भी पिताजी की घर की दुकान थी। पालेज में। वहाँ भी निवृत्ति थी। घर की दुकान थी, निवृत्ति थी। कहीं नौकरी कभी की नहीं। किसी का धन्धा किया नहीं। आहा! वहाँ भी मैं तो शास्त्र वाँचन करता था दुकान पर। १७ वर्ष की उम्र से। यह तो अभी ८८ हुए। शरीर को दो अट्ठ = ८८। दिखता नहीं। शरीर ऐसे कोमल लगे न! परन्तु ९० में २ कम। ८८ वर्ष। ६४ वर्ष तो दीक्षा लिये हुए हैं। बहुत देखा और बहुत सुना, बापू! बड़े-बड़े शहर देखे मुम्बई और.... आहाहा!

यहाँ प्रभु कहते हैं। यहाँ तो आया क्या? निजरस आया है न? इसके आधार से यह चलता है। आत्मा में निजरस, आनन्द और ज्ञान यह शान्ति निजगुण रस पड़ा है। आहाहा! अरे! कहाँ लेने जाये यह? रस का अर्थ गुण किया। निजचेतनगुण अर्थात् चेतनरस। उसका समूह आत्मा है। जैसे शक्कर मिठास का पिण्ड है, लवण-लवण नमक क्षार का पिण्ड है, उसी प्रकार भगवान चैतन्यरस का पिण्ड है। आहाहा! समझ में आया? यह संवर अधिकार के शुरुआत में ऐसे चैतन्य को जिसने अनुभव किया, ऐसा कहना है। आहाहा!

और कैसी है? 'पररूपतः व्यावृत्तं' ज्ञेयाकारपरिणमन, उससे परान्मुख है। आहाहा! क्या कहते हैं? कि अपने निज आनन्द और ज्ञानरस से परिपूर्ण है। और अपने

ज्ञान में जो परवस्तु ज्ञात होती है। दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प और शरीर-वाणी-मन वह ज्ञेयाकार जो ज्ञान होता है, वह पर के कारण से नहीं। अपने ज्ञान की परिणति ऐसी है कि अपने को जाने और पर को जाने, वह अपनी ज्ञानपरिणति ऐसी होती है। आहाहा! समझ में आया?

सकल ज्ञेयवस्तु को जानती है, तद्रूप नहीं होती,... क्या कहते हैं? ज्ञानस्वरूपी भगवान इस जड़ शरीर को जाने कि यह शरीर जड़ है। अन्दर दया-दान का राग आवे, उसे ज्ञानरस जाने कि यह राग है। परन्तु उस रागरूप चीज़ नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? शरीर तो मिट्टी-धूल है। जड़ है। खबर नहीं? श्मशान में राग होगी तो इतनी नहीं होगी। इतनी होगी और हवा आयेगी तो उड़कर रजकण चले जायेंगे। वह कहाँ तेरी चीज़ है और तुझमें है? आहाहा! यहाँ तो पुण्य और पाप के भाव... आहाहा! उन्हें ज्ञान जानता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है, कहते हैं। उस राग का ज्ञान होता है, वह राग के कारण नहीं। वह अपना ज्ञानस्वभाव है चैतन्यरस, उसके कारण से ज्ञान का ज्ञान और राग का ज्ञान स्वयं को स्वयं से होता है। आहाहा! ऐसी बातें, धीरुभाई! मुम्बई मोहनगरी है। श्रीमद् ने मोहनगरी कही। अब और कोई कहता है कि वह अजंपा नगरी है।

मुमुक्षु : अजंपो कहो, मुम्बई गाँव के सिवाय दूसरे किसी गाँव में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जंप न मिले। ऐई बड़ा हलाहल धमाधम भू... भू... भू... भू... भू... भू... सातवीं मंजिल पर सो रहा हो तो वहाँ वह आवाज सुनाई दे। अजंपानगरी। श्रीमद् राजचन्द्र कहते थे कि यह मोहमयीनगरी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु तो आनन्दमय नगरी है। आहाहा! तेरे नगर में तो आनन्द और शान्ति का रस पड़ा है प्रभु अन्दर। वह ज्ञेयाकार परिणमन। क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है, भाई! कहते हैं कि इस ज्ञानस्वरूप प्रभु का सम्यक्त्व में भान हुआ, तो फिर दया, दान आदि का राग होता है, तो उस ज्ञेय का यहाँ ज्ञान होता है। तो वह ज्ञेय का ज्ञेयाकार होना, यह व्यवहार है। वह ज्ञेयाकार ज्ञान होता ही नहीं। अपने आकार ज्ञान होता है। समझ में आया? अब ऐसी बातें अब। कहाँ सुनना और कहाँ मिले? अरे!

क्या कहते हैं, देखो! **ज्ञेयाकारपरिणमन, उससे परान्मुख है।** पर से तो पराङ्मुख

है ही। परन्तु भगवान ज्ञानस्वरूप है, उसमें जो यह राग, दया, दान, व्रत, शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी उस ज्ञेय का यहाँ ज्ञान होता है तो वह ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, वह भी व्यवहार कहने में आता है। वास्तव में ज्ञेयरूप यहाँ ज्ञान नहीं होता। ज्ञेय के कारण से ज्ञान नहीं होता। स्वयं के कारण से स्वयं में स्व-पर का ज्ञान होता है।

मुमुक्षु : ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञानाकार अपनी चीज़ है। ज्ञेयाकार है ही नहीं। आहाहा!

अपने ज्ञानस्वरूप में, अपना ज्ञान और राग और शरीर-वाणी का ज्ञान कहना, वह व्यवहार है। वास्तव में तो वह स्व-पर का ज्ञान, वह अपनी पर्याय का सामर्थ्य है। अपनी पर्याय का सामर्थ्य है। आहाहा! अब पर्याय क्या और फिर सामर्थ्य क्या? अभी जैनदर्शन का एकड़ा यह तो। उसकी भी खबर नहीं होती। अर..र..! हीराभाई! कमाया और यह गया बोटाद छोड़कर वहाँ लोहे का व्यापार और पैसा करने। लोहे का क्या है दूसरा कुछ है। पाईप का। लो, इन्हें खबर है। उसमें दो-पाँच-दस लाख पैदा हो। हो गया, लो। धूल में भी नहीं। सुन न!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तेरी शक्ति निजरस तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानगुण, ज्ञानस्वभाव जानना... जानना, वह तेरी शक्ति है। उसमें जो रागादि और पर का ज्ञान होता है, वह ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। क्योंकि ज्ञेय कहीं ज्ञान में आता नहीं। राग का ज्ञान होता है तो राग कहीं ज्ञान में आता नहीं। राग सम्बन्धी अपनी पर्याय में अपना स्व-परप्रकाशक ज्ञान होता है। आहाहा! एक घण्टे में कितनी बातें याद रखना? शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है, बापू! वीतराग जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर अरिहन्तदेव का यह पुकार है। भाई! तूने सुना नहीं। आहाहा! तेरे घर में कितनी चीज़ की सामर्थ्य है, वह सामर्थ्यवाली चीज़ क्या, उसकी तुझे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शरीर, वाणी, राग आदि पर, वह अपने में आता नहीं परन्तु उस सम्बन्धी जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। वह तो अपना ज्ञानाकाररूप से ज्ञान हुआ है। पर को जानते हुए अपने ज्ञानाकार से ज्ञान हुआ है। आहाहा! सूक्ष्म बातें बापू! वीतरागमार्ग कहीं है नहीं। जिनेश्वर के अतिरिक्त ऐसी बात

कहीं है नहीं किसी जगह। अभी तो सम्प्रदाय में नहीं तो अन्यत्र तो कहाँ होगी? आहाहा! सब गड़बड़ घोटाला उठाये हैं। आहाहा! देखो! संवर का मांगलिक करते हैं। संवर अधिकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। वह शुद्ध परिणाम। पुण्य-पाप के भाव, वे अशुद्ध परिणाम और संवर के परिणाम, वे शुद्धभाव, शुद्ध उपयोग, शुद्ध परिणाम। उस शुद्ध परिणाम में रागादि और पर का ज्ञान होता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। अपने में अपना और पर का ज्ञान अपना अपने में ज्ञानाकार ज्ञान होता है। आहाहा! परचीज़ तो उसमें आती नहीं, परन्तु पर के कारण यह ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! इसे अस्तित्व कहा जाता है। तेरा अस्तित्व इतना है। तेरी अस्ति, मौजूदगी, भगवान आत्मा की अस्ति की सत्ता, वह राग और परचीज़ तो तुझमें है ही नहीं। तेरे द्रव्य-गुण में तो नहीं, पर्याय में है नहीं। परन्तु पर्याय में उनका जो ज्ञान होता है, ऐसा कहना, वह भी नहीं है। आहाहा! वह तो अपने ज्ञान में अपना और पर का स्वपरप्रकाशक ज्ञान होता है, वह निजरस की शक्ति अपने में है। धीरुभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! बाहर में पैसा और जैसे यह दो-पाँच लाख पैदा होते हैं, वह तो आकाश में पाटु मारे माने कि क्या हो गया। आकाश में लात मारे तो गिर जाये। यहाँ भी मुफ्त में गिर जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं। यह चीज़ इतनी रखी है संवर अधिकार में कि परवस्तु तो अपने में है ही नहीं। चैतन्यरस से भरा प्रभु, वह राग, दया, दान, विकल्प, वह तो अपने में है ही नहीं। परन्तु उनका ज्ञान कहना, ऐसा भी नहीं है। उनका ज्ञान नहीं, अपने ज्ञान में अपने में स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य से पर को और स्व को जानता है, वह स्वयं से शक्ति है। इसका नाम संवर है, इसका नाम धर्म है, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। यह इसका मांगलिक करते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ५, सोमवार, दिनांक - १७-१०-१९७७, कलश-१२५, प्रवचन-१२४

कलशटीका चलती है। संवर अधिकार। '(परम) अध्यात्म तरंगिणी' में यह अधिकार शुरु करते हुए ॐ नमः लिया है। दूसरा अधिकार शुरु करते हुए। अध्यात्म तरंगिणी है न? इसकी टीका। उसमें ॐ नमः, ऐसा कहकर यह अधिकार शुरु किया है। संवर अधिकार है न? भेदज्ञान। राग का विकल्प... शरीर, वाणी, मन से तो आत्मा भिन्न है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के विकल्प जो राग, उससे प्रभु अन्दर भिन्न—पृथक् है। राग से चैतन्य के स्वभाव का भेदज्ञान करना, वह संवर अर्थात् मोक्ष का यह मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

भेदज्ञान सिद्धा। आयेगा इसमें। अभी तक जितने सिद्ध हुए, वे सब भेदज्ञान से सिद्ध हुए। राग, पुण्य और पाप का भाव हो... आहाहा! परन्तु उससे प्रभु चैतन्यदल, चैतन्यदल, अतीन्द्रिय आनन्द सहजात्म दल, वह राग से भिन्न है। आहाहा! राग हो। जब तक वीतराग न हो, तब तक राग हो, परन्तु धर्मी जीव उस राग से अपना स्वभाव, चैतन्यदल, अस्ति, मौजूद ज्ञानचेतनारस से भरपूर भगवान आत्मा मौजूद चीज़ है। आहाहा! उसका राग से भिन्न करके ज्ञान करना। नवलचन्दजी! यह बात है। आहाहा! और उस भेदज्ञान में राग की आकुलता से प्रभु अनाकुल आनन्द भिन्न है, ऐसा भान होने पर अनाकुल आनन्द का अतीन्द्रियस्वरूप जो सहजात्म सहजानन्दस्वरूप, उसका अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में स्वाद आवे, उसे संवर कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मार्ग अलौकिक है, भाई! सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु। सत्—शाश्वत —चिद्-ज्ञान और आनन्द। सच्चिदानन्द प्रभु, इन पुण्य और पाप के विकल्प से निर्विकल्प चीज़ अत्यन्त भिन्न है। भिन्न है ही, परन्तु उसे भिन्न प्रगट किया नहीं; इसलिए भिन्न करना, इसका नाम संवर है। आहाहा! समझ में आया? यह अब कहते हैं। ॐ नमः कहकर शुरुआत करते हैं।

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम्।

व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते।।१-१२५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'चिन्मयं ज्योतिः उज्जृम्भते' आहाहा! **'चिन्मय'** ज्ञानमय, अकेला ज्ञान का रसकन्द आत्मा। यह **'चिन्मयं ज्योतिः उज्जृम्भते'** अब प्रगट होती है, कहते हैं। आहाहा! जो राग और पुण्य के प्रेम में चिन्मयज्योति गुप्त थी, शुभ और अशुभराग विकल्प, जो आकुलता, उसके प्रेम में, उसकी आड़ में चिन्मयज्योति गुप्त थी। आहाहा! वह भगवान चिन्मयज्योति राग से भिन्न प्रगट होती है—प्रगट होती है। आहाहा! यह कल आ गया है। यह तो फिर से शुरुआत की है न? आहाहा!

ऐ ज्ञानचन्द्र! दूसरे प्रकार से कहे तो वह जिनचन्द्रस्वरूप उसका है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! भगवान आत्मा जिनस्वरूप, त्रिकाली जिनस्वरूप, जिसमें आवरण नहीं, जिसमें कमी / न्यूनता नहीं, जिसमें अशुद्धता नहीं। यह बहिन के शब्द हैं न? आहाहा!

मुमुक्षु : कम, अधिक और विपरीत।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह वस्तु जो चिन्मय द्रव्य वस्तु पदार्थ, अखण्डानन्द नाथ प्रभु, अनादि-अनन्त, उसमें आवरण नहीं, उसमें न्यूनता नहीं। उणप अर्थात् कमी नहीं और उसमें अशुद्धता नहीं। दूसरे प्रकार से कहें तो वह निरावरण प्रभु द्रव्यस्वभाव अनादि से पड़ा है। और न्यूनता अर्थात् कमी नहीं; पूर्ण है और अशुद्धता नहीं; वह शुद्ध है। आहाहा! ऐसा भगवान अन्दर विराजता है। भगवत्स्वरूप ही वह है। वह भगवत्स्वरूप प्रगट होता है। आहाहा! पुण्य और पाप के प्रेम में, आड़ में जो था, वह अब प्रगट होता है। यह राग के प्रेम को छोड़कर स्वरूप की अस्ति / मौजूदगी द्रव्य / वस्तु है, वह प्रगट होती है। पर्याय में वह प्रगट होती है। वस्तु तो वस्तु है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! अनन्तकाल में यह चीज़ अन्दर पूर्णानन्द प्रभु (विराजता है)। उसकी वर्तमान पर्यायदृष्टि में उसकी चीज़ है, वह गुप्त रह गयी। एक समय की पर्याय, जो प्रगट ज्ञान का अंश भी प्रगट है न? परन्तु उसकी रुचि में वस्तु गुप्त रह गयी। मेरुचन्दजी! आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सरल है, अब गुजराती कहीं ऐसी (कठिन नहीं

है)। सेठिया के घर से चले गये सब इसलिए। आहाहा! यह दो महीने और दस दिन हिन्दी चला। आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? कैसे है? आहाहा! तो कहते हैं कि चिन्मय ज्योति है। अखण्डानन्द प्रभु चिन्मय, ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप वस्तु है। आहाहा! है? **चेतना, वही है स्वरूप... 'मयं'** शब्द का अर्थ किया। चेतन आत्मा, उसका चेतनास्वरूप। आहाहा! चेतन कहो या आत्मा कहो। आत्मा चेतन, वह तो वस्तु। उसका स्वभाव चेतना। आहाहा! प्रज्ञाब्रह्म। आहाहा! जानना, देखना और आनन्द जिसका स्वभाव। जैसे वस्तु अनादि शाश्वत, वैसे उसका चिद्घन आनन्दकन्द प्रभु स्वभाव भी शाश्वत है। आहाहा! आहाहा!

ऐसी चिन्मय ज्योति अर्थात् प्रकाशस्वरूप वस्तु प्रगट होती है। आहाहा! यह राग के विकल्प, अरे! गुण-गुणी के विकल्प—गुणी प्रभु चिन्मय आत्मा और उसका गुण चेतना, ऐसा भेद का विकल्प भी जिसे छूट जाता है। आहाहा! इस विकल्प से रहित भगवान चिन्मय ज्योति दृष्टि में प्रगट होती है। वह दृष्टि में ओझल थी, ओझल (थी) वह प्रगट होती है। तुमको तो गुजराती आती है। सेठ तो गुजराती, सेठिया तो गुजराती अधिक पसन्द करते थे। आहाहा! तुम आये और गुजराती शुरु (हुआ)। आहाहा!

यहाँ है। **प्रगट होती है। कैसी है ज्योति?** भगवान चैतन्यज्योति... आहाहा! बहिन के शब्द में तो यह आया था। वह आया न? स्वर्ण को जंग नहीं होती। कनक-सोना। जंग होती है उसे? काट कहते हैं या क्या? काट कहते हैं या हिन्दी में (दूसरा) कहते हैं। जंग। स्वर्ण को जंग नहीं होती। अग्नि में दीमक नहीं होती। उघई समझते हैं? जीवांत, छोटी दीमक होती है। बहुत सूक्ष्म। बहुत कोमल। धूप लगे न तो मर जाये। लकड़ी में ऐसी दीमक-दीमक होती है। उस अग्नि में दीमक नहीं होती। इसी प्रकार भगवान आत्मा में... आहाहा! आवरण नहीं होता, अशुद्धता नहीं होती, न्यूनता नहीं होती। यह शब्द आता है, बहिन की पुस्तक में। आज आये हैं तो दोपहर में भेंट ले जाना। पुस्तक बहुत अच्छी है। ३१०० प्रकाशित किये हैं। सात रुपये की कीमत है। तीन सौ सबको दे दिये। तीन रुपये में। तुमको तो भेंट (देना है)। आहाहा! बहुत वर्ष में आये। प्रेम लेकर आये हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! वह चिन्मयज्योति प्रभु ध्रुव, जिसकी शुरुआत नहीं—आदि नहीं, जिसका अन्त नहीं। वह चीज़ है, उसका आदि-अन्त क्या? आहाहा! ऐसी चिन्मय ज्योति—अपना स्वरूप प्रगट होता है। आहाहा! **कैसी है ज्योति? सर्व काल प्रगट है।** वस्तु है, वस्तु है, वह तो सर्व काल में है ही। सर्व काल है ही। आहाहा! पर्याय में-अवस्था में पलटना होता है। पर्याय पलटती है। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **सर्व काल प्रगट है।** वस्तु सर्व काल प्रगट है। वर्तमान पर्याय जो चलती है, वह व्यक्त-प्रगट है। इस अपेक्षा से वस्तु को अप्रगट कहा है। परन्तु वस्तुरूप से प्रगट है। क्योंकि वस्तुरूप से अभाव नहीं है, भाव है। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण स्वरूप से सदा, सदा प्रगट है-प्रगट है। आहाहा!

यह शब्द भी आया है न बहिन में। 'जागृत जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये?' उसमें सादी भाषा की है। जागता जीव। जागता अर्थात् ज्ञायक। जागता जीव ऊभो अर्थात् ध्रुव है न? ऊभो अर्थात् है न? समझ में आया? आहाहा! चैतन्यज्योति जागती ज्योति ध्रुव है न? ध्रुव है न? कहाँ जाये? वह ध्रुव चीज़ जाये कहाँ? क्या वह पर्याय में आती है? क्या वह राग में आती है? वह तो है। आहाहा! समझ में आया? लो! धीरुभाई! धीरुभाई कहे, एक-दो बोल बोलना। वहाँ आ गया। आहाहा!

और कैसी है वस्तु? चैतन्यज्योति प्रकाश की—चैतन्यप्रकाश की मूर्ति, चेतन, चेतना, स्वभाव की मूर्ति कैसी है? आहाहा! **कर्मकलंक से रहित है।** इस वस्तु में आवरण नहीं। वह तो पर्याय में कर्म का निमित्त है। पर्याय में कर्म का निमित्त है। पर्याय स्वतन्त्र, उसमें कर्म का निमित्त। वस्तु में कर्म का निमित्त है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग! कर्मकलंक। यह तो कहा न इसमें? आवरण नहीं। आहाहा! प्रभु! पूर्ण स्वरूप में आवरण कैसा? आवरण कैसा और अशुद्धता कैसी? और कमी-न्यूनता कैसी? आहाहा! वह तो पूर्णानन्द का नाथ प्रभु विराजता है। आहाहा!

वैष्णव में कहा जाता है, 'मारी नजरने आळसे रे में निरख्या न नयणे हरि।' आता है? मेरी नजर के आलस्य से। नजर—पर्याय में नजर वहाँ नहीं की। 'नजरने आळसे रे में निरख्या न नयणे हरि।' हरि-आत्मा। राग, द्वेष और अज्ञान को हरे, वह हरि।

आहाहा! यह नयन के आलस्य से (निरखा नहीं)। भगवान समीप में—नजदीक में विराजता है। एक समय की पर्याय के समीप विराजता है। बराबर है? भाई! आहाहा! वह समीप महापुरुष परमात्मस्वरूप विराजता है। एक समय की वर्तमान पर्याय है, उसके निकट प्रभु पूर्ण विराजता है। तेरी नजर वहाँ गयी नहीं। बराबर है? आहाहा! भगवन्त! आहाहा! वह तो कर्म के कलंक से रहित है। आहाहा!

कैसी है? 'निजरसप्राग्भारं' 'निजरस' चैतन्यरस। चैतन्यशक्ति। त्रिकाली चैतन्यरस। आहाहा! निजरस का अर्थ किया चैतन्यगुण। गुण का अर्थ रस। चैतन्यरस। त्रिकाल चैतन्यरस। आहाहा! उसका **समूह है...** भगवान अन्दर चैतन्य के रस का समूह है। भाषा तो समझते हो? आहाहा! प्रभु! तू कौन है? आहाहा! वह **'निजरसप्राग्भारम्' 'निजरसप्राग्भारम्'** भगवान आत्मा, अपना निजरस—चैतन्यरस का समूह है। आहाहा! उसमें तो अल्पज्ञता भी नहीं, अशुद्धता नहीं, आवरण नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि उसमें द्रव्य पर करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

'निजरसप्राग्भारम्' निजशक्ति के स्वभाव का समूह प्रभु है। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता, प्रभुता, इन सब शक्तियों का समूह है। आहाहा! उसे पामररूप से माना, (यह) मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसे आत्मा ने एक समय की पर्याय पर दृष्टि रखकर उतना माना। मिथ्यात्व है। झूठी दृष्टि है। आहाहा! ऐसा भगवान निजरस की शक्तियों का समूह प्रभु, उसकी दृष्टि करना, इसका नाम सत्यदृष्टि, सम्यग्दृष्टि है। जैसा स्वरूप है, वैसी दृष्टि हुई; इसलिए सम्यग्दृष्टि। भाषा समझ में आती है? भाई! आहाहा! भगवान! तू प्रसन्नस्वरूप अन्दर है। आनन्दस्वरूप, प्रसन्नस्वरूप, आहाहा! जिसमें दीनता नहीं, पामरता नहीं, विपरीतता नहीं। आहाहा! उसका वह चेतनागुण का समूह है। आहाहा! यह अस्ति से बात की।

अब नास्ति से करते हैं। **'पररूपतः व्यावृत्तं'** है? **'पररूपतः' ज्ञेयाकार परिणमन से उससे पराङ्मुख...** बहुत सूक्ष्म बात ली है। सुनो! क्या कहते हैं यह? भावार्थ है न? **सकल ज्ञेयवस्तु को जानती है...** यह ज्ञान का स्वभाव अपने अतिरिक्त अनन्त ज्ञेयों में किसी ज्ञेय को वह मेरा है, ऐसा तो मानता नहीं, परन्तु सकल ज्ञेय को जानता है, अर्थात्

कि **सकल ज्ञेय वस्तु को जानती है, तद्रूप नहीं होती,...** सकल को जानने पर भी उस ज्ञेयरूप ज्ञान होता नहीं। आहाहा! चैतन्य के नूर का पूर, प्रभु! आहाहा! अनन्त-अनन्त ज्ञेय, अनन्त परमेश्वर, अनन्त निगोद के जीव, अनन्त रजकण... आहाहा! उस सकल ज्ञेय को भगवान आत्मा अपनी पर्याय में जानता है, तथापि उस ज्ञेयरूप वह ज्ञान होता नहीं। आहाहा! वह ज्ञानस्वरूप तो अपने अस्तित्व में रहा है। उस ज्ञेय को जाना; इसलिए ज्ञेय के अस्तित्व में गया है और ज्ञेय का अस्तित्व ज्ञान में आया है, ऐसा नहीं। बराबर है? आहाहा! ऐसा नाथ!

'**पररूपतः व्यावृत्तं**' पररूप की व्याख्या इतनी सब की है कि '**ज्ञेयाकार परिणमन से पराङ्मुख है।** अर्थात् **भावार्थ इस प्रकार है सकल ज्ञेयवस्तु को जानती है, तद्रूप नहीं होती...** आहाहा! अनन्त केवलियों को भी ज्ञान की पर्याय... आहाहा! जानती है, तथापि उस पररूप वह ज्ञान होता नहीं। स्वरूप में, स्वक्षेत्र में स्वभाव में रहकर ज्ञान पर को जानता है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। वह अपने क्षेत्र और भाव में रहकर अपने को स्वयं पूर्ण जानता है। आहाहा! अरे! इसने सुना नहीं, भाई! आहाहा! तू कौन है अन्दर? भगवत्स्वरूप है। आहाहा! यह वह ज्ञानवस्तु, चेतनरसस्वभावी प्रभु, अपने अतिरिक्त पर अनन्त ज्ञेय, उन्हें जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। क्योंकि उस चीज़ को वह ज्ञानपर्याय स्पर्श नहीं करती-छूती नहीं। तथा वे ज्ञेय उस ज्ञान की पर्याय में स्पर्श नहीं करते। आहाहा! अधिकार बहुत अच्छा आया है तुम्हारे। भाग्यशाली के कान में पड़े, यह तो ऐसी बात है। बराबर है? आहाहा! अरे! बापू!

परवस्तु से '**व्यावृत्तं**' शब्द का अर्थ ऐसा किया। भगवान ज्ञानस्वरूपी बिम्ब प्रभु, वह तो वस्तु तो वस्तु है, परन्तु जब राग से भिन्न पड़ा और उसकी स्वरूप की पर्याय प्रगट हुई तो वह पर्याय परवस्तु को जाने ऐसा, तो भी उस परवस्तु के किसी भी अंश को ज्ञान की पर्याय जानने पर उसे स्पर्श नहीं करती और वे ज्ञेय अनन्त को यहाँ जाने, तथापि वे अनन्त ज्ञेय यहाँ ज्ञान की पर्याय को स्पर्श नहीं करते। भाषा तो समझ में आती है न? भाई! आहाहा! भगवान है न, बापू! इसमें कौन... आहाहा!

द्रव्य से तो सभी भगवान हैं, साधर्मी हैं। आहाहा! जैसा आत्मा अपने को जाना-

देखा, वैसा दूसरे का आत्मा भी भगवानस्वरूप से साधर्मी सभी आत्मायें हैं। आहाहा! आहाहा! क्योंकि स्वयं अनन्त ज्ञेयों को जानने पर भी ज्ञेयरूप हुआ नहीं और वे ज्ञेय, ज्ञान में आते नहीं। परन्तु उन ज्ञेयसम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने से प्रगट हुआ है। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! मार्ग ऐसा है, भाई! वह उसे जानता है। ऐसे भगवान आत्मायें यह सब; देह न देख, वाणी न देख, कर्म न देख, राग न देख। यह भगवान पूर्णानन्द का नाथ विराजता है। आहाहा! उसका आत्मा, परन्तु उसे खबर नहीं। बाकी उसका आत्मा भी परज्ञेय को जानते हुए, पर को स्पर्श नहीं करता, परज्ञेय ज्ञान में नहीं आता। ऐसा चैतन्यबिम्ब भगवान विराजते हैं सब। आहाहा! इसमें किसके साथ मैत्री और किसके साथ विरोध? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आचार्यों, सन्तों, दिगम्बर सन्त, वे तो केवलज्ञान के पथानुगामी हैं। आहाहा! उन्होंने जो आत्मा की व्याख्या (की), बहुत थोड़े शब्दों में और बहुत गम्भीर! आहाहा! भाई! तू तेरी चीज़ को... आहाहा!

यहाँ संवर का अधिकार है। अर्थात्? कि राग से लेकर सभी चीज़ें ज्ञेय हैं। उन्हें, भगवान ज्ञानशक्तिवाला तत्त्व तो है, परन्तु जब उसे राग से भिन्न पड़कर ज्ञान की दशा प्रगट हुई, जिसमें शान्ति आयी, आनन्द आया और प्रगट शक्ति जो थी, वह पर्याय में आयी, प्रगट पर्याय (हुई), वह पर्याय संवररूप है, धर्मरूप है। वह पर्याय सर्व ज्ञेय को जानने पर भी उस ज्ञेयरूप वह पर्याय होती नहीं और वे ज्ञेय उस ज्ञानरूप होते नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। ऐसा कहते हैं कि उपदेश कैसा? बापू! तेरा मार्ग तो... नाथ! आहाहा!

सकल ज्ञेयवस्तु को जानती है, तद्रूप नहीं होती... आहाहा! राग आवे तो राग को ज्ञान जाने—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। परन्तु राग की अस्ति को अपने स्व-परप्रकाशक ज्ञान में स्वयं अपना स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य से प्रगट हुआ है। उसमें राग ज्ञात होता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। बाकी तो अपनी पर्याय ही स्वपरप्रकाश को ज्ञात होती है। आहाहा! समझ में आया? **अपने स्वरूप रहती है।** सकल ज्ञेयवस्तु को जानने पर भले ऐसे मति और श्रुतज्ञान की पर्याय हो, तथापि सर्व ज्ञेय को जानने पर भी उस पररूप वह ज्ञानदशा नहीं होती। अपना एकत्व वह ज्ञान छोड़ता नहीं। पर का पृथक्त्व, उसे वहाँ अपने में मिलाता नहीं। आहाहा

अपने स्वरूप रहती है। आहाहा! है भाषा? यह तो अलौकिक बातें हैं, भगवान! आहाहा! **कैसी है? 'स्वरूपे सम्यक् नियमितं'** स्वरूप **जीव का शुद्धस्वरूप, उसमें....** भगवान आत्मा का स्वरूप जो आनन्द, ज्ञान और शान्ति और जिसका स्वभाव ज्ञान, आनन्द, उसे मर्यादा नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! बहिन में यह शब्द आया था, कहा था एक बार। उसमें आयेगा कि पुण्य और पाप और मिथ्यात्व का भाव, वह सीमा है—उसकी सीमा है। क्योंकि विकार है, उसकी हद है, मर्यादा है; इसलिए वहाँ से विमुख हो सकता है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा में तो ज्ञान और आनन्द और शान्ति की अमर्यादित, अपरिमित शक्ति है। आहाहा! उसमें जहाँ गया, वह अब बदलता नहीं। यह कहेंगे। अभी **'नित्यविजयं'** कहेंगे। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु, जिसकी ज्ञान-आनन्दादि अनन्त शक्ति और एक-एक शक्ति भी अमर्यादित सामर्थ्यवाली शक्ति है। आहाहा! ऐसी शक्ति का स्वरूप प्रभु, उसमें जिसकी दृष्टि पड़ी और अनुभव हुआ, उस अमर्यादित चीज़ में से अब विमुख नहीं होता। और मिथ्याश्रद्धा तथा पुण्य-पाप के भाव, वे विभाव हैं, उनकी सीमा है, सीमा है। काल से भले एक समय है, परन्तु भाव से भी सीमा है। वह विकार अमर्यादित नहीं है। हद-हदवाला है, सीमा है; इसलिए विमुख हो सकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : विकार की सीमा है, स्वभाव की सीमा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव की सीमा कहाँ है? विभाव की सीमा है। चाहे जितना विभाव अनन्त काल किया, परन्तु एक समय की अवधि है और मर्यादित है। विभाव अमर्यादित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है? आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान आदि अनन्त स्वभाव की शक्ति से अमर्यादित भरा है। परन्तु उसके राग के मर्यादित भाव से हटकर-खसकर शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि और अनुभव हुआ, तो कहते हैं, वहाँ चारित्रपाहुड़ में तो ऐसा कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, वह भी अक्षय और अमेय है। आहाहा! वस्तु तो अक्षय और अमेय है-अमेय अर्थात् मर्यादारहित है, परन्तु पर्याय प्रगट हुई... आहाहा! वह भी अक्षय और अमेय है। क्षय न हो और मेय-मर्यादारहित वह पर्याय है।

आहाहा! और विकार है, वह मर्यादित है। आहाहा! साधक को एक समय की पर्याय में दो भाग। साधक है न? अभी पूर्णदशा प्रगट नहीं हुई है। समझ में आया? आहाहा! अज्ञानी की तो बात क्या करना? परन्तु यहाँ कहते हैं कि संवर-आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ, उसकी पर्याय की निर्मलता में भी क्षय नहीं और मर्यादा नहीं, ऐसी दशा है। और राग जो बाकी रहा, उसकी मर्यादा है। वह वहाँ से हट जायेगा। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसके घर की बातें सुनी नहीं। निजघर में क्या ऋद्धि है? परघर में क्या विकार और दुःख है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी शुभभाव में आवे, परन्तु वह उसे दुःखरूप लगता है और उसकी हद है। आहाहा! और उसकी शक्ति और स्वभाव अक्षय और अमेय तो है ही, आत्मा वस्तु, परन्तु उसका ज्ञान, श्रद्धा और स्थिरता होने पर वह पर्याय में अक्षय और अमेयपना आ जाता है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! ऐसा यह उपदेश किस प्रकार का? दया पालना और व्रत पालना... अरे! बापू! यह सब विकल्प है, राग है, भाई! यह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

'सम्यक् नियमितं' जीव का शुद्धस्वरूप, उसमें जैसी है, वैसी गाढ़रूप से स्थापित है। आहाहा! देखा! ध्रुव अविनाशी आदि-अन्त रहित चीज़ प्रभु, वह गाढरूप से स्थिर है, स्थापित है। परन्तु उसका भान हुआ, वह भी गाढरूप से स्थापित है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो एक-एक श्लोक अलौकिक बातें हैं। आहाहा! **'स्वरूपे सम्यक् नियमितं' जीव का शुद्धस्वरूप, उसमें जैसी है, वैसी गाढ़रूप से स्थापित है।** आहाहा! अन्तर गाढ ध्रुवरूप से स्थिर है। और उसका भान हुआ, वह भी गाढरूप से स्थापित है। आहाहा!

और कैसी है? 'संवरं सम्पादयत्' देखो! देखा! **धाराप्रवाहरूप आस्त्रवता है ज्ञानावरणादिकर्म उसका निरोध करणशील है।** आहाहा! वह पर्याय, हों! आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन भगवान, सच्चिदानन्द प्रभु, सत्-शाश्वत्, चिद्-ज्ञान और आनन्द का कन्द, उसका अनुभव हुआ। आहाहा! वह वस्तु है, वैसा अनुसरकर होना हुआ। जो राग को अनुसरकर विकार का होना था, वह तो दुःख था। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसे अनुसरकर अनुभवशील हुआ। आहाहा!

वह **धाराप्रवाहरूप आस्त्रवता है...** आवरण, उसे रोकता है। अन्दर में जो धाराप्रवाही कर्म आता था और परिणाम भी यह विकार के होते थे, उन्हें यहाँ अन्तर में जाने पर उन्हें रोकता है। आहाहा! वे उत्पन्न नहीं होते इतने। जितना आत्मा आनन्दस्वरूप में लीन होता है, उतना आस्त्रव—पुण्य-पाप उत्पन्न नहीं होते, उन्हें नाश करता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अरे! ऐसी बात कहाँ है? बापू! आहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर...

मुमुक्षु : वीतराग....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ के अतिरिक्त यह बात कहीं है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहते हैं? संवर की व्याख्या की है। आस्त्रवता से पुण्य-पाप के भाव और आवरण, **उनका निरोध उसका करणशील है।** कौन? जो शुद्ध ध्रुवस्वरूप भगवान, उसका जहाँ राग से भिन्न पड़कर अनुभव हुआ—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम हुए, वह धारावाही परिणाम, धारावाही आवरण को रोकता है। ऐसा है। आहाहा! ध्रुव को धारे धारणा में। आहाहा! जिसे ध्रुव के ध्यान से ध्येय को ध्रुव में लेकर जो दृष्टि प्रगट हुई, जो ज्ञानादि प्रगट हुए, वह निर्मल श्रुतज्ञान, वह कर्म नये आवें, उन्हें रोकता है। रोकता है, इसका अर्थ कि आते नहीं, उन्हें रोकता है, ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु : भाव रुक गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुक गये। आते हैं और रोकता है ऐसा (नहीं)। परन्तु पहले आते थे, वह अभी रोकता है, अर्थात् नहीं आते। ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! परन्तु आते थे और रोके हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? भाई! यह तो अध्यात्म शास्त्र है, बापू! इसके एक-एक शब्द में गम्भीरता पड़ी है। यह तो तीन लोक के नाथ देवाधिदेव तीर्थंकरों के वचन हैं। सन्त तो उन तीर्थंकर के माल को आड़तिया होकर दुनिया को देते हैं। आहाहा! बापू! माल तो यह है, भाई! आहाहा! एक-एक कड़ी में बारह अंग का सार भर देते हैं! यह सिद्धान्त और यह शास्त्र!! आहाहा!

'**संवरम् सम्पादयत्**' वह संवर को सम्पाद करता है। अर्थात्? आस्त्रव को रोकता है। यह ऐसा सम्पाद अर्थात् उसका करणशील। संवर का स्वभाव ही ऐसा है,

ऐसा। भगवान आत्मा राग से भिन्न पड़कर चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों परन्तु वह आस्रव है, आकुलता है। उससे भिन्न पड़कर, संवर-धर्म की परिणति, वह आस्रव को रोकने के स्वभाववाली है। करणशील कहा न? करणशील। रोकने के स्वभाववाली चीज़ है वह। आहाहा! भाई! शब्दार्थ भी कैसे किये हैं! राजमल। इसमें से समयसार नाटक बनाया है। बनारसीदास ने इसमें से समयसार नाटक बनाया है। बनारसीदास है न? समयसार नाटक इसमें से बनाया है। आहाहा!

अरे! घर में चीज़ और घर में देखने की फुरसत नहीं। आहाहा! और बाहर में भ्रमा करता है। पुण्य और पाप तथा पुण्य-पाप के बन्धन और बन्धन के धूल के बाहर के फल। आहाहा! उन्हें बाहर में देखा करे कि जो चीज़ अन्दर में नहीं और जो अन्दर में है, उसे देखने की फुरसत नहीं। आहाहा! बहिन में यह शब्द है। ***लोकाग्र में जाना हो तो लोक का संग छोड़।*** आहाहा! लोक के-पर के संग से तुझे क्या (लाभ) है? आहाहा! तुझे लोकाग्र में अकेला ही रहना है न? सिद्ध होकर। तो अकेला रहना हो, लोकाग्र में जाना हो तो लोक का संग छोड़ तो लोकाग्र में जा सकेगा। बराबर है? भगवान असंगी प्रभु, उसका संग कर तो एकाग्र होकर लोकाग्र में जा सकेगा। आहाहा! सूक्ष्म लगे, प्रभु! कठिन लगे। मार्ग तो यह है। आहाहा! उसका पहले ज्ञान तो करे। समझण में तो ले कि मार्ग तो यह है। यह सच्चे ज्ञान बिना जायेगा कहाँ? कहाँ जाना और कहाँ से हटना? उसका ज्ञान ही जहाँ नहीं। आहाहा!

क्या कहा? '**संवरम् सम्पादयत्**' आते हुए आवरण को रोकना जिसका स्वभाव है। आहाहा! करणशील-रोकने का स्वभाव है। आहाहा! पर्याय में, हों! संवर धर्म प्रगट... संवर। सम्यग्दर्शन-ज्ञान जो स्वरूप की प्रतीति, रमणता आदि अंश प्रगट हुआ, उसका उन आवरणों को रोकने का स्वभाव है। आहाहा! यह संवर की पहली गाथा है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—यहाँ से लेकर संवर का स्वरूप कहते हैं। यहाँ से लेकर आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हुए) वह संवरस्वरूप है। उसका स्वरूप कहते हैं। समझ में आया? '**प्रतिलब्धनित्यविजयं**' आहाहा! देखो तो सही!

पाया है शाश्वत् जीतपना,... यह गजब बात है, देखो! क्या कहते हैं प्रभु? जीत तो ठीक; परन्तु नित्य। यहाँ वजन यहाँ है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, जिसकी श्रद्धा-ज्ञान में, रमणता में आया... आहाहा! वह नित्य विजय प्राप्त की है। वह परिणति अब वापस बदलनेवाली नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! देखो! सन्तों की वाणी तो देखो! हमको जो यह प्रगट दशा हुई वह नित्य रहनेवाली है, कहते हैं। आहाहा! अब हम पड़ेंगे और मिथ्यात्व में, राग-द्वेष में आयेंगे, यह अब हमारे रहा नहीं। आहाहा! आहाहा! पर्याय में, हों! नित्य विजय प्राप्त की है। वस्तु तो नित्य है। आहाहा! ऐसी चीज़ को जहाँ अन्दर में यह शुभ-अशुभ विकल्प का राग जो है, उससे भिन्न और स्वभाव की एकता और विभाव की पृथक्ता, यह जहाँ अन्दर प्रगट हुई... आहाहा! वह नित्य विजय है। वह हमारी दशा अब नित्य अपनी विजय करेगी। राग का पराजय करेगी और संवर का विजय करेगी।

विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ६, मंगलवार, दिनांक - १८-१०-१९७७, कलश-१२५, प्रवचन-१२५

कलशटीका, संवर अधिकार। अन्तिम चार लाईनें हैं न? **भावार्थ इस प्रकार कहते हैं—** अन्तिम चार लाईनें हैं। **यहाँ से लेकर संवर का स्वरूप कहते हैं।** आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उसका जहाँ अन्तर में अनुभव हुआ, पुण्य और पाप के राग से भिन्न पड़कर। वह पुण्य और पाप आस्रव है। मिथ्याश्रद्धा, वह आस्रव है। वास्तविक वस्तु का स्वरूप है, उससे विपरीत मान्यता, वह मिथ्यात्व है। और अनुकूल-प्रतिकूलता में राग-द्वेष करना, वह भी मिथ्यात्व के साथ का अनन्तानुबन्धी का विकार है। इन दो का जिसने शुरुआत में शुद्ध चैतन्य की दृष्टि करके पुण्य-पाप और मिथ्यात्व के आस्रव को रोका—रोधन किया, उसे अन्दर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरणरूप संवर हुआ। समझ में आया? यहाँ से शुरुआत होती है, ऐसा कहते हैं। चौथे गुणस्थान से शुरुआत होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति का सागर स्वभाव, उसके सन्मुख होकर निमित्त, राग और एक समय की पर्याय की ओर से भी झुकाव छोड़कर, शुद्ध चैतन्यघन नित्यानन्द प्रभु, उस पर जिसने आश्रय लिया, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूपाचरण हो, वह संवर है। समझ में आया? उसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष का आस्रव रुका है। दूसरा अस्थिरता का आस्रव है, परन्तु शुरुआत यहाँ से होती है। समझ में आया? आहाहा! **यहाँ से लेकर...** ऐसा है न? **संवर का स्वरूप कहते हैं। कैसा है संवर? 'प्रतिलब्धनित्यविजयं'** आहाहा! देखो! आचार्य बात तो करते हैं। **पाया है शाश्वत् जीतपना...** जिसने। आहाहा! चैतन्यद्रव्य-वस्तु उसकी जिसने अन्तर में दृष्टि प्राप्त की, उसने आस्रव पर शाश्वत् जीत प्राप्त की। अब वह जीत हुई, वह कभी पराजित होगा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

फिर से। यह **'नित्य'** शब्द पड़ा है न? **'नित्यविजयं'** आहाहा! जैसे अनादि मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष की जय थी अनादि से और संवर की पराजय थी। आहाहा! धर्मदशा की पराजय थी। तब यह आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उसे जहाँ दृष्टि में लिया और

ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाया और उसके स्वरूप में, स्वरूपाचरणरूपी चारित्र भी प्रगट हुआ, यह शुरुआत। आहाहा! तब उसने शाश्वत् जीत प्राप्त की। आहाहा! वह अब आत्मा जैसे नित्य और ध्रुव है, वैसे जिसने नित्य और ध्रुव का आश्रय लेकर जिसने निर्मल परिणति संवर प्रगट किया, वह अब किया सो किया, कहते हैं। वह नित्य रहेगा। आहाहा! वस्तु जैसे नित्य रहती है, प्रभु! वैसे उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश भी प्रगट किया। आहाहा! वह नित्य रहेगा। पर्याय, हों! द्रव्य तो नित्य है। द्रव्य अर्थात् वस्तु भगवान प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु, उसका गुण और द्रव्य तो नित्य-शाश्वत् ही है, परन्तु उसका अवलम्बन लेकर जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूपाचरण की स्थिरता, ऐसा जिसने संवर प्रगट किया, वह संवर नित्य रहेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ऐसा आता है कि पहले उपशम समकित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उपशम हो, उसकी यहाँ अभी बात ली नहीं। उपशम हो तो भी ऐसा का ऐसा रहेगा, ऐसा यहाँ तो कहा है। आहाहा! शास्त्र में ऐसा आता है कि प्रथम उपशम होता है और पहले गिर भी जाता है। ऐसा एक अधिकार आता है। और दूसरा अधिकार ऐसा भी आता है कि वह गिरता नहीं, ऐसा भी आता है। यहाँ तो यह बात एकदम अन्दर ली है। आहाहा!

शाश्वत् प्रभु जहाँ दृष्टि में और अनुभव में लिया, वह संवरदशा शाश्वत् ऐसी की ऐसी रहनेवाली है, कहते हैं। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा! संवर अर्थात् ऐसे बाहर से हाथ जोड़कर बैठा, आस्रव रोका—ऐसा नहीं। अन्तर में अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु... आहाहा! उसका जिसने आश्रय और अवलम्बन लिया, वह आस्रय और अवलम्बन में जो दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान, शान्ति आंशिक प्रगट हुई, उसे यहाँ संवर की शुरुआत हुई। सुमेरुमलजी! आहाहा! भाई! यहाँ तो अप्रतिहत की बात है। है? हो और गिरे, उसकी यहाँ बात (नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : होवे और चढ़े उसकी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पड़े, वह तो एक जानने की चीज़ के लिये बताया है।

यहाँ तो आचार्य का पुकार प्रत्येक गाथा में है। (समयसार) ३८ गाथा में,

(प्रवचनसार) ९२ गाथा में। जो हमने आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किया है, वह अब गिरनेवाला नहीं है। आहाहा! इतना अप्रतिहत सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है। समझ में आया? आहाहा! भले अभी वेदन में आस्रव है परन्तु हमको प्रगट हुई दशा है, वह अब च्युत होनेवाली नहीं है। आहाहा! यह आगे कहेंगे कि वेदन में हमको दो प्रकार है। वस्तु के आश्रय से आनन्द आया वह भी है और जितनी अशुद्धता है, वह भी वेदन में है। परन्तु यह प्रगट हुई दशा वह वापस पड़नेवाली नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह ९२ गाथा प्रवचनसार, ३८ गाथा समयसार में यही कहा है। यहाँ तो अप्रतिहत सम्यग्दर्शन-ज्ञान की व्याख्या की है। आया, वह जाये नहीं। आहाहा! क्योंकि जिसने द्रव्य चैतन्यप्रभु नित्यानन्द प्रभु को पकड़ा तो नित्य जैसे वस्तु है, वह पकड़ भी नित्य रहनेवाली है, कहते हैं। बालचन्दजी! आहाहा! ऐसी बात है।

दिगम्बर सन्त अप्रतिहत की बात करते हैं। आहाहा! है यह अभी क्षयोपशमभाव। क्या कहा? यह आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी प्रतीति सम्यक् अनुभव हुआ, वह अभी क्षायिकभाव नहीं है। क्योंकि पंचम काल में क्षायिकभाव अभी प्रगट नहीं होता। होता है क्षयोपशम, परन्तु कहते हैं कि वह क्षयोपशम ऐसा हुआ है कि शाश्वत् क्षायिक को लेगा। समझ में आया? क्षयोपशम और क्षायिक अभी क्या (उसकी खबर नहीं होती)। प्रथम उपशम समकित हो, पश्चात् तुरन्त ही क्षयोपशम हो। अभी क्षायिक नहीं है। आचार्य मुनि हैं, उन्हें भी क्षायिक नहीं है। परन्तु क्षयोपशमदशा ऐसी प्रगट हुई है कि क्षायिक होगा ही। आहाहा! समझ में आया?

यह '**नित्यविजयं**' शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! है? '**प्रतिलब्धनित्यविजयं**' यह शब्द पड़ा है। जिसने संवर प्रगट किया, उसने नित्यविजय प्राप्त की। आहाहा! समझ में आया? यह बात तो पहले की थी। बहिन को जातिस्मरण में आया है। जातिस्मरण में। (कि) समकित के दो प्रकार। एक सीधा क्षायिक और एक जोड़नी क्षायिक। ऐसा आया है। जोड़नी क्षायिक अर्थात् कि क्षयोपशम समकित है, वह क्षायिक होनेवाला है, वह जोड़नी क्षायिक। वह यह बात है। समझ में आया? बहिन के जातिस्मरण में यह आया है। यह लिखा गया है। पुस्तक में लिखा हुआ है। जोड़नी

क्षायिक। अर्थात्? वर्तमान क्षायिक नहीं, परन्तु वह क्षयोपशम का अनुभव हुआ, वह क्षायिक लेकर ही रहेगा। गिरनेवाला नहीं है। आहाहा! देखो! यहाँ यह बात आयी न? समयसार की ३८ गाथा में भी यह आयी है और प्रवचनसार की ९२ गाथा में भी यह आया है। हमने जो आगमकुशल से और हमारे अनुभव से हमने सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किया, वह अब गिरनेवाला नहीं है। पंचम काल के सन्तों का यह पुकार है। जिन्हें परमात्मा का विरह था। कुन्दकुन्दाचार्य तो फिर भगवान के पास गये थे। परन्तु यह कलशटीका अमृतचन्द्राचार्य की है, वे तो यहाँ थे। वे कहीं भगवान से मिले नहीं थे। वे भगवान मिले नहीं, परन्तु यह भगवान मिला उन्हें। आहाहा!

मुमुक्षु : ....भगवान है और आचार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आचार्य है। वे भगवान कहते हैं, वे पंच परमेष्ठी की स्थिति से।

यहाँ तो एकदम नित्यविजय प्राप्त की है। आहाहा! जैसा नित्य आस्रव की अनादि से जय थी। आगे आयेगा अभी। आस्रव को गर्व हुआ था। मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के भाव को गर्व हुआ। मैंने मानधाताओं को गिराया है। बड़े जैन के दिगम्बर साधु हों, परन्तु पंच महाव्रत के पालनेवाले, वे पंच महाव्रत आसव, वह धर्म है और आस्रव से मुझे धर्म होगा—ऐसे (माननेवाले) महात्माओं को, आस्रव कहता है कि मैंने गिराया है। अभी कहेंगे। अभी ही कहेंगे। आस्रव को गर्व हुआ है। आचार्य ने अलंकार किया है। आहाहा! बड़े मानधाता, ग्यारह अंग के पढ़नेवाले नौ-नौ पूर्व की जिन्हें लब्धि और पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण पालनेवाले ऐसे महात्माओं को, वह राग की क्रिया धर्म है और हम धर्म करते हैं, यह मिथ्यात्वरूपी आस्रव को गर्व हुआ कि ऐसों को मैंने मिथ्यात्व में रखा है। आहाहा! अभी आयेगा, इसके बाद। यहाँ नित्य पहले रखकर, फिर बात करेंगे। आहाहा!

आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन का अन्तर अनुभव होना, वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वे सब आस्रव हैं, मैल हैं, वह धर्म नहीं है। आहाहा! उस आस्रव (पर) मैंने विजय प्राप्त की है, संवर कहता है। मैंने मेरे स्वरूप का

आश्रय लिया है। आहाहा! भगवान जैसे सच्चिदानन्द प्रभु नित्य ध्रुव है तो उसका अवलम्बन लेकर मेरी दशा प्रगट हुई है, वह भी ध्रुव कायम रहनेवाली है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! यह तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, वे सब भाव धर्म नहीं। वह तो राग है, आस्रव है। उस आस्रव को गर्व हुआ है कि मैंने बड़े मानधाताओं को आस्रव में धर्म मनाया है। यह आयेगा, अभी लाईन में आयेगा। समझ में आया? तब यहाँ संवर कहता है कि मैंने जो आस्रव को जीतकर, नाश करके मेरे स्वरूप की अनुभव दशा हुई, वह अब मेरी जय हुई, वह पराजय कभी नहीं होगी। सुमेरुमलजी! आहाहा! अब यह मेरु हिलेगा नहीं। आहाहा!

सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर वस्तु है, वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव से भी भिन्न है। क्योंकि वह आस्रव और राग है। आहाहा! उस राग को यहाँ कहते हैं कि मैंने मेरा प्रभु वीतरागमूर्ति जिनस्वरूपी आत्मा, उसका मैंने आश्रय लिया, उसकी मैंने भेंट की, मैं महाप्रभु के पक्ष में चढ़ा। पडखे कहते हैं? बाजू। वह बाजू अब मेरा नहीं हटेगा। आहाहा! अनादि से पुण्य और पाप और मिथ्यात्व के पक्ष-बाजू में चढ़ गया हुआ मैं, वह मेरी भूल थी। आहाहा! समझ में आया? अब शाश्वत् जीत जिसने प्राप्त की है। आहाहा! इतने शब्द में तो गजब किया है न! यह तो शास्त्र है। दिगम्बर सन्त, वे केवली के पथानुगामी। आहाहा! और कहते हैं कि जो आत्मा शान्त और आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसका हमें अनुभव हुआ, वह अनुभव हुआ, वह संवरदशा है। कोई क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह कहीं संवर और धर्म नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें शान्ति तो मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी शान्ति नहीं मिलती। मानता है।

रागमात्र आकुलता है। शुभराग हो या अशुभराग हो। दोनों आकुलता है। दोनों दुःख है। भगवान आनन्दस्वरूप है। यह आयेगा। देखो! कहा? **कैसा है संवर? पाया है शाश्वत् जीतपना जिसने,...** आहाहा! गजब किया है न! मेरा नाथ आनन्दस्वरूप प्रभु, अनाकुल अणीन्द्रिय और अनाकुल शान्ति और अनाकुल आनन्द, वह मेरी चीज़ है। उस चीज़ को मैंने प्राप्त किया, भेंट की है, आहाहा! और आस्रव के ऊपर तो मैंने जीत प्राप्त की है। आहाहा!

अब कहते हैं, **किस कारण से ऐसा है ?** किस प्रकार से विजय प्राप्त कर ऐसा संवर है ? आहाहा ! **'आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्यक्कारात्' अनन्त काल से लेकर...** निगोद। निगोद-एकेन्द्रिय जीव, वहाँ से लेकर **वेरी है...** अनन्त काल से संवर आस्रव का वेरी है और संवर का आस्रव वेरी है। संवर का आस्रव वेरी है। आहाहा ! पुण्य और पाप के भाव, वह आत्मसंवर का वेरी है। ऐसी बात है, प्रभु ! देखो ! **अनन्त काल से लेकर वैरी है, ऐसा जो 'संवर' बध्यमान कर्म का निरोध,...** जो आस्रव का रोकना, वह संवर। **उसका जीतपना, उसके द्वारा...** देखा ! संवर की जीत के कारण। अब आस्रव गर्व में आ गया।

मुझसे बड़ा तीन लोक में कोई नहीं... आस्रव ऐसा कहता है। मिथ्या श्रद्धा— पुण्य करत-करते दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते धर्म होगा, ऐसी जो मिथ्या श्रद्धा और राग और द्वेष, उसे गर्व हुआ है। अलंकार किया है न ? 'है' ? **जिसको ऐसा धाराप्रवाहरूप कर्म का आगमन,...** आहाहा ! मेरे जैसा कोई तीन काल में नहीं, ऐसा आस्रव को गर्व हुआ है। कहो, सेठ ! यह पढ़ना कठिन पड़े ऐसा। तुम्हारी बहियाँ पढ़ने की अपेक्षा। यह तो निवृत्ति लेनी पड़ेगी।

मुमुक्षु : आप समझाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले निवृत्ति लेनी पड़ेगी न ! इसके बिना समझ में आयेगा ? ऐसा मार्ग है। आहाहा !

भगवान अन्दर देह में चैतन्य, इस देहमन्दिर में चैतन्य प्रभु, इस देह देवालय में देव विराजता है। आहाहा ! वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, अनाकुल शान्ति का रसकन्द। आहाहा ! जैसे शक्करकन्द नहीं होता ? शक्करकन्द। शक्करकन्द समझते हो ? यह शक्करिया। शक्ककन्द नहीं आते ? माघ महीने में नहीं खाते ? वैष्णव खाते हैं। शिवरात्रि के (दिन) सेंककर खाते हैं। शक्करकन्द। उस शक्करकन्द में देखो तो ऊपर की छाल जरा लाल है, इसके अतिरिक्त पूरा पिण्ड शक्करकन्द। शक्करकन्द का अर्थ ? शक्कर की मिठास का पिण्ड। उसे शक्करकन्द कहते हैं। शक्करकन्द है न ? वैष्णव माघ शुक्ल शिवरात्रि में सेंककर खाते हैं।

मुमुक्षु : वह शक्करकन्द खाये और....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उन्हें सब खबर है न। लाल छाल के अतिरिक्त पूरी चीज़ शक्करकन्द। शक्कर अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा पुण्य और पाप के मिथ्यात्व की छाल के अतिरिक्त पूरा शक्करकन्द आनन्द का कन्द है। आहाहा! वह बात बैठे। समझ में आया? आहाहा!

शरीर, वाणी, मन तो जड़, वह तो मिट्टी-धूल अजीव है। परन्तु अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का भाव, वह दो लाल छाल जैसे हैं। फोंतरा, क्या कहलाता है? छिलका है। उस छिलके के पीछे अन्दर जैसे शक्करकन्द है—शक्कर की मिठास, उसी प्रकार यहाँ पुण्य-पाप के आस्रव के अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द दल पड़ा है। आहाहा! वह अनादि से पुण्य-पाप के भाव आस्रव कहते हैं कि हमने सबको जीता है। किसी को अन्दर में जाने नहीं दिया। बाहर की क्रियाकाण्ड में रोककर हमने हमारी जीत प्राप्त की है। समझ में आया? है?

उसका जीतपना उसके द्वारा 'मुझसे बड़ा तीन लोक में कोई नहीं' ऐसा हुआ है गर्व जिसको, ऐसा धाराप्रवाहरूप कर्म का आगमन,... अर्थात् आस्रव। आहाहा! **उसको दूर करनेरूप मानभंग के कारण।** आहाहा! उसे अब संवर ने दूर किया। उसका मान भंग हो गया। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव का मान भंग हो गया। मैं आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द में पुण्य और पाप के विकल्प का त्रिकाल में अभाव है। आहाहा! ऐसा सम्यग्दर्शनरूपी संवर, उसने आस्रव पर जीत प्राप्त की। जिसे गर्व हुआ था, उसके ऊपर जीत प्राप्त की। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

यहाँ तो अभी दुनिया में बाहर में व्रत लिये, अपवास किये, यात्रा की, भक्ति की और हो गया धर्म। बापू! यह तुझे खबर नहीं। वह तो राग की क्रिया है। वह पुण्य का विकल्प और आस्रव, उसे अभिमान हुआ कि मैंने तो मानधाताओं को नीचे किया है। शास्त्र के पढ़नेवालों को क्रियाकाण्ड करके हम धर्म में हैं, ऐसा आस्रव कहता है महामिथ्यात्व से हमने दूसरे को नीचे पटक दिया है। ऐसे गर्ववाला आस्रव... आहाहा! **उसको दूर करनेरूप मानभंग के कारण। भावार्थ इस प्रकार है—आस्रव तथा संवर**

परस्पर अति ही वैरी हैं,... आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप का अवलम्बन लेकर जो कुछ शुद्धता, पवित्रता, अनाकुल ज्ञान और अनाकुल शान्ति प्रगट हो, वह संवर—वह धर्म। आहाहा! वह संवर और पुण्य-पाप के भाव आस्रव, दोनों वेरी हैं। आहाहा! है?

आस्रव तथा संवर परस्पर अति ही वैरी हैं,... वापस थोड़े (वेरी हैं), ऐसा नहीं। आहाहा! किंचित्मात्र संवर में आस्रव नहीं और आस्रव में किंचित्मात्र संवर नहीं। आहाहा! यह क्या कहते हैं? कि जितने पुण्य और पाप के भाव होते हैं, उसमें किंचित् संवर और धर्म नहीं है। और आत्मा के आनन्दस्वरूप का जो आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उसमें किंचित् आस्रव नहीं है। आहाहा! यह दोनों परस्पर वेरी हैं। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा अन्दर जहाँ जागकर देखा, वहाँ पुण्य और पाप के भाव बिना निराकुल शान्तरस का कन्द है, ऐसी सम्यग्दर्शन दशा हुई, वह संवर हुआ। वह संवर और पुण्य-पाप के भाव और पुण्य में धर्म माननेवाला मिथ्यात्वभाव, वह संवर और आस्रव का बहुत ही वेरी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

आस्रव तथा संवर परस्पर... परस्पर कहा न? **अति ही वैरी हैं,...** आहाहा! **इसलिए अनन्त काल से लेकर सर्व जीवराशि विभावमिथ्यात्वपरिणतिरूप परिणमता है,...** देखो! अनन्त काल से। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा! हजारों रानियाँ छोड़कर मुनि हुआ, दिगम्बर हुआ, पंच महाव्रत धारण किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, परन्तु वह तो शुभ आस्रव है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान...' इस राग की क्रिया से रहित प्रभु चैतन्यस्वरूप, उसके आनन्द के, ज्ञान के भान बिना पंच महाव्रत के परिणाम भी दुःखरूप है। आया न इसमें? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' तब पंच महाव्रत के आस्रव परिणाम भी दुःखरूप है। आहाहा! ऐसी कठिन बातें, बापू! लोगों को तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं और ऊपर से धर्म किया... धर्म किया... धूल में भी धर्म नहीं।

यहाँ कहते हैं, अन्तर में, आहाहा! **अनन्त काल से लेकर सर्व जीवराशि विभावमिथ्यात्वपरिणतिरूप परिणमता है,...** देखो! अनन्त काल से अनन्त जीव इस

पुण्य में धर्म मानकर मिथ्यात्व से रुके हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यात्व से परिणमित हैं, कहते हैं। आहाहा! यह अपने समयसार में आ गया था कि अन्तर में चैतन्यस्वरूप शुद्ध चैतन्य का सम्यग्दर्शन न होकर, मैं रागवाला हूँ—ऐसा मिथ्यात्व में आया, तथापि पुद्गल की क्रिया नाश नहीं होती। अर्थात्? कि पंच महाव्रत के परिणाम और उसकी क्रिया तो ऐसी की ऐसी रही, परन्तु अन्दर में मिथ्यात्व हो गया। यह समयसार में आ गया। आहाहा!

भगवान आत्मा स्वयं चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द को भूलकर राग का छोटे में छोटा कण है, वह मेरा है, ऐसा मिथ्यादृष्टि हुआ तो आत्मा का घात हो गया। परन्तु पंच महाव्रत की क्रिया शरीर की क्रिया, ब्रह्मचर्य पालता हो, वह का वह रहा। पुद्गल का घात नहीं हुआ। अरे! क्या कहते हैं यह? समझ में आया? आहाहा! अन्तर भगवान पूर्णानन्द प्रभु को राग के कण से लाभ है, ऐसा मिथ्यादृष्टि हुआ, तथापि साधु की जो पंच महाव्रत की व्यवहारक्रिया ऐसी की ऐसी खड़ी रही। पुद्गल तो ऐसे के ऐसे रहे। अन्दर घात हो गया है। समझ में आया? और अन्दर घात न हुआ हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ बराबर और पुद्गल का घात हो जाये। अर्थात्? व्रत के परिणाम रहे नहीं, शरीर की क्रिया रहे नहीं। वह तो स्वतन्त्र जड़ की है। आहाहा! समझ में आया? यह आ गया था, सेठ! अभी आ गया था न तुम्हारे? आहाहा!

दीपक का घड़ा। यह गरबो चलता है न अभी? नोरता। उसमें घड़ा होता है न छिद्रवाला? अन्दर दीपक-दीपक (होता है)। छेदवाला (घड़ा)। हमारे यहाँ गरबो कहते हैं। गरबा। उसमें छिद्र पाड़कर अन्दर दीपक होता है। यहाँ कहते हैं कि दीपक बुझ जाये तो घड़ा नहीं फूटता और घड़ा फूटे तो दीपक नहीं बुझता। दोनों चीज़ भिन्न है। घड़ा फूट जाता है। दीपक है, वह तो अन्दर ऐसा का ऐसा रहता है। और दीपक बुझ जाये और घड़ा ऐसा का ऐसा रहे। इसी प्रकार पुण्य-पाप की क्रिया और देह की क्रिया घटरूप से ऐसी की ऐसी रहे, परन्तु चैतन्य दीपक में राग मेरा है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व हो जाये और दीपक बुझ गया। यह तो समझ में आये ऐसा है। आहाहा! दीपक बुझ गया। ओलाई गया को क्या कहते हैं? बुझ गया। दीपक बुझ गया अन्दर और घड़ा ऐसा का ऐसा रहा।

अन्तर में राग की महाव्रतादि की क्रिया वह धर्म है, वह संवर है, ऐसा मिथ्यात्वभाव हुआ वहाँ चैतन्य का घात हो गया, दीपक बुझ गया। घट ऐसा का ऐसा रहा। महाव्रत की क्रिया, शरीर की क्रिया, ब्रह्मचर्य शरीर का पालन करे, ऐसा (का ऐसा रहे)। आहाहा! और घट फूट जाये, तथापि दीपक ऐसा का ऐसा रहे अन्दर। महाव्रत की क्रिया, देह की क्रिया न रहे, शरीर नाश हो जाये, महाव्रत के परिणाम छूट जायें परन्तु अन्दर आत्मा आनन्दस्वरूप है, वह तो ऐसा का ऐसा रहे। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह यहाँ कहते हैं।

अनन्त काल से लेकर सर्व जीवराशि... सर्व जीवराशि। नौवें ग्रैवेयक में गया जैन का दिगम्बर साधु, वह भी मिथ्यादृष्टि। आहाहा! क्योंकि देह की क्रिया और दया, दान, व्रत के परिणाम मेरे हैं और वे मुझे धर्म हैं, इस मिथ्यात्व से घात हो गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। क्यों शोभालाल नहीं? अभी गये। ठीक। **अनन्त काल से लेकर सर्व जीवराशि... सर्व जीवराशि विभावमिथ्यात्व...** विभाव में अकेला मिथ्यात्व लिया। विपरीत मान्यता। आहाहा! मुझे पुण्य के भाव में सुख है, पाप की विषयवासना, क्रोध, मान, माया में मुझे मजा है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव... आहाहा! उससे पूरा सर्व जगत घाता गया है। आहाहा!

सर्व जीवराशि विभावमिथ्यात्वपरिणतिरूप परिणमता है, इस कारण शुद्धज्ञान का प्रकाश नहीं है... अन्दर चैतन्य के प्रकाश का पूर प्रभु वह प्रकाश वहाँ नहीं। मिथ्यात्व से घात हो गया है। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध चैतन्यप्रभु, अकेला अणीन्द्रिय ज्ञान और अणीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसका प्रकाश मिथ्यात्व के परिणाम में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। **इसलिए आस्रव के सहारे सर्व जीव हैं।** यह मिथ्यात्व श्रद्धा और पुण्य-पाप के भाव, वह आस्रव मलिन परिणाम, उसके सहारे सब जीव हैं। आहाहा! समझ में आया?

काललब्धि पाकर... अपने स्वभाव के पुरुषार्थ के काल को पाकर... आहाहा! वह काललब्धि यह। स्वरूप-सन्मुख का पुरुषार्थ हो, वह काललब्धि। आहाहा! समझ में आया? भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, उस ओर का झुकाव होकर, पुरुषार्थ होकर उसे

काललब्धि पक गयी। पर्याय निर्मल प्रगट हुई, वह काललब्धि। आहाहा! तब होगा। स्वभाव में पुरुषार्थ करेगा, तब काललब्धि होगी। यह काललब्धि होगी, तब होगी। यहाँ तो यह पुरुषार्थ स्वभाव में करेगा तो काललब्धि होगी। भगवान के प्रति अन्दर जायेगा, वह काललब्धि पक गयी। आहाहा!

कोई आसन्नभव्य जीव... देखो! आसन्नभव्य जीव। जिसे अब संसार थोड़ा है। निकट है अब मोक्ष के लिये। आहाहा! आसन्न अर्थात् नजदीक है जिसे संसार का अन्त, ऐसे भव्य जीव। आहाहा! **आसन्नभव्य...** भव्य तो है। भव्य तो है भले, परन्तु आसन्न भव्य है। अब मोक्ष होने को अल्प काल है। संसार का अन्त आने की अब तैयारी है। आहाहा! ऐसे आसन्न भव्य। आहाहा! **जीव सम्यक्त्वरूप स्वभावपरिणति परिणमता है,...** देखो! वे जीव सम्यक्त्वरूप आत्मा के आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी श्रद्धा के सम्यक्त्वरूप परिणमित होते हैं। आहाहा! पर्याय में होते हैं। शुद्ध चैतन्य आनन्दघन प्रभु, उसकी शुद्ध परिणतिरूप, पर्यायरूप से परिणमते हैं, वे समकिती हैं। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े। क्या हो? लोगों को दूसरे रास्ते चढ़ा दिया है। मूल जो अन्तर में जाने का रास्ता है, वह बन्द कर दिया है। आहाहा! और आत्मा अन्तरात्मा अन्तर है। अन्तरात्मा अन्तर है। बहिरात्मा राग-द्वेष में तो विकार है। वह तो अनात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तरात्मा प्रभु जो है, वह तो पर्याय की एक समय की अवस्था के अतिरिक्त पूरा द्रव्य अन्तर में है और बाह्य में तो एक समय की पर्याय और पुण्य-पाप के भाव बाह्य हैं। उस बाह्य को अपना स्वरूप मानता है, वह मिथ्यात्व है। और उस बाह्य की दृष्टि छोड़कर अन्तर भगवान की दृष्टि करे, वह समकित है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। बालचन्दजी! माल-माल की बात है यह। आहाहा! माल तो अन्दर आनन्द और शान्ति पड़ी है, वह तेरा माल है। यह पुण्य-पाप के भाव, वह तेरा माल कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? उसमें तो अभी तो यह पैसा बाहर में पाँच-पचास लाख मिले-धूल, वहाँ मानो हम कुछ पाये हैं और हमने कुछ प्राप्त किया है। धूल है। सुन न अब। आहाहा! तुझे सन्निपात लगा है। यहाँ कहते हैं... आहाहा!

मुमुक्षु : आजकल तो धूल की भी कीमत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी कीमत होती है।

मुमुक्षु : यह तो बिना कीमत की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमूल्य चीज़ प्रभु है। जिसकी कीमत आँकना मुश्किल है। उसका माहात्म्य छोड़कर जगत की चीज़ का माहात्म्य और कीमत करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। सुमेरुमलजी! आहाहा! ऐसा है, बापू! अरे! भगवान अन्तर में प्रभु विराजता है, उसका माहात्म्य, उसकी विस्मयता, उसकी अद्‌भुतता, उसकी आश्चर्यता छोड़कर इन पुण्य और पाप की महिमा तथा इनके फल की महिमा में रुक गया है। (उसमें) हैरान हो गया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! कहते हैं, है? **आसन्नभव्य जीव सम्यक्त्वरूप स्वभावपरिणति परिणमता है,...** आहाहा! अन्तर जो शुद्ध चैतन्यप्रभु, उसकी पर्याय निर्मलरूप से परिणमती है, वह संवर है, वह धर्म है। आहाहा! **सम्यक्त्वरूप स्वभावपरिणति...** भाषा कैसी है? वह विभावपरिणति। मिथ्यात्व और राग-द्वेष विभावदशा और यह समकितपरिणति, यह स्वभावदशा। आहाहा! सूक्ष्म बात, प्रभु! आहाहा! वह तो भगवत्स्वरूप है अन्दर। उसमें आया न! नहीं कहा था? 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सो मतवाला समझे न। घट घट अन्तर जिन बसे।' आहाहा! जिनस्वरूप ही प्रभु अन्दर है, भाई! 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन' उस स्वरूप की दृष्टि करके राग को जीता, वह घट में विराजता है, वह जैन है। जैन कोई सम्प्रदाय और वाडा नहीं है। आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सो...' परन्तु मतवाला—बाहर में पुण्य और पाप के मतवाले अभिमानी 'मत मदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' अभिमानी, राग के, पुण्य के पोषण करनेवाले। वे मतवाला समझे नहीं कि यह जिनस्वरूपी मेरी चीज़ अन्दर है। आहाहा! देखो! भाषा कैसी की है? यह बनारसीदास का है। समयसार नाटक। बनारसीदास हुए न? उनका समयसार नाटक है। उसमें यह शब्द लिया है। आहाहा!

प्रभु! जैन अर्थात् क्या? घट घट अन्तर बसे जैन। अन्दर में राग को जीतकर

स्वरूप का अनुभव करे वह जैन। वह घट घट में जिन बसे। कोई शरीर में, बाहर में जैनपना नहीं है। आहाहा! जहाँ जिन है, वहाँ जैन है। यह जिनस्वरूपी भगवान है, उसका अनुभव किया, वह जैन है। आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। अगम्यगम की बातें नाथ तेरी। आहाहा! तू वचन में आवे नहीं। तू दया-दान के विकल्प से ज्ञात हो नहीं। आहाहा! विकल्पातीत, वचनातीत, शरीरातीत... आहाहा! ऐसा जो भगवान अन्दर। आहाहा! ऐसा अन्तर में शुद्धस्वभाव का परिणमन होना, वह जैन है और वह समकिती है। उसने आस्रव को जीता है। समझ में आया? आहाहा!

चण्डाल का, हरिजन का आत्मा हो... आहाहा! आत्मा कहाँ हरिजन है? आत्मा कहाँ बनिया और मुसलमान है? वह तो भगवान है, वह है अन्दर। उसे जिसने अन्तर में... आहाहा! अन्तर्मुख होकर बहिर्मुखता का जिसने नाश किया, अन्तर्मुख प्रभु को जिसने परखा, वह चाण्डाल का आत्मा भी जिन और जैन है। तथा बड़ा राजा— महाराजा हो और हजारों रानियाँ छोड़कर दिगम्बर साधु हुआ हो, परन्तु अन्दर में भगवान की भेंट नहीं की और दया, दान, व्रत की क्रिया में धर्म मान बैठे हैं, वे सब अजैनरूप से है। बराबर है? किसी बाहर की चीज़ से (जैनपना है)? आहाहा!

इससे शुद्ध प्रकाश प्रगट होता है,... आहाहा! भगवान आत्मा जिनस्वरूपी प्रभु, वीतराग की मूर्ति आत्मा तो है। वीतराग अर्थात्? रागरहित की मूर्ति वह है। आहाहा! ऐसे भगवान को पाकर शुद्ध प्रकाश प्रगट होता है। उसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, वह पर्याय में प्रगट दिखता है कि यह तो शुद्ध चैतन्य है। यह नमूना आया। अभी पूरा तत्त्व शुद्ध है। आहाहा! ऐसी बातें अब। साधारण को सुनने को मिले नहीं बेचारे को। क्या करे?

अरे! जीवन चला जाता है। जो-जो क्षण जाता है, वह देह छूटने का निर्णय-निश्चय (निश्चित) है, उसके समीप जाता है—मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! देह छूटने का समय निर्णय (निश्चित) है। भगवान के ज्ञान में उस समय कि इस समय देह छूटेगी, यह निर्णय है। उसमें जितने क्षण जाते हैं वे सब मृत्यु के समीप जाते हैं। आहाहा! उसमें जीव के जीवन को यदि नहीं जाना, भगवान का जीवन तो शुद्ध परिणमन वह जीव का जीवन है। शुद्ध उपयोग और शुद्ध परिणमन... आहाहा! वह जीव का

जीवन है। और उसने जीव को जीना जाना है। पुण्य-पाप से जीवे, वह जीव का जीवन नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु! जगत को बैठे, न बैठे, स्वतन्त्र है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, भाई!

शुद्ध प्रकाश प्रगट होता है, इससे कर्म का आस्रव मिटता है। आहाहा! **इससे शुद्ध ज्ञान की जीतपना घटित होता है।** वहाँ शुद्ध जीव के ज्ञान की जीत घटित होती है। आहाहा! अन्तर्मुख परमात्मा विराजता है, वहाँ जहाँ दृष्टि पड़ती है, तब आस्रव को जीतकर जीव की जीत होती है। संवर की जीत होती है। आहाहा! समझ में आया? है तो शान्तरस का वर्णन, परन्तु शान्तरस में वीररस वर्णन किया है। क्या कहा यह? समयसार नाटक में यह पाठ है। ऐसा कि यह वैरी कहे और गर्व? है तो शान्तरस का वर्णन। परन्तु उसमें वीररस का वर्णन करके शान्तरस का वर्णन किया है।

मुमुक्षु : शान्तरस गर्भित वीररस है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीररस है। आहाहा! ऐसे नहीं प्रभु की स्तुति करते? 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' उपशमरस शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' क्योंकि जिसका स्वभाव अन्दर उपशम अर्थात् अकषायस्वभाव से भरपूर भगवान है, उसकी जहाँ दशा हुई उपशमरस की हुई। आहाहा! समझ में आया?

इससे शुद्ध ज्ञान की जीतपना घटित होता है। आहाहा! वह राग की जीत थी अनादि से। राग कहे कि मैंने सबको जीत लिया है बड़े महात्मा को। यह कहे कि मैंने जीत प्राप्त की है, अब तेरी। मैं आनन्द का नाथ हूँ, ऐसा मुझे भान हो गया है। अब यह आस्रव-फास्रव तू मुझमें नहीं। आहाहा! यह श्लोक हुआ पहला मांगलिक का। संवर की शुरुआत का पहला मांगलिक का श्लोक है। दूसरा श्लोक है। विशेष आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१२६

(शार्दूलविक्रीडित)

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युताः।।२-१२६।।

खण्डान्वयसहित ज्ञान — 'इदं भेदज्ञानं उदेति' [इदं] प्रत्यक्ष, ऐसा [भेदज्ञानं] जीव के शुद्धस्वरूप का अनुभव [उदेति] प्रगट होता है। कैसा है? 'निर्मलं' राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्धपरिणति से रहित है। और कैसा है? 'शुद्धज्ञानघनौघं' [शुद्धज्ञान] शुद्धस्वरूप का ग्राहक ज्ञान, उसका [घन] समूह, उसका [ओघं] पुंज है। और कैसा है? 'एकं' समस्त भेदविकल्प से रहित है। भेदज्ञान जिस प्रकार होता है, उस प्रकार कहते हैं — 'ज्ञानस्य रागस्य च द्वयोः विभागं परतः कृत्वा' [ज्ञानस्य] ज्ञानगुणमात्र [रागस्य च] और अशुद्धपरिणति, उन [द्वयोः] दोनों का [विभागं] भिन्न-भिन्नपना [परतः] एक-दूसरे से [कृत्वा] करके, भेदज्ञान प्रगट होता है। कैसे हैं वे दोनों? 'चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः' चैतन्यमात्र जीव का स्वरूप; जड़त्वमात्र, अशुद्धपना का स्वरूप। कैसा करके भिन्नपना किया? 'अन्तर्दारुणदारणेन' [अन्तर्दारुण] अन्तरंग सूक्ष्म अनुभवदृष्टि, ऐसी है [दारणेन] करोंत, उसके द्वारा। भावार्थ इस प्रकार है — शुद्धज्ञानमात्र तथा रागादि अशुद्धपना, ये दोनों भिन्न-भिन्नरूप से अनुभव करने के लिए, अति सूक्ष्म हैं क्योंकि रागादि अशुद्धपना, चेतनसा दीखता है; इसलिए अति सूक्ष्म दृष्टि से, जिस प्रकार पानी, कीचड़ से मिला होने से, मैला हुआ है तथापि स्वरूप का अनुभव करने पर, स्वच्छतामात्र पानी है; मैला है सो कीचड़ की उपाधि है; उसी प्रकार रागादिपरिणाम के कारण, ज्ञान अशुद्ध — ऐसा दीखता है तथापि ज्ञानपनामात्र, ज्ञान है; रागादि अशुद्धपना उपाधि है। 'सन्तः अधुना इदं मोदध्वं' [सन्तः] सम्यग्दृष्टि जीव, [अधुना] वर्तमान समय में [इदं मोदध्वं] शुद्धज्ञानानुभव को आस्वादो। कैसे हैं सन्तपुरुष? 'अध्यासितः' शुद्धस्वरूप का अनुभव है जीवन जिनका, ऐसे हैं। और कैसे हैं? 'द्वितीयच्युताः' हेयवस्तु को नहीं अवलम्बते हैं।।२-१२६।।

आसोज शुक्ल ९, गुरुवार, दिनांक - २०-१०-१९७७, कलश-१२६, प्रवचन-१२६

कलश टीका, १२६।

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युताः।।२-१२६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'इदं भेदज्ञानं उदेति' प्रत्यक्ष ऐसा जीव के शुद्धस्वरूप का अनुभव प्रगट होता है। क्या कहते हैं? संवर अधिकार है न? आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दरसकन्द प्रभु, उसे पुण्य-पाप के भाव जो होते हैं, उससे उसे भिन्न करना—भेदज्ञान करना, वह संवर और धर्म है।

मुमुक्षु : भेदज्ञान कब करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन होने पर उस काल में।

फिर से। यह आत्मा चैतन्यस्वरूप ज्ञायकमूर्ति, वह तो त्रिकाली शुद्ध और पवित्र ही है। उसमें उसकी पर्याय में पुण्य और पाप के भाव (होते हैं), वह अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् चैतन्यस्वरूप का अंश उनमें नहीं है। सूर्य का प्रकाश होता है, वह तो उजाला होता है। कोयले की कणी वह कहीं सूरज का उजाला नहीं है। कोयले की कणी। इसी प्रकार पुण्य और पाप वह तो कोयले की कणी—मैल है, अज्ञान है। अज्ञान अर्थात्? उनमें ज्ञान के प्रकाश का अभाव है। अरे! आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञान अर्थात् मिथ्याज्ञान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो प्रकार लिये न! जरा मस्तिष्क में आ गया था कल।

आचार्य कहते हैं कि अज्ञान अस्त हो जाओ। तो अज्ञान तो अस्त हुआ है। वे तो मुनि हैं—धर्मी हैं। इसलिए मिथ्यादृष्टि को भी ऐसा कहते हैं कि राग से भिन्न पड़कर अज्ञान का नाश करो। और मुझे तर्क यह आया था अन्दर, उस समय, इसलिए कहा था कि हमको भी अभी शुभराग होता है, वह अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् विपरीत ज्ञान, ऐसा

नहीं; मिथ्याज्ञान, ऐसा नहीं। परन्तु वह शुभराग। मुनि को अशुभराग तो है नहीं। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में श्रावक सच्चा-समकिती, उसे तो अभी आर्तध्यान भी होता है, रौद्रध्यान भी होता है और अशुभभाव भी होता है और शुभभाव भी किसी समय होता है। परन्तु मुनि को तो अशुभभाव होता नहीं। जहाँ आनन्दस्वरूप में तीन कषाय के अभाव से भगवान चैतन्य की शक्ति का विकास अन्दर हुआ है। अनन्त गुण की पंखुड़ियों से जहाँ आत्मा खिल निकला है। जैसे गुलाब की कली खिल निकले, वैसे भगवान आत्मा में अनन्त गुण है। शक्ति—उसका सत्व। वह अनन्त गुण की दृष्टि और स्थिरता द्वारा... चारित्र भी है न मुनि को तो? तो अनन्त गुण की शक्ति की पर्याय में खिलवट हो गयी है—विकास हो गया है। आहाहा! समझ में आया? तथापि उसे अभी शुभराग है, वह दुःख है। तो कहते हैं, वह शुभराग अज्ञान है। अस्त हो जाओ। हम तो ज्ञानसूर्य ज्ञान का प्रकाश करते हैं। आहाहा! समझ में आया? बात अन्दर निकली। कल मैंने गाथा खोजी, परन्तु हाथ नहीं आयी। अभ्यास है—भेदअभ्यास। मूल गाथा में नहीं? चारित्र के लिये। कलश में है, या तो गाथा में होगा। नियमसार में है? नियमसार में है।

जैसे कि आत्मा अन्दर... यहाँ तो राग और पुण्य-पाप के भाव विकल्प है, उसे यहाँ जड़ कहेंगे। पाठ में है। यह चैतन्यप्रभु ज्ञानानन्द, ज्ञान का चिद्घन प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान, प्रज्ञा और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। ज्ञान और आनन्दस्वरूप ही वह तो त्रिकाली है। उसमें पर्याय में जो शुभभाव हो या अशुभभाव हो, मिथ्यादृष्टि को तो अत्यन्त शुभ-अशुभभाव वह मैं हूँ, इसलिए तो दृष्टि मिथ्यात्व है, परन्तु भेदज्ञान करके यह पुण्य-पाप के विकल्प, राग, अन्धकार चैतन्य का प्रकाश का पूर आत्मा है, इस प्रकार राग से भिन्न पड़कर जिसने भेदज्ञान अन्तर में प्रगट किया, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और संवरदशा कहा जाता है। आहाहा! अपने दिल्ली में है, पहिचानते हो? शान्तिभाई!

मुमुक्षु : बाबूभाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह। यह तुम्हारा नाम दिया अभी। शान्तिभाई ने कहा यहाँ है। आहाहा! शान्तिभाई यहाँ अन्दर है। शान्ति का सागर आत्मा अन्दर है। उसमें जितने पुण्य-पापभाव हों, वह अशान्ति है।

मुमुक्षु : शान्ति और सागर दोनों हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों हैं। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते हैं, वह सन्त परमात्मा के आढ़तिया हैं। जगत के लिये प्रसिद्ध करते हैं, प्रभु! '**इदं भेदज्ञानं उदेति**' '**इदं**' अर्थात् प्रत्यक्ष। राग से भिन्न पड़े, तब प्रभु आत्मा प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! मार्ग सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : झट समझ में आये ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : झट समझ में आये ऐसी ही यह पद्धति है। परन्तु अनन्त काल का अभ्यास नहीं और यह अभ्यास अनादि का। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि एक बार, प्रभु! यह पुण्य और पाप के विकल्प राग, वह जड़ है। जड़ है अर्थात्? रजकण है और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है—ऐसा नहीं। सुमेरुमलजी! जड़ है अर्थात् उसमें रजकण है, शुभ-अशुभभाव और उनमें रंग, गन्ध, रस और स्पर्श है, ऐसा नहीं है। परन्तु वह जड़ है अर्थात् उसमें चैतन्य का प्रकाश का नूर का अभाव है। आहाहा! भाषा तो सादी है, बापू! आहाहा! भगवत्स्वरूप प्रभु है। आहाहा! उसे यह पुण्य और पाप के... आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव शुभ और जड़ है। आहाहा! यहाँ तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे कौन? आवे किसे? समकिती को। मिथ्यादृष्टि को वह नहीं आता। तो जिसे राग और पुण्य के, पाप के भाव से चिद्रूप जिसने भिन्न किया है, उसे ऐसा विकल्प आता है परन्तु वह विकल्प अज्ञान है, अर्थात् ज्ञान का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

'**इदं भेदज्ञानं उदेति**' इस राग में राग की रुचि में प्रभु आत्मा परोक्ष हो गया है। राग की प्रीति की आड़ में चैतन्य परोक्ष हो गया है, ढँक गया है। उसे राग की रुचि को छोड़कर राग से भिन्न भगवान अन्दर पूर्णानन्दस्वरूप, उसे राग से भिन्न प्रत्यक्ष कर, कहते हैं। आहाहा! तेरे ज्ञान में—मति और श्रुतज्ञान में भी उसे पर की अपेक्षा मति-श्रुत में कुछ नहीं है, ऐसा सीधा प्रत्यक्ष आत्मा को भेदज्ञान करके देख। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग!

'**इदं**' यह प्रत्यक्ष। '**इदं**' अर्थात् प्रत्यक्ष। अर्थात्? कि जो मति-श्रुतज्ञान है, उसे

राग और मन का भी अवलम्बन नहीं। वह मति-श्रुतज्ञान राग से भिन्न पड़कर अपने आत्मा को प्रत्यक्ष करता है। प्रत्यक्ष अर्थात् यह आत्मा है, ऐसे प्रत्यक्ष जानता है। आहाहा! **प्रत्यक्ष ऐसा भेदज्ञान अर्थात् जीव के शुद्धस्वरूप का अनुभव...** भेदज्ञान की व्याख्या की है। आहाहा! भगवन्त! तुझे जो अनादि से पुण्य और पाप के, राग और द्वेष के विकल्प का अनुभव है, वह दुःखरूप है। वह संसार का वेदन है। आहाहा! अब एक बार राग से भिन्न पड़कर और राग से पृथक् करने का अन्दर भेदज्ञान कर। इस भेदज्ञान द्वारा अर्थात् कि भेदज्ञान अर्थात् क्या? कि **जीव के शुद्धस्वरूप का अनुभव...** यह तो शब्द है, बापू! राग, पुण्य-पाप के विकल्पों से ऐसे भिन्न करते हुए—भिन्न करते हुए आत्मा ज्ञान में प्रत्यक्ष हो तो शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है। इसका नाम संवर और इसका नाम धर्म। आहाहा!

भेदज्ञान की व्याख्या ही यह की है। **जीव के शुद्धस्वरूप का...** प्रभु ते शुद्ध चैतन्यस्वरूप ही है, वह तो पवित्र ही है। द्रव्य और उसके गुण, वह तो पवित्र का पिण्ड ही है। उसकी पर्याय—हालत में पुण्य और पाप के भाव हैं। आहाहा! वह चैतन्य के स्वभाव के अभावस्वरूप है। इसलिए उसके अभावस्वरूपवाले राग को उससे चैतन्यस्वरूप प्रभु भाववाला, उसका भेदज्ञान से अनुभव कर। ऐसा है, सुमेरुमलजी! आहाहा! भगवान अन्दर। आहाहा! इसका नाम सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन। और संवर अर्थात् विकारी परिणाम का रुंध जाना, अटक जाना और अविकारी परिणाम का उत्पन्न होना, इसका नाम संवर और धर्म है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा है।

'**उदेति**' भाषा कैसी है? **प्रगट होता है।** क्योंकि अनादि से भेदज्ञान नहीं था। अनादि से तो पुण्य और पाप और मिथ्यात्वभाव (थे)। आहाहा! पर में सुख है। शरीर में, लक्ष्मी में, इज्जत में, कीर्ति में, पर में सुख है—ऐसी जो मिथ्याश्रद्धा थी। आहाहा! वह मिथ्यात्वभाव जो था, उस काल में तो उसे मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष का अनुभव था। अर्थात् कि दुःख का ही अनुभव था। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! संवर अधिकार है न? तब जब राग के विकल्प से... आहाहा! अर्थात् कि पर्यायबुद्धि से हटकर, यह शुभ और अशुभराग, वह पर्याय में विकृतदशा, उसके प्रेम में से, रुचि में से हटकर भगवान शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और रुचि में आ, तुझे आत्मा के आनन्द का अनुभव होगा।

जो विकार-दुःख का अनुभव अनादि से है, उससे भिन्न करने से तुझे सुख का अनुभव होगा। आहाहा! इसमें समझ में आये ऐसा है, हों! भाषा कहीं ऐसी कठिन नहीं। आहाहा! मार्ग तो भाई जो है, वह है, बापू!

मुमुक्षु : इसमें तो बहुत बार आता है, कठिन बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कठिन है, वह अनभ्यास से कठिन है। अभ्यास से इसके घर की चीज़ है न! आहाहा!

प्रगट होता है। ऐसा कहा। जो यह पुण्य और पाप और मिथ्यात्वभाव प्रगट था और उसका वेदन अनादि संसार में दुःख का, एकान्त दुःख का वेदन (था), उसे अब राग से, पुण्य से भगवान अन्दर पूर्ण स्वरूप और यह पुण्य-पाप तो कृत्रिम क्षणिक है और वह भी चैतन्य के स्वभाव के अभाव-स्वभावस्वरूप है, उनसे चैतन्य के स्वभावस्वरूप प्रभु, उसे राग से भिन्न करने पर भेदज्ञान अर्थात् कि शुद्धस्वरूप का अनुभव प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी बात है। इतनी शर्तें। आहाहा!

कैसा है ? यह भेदज्ञान। **राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्धपरिणति से रहित है।** आहाहा! जिसमें राग और द्वेष और मोह—पर में सावधानी, उससे प्रभु की अनुभवदशा, सम्यग्दर्शन-भेदज्ञान, वह राग-द्वेष-मोह से रहित है। आहाहा! समझ में आया ? **राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्धपरिणति...** मलिन दशा से रहित भेदज्ञान है। **और कैसा है ? 'शुद्धज्ञानघनौघं'** आहाहा! **शुद्धस्वरूप का ग्राहक ज्ञान, उसका समूह, उसका पुंज है,** वह तो। आहाहा! पुण्य-पाप का भाव और मिथ्यात्वभाव तो एक समयमात्र की विकृत, क्षणिक दुःखदशा थी। आहाहा! और यह तो त्रिकाली भगवान, उससे भिन्न पड़ने पर ज्ञान का पुंज यह तो है। वह ज्ञान का ढ़ेर है। ढगलो कहते हैं हिन्दी में ? पुंज। ढ़ेर... ढ़ेर। ढ़ेर, ढ़ेर कहते हैं। आहाहा! ढ़ेर कहते हैं।

शुद्धस्वरूप का ग्राहक ज्ञान, जो राग से भिन्न पड़कर पर्याय में चैतन्यमूर्ति का ज्ञान किया, वह वस्तु कैसी है ? कहते हैं। **शुद्धस्वरूप का ग्राहक ज्ञान, उसके समूह का पुंज है।** वह तो। पर्याय में ख्याल आया कि यह पूरी चीज़ तो शुद्धज्ञानघन का पुंज है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में पुण्य-पाप के राग से भिन्न पड़कर शुद्ध चैतन्य का

अनुभव हुआ, उस अनुभव की पर्याय तो वर्तमान क्षणिक है परन्तु वस्तु है, वह तो शुद्धज्ञान का पुंज है। आहाहा! द्रव्य जो वस्तु है, वस्तु। आहाहा! **शुद्धस्वरूप का ग्राहक ज्ञान, उसके समूह का पुंज है।** उस पर्याय के समूह का पुंज है। पर्याय तो क्षणिक अनुभव में आयी। वस्तु तो उसका पुंज पूरा है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश! बालचन्दजी! यह तो माल की बातें चलती हैं। ऐसा प्रभु है तू। आहाहा!

और कैसा है? वह ज्ञान। **समस्त भेदविकल्प से रहित है।** उत्पन्न हुआ। जो सम्यग्ज्ञान हुआ, वह तो समस्त भेद-विकल्प से, राग से तो भिन्न है। उससे रहित है। आहाहा! **भेदज्ञान किस प्रकार होता है, उस प्रकार कहते हैं—'ज्ञानस्य रागस्य च द्वयोः विभागं परतः कृत्वा' ज्ञानगुणमात्र...** भगवान आत्मा **और अशुद्ध परिणति, उन दोनों का भिन्न-भिन्नपना एक-दूसरे से करके भेदज्ञान प्रगट होता है।** ज्ञान का पुंज प्रभु और एक ओर राग-विकल्प, इन दोनों से भिन्न पड़कर, राग से भिन्न पड़कर... आहाहा! **भेदज्ञान प्रगट होता है।** है? पुण्य-पाप की अशुद्ध परिणति है, वह पर्याय है। शुभ और अशुभभाव, वह अशुद्धदशा है। उससे **ज्ञानगुणमात्र...** आत्मा **और अशुद्ध परिणति-....** और यह ज्ञानगुणमात्र आत्मा, दोनों का भिन्नपना, **भिन्न-भिन्नपना एक-दूसरे से करके...** पुण्य-पाप से ज्ञानपुंज भिन्न और ज्ञानपुंज से विकार भिन्न। आहाहा! ऐसी शर्तें। लोग सरल धर्म मानकर बैठे थे। दया पालना, व्रत करना, अपवास करना। अरे! बापू! धर्म अलग चीज़ है, भाई! यह धर्म के सन्मुख के मुख अलग हैं।

कहते हैं कि एक ओर प्रभु ज्ञानगुण और एक ओर पुण्य-पाप के राग। एक-दूसरे को... आहाहा! **दोनों का भिन्न-भिन्नपना एक-दूसरे से करके भेदज्ञान प्रगट होता है।** आहाहा! **कैसे हैं वे दोनों?** कौन दोनों। चिद्रूप ज्ञानपुंज आत्मा और पुण्य-पाप के विकल्प-राग ये दोनों कैसे हैं? आहाहा! बहुत सरस गाथा आयी है। **'चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः'** भगवान तो **चैतन्यमात्र जीव का स्वरूप,...** है। वह तो चैतन्यमात्र चिद्घन, चेतनास्वभावमात्र भगवान आत्मा तो है। जीव का वह स्वरूप है। चेतना जानने-देखने के स्वभाव का पुंज प्रभु, वह आत्मा है। और **जडत्वमात्र अशुद्धपना का स्वरूप।** आहाहा! देखो! यह पुण्य और पाप के भाव, वे अशुद्ध हैं, वे जड़ हैं। आहाहा! इसलिए आचार्य ने कहा न? मुझे उस समय यह विचार आया था कि अज्ञान

का तो नाश है मुनि को। क्या कहते हैं ? उसे तो समकिती ज्ञानी और अनुभवी है। परन्तु अभी वह शुभराग है न, वह कल्माषित है, वह दुःख है इतना भी। आहाहा! वह अज्ञान है इतना। अज्ञान अर्थात् ? उसमें ज्ञान का अभाव / जड़ है वह। उसका नाश होकर हमारा चैतन्य पूर्ण प्रकाश हो जाओ। आहाहा!

भाषा देखी! '**चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः**' आहाहा! **चैतन्यमात्र जीव का स्वरूप,...** है। अर्थात् शान्त... शान्त... अकषाय वीतरागस्वरूप की मूर्ति प्रभु है और पुण्य-पाप राग, विकार, जड़, अज्ञानस्वरूप है। आहाहा! '**चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः**' भाषा तो देखो! आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, मुनि को भी होते हैं, परन्तु है तो जड़, कहते हैं। भेदज्ञान सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि तो प्रथम किया है। परन्तु अब बाकी रहा राग है, उससे भिन्न पड़कर स्थिरता में रमणता करनी है। आहाहा! समझ में आया ? यह पुण्य और पाप के भाव समयसार में अजीव अधिकार में इन्हें अजीव कहा है। पुण्य-पाप के अधिकार में इन शुभ-अशुभभाव को अज्ञान कहा है। संवर अधिकार में इन्हें जड़ कहा है। आहाहा! सब एक ही बात है। आहाहा!

शुभ और अशुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वे भाव सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को आवे, मुनि को आवे। आवे उसके प्रमाण में उसके योग्य प्रमाण में आवे। परन्तु है तो वह अजीव और जड़ है। आहाहा! और वह दुःखरूप और आकुलता जन्य है। भगवान आत्मा उनसे (पृथक्) सुखरूप, ज्ञानरूप, आनन्दरूप चेतनास्वभाव की मूर्ति प्रभु है। दोनों को परस्पर भिन्नता है। परस्पर अर्थात् ? चैतन्यस्वरूप से विकार भिन्न है और विकार से चैतन्यस्वरूप भिन्न है। आहाहा! समझ में आया ?

चैतन्यमात्र जीव का स्वरूप,... और राग का स्वरूप **जड़त्वमात्र...** आहाहा! परन्तु जड़त्व का अर्थ यह नहीं कि पुण्य के-पाप के भाव में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है। उसे पुद्गल के परिणाम कहे हैं। परन्तु उनमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है, ऐसा नहीं। परन्तु उन शुभ और अशुभभाव में चैतन्य के प्रकाश के ज्ञान के अंश का अभाव है, अन्धकार है, जड़ है, अजीव है; इसलिए उसे अज्ञान कहा गया है। आहाहा! ऐसा सुनना मुश्किल पड़े, ऐसी बात आयी। ऐसा मार्ग है। आहाहा!

कैसा करके भिन्नपना किया ? देखा! अब किसके द्वारा किया ? साधन क्या ?

कि '**अन्तर्दारुणादारणेन' अन्तरंग सूक्ष्म अनुभवदृष्टि, ऐसी है करोंत...** आहाहा! करवत। **अन्तरंग सूक्ष्म अनुभवदृष्टि,...** भगवान आनन्दस्वरूप है, ऐसे शुद्ध की अन्तर्दृष्टि, अनुभवदृष्टि, अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु है, सच्चिदानन्द, उसकी शुद्ध अनुभव की दृष्टि द्वारा। आहाहा! यह कैसी है अनुभवदृष्टि? करवत है यह तो। जैसे करवत लकड़ी के दो टुकड़े करती है, वैसे अन्तर्दृष्टि अनुभव और राग को करवत द्वारा दोनों को पृथक् कर डालती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

अन्तरंग सूक्ष्म अनुभवदृष्टि,... बहुत ही उपयोग सूक्ष्म हो जाता है। तब यह आत्मा को राग से भिन्न अनुभव करता है। आहाहा! वह करवत है। करवत को हिन्दी में क्या कहते हैं? करोंत। करोंत। यहाँ करवत यह है कि अन्दर अन्तर सूक्ष्म राग का भाव और पुण्य का भाव वह स्थूल, स्थूल अजीव, जड़। भगवान का उपयोग सूक्ष्म, जीव और चैतन्य और आनन्द। आहाहा! उसकी दृष्टि द्वारा राग और भगवान को, जैसे करवत हो, वैसे दो भिन्न कर डाले हैं। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : करवत से शरीर के भी टुकड़े हो जायें?

पूज्य गुरुदेवश्री : करवत के टुकड़े नहीं होते कुछ। शरीर को... उसके भी टुकड़े नहीं होते। शरीर, शरीर में रहता है; राग, राग में रहता है, भगवान आनन्द में रहता है। दोनों के बीच सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से, करवत से दोनों पृथक् करे। ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! अन्तर्दृष्टि सूक्ष्म प्रज्ञाछैनी। प्रज्ञाछैनी कहा है न? प्रज्ञारूपी छैनी द्वारा दोनों को भिन्न करे। आहाहा! भेदज्ञान कहो या प्रज्ञाछैनी कहो। प्रज्ञाछैनी कहो या साधन कहो। वह भिन्न करने में राग साधन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? प्रज्ञाछैनी। सम्यग्ज्ञान की दशा अन्तर में झुकी, वह राग से भिन्न करने का साधन है। आहाहा! समझ में आया? धीरे-धीरे तो बात चलती है। मार्ग तो ऐसा है, बापू! जिनेन्द्र सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा का यह हुकम है और यह परमात्मा को प्राप्त करने की यह पद्धति और विधि है। समझ में आया? आहाहा!

करोंत, उसके द्वारा। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्धज्ञानमात्र तथा रागादि अशुद्धपना... जड़ है। जड़ कहा न? यह रागादि अशुद्ध है; भगवान चैतन्य शुद्ध है। आहाहा! **ये दोनों भिन्न-भिन्नरूप से अनुभव करने के लिये अति सूक्ष्म हैं,...** बहुत

सूक्ष्म है, अति सूक्ष्म है। अकेला सूक्ष्म नहीं लिया। राग का विकल्प है, वह चाहे तो पुण्य-पाप का हो और उसमें से भगवान आत्मा को भिन्न करना अति सूक्ष्म है। वहाँ स्थूल बुद्धि काम नहीं करती, वहाँ शास्त्र के जानपने का ज्ञान काम नहीं करता। आहाहा! कि बहुत पढ़ा हूँ, इसलिए (यह होता है), वह काम नहीं आता वहाँ। समझ में आया? **अति सूक्ष्म है,...** आहाहा! क्यों? पुण्य और पाप के भाव और मिथ्यात्वभाव, अशुद्ध जड़ और प्रभु चैतन्य शुद्ध और पवित्र-दोनों को भिन्न करना अति सूक्ष्म है।

क्योंकि रागादि अशुद्धपना चेतन सा दिखता है,... यह कारण देते हैं। यह कैसे अतिसूक्ष्म है? यह पुण्य के परिणाम—दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह चैतन्य जैसे, चैतन्य की पर्याय में उसके जैसे दिखते हैं। इसलिए उससे भिन्न करना अति सूक्ष्म है। आहाहा! श्लोक तो बहुत अच्छा आया है। क्यों सूक्ष्म है? राग, पुण्य-पाप का भाव अशुद्धपना चेतन जैसा (दिखता है)। क्योंकि वह चैतन्य की पर्याय में है न? वह कहीं जड़ में, रजकण कर्म में नहीं। आहाहा! शुभ-अशुभभाव... कल दोपहर में आया था न? जीव के सत्त्व में है। दोपहर में आया था। जीव के सत्त्व, पर्यायरूपी सत्त्व में वह है। यह पुण्य-पाप के भाव जड़ कर्म में, जड़ कहा, इसलिए जड़ में है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह शुभ और अशुभभाव चैतन्य की पर्याय में चैतन्य जैसे दिखते हैं। उनसे भिन्न करना अति सूक्ष्म है। आहाहा! पर्यायदृष्टि से देखो तो वह पुण्य-पाप के भाव जीव की पर्याय में हैं। परन्तु वस्तुदृष्टि से देखो तो वे भाव वस्तु में नहीं। आहाहा! इसलिए द्रव्यदृष्टि कही। द्रव्यदृष्टि से देखो तो उसमें वे हैं ही नहीं। आहाहा!

क्यों अति सूक्ष्म है? कि शुभ-अशुभभाव **अशुद्धपना चेतन सा दिखता है,...** देखा! क्योंकि चेतन की पर्याय है न वह? वह कहीं कर्म की पर्याय नहीं। आहाहा! वह शुभ और अशुभभाव... उसमें ऐसा कहा न? भाई! नहीं? कल स्वाध्याय में आया था न? धर्म और अधर्म, वह आत्मा है। ऐसा आया था। सज्झाय में आया था? पुण्य-पाप। शुभ-अशुभभाव, वह आत्मा है, ऐसा आया था। कल सज्झाय हुई थी न! क्यों?—कि वह आत्मा में यह धर्म-अधर्म... धर्म अर्थात् पुण्यभाव, अधर्म अर्थात् पाप। यह ज्ञानस्वरूपी भगवान की पर्याय में है। वह कहीं जड़ में है और पर में है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कल स्वाध्याय में आया था। आहाहा!

जैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-आनन्द, वह आत्मा है, ज्ञानस्वरूप है, वैसे पुण्य-पाप भी ज्ञानस्वरूप है, ऐसा आया था। अर्थात् कि भगवान ज्ञानस्वरूप की दशा में पुण्य-पाप है। वह कहीं जड़ में, कर्म में, शरीर में, पर में नहीं और पर से हुए नहीं। आहाहा! अपनी पर्याय में अपराध के कारण से वे भाव हुए हैं। इसलिए उन्हें यहाँ आत्मा में है, आत्मा में है—ऐसा कहने में आया है। पर्याय उसकी है न! आहाहा! समझ में आया? आया था न गाथा में। नहीं? समयसार-४०४। ४०४ गाथा है।

णाणं सम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा॥४०४॥

सम्यक्त्व, अरु संयम तथा पूर्वांगगत सूत्रो, अरु धर्माधरम,... अर्थात् पुण्य-पाप। ***दीक्षा बुध पुरुष माने ज्ञान को।*** आहाहा! किस अपेक्षा से? है? ४०४ (गाथा, समयसार)। कल स्वाध्याय में आया था। पुण्य और पाप के भाव आत्मा के हैं और आत्मा उन्हें कहा गया है ऐसा कहा यहाँ तो। क्योंकि उसकी पर्याय में होते हैं। उसके सत्त्व में है। आहाहा! परन्तु जब पुण्य-पाप के भाव और आत्मा दोनों को भिन्न करना है, तब वह पुण्य-पाप के भाव जड़ में हैं, ऐसा कहते हैं। जड़, जड़रूप से है। जड़ में अर्थात् रजकण में नहीं। परन्तु जड़पने है, अज्ञानपने है। यहाँ ज्ञानपने है, ऐसा कहा। आहाहा! कितनी अपेक्षा? समझ में आया?

समकित, संयम, चारित्र, सूत्र अंग। सूत्र पृष्ठ वह कहीं आत्मा नहीं है। सूत्र का यहाँ ज्ञान है, वह आत्मा में है। शास्त्र का ज्ञान (होता है), वह ज्ञान आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान है। वह कहीं पृष्ठ में नहीं है। यह तो जड़ है, मिट्टी है। सम्यग्दर्शन, संयम अर्थात् स्वरूपरमणता और शास्त्र सम्बन्धी का अन्तर का अपना ज्ञान और पुण्य-पाप के भाव और प्रव्रज्या अर्थात् चारित्र। वह आत्मा है—ऐसा कहा। ज्ञान है वह सब। वह सब ज्ञान है। अर्थात्? कि ज्ञानस्वरूपी भगवान की पर्याय में है, इसलिए ज्ञान है, ऐसा कहने में आया है। अरे.. अरे..! एक ओर ऐसा कहे तथा एक ओर ऐसा कहे।

यहाँ कहते हैं कि पुण्य और पाप वे जड़ हैं। यहाँ कहते हैं कि वे ज्ञान में हैं। समझ में आया? किस अपेक्षा से? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र, वह आत्मा की निर्मल पर्याय है, राग से भिन्न, वह भी आत्मा की पर्याय में है। और पुण्य और पाप भी

आत्मा की पर्याय में है। वह कहीं जड़ में, अजीव में और कर्म में तथा शरीर में नहीं है। इस अपेक्षा से आत्मा में है, ऐसा कहा गया है।

यहाँ कहते हैं कि अब उसे भेद करना है। आहाहा! समझ में आया? एक ओर कुछ कहे और एक ओर कुछ पकड़े। एक ओर ऐसा कहे कि ज्ञानी को दुःख नहीं। दूसरी ओर कहे कि छठवें गुणस्थान तक भी राग का भाव दुःख है। किस अपेक्षा से बात है? बापू! दुःख अर्थात् वस्तु की दृष्टि और वस्तु की जहाँ अपेक्षा का वर्णन अकेला चलता हो, तब उसे दुःख है, उसे गौण करके उसको दुःख नहीं, ऐसा कहा है। और जब उसकी वास्तविक स्थिति का वर्णन चले, तब तो उसे-ज्ञानी को भी, मुनि को भी राग का भाग, वह दुःख वेदता है और आनन्द की ओर का वेदन है, उतना आनन्द है। आहाहा!

मुमुक्षु : राग हो तो दुःख होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दुःख ही है, दुःख है। शुभभाव, वह दुःख है। आहाहा! तथापि वहाँ ऐसा कहा कि वह ज्ञान है। अर्थात्? कि ज्ञानस्वरूपी भगवान की पर्याय में है।

मुमुक्षु : ज्ञानी के सब भाव ज्ञानरूप होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानरूप, यह और दूसरी बात। यह और दूसरी बात। यह तो उसे राग होता है, उसका भी वह ज्ञान करता है। ऐसा करके सब ज्ञानभाव है, ऐसा कहा है। भाई! यहाँ दूसरी बात है। यहाँ तीसरी बात है। वह जब ज्ञान, सम्यग्दर्शनसहित ज्ञान की मुख्यता से बात चले, तब तो उसे ज्ञानप्रकाश उसका स्वभाव है, रागादि उसका स्वभाव नहीं और राग और दुःख को गौण करके मुख्य ज्ञानानन्द की बात करनी हो, तब ऐसा कहे। जब अब उसे आत्मा की ही पर्याय पर से भिन्न करना है, पर के साथ, कर्म, शरीर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं, तो वह भगवान आत्मा अपने स्वरूप की श्रद्धा-समकित करे और ज्ञान करे और चारित्र करे, वह भी आत्मा और अन्दर पुण्य-पाप के भाव हों, वह भी आत्मा। समझ में आया? कितना याद रखना इसमें? भाई! मार्ग अलौकिक! यह तो अनेकान्त मार्ग है। आहाहा! एकान्त खींच बैठे। समझ में आया? यह मार्ग ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... अब यहाँ ऐसा कहा कि पुण्य और पाप के रौद्रध्यान हो और विषय की वासना हो... आहाहा! परन्तु उसे ज्ञान कहा। अर्थात्? कि उसकी पर्याय में प्राप्त होते हैं, इसलिए (ऐसा कहा)। और जहाँ ज्ञानी को ज्ञान ही होता है वहाँ? वह राग का भी ज्ञान, ज्ञान का भी ज्ञान, वह ज्ञान होता है, ऐसा वहाँ कहा। और यहाँ जहाँ कहा है कि राग उसकी पर्याय में होता है, उसे भिन्न करने के लिये कि राग तेरा स्वरूप नहीं; चैतन्य तेरा स्वरूप है। समझ में आया? आहाहा! एक ओर ऐसा कहे, प्रभु तो आनन्दस्वरूप है, उसमें दुःख है ही नहीं। वस्तु में दुःख है ही नहीं। दूसरे प्रकार से कहे कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ, सम्यग्ज्ञानी हुआ, परन्तु जितना उसे शुभराग और अशुभराग है, उतना दुःख है। वह दुःख नहीं, ऐसा माने तो एकान्त मिथ्यादृष्टि होता है। और वह दुःख मेरी चीज़ है, ऐसा अन्दर में माने तो भी मिथ्यादृष्टि है। अरे! ऐसी बातें! इसका अभ्यास चाहिए, पोपटभाई! इसमें लगन लगानी चाहिए। आहाहा!

यह कल पढ़ते हुए आया था। और दूसरा तो वापस आचार्य का आया न? अज्ञान अस्त हो जाओ। हम तो ज्ञानस्वरूप हैं। प्रभु! तुम्हारे अज्ञान तो नहीं। तुम मुनि हो तो अज्ञान नहीं। परन्तु शुभराग है, वह अज्ञान है। हमको अज्ञान है, अभी राग है, दुःख है। अब अस्त हो जाओ, नाश हो जाओ। हम चैतन्यसूर्य पूर्ण प्रगट हो जाओ। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि अति सूक्ष्म क्यों है? कि पुण्य और पाप में अशुद्धपना, वह चैतन्य जैसा, चेतनाभास, चेतन में है। आहाहा! इसलिए चैतन्य जैसा वह दिखता है। इसलिए उसे भिन्न करना अति सूक्ष्म है। कर्म, शरीर, वाणी वह तो जड़ है, इसलिए भिन्न है ही। इसलिए उन्हें भिन्न करना कहीं बहुत अति सूक्ष्म नहीं है। यह तो भिन्न-भिन्न चीज़ है। परन्तु वह विकार के परिणाम इसकी पर्याय में है। यह शरीर, वाणी कर्म तो द्रव्य-गुण और पर्याय अत्यन्त भिन्न है। आत्मा की पर्याय में शरीर भी नहीं, कर्म भी नहीं, वाणी भी नहीं। परन्तु उसकी पर्याय में पुण्य और पाप के भाव हैं। इसलिए उनसे भिन्न करना, वह अतिसूक्ष्म है। भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य-पर्याय का भेद करना, वह सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बहुत सूक्ष्म है। और उसकी पर्याय में है न वह। वह कहीं परमाणु में नहीं। पुण्य और पापभाव कहीं कर्म में नहीं, शरीर में नहीं। जीव की पर्याय की सत्ता में, सत्त्व की पर्याय के सत्त्व में है। आहाहा! अब यह सत्त्व जो पर्याय का है, उसे भिन्न करके द्रव्यदृष्टि करना अति सूक्ष्म है। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए अतिसूक्ष्म दृष्टि से,... इसलिए अतिसूक्ष्म दृष्टि। **जिस प्रकार पानी कीचड़ से मिला होने से मैला हुआ है...** देखो! पानी—जल और कादव दोनों एकमेक हो गये हैं। जैसे पत्थर और पानी अत्यन्त भिन्न हैं, ऐसा नहीं। पानी और कादव पर्याय का मैल इकट्ठा हो गया है पर्याय में। समझ में आया? आहाहा! पानी कादव के साथ मिलने से मलिन हुआ। पानी मलिन हुआ। **तथापि स्वरूप का अनुभव करने पर स्वच्छतामात्र पानी है,...** पानी तो स्वच्छ, वह पानी है। **मैला है, सो कीचड़ की उपाधि है,...** पानी में मलिनता है, वह कादव की उपाधि है। आहाहा! बहुत वर्ष पहले की पुरानी बात है। वह कडुके गये थे। कैसा? 'कुकडा'। 'मुळी' के पास 'कुकडा' (गाँव) है। बहुत वर्ष (पहले की बात है)। वहाँ सामने कुँआ नहीं मिलता। गाँव में कुँआ नहीं और बरसात आयी तो पूरे गाँव में मलिन पानी। कुँआ नहीं मिलता। पानी ही मलिन। आहार-पानी लेने गये। महाराज! पानी तो मलिन है। तुम वहाँ जाकर ठारना। 'कुकडा' है मुळी के पास। राजकोट जाते हुए। (संवत्) १९८२ का वर्ष या कोई वर्ष होगा। बहुत वर्ष पहले की बात है। वहाँ तब थे भाई रतनचन्दजी शतावधानी वहाँ थे। वहाँ आये थे बेचारे। हम वहाँ गये थे और वे आये थे।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में... जैसे पानी में कादव की मलिनता हो गयी है, पर्याय मलिन हुई है। जैसे पानी और पत्थर भिन्न है, वैसे नहीं। उसी प्रकार आत्मा में पुण्य-पाप के भाव की पर्याय में मलिनता हुई है। वह कर्म और शरीर भिन्न है, वैसे यह नहीं। इसकी पर्याय के अस्तित्व में, इसकी अवस्था में अस्ति में मलिनता खड़ी है। आहाहा! उसे भिन्न करना अर्थात् पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि (करना) अति सूक्ष्म है। आहाहा! ऐसा है। इसमें कहीं मिले ऐसा नहीं है। वहाँ तुम्हारे सागर-फागर में कुछ। फिर इसलिए कहते हैं, तुम सागर आओ।

मुमुक्षु : विनती करते हैं सागर आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब शरीर... अब तो यहाँ आवे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **रागादिपरिणाम के कारण ज्ञान अशुद्ध ऐसा दिखता है...** देखा! वह पानी जैसे कादव से मलिन है। दिखता है। वैसे आत्मा में पुण्य-पाप की पर्याय मैली है, ऐसा दिखता है। आहाहा! **अशुद्ध ऐसा दिखता है...** वह उपाधि है। जैसे कादव को मैलापन उपाधि है, वैसे भगवान आत्मा में शुभाशुभपरिणाम है, उसकी पर्याय में, परन्तु है उपाधि। आहाहा! मुनि भी ऐसा कहते हैं। भावलिंगी सन्त आनन्दकन्द में झूलनेवाले। आनन्द... आनन्द... आनन्द... जिसे सम्यग्ज्ञान में प्रगट हुआ और तीन कषाय का नाश (हुआ है), वह कहे कि हमको अभी राग की मलिनता-कलुषितता खड़ी है। भले हमने भेदज्ञान से भिन्न किया परन्तु चारित्र की निर्मलता में अभी मलिनता पड़ी है। इतना हमको अभी दु:ख है, इतने हम अभी दु:खी हैं। आहाहा! पूर्ण आनन्द का हमको अभाव है। इसलिए हे नाथ! इस शुभभाव का अज्ञानभाव अस्त हो जाओ, नाश हो जाओ और हमारी पूर्णानन्द की पर्याय प्रगट हो जाओ। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

ज्ञान अशुद्ध ऐसा दिखता है, तथापि ज्ञानपनामात्र ज्ञान है,... देखा! भगवान तो जानपना ज्ञानस्वरूपी चैतन्यप्रकाश का पूर है और रागादि अशुद्धपना उपाधि है। है पर्याय में। परन्तु पुण्य और पाप के भाव मलिन हैं, उपाधि है, मैल है, आकुलता है। आहाहा! अजीव है, जड़ है। यह उपाधि कही न? **'सन्तः अधुना इदं मोदध्वम्'** हे सन्तों! सम्यग्दृष्टि जीवों। आहाहा! इसका अर्थ ऐसा किया। **सन्त अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव 'अधुना' वर्तमान समय में 'इदं मोदध्वं' शुद्ध ज्ञानानुभव को आस्वादो।** आहाहा! प्रभु! इस राग से भिन्न पड़ा है न नाथ अन्दर! हे सम्यग्दृष्टि जीवों! उस आनन्द का स्वाद लो। यह दु:ख का स्वाद छोड़ दो अन्दर से। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से। समझ में आया? आहाहा! लो! इसका आस्वाद होगा और। शान्ति... शान्ति... शान्ति... जितना राग से भिन्न पड़कर स्वभाव का भान और स्थिरता, उतनी शान्ति है, उतना आनन्द है, उतनी अनाकुलता है, उतनी पवित्रता है, उतनी शुद्धता का स्वाद है। बाकी राग रह गया, उतना अभी अशुद्ध है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनांक - २१-१०-१९७७, कलश-१२६-१२७, प्रवचन-१२७

१२६ की अन्तिम दो लाईनें। यहाँ आ गया है।

'सम्यग्दृष्टि जीव 'अधुना' वर्तमान समय में... सम्यग्दृष्टि जीव **'इदं मोदध्वं' 'इदं'** यह आत्मा **शुद्धज्ञानानुभव को आस्वादो।** बहुत सार है अन्तिम। राग और द्वेष होने पर भी, शरीर और वाणी, मन तो पर है। उसकी दृष्टि त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव आनन्द प्रभु के ऊपर दृष्टि जाने पर उसका आस्वाद लो। आहाहा! यह अन्तिम में अन्तिम बात है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लो। यह चीज़ करने की है। आहाहा! पुण्य और पाप होने पर भी, उनकी अस्ति हो, ज्ञान जाने। परन्तु आस्वाद में तो चैतन्यस्वरूप अखण्डानन्द प्रभु, उसका आस्वाद अर्थात् अनुभव, उस चैतन्य की शक्तिरूप जो आनन्द। आहाहा! उस आनन्द को पर्याय में आस्वादन करो, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है। समझ में आया? सूक्ष्म बात तो है, प्रभु! आहाहा! अनादि काल से जो पुण्य और पाप, राग और द्वेष का आस्वाद दुःखरूप था, उसका आस्वाद अनादि काल से निगोद से लेकर स्वर्ग में भी उस राग का ही स्वाद लेता था। आहाहा! समझ में आया? अब तो दिशा पलट, प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा! सहजात्मस्वरूप प्रभु के सन्मुख होकर... अभी कहेंगे,... उसका स्वाद लो, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करो, यह उसका धर्म और कर्तव्य है। आहाहा!

अनुभव है जीवन जिनका... है? **कैसे हैं?** सन्त पुरुष। **'अध्यासिताः'** उसका जीवन वह है, कहते हैं। आहाहा! **'अध्यासिताः' शुद्धस्वरूप का अनुभव है जीवन जिनका,...** आहाहा! चिदानन्द प्रभु का अनुभव, वह धर्मी का जीवन है। राग और द्वेष से जीवन जीना, वह सब जीवन नहीं। समझ में आया? संवर अधिकार है न? आहाहा! **शुद्धस्वरूप का अनुभव है जीवन जिनका ऐसे हैं।** धर्मी जीव—सम्यग्दृष्टि। आहाहा! **कैसे हैं? 'द्वितीयच्युताः'** इसके अतिरिक्त जितना राग हो, द्वेष हो, पुण्य-पाप के परिणाम हों, वह **वस्तु को नहीं अवलम्बते हैं।** जानता है, परन्तु अवलम्बन उनका नहीं। क्या कहा यह? आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द है, उसका अवलम्बन लेकर

अनुभव करो। बाकी पुण्य-पाप के भाव हों। अरे! पर्याय भी एक समय की व्यक्त-प्रगट हो। उसका अवलम्बन न लो। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु के अवलम्बन की इनकार नहीं की।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबकी। गुरु तो क्या, गुरु की श्रद्धा के अवलम्बन की इनकार। आहाहा! प्रभु! तू तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है।

अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड प्रभु है। उसका अवलम्बन ले न, उसका आश्रय कर न, उसके पक्ष में जा न, उसका आधार ले न! ऐसा है। पर्याय है, राग है, परन्तु उसका अवलम्बन न ले। समझ में आया? आहाहा! पर्याय में राग है, दुःख है, परन्तु दुःख का अवलम्बन न ले। आहाहा! यह तो अन्तिम में अन्तिम बात! अवलम्बन तो एक प्रभु त्रिकालनाथ प्रभु ध्रुव को ध्यान में ध्येय बनाकर... आहाहा! ध्यान का विषय ध्रुव को बनाकर उसका अवलम्बन ले। पर्याय में अनेक प्रकार हो, वह ज्ञान जाने परन्तु अवलम्बन नहीं। सुमेरुमलजी! आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है, प्रभु!

मुमुक्षु : स्वयं ही सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही सूक्ष्म है, नाथ! तू अरूपी अन्दर और अनन्त-अनन्त शक्ति का सागर और एक-एक शक्ति भी अनन्त शक्ति के रूप से भरपूर शक्ति। ऐसी अनन्त शक्ति का सागर नाथ। आहाहा! उसका पूर्णमिदं। वह वस्तु पूर्ण है, उसका अवलम्बन ले। समझ में आया? ऐसी बात है।

पर्याय है, रागादि है, दुःख है। संयोग की बात तो एक ओर रखो, वह तो पर्याय में भी नहीं। शरीर, कर्म, देव, गुरु, शास्त्र, वह तो इसकी पर्याय में भी नहीं। परन्तु इसकी पर्याय में अभी पुण्य और पाप के भाव आदि, रागादि होते हैं; इसलिए दुःख भी है। उनका अवलम्बन न ले। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग! यह १२६ श्लोक हुआ। आहाहा!

कलश-१२७

(मालिनी)

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते।
तदयमुदयदात्मारामममात्मानमात्मा
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति।।३-१२७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तत् अयं आत्मा आत्मानं शुद्धं अभ्युपैति' [तत्] तिस कारण [अयं आत्मा] यह प्रत्यक्ष जीव, [आत्मानं] अपने स्वरूप को, [शुद्धं] जितने हैं द्रव्यकर्म-भावकर्म, उनसे रहित [अभ्युपैति] प्राप्त करता है। कैसा है आत्मा? 'उदयदात्मारामं' [उदयत्] प्रगट हुआ है [आत्मा] अपना द्रव्य, ऐसा है [आरामं] निवास जिसका, ऐसा है। किस कारण से शुद्ध की प्राप्ति होती है। 'परपरिणतिरोधात्' [परपरिणति] अशुद्धपना, उसके [रोधात्] विनाश से। अशुद्धपना का विनाश जिस प्रकार होता है, उस प्रकार कहते हैं — 'यदि आत्मा कथमपि शुद्धं आत्मानं उपलभमानः आस्ते' [यदि] जो [आत्मा] चेतनद्रव्य, [कथमपि] काललब्धि को पाकर, सम्यक्त्वपर्यायरूप परिणमता हुआ, [शुद्धं] द्रव्यकर्म, भावकर्म से रहित, ऐसे [आत्मानं] अपने स्वरूप को [उपलभमानः आस्ते] आस्वादता हुआ, प्रवर्तता है। कैसा करके? 'बोधनेन' भावश्रुतज्ञान के द्वारा। कैसा है भावश्रुतज्ञान? 'धारावाहिना' अखण्डित धाराप्रवाहरूप निरन्तर प्रवर्तता है। 'ध्रुवम्' इस बात का निश्चय है।।३-१२७।।

कलश - १२७ पर प्रवचन

अब १२७।

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते।
तदयमुदयदात्मारामममात्मानमात्मा
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति।।३-१२७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'तत् अयं आत्मा आत्मानं शुद्धं अभ्युपैति' आहाहा! संवर है न? धर्म की दशा। संवर अर्थात् शुद्ध उपयोग। पुण्य-पाप अर्थात् अशुद्ध उपयोग। आहाहा! शुभ-अशुभभाव चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, वह भी एक विकल्प और राग है। आहाहा! परद्रव्य है न वे? आहाहा! **'तत् अयं आत्मा आत्मानं शुद्धं अभ्युपैति'** आहाहा! **तिस कारण 'अयं आत्मा' यह प्रत्यक्ष आत्मा (जीव),...** आहाहा! पर्याय में रागादि हों, उनका लक्ष्य छोड़ दे, लक्ष्य छोड़ दे और उनके अवलम्बन बिना सीधे चैतन्य का आलम्बन वह ज्ञान में प्रत्यक्षपना होता है। सूक्ष्म बात है। बालचन्दजी! मस्तिष्क चाहिए, मस्तिष्क। आहाहा!

अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव, शाश्वत् नित्य विराजता है। उसे प्रत्यक्ष आत्मा... आहाहा! मन और राग का अवलम्बन छोड़कर, ज्ञान की वर्तमान पर्याय को पर की अपेक्षारहित कही, वह ज्ञान आत्मा को प्रत्यक्ष रीति से जानता है, इसका नाम संवर है। आहाहा! ऐसा मार्ग। **'अयम्'** शब्द पड़ा है न? **'अयम्'** अर्थात् प्रत्यक्ष। यह। **'अयम्'** यह, यह। जैसे लोग कहे, यह। वैसे यह। आहाहा! यह प्रभु अन्दर है। वह यह है। राग और पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे। अवलम्बन में उनका आश्रय नहीं। हो, परन्तु आश्रय नहीं। आहाहा!

यह **प्रत्यक्ष आत्मा अर्थात् जीव...** कोई और ऐसा कहे कि आत्मा निर्मल है और जीव मलिन है, ऐसा नहीं। जीव कहो या आत्मा, सब एक का एक है। इसलिए दो अर्थ करने पड़े। **आत्मा अर्थात् जीव...** ऐसा। कितने ही ऐसा कहते हैं वेदान्त आदि, कि राग की मलिनतासहित है, वह तो सब जीव है। आत्मा तो अत्यन्त निर्मल है। इसलिए दो अर्थ करने पड़े। **आत्मा अर्थात् जीव...** ऐसा आहाहा! यह भगवान आत्मा कहो या जीव कहो, चीज़ वह की वह है। मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! निगोद और नरक में पिल गया है, भाई! इन राग और द्वेष के दुःख में इसने अनादि से आनन्द को पिल डाला है। दबाकर करके पील डाला है। एक बार प्रभु करवट बदल न! करवट बदल, करवट। ऐसा है, उसे ऐसे कर डाल। भाषा तो सादी है, मालचन्दजी! परन्तु वस्तु तो यह है। आहाहा!

इसकी टीका में ऐसा लिया, भाई! ध्यानविषय कुरु। आता है न? संस्कृत टीका में बहुत जगह आता है। इसमें यह कहा। ध्यानविषय कुरु। वर्तमान ध्यान की पर्याय में

ध्रुव को विषय बना। आहाहा! अर्थात् क्या? वर्तमान ज्ञान की पर्याय में जो राग को, पुण्य को ध्येय बनाकर वहाँ अटका हुआ ज्ञान है, उस ज्ञान की पर्याय को वर्तमान त्रिकाली चीज़ है, उसे ध्येय बना, उसे विषय बना। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है। पहले इसे ज्ञान तो करना पड़ेगा न? हें! कि ऐसा है। दूसरा नहीं। आहाहा! फिर प्रयोग करे। जिसका अभी ज्ञान में ही मिथ्यापन है, वह अन्दर में प्रयोग नहीं कर सकेगा। आहाहा!

प्रत्यक्ष आत्मा अर्थात् जीव 'आत्मानं' अपने स्वरूप को,... 'अयं आत्मा आत्मानं' ऐसा है न? यह आत्मा, आत्मा को, ऐसा। आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रभु आत्मा। यह आत्मा को अर्थात् अपने स्वरूप को, ऐसा। आत्मा, आत्मा के स्वरूप को। आत्मा उसका जो स्वरूप आनन्द, उसके स्वरूप को, वह आत्मा को आत्मा। ऐसा। गोविन्दरामजी! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। अरे! क्या हो? बापू! मार्ग तो यह है। आहाहा! आत्मा **'अयम् आत्मा'** आत्मा को। है न? **'आत्मानम्'** अर्थात् **अपने स्वरूप को...** आहाहा! स्वरूप अपना वह आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, वह आत्मा, आत्मा के स्वरूप को। समझ में आये ऐसा है, भाई! आत्मा तो अन्दर भगवान है। आहाहा! उसे न समझ में आये, ऐसा कैसे कहा जाये? उसे ऐसा नहीं कहा जाता। उसे कलंक लगता है। आहाहा! कठिन भले हो, परन्तु न समझ में आये—ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! कहते हैं कि यदि तुझे धर्म करना हो तो। अर्थात् कि संवर करना हो तो, अर्थात् कि मिथ्यात्व और राग-द्वेष के आस्रव को रोकना हो तो यह कर। आहाहा!

आत्मा अर्थात् (जीव) 'आत्मानं' अपने स्वरूप को 'शुद्धं' शुद्ध अर्थात् जितने हैं द्रव्यकर्म.... जड़। **भावकर्म...** पुण्य-पाप के भाव और **उससे रहित...** वह प्रभु है। वस्तु है, वह शुद्ध है। पहले ऐसा लिया। **'अयं आत्मा आत्मानं शुद्धं'** अर्थात् यह आत्मा अर्थात् जो यह अपने स्वरूप को शुद्ध अनुभव करता है। आहाहा! **जितने हैं द्रव्यकर्म-भावकर्म, उनसे रहित (शुद्ध को) प्राप्त करता है। 'अभ्युपैति' प्राप्त करता है।** आहाहा! थोड़े शब्द परन्तु... क्या कहा? यह आत्मा प्रत्यक्ष प्रभु विराजता है अन्दर। उसे आत्मा, आत्मा के स्वरूप को त्रिकाली जो आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानादि स्वरूप, उसे अवलम्ब कर। आहाहा! अपने स्वरूप को शुद्ध जितने आदि हैं, उसे (अवलम्ब कर)। राग,

दया, दान और विकल्प है, उसे छोड़कर उस शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है। आहाहा! सेठ! सागर में ऐसा कहीं सुनने को मिले ऐसा नहीं है। ऐ, इस सेठ को अवसर आवे तो बोले न! ऐसी बात है, प्रभु! क्या करे? आहाहा! हा... हो... हा... हो... धमाल और बड़े मानों उसमें धर्म हो जाये। बड़ी रथयात्रा, बड़ी प्रतिमा स्थापित करे और बड़े मन्दिर बनावे, करोड़ों रुपये खर्च करे, बापू! वह क्रिया तो पर की है। बापू! वह तो तुझमें नहीं। परन्तु उसमें जो तुझे भाव होता है राग, वह भी तेरे स्वरूप में नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसे तो आप पधारते नहीं तो मन्दिर बनाकर आपको बुलाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वह तो बनता है, वह भी परमाणु से बनता है। वह कहीं आत्मा से बनता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। तुम्हारे कुछ है न अन्दर? मन्दिर छोटा करने का कहते हैं, सेठ के घर में। कोई कुछ कहता था। एक बात सुनी थी। सरदारशहर। वह तो हो परन्तु उस काल में तो, वास्तव में तो पुद्गल की पर्याय परिणमने का काल हो, तब होता है। करने का भाव हो तो वह शुभ है, परन्तु शुभभाव से वह वस्तु बनती है—ऐसा नहीं है। आहाहा! और वह शुभभाव भी राग होता है, आता है। ज्ञानी को भी आता है, परन्तु है राग दुःख।

यहाँ तो प्रभु! तुझे संवर और धर्म करना हो तो प्रभु को अवलम्ब। और शुद्धस्वरूप जो चैतन्य पवित्र पुण्य-पाप के शुभभाव से रहित... आहाहा! उसे प्राप्त कर। यह उसे प्राप्त करता है अन्दर। आहाहा! शुद्धस्वरूप चैतन्य जो आत्मा आनन्द, वह अपने स्वरूप को स्वयं पाप के, पुण्य के भाव रहित होकर अन्तर में ज्ञान में आने पर वह अपने शुद्धस्वरूप को पाता है। आहाहा! ऐसा है। समझ में आया? यह हो... हा... और हा... उसमें बाहर में धमाल में कुछ है नहीं।

मुमुक्षु : प्रभावना होती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभावना यहाँ होती होगी या बाहर होती है? सेठ! अन्दर में शुभभाव हो तो व्यवहार से प्रभावना कहलाये। निश्चय प्रभावना तो उसे कहते हैं कि जो शुद्धस्वरूप पुण्य और पापरहित है। उसकी पवित्र परिणति करना, वह प्रभावना है। ऐसी बातें हैं। प्र—भावना। प्र—विशेष भावना। भगवान भावस्वरूप, आनन्दस्वरूप की

परिणति पर्याय में निर्मलता प्रगट करना, वह प्रभावना है। आहाहा! व्यवहार हो भले। रागादि होते हैं। आहाहा! परन्तु वह तो हेयरूप से, अवलम्बन योग्य नहीं। जाननेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? अरे! चौरासी के अवतार में मुश्किल से अवतार मिला इसे ऐसा। नरक और निगोद में से कहाँ निकला अनन्त काल में। आहाहा! भाई! तेरी अनादि की स्थिति, चौरासी की योनि में भवाब्धि में, भवरूपी संसार के समुद्र में डुबकी मारता हुआ... आहाहा! प्रभु! तुझे समय मिला न अब मनुष्यपने का। आहाहा! अब तो यह कर न। आहाहा! उसकी श्रद्धा तो कर कि यह करनेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा! इसके बिना धर्म नहीं—इसके बिना संवर नहीं, इसके बिना विकार का रुकना नहीं। आहाहा!

प्राप्त करता है। 'अभ्युपैति' है न? **कैसा है आत्मा?** आहाहा! **'उदयदात्मारामं' प्रगट हुआ है अपना द्रव्य, ऐसा है...** आहाहा! भगवान आत्मा शक्तिरूप से तो है, कहते हैं। परन्तु जहाँ अन्तर में एकाग्र हुआ, तब पर्याय में प्रगट उसका भान हो गया। प्रगट आत्मा ऐसा। ओहो! यह आत्मा पवित्र आनन्द का नाथ है। समझ में आया? **प्रगट हुआ है अपना द्रव्य, ऐसा है निवास जिसका...** आहाहा! क्या कहा यह? कि अनादि का इसका निवास। नि—विशेष, वास—टिकना—रहना। यह पुण्य और पाप के, राग और पुण्य-पाप के भाव में निवास करता था। नि—विशेष, वास—रहता था दुःख में। अब उसका निवास पलट गया। आहाहा! ऐसा उपदेश अब। यह भगवान आनन्दस्वरूप का अनुभव, वह इसका निवास है। अब बसना, वहाँ बसता है। आहाहा! समझ में आया?

अपना द्रव्य... अर्थात् वस्तु। **ऐसा है... 'आरामं'** आराम-आराम मिला उसे। आत्माराम। 'निजपद रमे, सो राम कहिये।' राम का अर्थ 'निजपद रमे, सो राम कहिये और कर्म कृषे, सो कृष्ण कहिये।' यह आनन्दघनजी का वचन है। 'कर्म कृषे'। विकार को टाले और स्वभाव को प्रगट करे, वह कृष्ण है। 'निजपद रमे, सो राम कहिये।' पुण्य और पाप में रमे, वह हराम कहिये। हराम—वह राम नहीं। आहाहा! शुद्ध स्वरूप पवित्र परमात्मा में निवास करना। जो अनादि से पुण्य-पाप में (निवास है, उसे छोड़ना)। पर में तो निवास है ही नहीं। पर में तो यह स्पर्शता भी नहीं, छूता भी नहीं। मात्र अभिमान करता है कि मैंने यह किया और मैंने यह किया। इसका बसना तो अनादि से विकार के

भाव में था। शरीर में, वाणी में, कर्म में, पर में, मकान में तो इसका बसना तो था ही नहीं। आहाहा! इसका वास-वास। वस्तु का वास। आहाहा! यह वस्तु क्या कहलाती है? वास्तु नहीं करते? वास्तु। घर का-मकान का वास्तु करते हैं न! मकान बनाया हो, फिर वास्तु करे। उसमें रहे। इसी प्रकार अनादि का वास्तु इसका पुण्य-पाप के विकार में था। अब यह वास्तु बदल गया, कहते हैं। अब घर की वस्तु में वास्तु लिया। आहाहा! यह निवास है जिसका। आहाहा! बहुत संक्षिप्त शब्द है, परन्तु भाव बहुत गहरे-गम्भीर हैं। भगवान तेरी महिमा का पार नहीं, भाई! आहाहा!

वाणी द्वारा भी यह वस्तु आ नहीं सकती। 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब, उसे अन्य वाणी तो क्या कहे?' आहाहा! 'अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब। जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में। कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब। उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे। अनुभवगोरचमात्र रहा वह ज्ञान जब।' आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा निज में आराम लेता हुआ। आहाहा! विश्राम लिया। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव में था, उसे अब थकान लगी और निज स्वरूप में अब विश्राम लिया। आहाहा! कहो, यह छह-छह लाख के मकान और विश्राम (करे)। वह किसी के घर में रहा ही नहीं कभी। वह वहाँ रहा है राग और द्वेष में।

मुमुक्षु : यह मकान तो पड़े ही रहनेवाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यों भी पड़े रहे हैं उसके घर में। वहाँ कहाँ सेठ में आ गये हैं? यहाँ तो दूसरा कहना था। उस मकान में जीव रहता नहीं। मात्र वह मेरा है, ऐसी ममता में रहता है। अब कहते हैं, गुलाँट तो खा एक बार। पलटा तो मार! आहाहा!

भगवान शुद्ध आत्माराम, उसमें आराम कर न! वह तेरा आत्मा अन्दर आनन्द का बाग-बगीचा है। आहाहा! उसमें निवास कर। नि—वास कर। नि—विशेष वास। वहाँ स्थिर हो अब। आहाहा! कठिन बात, बापू! लोग बाहर से मनाकर बैठे हैं। शुभ और अशुभ परिणाम में धर्म। अशुभ को पाप, शुभ को धर्म (माने)। वास्तव में दोनों पाप है। 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को भी पाप कहे।' योगीन्द्रदेव में

(योगसार दोहा ७१ में) दोहे में आता है। आहाहा! उसमें भी आता है। (समयसार) पुण्य-पाप अधिकार की (जयसेनाचार्यकृत) टीका में। स्वरूप से पतित होता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के विकल्प में वह स्वरूप से पतित होता है, इसलिए वह पाप है। आहाहा! टीका में है। आहाहा! बापू! यह तो किसी के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है। इसमें कोई वादविवाद करे तो (मिलान नहीं खाता)। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, प्रभु! तू किसी के साथ वादविवाद करना नहीं। क्योंकि यह वस्तु ही अलग प्रकार है। यह वादविवाद से मिलान खायेगा नहीं। नियमसार में कहा है। आहाहा!

ऐसा है। किस कारण से शुद्ध की प्राप्ति होती है। किस कारण से शुद्ध की प्राप्ति होती है? आहाहा! शुद्धस्वरूप जो पवित्र भगवान पूर्ण द्रव्य और गुण से शुद्ध। उसकी उसे प्राप्ति होती है। पर्याय में उसकी प्राप्ति होती है। आहाहा! शुद्ध की प्राप्ति होती है। **'परपरिणतिरोधात्'** संवर है न? अशुद्धपना। परपरिणति, परपरिणति—परपर्याय। पुण्य और पाप के भाव, वे परपरिणति हैं। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, वह सब परपरिणति विभाव है, विकार है। **'परपरिणति'** अर्थात् कि अशुद्धपना। **'रोधात्' विनाश से।** अशुद्धपने का विनाश किया, कहते हैं। अशुद्धपने का नाश किया और शुद्धपने की पर्याय प्रगट की। आहाहा! उत्पाद-व्यय और ध्रुव। शुद्ध को अवलम्बकर शुद्ध प्रगट किया, अशुद्ध का व्यय हुआ, ध्रुव का अवलम्बन रहा। आहाहा! बापू! मार्ग बहुत अलग! यह कहीं वार्ता-कथा नहीं है। एक-एक पद में कितनी गम्भीरता भरी है। आहाहा! ऐसा यह मार्ग है।

अशुद्धपना का विनाश से जिस प्रकार होता है, उस प्रकार कहते हैं—'यदि आत्मा कथमपि शुद्धं आत्मानं उपलभमानः आस्ते' जो चेतनद्रव्य... 'कथमपि' किसी भी प्रकार से अर्थात् **काललब्धि (और पुरुषार्थ को) पाकर सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणमता हुआ,...** आहाहा! यह काललब्धि पुरुषार्थ। स्वभाव के पुरुषार्थ में यह काललब्धि पाकर। आहाहा! जो परसन्मुख की विकार की काललब्धि थी, वह अब स्वभाव—सन्मुख के पुरुषार्थ की काललब्धि पाकर। आहाहा! **सम्यक्त्वपर्यायरूप परिणमता हुआ,...** जीव। सम्यक्त्वपर्यायरूप से होता हुआ आत्मद्रव्य। आहाहा! **'शुद्धं' द्रव्यकर्म, भावकर्म से रहित...** द्रव्यकर्म अर्थात् जड़ आठ कर्म, भावकर्म अर्थात् पुण्य-

पाप के भाव। उनसे रहित ऐसे '**आत्मानं**' **अपने स्वरूप को** '**उपलभमानः आस्ते**' **आस्वादता हुआ प्रवर्तता है।** आहाहा! एक-एक श्लोक में गजब बात है न!

अपने स्वरूप को आस्वादता हुआ प्रवर्तता है। यह राग और पुण्य-पाप को आस्वादता हुआ दुःख में-जहर में वर्तता था। आहाहा! वह अपने स्वभाव-सन्मुख होकर अपने स्वभाव को आस्वादता हुआ। यह और आत्मा का स्वाद कैसा? स्वाद तो दाल-भात का, मिर्ची का, नींबू का, उनका स्वाद कहलाये। मीठे का, शक्कर का, नमक का, उनका स्वाद। अरे! वह तो जड़ है। उसका स्वाद कहाँ है? जीव को उनका स्वाद नहीं आता, अज्ञानी को भी (नहीं आता)। उसमें लक्ष्य जाने पर राग करे और द्वेष करे, उसका स्वाद उसे आता है। समझ में आया? उसे छोड़कर आत्मा का आस्वाद कर अब। आहाहा! समझ में आया? विषय की क्रीड़ा में भी शरीर को तो आत्मा स्पर्शता भी नहीं। मात्र उसे यह ठीक है, ऐसा राग करत है, उस राग का स्वाद लेता है, शरीर का नहीं। वह तो हड्डी, माँस, चमड़ी, मिट्टी, धूल है। आहाहा! विषय की रमणता में वह राग में रमता है। पर में नहीं। आहाहा! अब कहते हैं कि स्वविषय की रमणता में, आनन्द के स्वाद में अब रम। आहाहा! अभी मूल शब्द अब आयेगा।

आस्वादता हुआ प्रवर्तता है। कैसा करके? भावश्रुतज्ञान के द्वारा। देखा! अकेला शास्त्रज्ञान और उसके द्वारा नहीं। अन्तर में आत्मा की ओर उन्मुख हुआ जो भावश्रुतज्ञान, जिसमें राग की अपेक्षा नहीं, ऐसे निर्मल भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवता हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **भावश्रुतज्ञान के द्वारा। कैसा है भावश्रुतज्ञान?** अब अन्तिम। वास्तविक अर्थ यहाँ है। **भावश्रुतज्ञान के द्वारा।** इस ओर है। है न? '**धारावाहिना**' **अखण्डित धाराप्रवाहरूप निरन्तर प्रवर्तता है।** आहाहा! अब उसके दो प्रकार हैं। यह धारावाही अखण्ड, ऐसा लिखा न अर्थ में, भाई? अब धारावाही शब्द जो लिया है, उसके दो अर्थ हैं। एक तो आत्मा अपने शुद्धस्वरूप के अनुभव में उपयोग अन्दर वर्तता हुआ अकेला, उसे धारावाही कहते हैं। उसमें से निकलना नहीं विकल्प से। और एक धारावाही यह है कि स्वरूप का अनुभव हुआ है, उपयोग अन्दर में नहीं जुड़ता। शुद्धता की परिणति प्रगट हुई है, उसे धारावाही (कहते हैं)। भले विकल्प में आया। परन्तु वह शुद्ध परिणति है, वह धारावाही रहती है।

फिर से। एक अन्दर में उपयोग रह गया है। ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन को छोड़कर अकेला आनन्द का नाथ (उसे) अनुभव करता हूँ, ऐसा भी जहाँ भेद नहीं। समझ में आया? उपयोग अन्दर में, चैतन्य में एकाकार हो गया है। जिसे अब विकल्प बुद्धिपूर्वक रहा नहीं। अबुद्धिपूर्वक रहा, वह पर में जाता है। अन्दर के आनन्द में शुद्धोपयोग जम गया है और उसी और उसी में अखण्ड रहना, बाहर विकल्प में आना ही नहीं, इसका नाम धारावाही पहले नम्बर की बात है।

अब, दूसरी धारावाही (परिणति) वह कि शुद्धस्वरूप प्रभु का आनन्द का स्वाद आया, उपयोग भी अन्दर था, परन्तु वह उपयोग अब बदला और विकल्प में आ गया। परन्तु वह शुद्ध परिणति है, वह धारावाही रहती है। समझ में आया? विकल्प आवे। छद्मस्थ है, अभी वीतराग नहीं। परन्तु आने पर भी अभी शुद्ध चैतन्य की जो श्रद्धा-ज्ञान और रमणता की परिणति हुई है, वह धारावाही कायम रहती है। समझ में आया?

फिर से। शुद्धज्ञानेम् धारावाहेन। अपने यहाँ कुछ पुनर्युक्ति नहीं लगती। यह तो स्पष्टीकरण है। भावश्रुतज्ञानेन धारावाहेन। अर्थात् कि भावश्रुतज्ञान अन्दर जम गया, अन्दर उपयोग में। यह ध्याता और मैं ध्यान करता हूँ, ऐसा जहाँ भेद नहीं। अन्दर में लीन हो गया है। वह की वह धारा कायम रहे, उसे धारावाही कहते हैं। और दूसरी धारावाही—ऐसा कायम न रह सके अन्दर तो विकल्प में आ जाता है। परन्तु शुद्ध की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता का जो प्रगट स्वाद आया है, वह कायम रहता है। बराबर भाई? बालचन्दजी! आहाहा!

कैसा भावश्रुतज्ञान? 'धारावाहिना' अखण्डित धाराप्रवाहरूप निरन्तर प्रवर्तता है। इस बात का निश्चय है। है? अर्थात् कि... आहाहा! जो अन्दर शुद्ध चैतन्य के उपयोग में गया, वह गया सो गया। बाहर विकल्प आता ही नहीं। उसे भी एक धारावाही एकदम होकर सीधे केवलज्ञान हो जाता है। और दूसरा धारावाही अन्दर में लीन हुआ, भान हुआ, वेदन हुआ परन्तु अन्दर में रह नहीं सका, सीधा विकल्प आया बाहर। तो उस शुद्ध की परिणति जो श्रद्धा-ज्ञान और आनन्द की दशा हुई है, वह कायम रहती है। समझ में आया? राग आया तो भी (कायम रहती है)। राग हो राग के स्थान में, परन्तु शुद्ध परिणति है, वह कायम रहती है। वीतराग नहीं न, इसलिए राग आवे।

उपयोग अन्दर रह न सके और च्युत हो जाये अन्दर से। इसलिए राग में आया। वह मानो उसे—राग है उसे। तथापि यहाँ शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति जो प्रगट हुई है, वह तो कायम धारावाही रहती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कायम रहे। शुद्ध परिणति कहाँ जाये? उपयोग हट गया। उपयोग जो अन्दर में जम गया था, वह हट गया। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। अभी पाव घण्टा है, हों! सवा आठ शुरु किया है न? आहाहा! अब इसमें क्या लोगों को वाद-विवाद करे। बापू! यह मार्ग अलग है। आहाहा!

कहते हैं कि, आत्मा '**आत्मानम्**' आत्मा को पाकर शुद्धस्वरूप सम्यग्दर्शन पाया और सम्यग्ज्ञान हुआ और आनन्द का स्वाद भी आया, परन्तु उपयोग अन्दर में जम कर रहे, तब तो अलौकिक बातें हैं। वह धारावाहिक रहे, तब तो अल्प काल में केवलज्ञान हो जाये। परन्तु उसमें न रह सके तो शुद्ध सम्यग्दर्शन जो हुआ, शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसकी प्रतीति ज्ञेय-ज्ञान करके हुआ और जो पवित्रता प्रगट व्यक्त हुई है, वह धारावाही कायम रहती है। शुभराग होने पर भी (रहती है)। समझ में आया? शान्तिभाई! इसने ऐसा कहाँ सुना हो दिल्ली? और भाषण बड़े-बड़े करे यह... यह... और यह... बापू! यह मार्ग अलग, नाथ! आहाहा! कहते हैं कि राग आया, दुःख आया। परन्तु जितना आनन्द का स्वाद और पवित्रता प्रगट हुई है, वह कायम रहती है। उसे धारावाही कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो एक उपयोगरूप कायम रहना और एक लब्धरूप अन्दर परिणति शुद्ध हुई है, वह लब्धरूप कायम रहे। उपयोग विकल्प में भले जाये, परन्तु शुद्ध धारा है अन्दर आनन्द की, वह तो कायम रहती है। इस प्रकार धारावाही के दो अर्थ हैं। समझ में आया? फिर यह लोग ऐसा कहे न बेचारे, कि सोनगढ़वाले तो मात्र निश्चय की ही बातें करते हैं। परन्तु बापू! निश्चय अर्थात् सत्य। यह तो अनुभव की पर्याय है, वह सत्य है। राग आता है परन्तु वह असत्य है। विरोध है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सिर घूम गया होता है बाहर का। भ्रमणा में भ्रम गया बहिरात्मा। बहिर्... बहिर्। अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप को छोड़कर और पुण्य तथा पाप के विकल्प

के निमित्त हैं, उनके लक्ष्य से विकार के वास में अनादि से बस रहा है। आहाहा! वह भी धारावाही बसता है। उसमें बीच में शुद्धता आने नहीं देता। बराबर है? आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ आत्मा में अन्दर शुद्धस्वरूप आनन्दनाथ प्रभु परम पवित्र परमात्मस्वरूप ही प्रभु आत्मा है। शक्ति और स्वभाव परमात्मस्वरूप ही है। उसके परमात्मस्वरूप को दृष्टि में, ज्ञान में प्रत्यक्षरूप से पाकर प्रतीति हुई है। वह प्रतीति और वह प्रत्यक्ष ज्ञान का जो वेदन होता है, वह कायम रहता है। भले विकल्प आया, शुभ आया, अशुभ भी हो। समकिती गृहस्थाश्रम में है तो अशुभराग भी होता है। कोई कमाने का, कमाने का। तथापि वह अन्तर्दृष्टि हुई है, जो शुद्ध प्रगट पवित्रता, वह कभी खण्डित नहीं होती।

मुमुक्षु : संवर-निर्जरा चालू होकर बढ़ती जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कायम है न! आहाहा! समझ में आया? आज की गाथा (कलश) सूक्ष्म है, बापू! आहाहा! भगवान तेरा स्वरूप ही अलौकिक है। आहाहा! कहते हैं कि विकल्प में आया, वह दुःख के वेदन में आया; तथापि जे शक्ति की व्यक्ति प्रगट हुई है, वह तो धारावाही अन्दर रहती है। समझ में आया? समझ में आता है इसमें? शान्तिभाई!

'**बोधनेन**' किस द्वारा पाता है? **भावश्रुतज्ञान के द्वारा। कैसा है भावश्रुतज्ञान?** धारावाही है। भावश्रुत। यह द्रव्यश्रुत शास्त्र के ज्ञान की बात नहीं है। शास्त्र का ज्ञान, वह कहीं ज्ञान नहीं है। वह तो परलक्ष्यी है। आहाहा! अन्तर ज्ञान का नाथ प्रभु महासरोवर, सागर, उसमें स्पर्शकर जो ज्ञान प्रगट होता है, उसे ज्ञान कहा जाता है। चाहे तो ग्यारह अंग और नौ पूर्व की लब्धि हो ज्ञान की, तथापि वह ज्ञान नहीं। आहाहा! वह भावश्रुत नहीं। समझ में आया?

भावश्रुतज्ञान तो भगवान ज्ञानमूर्ति चैतन्यबिम्ब प्रभु, उसके लक्ष्य से, ध्येय से जो ज्ञानस्वभावी सागर की श्रद्धा और ज्ञान को स्पर्शकर जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञान को यहाँ भवश्रुतज्ञान कहते हैं। अरे! ऐसी बातें हैं। और उस भावश्रुतज्ञान को धारावाही रखना। धारावाही के दो प्रकार—अन्दर उपयोग जम गया है, बाहर न आवे, वह भी धारावाही

और उपयोग उसमें से हट गया परन्तु भावश्रुतज्ञान द्वारा प्रतीति और अनुभव हुआ है, वह पवित्रता कायम लब्धरूप रहती है, उसे भी धारावाही कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि हो, चक्रवर्ती, जिसे छियानवें हजार तो स्त्रियाँ होती हैं। आहाहा! छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव। अब उसे भोग का भाव भी आवे। समकिती-ज्ञानी को। कहते हैं, परन्तु उस काल में भी अन्दर जो शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान और निर्मलता प्रगट हुई है, उसे अब आवरण नहीं है। सुमेरुमलजी! समझ में आया? भाई! आहा! भगवान है यह तो, बापू! आहाहा! कहते हैं, भगवान के उपयोग से भेंट हुई तो ऐसा का ऐसा रहे, वह तो अलौकिक बातें हैं। वह धारावाही अलौकिक है। परन्तु उसमें न रह सके और विकल्प आवे, समकिती ज्ञानी गृहस्थाश्रम में है अभी, मुनि को भी (विकल्प) है, लो न! सातवें गुणस्थान में जाये, तब तो उपयोग जम गया है। तब तो पंच महाव्रत के विकल्प प्रमाद हैं, वे भी नहीं। वहाँ से हटकर वापस छठवें में आ जाये तुरन्त, तब उपयोग वहाँ से हट गया, विकल्प आया। परन्तु परिणति शुद्ध हुई है, वह हटी नहीं। तीन कषाय के अभाव की जो शुद्ध दशा है, वह धारावाही चलती है। धारावाही चलती तो है, परन्तु शुद्धता वृद्धिगत धारावाही चलती है। आहाहा! अर्थात् क्या? राग आया। पंच महाव्रत का वह राग आया। दुःख है, वह आया। परन्तु अन्दर में जितना स्वाद आया है अन्दर विकास का, वह धारावाही चलता है। आहाहा! और धारावाही में भी क्षण-क्षण में पर्याय की शुद्धि बढ़ती है। आहाहा! भले राग हो। स्व का आश्रय है न? समझ में आया? ऐसी बातें हैं। अब उसमें किसके साथ चर्चा और बात करना? अरे! बापू! भाई! तेरा मार्ग अलग।

यहाँ कहते हैं कि धर्मी जीव को सम्यग्दर्शन में जब अन्तर उपयोग जम गया है, तब तो धारावाही अलौकिक दशा। आहाहा! पश्चात् वहाँ तो बुद्धिपूर्वक का विकल्प भी नहीं। अबुद्धिपूर्वक हो, उसकी गिनती नहीं। परन्तु अब बुद्धिपूर्वक जहाँ विकल्प आया... आहाहा! कोई शुभराग आया और कोई अशुभराग भी आया। आहाहा! परन्तु जो शुद्धता के आश्रय से जो पवित्रता जितनी शान्ति तीन कषाय के अभाव की या दो

कषाय के अभाव की शान्ति प्रगट हुई है, वह धारावाही रहती है। समझ में आया? ऐसा कहा जाता है दोनों को।

उसे दूसरे प्रकार से लें तो बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक। लिया है न, भाई? अर्थात् क्या? सुनो। एक तो रुचिपूर्वक जिसे राग नहीं। राग आता है। होता है, परन्तु रुचि नहीं। उसे रुचि चिदानन्द भगवान आनन्द की रुचि है। अर्थात् रुचिपूर्वक राग-रुचिपूर्वक राग उसे नहीं है। एक बात। दूसरी बात—शुद्ध स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और परिणति निर्मल धारा बहती है और राग भी आता है। उस राग को जानने में आता है, इस अपेक्षा से बुद्धिपूर्वक राग कहने में आता है। जानने में आता है कि यह राग हुआ। वह रुचिपूर्वक नहीं। आहाहा! रुचिपूर्वक, बुद्धिपूर्वक वह। बुद्धिपूर्वक अर्थात् कि रुचिपूर्वक राग, वह मिथ्यादृष्टि को है और बुद्धिपूर्वक राग, रुचिपूर्वक नहीं, ऐसा राग ज्ञानी को भी होता है। समझ में आया?

इसलिए बुद्धिपूर्वक के दो अर्थ—एक रुचिपूर्वक और एक अस्थिरता का जानने में आता है कि यह राग आया, यह दुःख (है), ऐसा ख्याल आवे तो भी उसे उसकी रुचि नहीं है। आहाहा! उस समय भी उसका अवलम्बन नहीं है। अवलम्बन तो भगवान त्रिकालनाथ का अवलम्बन है। दुःख आता है, उसे जानता है। अवलम्बन नहीं। अवलम्बन तो यहाँ का है। समझ में आया? कितना याद रखना? सब बातों में अन्तर। ऐसी बातें हैं, बापू! तेरा मार्ग अलग है, भाई! आहाहा! यह जवानी झोला खायेगी, वृद्धावस्था हो जायेगी, नाथ! यह जड़ की दशा है। आहाहा! बालपना चला गया, युवापन भी चला जायेगा, वृद्धावस्था हो जायेगी, देह छूट जायेगी। वह तो जड़ की दशा है।

तेरी बालपने की दशा दया, दान, राग को अपना मानना, वह बालपन की दशा है। और राग मेरा नहीं; हो, राग हो अस्थिरता का, परन्तु वह मेरा स्वरूप नहीं। मेरा शुद्ध चैतन्यस्वरूप का सम्यग्दर्शन में भान हुआ, वह अब युवक हुआ। वह जवानी हुई। और उसमें से आगे बढ़कर केवलज्ञान पावे, वह वृद्ध हो गया। वह वृद्ध। यह बाल-युवक-वृद्ध। यह धूल के बालवृद्ध वह तो जड़ के हैं। समझ में आया? **यह बात निश्चित है।** यहाँ कहते हैं। आहाहा! लो, विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१२८

(मालिनी)

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः।।४-१२८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'एषां निजमहिमरतानां शुद्धतत्त्वोपलम्भः भवति' [एषां] ऐसे जो हैं, कैसे? [निजमहिम] जीव के शुद्धस्वरूप परिणमन में [रतानां] मग्न हैं जो कोई, उनको [शुद्धतत्वोपलम्भः भवति] सकल कर्मों से रहित, अनन्त चतुष्टय विराजमान, ऐसा जो आत्मवस्तु, उसकी प्राप्ति होती है। 'नियतं' अवश्य होती है। कैसा करके होती है? 'भेदविज्ञानशक्त्या' [भेदविज्ञान] समस्त परद्रव्यों से, आत्मस्वरूप भिन्न है—ऐसे अनुभवरूप [शक्त्या] सामर्थ्य के द्वारा। 'तस्मिन् सति कर्ममोक्षो भवति' [तस्मिन्] शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होनेपर, [कर्ममोक्षः भवति] द्रव्यकर्म-भावकर्म का मूल से विनाश होता है। 'अचलितं' ऐसा द्रव्य का स्वरूप अमिट है। कैसा है कर्मक्षय? 'अक्षयः' आगामी अनन्त काल तक, और कर्म का बन्ध नहीं होगा। जिन जीवों का कर्मक्षय होता है, वे जीव कैसे हैं? 'अखिलान्यद्रव्यदूरे स्थितानां' [अखिल] समस्त ऐसे जो [अन्यद्रव्य] अपने जीवद्रव्य से भिन्न सब द्रव्य, उनसे [दूरे स्थितानां] सर्व प्रकार भिन्न हैं—ऐसे जो जीव, उनके।।४-१२८।।

आसोज शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक - २२-१०-१९७७, कलश-१२८, प्रवचन-१२८

कलशटीका, १२८ कलश है। संवर अधिकार चलता है। संवर कहो या धर्म कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो। तीनों एक बात है—तीनों एक ही बात है। १२८।

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः।

अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः।।४-१२८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'एषां निजमहिमरतानां शुद्धतत्त्वोपलम्भः भवति' ऐसे जो हैं,... जीव। **कैसे ?** कि '**निजमहिम**' निज परमात्मस्वरूप, शुद्धस्वरूप परिणमन में मग्न हैं। आहाहा! क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा परमात्म शुद्धस्वरूप द्रव्यस्वभाव है। ऐसा जो परमात्मस्वभाव, शुद्धस्वभाव उसके सन्मुख में, उसमें मग्न है, वह '**निजमहिमरतानां**'।

मुमुक्षु : मग्न है अर्थात ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मग्न अर्थात् एकाग्र लीन है। साथ में राग-द्वेष होने पर भी उनसे पृथक् होकर और निज स्वरूप आनन्दकन्द प्रभु में रत है—लीन है—एकाग्र है। उसका नाम संवर और धर्म कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : कल तो आप ऐसा कहते थे, आनन्द प्राप्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आनन्द कहो या संवर कहो, सब एक ही बात है। भाषा में अन्तर है।

'**निजमहिमरतानां**' भगवान आत्मा शरीर, वाणी से तो भिन्न—पृथक् है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम और काम-क्रोध के भाव, उनसे भगवान अन्दर भिन्न है। उसे पर्याय को—उसकी पर्याय जो है उसे, निज स्वरूप परमात्मस्वरूप में लीन करना, वह आनन्द का अनुभव होता है। उसे संवर कहो या आनन्द का अनुभव कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहो या मोक्षमार्ग कहो, एक ही बात है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! लोग संवर मानते हैं, उसमें पाँच आस्रव बन्द किये, (इसलिए) संवर हो गया। वहाँ जामनगर में बहुत चलता है।

मुमुक्षु : आठम....

पूज्य गुरुदेवश्री : आठम, चौदस को बहुत सामायिक और प्रौषध करे, (इसलिए) संवर हो गया। बापू! वह संवर नहीं है।

मुमुक्षु : प्रतिज्ञा ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिज्ञा, वह तो विकल्प की प्रतिज्ञा।

यह तो आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण शुद्ध चिदानन्दघन, अकेला ज्ञानरस और आनन्दरस का रूप, वह वस्तु निज है। उसमें पुण्य-पाप है, वह कहीं निज चीज़ नहीं। शरीर, वाणी, मन तो पर है। वह तो कहीं दूर रहा।

'**निजमहिमरतानां**' पहला शब्द यह है। जो आनन्दघन प्रभु, सच्चिदानन्द, सत्-शाश्वत। चिदानन्द—ज्ञान और आनन्द का पूर है। उसमें जो एकाग्र होता है अर्थात् कि लीन होता है, अर्थात् कि उसके स्वभाव-सन्मुख में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता है, उसे संवर कहा जाता है—उसे धर्म कहा जाता है। ऐसी बात है, बापू! धर्मी ऐसा जो आत्मा-वस्तु, उसका धर्म जो अनादि आनन्द, शान्ति, स्वच्छता का धर्म स्वभाव, उसके सन्मुख होकर जो आनन्द और शान्ति की पर्याय प्रगट होती है, वह '**निजमहिमरतानां**' उसे संवर और धर्म कहते हैं। आहाहा! ऐसी वस्तु है। वस्तु तो यह है। आये है?

'**निजमहिमरतानां**' पहला शब्द है। आहाहा! अर्थात्? कि अनादि काल से राग और द्वेष, पुण्य और पापभाव, वह मेरा स्वरूप है—ऐसा मानकर उसमें लीन है, वह मिथ्यादृष्टि दु:ख का वेदन करनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा चिद्घन सच्चिदानन्द सत्-सत् शाश्वत् वस्तु एक समय में ध्रुव और उसमें अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द, अनन्त बल और अनन्त वीर्य आदि अनन्त शक्तिस्वरूप पड़े हैं, उसके सन्मुख होकर, राग और द्वेष के परिणाम से विमुख होकर... ऐसी बातें हैं। उसमें लीन होना, आनन्दघन प्रभु में। निज शब्द में परमात्मस्वरूप है। परमात्म—परम-आत्म परम स्वरूप उसका पूर्ण स्वरूप, उसमें जो लीन है। आहाहा! जिसने पुण्य और पाप के भाव के दशा की दिशा बदल डाली है। वह दशा विकारी है, उसकी दिशा बदल डाली। गुलाँट कर डाली है। जिसने पलटा मारा है। आहाहा!

भगवान '**निजमहिमरतानां**' ऐसा जो स्वभाव, त्रिकाली प्रभु चैतन्य का स्वभाव आनन्द, ज्ञान और शान्ति, उसमें जिसकी एकाग्रता है। '**रता**' शब्द किया है। '**निजमहिमरतानां**' रत-लीन है। उसमें जिसकी एकाग्रता है, उसे यह **मग्न है जो कोई, उनको** '**शुद्धतत्त्वोपलम्भः भवति**' आहाहा! उसे परमात्मपद की पर्याय प्राप्त होगी।

सिद्धपद कहो, परमात्मपद कहो, मोक्ष कहो, यह मोक्ष उसे प्राप्त होगा कि जो निज महिमा में लीन है। उसे प्राप्त होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : निज महिमा अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न यह। निज परमात्मस्वरूप मैं हूँ, ऐसा जिसे अन्तर महात्म्य आया है। और पुण्य आर पाप तथा पर्याय का माहात्म्य जिसे छूट गया है। महिम, अधिकता, अचिन्त्यता, विशेषता, पर की अधिकता, विशेषता, अचिन्त्यता, आश्रयता छूट गयी है। और स्व की अचिन्त्यता, विशेषता, अद्भुतता जिसे दृष्टि में आयी है। सुमेरुमलजी! आहाहा! यहाँ कहेंगे। उसे अभी राग-द्वेष है। परद्रव्य '**दूरेस्थितानां**'। अन्तिम शब्द कहेंगे। है न अन्दर? '**दूरेस्थितानां**' तीसरा पद है। '**दूरेस्थितानां**' तीसरा पद है। आहाहा!

एक ओर ऐसा कहे... कहा था यह कल, नहीं? कि पुण्य और पाप के भाव, वे जीव के सत्त्व में हैं। जीव की पर्याय है, उसका वह सत्त्व है। जैसे द्रव्य और गुण सत्त्व है, वैसे पर्याय भी उसका सत्त्व है। उस पर्याय में जो पुण्य-पाप और मिथ्यात्व, उसकी पर्याय के सत्त्व में है, इसलिए प्रमाणज्ञानवाला—श्रुतप्रमाणवाला, ऐसा जाने, मेरी चीज़ तो त्रिकाली शुद्ध महिमावाली चीज़ है। ऐसा जाने। और पर्याय में पुण्य-पाप भाव है, उन्हें भी श्रुतप्रमाण में जाने। मुझमें है। कल कहा था, नहीं?

एक ओर ७३ गाथा में ऐसा कहते हैं कि पुण्य और पाप के भाव का स्वामी कर्म है। आहाहा! एक ओर ऐसा कहते हैं कि पुण्य और पाप क स्वमी आत्मा है। कहा था कल, नहीं? ४७ नय। प्रमाण-श्रुतप्रमाण। वहाँ अधिष्ठाता कहा है न? अरे! प्रभु! वाणी तो देखो! अनेकान्त। यह प्रभु ऐसा कहते हैं कि पुण्य और पाप के भाव मेरे माने तो वह मिथ्यात्व है। और उन पुण्य-पाप का स्वामी वास्तव में तो कर्म है। दूसरी ओर ऐसा कहे कि धर्मी जीव, जैसे अपनी निज महिमा में लीन है, वह तो संवर है। परन्तु जितना राग-द्वेष है, वह मुझमें है, मुझसे है, उसका कर्ता और भोक्ता मैं हूँ, (ऐसा मानता है)

मुमुक्षु : मेरी परिणति कल्माषित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्माषित, यह तो पहले आचार्य का कहा था। तीसरा कलश

कहा। अमृतचन्द्राचार्य... अहाहा! मुनिराज, जिन्हें तीन कषाय का अभव (हुआ है), महाज्ञान चौथे-पाँचवें गुणस्थान से तो कहीं बढ़ गया अन्दर। वे मुनिराज ऐसा कहते हैं, प्रभु! मुझे अनादि की अशुद्धता की कल्माषिताया, वह दुःख का वेदन मुझे अनादि का है। आहाहा! और अभी मैं मुनि हुआ हूँ, तीन कषाय के अभाव की वीतरागदशा है, तथापि वह संज्वलन का कषाय—राग कल्माषितायां—कलुषित भाव है। आहाहा! मुनि तो शुभभाव में होते हैं। अशुभ तो होता नहीं। परन्तु वह शुभभाव भी कलुषित और मलिन है। आहाहा! मुनि ऐसा कहते हैं कि मुझे अभी पर्याय में कलुषितता है। आहाहा!

यहाँ श्रुतप्रमाण में ऐसा कहा और कर्ताकर्म में ऐसा कह कि पुण्य और पाप का स्वामी कर्म है। किस अपेक्षा से? किस नय का वाक्य? यह स्वभाव को राग से भिन्न पड़ी हुई अधिक दशा को लक्ष्य में लेने के लिये यह पुण्य-पाप का स्वामी कर्म है, तू नहीं—ऐसा बताया। परन्तु वापस जब उसे ऐसा हो जाये कि पुण्य-पाप वह मुझमें है ही नहीं, तो वहाँ बताया कि भगवान! जितनी भूल तुझमें है, उसका स्वामी-अधिष्ठाता तू है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यहाँ यह पुण्य-पाप है सही। '**दूरेस्थिताना**' कहेंगे। परन्तु यहाँ तो संवर करना है न? इसलिए निज आनन्दस्वरूप प्रभु, नित्यानन्द ध्रुव में, जिसकी महिमा, महिमा अर्थात् उसमें जिसे आश्चर्यता हुई और उसमें लीन हुआ है। मेरा नाथ पूर्णानन्द का स्वरूप प्रभु, ऐसी जिसे अन्तर में महिमा आयी है, वह वस्तु में लीन होता है। वह '**निजमहिमरतानां**'। यह लीनता, वह संवर और धर्म है। समझ में आया? आहाहा! और उसे शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति होती है। किसे? कि जो भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप का अन्दर अनुभव करे, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करे। आहाहा! वह अतीन्द्रिय वेदन के धारावाही से उसे पूर्ण आत्मा की प्राप्ति—परमात्मपद की (प्राप्ति) होती है। ऐसी बातें हैं, भगवान! समझ में आया? यहाँ अभी अस्ति से बात ली है। '**दूरेस्थिताना**' बाद में लेंगे। आहाहा! मार्ग बहुत अलग, बापू! **उनको** '**शुद्धतत्त्वोपलम्भः भवति**' उसे शुद्ध तत्त्व अर्थात् कर्मरहित परमात्मदशा उसे प्राप्त होती है। आहाहा! जो परमात्मदशा, जिसे ग्यारहवीं गाथा में तो ऐसा कहा कि वह परमात्मदशा अभूतार्थ है, झूठी है; सच्ची नहीं। आहाहा! क्योंकि पर्यायमात्र असत्य है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : अभूतार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभूतार्थ कहो, असत्य कहो, झूठी कहो, 'नहीं' कहो। यह सब पर्यायों को गौण करके 'नहीं', ऐसा कहा है। अभाव करके 'नहीं', ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? और वहाँ प्रमाण में तो ऐसा कहे, इसकी पर्याय में राग-द्वेष है और उसका अधिष्ठाता यह है। परद्रव्य को क्या सम्बन्ध है? परद्रव्य उसके कारण से पलट रहा है, बाह्य। तेरी पर्याय से बाह्य। और तेरी पर्याय उस द्रव्य की पर्याय से बाह्य पलट रही है। उसमें तुझे पर के साथ सम्बन्ध क्या है? आहाहा!

मुमुक्षु : वह निकल जाता है, इसलिए परतत्त्व कहलाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निकल जाता है, इसलिए पुद्गल के परिणाम भी कहा। यह प्रश्न हुआ था न? जयपुर (में)। वर्णीजी के शिष्य मनोहरलालजी। है न अभी? क्षुल्लक। वहाँ आये थे खास दो दिन। वहाँ उन्होंने प्रश्न किया था। पहले दो प्रश्न किये कि यह शुभाशुभभाव को पुद्गल के परिणाम क्यों कहा? यह प्रश्न किया था। जयपुर। सीकर से या कहीं से आये थे। नहीं? कहीं से आये थे। सीकर... सीकर। रेल में बैठते थे। क्षुल्लक रेल में बैठते हैं। क्षुल्लक को रेल में नहीं बैठा जाता। परन्तु अभी कहाँ वह बाहर की क्रिया....

मुमुक्षु : पंचम काल के क्षुल्लक....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में ऐसा नहीं होता। पंचम काल में हलुवा होता होगा... चौथे काल में आटे का होता है और पंचम काल में मिट्टी का होता है, ऐसा होगा? चौथे काल में घी का होता है और पाँचवें काल का पेशाब का होगा? कुछ नहीं होता।

मुमुक्षु : जैसे श्रावक वैसे ही मुनि।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक तो आठ (मूल) गुण पालते हों और समकित हो तो वह श्रावक कहलाये। परन्तु यह मुनि नहीं कहलाये। किन्तु तुमको भी कहाँ यह भान है? पूरा मार्ग अलग, बापू! आहाहा! यह मार्ग अलग, नाथ! तेरा। आहाहा!

प्रभु! यहाँ ऐसा कहते हैं कि तुझे अन्दर राग-द्वेष के परिणाम तेरी पर्याय में हों,

परन्तु उससे भिन्न पड़कर निज स्वरूप में लीन हो। चन्दुभाई! आहाहा! ऐसा कहते हैं, हों! प्रभु! तुझमें कुछ माल है या नहीं? या पुण्य-पाप, वही माल है? वह तो विकार है। तू तत्त्व है या नहीं? आत्मा है या नहीं? तो आत्मा है तो उसका कोई स्वभावरूपी माल है या नहीं? उसके स्वभावरूपी माल में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्तियों का संग्रहरूप प्रभु और एक-एक शक्ति भी अनन्त शक्ति के रूपवाला तत्त्व। आहाहा! ऐसा तेरा माल है या नहीं? बालचन्दजी! यह माल की बात आयी। आहाहा! प्रभु! तेरा माल इतना पड़ा है न! अन्दर गोदाम—वह गुण का गोदाम। वह अनन्त शक्ति का संग्रहालय, अनन्त शक्ति का संग्रहालय। आलय अर्थात् स्थान। अनन्त स्वभाव का सागर प्रभु। तीन बोल प्रयोग किये। अनन्त-अनन्त आनन्दादि गुण का तो गोदाम प्रभु है। आहाहा! समझ में आया?

मुम्बई में गोदाम में माल लेने जाते हुए देखा है। केसर के डिब्बे लेने गये थे। बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९६८ या ६७ की बात होगी। केसर का बड़ा गोदाम। केसर के डिब्बे। तब तो सस्ता था न? रुपये का रुपयाभार या ऐसा कुछ था। अब महँगा हो गया। केसर-केसर। बड़ा गृहस्थ। इतनी अलमारियाँ ऊँची बड़ी खाली। उसमें पूरे केसर के डिब्बे भरे हुए। बड़ा व्यापारी। नहीं?

इसी प्रकार यह भगवान तो केवल आनन्द के गोदाम का डिब्बा भरा है। एक-एक गुण में अनन्त शक्ति, ऐसा गोदाम आत्मा है। आहाहा! ऐसा जो प्रभु, (उसमें) माल-चीज़ है या नहीं अन्दर? वह निज महिमा। ऐसे स्वरूप की महिमा करके एकाग्र हो, वह मोक्ष का मार्ग है। क्रियाकाण्ड बीच में आवे। व्रत, नियम, तप वह सब राग है। वह बन्ध का कारण। समझ में आया? ऐसा मार्ग, बापू! संसार के दुःख का अन्त लाने का तो यह उपाय है। और शुद्ध तत्त्व की पूर्ण की प्राप्ति होने का उपाय तो यह है। आहहा!

पहले शब्द में '**शुद्धतत्त्वोपलम्भः भवति**'। ऐसी जो **सकल कर्मों से रहित अनन्त चतुष्टय विराजमान...** अन्दर विराजमान त्रिकाली और पर्याय में विराजमान। **ऐसा जो आत्मवस्तु, उसकी प्राप्ति होती है।** आहाहा! यह भगवान आत्मा है, उसमें तो अनन्त चतुष्टय मुख्यरूप से। अनन्त चतुष्टय अर्थात्? अनन्त ज्ञान ज्ञानस्वभाव की मर्यादा क्या?

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल, ऐसा चतुष्टय मूल, इसके अतिरिक्त अनन्त शक्तियाँ दूसरी, परन्तु वह चतुष्टय मूल जो स्वभाव है, उसके ओर की एकाग्रता से वह अनन्त चतुष्टय पर्याय में प्रगट होता है। अरे! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

'हरि का मारग है शूरों का, नहीं कायर का काम।' वैष्णव में कहा जाता है। आता है न? 'हरि का रे मारग है शूरों क, यह कायर का काम नहीं जो न। प्रथम पहले मस्तक रखकर फिर लेना हरि का नाम जोने।' वह हरि कौन? यह। राग, द्वेष और अज्ञान को हरे, ऐसा भगवान, वह हरि। पंचाध्यायी में पाठ है। यह सब पाठ है, पंचाध्यायी में। हरि यह। जो राग और द्वेष और विकार के मलिनभाव को हरे और अपनी शक्ति की पूर्णता प्राप्त करे, वह प्रभु हरि है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि वह निज... यह लोग शोर मचाते हैं न कि व्यवहार, व्रत, तप, भक्ति और पूजा, वह भी मोक्ष का मार्ग है। नहीं... नहीं, भाई! वह तो सब विकल्प है। वह राग का, बन्ध का कारण है। हो भले, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा!

यहाँ तो '**निजमहिमरतानां शुद्धतत्त्वोपलम्भः भवति**' निज आनन्दस्वरूप में लीनता करनेवाला, अपने पूर्ण स्वरूप को वह प्राप्त करता है। आस्रव जो आवे बीच में। व्रत, भक्ति, पूजा आदि। वह सब विकल्प है, वह तो राग है। आहाहा! वह मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! आहाहा! ऐसा मार्ग है। **आत्मवस्तु उसकी प्राप्ति होती है। 'नियतम्' अवश्य होती है।** है? अवश्य होती है। जिसने आत्मा के पूर्णानन्द के नाथ को एकाग्र करके देखा, अनुभव किया, उसे अवश्य परमात्मपद प्राप्त होगा। आहाहा! भले एक भव या दो भव लगे। भले हो। उसमें कुछ (नहीं)। आहाहा! परन्तु जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, प्रभु! उसमें जिसकी लीनता और एकाग्रता वर्तती है, वह अल्प काल में शुद्ध परमात्मपद को '**भवति**' प्राप्त करेगा। समझ में आया? आहाहा! '**नियतम्**' निश्चय से। अर्थात् निश्चय का अर्थ अवश्य किया। नियत-निश्चय से प्राप्त करेगा, ऐसा कहते हैं। वास्तव में प्राप्त करेगा। इसका अर्थ अवश्य प्राप्त करेगा, ऐसा किया। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कैसे जोर दिया है? कि बीच में माननेवाले ऐसे हैं कि व्रत करते हैं, तपस्या करते हैं, अपवास करते हैं, पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं, दान करते हैं और उससे होता है। उसका निषेध करने के लिये यह बात नियत ली है। समझ में आया? आहाहा!

कैसे करके होती है ? 'भेदविज्ञानशक्त्या' देखो अब। ऐसे **'निजमहिमरतानां'** कहा था। तब कहीं पर से भिन्न पड़ता है या नहीं ? कुछ दूसरी चीज़ है। न हो तो इसमें लीन हो, ऐसा कैसे कहते हैं ? एक में इस ओर है। तो **'भेदविज्ञानशक्त्या' समस्त परद्रव्यों से आत्मस्वरूप भिन्न है...** आहाहा! भले वह पुण्य और पाप के भाव पर्याय में हो, परन्तु वस्तुरूप से जो है, वह चीज़ तो उनसे भिन्न है। आहाहा! समझ में आया ? **परद्रव्यों से... समस्त परद्रव्य...** शब्द से पुण्य-पाप के भाव भी यहाँ तो अभी परद्रव्य में डालना है। स्वचीज की त्रिकाली चीज़ में नहीं है, इसलिए पुण्य-पाप के भाव भी परद्रव्यरूप से है। आहाहा!

नियमसार में तो यहाँ तक लिया कि आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान पर्याय प्रगट हो, उसे भी हम तो परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! ध्यान रखना। क्यों परद्रव्य कहते हैं ? कि जैसे परद्रव्य में से नयी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती, उसी प्रकार वह निर्मल पर्याय प्रगट हुई, मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, परन्तु उसमें से अब नयी पर्याय प्रगट नहीं होती। प्रगट होगी द्रव्य में से। बराबर है ? कहो, कहाँ कहनी बात! शरीर, कर्म, मिट्टी, धूल वह तो परद्रव्य, पुण्य और पाप के भाव भी इस अपेक्षा से परद्रव्य, परन्तु यहाँ तो आत्मा के आनन्द की दशा प्रगट हुई, क्षायिक समकित हुआ, यथाख्यातचारित्र—रमणता प्रगट हुई, परन्तु प्रगट हुई दशा में पर्याय है वह तो। तो पर्याय में से नयी पर्याय उसमें से उत्पन्न नहीं होती। सुमेरुमलजी! न्याय से (बात है)। आहाहा! इसलिए उसे... कहो अब... आहाहा!

अब, वहाँ प्रवचनसार में ऐसा लिया कि पुण्य-पाप के भाव का स्वामी अधिष्ठाता आत्मा है। अरे..रे..! एक ओर यह। उसका अस्तित्व तुझमें है, ऐसा बताने के लिये अधिष्ठाता कहा। परन्तु जब उसे आत्मा की ओर मोड़कर मोक्षमार्ग की ओर मोड़ देना है...

मुमुक्षु : सब बात जो आप बताओ, हमारे करना क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत के पहलू नहीं जानते सब ? उसी प्रकार यह पहलू जानना चाहिए। आहाहा! अपने भाई की बहू हो, उसका भाई हो, तब ऐसे तो उसे साला कहा जाता है। और उसे बहिन दी हो तो वापस बहनोई कहा जाता है। वहाँ उलझन में आता है ? क्या कहा यह ? हमारे यहाँ घर में यह है न ? मनसुख के घर में। यह छोटाभाई की

बहिन होती है। छोटाभाई गुजर गये। और छोटाभाई के घर में उसकी बहिन है। क्या नाम, वह गुजर गये न? एक ओर साला होता है और एक ओर बहनोई होता है। वहाँ उलझ जाता है? हमारे क्या समझना? घर में पत्नी का सगा भाई, इस अपेक्षा से उसे साला कहा जाता है। साला कहते हैं न? और अपनी बहिन दी हो तो फिर उसे बहिनोई कहा जाता है। उसे बहिन दी हो। यह है न, बहुत अभी है। है, सब खबर है। सब खबर है। यह तो हमारे घर में था, मनसुख को।

मुमुक्षु : आपको कहाँ से खबर पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे घर में था न। मनसुख नहीं? हमारी बुआ का पुत्र कुँवरजीभाई भागीदार थे न? उनका मनसुख नहीं अभी? उसके घर में हमारे छोटाभाई की बहिन है और छोटाभाई अभी गुजर गये। वे छोटाभाई उसके बहनोई होते हैं। यह काका-बुआ का अन्तर है। इतना। परन्तु सगे भी होते हैं। अपना साला हो और अपना बहनोई हो। दोनों साथ, ऐसा भी अभी है। बहुत है, भाई! सब देखा हो न! यह तो सुजानमलजी कहते हैं, हमारे क्या समझना? वहाँ साला-बहनोई इस प्रकार से समझे ठीक से। और यहाँ जहाँ दूसरा पहलू आवे, तब कठिन पड़े। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही! जब उसे पुण्य और पाप के भाव का स्वामी / अधिष्ठाता भगवान आत्मा है, ऐसा कहा, वह उसके अस्तित्व में ज्ञान कराया है। वह कहीं पर के अस्तित्व में नहीं है। वह प्रमाणज्ञान में निश्चयनय का ज्ञान कराकर पूर्ण में नहीं, परन्तु सच्ची पर्याय का ज्ञान प्रमाण में इकट्ठा करके उसका स्वामी तू है, ऐसा बताया। वापस जब निकाल डालना है, तब उसमें त्रिकाल में नहीं है, तब कहते हैं कि वह वस्तु मुझमें नहीं। वह मुझमें नहीं (अर्थात्) त्रिकाल में नहीं, ऐसा। पर्याय में है, वह अलग वस्तु है। मेरी त्रिकाली चीज़ है, उसमें नहीं। क्षणिक में हो तो वह वस्तु मुझे छोड़नेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो कल कहा था न? सर्वविशुद्ध में आता है न? धर्म-अधर्म आत्मा है। आता है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान... यह धर्म अर्थात् पुण्य-पाप, यह पुण्य-पाप आत्मा ज्ञान है। ज्ञान अर्थात् आत्मा। वहाँ पुण्य और पाप वह आत्मा है, ऐसा कहा। सर्वविशुद्ध अधिकार।

जैसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्र जो निर्मल आनन्द प्रभु, वह आत्मा है, वैसे पुण्य और पाप का भाव भी आत्मा है, ऐसा वहाँ कहा। वह उसमें है, इतना ज्ञान कराने के लिये (कहा है)। कोई कहे, हमारे पाप और पुण्य है ही नहीं। धर्म हुआ हो धर्मी, अब हमारे पाप और पुण्य जरा भी नहीं, ऐसा माननेवाले को बताने के लिये (कहते हैं)। यदि धर्मी हुआ तो पूर्ण दशा प्रगट होनी चाहिए। और पूर्ण नहीं तो अपूर्ण है तो उसके विरुद्ध भाव अन्दर हैं। समझ में आया? यहाँ तो भाई डोरे-डोरे का न्याय है। एक न्याय पूरा बदले तो पूरा चक्कर बदल जाये, ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

अब यह समयसार ऐसा कहे। कहा था न कल दोपहर को? नहीं? ७३ गाथा। कर्ता-कर्म (अधिकार)। यह पुण्य-पाप का स्वामी कर्म है, आत्मा नहीं। वहाँ ७३ में ऐसा कहा। यह तो वस्तु के स्वभाव में नहीं, इस अपेक्षा से (बात है)। यहाँ वापस कहा कि यह पुण्य-पाप का स्वामी—अधिष्ठाता आत्मा है। प्रवचनसार, दिव्यध्वनि का आया हुआ है। ऐसा पकड़े, एकान्त पकड़ बैठे, यह मार्ग ऐसा नहीं है। सुमेरुमलजी! ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : सब पक्ष समझना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पक्ष। भाई कल बोले थे मालचन्दजी। हमारे चेतनजी ने बात की, हों! तुम्हारी बात याद की है कि मालचन्दजी ऐसा बोले थे कि सब पक्ष जानना चाहिए। चेतनजी हैं न? वे बोले थे। तुम्हारी बात उन्होंने याद रखी। कहा, मैंने भी सुनी थी।

मुमुक्षु : आपको ख्याल था न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मुझे तो ख्याल है। यहाँ तो कोई भी पच्चीस वर्ष पहले बोला हो, उसका ख्याल होता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन। आहाहा! यह भेदविज्ञान कहा। अब भेदविज्ञान के अर्थ दो हो गये। एक ओर राग-द्वेष है तथा एक ओर आत्मा है। इसलिए राग-द्वेष से पृथक् करना है। पृथक् करने का तो दो हो उसमें से पृथक् पड़े। एक में पृथक् (क्या पड़े)? यह महिलायें होती हैं न, महिलायें? वे गेहूँ बीनती हों, गेहूँ। कंकर। उन्हें पूछे

तो ऐसा कहे कि क्या करती हो बहिन? गेहूँ बीनते हैं। गेहूँ बीनते हैं? गेहूँ तो अधिक है। कंकर थोड़े। कंकर बीनते हैं। परन्तु गेहूँ बीनती हूँ, ऐसा बोलने का आशय कि कोई दाल और चावल नहीं अभी। मैं गेहूँ को बीनती हूँ। बीनती तो कंकर है। दूसरी चीज़ नहीं, इतना बतलाने के लिये गेहूँ बीनती हूँ, ऐसा कहा। बाकी गेहूँ बीनती नहीं, कंकर बीनती है। उसकी संसार की शैली में भी यह स्थिति है।

यहाँ कहते हैं कि एकबार सुन। हमने '**निजमहिमरतानां**' कहा। तब कोई दूसरी चीज़ है, उसमें से भिन्न करके निज महिमा में लीन होता है। आहाहा! यह तो अध्यात्म शास्त्र, इसलिए, बापू! आहाहा! **समस्त परद्रव्यों से आत्मस्वरूप भिन्न है, ऐसे अनुभवरूप...** भेदज्ञान की व्याख्या की। राग और पुण्यादि के परिणाम हों, परन्तु उससे यह अनुभव है, वह उससे भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

समस्त परद्रव्यों से आत्मस्वरूप भिन्न है, ऐसे अनुभवरूप... 'शक्त्या' सामर्थ्य के द्वारा। देखा! उसके बल द्वारा। आहाहा! राग से भिन्न पड़ने के बल द्वारा। आहाहा! राग को साथ लेकर (नहीं)। कोई ऐसा कहता है न कि व्यवहार भी मोक्ष का मार्ग है। तो व्यवहार साथ में इकट्ठा आता है? या व्यवहार से भिन्न पड़ता है? वह तो व्यवहार से भिन्न पड़ता है, तब उसे व्यवहार कहा जाता है। उसे व्यवहार को साथ लेकर मोक्षमार्ग में अन्दर में जा सकता है? तब हो गया। यह व्यवहार, वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है। आता है, होता है। धर्मी को बीच में शुभभाव, भक्ति, पूजा, शास्त्रश्रवण, मनन, वह सब विकल्प है, राग है, आता है, परन्तु वह कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा! उससे आत्मा को भिन्न करना है। क्योंकि स्वरूप जो चिदानन्द प्रभु है, वह तो विकार से त्रिकाली भिन्न है। पर्याय में है भले, परन्तु वस्तु जो द्रव्य आनन्दकन्द प्रभु, वह तो कभी विकार में आया नहीं, हीन हुआ नहीं, अपूर्ण रहा नहीं, विकृत में आया नहीं। आहाहा! जिसके गीत गाये जाते हैं, उसकी बात लेनी चाहिए न? आहाहा!

'भेदविज्ञान' समस्त परद्रव्यों से आत्मस्वरूप भिन्न है, ऐसे अनुभवरूप सामर्थ्य... यह अनुभवरूप सामर्थ्य। राग है, परन्तु उससे भिन्न पड़कर आत्मा के अनुभवरूप सामर्थ्य, उसके द्वारा भिन्न किया है। राग को साथ लेकर मोक्ष के मार्ग में राग का साथ है, ऐसा

नहीं है। आहाहा! अभी बड़े पण्डित और बड़े विवाद करते हैं न यह। सोनगढ़वाले व्यवहार से होता है, ऐसा बिल्कुल मानते नहीं। इसलिए निश्चयाभास है। ऐसा (वे) कहते हैं। कहो, भगवान! तू भी एक बार आठ दिन सुन। मध्यस्थता से (सुन तो) तुझे खबर पड़े, भाई! राग है, चाहे तो भगवान की भक्ति का हो। अरे! अन्दर गुण-गुणी के भेद का विकल्प हो। अर्थात्? कि यह आत्मा है, वह अनन्त गुण सम्पन्न है, अनन्त गुण और भगवान द्रव्य एक है—ऐसा जो विकल्प उठाना, वह राग है।

मुमुक्षु : अपना चिन्तवन नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्तवन विकल्प से नहीं करना। अन्तर में एकाग्रता से करना। यह तो अपने बहुत आ गया है। नहीं? एक श्लोक में कहीं आ गया है। विचार, चिन्तन सब पर है। इस ओर आ गया है। किस श्लोक में है? पहले कहीं आ गया है। चिन्तवन नहीं परन्तु इसमें या फिर पहले? कुछ याद इतना सब तो कहीं रहता है? आया-आया। लो! पृष्ठ ९६। पृष्ठ ९६। पुण्य-पाप का अधिकार। पृष्ठ ९६ है न? उसमें देखो। पहली लाईन। ऊपर से पहली।

सम्यग्दृष्टि का है जो यतिपना शुभ क्रियारूप, वह मोक्ष का कारण है, क्योंकि अनुभव—ज्ञान तथा दया-व्रत-तप-संयमरूप क्रिया दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्म का क्षय करते हैं। ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते हैं। अब मुझे तो दूसरा कहना है। **वहाँ समाधान ऐसा है कि—जितनी शुभ-अशुभ क्रिया, बहिर्जल्परूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्यों के विचाररूप अथवा शुद्धस्वरूप का विचार इत्यादि समस्त, कर्मबन्ध का कारण है।** लो! आ गया सहज। नहीं तो कहा कहाँ होगा? ११०। यह वह कर्मधारा और ज्ञानधारा। आते हैं न दो? बड़े दो पृष्ठ भरे हैं। धर्मी को भी कर्मधारा और ज्ञानधारा दो होते हैं। ११० कलश। हो गया न वह तो? क्या कहा यह? इस श्लोक के बड़े दो पृष्ठ भरे हैं। जितना आत्मा स्वयं शुद्ध चैतन्य की दृष्टि करके निर्मल प्रगट किया, वह ज्ञानधारा और जितना अन्दर राग रहे, वह कर्मधारा। एकसाथ दोनों होते हैं। बड़ा लम्बा कथन है। उसमें विरोध नहीं है। विरोध नहीं अर्थात्? कि जैसे मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन में विरोध है, वैसे आत्मधारा—शुद्धधारा और राग—अशुद्धधारा, दोनों होते हैं। जब तक पूर्ण वीतराग नहीं, तब तक दो धारा

होती है। उसमें बहुत है। ११० में बहुत है। ११० कलश में। अपने तो यह दूसरा अभी चलता है। अपने १२८ चलता है। परन्तु ११० में यह सब है। ११० देखो न! देखना है?

मुमुक्षु : ९६ पृष्ठ पर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ९६ पृष्ठ पर। देखो! नीचे है। बीच में भावार्थ है।

एक जीव में एक ही काल में ज्ञान-क्रिया दोनों किस प्रकार होते हैं? समाधान... बीच में है वहाँ। उस अँगुली के पास इतने में। **समाधान ऐसा है कि विरुद्ध तो कुछ नहीं। कितने ही काल तक दोनों होते हैं, ऐसा ही वस्तु का परिणाम है, परन्तु विरोधी जैसे लगते हैं, तो भी अपने-अपने स्वरूप से है, विरोध तो करते नहीं।** कितने काल तक? कि **जितना काल आत्मा के मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम मिटे हैं, आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ है, उसे पूर्वोक्त क्रिया का त्याग बराबर परिपक्वता को प्राप्त नहीं होता...** अर्थात् अभी राग का त्याग पूर्ण हुआ नहीं। भान हुआ है। श्लोक के पूरे दो पृष्ठ भरे हैं। है? **पूर्वोक्त क्रिया का त्याग बराबर परिपक्वता को प्राप्त नहीं होता अर्थात् क्रिया का मूल विनाश नहीं होता। भावार्थ ऐसा है कि जब तक अशुद्ध परिणमन है, तब तक जीव का विभावपरिणमन है।** सम्यग्दृष्टि को भी, वीतरागी मुनि को भी विभाव परिणमन है। वह दुःख का परिणमन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आनन्द भी साथ में है और दुःख भी साथ में है। दोनों में विरोध नहीं है, कहते हैं। हो, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक रागधारा और आनन्दधारा दोनों साथ में होते हैं। मालचन्दजी! ११० श्लोक पढ़ने जैसा है।

एक काल में दोनों होते हैं। एक ही पवित्रता हो, तब तो पूर्ण—केवली हो जाये और मात्र अपवित्रता हो, तब तो मिथ्यादृष्टि हो गया। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ज्ञानी चौथे, पाँचवें और छठवें (गुणस्थान में) उसे आत्मा के आश्रय से परिणति निर्मल की धारा भी बहती है और अभी अपूर्ण है, इसलिए राग और पुण्य-पाप, दया-दान के भाव भी साथ के साथ रहते हैं, तथापि मोक्ष का कारण तो यह एक ही है। वह है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! इसलिए ऐसा ही कोई कहे कि धर्मी को राग होता ही नहीं अर्थात् कि धर्मी को दुःख होता नहीं। (यह) दृष्टि एकदम मिथ्यात्व है। वह दुःख को ऐसा कि वेदता है

तो वह तीव्र कषायी (हो), वह दुःख को वेदता है। झूठ बात है। मुनि भी दुःख को वेदते हैं, अंश को, तथापि कषाय मन्द है और यहाँ तीन कषाय टल गये हैं। समझ में आया? ऐसी बातें है, बापू! वीतरागमार्ग प्रभु का वह है शूरों का, कायर का काम नहीं वहाँ। 'वीर का रे मारग है शूरों का, यह वहाँ कायर का काम नहीं।' उसमें आया नहीं? श्रीमद् में। 'वचनामृत वीतराग के...' आहाहा! 'परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' वहाँ तो जरा कठिन कहा है।

शास्त्र में कहा है कि जितनी शुभभाव की रचना होती है, वह सब नपुंसकता है, हिजड़ापन है। धर्मी को भी। आहाहा! क्योंकि आत्मा में वीर्य / बल नाम का गुण है, उसका कार्य तो स्वरूप निर्मल रचना करना, वह उसका कार्य है। उसमें जितने शुभराग की रचना होती है, उतनी नपुंसकता-हिजड़ापन है। अरर्र! जैसे हिंजड़े को वीर्य नहीं होता, इसलिए पुत्र नहीं है; इसी प्रकार जिसे पुण्यपरिणाम होता है, उसमें धर्म की प्रजा नहीं है। ऐसी बाता है, भगवान!

मुमुक्षु : हिजड़ा तो सेना में भर्ती हो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हिजड़ा फौज में लिया, वे भी वापस फिर गये थे। खबर नहीं। पहले नपुंसक बहुत थे। हिजड़ा बहुत। हिजड़ा नहीं कहते? हमारे रामजीभाई की जो गली थी, वह पावैया की गली थी, वहाँ गोंडल। गोंडल में रामजीभाई। गोंडल में वह पावैया की गली में। (पीछवाड़े रहते थे)। हमारे वहाँ हिजड़े बहुत रहते थे। उमराला में।

मुमुक्षु : पावैया की गली में पिछवाड़े रहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पिछवाड़े रहते होंगे। वहाँ हींजड़े बहुत थे, यहाँ जामनगर। पश्चात् जो मूल पुलिस हो उसे अधिक देना पड़े न? तब तो पच्चीस-पचास तो बहुत कहलाये न? तो वे हिंजड़े आये। विभाजाम के पास। दरबार, विभो दरबार। ऐ साहेब! हमको रखो न, हमको थोड़े पैसे दोगे न तो हम काम करेंगे। हमारा शरीर देखो मोटा। क्योंकि उसका वीर्य पड़े नहीं। हिंजड़ा-पावैया। यह कहे, भाई! तुम्हारा काम नहीं, हों! परन्तु हमको रखो तो सही। हम थोड़े पैसे में रहेंगे। रखे। उसमें वह रिवाज ऐसा था कि

राजा के साथ लड़ाई करना हो तो शाम को गायें होती हैं न, गायें? गाय। ऐसे बाहर जंगल में गयी हो और वह वापस जब मुड़ती हो गाँव में, उसे वह युद्ध करनेवाले उस गाय को वापस मोड़े। इसलिए राजा को समझना कि कोई युद्ध करने आया है। इसलिए गायों को वापस मोड़ा और उन हिंजड़ों को भेजा पुलिस ने। यह बड़े शरीर और बड़े घोड़े और... आहाहा! भागे वे तो बेचारे, हों! यह बड़े पुलिस... उसमें कोई नदी आयी और भेड़ उतरे भेड़? नहीं होती न नदी? उसका किनारा होता है? जरा सी ऐसी नीचे उतरते हुए उसमें कुछ बोला वह पुलिस। कुछ हिंजड़ों की भाषा जैसी भाषा। उसमें उसने सुना, अरे! यह तो हिंजड़े हैं। वापस मुड़े और मुड़े (तो) हिंजड़े भाग गये। गये घर में। विभा तेरा खिचड़ा खाय न गीतड़ा गाय... हमने कुछ कहा नहीं था तुमको? हिंजड़ों! तुम्हारा काम नहीं वहाँ। इसी प्रकार पुण्य के भाव की रुचिवाले हिंजड़ो! तुम्हारा धर्म में काम नहीं। ऐसा है, बापू! जिसे पुण्य होता है, परन्तु उसकी रुचि करनेवाला मिथ्यादृष्टि, पावैया, हिंजड़ा है। आहाहा! ऐई! चन्दुभाई!

मुमुक्षु : धर्मी को पुण्य होता है, वैसा मिथ्यादृष्टि को पुण्य ही कब होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव में धर्म कैसा? धर्म की प्रजा कैसी? पावैया को प्रजा होती है? इसी प्रकार शुभभाव में धर्म की प्रजा होती है? वह तो बन्धन का कारण है।

यहाँ कहते हैं, यह बहुत लम्बे बोल का अधिकार है। अपने तो यहाँ भेदविज्ञान **सामर्थ्य द्वारा... 'तस्मिन् सति कर्ममोक्षो भवति' शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होने पर...** भगवान शुद्ध चैतन्य वस्तु, उसकी प्राप्ति होने पर पर्याय में पवित्रता प्रगट होने पर **कर्मक्षय अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म का मूल से विनाश होता है।** जड़कर्म भी नाश हो जाता है। भावकर्म—पुण्य-पाप के भाव भी नाश हो जाते हैं, तब उसका मोक्ष होता है। आहाहा! लोग बड़ा विवाद लेते हैं। व्यवहार से होता है। नहीं तो तुम्हारा एकान्त है। तुम तो अकेला निश्चय से ही मोक्ष होता है, ऐसा मानते हो। कथंचित् निश्चय और कथंचित् व्यवहार, इसका नाम अनेकान्त। यहाँ प्रभु कहते हैं कि निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। अनेकान्त की व्याख्या समझते नहीं।

'**अचलितम्**' आहाहा! **ऐसा द्रव्य का स्वरूप अमिट है।** आहा! जहाँ पूर्ण

स्वरूप प्रगट हुआ, वस्तु का आदर करके, अनुभव करके पवित्रता के परिणाम को प्रगट करके पूर्ण पवित्रता जहाँ प्रगट हुई, वह अचल है, अब बदलेगी नहीं। ऐसा वापस... वे कहते हैं वैष्णव में? राक्षस का जोर हो और भक्तों को कष्ट पड़े, तब भगवान ऊपर से अवतार धारण करते हैं। वह यहाँ इनकार करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वे लोग ऐसा कहते हैं। बहुभाई। आहा! अरे! परन्तु बीज जल गया। वह चना जल गया, अब वह चना फिर से उगेगा? चना-चना होता है न? सेंकते हैं न, चना? फिर उगेगा? इसी प्रकार जहाँ राग और अज्ञान को जला डाला है और पूर्ण आनन्ददशा हुई, अब उसे बीज उगेगा? भव लेने का भाव आयेगा? नहीं होगा। इसलिए कहते हैं, अटल।

ऐसा द्रव्य का स्वरूप अमिट है। कैसा है कर्मक्षय? आगामी अनन्त काल तक और कर्म का बन्ध नहीं होगा। नाश हुआ, सो हुआ। भविष्य में कभी अब राग का बन्धन या कर्म का बन्ध नहीं होगा। सिद्ध भगवान परमात्मदशा प्राप्त हुए। आहाहा! 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो।' श्रीमद् में आता है। अपूर्व अवसर (काव्य) में (आता है)। 'सादि अनन्त अनन्त समाधि...' आनन्द... आनन्द... आनन्द... पूर्ण आनन्द में रहे। आनन्द का पूर्ण का अनुभव, वह परमात्मदशा। 'अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान सहित जो, अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?' आहाहा! श्रीमद् में यह आया है। आहाहा!

जिन जीवों को कर्मक्षय होता है, वे जीव कैसे हैं? समस्त ऐसे जो अपने जीवद्रव्य से भिन्न सब द्रव्य, उनसे... 'दूरेस्थितानां' देखा! आया। पुण्य और पाप के विकल्प से भी दूर स्थित हुआ, अन्दर में स्थित हुआ। उसे मोक्ष होता है। भेद लिया **'दूरेस्थितानां'**। है सही अन्दर। पुण्य-पाप है, परन्तु उनसे दूर-भिन्न करके स्वरूप में एकाग्र होता है। उससे मुक्ति होती है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१२९

(उपजाति)

सम्पद्यते संवर एष साक्षा-
च्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात्।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्
तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम्।।५-१२९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तद भेदविज्ञानं अतीव भाव्यं' [तत्] उस कारण से [भेदविज्ञानं] समस्त परद्रव्यों से भिन्न, चैतन्यस्वरूप का अनुभव [अतीव भाव्यं] सर्वथा उपादेय है—ऐसा मानकर, अखण्डित धाराप्रवाहरूप अनुभव करना, योग्य है। कैसा होने से? 'किल शुद्धात्मतत्त्वस्य उपलम्भात् एषः संवरः साक्षात् सम्पद्यते' [किल] निश्चय से [शुद्धात्मतत्त्वस्य] जीव के शुद्धस्वरूप के [उपलम्भात्] प्राप्ति होने से, [एषः सवरः] नूतन कर्म के आगमनरूप आस्रव का निरोधलक्षण संवर, [साक्षात् सम्पद्यते] सर्वथा प्रकार होता है। 'स भेदविज्ञानतः एव' [सः] शुद्धस्वरूप का प्रगटपना, [भेदविज्ञानतः] शुद्धस्वरूप के अनुभव से [एव] निश्चय से होता है। 'तस्मात्' तिस कारण, भेदविज्ञान भी विनाशीक है, तथापि उपादेय है।।५-१२९।।

आसोज शुक्ल १२, रविवार, दिनांक - २३-१०-१९७७, कलश-१२७-१३०, प्रवचन-१२९

कलशटीका, १२९ कलश।

सम्पद्यते संवर एष साक्षा-
च्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात्।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्
तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम्।।५-१२९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'तद् भेदविज्ञानं अतीव भाव्यं' शब्दार्थ। **उस कारण से...** उस कारण से अर्थात् पूर्व में कहा था न? कि रागादि भाव हों, परन्तु उनसे भिन्न पड़कर। **'दूरेस्थितानां'** रागादि को दूर रखकर उनसे भिन्न आत्मा के स्वभाव का अनुभव

करना, वह संवर, वह धर्म। **उस कारण से समस्त परद्रव्यों से भिन्न चैतन्यस्वरूप का अनुभव...** संवर अधिकार है न? राग, पुण्य-पाप के विकल्प, वे आस्रव हैं। उनसे भिन्न, राग से भिन्न आत्मा को भाना अर्थात् कि पर के ऊपर जो लक्ष्य है, उस लक्ष्य को छोड़कर चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप प्रभु पर लक्ष्य करना।

समस्त परद्रव्यों से भिन्न... चाहे तो विकल्प देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का हो, या गुण-गुणी के भेद का विकल्प हो, वे सब परद्रव्य है। अपना त्रिकाली स्वभाव नहीं। इसलिए परद्रव्य से **समस्त परद्रव्यों से भिन्न चैतन्यस्वरूप का अनुभव...** भगवान ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर उसके आनन्द का वेदन करना, आत्मा का अनुभव करना अर्थात् कि शान्ति के वेदन में आना। अशान्ति जो पुण्य-पाप के भाव, वे अशान्ति हैं, दुःख है। उनसे भिन्न पड़कर अपने स्वरूप क अनुभव में आना, वह शान्ति है। राग का भाग कुछ सूक्ष्म भी हो, वह दुःखरूप है। उससे भेद करने का अर्थ इतना कि यह राग है, इसलिए उसे मैं छोड़ता हूँ। यह विकल्प लेंगे भेदज्ञान को यहाँ। लक्ष्य ऐसा है, उसे ऐसे छोड़ना। पर से लक्ष्य छोड़कर स्व में आना। उसमें जरा भेदज्ञान का अंश अन्दर राग का अंश रहता है। जैसा केवलज्ञान का स्वरूप है, वैसा भेदज्ञान का स्वरूप नहीं। समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहते हैं कि **समस्त परद्रव्यों से भिन्न चैतन्यस्वरूप का अनुभव...** भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रज्ञाब्रह्म, प्रज्ञाब्रह्म प्रभु। ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् आनन्द, वह उसका कायम असली ध्रुव नित्य स्वरूप है। आहाहा! उसे ध्येय बनाकर अर्थात् कि अखण्ड परिपूर्ण द्रव्य वस्तु है, उसे ध्येय बनाकर। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि यह अखण्ड है, इसलिए उसे ध्येय बनाना। यह भी विकल्प है। परन्तु वर्तमान पर्याय, राग से भिन्न पड़ते हुए अन्दर की ओर जाती है, तब उसका विषय सामान्य रह जाता है। यह सामान्य है और मैं लक्ष्य करता हूँ, ऐसा नहीं। बहुत सूक्ष्म बात, प्रभु! यह ध्रुव है इसलिए... यहाँ तो यह पर्याय वर्तमान जो राग के सम्बन्ध में है... डॉक्टर ने यह पूछा था न कल? कि यह क्या करना? क्या करना? बाहर स्थूल सुना हो। कल वह डॉक्टर आया था न कलकत्ता से? भेद क्यों करना? आहाहा! परन्तु नरम व्यक्ति। नरमाई बेचारे को। यह बात तो... आहाहा!

चैतन्य स्वरूप जिसका स्वरूप अर्थात् ज्ञान-दर्शन-आनन्द उसका रूप, ऐसा जो त्रिकाली प्रभु, उसे राग से भिन्न करके अर्थात् उसकी ओर के लक्ष्य को छोड़कर, भले उसके ख्याल में न आवे कि यह राग है और राग को छोड़ता हूँ। परन्तु उस ओर का लक्ष्य ऐसा है, उसे छोड़कर स्व में, त्रिकाली के लक्ष्य में जाना, वह राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञान है। आहाहा! है?

चैतन्यस्वरूप का अनुभव... 'अतीव भाव्यं' ऐसा शब्द पड़ा है। अर्थ किया कि यह तो **सर्वथा उपादेय है...** आहाहा! अन्तर्मुख ढलने पर परसन्मुखता के लक्ष्य को छोड़ने से जो एकाग्रता अन्दर होती है, वह सर्वथा उपादेय है। एकाग्रता उपादेय है, ऐसा कहते हैं। सर्वथा उपादेय है, ऐसा मानकर... आहाहा! चैतन्यस्वरूपी त्रिकाली प्रभु, वही सर्वथा वस्तु को उपादेय है। तो पर्याय में भी वह पर्याय आयी, वह भी उपादेय है। राग हेय है, ऐसा कहना है। संवर है सही न! समझ में आया? सम्यग्दर्शन हो तो भी अभी राग भाग रहता है। दुःख रहता है समकिती को भी। इसलिए उसे जब चारित्र करना हो, ८२ गाथा में आया था। तुम नहीं थे। कहा नहीं। नियमसार ८२ गाथा। भेद अभ्यास। अभ्यास करते-करते चारित्र होता है। ८२ गाथा है। निश्चय प्रतिक्रमण का अधिकार। अर्थात् क्या? गम्भीर बात है, प्रभु! यह प्रतिक्रमण अर्थात् जो राग है अन्दर, समकिती ज्ञानी को भी अभी राग है। अर्थात् कि दुःख है अभी। उससे वापस मुड़ना और अन्दर में जाना। उसे निश्चयप्रतिक्रमण कहते हैं अथवा वह चारित्र का एक भाग है।

निश्चयप्रतिक्रमण प्रतिक्रमण। रागादि ज्ञानी को भी है, उसकी बात है। पहले भिन्न करके सम्यग्दर्शन किया, तथापि अभी ज्ञानी को भी राग और दुःखदशा है। अब उसे चारित्र करना है। चौथे गुणस्थान में दशा हुई ज्ञान की, परन्तु अब चारित्र की दशा प्रगट करनी है। तब उसे राग के भाग को उस दुःखरूप दशा को ज्ञानी उससे विमुख होकर और उससे भेदज्ञान का अभ्यास करके अन्दर स्थिरता करे, उसे चारित्र कहा जाता है। ऐसी शर्तें और इतनी... आहाहा! समझ में आया?

'अतीव भाव्यम्' कहा है न? सर्वथा उपादेय वस्तु। **ऐसा मानकर अखण्डित धाराप्रवाहरूप अनुभव करना योग्य है।** यह पर्याय। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप जैसे त्रिकाली ध्रुव है, उसके लक्ष्य से राग के लक्ष्य को छोड़कर। क्योंकि राग है, वह

आस्रव है। अर्थात् कि बन्ध का कारण है। उसकी ओर से लक्ष्य छोड़कर और अन्तर के चैतन्यस्वरूप की पूर्ण सन्मुख दृष्टि करके उसकी भावना करना। आहाहा! उसमें एकाग्र विशेष होना। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बात, बापू! बाहर की वस्तु में लोग मोहित हो गये हैं। उन्हें अन्तर वस्तु की महिमा आती नहीं। जिसे पुण्य और पाप के भाव और उसके फलरूप से संयोगी लक्ष्मी आदि, उसका जिसे हृदय में माहात्म्य और महिमा रहती है, उसे भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप की महिमा नहीं होती। आहाहा! और जिसे चैतन्यस्वरूप प्रभु की जिसे महिमा आती है, माहात्म्य आता है, उसे वह पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के फल का माहात्म्य उड़ जाता है। ऐसी बात है।

अखण्डित धाराप्रवाहरूप अनुभव करना योग्य है। इसके दो अर्थ किये थे, नहीं कल? कि एक तो पर सन्मुख के लक्ष्यवाला जो राग, उससे लक्ष्य को छोड़कर स्वरूप में उपयोग जम जाये। मैं एक ध्याता हूँ और ध्यान करता हूँ—ऐसा भी जहाँ विकल्प टूट जाये, उपयोग अन्दर ज्ञानानन्द में जम जाये, इस प्रकार अखण्ड धारा से उपयोग को जमाना। दूसरे प्रकार से विकल्प आवे, परन्तु अन्तर के स्वरूप की जो दृष्टि और ज्ञान की रमणता है, वह कायम टिके, उसे भी अखण्ड धाराप्रवाह कहने में आता है। क्या कहा यह? कल कहा था, नहीं?

'**धारावाहिना**' धारावाही का अर्थ कल किया था। वह यह अखण्डधारा के दो अर्थ इसमें हैं। आहाहा! एक तो पर के ऊपर से लक्ष्य को छोड़कर अन्दर ज्ञाता चिदानन्द सहजानन्द प्रभु मूर्ति, उसमें उपयोग को जोड़ देना और ऐसा का ऐसा कायम रहना, वह अखण्डधारा प्रवाह कहने में आता है। परन्तु यदि उसमें न रह सके तो विकल्प उठे धर्मी-ज्ञानी को भी। चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में, छठवें में। चौथे गुणस्थान में तो वह निर्विकल्प अनुभव अन्तर्मुहूर्त बहुत अल्प काल रहता है। उपयोग अन्दर अधिक नहीं रह सकता। इसलिए उसे राग... तीन कषाय है सही न? इसलिए राग आता है। परन्तु कहते हैं कि उपयोग में राग भले आया, परन्तु अन्दर दृष्टि और ज्ञान की जो प्रगट शक्ति प्रगट हुई है, वह कायम रहे, उसे अखण्ड धारावाही कहने में आता है। समझ में आया? दो प्रकार कहे न? एक उपयोगरूप और एक लब्धरूप।

मुमुक्षु : .... एक लब्धरूप, एक उपयोगरूप।

पूज्य गुरुदेवश्री : (लब्धरूप और) उपयोगरूप। दो प्रकार की अखण्ड धारा। कल कहा था।

मुनि को भी, सच्चे सन्त हैं। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं। जिनकी दशा परमेश्वर पद में सम्मिलित हो गयी है। ओहो! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं— इसमें सम्मिलित दशा ऐसे मुनि को भी सप्तम गुणस्थान की दशा का उपयोग पौन सेकेण्ड से आधा रहता है। क्या कहा, समझ में आया? मुनि हैं। चौथे गुणस्थानवाले का उपयोग तो अन्दर बहुत थोड़ा रहे और विकल्प आवे। शुभ के आवें और अशुभ के हों। पाँचवें गुणस्थानवाले में भी दो कषाय का अभाव है। शान्ति प्रगट हुई है। चौथे गुणस्थान की अपेक्षा विशेष (शान्ति प्रगट हुई है)। तथापि वह विकल्प उसे आता है। परन्तु इन्हें छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रतादि के विकल्प—राग है, उसे छोड़कर स्वरूप के ध्यान में आ जाये सातवें में। उस उपयोग में से हटना नहीं और एक धारावाही रहे तो अल्प काल में केवलज्ञान होता है। परन्तु वह उपयोग मुनि को भी सातवें में कायम बहुत काल नहीं रहता तो एकदम विकल्प आवे, छठवें में नीचे गिर जाये। मुनि को हजारों बार, एक दिन में हजारों बार छठवीं और सातवीं भूमिका आती है। आहाहा! सप्तम दशा उपयोग जम जाता है, वह दशा रहती है परन्तु पौन सेकेण्ड का आधा भाग रहती है। और छठवें में आवे तब पौन सेकेण्ड लगभग उससे (सातवें से) डबल भाग रहे। तब उसे विकल्प आवे। वह प्रमाद है। प्रमाद है न इतना? भले पंच महाव्रत का विकल्प भी प्रमाद है। वह दुःख है, वह आकुलता है। आहाहा! समझ में आया? उसमें से छूटकर उपयोग में जम जाये और वहाँ से न हटे, उसे भी अखण्डधारा प्रवाह कहते हैं। और उसमें से हट गया और विकल्प में आया, परन्तु अन्दर जो विकास हुआ है सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति निर्मल हुई है, वह धारावाही कायम रहे, भले विकल्प आया, उसे भी यहाँ अखण्ड धारावाही कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बातें हैं, भाई! यह तो संवर अधिकार है न! आहाहा!

वह अखण्डित धाराप्रवाहरूप अनुभव करना योग्य है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना योग्य है। आहाहा! वह संवर और वह धर्म और वह मोक्ष का मार्ग है। बीच में राग आवे, होवे, परन्तु वह दुःखरूप

है, आस्रव है, उपाधि है, मैल है। आहाहा! जहर है। शुभोपयोग आवे, वह जहर है। कठिन बात यह! क्योंकि प्रभु आत्मा तो अमृत का सागर, शान्ति का सागर और राग तो अशान्ति है। आहाहा! तथापि कहते हैं कि राग का भाग अशान्ति आता है। परन्तु जितने अंश में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई है, वह ऐसी की ऐसी कायम रहे, तो भी अखण्ड धाराप्रवाह कहने में आती है। समझ में आया? ऐसी बातें—उपदेश।

कैसा होने से? 'किल शुद्धात्मतत्त्वस्य उपलम्भात् एषः संवरः साक्षात् सम्पद्यते' आहाहा! **निश्चय से जीव के शुद्धस्वरूप...** शुद्धात्मतत्त्व है न? शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा, वह शुद्ध द्रव्य के स्वरूप की **प्राप्ति होने से...** यह शुभ-अशुभराग से भिन्न पड़कर शुद्ध स्वरूप भगवान शक्तिरूप से सामर्थ्य स्वभावरूप से है, उसकी पर्याय में प्राप्ति होने से। आहाहा! क्या कहा यह? कि जो पर्याय में अनादि से राग और द्वेष, पुण्य और पाप है, वह तो अकेला मलिन और अकेला दुःख, परन्तु जिसने उस आस्रव में से भिन्न करके स्वभाव की शक्ति की व्यक्तता पर्याय में प्रगट की है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति, उतनी सम्पदा वह शुद्धस्वरूप को पाता है। वह शुद्धस्वरूप को पाता है, उतना संवर और धर्म है। समझ में आया?

'किल शुद्धात्मतत्त्वस्य उपलम्भात् एषः संवरः साक्षात् सम्पद्यते' देखा! **निश्चय से जीव के शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होने से नूतन कर्म के आगमनरूप आस्रव का निरोधलक्षण...** अन्दर में पूर्ण संवर की बात है न? अन्दर में पूर्ण संवर हो गया, इसलिए आस्रव का निरोध हुआ, पुण्य-पाप का भाव रहा नहीं। **निरोधलक्षण संवर...** है। **'साक्षात् सम्पद्यते'** आहाहा! सर्वथा प्रकार से होता है। साक्षात् का अर्थ सर्वथा किया। अन्दर आत्मा में आनन्दस्वरूप में अत्यन्त लीन होने से राग का विकल्पमात्र अबुद्धिपूर्वक भी न रहे, अन्दर में स्थिर हो जाये, उसे साक्षात् संवर होता है। उसे सर्वथा संवर धर्म होता है। यह ऊपर-ऊपर की बात है। सातवें (गुणस्थान) के ऊपर की। सातवें के ऊपर की बात है। पूर्ण की बात है न, पूर्ण की।

मुमुक्षु : अबुद्धिपूर्वक का....

पूज्य गुरुदेवश्री : अबुद्धिपूर्वक राग रहे, तथापि अन्दर सातवें के ऊपर उसे संवर ही कहा जाता है।

मुमुक्षु : सर्वथा....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा अपेक्षा से। सर्वथा संवर बारहवें में होता है। समझ में आया?

अन्दर अबुद्धिपूर्वक राग थोड़ा रहे, परन्तु उसे गौण करके यहाँ साक्षात् संवर हुआ, ऐसा कहने में आता है। परन्तु साक्षात् पूर्ण संवर बारहवें गुणस्थान में वीतराग हो, तब होता है। आहाहा! क्षीणमोह। वहाँ साक्षात् होता है। परन्तु यहाँ भी अपेक्षा से साक्षात् कहने में आता है। आहाहा! अल्प राग को भी गिना नहीं न!

मुमुक्षु : इस अपेक्षा से तो पूर्ण समझना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। चौथे में तो है ही नहीं पूर्ण। संवर पूर्ण चौथे में तो है ही नहीं। पाँचवें में भी है नहीं और छठवें में भी है नहीं।

मुमुक्षु : अपेक्षा लेकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अपेक्षा नहीं। संवर उसका है चौथे में। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का संवर है। उतना है। दूसरे आस्रव को गौण करके ऐसा कहा जाता है (कि) सम्यग्दृष्टि को आस्रव नहीं है।

मुमुक्षु : कहने में आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहने में आता है। वास्तविक में नहीं।

मुमुक्षु : दृष्टि अपेक्षा से....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि अपेक्षा से जितना मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी टला, उसे मुख्य जब आस्रव कहते हैं, तब उसे आस्रव नहीं, ऐसा कहने में आया। परन्तु अभी पुण्य-पाप के भाव हैं, वे आस्रव हैं। उन्हें गौण करके कहा। यह बात नहीं की? ग्यारहवीं गाथा। सुनो! '**ववहारोऽभूदत्थो**' ऐसा परमात्मा कहते हैं कि पर्यायमात्र झूठी है— असत्य है। केवलज्ञान की पर्याय भी असत्य है, संवर-निर्जरा की पर्याय भी असत्य है, मोक्षमार्ग की पर्याय भी असत्य है। वहाँ ऐसा कहा। किस अपेक्षा से? पर्याय को गौण करके असत्य कहा है। अभाव करके असत्य कहा हो तो महा बड़ा अनर्थ हो जाये।

समझ में आया ? यह अर्थ में कहा है न ? पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ में लिखा है, बहुत सरस लिखा है कि भाई ! चौथे में सम्यग्दर्शन में ऐसा कहने में आया कि पर्यायमात्र नहीं। एक द्रव्य ही सत्य है। त्रिकाली द्रव्य सत्यार्थ भूतार्थ आश्रित समकित। भूतार्थ एक समय में पूर्ण वस्तु, वह सत्य है और पर्यायमात्र सम्यग्दर्शन हुआ, वह पर्याय मात्र भी असत्य है। आहाहा !

वह तो गौण (करके कहा), पर्याय का लक्ष्य छुड़ाने के लिये (ऐसा कहा)। पर्याय न हो तो कार्य पर्याय में होता है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय है। अरे ! सिद्ध स्वयं पर्याय है। मोक्ष, वह पर्याय है। वह कहाँ गुण और द्रव्य है। तथापि वहाँ ऐसा कहा कि पर्यायमात्र झूठी है, असत्य है, अभूतार्थ है। आहाहा ! वह गौण करके, त्रिकाली के मुख्य को निश्चय करके (कहा है)। निश्चय को मुख्य करके नहीं। त्रिकाली सत्यार्थ वस्तु को मुख्य करके, निश्चय कहकर सत्य कहा। और पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर असत्य कहा। इसमें कुछ अन्तर पड़े तो बड़ा घोटाला होगा। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो स्पष्ट कहा। इसलिए यह कहा था न ? नाथूलाल शास्त्री थे, मुम्बई में। क्या कहलाते हैं ? नाथूलाल प्रेमी। वे ऐसा कहते, इस गाथा को लेकर, कि समयसार को कुन्दकुन्दाचार्य ने वेदान्त के ढाले में ढाल दिया है। बिल्कुल खोटी बात है। क्योंकि वह पर्याय नहीं, ऐसा कहा न ? पर्याय झूठी है। तो द्रव्य हो गया, अकेला द्रव्य रहा वेदान्त की भाँति। इसलिए उन्होंने ऐसा कहा कि समयसार को कुन्दकुन्दाचार्य ने वेदान्त के ढाले में ढाला है। बिल्कुल झूठी बात है। तुरन्त ही दूसरी गाथा में कहा। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण**' लो ! कहाँ है यह ? वेदान्त में यह कहाँ है ? दूसरी गाथा में यही कहा सीधा। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' ज्ञान-दर्शन-चारित्र आत्मा में स्थिर हुए, ऐसा न लेकर आत्मा उसमें स्थिर, ऐसा लिया। क्योंकि आत्मा जो पर्याय में राग और पुण्य और पाप में था, वह परसमय था—वह अनात्मा था। भगवान पूर्णानन्द का नाथ पुण्य और पाप के भाव में था पर्याय में, तब उसे अनात्मा कहने में आया। वह स्वयं भगवान चिदानन्द प्रभु, अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय में स्थित है, उसे आत्मा कहने में आया है। आहाहा ! शशीभाई ! ऐसे प्रकार हैं।

यहाँ कहते हैं, '**साक्षात् सम्पद्यते**' ऐसा लेना। जहाँ पूर्ण सर्वथा हो, उसे लेना। यह भेदविज्ञान **शुद्धस्वरूप का प्रगटपना...** देखो! वापस कहेंगे भेदविज्ञान नाशवान। क्योंकि अभी अधूरी दशा है न? पूर्ण केवलज्ञान हो, तब पूरा हो जाये। **शुद्धस्वरूप का प्रगटपना (-प्राप्ति)... 'भेदविज्ञानतः' शुद्धस्वरूप के अनुभव से निश्चय से होता है।** आहाहा! '**तस्मात्' तिस कारण भेदविज्ञान भी विनाशीक है...** देखो! क्योंकि अभी अधूरी पर्याय है न? वह पूरी नाश हो जाये, तब केवलज्ञान होता है। आहाहा! उसे भी एक विकल्प कहा है यहाँ। है न? **तथापि उपादेय है।** नाशवान है, विकल्प है, ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : १३० में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, आता है न। विकल्प कहेंगे। स्वयं कहेंगे देखो अभी। यह भेदविज्ञान भी एक विकल्परूप है। १३० में आयेगा। तुरन्त ही १३० है। १२९ (के बाद) तुरन्त। यह पढ़ा जाता है, वही गाथा। १३०। १२९ चलता है न, उसके बाद का। यह १२९ कलश नहीं चलता? बस यह तुरन्त ही दूसरे में है। फिर १३० में। १३० देखो। पीछे।

मुमुक्षु : वहाँ भेदविज्ञान भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक विकल्प है, केवलज्ञान की भाँति... यह ज्ञान है न? पर्याय है न? इसलिए इस अपेक्षा से उसे विकल्प-भेद कहा। वह नाशवान है। केवलज्ञान की भाँति वह कहीं पूर्ण शुद्ध नहीं है, ऐसा। आहाहा! ऐसा है।

निश्चय से **भेदविज्ञान भी विनाशीक है, तथापि उपादेय है।** प्रथम उसे आदरनेयोग्य है। राग से भिन्न करना है और भेदज्ञान से संवर है, इस अपेक्षा से उसे आदरनेयोग्य कहा है। मूल तो अकेले अखण्डानन्द पर दृष्टि करनी है। ऐसे भेद करना, यह नहीं। राग से आत्मा को भिन्न करना, अभी वहाँ विकल्प और भेद रह गया। परन्तु वह भेद ही करना नहीं। फिर तो अखण्डानन्द में अन्दर स्थिर हो जाना, इसका नाम केवलज्ञान है। अरे! अब ऐसी बातें! ऐसा मार्ग है। आहाहा! १२९ हुआ। अब आयेगा। १३०।

कलश-१३०

(अनुष्टुप्)

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते।।६-१३०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'इदं भेदविज्ञानं तावत् अच्छिन्नधारया भावयेत्' [इद भेदविज्ञानं] पूर्वोक्त लक्षण है जो शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसका [तावत्] उतने काल तक, [अच्छिन्नधारया] अखण्डित धाराप्रवाहरूप से, [भावयेत्] आस्वाद करें। 'यावत् परात् च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते' [यावत्] जितने काल में [परात् च्युत्वा] पर से छूटकर, [ज्ञानं] आत्मा [ज्ञाने] शुद्धस्वरूप में [प्रतिष्ठते] एकरूप परिणमे। भावार्थ इस प्रकार है — निरन्तर शुद्धस्वरूप का अनुभव कर्तव्य है। जिस काल सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष होगा, उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे। वहाँ भेदविज्ञान भी एक विकल्प है; केवलज्ञान के समान, जीव का शुद्धस्वरूप नहीं है; इसलिए सहज ही विनाशीक है।।६-१३०।।

कलश - १३० पर प्रवचन

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते।।६-१३०।।

देखो! अब इसमें आयेगा।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'इदं भेदविज्ञानं तावत् अच्छिन्नधारया भावयेत्' (जो भेदविज्ञान) **पूर्वोक्त लक्षण है जो शुद्धस्वरूप का अनुभव,...** राग से भिन्न। आहाहा! तो राग है। उससे भिन्न। परन्तु कोई ऐसा कहे कि समकिती को राग है, वह तो नाश होता जाता है। परन्तु नाश तो एक समय की पर्याय जितना नाश होता है। बाकी पूरा राग तो दसवें गुणस्थान तक रहता है। चौथे गुणस्थान में ऐसा कहे, राग समकिती को आता है, वह नाश करता (जाता है), इसलिए उसे राग नहीं। बिल्कुल झूठी बात है। समझ में आया? वही यहाँ कहते हैं।

पूर्वोक्त लक्षण है जो शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसका उतने काल तक... देखा! **उतने काल तक...** सम्यग्दर्शन हुआ और ज्ञान भी हुआ, इसलिए हो गया आस्रवरहित, ऐसा नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, आनन्द का स्वाद आया, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का आस्रव रुक गया, इसलिए वह पूर्ण आस्रवरहित हो गया और आस्रव नहीं, ऐसा नहीं है। क्या कहा? '**तावत्**' **उतने काल तक अखण्डितधाराप्रवाहरूप से आस्वाद करे।** आहाहा! यह ८२ गाथा नियमसार की। सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव हुआ, ज्ञान हुआ; तथापि अब चारित्र के लिये भेद अभ्यास कहा था न कल? निकाला था न?

नियमसार ८२। '**एरिसभेदब्भासे मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं**' सम्यग्दर्शन है, अनुभव है, सम्यग्ज्ञानी है, परन्तु उसे अभी राग भाग बाकी है, आस्रव है। चौथे गुणस्थान में भी कषाय का राग है, वह उतना आस्रव। पाँचवें गुणस्थान में भी दो कषाय का आस्रव है। मुनि को अभी एक कषाय का आस्रव है। तो कहते हैं कि **ऐसा भेद-अभ्यास होने पर जीव मध्यस्थ होता है, इससे चारित्र होता है।** सम्यग्दृष्टि को भी सम्यग्ज्ञान का अनुभव होने पर भी, उसे अभी मध्यस्थदशा, वीतरागदशा हुई नहीं। उसने राग को भिन्न करके, वहाँ तक उसे भिन्न करना कि जहाँ तक वीतरागता पूर्ण न हो, वहाँ तक। आहाहा! है, पाठ है। '**तावत्**' शब्द पड़ा है न। '**तावत्**' अर्थात्? '**मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं**' **भेद-अभ्यास होने पर जीव मध्यस्थ होता है, इससे चारित्र होता है।** टीका में तो बहुत सरस है। **उसे (चारित्र को) दृढ़ करने के निमित्त मैं प्रतिक्रमणादि कहूँगा।** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! समकिती जीव को भी, आत्मज्ञानी हुए उन्हें भी अभी पुण्य-पाप के भाव का आस्रव है, दुःख है। उसे भिन्न करके स्थिर होने के लिये मैं चारित्र का अधिकार कहूँगा। आहाहा!

चारित्र नहीं, वहाँ अविरतपना चौथे गुणस्थान में है। भले क्षायिक समकित हो। श्रेणिक राजा को। परन्तु अभी तीन कषाय का भाव, वह तो अव्रतभाव है। वह अव्रती है। अविरति सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में होता है। पाँचवें में देशविरति पंचम गुणस्थान होता है। छठवें में सर्वविरति छठवें गुणस्थान में मुनि होते हैं। इसलिए ऐसा ही मान ले

कि चौथा गुणस्थान हुआ, इसलिए अब आस्रव और दुःख है ही नहीं। (यह) एकान्त मिथ्यादृष्टि का पोषण है। दूसरे नय को भूल जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है।

इससे चारित्र होता है। ऐसा कहा न? यहाँ '**तावत्**' कहा यहाँ। यहाँ कहा है न? **उतने काल तक...** यहाँ अपने चलता है उसमे। **अखण्डित धाराप्रवाहरूप से आस्वाद करे।** आनन्द का अनुभव करना और आनन्द की धारा में रहना। जब तक वह पूर्ण आस्रवरहित हो, तब तक उसे अखण्डितधारारूप आनन्द में रहना। आहाहा! समझ में आया? मुनि को अप्रमत्तदशा होती है। सातवाँ गुणस्थान। तो भी अभी अबुद्धिपूर्वक आस्रव-राग है। और राग है, उतना अप्रमत्त है। उपयोग है ध्यान में। परन्तु यहाँ राग है, उसके राग का वेदन भी अन्दर है। उसका उपयोग उस ओर नहीं। आहाहा! उपयोग यदि राग में, वेदन में न हो, तब तो पूर्ण आनन्द का वेदन चाहिए। चन्दुभाई! आहाहा! पूर्ण आनन्द का वेदन जहाँ है, वहाँ तो आस्रव की गन्ध नहीं। परन्तु जहाँ आगे पूर्ण आनन्द का वेदन नहीं, चौथे में तो अल्प आनन्द का वेदन है। चौथे गुणस्थान में समकिती को तो अल्प आनन्द का वेदन है। और तीन कषाय का आस्रव है और उतना दुःख है और उतना उसे बन्धन है।

मुमुक्षु : भक्ति आदि में तो शान्ति दिखती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं धूल में भी नहीं शान्ति। यह तो प्रश्न करते हैं जानने के लिये। ऐसा कि भक्ति में शुभभाव है, वहाँ शान्ति कैसी? वह परसन्मुख का लक्ष्य है। वह भाव आवे सही। परन्तु है अशान्ति, आकुलता।

मुमुक्षु : भक्ति में बाहर के सब भाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारे बीड़ी-तम्बाकू का भूल जाते हैं। परन्तु अन्दर राग नहीं भूल जाता वहाँ। सेठ! बीड़ी भूल जाये। वह भूल जाये। परन्तु ऐसे भगवान है, वह याद है। वह राग होता है, उतना आस्रव है।

भगवान त्रिलोकनाथ तो ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू मेरे सामने देखेगा तो तुझे राग का आस्रव होगा। आहाहा! यह वाणी वीतराग की है। तू तेरे सामने देखकर स्थिर हो जा

तो तुझे वीतरागता होगी। क्योंकि हम तो तेरी अपेक्षा से परद्रव्य हैं। और अष्टपाहुड़ की मोक्ष अधिकार (पाहुड़) में १६वीं गाथा में '**परदव्वादो दुग्गइ**'। प्रभु ऐसा कहते हैं कि हमारे ऊपर तेरा लक्ष्य जायेगा तो भी तेरी गति चैतन्य की नहीं। वह दुर्गति है। राग है, वह दुर्गति है। आहाहा! अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा है। समझ में आया? यह तो वीतराग कहते हैं, बापू! मुख के सामने ग्रास किसे खराब लगे? यह तो कहते हैं कि मेरे सामने देखेगा तो तुझे राग होगा। भले पुण्य का राग परन्तु है राग। और इसलिए '**परदव्वादो दुग्गइ**' प्रभु! सुन एक बार। हमारे सामने देखने से भी तुझे राग की गति होगी, वह चैतन्य की गति नहीं, वह दुर्गति है। आहाहा! अष्टपाहुड़ में है न? आहाहा! मोक्षपाहुड़, हों! मोक्षपाहुड़। १६वीं है। १६वीं।

परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरह इयरम्मि॥१६॥

हे भगवान! परद्रव्य पर यदि तेरा लक्ष्य जायेगा... हम तीर्थंकर हैं। सन्त दिगम्बर मुनि होते हैं। उन पर तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा और वह चैतन्य की गति नहीं, वह तो दुर्गति है। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ**' चैतन्य भगवान के अन्दर जाने पर—एकाग्र होने पर उसे सुगति कहते हैं। कठिन बातें हैं, बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। यह कोई हल्दी की गाँठ से पंसारी हो जाये, ऐसा नहीं है। यह तो चारों ओर के पहलू इसे देखना चाहिए। आहाहा! देखा! **परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है, यह स्पष्ट जानो, इसलिए हे भव्यजीवों! तुम इस प्रकार जानकर स्वद्रव्य में रति करो...** भगवान आनन्द के नाथ में लीन होओ। परद्रव्य में लीनता छोड़ दे। शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं।

यहाँ तो दूसरा बहुत कहा। '**परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विवहकम्मेहिं।**' १३वीं गाथा से शुरु किया है। जितना तेरे द्रव्यस्वभाव से बाहर जा, वहाँ तक तुझे कर्मबन्धन है। चाहे तो देव-गुरु और शास्त्र हो। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हो समवसरण में। अनन्त बार प्रभु की आरती उतारी। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा है। भगवान तीर्थंकर तो वहाँ सदा तीनों काल होते हैं। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा है। प्रत्येक क्षेत्र में।

भगवान के समवसरण में गया था, वाणी सुनी थी, हीरा के थाल, मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल। जय नारायण, ऐसा कहा। परन्तु वह सब शुभभाव है। सुमेरुमलजी! वह शुभभाव। आहाहा! आचार्य को यह कहते हुए समाज समतौल रहेगा या नहीं, उसकी दरकार नहीं। हम तो कहते हैं कि भगवान की ओर तेरा लक्ष्य जाये, वह तेरी पर्याय दुर्गति है। वह चैतन्य की गति ही नहीं। आहाहा! कहो, मीठालालजी! ऐसी बातें करे। यह कुन्दकुन्दाचार्य खुल्ला रखते हैं। समाज की भी दरकार नहीं। नागा बादशाह से आघा।

परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विवहकम्मेहिं।
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स॥१३॥

भगवान का संक्षिप्त में यह उपदेश है, ऐसा कहते हैं। '**एसो जिणउवदेसो**' कि जितना परद्रव्य के ऊपर तेरा लक्ष्य जायेगा, उतना तुझे बन्धन है। स्वद्रव्य में अन्दर जायेगा, उतना तुझे अबन्ध है। सेठ! यह पुस्तक पृष्ठ इस चैत्यालय में भरे हैं न अन्दर? क्या कहलाये वह चैत्यालय कहलाये? पुस्तकें। शुभभाव। दुर्गति। दुर्गति अर्थात् नरकगति, ऐसा नहीं। परन्तु चैतन्य की जो गति है ज्ञानानन्द की, उससे हटकर राग में आया, इस अपेक्षा से दुर्गति। उसका फल नरक और निगोद है, ऐसा कुछ नहीं।

मुमुक्षु : मन्दिर बनावे वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें सब शुभभाव, वह आस्रव है। यह छब्बीस लाख का यह मकान (परमागममन्दिर) बनाया। तब छब्बीस हजार तो लोग आये थे। छब्बीस हजार। लोग समाये नहीं। पण्डाल डाला था। ग्यारह लाख का खर्च था और छब्बीस लाख का मकान (मन्दिर)। सैंतीस लाख का मकान हुआ। परन्तु उसमें क्या था? उससे कहीं धर्म है? वह तो अन्दर में लक्ष्य गया बाहर तो इतना शुभभाव आवे। वह आस्रव है। आहाहा! होता है, जहाँ अपूर्णदशा होती है, वहाँ ऐसा भाव आता है। परन्तु वह भाव है तो बन्ध का कारण। सुमेरुमलजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : यह सब तो आपका स्वप्न साकार हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साकार, परन्तु तो भी वह तो शुभभाव है। दूसरा क्या है?

मुमुक्षु : स्वप्न था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। (संवत्) १९७१ के वर्ष में स्वप्न आया था। ७१-७१। .... पूरे आकाश में शास्त्र... पाटिया। पाटिया है न? इतने-इतने लम्बे बड़े और चौड़े शास्त्र लिखे हुए। वे पूरे आकाश में ऐसे। ऐसे से देखो तो ऐसे तक का... ऐसा स्वप्न आया था। पूरे आकाश में शास्त्र ही... शास्त्र। पृथक्-पृथक्। वह इतना चौड़ा और इतना ऊँचा, ऐसे-ऐसे पूरे आकाश में। इतने-इतने पाटिया। यह सहज बना। आहाहा! और एक बार पूरे आकाश में चन्द्र देखा पूरे आकाश में। छठवीं का चन्द्र होता है न? छठवीं का? छठवीं का। दूसरी... ऐसे ऐसा लाखों-करोड़ों ठेठ यहाँ से ऐसे और यहाँ से बाहर खड़ा था खुल्ला। पूरे आकाश में। चन्द्र... चन्द्र... लाखों-करोड़ों चन्द्र। छठ के जितने पूरे आकाश में चन्द्र। ... आहाहा! यह वाणी वीतराग की।

मुनि हैं, छठवें गुणस्थान में। तीन कषाय का अभाव (होकर) वीतराग... वीतराग... वीतराग... प्रगट दशा हुई है, वहाँ चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ जितना पंच महाव्रत का विकल्प आता है, उतना आस्रव और दुःख है और उतना बन्धन में है। आहाहा! अपने कहा नहीं था? समयसार में कहा था। नाटक नहीं? समयसार नाटक, इसमें से बनाया। मोक्ष (अधिकार) ४०वाँ बोल है। ४०वाँ बोल (काव्य)। देखो!

ता कारन जगपंथ इत, उत सिव मारग जोर।
परमादी जगकौं धुकै, अपरमादि सिव ओर॥४०॥

'**ता कारन जगपंथ इत**' जितना विकल्प उठा मुनि को राग, पंच महाव्रत का, भक्ति का, वह जगपन्थ है। बनारसीदास, मोक्ष अधिकार का ४०वाँ बोल। आहाहा! '**ता कारन जगपंथ इत**' यह जगपन्थ है। राग, वह संसारपंथ है। आहाहा! '**उत सिव मारग जोर**' भगवान अन्दर आनन्द के नाथ में जितना लीन हो, वह शिवमार्ग है। '**परमादी जगकौं धुकै**' मुनि भी सच्चे सन्त हैं, उन्हें पंच महाव्रत के परिणाम आवें, वह प्रमादी है। वह प्रमादी '**जगकौं धुकै**' जग में झुक गया है वह तो। आहाहा!

मुमुक्षु : जग में?

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार। यह राग, वह संसार है उतना। आहाहा! शान्तिभाई!

ऐसी बातें हैं। बापू! यह तो तीन लोक का नाथ। वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र अनन्त तीर्थंकर हुए। लाखों केवली महाविदेह में विचरते हैं। अभी बीस तीर्थंकर हैं। अनन्त तीर्थंकर होंगे, उनकी यह एक आवाज है। समझ में आया? आहाहा!

क्या कहा? देखो! कि **शुद्धस्वरूप का अनुभव उसका उतने काल तक...** करनेयोग्य है। **अखण्डित धाराप्रवाहरूप से आस्वाद करे...** आहाहा! ऐसा कि प्रथम सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए बस हो गया सब, ऐसा नहीं है, बापू! आहाहा! समझ में आया? **उतने काल तक अखण्डित धाराप्रवाहरूप से आस्वाद करे...** कितने काल? **'यावत् परात् च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते'** आहाहा! **जितने काल में पर से छूटकर आत्मा शुद्धस्वरूप में एकरूप परिणमे।** वहाँ तक अन्दर में रहनेयोग्य है। बाहर में निकलनेयोग्य नहीं है। १३०। १३० कलश। आहाहा! **'यावत्'** उतने काल तक। जब पूर्ण राग से रहित होकर स्वरूप में स्थिर हो जाये, तब तक उसे राग से भिन्न पड़कर अभ्यास करना। आहाहा! समकित हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ; इसलिए बस हुआ। बापू! अभी तो अनन्तगुणी दशा बाकी है। अभी तो उसे चारित्र और फिर केवलज्ञान, शुक्लध्यान, वह तो बहुत बाकी, बापू! आहाहा! समझ में आया?

जितने काल में पर से छूटकर... पर अर्थात् आस्रव। राग से छूटकर जब तक पूर्ण स्थिर न हो, तब तक उसका धारावाही अनुभव करना। आहाहा! समझ में आया या नहीं इसमें? **'यावत्'** कहाँ तक? कि जहाँ तक आत्मा राग से बिल्कुल राग के अंश से हटकर पूर्ण यहाँ न हो, तब तक उसे आत्मा का ध्यान करना। आहाहा! ऐसा मार्ग है भाई! **पर से छूटकर...** पर अर्थात् आस्रव। संवर अधिकार है न? अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठे, वह आस्रव है। मुनि को आस्रव है, पाँचवें गुणस्थान में आस्रव है, चौथे में आस्रव है। चौथे में दुःख है, पाँचवें में दुःख है, छठवें में दुःख है। आहाहा! उस दुःख से, **पर से छूटकर आत्मा शुद्धस्वरूप में एकरूप परिणमे।** एकरूप। फिर जरा भी संग रहे ही नहीं आस्रव। एकाकार अन्दर में हो जाये और आस्रव न रहे, तब तक भेदज्ञान भाना। **'भावये'** है न पाठ?

'भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया' कहाँ तक राग से भिन्न करके भेदज्ञान

करना ? कि जब तक पूर्ण स्थिर न हो और राग का एक अंश न रहे, तब तक भेदज्ञान करना। मालचन्दजी ! यह तो समझ में आये ऐसी भाषा है। आहाहा ! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर का यह हुकम है। आहाहा ! प्रभु ! तू जब तक तेरे स्वरूप में पूर्ण स्थिर न हो और राग का एक अंश भी न रहे, तब तक ध्यान में भेद अभ्यास कर। आहाहा ! समझ में आया ? यह सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए सन्तुष्ट हो जाये कि बस, हो गया हमको। बापू ! अभी तो देरी है, भाई ! और सम्यग्दर्शन में भी जब तक दुःख और आस्रव है, उसे न माने तो वह सम्यग्दृष्टि ही नहीं है। क्योंकि जब तक अन्तर आनन्द का अनुभव आया, परन्तु उसके साथ अपूर्ण आनन्द है, इसलिए दुःख का वेदन उसके ज्ञान में आता है। अज्ञानी को तो आनन्द भी नहीं और कुछ है नहीं। दुःख है परन्तु वह दुःख है, उसकी भी तुझे खबर नहीं, भाई ! समझ में आया ? आहाहा !

आत्मा अपने आनन्दप्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु, उसके अनुभव में आया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश—स्वरूपाचरण हुआ, तब उसे ख्याल आया कि ओहोहो ! यह तो आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण आनन्दस्वरूप है। उसका नमूना आया, उस नमूना से जाना कि यह आनन्दस्वरूप है। और ऐसा जाना कि अरे ! अभी आनन्द के साथ यह राग-दुःख है। उसे आनन्द के साथ तुलना की कि यह तो दुःख है। इससे दो बात हुई। एक तो सम्यग्दर्शन का अनुभव होने पर उस आनन्द का अंश और सम्यग्ज्ञान का अंश आने पर यह पूरा आत्मा पूर्ण आनन्दमय है, उस नमूने से पूरा जाना। भाई ! आहाहा ! और उस नमूने में अभी वापस साथ में दुःख वेदन में आता है। आहाहा ! वह भी तब जानने में आया ? वरना तो अज्ञान में तो दुःख का वेदन है, यह भी कहाँ खबर है। आहाहा ! मोटी गाँठ हो न रुई की ? धोकड़ा को क्या कहते हैं ? गाँठ। बोरा। थोड़ा नमूना निकाले, तब ख्याल आवे कि यह पूरी गाँठ ऐसी रुई की है। और उसके साथ दूसरे कपास को मिलावे कि यह तो अभी मैला है। इसके साथ मिलान करे तो यह मैला है। इसके साथ मिलान करे तो पूर्ण है। समझ में आया ? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आसोज शुक्ल १३, सोमवार, दिनांक - २४-१०-१९७७, कलश-१३०-१३१, प्रवचन-१३०

कलशटीका, १३० कलश चलता है। १३०। क्या कहते हैं? देखो!

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते।।६-१३०।।

'**इदं भेदविज्ञानं तावत् अच्छिन्नधारया भावयेत्**' क्या कहते हैं? जिसे आत्मा का कल्याण करना हो और धर्म करना हो तो '**इदम्**' यह आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु, इस शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसका अनुभव करना, वह धर्म और मोक्ष का मार्ग है। आत्मा को पुण्य और पाप के विकारी भाव हैं, उनसे अपनी चीज़ अन्दर भिन्न है, उसका अनुभव करना और पुण्य-पाप के भाव से भेद करना, यह मोक्ष का मार्ग और धर्म है। आहाहा!

शुद्ध स्वरूप का अनुभव, उसका उतने काल तक करना... कितने काल तक करना? आहाहा! '**अच्छिन्नधारया**' अन्तर आनन्द का अनुभव (उसमें) भंग न पड़े, छेद न पड़े, अन्तर आनन्द की धारा में अनुभव करने में राग का विकल्प न रहे, शुभराग रहता है, वह राग न रहे, तब तक आत्मा का अनुभव अन्दर करना। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है। '**अच्छिन्नधारया' अखण्डितधाराप्रवाहरूप से... 'भावयेत्**' अर्थात् यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसका शरीर, वाणी, मन, वह तो जड़ है, उनसे तो भिन्न है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव आस्रव हैं और क्रोध, मान, माया, हिंसा, झूठ, वह भी पापास्रव है, दोनों से भिन्न करके, अपने आत्मा का आस्वाद लेना। कठिन बात है।

अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान, जिनेन्द्रदेव का हुकम यह है कि तुझे कल्याण करना हो तो यह पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् राग से अपनी चीज़ जो आनन्दस्वरूप का अनुभव करके आस्वाद लेना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेना। यह क्या है? जो पुण्य और पाप के भाव, राग का स्वाद था, वह विकार का स्वाद था, वह दुःखरूप था। उससे भिन्न करके निज आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध ज्ञायक चैतन्यघन है,

उस ओर की सन्मुखता करके तथा पुण्य-पाप के विकल्प से विमुख होकर,... आहाहा! आत्मा का अनुभव—अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेना, इसका नाम परमात्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यह यहाँ तक करना, '**यावत्**', '**यावत्**' शब्द पड़ा है न? कहाँ तक ऐसा करना? '**यावत् परात् च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते**' **जितने काल में पर से छूटकर...** पहले सम्यग्दर्शन में भी राग से छूटकर आत्मा का वेदन करना, तथापि वहाँ रागादि रहते हैं। राग से भिन्न पड़ा, परन्तु अभी राग बाकी रहता है। तो फिर भी राग से भिन्न पड़कर स्वरूप के आनन्द की स्थिरता का स्वाद लेना। ऐसी बात अब। क्या कहते हैं? देखो! **जितने काल में पर से छूटकर...** कोई भी विकल्प है—दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के राग से जब तक पूर्णरूप से छूटे नहीं, तब तक अनुभव करना। कहो, सेठ! ऐसी बाते हैं।

संवर अधिकार है। संवर अर्थात् विकार का उत्पन्न नहीं होना और निर्विकारी दशा का उत्पन्न होना, इसका नाम संवर कहा जाता है। यह संवर, पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे आस्रव हैं, उनसे भिन्न करके चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु के सन्मुख होकर, उसका अनुभव—आनन्द का अनुभव करना। आहाहा! यह संवर है—यह धर्म है—यह राग से छूटने का उपाय है। भाव तो सूक्ष्म है, प्रभु! भाषा तो सादी है। बालचन्दजी! आहाहा!

'**तावत्**', '**यावत्**' दो शब्द पड़े हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्दसागर, चैतन्यस्वभाव और आनन्दस्वभाव से भरपूर प्रभु आत्मा है। आहा! क्या कहते हैं? छलोछल कहते हैं। क्या कहते हैं? लबालब भरा है। देखो! भाई! प्रभु! अन्दर जो आत्मा है न? वह अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरपूर है। उसमें अपूर्णता नहीं और विपरीतता भी नहीं। सूक्ष्म मार्ग है, भाई! भगवान।

भगवान जिनेन्द्र त्रिलोकनाथ सौ इन्द्रों के बीच परमात्मा फरमाते थे, वे सन्त वहाँ से सन्देश लाकर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया? सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं। तीर्थंकर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ। करोड़ पूर्व का तो आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार, सत्तर लाख और छप्पन हजार करोड़ वर्ष (जाते हैं), इतने

वर्ष का एक पूर्व। ऐसा करोड़ पूर्व का प्रभु का आयुष्य है। भगवान महाविदेह में विराजते हैं। बीसवें तीर्थंकर यहाँ हुए, तब प्रभु ने दीक्षा ली है और फिर तुरन्त केवलज्ञान प्राप्त किया है। अरबों वर्ष से विराजते हैं। अभी अरबों वर्ष विराजेंगे। वहाँ पहले सन्त कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि संवत् ४९ में गये थे, आठ दिन वहाँ रहे थे, सुनकर आये और शास्त्र बनाये। यह तो भगवान के सन्देश हैं। आहाहा! क्या (सन्देश लाये)?

तेरी चीज़ अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से लबालब भरी है, उस ओर झुकाव करके और विकार पुण्य-पाप की परिणति की ओर का झुकाव छोड़ दे। पुण्य-पाप के भाव से विमुख होकर निज स्वभावसन्मुख होकर अपना अनुभव तब तक करना कि जब तक विकल्प से पूर्णरूप से छूट जाये, तब तक अनुभव करना। ऐसी बात है। इसमें क्या समझना साधारण लोगों को? यह व्रत करो और अपवास करो और यात्रा करो... वह तो सब विकल्प है, राग है।

यहाँ तो संवर अधिकार चलता है। कहते हैं कि '**तावत्**' तब तक '**यावत्**' जब तक पूर्ण विकल्प से रहित न हो, तब तक अनुभव करना। आहाहा! पहले सम्यग्दर्शन में भी शुभ-अशुभराग जो आस्रव है, उससे भिन्न पड़कर आत्मा का अनुभव किया और आत्मा के आनन्द का थोड़ा स्वाद भी आया, परन्तु जब तक पूर्ण आनन्द का स्वाद न आवे, तब तक राग से भिन्न पड़कर अनुभव करना। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ, इसलिए सब आस्रव है ही नहीं ऐसा नहीं है। आत्मा का सम्यक् भान हुआ, मैं शुद्ध चैतन्य ज्ञाता आनन्दकन्द हूँ, ऐसा स्वाद आया तो भी आस्रव से सर्वथा रहित हो गया, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव दोनों आस्रव हैं, मैल हैं, विकार हैं, दुःख हैं। तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि जब तक यह पूर्ण राग से भिन्न अनुभव न करे, तब तक अनुभव में रहना। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का कहा हुआ पन्थ-मार्ग, यहाँ दो शब्द प्रयोग करके ऐसा कहा कि तब तक राग से भिन्न करके अनुभव करना कि जब तक पूर्ण राग से रहित न हो जाये तब तक। समझ में आया? है न अन्दर? पहले यह आया न? जहाँ तक। बस। सम्यग्दर्शन पहले में पहले जो पुण्य और पाप के विकल्प व्यवहार है, उससे भिन्न

पड़कर, एकत्वबुद्धि तोड़कर राग और आत्मा का स्वभाव, अनादि से एकत्वबुद्धि है, वही मिथ्यात्वरूपी आस्रव है। आहाहा! यह त्रिकाली भगवान स्वभाव और राग, पहले एकता तोड़कर स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप का अनुभव करना। एकता तोड़कर परन्तु पश्चात् भी अभी राग रहेगा। एकता तोड़ी है। अस्थिरता नहीं तोड़ी। समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म है, प्रभु! वीतरागमार्ग... और वह मार्ग अन्यत्र कहीं दिगम्बर के अतिरिक्त यह पद्धति और यह पन्थ कहीं नहीं है। समझ में आया? दिगम्बर जैनधर्म, वह सनातन जैनधर्म है। आहाहा! उसमें यह बात है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! वैष्णव में भी नहीं है। उसमें प्रमुख थे। बात तो ऐसी है। यह तो भाग्यशाली है। ऐसा मार्ग। आहाहा!

'यावत् परात् च्युत्वा' 'यावत् परात् च्युत्वा' जब तक राग से पूर्ण च्युत होकर स्वरूप में स्थिर न हो, तब तक अनुभव करना। बालचन्दजी! सम्यग्दर्शन हुआ और ज्ञान हुआ, इसलिए अब आस्रव है ही नहीं, (ऐसा नहीं है)। अथवा आस्रव कहो या दुःख कहो, दुःख है ही नहीं—ऐसा नहीं है। राग दुःख है और उससे आत्मा के स्वभाव की एकता, वह मिथ्यात्वभाव है। क्यों? कि भगवान आत्मा का स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द है और राग, वह दुःख है। तो आनन्द के साथ दुःख की एकताबुद्धि, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? यह राग और दुःख और भगवान आनन्द की एकताबुद्धि तोड़कर अकेले आनन्द का स्वाद आंशिक आया, परन्तु जब तक पूर्ण राग से भिन्न पड़कर—पूर्ण दुःख की दशा से भिन्न पड़कर, पूर्ण आनन्द की पूर्ण दशा न हो, तब तक भेद अभ्यास करना। राग से भिन्न करने का अभ्यास और स्वभाव में स्थिर होने का अभ्यास करना। आहाहा! अब इसमें निवृत्ति कहाँ थी? बीड़ी, तम्बाकू के कारण निवृत्ति कहाँ थी? सेठिया का-बड़े का हम दृष्टान्त देते हैं न, दूसरे सभी को सबको (लागू पड़ता है)। आहाहा!

अरे! प्रभु! तुझे तेरी चीज़ की प्राप्ति करनी हो तो उसमें परचीज़ का तो अभाव है। वह तो है, परन्तु पुण्य-पाप के भाव जो आस्रव है, उसका भी वस्तु में तो अभाव है, प्रभु! वह तो आनन्दकन्द प्रभु अखण्डानन्द सच्चिदानन्द प्रभु है। यहाँ कहते हैं कि वह पुण्य-पाप के आस्रव से रहित वस्तु है परन्तु अभी तक सहित मानी थी। वह राग और स्वभाव दोनों एक है, ऐसा माना था, वही मिथ्यात्व था, वह संसार था और परिभ्रमण का मूल था।

मुमुक्षु : मान्यता की....

पूज्य गुरुदेवश्री : मान्यता, यही बड़ा संसार है। यह मिथ्यात्वभाव-मान्यता-राग और मैं स्वभाव, दोनों एक हैं (यही संसार है)। क्योंकि स्वभाव तो आनन्द और ज्ञायक चिदानन्द पूर्ण स्वरूप है और राग तो क्षणिक एक समय की विकृत अवस्था है। वे दोनों एक हैं, ऐसी मान्यता, वह मिथ्यादर्शन शल्य है। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा! जगत से तो भिन्न है। ऐसी बात है। जगत जिस प्रकार कहता है, मानता है, वह तो सब खबर है न?

परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि में आया। 'मुख ऊँकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे' 'मुख ऊँकार ध्वनि सुनि' तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, उनके 'मुख उऊँकार ध्वनि सुनि' उनकी ऊँ आवाज निकलती है। ऐसी (छद्मस्थ जैसी) भाषा उन्हें नहीं होती। क्योंकि वे वीतराग हैं। एकाक्षरी भाषा होती है। राग है, वहाँ तक भेदवाली भाषा निकलती है। आहाहा! 'मुख ऊँकार ध्वनि सुनि, अर्थ गणधर सन्त विचारे, रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' है। आहाहा! यह संशय-मिथ्यात्व। 'रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे। तासु शारदा भक्ति उर आण।' उसकी भक्ति करके उसका भजन गा, ऐसा कहते हैं। बनारसीदास की बनायी हुई स्तुति है। 'जिनादेश ज्ञाता जिनेन्द्रा विख्याता, विशुद्ध प्रबुधा नमो लोकमाता।' यह वाणी। 'दुराचार दुर्नेह हरे शंकरानी' शंकर अर्थात् सुख। 'नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी।' 'नमो देवी वागेश्वरी' अर्थात् वाघेश्वरी नहीं। वह बाघ पर बैठे, वह नहीं। वाकेश्वरी— वाणी में ईश्वर। समझ में आया? आहाहा! उसमें से आचार्यों ने शास्त्र रचे, उसमें का यह शास्त्र है।

उसमें यहाँ ऐसा कहते हैं, प्रभु! भगवान रूप से ही बुलाते हैं। आहाहा! जैसे माता बालक को पालने में झुलाती है तो उसके गुण गाती है। क्या? कि मेरा बेटा स्याना और समझदार है और मामा के घर जाता है। ऐसा गाते हैं न? गाली दोगे तो नहीं सोयेगा। मेरा रोया, सो जा। (ऐसा कहेंगे) तो नहीं सोयेगा। ध्यान रखो। किसी समय करके देखना। उसके गीत गाये कि मेरा बेटा स्याना है, पाटे पर बैठकर नहाता है, ऐसा हमारे गुजराती में आता है। तो सो जायेगा। उसकी माँ उसकी महिमा सोने के लिये

करती है। तीन लोक के नाथ वीतराग आत्मा को जगाने के लिये गीत गाते हैं। जाग रे जाग, नाथ! चैतन्यमूर्ति प्रभु, वह राग की एकता में-निद्रा में तू सोता है, तुझे शोभता नहीं नाथ! आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव हो, परन्तु है वह राग। राग और स्वभाव की एकताबुद्धि है, उसे पहले तोड़ डाल। आहाहा! भेदज्ञान से उसे भिन्न कर। आहाहा! अथवा उस राग का लक्ष्य छोड़कर चैतन्य पूर्णानन्द का लक्ष्य करके, भेदज्ञान करके मिथ्यात्व का त्याग कर दे। और पश्चात् भी जब तक अभी चारित्र का दोष—राग और पुण्य-पाप रहता है, मुनि को भी पंच महाव्रत का राग रहता है... आहाहा! उससे भी भिन्न पड़कर, स्वरूप में '**तावत्**' जब तक राग से पूर्णरूप से विरक्त न हो, तब तक अनुभव करना। आहाहा! समझ में आया? भाव तो सूक्ष्म है। भाषा तो सादी है। अरे! अनन्त काल में कभी किया नहीं। व्रत, नियम, अपवास, यात्रा और भक्ति, बस वह धर्म, ऐसा अज्ञान में मान लिया। यह आस्रव है, राग है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि राग से '**यावत् परात् च्युत्वा**' **जितने काल में पर से छूटकर आत्मा शुद्धस्वरूप में एकरूप परिणमे।** आहाहा! दो रूप राग की जो अस्थिरता थी, मुनि को भी है, उसे भी छोड़कर, मैं एकरूप चैतन्य हूँ, तब तक भेदज्ञान करना। आहाहा! बालचन्दजी! भाषा तो सादी है। अब आज तो हिन्दी आया न! मार्ग, प्रभु! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव का मार्ग—धर्म कोई अलौकिक है। लौकिक रीति के साथ मिलान नहीं होता। आहाहा! कहते हैं, **शुद्धस्वरूप में एकरूप परिणमे।** जब तक भगवान परमात्मा शुद्ध स्वरूप एकरूप (परिणमे)। विकल्प बिल्कुल रहे नहीं, दूसरा विकल्प रहे नहीं। क्योंकि एकड़े एक और बिगड़े दो। एकरूप में से विकल्प में जाता है तो बिगाड़ होता है। आहाहा! बिगाड़ कहते हैं? हिन्दी में बगाड़ कहते हैं? बिगाड़ होता है। आहाहा! जब तक एकरूप न हो, तब तक राग से भिन्न करना। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—निरन्तर शुद्धस्वरूप का अनुभव कर्तव्य है। आहाहा! परमात्मा आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मस्वरूप जिनस्वरूप। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' यह भगवान आत्मा जिनस्वरूपी विराजता है। 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन, मतमदिरा के पान सों मतवाला समझै न।' मत की मदिरा के-शराब के पीने से वह मतवाला गहल-

पागल आत्मा को समझते नहीं। आहाहा! अपने मत के आग्रह से (समझते नहीं)। 'घट घट अन्दर जिन बसे' घट-घट अन्दर जिन परमात्मस्वरूप विराजता है। आहाहा! 'घट घट अन्तर जैन।' जैन का अर्थ (यह कि) राग से भिन्न पड़कर अपनी दृष्टि और अनुभव किया, वह राग को जीता, वह जैन है। समझ में आया? पश्चात् भी जितना अस्थिरता का राग रहता है, वह चारित्रदोष है। उसे भी भिन्न करके जब तक स्थिरता पूर्ण एकरूप न हो, तब तक अनुभव करना। आहाहा! है या नहीं अन्दर?

निरन्तर शुद्धस्वरूप का अनुभव कर्तव्य है। आहाहा! **जिस काल सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष होगा...** जिस काल में सकलकर्मक्षयलक्षण—चार घातिकर्म है न? मोक्ष होगा, **उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे।** पश्चात् राग का विकल्प नहीं रहेगा। दया, दान, व्रत, या काम, क्रोध आदि विकल्प फिर रहेगा ही नहीं। कर्म का नाश होगा तो सकल विकल्प का नाश होगा। अभी सम्यग्दर्शन में सकल विकल्प का नाश नहीं हुआ। विकल्प से एकताबुद्धि का नाश हुआ। समझ में आया? परन्तु अभी चारित्रदोष है। पाँचवें, छठवें में अभी ठेठ दसवें तक थोड़ा राग है। तो कहते हैं कि **उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे।** अन्दर के आनन्द में लीन होने से और चार कर्म का नाश होने से सकल विकल्प छूट जायेंगे। कोई विकल्प रहेगा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : पाँचवें और सातवें....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच, छह और सात सबमें अभी राग-विकल्प है। सातवें में भी अबुद्धिपूर्वक का राग है। यहाँ तो कहते हैं कि वह राग, जब तक एक विकल्प भी रहे, तब तक अनुभव करना और चार घातिकर्म का नाश करना। ऐसी बात है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, इसलिए पूर्ण हो गया और हमारे आस्रव और दुःख है ही नहीं, ऐसा नहीं है। उसे तो एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं। कल रात्रि में बताया था। नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक में बताया था। है यहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक? गुजराती है? यह लगता है। रात्रि में यह पुस्तक नहीं थी। सातवें अधिकार में है। देखो!

प्रश्नकार कहता है, **श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं तथा प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं, इस प्रकार हम दोनों नयों को अंगीकार करते हैं?**

उत्तर :— **ऐसा भी नहीं बनता, क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप तथा व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है।** जब तक पाँचवें, छठवें में आस्रव है तो व्यवहार है, ऐसा श्रद्धान करना। यह आस्रव है, वह व्यवहार है। समझ में आया? **एक ही नय का श्रद्धान होने से तो एकान्तमिथ्यात्व होता है;...** २५५ पृष्ठ पर है। यह पढ़ा हुआ... २५५ पृष्ठ। यहाँ थे, उन्हें रात्रि में कहा था।

एक ही नय का श्रद्धान होने से... इसका अर्थ क्या? व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है परन्तु व्यवहारनय है, जब तक पूर्ण न हो, तब तक आस्रव-राग, व्यवहार है, ऐसी श्रद्धा न करे तो एकान्त हो जाता है और व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा माने तो भी एकान्त हो जाता है। व्यवहार तो आस्रव है। आस्रव से निश्चय संवर होता है—धर्म होता है, ऐसा तो नहीं है। यहाँ तो दो नय की श्रद्धा बराबर रखना। निश्चय की निश्चयरूप और जब तक आस्रव है, दया, दान, व्रत, भक्ति, गुण-गुणी के भेद का शुभ विकल्प, वहाँ तक आस्रव है, ऐसी श्रद्धा रखना। एक ही नय की श्रद्धा करने से, दूसरे नय की श्रद्धा नहीं करने से एकान्त मिथ्यात्व होता है। गुजराती में २५५ पृष्ठ है। हिन्दी में कितना पृष्ठ था? २५०। हिन्दी है यहाँ? हिन्दी नहीं, नहीं? नहीं।

यहाँ क्या कहा? कि **निरन्तर शुद्धस्वरूप का अनुभव कर्तव्य है। जिस काल सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष होगा, उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे।** विकल्प। अब फिर भेदज्ञान का विकल्प भी वहाँ नहीं रहता। यह दूसरा बोल। दो बोल कहे। दो क्यों कहे? कि **जिस काल सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष होगा, उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे।** अन्तर आनन्द में जहाँ आया तो विकल्प की उत्पत्ति होगी ही नहीं। वह छूट जायेगा, ऐसा कहा। आहाहा! एक बात। **वहाँ भेदविज्ञान भी एक विकल्परूप है।** आस्रव तो सब छूटे, परन्तु भेदज्ञान 'यह करना है, यह करना है' वह भी अभी विकल्प भेद है। दो बातें कीं।

आत्मा सम्यग्दर्शन पाया, पश्चात् भी स्वरूप में अनुभव करते... करते... करते... आनन्द की जब पूर्ण प्राप्ति हो, तब तक अनुभव करना। पश्चात् कोई विकल्प रहेगा नहीं। अस्थिरता का भी विकल्प नहीं रहेगा। एक बात। तो भेदज्ञान का विकल्प तो कहाँ से रहेगा? ऐसा कहते हैं। दो बात है, देखो इसमें! **उस काल समस्त विकल्प सहज ही**

छूट जायेंगे। वहाँ भेदविज्ञान भी... भेदविज्ञान भी, ऐसा एक और दो। दूसरे आस्रव के विकल्प तो छूट जायेंगे। अन्दर जहाँ ध्यान में आ गया... आहाहा! अत्यन्त आनन्द में लीन हो गया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता प्राप्त हुई, तब तो समस्त विकल्प सहज ही उत्पन्न नहीं होंगे तो छूट जायेंगे, ऐसा कहा गया है। और **भेदविज्ञान भी एक विकल्परूप है।** 'भी' शब्द है। दो बात लेनी है न? आस्रव का विकल्प तो नहीं रहेगा, परन्तु भेदज्ञान का विकल्प भी नहीं रहेगा। आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त, उनकी यह टीका है। अमृतचन्द्राचार्य। (परमागम मन्दिर में) बीच में कुन्दकुन्दाचार्य हैं, वे अमृतचन्द्राचार्य हैं। ये पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर सन्त वन में बसते थे। आहाहा! उनकी यह वाणी है। कहते हैं कि जिस काल में सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्ष होगा, उस काल में समस्त विकल्प सहज, सहज ही छूट जायेंगे। छोड़ना नहीं पड़ेंगे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वहाँ भेदविज्ञान भी एक विकल्परूप है। अब वहाँ भिन्न करना, ऐसा विकल्प भी रहा नहीं। **केवलज्ञान के समान जीव का शुद्धस्वरूप नहीं है,...** भेदविज्ञान एक विकल्प है। केवलज्ञान जैसा उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! राग से भिन्न करना ऐसा... है न? आहाहा! जब तक केवलज्ञान न हो, तब तक ऐसा राग से भिन्न करते... करते... केवलज्ञान की भाँति वह निर्मल नहीं है, उसमें थोड़ा विकल्प है। सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! अनन्त काल के भव का अन्त लाना है और अनन्त काल में अनन्त आनन्द प्रगट नहीं हुआ, उसे प्रगट करना है और वह आनन्द सादि-अनन्त रहनेवाला है, आहा! उसका उपाय तो कोई अलौकिक होगा न! समझ में आया?

केवलज्ञान के समान जीव का शुद्धस्वरूप नहीं है,... कौन? भेदविज्ञान। भेद डालना है न? जैसा केवलज्ञान का स्वरूप है, वैसा (नहीं है)। भेदज्ञान में थोड़ा विकल्प है। **इसलिए सहज ही विनाशीक है।** पश्चात् भेदज्ञान का भी नाश होगा। पूर्णानन्द का नाथ जहाँ केवलज्ञान प्राप्त करता है... पूरा हो गया! सम्यग्दर्शन से लेकर विकल्प को तोड़ते-तोड़ते जब केवलज्ञान हो गया, तब दूसरे विकल्प तो नहीं रहे, परन्तु भेदविज्ञान भी नहीं रहता। समझ में आया? जो परमात्मा था, वह परमात्मा हो गया। आहाहा!

कलश-१३१

(अनुष्टुप्)

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।।७-१३१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ये किल केचन सिद्धाः ते भेदविज्ञानतः सिद्धाः' [ये] आसन्नभव्य जीव हैं जो कोई, [किल] निश्चय से [केचन] संसारी जीवराशियों से जो कोई गिनती के [सिद्धाः] सकल कर्मों का क्षयकर, निर्वाणपद को प्राप्त हुए, [ते] वे समस्त जीव, [भेदविज्ञानतः] सकल परद्रव्यों से भिन्न, शुद्धस्वरूप के अनुभव से [सिद्धाः] मोक्षपद को प्राप्त हुए। भावार्थ इस प्रकार है — मोक्ष का मार्ग, शुद्धस्वरूप का अनुभव, अनादि संसिद्ध, यही एक मोक्षमार्ग है। 'ये केचन बद्धाः ते किल अस्य एव अभावतः बद्धाः' [ये केचन] जो कोई [बद्धाः] ज्ञानावरणादि कर्मों से बँधे हैं, [ते] वे समस्त जीव, [किल] निश्चय से [अस्य एव] ऐसा जो भेदविज्ञान, उसके [अभावतः] नहीं होने से [बद्धाः] बद्ध होकर, संसार में रुल रहे हैं। भावार्थ इस प्रकार है — भेदज्ञान, सर्वथा उपादेय है।।७-१३१।।

कलश - १३१ पर प्रवचन

१३१। यह तो अलौकिक गाथायें (कलश) हैं, बापू! आहाहा! जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धर भगवान का यह सन्देश है। परमात्मा विराजते हैं। महाविदेह में अभी विराजते हैं। आहाहा! उनकी यह वाणी है, उनका यह सन्देश है। सन्त अनुभवकर उनकी वाणी कहते हैं। आहाहा!

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।।७-१३१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'ये किल केचन सिद्धाः ते भेदविज्ञानतः सिद्धाः' क्या कहते हैं? आहाहा! अभी तक जितने परमात्मा सिद्ध हुए, सिद्ध... सिद्ध—मोक्ष,

अनन्त-अनन्त सिद्ध हुए। छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव सिद्धपद को पाते हैं। मनुष्यक्षेत्र में मनुष्य की जो संख्या है, उसमें से छह महीने आठ समय में ६०८ तो सिद्धपद पाते, पाते और पाते ही हैं। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं, अभी तक जितने सिद्ध हुए, **आसन्नभव्य जीव हैं जो...** जिनका मोक्ष नजदीक है **जो कोई निश्चय से... 'केचन' संसारी जीवराशि में से जो कोई गिनती के...** क्या कहते हैं? संसारी जीवराशि है, वह सब मुक्ति पाते नहीं। संसारी जीव की इतनी संख्या है, उसमें गिनती में थोड़े जीव सिद्ध होते हैं। भले अनन्त हों, परन्तु वे अनन्त गिनतीवाले और संसारी जीव तो उनसे अनन्तगुणे पड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... वे थोड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत थोड़े। एक प्याज है और लहसुन है, लहसुन। उस लहसुन का एक राई जितना टुकड़ा लो तो उस टुकड़े में असंख्य तो औदारिकशरीर है। यह शरीर स्थूल है, वह सूक्ष्म है। तो वह राई जितना टुकड़ा प्याज का और लहसुन का लो। उस एक टुकड़े में असंख्य औदारिकशरीर हैं। अंगुल के असंख्य भाग में असंख्य शरीर हैं और एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव सिद्ध होते हैं, वह संख्या जो अनन्त हुई, उससे अनन्तगुणे जीव एक शरीर में हैं।

मुमुक्षु : पार नहीं पाया जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त जीव हैं, अनन्त। आहाहा! वह संख्या... अलौकिक बातें हैं। यह तो परमात्मा सर्वज्ञदेव जिनवर वीतराग परमात्मा के मुख से निकली हुई बातें हैं। यह कोई तीन काल में बदलती नहीं।

यह कहते हैं कि गिनती में, मोक्ष जाते हैं भले अनन्त गये, परन्तु गिनती में। उससे अनन्तगुणे जीव तो एक शरीर में-निगोद में रहते हैं। एक राई जितने टुकड़े में असंख्य औदारिक शरीर हैं। एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुणे जीव। ऐसे-ऐसे असंख्य शरीर पूरे लोक में भरे हैं। गिनती में सिद्ध होते हैं। समझ में आया? आहाहा! जैसे ज्वार की धाणी होती है न? धाणी कहते हैं? ज्वार की। सेंकते हैं न? सेंकते हैं। तो कोई

धाणी बाहर निकल जाती है। बाकी तो अन्दर के अन्दर (रहे)। कोई दाना। ज्वार का सेंकते हैं न? कोई दाना बाहर निकल जाता है। ऐसे अनन्त जीव में कोई जीव सिद्ध हो जाता है। इसलिए गिनती में कहा है। आहाहा!

भगवान तो कहते हैं, कितने जीव तो ऐसे हैं मनुष्यपना अनन्त काल से पाया नहीं। वे लट हुए नहीं, कीड़ा हुए नहीं, दो इन्द्रिय नहीं हुए। ऐसे अनन्त जीव पड़े हैं, बापू! अभी तूने सुना नहीं। आहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त जीव की राशि इतनी है कि अनन्त काल गया तो भी उसमें से कोई अभी चींटी, कौआ, दो इन्द्रिय हुए नहीं ऐसी अनन्त राशि पड़ी है। अरे! तू निकलकर आया, मनुष्य हुआ। आहा! अब तो तेरा कर्तव्य तो भव के अभाव का कर्तव्य करने का है। आहाहा! यह भव तो भव के अभाव के लिये है। समझ में आया? बापू! बहुत कठिन बात, भाई! वीतराग परमेश्वर... आहा! उनके... जीव आहाहा! उसे जीव मानना मुश्किल पड़े। प्याज और लहसुन के टुकड़े में असंख्य शरीर। एक शरीर में सिद्ध की संख्या से अनन्तगुणे जीव। मानना मुश्किल पड़े।

हम तो सम्प्रदाय में कहते थे। सम्प्रदाय में। प्रभु! कितने ही जीव यहाँ बाहर निकले हैं, वे अपने जीव के स्वरूप को कलंक दिया। आळ समझते हो? आळ को क्या कहते हैं? कलंक-कलंक। अभ्याख्यान। अनादर किया। मैं राग हूँ, मैं पुण्य हूँ, मैं पर का कर्ता हूँ। ऐसे ज्ञाता-दृष्ट को आळ—कलंक लगाया। कलंक लगाकर ऐसे निगोद में गया कि दूसरे जीव उसे जीव मान सकें, ऐसी दशा रही नहीं। तूने तुझे माना नहीं और अनादर किया तो अनादर करते-करते जब निगोद में जायेगा, तब तुझे दूसरे जीव नहीं मानेंगे। तूने तेरी जीवशक्ति को माना नहीं, भाई! आहाहा! और मैंने पुण्य किये और मैंने पाप किये और मैं यह आत्मा। आहाहा! तो वह कलंक देता है। उसे अभ्याख्यान कहते हैं। ऐसे जन्मेगा कि दूसरे जीव यह आत्मा है, ऐसा नहीं मानेंगे।

मुमुक्षु : अपने को खो दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : खो दिया। आहाहा! ऐसी बातें हैं। हम तो सम्प्रदाय में कहते थे। लोग सुनते थे। उस समय भी हजारों लोग सुनते थे। सम्प्रदाय में बोटाद में तो बहुत

लोग। आहाहा! पचास-साठ वर्ष पहले की बात है। आहाहा! प्रभु! तू जितने सामर्थ्यवाला और स्वभाववाला जितना बड़ा है, उतने बड़े में, मैं अल्पज्ञ हूँ, रागी हूँ, यह हूँ—ऐसा तेरी चीज़ का तूने अनादर किया, कलंक लगाया तो ऐसी चीज़ में तू जायेगा कि दूसरे जीव तुझे जीव नहीं मानेंगे। आहाहा! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! तुझे समय मिला है न। अभी तक जितने सिद्ध हुए... क्या कहते हैं? देखो! (आसन्न भव्यजीव) **संसारी जीवराशि में से जो कोई गिनती के...** गिनती के अर्थात् थोड़े। भले अनन्त हों परन्तु अनन्तवें भाग। संसार में अनन्तगुणे पड़े हैं। आहाहा! **सकल कर्मों का क्षय कर निर्वाणपद को प्राप्त हुए, वे समस्त जीव... 'भेदविज्ञानतः' सकल परद्रव्यों से भिन्न शुद्धस्वरूप के अनुभव से मोक्षपद को प्राप्त हुए।** आहा! क्या कहते हैं? अभी तक जितने सिद्ध हुए, वे सब राग, पुण्य और पाप के विकल्प से भिन्न करके भेदज्ञान से सिद्ध हुए हैं। समझ में आया? अनादि काल में जो राग की और स्वभाव की एकताबुद्धि थी, तो वह मिथ्यात्व से अनन्त काल निगोद में भी रहा। और जब राग की एकता तोड़कर भेदज्ञान किया और पश्चात् भी राग रहा, उसका भी भेदज्ञान किया तो जितने सिद्ध हुए, वे सब भेदविज्ञान से हुए हैं। कोई राग की क्रिया करने से और राग की एकताबुद्धि से सिद्ध हुए हैं, ऐसा तीन काल में कोई नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

'**भेदविज्ञानतः सिद्धाः**' पहला शब्द है। अभी तक जितने मोक्ष प्राप्त हुए हैं, परमात्मपद प्राप्त हुए हैं, वे सब भेदविज्ञान से परमात्मा हुए हैं। आहाहा! यह वाणी वीतराग की। ज्ञान चिदानन्द प्रभु, वह राग और पुण्य-पाप के विकल्प से भेदज्ञान करके मुक्ति प्राप्त हुए हैं। उन्हें भिन्न करके मुक्ति प्राप्त हुए हैं। अपने साथ रखकर मुक्ति प्राप्त हुए हैं, ऐसा नहीं है। यह तो बहुत सादी भाषा है। आहाहा! समझ में आया? यह गाथा बहुत अलौकिक है। आहाहा! '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन**' '**किल**' जितने अनन्त जीव '**केचन**' गिनतीवाले। सभी भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं। प्रथम राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन प्रगट किया, पश्चात् राग से भिन्न पड़कर चारित्र प्राप्त किया, पश्चात् राग से भिन्न पड़कर शुक्लध्यान प्रगट किया, पश्चात् अस्थिरता का त्याग करके

केवलज्ञान प्राप्त हुए। आहाहा! समझ में आया? गाथा (कलश) बहुत अलौकिक है। आहाहा!

यह तो मन्त्र है, प्रभु! सर्प के जहर (उतारने) के मन्त्र होते हैं न? मन्त्र उतारते हैं। मन्त्र से जहर उतारते हैं। कहते हैं कि अभी तक जितने परमात्मा हुए—णमो सिद्धाणं—वे सब सिद्ध किस प्रकार हुए? निज स्वभाव में राग से भिन्न होकर, विकल्प चाहे तो शुभराग दया, दान, व्रत हो, उससे भिन्न होकर निज स्वभाव में अभिन्न होकर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। कहो, यह तो समझ में आता है? आहा! समझ में आया? यह संक्षिप्त शब्द है। '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन**' जो कोई अभी तक सिद्ध परमात्मा हुए—मोक्ष प्राप्त हुए, वे सब जीव राग से अपना भिन्न भेदज्ञान करके प्राप्त हुए हैं। कोई राग की क्रिया से मोक्ष प्राप्त हुए, ऐसा कोई जीव नहीं है। आहाहा! यहाँ कहते हैं न कि व्रत, तप, भक्ति और पूजा करो, तुम्हारा मोक्ष हो जायेगा। इससे इनकार करते हैं। वह तो राग है। राग की क्रिया से मुक्ति नहीं होती, उससे तो बन्ध होता है। आहा! तुझे खबर नहीं, भाई! अभी तक जितने सिद्ध हुए, वे सब विकल्प अर्थात् शुभराग हो या अशुभ हो, उससे भिन्न पड़कर भेदज्ञान से सिद्ध हुए हैं। बहुत अलौकिक मन्त्र है। आहाहा!

सकल परद्रव्यों से भिन्न शुद्धस्वरूप के अनुभव से मोक्षपद को प्राप्त हुए। भावार्थ इस प्रकार है—मोक्ष का मार्ग शुद्धस्वरूप का अनुभव, अनादि संसिद्ध यही एक मोक्षमार्ग है। आहाहा! क्या कहते हैं? मोक्ष का मार्ग शुद्धस्वरूप का अनुभव। भगवान पवित्र पिण्ड आत्मा, उसका रागरहित शुद्धोपयोग में रमणता, शुद्धोपयोग मोक्षमार्ग से मुक्ति हुई है। शुद्धोपयोग से मुक्ति हुई है। पुण्य-पाप अशुद्धोपयोग तो बन्ध का कारण हुआ है। समझ में आया? भावार्थ कहा न?

भावार्थ इस प्रकार है—मोक्ष का मार्ग शुद्धस्वरूप... शुद्ध स्वरूप, हों! पुण्य-पाप तो अशुद्ध है। आहाहा! **शुद्धस्वरूप का अनुभव, अनादि संसिद्ध यही एक मोक्षमार्ग है।** अनादि संसिद्ध यह एक ही मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग दो नहीं। कोई निश्चय मोक्षमार्ग और कोई व्यवहार मोक्षमार्ग, ऐसे दो (मार्ग) नहीं है। आहाहा! **शुद्धस्वरूप**

के अनुभव से मोक्षपद को प्राप्त हुए। यह मोक्ष का मार्ग—सिद्ध होने का उपाय शुद्ध स्वरूप का अनुभव है। 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' आहाहा! समझ में आया? यह अनादिसंसिद्ध—अनादि से यह मार्ग सम्यक् सिद्ध हुआ है। अनादि-अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त सन्तों ने यह मार्ग लिया है। आहाहा! अनादिसंसिद्ध है, यह कहीं नयी चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अनादि संसिद्ध... अनादि सं—सम्यक् प्रकार से सिद्ध—निश्चित **यही एक मोक्षमार्ग है।** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान से छलाछल भरपूर है। पहले क्या कहा? लबालब भरा है। उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में लीन होकर और राग से भिन्न होकर अनन्त जीव मोक्ष प्राप्त हुए हैं। आहाहा! अब इसमें वाद-विवाद और चर्चा... वे कहे, नहीं, व्यवहार से भी मोक्षमार्ग प्राप्त होता है। यहाँ इनकार करते हैं। व्यवहार आता है, जब तक पूर्ण न हो, तब तक व्यवहार आस्रव है, परन्तु वह बन्धमार्ग है। समझ में आया? आहाहा! **अनादि संसिद्ध यही एक मोक्षमार्ग है।** यही एक मोक्षमार्ग है। आहाहा! कोई दूसरा व्यवहार मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं है। परमात्मा के मार्ग में तो ऐसा है। जिनेन्द्रदेव वीतराग परमेश्वर के पंथ में यह ही एक मोक्षमार्ग है। आहाहा! दूसरा है नहीं।

अब विशेष कहते हैं। अभी तक इस संसार में भटका क्यों? '**ये केचन बद्धाः ते किल अस्य एव अभावतः बद्धाः**' अभी तक आठ कर्म से जीव बँधे, **वे समस्त जीव निश्चय से ऐसा जो भेदविज्ञान, उसके नहीं होने से...** राग से भिन्न नहीं होने से बँधे हैं। समझ में आया? अभी तक जो अनन्त संसारी रहे हैं, वे भेदविज्ञान के अभाव से रहे हैं। सीधी बात है, भगवान! भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं, भेदविज्ञान के अभाव से कर्म बँधे हैं। आहाहा! ऐसा नहीं कहा कि उसके कर्म के जोर से बँधा है। कर्म का बहुत जोर था, इसलिए बँधा, ऐसा नहीं कहा। भेदविज्ञान के अभाव से बँधा है। आहाहा! यह पुण्य और पाप के और मिथ्यात्व के भाव, उनसे भिन्न नहीं किया, वे बन्धन में पड़े हैं। आहाहा! बहुत सरस बोल है। पूरा संसार और मोक्ष—दोनों की बात की है। कहो, सेठ!

गाथा (कलश) ऐसी सरल आयी है। यह तुम्हारे दो-पाँच-दस लाख खर्च करे और दस लाख खर्च करे और दान से मुक्ति हो, इससे इनकार करते हैं। दानवीर उपमा दी है। पैसा खर्च करे। तीन-तीन लाख की धर्मशाला बनायी है। वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। वह राग है, वह बन्धमार्ग है। आहाहा!

भेदविज्ञान से—राग से और पुण्य-पाप के राग से भिन्न करने से मोक्ष हुआ और भेदज्ञान के अभाव से बन्ध में पड़ा है। एक यह सिद्धान्त! आहाहा! भेदविज्ञान नहीं होने से वह संसार में भटक रहा है। आहाहा! है? विकार से भेद नहीं करता, इसलिए भटक रहा है। चाहे तो पुण्यपरिणाम हो और चाहे तो पाप हो, परन्तु उससे भेद नहीं करता, इसलिए भटकता है। आहाहा! बहुत सादी भाषा।

भेदज्ञान सर्वथा उपादेय है। योगफल यह किया। इसलिए राग से भिन्न करना और भेदज्ञान अनुभव करना, यही उपादेय है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१३२

(मन्दाक्रान्ता)

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण।
बिभ्रत्तोषं परममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत्।।८-१३२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'एतत् ज्ञानं उदितं' [एतत्] प्रत्यक्ष विद्यमान [ज्ञानं] शुद्धचैतन्यप्रकाश, [उदितं] आस्रव का निरोध करके प्रगट हुआ। कैसा है? 'ज्ञाने नियतं' अनन्त काल से परिणमता था अशुद्धरागादि विभावरूप, वह काललब्धि पाकर, अपने शुद्धस्वरूप परिणमा है। और कैसा है? 'शाश्वतोद्योतं' अविनश्वर प्रकाश है जिसका, ऐसा है। और कैसा है? 'तोषं विभ्रत्' अतीन्द्रिय सुखरूप परिणमा है। और कैसा है? 'परमं' उत्कृष्ट है। और कैसा है? 'अमलालोकं' सर्वथा प्रकार, सर्व काल, सर्व त्रैलोक्य में निर्मल है-साक्षात् शुद्ध है। और कैसा है? 'अम्लानं' सदा प्रकाशरूप है। और कैसा है? 'एकं' निर्विकल्प है। शुद्धज्ञान ऐसा जिस प्रकार हुआ है, उसी प्रकार कहते हैं 'कर्मणां संवरेण' ज्ञानावरणादिरूप आस्रवते थे जो कर्मपुद्गल, उनके निरोध से। कर्म का निरोध जिस प्रकार हुआ है, उस प्रकार कहते हैं — 'रागग्रामप्रलयकरणात्' [राग] राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्धविभावपरिणाम, उनका [ग्राम] समूह-असंख्यात् लोकमात्र भेद, उनका [प्रलय] मूल से सत्तानाश, उसके [करणात्] करने से। ऐसा भी किस कारण से? 'शुद्धतत्त्वोपलम्भात्' [शुद्धतत्त्व] शुद्धचैतन्यवस्तु, उसकी [उपलम्भात्] साक्षात् प्राप्ति, उससे। ऐसा भी किस कारण से? 'भेदज्ञानोच्छलनकलनात्' [भेदज्ञान] शुद्धस्वरूपज्ञान, उसका [उच्छलन] प्रगटपना, उसका [कलनात्] निरन्तर अभ्यास, उससे। भावार्थ इस प्रकार है — शुद्धस्वरूप का अनुभव उपादेय है।।८-१३२।।

आसोज शुक्ल १४, मंगलवार, दिनांक - २५-१०-१९७७, कलश-१३२, प्रवचन-१३१

संवर अधिकार है। संवर की अन्तिम गाथा (कलश) है।

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा–
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण।
बिभ्रत्तोषं परममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत्।।८–१३२।।

संवर की अन्तिम गाथा (कलश) है। संवर किसे कहते हैं? कि प्रथम आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह पुण्य और पाप के शुभाशुभभाव आस्रव हैं, उससे भिन्न होकर अपने आत्मा के आनन्द का वेदन, आनन्द का स्वाद आना और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय का निरोध होना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन-संवर है। समझ में आया? आहाहा! पहले से शुरुआत करके अन्तिम तक ले लिया है।

प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन, वह संवर है। तो वह सम्यग्दर्शन कैसे होता है? जो त्रिकाल चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द भूतार्थ वस्तु, सत्य पूर्ण ध्रुव, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। तब उसे पुण्य और पाप के शुभाशुभभाव, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी जितने आस्रव का निरोध होता है। समझ में आया? तत्पश्चात् चारित्र का स्वरूप, आनन्दस्वरूप की प्रतीति और भान हुआ है, उसमें आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर-प्रचुर स्वसंवेदन होना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! उसका नाम चारित्ररूप संवर है। आहाहा! सूक्ष्म बात।

अनन्त काल में अपूर्व पुरुषार्थ कभी किया नहीं, इसलिए वह चीज़ बहुत दुर्लभ हो गयी है। है तो अपनी। अपनी चीज़ है, परन्तु अनादि से दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव वह पुण्य-शुभभाव है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, पापभाव है, यह दोनों आस्रवभाव की श्रद्धा और आस्रवभाव का वेदन अनन्त काल से किया है। समझ में आया? तो कहते हैं कि पहले उनसे भिन्न होकर... शुभ-अशुभभाव चाहे तो व्रत, तप, दया, दान, भक्ति हो, वह सब पुण्यआस्रव है। वह संवर नहीं, वह धर्म नहीं। उससे भिन्न अपने स्वरूप में स्वभाव, चैतन्य का स्वभाव शुद्ध ज्ञान-आनन्द है, उसमें एकाग्र होकर आनन्द का वेदन हो, तब मिथ्यात्वादि दुःख का आस्रव रुक जाता है। सुमेरुमलजी! ऐसी बात है। यह कहते हैं, देखो!

'खण्डान्वयसहित अर्थ—'एतत् ज्ञानं उदितं' है ? हिन्दी लोग आये हैं न, इसलिए हिन्दी चलता है। १३२ श्लोक है, उसकी पहली लाईन। **'एतत् ज्ञानं उदितं' प्रत्यक्ष विद्यमान ज्ञान अर्थात् शुद्ध चैतन्यप्रकाश आस्रव का निरोध करके प्रगट हुआ।** आहाहा! क्या कहते हैं ? कि ज्ञानस्वरूप भगवान, वह पुण्य और पाप की एकताबुद्धि का मिथ्यात्वभाव था, उस आस्रव को रोककर अपने ज्ञानस्वरूप में प्रत्यक्ष विद्यमान... आहाहा! चैतन्य सत्ता भगवान आत्मा की, वह प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञान और प्रत्यक्ष विद्यमान है, उसे प्रत्यक्ष होता है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल से किया नहीं। बाहर से क्रियाकाण्ड में धर्म मान लिया। उसे अनन्त संसार का भ्रमण रहा।

यहाँ कहते हैं कि **प्रत्यक्ष विद्यमान ज्ञान अर्थात् शुद्ध चैतन्यप्रकाश...** आहाहा! जो शुभ-अशुभभाव की प्रसिद्धि थी, वह तो मलिन आस्रव की प्रसिद्धि थी। उससे हटकर अपने शुद्ध चैतन्यप्रकाश में प्रत्यक्ष किया तो वह ज्ञान प्रत्यक्ष प्रकाश हुआ। चैतन्य का प्रकाश, चैतन्य के नूर का तेज, आस्रव को रोककर उस चैतन्य के प्रकाश का नूर प्रत्यक्ष वेदन में आया। आहाहा! इतनी सब शर्तें। तब तो उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। धर्म की पहली सीढ़ी। समझ में आया ? आहा! प्रत्यक्ष शुद्ध चैतन्यप्रकाश **आस्रव का निरोध करके प्रगट हुआ।** पहले मिथ्यात्व का निरोध किया, पश्चात् अचारित्र के राग-द्वेष का निरोध करके स्वरूप में, अनुभव में लीन होकर ज्ञान का प्रकाश प्रगट पर्याय में प्रगट परमात्मपद प्राप्त हुआ। समझ में आया ?

आस्रव का निरोध करके प्रगट हुआ। शुभ-अशुभभाव को रोककर, निरोध करके अपने चैतन्यस्वभाव सन्मुख होने से, चैतन्यप्रकाश प्रगट हुआ। आहाहा! **कैसा है 'ज्ञाने नियतं' अनन्त काल से परिणमता था अशुद्ध रागादि विभावरूप,...** अनादि काल से वह पुण्य और पाप (परिणमन में थे)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' यह मुनिव्रत पंच महाव्रत धारण किये, परन्तु वह आस्रव है। समझ में आया ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु वह मुनिव्रत के परिणाम जो महाव्रतादि के हैं, वे आस्रव है। उनसे रहित आत्मज्ञान पाया नहीं। तो आत्मज्ञान बिना लेश सुख मिला नहीं। यह पंच महाव्रत के

परिणाम में भी दु:ख है। अरेरे! ऐसी बात है, भाई!

भगवान जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि में संवर का मार्ग ऐसा आया है। आहा! कहते हैं कि **अनन्त काल से परिणमता था...** अनन्त काल से पर्याय-अवस्था में **अशुद्ध रागादि विभावरूप,...** यह शुभराग हो दया, दान, व्रत का या पाप का हो, दोनों अशुद्ध है। **अशुद्ध रागादि विभावरूप,...** वह परिणमता था। अनादि काल से पर्याय-अवस्था में मलिन पर्यायरूप वह परिणमता था। लो! आया सेठ! काललब्धि आयी। यह **काललब्धि पाकर...** अर्थात् कि अपने पुरुषार्थ सन्मुख होकर। जो पुरुषार्थ पुण्य-पाप के सन्मुख था, वह पुरुषार्थ स्वभावसन्मुख हुआ तो उसे काललब्धि हुई। समझ में आया? आहाहा!

काललब्धि पाकर अपने शुद्धस्वरूप परिणमा है। देखो! अनादि काल से शुभ और अशुभराग आस्रवरूप अशुद्धपने, मलिनपने परिणमा था। उसे रोककर शुद्ध चैतन्यप्रकाश के सन्मुख में शुद्धरूप परिणमन हुआ, वह संवर है। भाषा तो सादी है न, भगवान! और घर की है। आहाहा! भगवन्त परमात्मास्वरूप ही आत्मा है। आचार्य तो आत्मा को भगवानस्वरूप कहकर ही बुलाते हैं। आहा! बापू! तेरी चीज़ तो भगवत्स्वरूप है, नाथ! तुझे खबर नहीं। पर्याय में-अवस्था में अशुद्ध परिणमन—पुण्य और पाप (भाव होते हैं), वह आत्मा नहीं। आहाहा! शुभ और अशुभभाव जो होते हैं, वे अनात्मा हैं। आहाहा! भगवान आत्मा उस अशुद्धपरिणाम से रहित अपना अनुभव करता है तो वह पवित्र शुद्ध भगवान है। तो पर्याय में उसका अनुभव हुआ तो शुद्ध परिणमन हुआ। अशुद्ध परिणमन छोड़कर शुद्ध (परिणमन) हुआ, इसका नाम धर्म और संवर कहने में आता है। यह तो स्पष्ट बात है, भगवान! समझ में आया? बात तो ऐसी है। कभी किया नहीं। बहुत तो पाप परिणाम करे और थोड़ी देर दुकान छोड़कर एक-दो घण्टे शास्त्र सुने या दया, दान के भाव करे, पुण्य भाव यात्रा करे तो वह सब परिणाम तो आस्रव है, बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा दिगम्बर सन्त द्वारा परमात्मा की बात दिगम्बर सन्त करते हैं। प्रभु! तू एक चिदानन्द आनन्दकन्द है न अन्दर! उस स्वभावसन्मुख होने से चैतन्य और

आनन्द की पर्याय में प्रकाश प्रगट होना, वह शुद्ध परिणमन है। अनादि काल से पुण्य और पाप का परिणमन था, वह अशुद्ध था। वह आस्रव था, वह संसार था, वह दुःख था, वह विकार था, वह जहर था। अब उससे रहित होकर अन्तर में भगवान पूर्णानन्द के नाथ का आश्रय लेकर पर्याय में जो शुद्ध परिणति हुई, शुद्ध वीतरागी परिणति, शुद्ध उपयोग परिणति (हुई), वह अशुद्ध उपयोग को रोकती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। नये लोगों को ऐसा लगे कि वह यह क्या निकाला होगा! अनादि का वीतराग जिनेन्द्र परमेश्वर परमात्मा का मार्ग तो यह अनादि है, भाई! वस्तुस्थिति ऐसी है।

शुद्धस्वरूप परिणमा है। है न? अशुद्ध परिणमन को रोककर, निरोध कर, अभाव करके, अपने चैतन्यस्वभाव के सन्मुख होकर शुद्धरूप परिणमा। पवित्रता की परिणति हुई, वीतरागभाव की दशा हुई। आहाहा! जो अशुद्धपरिणमन था, वह राग की दशा थी। आहाहा! आत्मा जिन वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर है। आहाहा! उसके सन्मुख होकर उसका वेदन होना, वह वेदन शुद्ध परिणमन, शुद्ध उपयोग को यहाँ आत्मा का वेदन कहा जाता है। आहाहा! अरेरे! अनन्त-अनन्त काल गया, परन्तु इसने एक सेकेण्ड भी प्रभु को याद नहीं किया। यह पुण्य-पाप को याद किया। मैं एक सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल ज्ञान और अनाकुल आनन्द का रसकन्द हूँ। उस ओर के झुकाव से शुद्ध परिणमन पर्याय में शुद्धता, वीतरागता, अनास्रवता, संवरता आती है, उसका नाम भेदज्ञान करके संवर किया। ऐसी बातें हैं। यह तो अन्तिम श्लोक है न? इसलिए पहले मिथ्यात्व का निरोध करके संवर सम्यक् प्रकट किया, पश्चात् अभी शुभभाव-अशुभभाव ज्ञानी को भी आता है। उस शुभ-अशुभभाव को रोककर चारित्र में स्थिर हुआ। समझ में आया? तो उसे उत्कृष्ट संवरदशा प्रगट हुई। यह कहते हैं, देखो!

और कैसा है? 'शाश्वतोद्योतं' निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह तो अब कायम रहनेवाली है। पुण्य-पाप के भाव तो क्षणिक, नाशवान, अनित्य थे। आये थे तो अनित्य परिणाम भी कायम रहनेवाले... क्या कहा? फिर से। शुद्ध चैतन्य ध्रुव चैतन्य भगवान जो है, उसके अवलम्बन से जो शुद्ध अनुभव हुआ, वह कायम रहनेवाला है। समझ में आया? **अविनश्वर प्रकाश है जिसका,** आहाहा! **ऐसा है। और कैसा है?**

'**तोषं बिभ्रत्**' आहाहा! देखो आया। '**तोषं**' अर्थात् आनन्द। '**तोषं**' है न '**तोषं**'? '**तोषं**' कहो, सन्तोष कहो, आनन्द कहो। '**बिभ्रत्' अतीन्द्रिय सुखरूप परिणमा है। बिभ्रत्**' अर्थात् परिणमित हुआ है। अब आनन्दरूपी परिणति दशा हुई। आहाहा! है न? '**तोषं बिभ्रत्**' '**तोषं**' अर्थात् आनन्द। '**तोषं**' अर्थात् सन्तोष। '**तोषं**' साथ में स डाल दे तो संतोष। संतोष अर्थात् '**तोषं**'। '**तोषं**' अर्थात् आनन्द। आनन्द की '**बिभ्रत्**' आनन्द का परिणमन किया। जो अशुद्धता परिणमन दुःखरूप था... आहाहा! वह शुद्ध परिणमन आनन्दरूप हुआ। आहाहा! प्रभु सच्चिदानन्द प्रभु है वह तो। आहाहा! आनन्द का नाथ है। अतीन्द्रिय आनन्द का छलाछल सागर है। उसके सन्मुख होकर '**तोषं बिभ्रत्**' आनन्दरूपी दशा को धारण किया। कहो, सेठ! सुना नहीं कभी सब उसमें और उसमें। दरकार की नहीं न! आहाहा! बात तो आज बहुत दुर्लभ हो गयी है। बात तो सत्य है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं? लोग यह बाहर की क्रिया करके और मानो हो गया। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शन हो गया। और व्रत तथा तप करे तो चारित्र हो गया। दोनों झूठ हैं।

मुमुक्षु : यह सब ही मानते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब मानते थे। सेठ भी मानते थे। सर्वत्र यह था। हम स्वयं मानते थे। दुकान पर हम मानते थे। नहीं तो पहले से छोटी उम्र में ही शास्त्र अभ्यास हमें था। १७-१८ वर्ष की उम्र। १७ समझे न? १० और ७। १८ वर्ष की उम्र। ७० वर्ष हुए। अभी ८८ वर्ष हुए—शरीर के ८८ हैं। ९० में दो कम। १७ वर्ष से शास्त्र का अभ्यास हम करते थे। दुकान पर शास्त्र का अभ्यास करते थे। और (संवत्) १९६५ के वर्ष से तो रात्रि के आहार-पानी का त्याग है। पानी की बूँद और आहार का कण नहीं। १९६५ के वर्ष से। ६८ वर्ष हुए। ६० और ८। हमको तो संस्कार थे न! घर की दुकान, पिताजी की दुकान थी। हम तो सूर्यास्त पहले भोजन कर लेते थे। बाद में नहीं। और शास्त्र अभ्यास करते थे। परन्तु हम मानते थे कि प्रतिक्रमण करे, सामायिक करे तो धर्म हो गया। ऐसा मानते थे। और अपवास करते थे। आठ दिन। हमारे श्वेताम्बर में आठ दिन होते हैं न?

तो हम चार अपवास करे चार। चतुर्विध आहार त्याग, हों! पानी नहीं। एक दिन अपवास और एक दिन आहार। चार अपवास करते थे। बारह महीने में चार। और मानते थे कि हमने तपस्या की। यह धूल भी नहीं। समझ में आया?!

मुमुक्षु : उसमें खोटा क्या हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह खोटा मिथ्यात्व था और रागभाव था और हम मानते थे कि धर्म है। अपवास में भी शुभराग है। वह वापस दुकान पर, बारह घण्टे दुकान पर बैठे। अपवास हो तो भी दुकान पर बैठते। दुकान चलती थी न! यह तो १९६४-६५-६६ की बात है। संवत् १९६४-६५-६६। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि प्रभु! यह बात तो वहाँ नहीं थी। नहीं तो हम तो पहले से छोटी उम्र से श्वेताम्बर के शास्त्र पढ़ते थे। परन्तु उसमें तो यह बात ऐसी है नहीं। दिगम्बर शास्त्रों में तो सनातन जैनदर्शन की चीज़ रह गयी है। उसमें तो है ही नहीं। उसका चाहे जितना अभ्यास करे परन्तु इसमें जो बात निकलती है कि राग से भिन्न होकर आनन्द का अनुभव हो (वह) समकित कहलाये, यह बात निकलती नहीं।

मुमुक्षु : यह तो श्वेताम्बर शास्त्र में किसी जगह लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है नहीं। उसमें तो करोड़ों श्लोक पढ़े हैं। करोड़ों श्लोक देखे हैं। पूरी जिन्दगी...

यहाँ कहते हैं कि '**तोषं बिभ्रत्**' आहाहा! क्या कहते हैं? कि जिसे पहले मिथ्यात्व का आस्रव रोककर सम्यग्दर्शन-आत्मा का अनुभव हुआ हो, उसे भी आनन्द का स्वाद थोड़ा आता है। परन्तु पश्चात् जितना शुभाशुभभाव आस्रव था, उसे रोककर स्वरूप में लीन होता है तो '**बिभ्रत् तोषं**' बहुत आनन्द आता है। चारित्र की दशा में तो आनन्द, वही चारित्र है। चारित्र कोई पंच महाव्रत और नग्नपना, वह कहीं चारित्र नहीं है। आहाहा! '**तोषं बिभ्रत्**' आहाहा! **अतीन्द्रिय सुखरूप....** यह '**तोषं**' का अर्थ किया। '**तोषं**' अर्थात् अतीन्द्रिय सुख। '**बिभ्रत्**' का अर्थ किया परिणमा। शब्द-शब्द में। आहाहा! भगवान जो अशुद्ध पुण्य-पाप के भावरूप हो, वह दुःखरूप था। उन्हें छोड़कर जहाँ आनन्दस्वरूप का पूर्ण अनुभव हुआ और चारित्र रमणता हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान के

बाद भी आस्रव था, उसे रोककर स्वरूप में लीन हुआ तो आनन्द को धारण किया। आनन्दरूप परिणमन हो गया। आहाहा! समझ में आया? वह चारित्र है। आहाहा! **'बिभ्रत् तोषं'**

और कैसा है? 'परमं' उत्कृष्ट है। अतीन्द्रिय आनन्द परम उत्कृष्ट हुआ है। यहाँ तो अन्तिम पूर्ण दशा की बात करते हैं न? पूर्ण आस्रव को रोककर पूर्ण स्वभाव में आया तो उत्कृष्ट संवर धर्म की उत्कृष्ट दशा हो गयी। अथवा उसका दूसरा अर्थ है। परम का अर्थ दूसरा एक है। एक तो **'परमं' उत्कृष्ट है।** और एक परम अर्थात् परा-मा। परम में एक परा और मा ऐसे दो संस्कृत शब्द हैं। परा-मा। परामा अर्थात्? परा अर्थात् उत्कृष्ट और मा अर्थात् आनन्द की लक्ष्मी प्रगट हुई। लिखा है इसमें, हों! संस्कृत में था तो इसमें लिख रखा है। परामा है। वह परम उत्कृष्ट है न? वहाँ लिखा है। संस्कृत में है। परम अर्थात् उत्कृष्ट आनन्द हुआ। पूर्ण आस्रव रुककर पूर्ण आनन्द, केवलज्ञान, केवलदर्शन हुआ तो पूर्ण आनन्द हुआ। एक बात।

दूसरी बात—परा-मा। परा-उत्कृष्ट, मा-अपनी लक्ष्मी जो आनन्द और ज्ञान थी, वह पर्याय में उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रगट हो गयी। समझ में आया? आहाहा! सर्वत्र यह अर्थ करते हैं। पण्डितजी! इसकी टीका में यह है। उसमें है। संस्कृत टीका में परा-मा है। अन्यत्र बहुत जगह आता है। परन्तु उसमें यह है। देखो! **'परमं'** परम शब्द है न? **'परमं'** परा-उत्कृष्टा। मा—**'सर्ववस्तु परिछेदिका ज्ञानशक्तिरूपालक्ष्मी विद्यते'** संस्कृत है। यहाँ तो सब देखा है न। आहाहा!

आत्मा, आत्मा में प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करके मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का आस्रव रोका। पश्चात् समकिती-ज्ञानी को भी अभी शुभाशुभपरिणाम आते हैं। उस शुभाशुभभाव को रोककर स्वरूप में लीन हुआ। चारित्र रमणता हुई। तो कहते हैं कि उससे परामा—उत्कृष्ट अर्थात् अनन्त आनन्द और अनन्त लक्ष्मी प्रगट हुई। यह धूल की लक्ष्मी तुम्हारी नहीं। बालचन्दजी! यह सेठिया रहे, नहीं? करोड़ोंपति-धूलपति। धूल का पति माने... यह तो कहा नहीं? निर्जरा अधिकार में आता है। भैंस होती है न भैंस? उसका पति तो पाड़ा होता है। इसी प्रकार जड़ लक्ष्मी का स्वामी हो, मानता है कि मैं

उसका पति, वह तो जड़ है। यहाँ तो ऐसा है, भाई! यहाँ कहीं मक्खन-बक्खन नहीं है। ऐसा पाठ है निर्जरा अधिकार में। जैसे पति पत्नी का पति है। वैसे नरेन्द्र—नर का इन्द्र राजा, वैसे भैंस का पति पाडा। वैसे लक्ष्मी का पति जड़। लक्ष्मी जड़ है, और उसे मेरी माने, वह जड़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो भी उसकी दुनिया में कीमत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया गहल—पागल है तो करे न! दुनिया पागल है तो पागल, पागल की कीमत करे। आहाहा!

यहाँ तो जिसे आत्मलक्ष्मी प्रगट हुई... परम कहा न? परम। परा-मा। आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव पूर्ण रुक गये और पूर्ण शुद्धता जो अन्तर लक्ष्मी, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, सुखादि था, वह परमलक्ष्मी, महालक्ष्मी, उत्कृष्ट लक्ष्मी दशा में प्रगट हुई। शक्ति में तो थी, वस्तु में तो थी। आहाहा! वह तो अनादि है। आत्मा में अनन्त आनन्द और ज्ञान तो अनादि के हैं। अज्ञानी को भी आत्मा में तो अनन्त ज्ञान-आनन्द पड़े ही हैं। आहाहा! परन्तु उसका अपने में भान होकर अनुभव होकर, आस्रव को रोककर जो संवरदशा पूर्ण प्रगट हुई, वहाँ पराकाष्ठा, उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रगट हो गयी। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द अरिहन्त पद और परमात्म पद परमलक्ष्मी प्रगट हुई। अपनी लक्ष्मी थी, वह प्रगट हो गयी। समझ में आया? धूल की लक्ष्मी है, वह तो मिट्टी-धूल है। आहाहा!

शास्त्र में एक लेख है कि मैंने बहुत पैसे इकट्ठे किये थे। करोड़ों-अरबों। अब मरण के समय हाय... हाय... ऐसे खींचता है... लक्ष्मी के पास जा। ढ़ेर कर, प्रार्थना कर कि मैंने तेरे लिये बहुत पाप किये, अभी कुछ शरण दे। तेरे लिये जिन्दगी गँवायी, वर्ष गँवाये, मनुष्य की मेरी जिन्दगी अफल गयी। पैसे में रुका। ढ़ेर कर पैसे का। जाकर प्रार्थना कर अब। कि तेरे लिये मैंने (पाप) किये। मुझे कुछ शरण दे अब। हाय... हाय... शरीर में दुःख होता है, पीड़ा होती है, वेदना होती है, सहन नहीं होती। लक्ष्मी कहती है कि मैं तो जड़ हूँ। मूर्ख है, मेरे पास आया है। श्वेताम्बर में ऐसी बात आती है। दृष्टान्त है। और वह कैसा? सिकन्दर। सिकन्दर बादशाह। सिकन्दर बादशाह में है।

सिकन्दर बादशाह ने देश को बहुत हैरान करके अरबों रुपये इकट्ठे किये, अरबों रुपये। एकदम मृत्यु को प्राप्त हुआ। मरण से पहले कहता है—मैंने इतनी लक्ष्मी इकट्ठी की, मुझे कोई शरण नहीं। अरे! मैंने डॉक्टर, वैद्य... क्या कहा जाता है उन्हें? हकीम। हकीम रखे। लाखों रुपये के उत्तराधिकार बाँधे। मुझे अभी कोई शरण नहीं। मैं अभी दुःखी होता हूँ। अरबों रुपये पड़े हैं। आहाहा! 'मारो जनाजो वैद-हकीमोने खभे उपडावजो।' सिकन्दर अन्त में मरते समय कहता है कि मेरा जनाजा इन हकीम के कंधे पर उठवाना। किसी ने मुझे मदद नहीं की, ऐसी दुनिया को खबर पड़ती है। सेठ! दवा रखते हैं यह सेठ इनके लड़के को। दवाखाना रखते हैं। लड़का है न छोटा तो वहाँ रोकते हैं। वह यहाँ कहते हैं। समझ में आया? सब बात सुनी हुई तो हो न! देखा नहीं परन्तु। छोटा भाई है न एक? ... रखे उसे दवाखाने में। ... इतना समय जाये उसमें। आहाहा!

सिकन्दर कहता है कि अरे! मैंने देश को लूटकर, देवालय को लूटा, अरबों पैसे (रुपये) इकट्ठे किये। खाली हाथ जाता हूँ। ऐसे हाथ रखता है। हाथ में कुछ पाई दी नहीं। वैद्यों को मेहनताना बाँध दिया हकीमों को। वे सब खड़े-खड़े देखते हैं। अब इतना तो काम करना कि मर गया तो हकीम के कन्धे पर उठवाना। आहाहा! गायन बोलते थे। अब भूल गये। वह गायन पहले बोलते थे।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! यहाँ क्या है? कि आत्मा में अनन्त ज्ञानरूपी लक्ष्मी पड़ी है। आत्मा में अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दरूपी लक्ष्मी पड़ी है। आत्मा में अतीन्द्रिय ईश्वरता-प्रभुता पड़ी है। आत्मा में अनन्त से अनन्त-अनन्त स्वच्छता पड़ी है। अनन्त स्वच्छता प्रभु में पड़ी है। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! वह त्रिकाली स्वच्छता अनन्त-अनन्त तुझमें पड़ी है, प्रभु! आहाहा! वह जिसे स्वच्छता और अनन्त ज्ञान और आनन्द का आश्रय लेकर, आस्रव को रोककर जिसने अपनी पर्याय में अनन्त लक्ष्मी प्रगट की है, तो कहते हैं कि वह पराकाष्ठा—तेरी उत्कृष्ट महालक्ष्मी तुझे प्रगट हुई। कहो, समझ में आया? आहाहा!

एक व्यक्ति था, सेठ! हमने तो बहुत देखा हो न! निवृत्ति, पूरी जिन्दगी निवृत्ति।

यहाँ तो ८८ वर्ष हुए। ९० में दो कम। पहले से निवृत्ति थी। घर की दुकान और उसमें से निवृत्ति ली। ६८-६९ वर्ष से तो निवृत्ति है, दुकान छोड़े हुए। एक सेठ था। गाँव में बहुत काम करता था। फिर ऐसी पीड़ा और ऐसा मरण आया। सेठिया देखने जाये। इज्जतदार लोग सेठिया। देखने जाये। कैसे है ? भाई! अरेरे! मैंने मेरा कुछ किया नहीं। मैंने यह गाँव की पंचायत में रुककर मेरी जिन्दगी व्यर्थ गई। आँसू की धारा बहे, मरते समय।

मुमुक्षु : यह और ऐसा कहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और दूसरा। अपने नाम नहीं देते हैं। यह खुशालभाई थे, दामनगर के। व्यक्ति लौकिक में बहुत। सब गाँव को जहाँ हो वहाँ सहायता / मदद करे। परन्तु मरते हुए... यह खिंचता है। यहा शूल (दर्द) उठता है। अरेरे! दोनों आँखों से आँसू की धारा। नगरसेठ दामोदर सेठ देखने जाये। नगरसेठ दामोदरसेठ थे। भाई! मैंने जिन्दगी में मेरा कुछ नहीं किया। मैंने इस समाज और गाँव की पंचायत में रुककर मेरी जिन्दगी गयी अब। क्या करूँ ? रोता है। देह छूट गयी और दामोदर सेठ को भी मरते समय पैर खिंचता थे। बड़ा गृहस्थ। दस लाख। तब दस लाख। ६० वर्ष पहले। वह कहे, मुझे अन्दर इतनी पीड़ा होती है। कोई बन्दूक मारो तो मैं छूट जाऊँ। इतनी वेदना होती है। वायु की वेदना होती है। वा-वा। समझते हो ? वा नहीं कहते ? वा की वेदना। गृहस्थ, बड़े गृहस्थे। चालीस हजार की उपज थी। वह तो तब ६० वर्ष पहले। मरते हुए कहे, खिंचता हूँ... खिंचता हूँ... खिंचता हूँ... कोई मुझे खींचता है। ऐसा कहते थे। आहाहा! घर में जागीर, घर में घोड़ियाँ, घोड़े। एक-दो घोड़े, ऐसा नहीं। घोड़ों की लाईन। बड़ा गृहस्थ राजा जैसा। चालीस हजार की तो आमदनी थी। तब ६० वर्ष पहले की बात है और एक गाँव घर में था। 'मुळियापाट' गाँव घर में (था)। दस हजार की आमदनीवाला छोटा गाँव। गाँवपति थे। मरते हुए... आहाहा! कौन पति ? प्रभु! आहाहा! शरण लेनेयोग्य तो अन्दर भगवान आत्मा है। उसकी शरण ली नहीं और बाहर में झपट्टे मारे।

यहाँ कहते हैं कि जिसने अन्दर में शरण लिया और आस्रव का निरोध करके जिसने आत्मा का संवर प्रगट किया, वह उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रगट की। आहाहा! है ? '**परमं**' इसका अर्थ यह है। परम का अर्थ उत्कृष्ट है और परा-मा—उत्कृष्ट लक्ष्मी जिसे प्रगट

हो गयी। सच्चिदानन्द प्रभु जैसी शक्ति थी, वैसी पर्याय में पूर्ण आनन्दादि प्रगट हो गयी। आहाहा! तब पूर्ण आस्रव रुका। समझ में आया? आहाहा!

और कैसा है? 'अमलालोकं' आत्मा के अवलम्बन से कैसे आनन्द और ज्ञान प्रगट हुए? **'अमलालोकं' सर्वथा प्रकार, सर्व काल, सर्व त्रैलोक्य में निर्मल है...** यह **'अमलालोकं' 'अम्लानं' 'एकं'** जिसका प्रकाश अमल है। **सर्वथा प्रकार, सर्व काल, सर्व त्रैलोक्य में निर्मल...** दशा प्रगट हुई है। केवलज्ञान, केवलदर्शन। आहाहा! समझ में आया? यह तो अध्यात्म की बातें हैं, प्रभु! यह शास्त्र है, वह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। उसमें तो गम्भीरता बहुत भरी है। समझ में आया? अकेला सम्यग्ज्ञान हो गया और सम्यग्दर्शन हुआ, इससे आस्रव रुक गया, बन्धन नहीं—ऐसा नहीं है। यहाँ यह कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी तीन कषाय के अव्रत का आस्रव होता है। तीन कषाय का दुःख होता है। पंचम गुणस्थान में दो कषाय का आस्रव और दुःख, मुनि को एक कषाय का आस्रव और दुःख, यह केवलज्ञान हुआ, उसमें बिल्कुल आस्रव नहीं और सर्व आनन्द है। समझ में आया? आहाहा! अन्तिम श्लोक है न? इसलिए पूर्ण संवर बताया। समझ में आया?

सर्वथा प्रकार से... और कोई कहता है, भाई! केवल पूर्ण दशा प्रगटी तो साथ में कुछ मलिन दशा होगी, अल्पज्ञान होगा। केवलज्ञान अपने स्वरूप के अवलम्बन से पूर्ण आस्रव का रोध होकर हुआ है, वह तो **सर्वथा प्रकार, सर्व काल,...** सर्वथा प्रकार से और सर्व काल और **सर्व त्रैलोक्य में...** तीन लोक और लोकालोक का निर्मल ज्ञान हुआ। समझ में आया? पूर्ण संवर हुआ तो यह दशा प्रगट हुई। **त्रैलोक्य में निर्मल है—साक्षात् शुद्ध है।** ऐसा कहते हैं। यह क्या कहा? कि शक्ति और स्वभाव तो शुद्ध था ही, अब पर्याय में साक्षात् शुद्ध हुआ। क्या कहा यह? कि द्रव्य जो वस्तु है भगवान, वह तो शुद्ध ही है। शक्ति शुद्ध है, स्वभाव शुद्ध है, पवित्रता का पिण्ड है, परन्तु पर्याय में जब संवर प्रगट हुआ तो पर्याय में सर्वथा शुद्ध हो गया। आहाहा! साधक था, तब सर्वथा शुद्ध नहीं था। सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ। परन्तु अभी आस्रव है और अशुद्ध है। छठवें गुणस्थान में भी अभी राग का आस्रव है और अशुद्ध है और

दु:ख है। यहाँ कहते हैं कि साक्षात् शुद्ध हुआ। पर्याय में अब पूर्ण शुद्ध हो गया। समझ में आया? आहाहा!

अरे! इसे अपने स्वरूप की महिमा और माहात्म्य कभी आया नहीं। इसके पुण्य के परिणाम और पाप के और उसके फल की महिमा। इसे करोड़ रुपये आये, पैसे आये, पुण्य किया। पूर्व के पुण्य का फल है। धूल में भी नहीं। समझ में आया? वह पर की महिमा में अपनी महिमा छूट गयी है। जिसे अपनी महिमा आयी, उसे पर की महिमा छूट गयी है। चाहे तो चक्रवर्ती पद हो, इन्द्रपद हो परन्तु समकिती को पर की महिमा छूट गयी है। समझ में आया?

और कैसा है? 'अम्लानं' सदा प्रकाशरूप है। यह सर्वज्ञ जो केवलज्ञान आनन्द हुआ, वह सदा सादि-अनन्त काल रहेगा। समझ में आया? आहाहा! 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में। अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान सहित जो। अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा। अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा।' श्रीमद् राजचन्द्र का गुजराती है। उसका हिन्दी बनाया है। राजमल (पवैया ने) तुमको दिया न? कुन्दकुन्दाचार्य का। पवैया ने हिन्दी बनाया है। आहाहा! 'अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा।' आहाहा! मैं पूर्णानन्द और केवलज्ञान प्राप्त करके आनन्द में झूलनेवाला होऊँ, वह अवसर कब आयेगा? वह कब आयेगा? कि अपने पुरुषार्थ से आयेगा। समझ में आया? आहाहा! बाकी धूलधाणी।

जवानी २५-३० वर्ष का युवक, पुष्ट शरीर, रूपवान शरीर हो ऐसे पुष्ट। वह जीवांत पड़ेगी, बापू! एक व्यक्ति को सिर में जीवांत पड़ी। जीवडा समझते हो? कीड़े-कीड़े। ऐसे करे तो कीड़े (गिरे)। यह तो मिट्टी है, धूल है। उसमें क्या है? आहाहा! उसकी महिमा गानेवाले को आत्मा की महिमा नहीं आती और जिसे आत्मा की महिमा आयी तो उसे परपदार्थ की महिमा नहीं आती। आहाहा! अन्तिम श्लोक बहुत ऊँचा है। आहाहा!

सदा प्रकाशरूप है। और कैसा है? 'एकं' निर्विकल्प है। अब तो अभेद हो गया। वह साधक था, वहाँ तक तो शुद्धता भी थी और अशुद्धता भी थी। दोनों थी। अब एकरूप निर्विकल्पदशा हो गयी। आहाहा! समझ में आया? जैसा उसका स्वरूप एकरूप

निर्विकल्प अभेद है, वैसी पर्याय में निर्विकल्प शुद्धता एकरूप हो गयी। अब भेद रहा नहीं। सूक्ष्म बात तो है, प्रभु! क्या हो? यह मार्ग तो ऐसा है। लोगों में तो बाहर में फँसाकर मार डाला है। यह यात्रा करो तो धर्म होगा। होती है यात्रा, भक्ति होती है। अशुभ से बचने के लिये। अशुभवंचनार्थ, ऐसा पाठ है। शुभ होता है। परन्तु वह धर्म नहीं। वह संवर नहीं, वह निर्जरा नहीं, वह आत्मलक्ष्मी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है? 'एकं' निर्विकल्प है। पूर्ण निर्विकल्प हो गया, अभेद। परमात्मदशा हो गयी। संवर करते-करते पर से भिन्न करते... करते... करते... करते... करते... स्थिर होकर जहाँ केवलज्ञान हो गया, वह एकरूप दशा हो गयी। **शुद्ध ज्ञान ऐसा है जिस प्रकार हुआ है, उसी प्रकार कहते हैं**—कैसे हुआ ऐसा केवलज्ञान? पूर्ण आनन्द की दशा हुई कैसे? आहाहा! **'कर्मणा संवरेण' ज्ञानावरणादिरूप आस्रवते थे...** आठ कर्म जो थे, उसके आस्रवते थे। **जो कर्मपुद्गल उनके निरोध से।** आहाहा! आस्रव निरोध हो गया। रुक गये। कर्म रुक गये और आस्रव रुक गया। इस प्रकार दशा प्रगट हुई। आहाहा! ऐसी बातें हैं। कर्म की तो निमित्त से बात करते हैं। कर्म का कारण जो आस्रव है, वह रुक गया तो कर्म रुक गये और पूर्णानन्द की दशा प्रगट हुई। समझ में आया?!

कर्म का निरोध किस प्रकार हुआ? देखो अब। यह विशिष्टता कहते हैं। **'रागग्रामप्रलयकरणात्'** आहाहा! राग शब्द एक शब्द लिया है। राग में तो मिथ्यात्व, प्रेम, द्वेष, विषय-वासना, क्रोध, मान, माया, लोभ सब राग में आते हैं। वह विकार है। वह **'रागग्राम' 'ग्राम'** अर्थात् समूह। यह राग का समूह। आहाहा! **'रागग्रामप्रलयकरणात्'** राग का अर्थ **राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध विभावपरिणाम,...** आहाहा! उसका **'ग्राम'** अर्थात् समूह। **असंख्यात् लोकमात्र...** दया, दान, व्रत के शुभभाव असंख्य प्रकार के और पाप के भी भाव असंख्य प्रकार के। वे सब असंख्य प्रकार के जो भाव हैं, वे रुक गये। भेदज्ञान करते-करते रुक गये। आहाहा! ... विकाररूपी सत्ता का नाश कर दिया। अपनी सत्ता को विकसित किया और आस्रव की सत्ता का नाश कर दिया। आहाहा! आस्रव का एक अंश भी नहीं रहा, ऐसा कहते हैं। सत्ता नाश। आहाहा! पुण्य-पाप के

विकल्प आते थे, मुनि को भी आते थे, उन सबकी सत्ता का नाश कर दिया। आहाहा!

मूल से सत्तानाश... '**प्रलय**' है न? '**प्रलय**'। '**प्रलय**' शब्द है न? '**प्र**' अर्थात् विशेष और '**लय**' अर्थात् नाश। '**प्रलय**' है। '**प्रलय**' किया। '**प्र**' विशेष '**लय**' नाश किया। इसका अर्थ यह किया। **मूल से सत्तानाश, उसके करने से।** '**प्र**' अर्थात् मूल में से '**लय**' नाश। ऐसा अर्थ किया। '**प्रलय**'-'**प्र**' मूल में से, '**लय**' नाश। पुण्य और पाप के विकल्प, वे सब आस्रव हैं, उनका मूल में से नाश कर दिया। आहाहा! उनका नाश करने से, **मूल से सत्तानाश, उसके करने से।** केवलज्ञान आदि उत्पन्न हुए, ऐसा कहते हैं।

ऐसा भी किस कारण से? 'शुद्धतत्त्वोपलम्भात्' शुद्धचैतन्यवस्तु, उसकी साक्षात् प्राप्ति, उससे। आहाहा! शुभाशुभभाव का मूल सत्ता से नाश और शुद्ध तत्त्व की जो शक्ति थी, स्वभाव था, वह पर्याय का शुद्ध तत्त्व का लाभ हुआ। पूर्ण लाभ हुआ। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसमें तो भाई मस्तिष्क... ध्यान दे, तब समझ में आये, ऐसा है। अनन्त काल से मूल चीज़ समझ में आयी ही नहीं। कुछ न कुछ... कुछ न कुछ... शल्य में रुक गया। आहाहा!

'शुद्धतत्त्वोपलम्भात्' शुद्धचैतन्यवस्तु, उसकी साक्षात् प्राप्ति, उससे। शक्ति तो थी, पर्याय में साक्षात् पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई। आहाहा! अन्तिम गाथा (कलश) है न? पूर्ण संवर हो गया। सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण साक्षात् दशा प्राप्त हुई। वह भेदज्ञान से। राग से भिन्न करते... करते... करते... स्वरूप में स्थिर हो गया तो साक्षात् प्राप्ति हो गयी। आस्रव का नाश और इसकी प्राप्ति, उसका व्यय और इसका उत्पाद। अशुद्धता की सत्ता में से व्यय अर्थात् नाश-व्यय और शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि-उत्पाद और ध्रुव तो है ही। आहाहा! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। आस्रव का नाश अर्थात् व्यय और संवर की पूर्ण शुद्धता का उत्पाद और ध्रुव तो है ही। ध्रुव के आश्रय से तो यह उत्पत्ति हुई है। आहाहा!

यह संवर और आस्रव की पर्याय के आश्रय से भी संवर नहीं होता, ऐसा कहते हैं। वह तो त्रिकाली ध्रुव के आश्रय से ही पूर्ण दशा होती है। चौथे-पाँचवें गुणस्थान में समकित हुआ, ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ, वहाँ उस पर्याय में उतना संवर हुआ परन्तु उस संवर के आश्रय से नया संवर नहीं होता। ध्रुव के आश्रय से होता है। संवर तो पर्याय है।

पर्याय का आश्रय लेने जाये तो विकल्प-राग उत्पन्न होगा। आहाहा! समझ में आया? दया, दान, व्रत के विकल्प का तो आश्रय नहीं, परन्तु संवर उत्पन्न हुआ, उस पर्याय का भी अवलम्बन नहीं। ज्ञान जानता है कि है। अवलम्बन और आश्रय तो ध्रुव का है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, जिसमें अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति का गोदाम पड़ा है, उसका आश्रय है। समझ में आया? ऐसी बातें घण्टे में नयी-नयी निकलती है। सेठ कहते हैं थे न कल कि यह तो नवीन है। नवीन था तो उसमें से खलबलाहट हुई। सेठ! तुम्हारी बात सच्ची। यह बात थी नहीं। फेरफार था। प्रभु! यह ऐसा मार्ग। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है प्रभु, उसका जिसे अन्तर में साक्षात्कार हुआ, उसे आस्रव रुककर पूर्ण दशा की प्राप्ति होती है। आस्रव से... अभी तो यह तकरार होती है न? शुभयोग, वह धर्म मोक्ष का मार्ग है। यह मक्खनलालजी ऐसा कहते हैं। बड़े पण्डित हैं। शुभयोग, वह मोक्ष का मार्ग। तो यहाँ तो पहले से हम ऐसा कहते हैं। परन्तु कैलाशचन्दजी ने यह कहा कि शुभयोग, वह मोक्षमार्ग नहीं है। तब मक्खनलालजी ने चेलेंज दिया। चेलेन्ज देते हैं कि शुभयोग मोक्षमार्ग है। कल रात्रि में सुना न? मक्खनलालजी के सामने चेलेंज दिया नरेन्द्रकुमार ने कि हम चेलेंज देते हैं दो दिन में समाधान नहीं होगा। यहाँ तो एक-दो दिन में कुछ बात समझ में आये, ऐसा नहीं है। नरेन्द्र आये थे, मुम्बई आये थे एक बार। व्याख्यान में आये थे परन्तु बहुत लोग इसलिए... आहाहा! अब अभी (चेलेंज देते हैं)। इतने वर्ष हुए तब कहाँ गये थे? सो रहे थे?

मुमुक्षु : क्रिया करो, धर्म होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यह धर्म चलता था। उसमें यह बात बाहर आयी, ऐई! सेठ कहते हैं कि गड़बड़ खड़ी हो गयी। बात सच्ची। फेरफार चर्चा उत्पन्न हुई। बात तो सच्ची। आहाहा! और अब समाधान होता जाता है। कितने ही अब अनुकूल होते जाते हैं। बात तो भाई सच्ची है। सोनगढ़ की बात सच्ची है।

मुमुक्षु : उसे स्वीकार करें तो हमारी इज्जत जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारी इज्जत जाती है। कहा। कैसे? बाबूलाल जमादार फलटन में बहुत विरोध किया। यहाँ एक आया था। प्रियंकर नाम का। प्रियंकर शास्त्री बड़े। वे यहाँ कहे कि मेरे साथ उनकी बात हुई कि सोनगढ़ की बात तो सच्ची है। परन्तु हम बड़े हो गये, हम ठेकेदार हैं, क्या करें? हम यदि ऐसा कहें कि उनकी बात सच्ची है तो हमारे पास कोई आते नहीं और सब वहाँ चले जायेंगे। हम नरक-निगोद में जायेंगे परन्तु हमारी बात नहीं छोड़ेंगे। यहाँ भाषण किया। शास्त्री यहाँ आये थे। प्रियंकर नाम के शास्त्री। परन्तु अपने बाहर प्रसिद्ध नहीं करना, कहा। बाहर प्रसिद्ध नहीं करना। मार्ग यह। यह कहाँ कोई गुप्त बात है? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **शुद्धचैतन्यवस्तु, उसकी साक्षात् प्राप्ति, उससे। ऐसा भी किस कारण से?** देखो! '**शुद्धस्वरूपज्ञान, उसका प्रगटपना,... 'भेदज्ञानोच्छलन-कलनात्**' आहाहा! राग से भिन्न करते... करते... करते... करते... केवलज्ञान भेदज्ञान उत्पन्न हो गया। समझ में आया? **उसका निरन्तर अभ्यास।** इस विकल्प से भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसा निरन्तर अभ्यास। '**कलनात्**' अभ्यास। **भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध स्वरूप का अनुभव उपादेय है।** बस। अन्दर शुद्ध भगवान से उसकी पर्याय में शुद्धता आना, यह एक उपादेय है। आस्रव-बास्रव उपादेय है नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

— ७ —

निर्जरा अधिकार

कलश-१३३

(शार्दूलविक्रीडित)

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरान्धृत्वा परः संवरः
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा
ज्ञानज्योतिरपावृत्तं न हि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति।।१-१३३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अधुना निर्जरा व्याजृम्भते' [अधुना] यहाँ से लेकर, [निर्जरा] पूर्वबद्ध कर्म का, अकर्मरूप परिणाम [व्याजृम्भते] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है — निर्जरा का स्वरूप जिस प्रकार है, उस प्रकार कहते हैं। निर्जरा किसके निमित्त (किसके लिए) है? 'तु तत् एव प्राग्बद्धं दग्धुं' [तु] संवरपूर्वक [तत्] जो ज्ञानावरणादि कर्म, [एव] निश्चय से [प्राग्बद्धं] सम्यक्त्व के नहीं होने पर, मिथ्यात्व, राग, द्वेष परिणाम से बँधा था, उसको [दग्धुं] जलाने के लिए। कुछ विशेष — '(परः) संवरः स्थितः' संवर अग्रेसर हुआ है जिसकी, ऐसी है निर्जरा। भावार्थ इस प्रकार है — संवरपूर्वक जो निर्जरा सो निर्जरा, क्योंकि जो संवर के बिना होती है, सब जीवों को उदय देकर, कर्म की निर्जरा, सो निर्जरा नहीं है। कैसा है संवर? 'रागाद्यास्रवरोधतः निजधुरां धृत्वा आगामि समस्तं एव कर्म भरतः दूरात् निरुन्धन्' [रागाद्यास्रवरोधतः] रागादि आस्रवभावों के निरोध से, [निजधुरां] अपने एक संवररूप पक्ष को [धृत्वा] धरता हुआ, [आगामि] अखण्ड धाराप्रवाहरूप आस्रवित होनेवाले [समस्तं एव कर्म] नाना प्रकार के ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय इत्यादि अनेक प्रकार के पुद्गलकर्म को [भरतः] अपने वड़प्पन से [दूरात् निरुन्धन्] पास में आने नहीं देता है। संवरपूर्वक निर्जरा कहने पर जो कुछ कार्य हुआ, सो कहते हैं — 'यतः ज्ञानज्योतिः अपावृत्तं रागादिभिः न मूर्च्छति' [यतः] जिस निर्जरा द्वारा [ज्ञानज्योतिः] जीव का शुद्धस्वरूप, [अपावृत्तं]

निरावरण होता हुआ, [रागादिभिः] अशुद्धपरिणामों से [न मूर्च्छति] अपने स्वरूप को छोड़कर, रागादिरूप नहीं होता।।१-१३३।।

आसोज कृष्ण १, गुरुवार, दिनांक - २७-१०-१९७७, कलश-१३३, प्रवचन-१३२

कलशटीका, निर्जरा अधिकार, १३३ कलश है। निर्जरा अर्थात् क्या? कि आत्मा के स्वरूप का भान करके जिसने अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति प्रगट किये हैं, ऐसी दशा को संवर कहते हैं। संवर अर्थात् कि उसे नये कर्म नहीं आते। क्या कहा? सूक्ष्म बात है। यह आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप, परमब्रह्मस्वरूप आनन्द, उसका सम्यग्दर्शन में आनन्द का वेदन होने पर जो प्रतीति और ज्ञान और उसमें रमणता जितनी हो, उतना उसे संवर कहा जाता है। अर्थात् कि उससे अब नये कर्म नहीं आते। और आगे भी फिर सम्यग्दर्शन के बाद भी जो राग-द्वेष कर्म के निमित्त के उदय में होने से, ज्ञानी को भी, उनका आस्रव आने पर परमाणु, उसे भी जिसने रोका है। स्वरूप की स्थिरता द्वारा उस आस्रव को रोककर नये आवरण आना रुक गये हैं। अब उसे पूर्व जो मिथ्यात्व अवस्था में राग-द्वेष से जो कर्म बँधे हुए हैं, वे अभी ज्ञानी को पड़े हैं। वह ज्ञानी अपने स्वरूप में संवरपूर्वक उग्र प्रयत्न से चारित्र में, वह स्वरूप का चारित्र है, उसमें उग्र प्रयत्न से जिसे तपस्या कहा जाता है, उससे पूर्व के कर्म खिरते हैं। खिरते हैं, उसे निर्जरा कहते हैं। नि—विशेष झरना-खिरना। निर्जरा। नि—विशेष, झरना-खिरना। पूर्व के प्रारब्ध जो बँधे हुए थे, वे वर्तमान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान द्वारा नये कर्म आते थे तो रुके, परन्तु पूर्व के बन्ध जो हैं, उन्हें अब स्वरूप की विशेष शुद्धि और वैराग्य द्वारा पूर्व के कर्म खपते और झरते हैं, उसे निर्जरा कहते हैं।

निर्जरा के तीन प्रकार हैं। सूक्ष्म बात है। तीन प्रकार हैं। एक तो पूर्व कर्म के परमाणु बँधे हुए हैं, वह स्वरूप की स्थिरता द्वारा खिरे। खिरे, उसे निर्जरा कहा जाता है। अशुद्धता टले, उसे निर्जरा कहा जाता है। कर्म टले, उसे निर्जरा कहा जाता है। अशुद्धता गले-टले, उसे निर्जरा कहा जाता है और शुद्धता बढ़े, उसे भी निर्जरा कहा जाता है। ऐसी बात है। समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म।

मुमुक्षु : संवर किस गुण की पर्याय है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर चारित्रगुण की पर्याय है।

मुमुक्षु : श्रद्धागुण....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धागुण की पर्याय में मुख्य रहा। मुख्य है वह। यह अभी कहेंगे। संवर निज धुरा की निज पदवी धार रखी है। संवर ने निजपदवी धार रखी है। निज धुरा—यह शब्द आयेगा। जैसे कोई अमलदार या अधिकारी अपनी पदवी पर होता है न ? और उस पदवी को बराबर बनाये रखता है। उसी प्रकार संवर ने अपनी पदवी को बनाये रखा है। अर्थात् ? कि शुद्धस्वभाव आत्मा का, उसका सम्यग्दर्शन हुआ, उतना भी वह मिथ्यात्व और उस सम्बन्धी अनन्तानुबन्धी का आस्रव आता था, उसे रोका। इस अपेक्षा से सम्यग्दर्शन को संवर कहा जाता है। परन्तु सम्यग्दर्शन में भी आंशिक स्वरूप का आचरण है। अनन्तानुबन्धी गया इसलिए। इसकी अपेक्षा से भी उसे संवर कहा जाता है। और आगे बढ़ने पर... ऐसी बातें हैं। विशेष संवरपूर्वक उस निर्जरा को यहाँ (निर्जरा कहते हैं)। आत्मा के भान बिना पूर्व के कर्म उदय में आवे और खिर जाते हैं, ऐसी निर्जरा तो अनन्त बार की है। वह कहीं निर्जरा नहीं है। संवरपूर्वक, संवर ने अपनी पदवी को बनाये रखा है और उसपूर्वक वह शुद्धता बढ़ती है, संवर में शुद्धता तो है, पुण्य-पाप है, वे दोनों अशुद्ध हैं, उन्हें रोककर अमुक शुद्धता तो प्रगट हुई है, उसे संवर कहते हैं और शुद्धता की वृद्धि हो, उसे निर्जरा कहते हैं।

अशुद्धता का टलना, उसे भी निर्जरा कहते हैं। मिटती है इसलिए। कर्म का टलना जड़ का, उसे भी निमित्त की-पर की निर्जरा कहा जाता है। और आत्मभान द्वारा अनुभव से शुद्धि हुई है, सच्चिदानन्द प्रभु, शुद्ध आनन्दकन्द सहजात्मस्वरूप, सहजानन्द की मूर्ति मैं हूँ... आहाहा! ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूप के आचरण की स्थिरता हुई, उससे आगे बढ़कर राग-द्वेष भी कितने ही रोके, आगे गया तो, पाँचवें-छठवें गुणस्थान में। यह संवर की स्थिरता। इस संवर ने अपनी पदवी बनाये रखी है। और संवरपूर्वक कर्म की निर्जरा होती है, अशुद्धता गलती है, उसे यहाँ निर्जरा कहा जाता है। यह सब इतनी शर्तें हैं। बालचन्दजी! यह तो अपवास किये तो हो गयी निर्जरा। छठ

किया, अठ्ठम किया, अमुक किया—धूल भी निर्जरा नहीं होती वहाँ। वह तो एक शुभ विकल्प है और राग की एकताबुद्धि में है तो मिथ्यात्वसहित है। राग की मन्दता हो तो मिथ्यात्वसहित पापानुबन्धी पुण्य बाँधता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो नौ तत्त्व का वर्णन है न? तो जीव का, अजीव का, पुण्य-पाप का, कर्ता-कर्म का, आस्रव और संवर का। इन तत्त्व का अधिकार गया। अब निर्जरा, बन्ध और मोक्ष तीन का अधिकार बाकी है। पश्चात् अन्तिम सर्वविशुद्ध अधिकार। अब यह बात करते हैं। इसमें आयेगा, देखो!

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरान्धृत्वा परः संवरः
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा
ज्ञानज्योतिरपावृत्तं न हि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति।।१-१३३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— आहाहा! '**अधुना निर्जरा ब्याजृम्भते**' **यहाँ से लेकर...** '**अधुना**' अर्थात् यहाँ से शुरु करके। **निर्जरा अर्थात् पूर्वबद्ध कर्म का अकर्मरूप परिणाम प्रगट होता है।** भाषा देखो! भाई ने डाला है न? फूलचन्दजी (ने)। फूलचन्दजी ने यह जैनतत्त्व मीमांसा में, उसमें डाला है। खानिया चर्चा में। क्या? तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा पाठ है कि चार कर्म-घाति (कर्म) खिरते हैं, तब केवल (ज्ञान) होता है। तब उसका अर्थ वे कहते हैं कि देखो! कर्म खिरे, तब केवलज्ञान होता है न? तब अर्थ किया मैंने कि चार कर्म जो कर्मरूप थे, वे अकर्मरूप हुए। उसका परिणाम तो अकर्मरूप हुआ इतना। यहाँ केवलज्ञान हो, ऐसा उसका परिणाम नहीं है। आहाहा! यह भाषा है न यहाँ?

पूर्वबद्ध कर्म का अकर्मरूप परिणाम... सूक्ष्म बात है। जो पूर्व में बाँधे हुए कर्म हैं। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान, शान्ति आदि स्थिरता बढ़ी है। चौथे गुणस्थान में तो अभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूपाचरण का अंश है। वहाँ अभी आस्रव बहुत है। फिर पाँचवें में आगे जाने पर आस्रव थोड़ा है और शुद्धता बढ़ी है। आस्रव थोड़ा है और छठवें में भी आस्रव थोड़ा है और शुद्धि बढ़ी है, परन्तु अभी राग है, उतना आस्रव भी आता है।

अब यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जिस-जिस भूमिका में जितना राग का निरोध किया और स्वरूप की स्थिरता में संवर-निर्जरा संवर प्रगट किया, उस संवरपूर्वक पूर्व के कर्म जो मिथ्यात्व से बाँधे हुए हैं, वे पड़े हैं, उन्हें अब स्वरूप की स्थिरता द्वारा शुद्धि बढ़ाता है, अशुद्धि टलती है, उसकी दशा में (होता है) और कर्म दशा जो कर्मरूप थी, वह अकर्मरूप होकर उस जड़ की दशा में (हुआ)। समझ में आया? वहाँ ऐसा कहा था। फूलचन्दजी ने वहाँ खानिया चर्चा में बहुत चर्चा पण्डितों के सामने अकेले ने स्वयं की थी। क्षयोपशम और उनकी बहुत अच्छी स्थिति है। चार कर्म का नाश हुआ, इससे केवलज्ञान हुआ? कि चार कर्म कर्मरूपी पुद्गल की पर्याय थी, उसका नाश हुआ अर्थात् क्या? कि जो कर्मरूपी अवस्था थी, वह बदल गयी और अकर्मरूप हुई। इसका नाम चार कर्म का नाश। परन्तु उससे केवलज्ञान हुआ इसके परिणाम में, ऐसा नहीं है। केवलज्ञान तो अपने पुरुषार्थ से, स्वभाव का उग्र आश्रय लेकर केवलज्ञान की दशा जलहल ज्योति प्रगट की है। वह अपने पुरुषार्थ के द्रव्य के तीव्र आश्रय से की है। वह कर्म का नाश हुआ, इसलिए केवलज्ञान हुआ है, (ऐसा नहीं है)। सुमेरुमलजी! जरा एक थोड़ा न्याय बदले तो सब बदल जाता है।

यहाँ तो यह भाषा आयी न? **'अधुना' यहाँ से लेकर निर्जरा...** अर्थात् निर्जरा की व्याख्या। **पूर्वबद्ध कर्म का अकर्मरूप परिणाम...** इस निर्जरा की मात्र यही व्याख्या की। व्याख्या तो तीन है परन्तु यहाँ एक प्रकार की की। समझ में आया? आत्मा अपने शुद्धस्वरूप के भान में आया और शुद्धस्वरूप में शुद्धता शक्ति में से पर्याय में प्रगट की, शक्ति से तो पूर्ण परमात्मा है, परन्तु पर्याय में शक्ति की व्यक्तता प्रगट की, उतना उसे संवर हुआ। समझ में आया? अर्थात् कि उस प्रकार की अशुद्धता अब उसे नहीं होती। और उस प्रकार के कर्म भी नहीं आते। आहाहा!

अब यहाँ निर्जरा शुरु होती है। कि जो शुद्धता की शक्ति पूर्ण थी, उसका वेदन करके शक्ति में से व्यक्तता शान्ति, आनन्द और सम्यग्दर्शन की प्रगट की, उतना तो वह संवर है। संवर अर्थात् उस दशा ने नये कर्म आते थे उस प्रकार के रुके हैं। परन्तु पूर्व में बँधे हुए कर्म अभी हैं। अब यह चौथे गुणस्थान में भी पूर्व के बँधे हुए कर्म हैं, उन्हें

स्वरूप में लीन होने पर, वे कर्म अकर्मरूप परिणम जाते हैं। कहीं वस्तु का तो नाश होता नहीं। पुद्गल भी परमाणु है, जगत की चीज़ है। जैसे भगवान आत्मा अनादि शाश्वत है, वैसे परमाणु-यह रजकण भी अनादि हैं। यह कहीं नये हैं, ऐसा नहीं है। तो उन परमाणुओं की अन्दर में जो कर्मरूपी पर्याय है, वह व्यय होती है। व्यय अर्थात् अभाव होता है, उसका नाश। और नाश होकर उत्पाद किसका होता है? कि अकर्मरूप पर्याय का उत्पाद। कर्मरूप पर्याय का व्यय, अकर्मरूप पर्याय का उत्पाद, परमाणु तो ध्रुव है। आहाहा! ऐसा सब कहाँ? यह तत्त्वदृष्टि बहुत सूक्ष्म है। समझ में आया?

यह अकर्मरूप परिणाम हुए। परिणाम, देखा! परिणाम यह लड़के को परिणाम आता होगा, वह होगा? यह पढ़ता है और फिर परिणाम क्या आया, ऐसा नहीं कहते? परिणाम समझते हो? परिणाम को दूसरी भाषा में (क्या कहते हैं)? परीक्षा दी। हाँ, यह भाई ने कहा वह। यहाँ तो गुजराती भाषा याद रहती है। वह यह परिणाम नहीं। यहाँ तो परमाणुओं में कर्मरूपी पर्याय अर्थात् परिणाम थे, उस परिणाम का व्यय होकर अकर्मरूप पर्याय हुई, उसे अकर्मरूप परिणाम कहा जाता है। आहाहा! अभी यह पहले पद का अर्थ चलता है। शान्तिभाई!

'निर्जरा व्याजृम्भते' प्रगट होता है। देखा! आहाहा! शुद्धि की वृद्धि अब प्रगट होती है। शुद्धि-संवर तो हुई है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति जितनी प्रगट दशा (हुई), उतना संवर तो है, परन्तु उस संवर की मुख्यरूप से रहकर अब पूर्व के कर्म का क्षय अथवा झरना अथवा अशुद्ध का टलना और शुद्ध का बढ़ना, वह प्रगट होता है। आहाहा! **भावार्थ ऐसा है—निर्जरा का स्वरूप जिस प्रकार है, उस प्रकार कहते हैं।** कर्म का खिरना, अशुद्धता का टलना और शुद्धता का बढ़ना, ऐसा निर्जरा का स्वरूप है, वैसा यथार्थ कहते हैं। **'निर्जरा किसके निमित्त (किसके लिये) है? 'तु तत् एव प्राग्बद्धं दग्धुं' संवरपूर्वक...** प्रथम तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान शान्ति तो प्रगट हुई है, ऐसे **संवरपूर्वक जो ज्ञानावरणादि कर्म निश्चय से सम्यक्त्व के नहीं होने पर मिथ्यात्व, राग, द्वेष परिणाम से बँधा था...** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्शान्ति पाया, परन्तु मिथ्यात्व के समय बँधे हुए कर्म पड़े हैं। पूर्व में जो विपरीत श्रद्धा और राग-द्वेष थे, उनसे कर्म बँधे हुए पड़े हैं अभी। संवर हुआ परन्तु अभी कर्म खिरे नहीं। अटके हैं। जितना संवर हुआ,

उतने कर्म आना रुके हैं। समझ में आया? बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसा है, बापू यह तो! लॉजिक से... आहाहा! न्याय से इसे समझना पड़ेगा, भाई! ऐसा का ऐसा एक अपवास किया और हो गयी तपस्या और हो गयी निर्जरा। धूल में भी निर्जरा नहीं। यह कहते हैं, देखो!

संवरपूर्वक... अज्ञानी को अकेले कर्म का उदय आवे और खिर जाये, वह निर्जरा नहीं है। संवरपूर्वक। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई है, उस पूर्वक। आहाहा! **ज्ञानावरणादि कर्म निश्चय से सम्यक्त्व के नहीं होने पर मिथ्यात्व, राग, द्वेष परिणाम से बँधा था उसको... 'दग्धुं' जलाने के लिये।** संवरपूर्वक पूर्व के कर्म के नाश के लिये निर्जरा प्रगट होती है। ऐसा है। क्या कहा यह? कि जहाँ आगे भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि और सम्यग्दर्शन नहीं। उसे तो कोई पूर्व के कर्म खिरते हैं, ऐसा है ही नहीं। उसे तो पूर्व के कर्म उदय आवे, उसमें मिथ्यात्व से जुड़ जाता है और उसे नया कर्म बँधता है। उसे तो संवर भी नहीं और निर्जरा भी नहीं।

यहाँ तो संवरपूर्वक निर्जरा की व्याख्या है। अर्थात् कि जिसने पहले आत्मा के स्वभाव का भान करके स्वभावसन्मुख एकाग्र होकर संवर प्रगट किया है अर्थात् कि नये कर्म आने से रोका है, उस जीव को पूर्व के कर्म पड़े हैं, वे अब खिरने को तैयार होते हैं। समझ में आया? आहाहा! कहो, शान्तिभाई! कहाँ सब सुना हुआ कुछ नहीं मिलता और थोथे-थोथा की बातें। ऐसी की ऐसी जिन्दगी बितायी। ऐसा मार्ग है। आहाहा!

कहते हैं कि जहाँ आगे अभी शुभ-अशुभराग के साथ प्रभु वीतरागमूर्ति आनन्दकन्द नाथ की जहाँ तक राग और स्वभाव के साथ (बीच में) एकताबुद्धि है, वहाँ तक तो वह मिथ्यादृष्टि है। उसे कर्म का उदय आकर खिरता है, वह निर्जरा ही नहीं। वह तो विपाक आकर खिर जाता है। वह कहीं निर्जरा नहीं। निर्जरा तो जिसने आत्मा का ज्ञान करके, भान करके शुद्धता प्रगट की है, उसे पूर्व में अशुद्धता के भाव से बँधे हुए कर्म वर्तमान में संवरपूर्वक शुद्धता की वृद्धि होने से कर्म खिरते हैं, उसे यहाँ निर्जरा कहा जाता है। गजब! इसमें एक शब्द आड़ा-टेढ़ा जाये तो फेरफार पड़ जाये, ऐसा है। ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा!

देखो! है न? **भावार्थ इस प्रकार है—संवरपूर्वक जो निर्जरा, सो निर्जरा,...** है। है? संवरपूर्वक अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश प्रगट हुआ है, ऐसी संवरदशापूर्वक जो शुद्धि बढ़ती है और आगे बढ़ने पर कर्म खिरते हैं, उसे यहाँ निर्जरा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! **क्योंकि जो संवर के बिना होती है...** देखो! जिसे अभी आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश प्रगट नहीं हुआ, वह संवर बिना जो होता है, **सब जीवों को उदय देकर कर्म की निर्जरा, सो निर्जरा नहीं है।** वह तो कर्म का उदय आकर खिरता है परन्तु वह कहीं निर्जरा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! कितना सीखना इसमें लोगों को? नव तत्त्व नव तत्त्वरूप से है। एक-दूसरे में मिलावट नहीं होती, ऐसा कहते हैं। वरना नव तत्त्व नहीं रहते। आहाहा!

संवर के बिना होती है सब जीवों को.... देखा! सर्व जीवों को। निगोद के अनन्त जीव हैं, उन्हें भी पूर्व के कर्म हैं, वे उदय आकर खिर तो जाते हैं। कर्म जो बाँधे हुए हैं, वे तो उदय आवे, तब खिरते ही हैं परन्तु वह निर्जरा नहीं है। उसे निर्जरा नहीं कहा जाता। वह तो विपाक निर्जरा है। यहाँ तो अविपाक निर्जरा अर्थात् कि आत्मा के शुद्ध चैतन्य की सावधानी हुई है, इसलिए उसे अन्तर में उतने प्रकार का संवर हुआ है। उस संवरपूर्वक जो शुद्धि बढ़े, उसे यहाँ निर्जरा कहा जाता है। समझ में आया? वह **सर्व जीवों को...** निगोद से लेकर सभी जीव पूर्व में बाँधे हुए कर्म होते हैं, उतना उदय तो आता है। उदय आकर खिर जाता है। वह कहीं चीज़ है? वह तो अनन्तकाल से अज्ञानी, अभव्य, भव्य सबको होता है। समझ में आया? आहाहा!

आत्मद्रव्य जो है, वह तो अनन्त शक्ति की संख्या से अनन्त गुण का सागर है। ऐसा जो आत्मा, उसकी जब अन्तर्मुख होकर उसकी प्रतीति और उसका ज्ञान होता है, तब जितनी संख्या में गुण हैं, वह सब संख्या में उसकी पर्याय में व्यक्तता (होती है), उन गुणों की व्यक्त-प्रगट दशा हो, उसे संवर कहते हैं। समझ में आया? वह तो सुना हो कि अपने अपवास करें तो पूर्व का कर्म खिर जाता है। लो! संक्षिप्त.... धूल भी नहीं। सुन न! तेरे लाख अपवास कर और करोड़ अपवास कर। परन्तु अभी आत्मा क्या है, उसके भान की भूमिका संवर तो प्रगट हुआ नहीं। संवर बिना निर्जरा कैसी? आहाहा! समझ में आया?

वह **निर्जरा, सो निर्जरा नहीं है।** है ? वह तो सर्व जीवों को होती है, उसमें क्या ? पूर्व में बँधा हुआ है, वह तो उसकी अवधि पूरी हो, इसलिए उदय तो आवे; और आकर खिर भी जाये, उससे क्या निर्जरा है ? वह धार्मिक दशा है ? बिल्कुल नहीं। आहाहा! **कैसा है संवर ?** अब संवर कैसा है ? जो संवर प्रमुख होकर अपनी पदवी को बनाये रखकर खड़ा है, उसे अब निर्जरा होती है, ऐसा कहना है। यह अमलदार और अधिकारी नहीं कहते कि अपनी पदवी पर था। क्या कहते हैं वह ?

मुमुक्षु : कर्तव्य पर। ड्यूटी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ड्यूटी-ड्यूटी। बस, उस ड्यूटी पर। यह हमारे हुआ था न ? (संवत्) १९६३ में। ६३ के वर्ष। यह सब सुना हुआ। वह अफीम का था न एक व्यक्ति पुलिस ? वह कहे कि मैं मेरी ड्यूटी पर खड़ा था और यह निकले। अफीम की एक पोटली लेकर व्यक्ति निकला। एकदम झूठा। मात्र दुकान पर बक्षीस लेने आया था और ओपीयन-ओपीयन। अफीम का वह। इसलिए कहा भाई! तुम्हारे साथ मुझे क्या सम्बन्ध है ? यह माल रेल में आवे, उसके साथ सम्बन्ध (होता है), तो वह तो बक्षीस ले। तो भी आठ आने लो। तो कहे, नहीं। एक रुपया (दो)। यह बड़ा विवाद हुआ। ६३ की बात है। १९६३। फिर विवाद हुआ और उसमें से हमारे ऊपर केस लगाया। और दो व्यक्ति इकट्ठे होकर जरा मारा भी सही उसे। इकट्ठे सब थे, उसे मारा था। मुझे उसने यहाँ एक लात मारी। और फिर दूसरे ने उसे मारा। इसलिए उसमें बड़ा केस चला। फिर कहे, मैं मेरी ड्यूटी पर खड़ा था। उसमें एक व्यक्ति अफीम लेकर निकला और यह लड़का उसके लोगों को, कुटुम्बियों को बुलाकर मुझे मारा। ऐसा बोले। वह ड्यूटी-ड्यूटी बोले। एकदम झूठा केस। एकदम अत्यन्त झूठा। एक महीने सात दिन केस चला। वडोदरा। उसका बड़ा था... क्या कहलाता है भाई वह ? प्रेसिडेन्ट। तब ६३के वर्ष में एक महीने का तीन हजार वेतन था उसका। प्रेसिडेन्ट था वडोदरा में। महीने में, एक महीने का तीन हजार वेतन। बड़ा प्रेसिडेन्ट। और जंगल में बड़ी वह क्या कहलाती है ? ऑफिस - कोर्ट। उसमें केस चला। और मेरी उम्र तब १७ वर्ष की थी। १७-१७। सत्रह कहते हैं न तुम्हारे ? दस और सात। फिर बड़ा केस चला। (रुपये) सात सौ खर्च

हुए। परन्तु वह कहे, मैं ड्यूटी पर खड़ा था। वह गोरा ऐसा, तीन हजार वेतनदार और मध्यस्थ, हमको ऐसे देखा। इसलिए वह गोरा कहे, यह क्या? यह तो बनिया। इसके मुख को तो देखो! यह अफीम की चोरी करे और क्या केस है यह? उसका जो मुख्य व्यक्ति (था), उसने ही देखकर एकदम इनकार किया। तो भी केस ३७ दिन चला। अन्त में प्रेसिडेन्ट ऐसा बोला कि यह केस कहाँ हुआ है? पालेज। किस स्थान में हुआ है? कोर्ट वहाँ ले जाओ। वहाँ कोर्ट लाये। जहाँ केस हुआ था न, वहाँ कोर्ट लाये। स्वयं। तीन हजार वेतन, उसे शंका पड़ गयी। सब निश्चित करते-करते अन्त में हस्ताक्षर कर दिये। केस एकदम झूठा है और उसने तो यहाँ तक कहा कि सेठियाओं! तुम्हें सात सौ (रुपयों) का खर्च हुआ है वह इससे ले लो। क्योंकि केस झूठा है। हमने फिर कहा, बेचारे गरीब व्यक्ति को जाने दो न! ऐसा ६३ के वर्ष में हुआ। फिर सहज ऐसा हुआ कुछ। कौन जाने कोई व्यक्ति उसे ऐसा मिला, उसने मार डाला। उसे कुछ विरोध होगा। वह पुलिस ओपियन था।

यहाँ तो यह कहना, मैं ड्यूटी पर था। इसी प्रकार यहाँ संवर कहता है मैं मेरी ड्यूटी पर खड़ा हूँ। '**धुरां**' कहा है यहाँ। देखो! आयेगा। '**निजधुरां**' यह शब्द पड़ा है, देखो! पाठ में है? '**निजधुरां**' अर्थात् अपनी पदवी, अपनी ड्यूटी। संवर अपनी ड्यूटी सम्हालकर खड़ा है अब। अर्थात् क्या? कि आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान, उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता का वेदन उसे खड़ा है, वह संवर है। वह संवर अपनी ड्यूटी पर खड़ा है। अब निर्जरा शुरु होती है, कहते हैं।

मुमुक्षु : सब कहीं तीन हजार का वेतन ड्यूटीवाले को नहीं दे सकते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उस दिन का बात है। तीन हजार वेतन अर्थात्? ऐसा बड़ा व्यक्ति था। हम कोर्ट में जहाँ प्रविष्ट हुए। पाँच व्यक्तियों को पकड़ा था। ऐसे देखा वहाँ वह और उसका एक अमलदार था। कारकून, बड़ा कारकून। उन लोगों को... उसमें खड़े रखते हैं न, कठघरे में खड़े रखा। कठघरे में खड़े रखना नहीं। खुल्ले खड़े रहो और जवाब दो। मेरी जुबानी (बयान) तीन घण्टे लिये। मेरी उम्र १७ वर्ष की। हमारे भाई थे गांडाभाई। बाहर निकले तो कहे, क्यों कानजी! क्या हुआ? मैं कहा, क्या होगा?

अपने था ऐसा सत्य कहा। यहाँ कुछ डर-बर नहीं। परन्तु वह गोरा और कारकून ऐसे दोनों। वह देखकर कहे, इन लोगों को बाहर खड़े रखो। यह व्यापारी व्यक्ति लगते हैं। इनके मुँह में अफीम का व्यापार और चोरी-बोरी दिखती नहीं। किसने ऐसा केस खड़ा किया है? अन्त में वहाँ आकर रद्द कर दिया।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, संवर अपनी ड्यूटी पर खड़ा है और अपनी पदवी बनाये रखता है। समझ में आया? सुमेरुमलजी! '**निजधुरां**' है न? लो! **कैसा है संवर?** देखो! '**रागाद्यास्त्रवरोधतः निजधुरां धृत्वा आगामि समस्तम् एव कर्म भरतः दुरात् निरुन्धन्**' बड़ा लम्बा शब्द है। **रागादि आस्त्रवभावों के निरोध से...** राग, पुण्य-पाप के आस्त्रवभावों का निरोध-रोकना। पुण्य और पाप के भाव जिसे रुक गये हैं। संवर प्रगट हुआ है। शुद्ध चैतन्यमूर्ति की ओर पक्ष में चढ़ गया है। इसलिए शान्ति प्रगट हुई है, सम्यक् प्रगट हुआ है। अर्थात् कि **रागादि आस्त्रवभावों के निरोध से...** निरोध अर्थात् अटक जाना, रुक जाना। '**निजधुरां**' है? वह **अपने एक संवररूप पक्ष को...** अर्थात् अपनी संवररूप पदवी को **धरता हुआ...** संवर ने अपनी ड्यूटी बनाये रखी है। कि मैं एक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो प्रगट हुए हैं, वह संवर है, अब उससे आस्त्रव आवे नहीं। ऐसी अपनी पदवी बनाये रखी है। आहाहा! सुजानमलजी! ऐसी बातें हैं।

चौथे गुणस्थान में समकिती-ज्ञानी को अभी तीन कषाय का आस्त्रव आता था। पाँचवें में दो कषाय का आस्त्रव आता था। छठवें में एक संज्वलन का आता था। यहाँ तो विशेष बात तो मुनि की प्रधानता से कथन है। जिसे सम्यग्दर्शन उपरान्त अन्दर चारित्र की रमणता, स्वसंवेदन आत्मा का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन उग्र, बढ़ गया है, वह संवर। आहाहा! समझ में आया? वह '**निजधुरां**' संवर ने अपनी पदवी को बराबर बनाये रखकर, ड्यूटी बनाये रखी है। वह संवर अपनी ड्यूटी में खड़ा है कि जितने प्रमाण में मैंने शुद्धता प्रगट की है, उतने प्रमाण में उसे आस्त्रव रुक गया है। अब आस्त्रव आता नहीं। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। यह तो अध्यात्म बातें, बापू! यह कहीं कथा-वार्ता नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ भगवानस्वरूप की यह तो वार्ता है। भगवान ने कही है और सन्तों ने बतायी है और सन्तों ने अपने भगवत्स्वरूप को प्रगट

किया है। आहाहा! यह तो चारित्रसहित की बात है न! आहाहा! ऐसी चारित्र अर्थात् स्वरूप की दृष्टि का अनुभव हुआ है, तदुपरान्त स्वरूप में चरना, रमना, जमना, जम गया है, अन्दर स्थिरता (हुई है), उसे यहाँ संवर कहते हैं। आहाहा! उस संवर ने अपनी पदवी को, अपने पक्ष को, अपनी स्थिति को, नये आवरण न आने देना, ऐसी ड्यूटी में संवर खड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

'**निजधुरां**'। '**निज**' अर्थात् अपनी, '**धुरां**' अर्थात् पक्ष अर्थात् पदवी। अपनी ड्यूटी की पदवी को संवर ने बराबर बनाये रखा है। जितना मुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उतना अब मुझे आवरण आयेगा नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग अब। सेठियाओं ने सुना भी न हो न जहाँ-तहाँ... सबकी बात है न? एक की कहाँ बात करना। बड़े सामने की (बात होती है)। निवृत्त कहाँ होते हैं? निवृत्ति भी नहीं मिलती। आहाहा! आत्मा क्या? संवर क्या? निर्जरा क्या? आस्रव क्या? बन्ध क्या? आहाहा!

यहाँ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कही हुई बात सन्त आढ़तिया होकर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। भगवान का माल तो यह है। आहाहा! जिसने आत्मा में से जो शक्ति की व्यक्तता का अंश कभी नहीं था, वह ज्ञान का अंश विकास था, वह तो एक साधारण अंश, वह कहीं मूल चीज़ नहीं है, अन्दर सम्यग्ज्ञान को स्पर्श कर जो ज्ञानदशा का अंश होता है, उसे ज्ञान कहते हैं। ऐसे तो ज्ञान का उघाड़ तो सबको है न आंशिक बाहर? वह ज्ञान नहीं। क्योंकि वह ज्ञान परलक्षी ज्ञान है। पर को जाननेवाला ज्ञान पराधीन। और एकान्त जाननेवाला ज्ञान वह तो पराधीन ज्ञान है। जो ज्ञान, ज्ञान का समुद्र प्रभु भरा है, उसमें डुबकी मारकर अन्दर स्पर्शकर जो ज्ञान निकाले, (वह ज्ञान है)। आहाहा! उसे शास्त्रज्ञान की आवश्यकता नहीं, उसे देव-गुरु की वाणी की भी जिसे आवश्यकता नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवानस्वरूप ज्ञान—प्रभु, वह ज्ञान का तो समुद्र है। उसमें जरा एकाग्र होकर जिसने ज्ञान व्यक्त किया है। पर्याय में सम्यग्ज्ञान स्व-परप्रकाशक शक्ति स्व को प्रकाशित कर पर को प्रकाशित करे, ऐसी शक्ति प्रगट की है। और उसमें उसकी प्रतीति की है कि मैं तो ज्ञान ही हूँ और आनन्द ही हूँ। आहाहा! नमूने के साथ

पूरा माल स्वीकार किया है। आहाहा! ऐसी स्वीकृति में जितनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की रमणता जितनी प्रगट हुई है, उतनी संवर ने अपनी पदवी-ड्यूटी को बनाये रखा है। आहाहा! अब वह वापस गिरता नहीं। अब वह आगे बढ़ता है। समझ में आया? आहाहा!

'निजधुरां' धरता हुआ। वह संवर की दशा को धारण करता हुआ। आहाहा! वह संवरपूर्वक निर्जरा, उसे निर्जरा कहा जाता है। इसके बिना निर्जरा, वह निर्जरा नहीं है। विपाक निर्जरा, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! **अखण्डधाराप्रवाहरूप आस्त्रवित होनेवाले...** संवर ने क्या किया है? जितना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्मलदशा प्रगट की है, उसने क्या किया है? कि **अखण्डधाराप्रवाहरूप आस्त्रवित होनेवाले... 'समस्तं एव कर्म' नाना प्रकार के...** अर्थात् अनेक-नाना अर्थात्। **नाना प्रकार के ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय इत्यादि अनेक प्रकार के पुद्गलकर्म को... 'भरतः'** इस संवर की महिमा से, अपने संवर की शान्ति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान की महत्ता से **'दुरात्' पास में आने नहीं देता है।** कर्म को आने नहीं देता। आहाहा!

यह तो एक-एक श्लोक ऐसे हैं न, बापू! यह तो भगवन्तस्वरूप की बात है, भाई! यह तू भगवानस्वरूप है, प्रभु! सब भगवान है। आहाहा! चेतना के पिण्ड हैं प्रभु सब। उसे अन्दर भान करके... भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ, आंशिक चारित्र हुआ, तथापि अभी पूर्व के कर्म बन्ध पड़े हैं और उसका उदय भी आता है और उसमें जितना जुड़ान, उतना आस्त्रव भी होता है। अब यहाँ संवर कहता है कि वह जुड़ने का अब मुझमें नहीं है। मैं तो संवर मेरी पदवी को बनाये रखकर पूर्व के जो कर्म हैं, उन्हें मेरी महिमा से, देखा ! **'भरतः'** अर्थात् मेरी महिमा से। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह मेरी महिमा से, मैंने मेरी महिमा से उसे रोका है। मैंने रंकाई से रोका है, ऐसा नहीं। आहाहा! **'भरतः'** का अर्थ यह। आहाहा! गजब बात है न! ऐसी बात कहाँ है? आहाहा! बापू! यह दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बातें, बापू! कहीं सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : दर्शन-ज्ञान-चारित्र से बड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा है वह। जितना संवर प्रगट हुआ है, वह महत्ता है। वह महत्ता ऐसी है कि नये आवरण को आने नहीं देती। आहाहा!

उसमें आता है न? 'जे दिशाये सिंह संचर्यो रजु लागी तरणा।' सिंह जहाँ चला और उसके पैर की रज जिस तृण को छुए, 'ऐ तरणा उभा सुखशे नहि चरे अेने हरणा' हिरण उसके तृण को स्पर्श नहीं करेंगे। उसके पैर स्पर्श हुए हैं उन्हें। रजकण उड़कर। इसी प्रकार जिसे सिंहरूपी भगवान आत्मा दहाड़ मारकर जागा है और आस्रव को तोड़ डाला है जिसने। आहाहा! यह अपने पहले आ गया है। शान्तरस में वीररस। आस्रव गर्व करता है, उसमें आ गया है। आहाहा! है तो शान्तरस, परन्तु वहाँ वीरता का वर्णन किया है। आहाहा!

'भरतः' अपने बड़प्पन से 'दुरात् निरुन्धन्' 'दुरात् निरुन्धन्' अर्थात् आने नहीं देता परमाणु को। जितना संवर प्रगट हुआ है, वह आवरण को अंश भी आने नहीं देता। आहाहा! **'दुरात् निरुन्धन्'** आहाहा! **संवरपूर्वक निर्जरा कहने पर जो कुछ कार्य हुआ सो कहते हैं**—अब कहते हैं कि संवरपूर्वक जितनी शुद्धता बढ़ी, अशुद्धता गयी, कर्म गये—टले हैं, यह क्या हुआ अब तब? क्या कार्य हुआ उसमें? आहाहा! **'यतः ज्ञानज्योति अपावृत्तं रागादिभिः न मूर्च्छति'** जो शुद्धता की वृद्धि करने से, भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ का उग्र आश्रय करने से जो संवरपूर्वक शुद्धि की वृद्धि हुई। आहाहा! संवर में शुद्धि तो थी, परन्तु विशेष प्रभु परमात्मा के अन्तर के अवलम्बन में गया, विशेष आश्रय किया, तब निर्जरा शुरु हुई। आहाहा!

वह ज्ञान **'रागादिभिः न मूर्च्छति' जिस निर्जरा द्वारा जीव का शुद्ध स्वरूप निरावरण होता हुआ...** आहाहा! अब राग में मूर्च्छित नहीं होता। आहाहा! संवर था, परन्तु अभी तीन कर्म के आस्रव थे। तीन कषाय के, दो के (आस्रव थे), उसमें से राग होकर अस्थिर हो जाता था। वह अब यहाँ संवरपूर्वक जहाँ अन्दर उग्र आश्रय लिया तो वह राग से मूर्च्छित नहीं होता और शुद्धि की वृद्धि करता है। ऐसा स्वरूप है। कपूरभाई! ऐसा यह स्वरूप है, लो! यह तो सेठिया। स्थानकवासी के सेठिया या दिगम्बर के सेठियाओं ने सुना नहीं सब। ऐसा मार्ग है, बापू!

मुमुक्षु : सभी ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े पर... होते हैं न अधिक। यह अब भी उसके... हो गये। कुछ निर्णय किया नहीं, विचार किया नहीं। सिर पर बैठे हों, वे कहें, जय नारायण। आहाहा!

'**ज्ञानज्योति अपावृत्तं रागादिभिः न मूर्च्छति**' आहाहा! अब चैतन्यज्योति जो संवर हुआ था, तथापि जो राग था, उसमें अस्थिरता थी, वह '**ज्ञानज्योति अपावृत्तं**' अब अस्थिरता होती नहीं। निर्जरा शुद्धि हुई, वहाँ अस्थिरता होती नहीं। स्थिर-स्थिर स्वरूप में स्थिर होकर शुद्धि की वृद्धि करता है, वह निर्जरा है। संवर, वह शुद्धि की उत्पत्ति है, निर्जरा, वह शुद्धि की वृद्धि है, मोक्ष है, वह शुद्धि की पूर्णता है। यह तीन प्रकार तत्त्व के। क्या कहा? संवर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश प्रगट हो, वह संवर-वह शुद्धि है। और अब पूर्व के कर्म खिरते हैं, स्वरूप में विशेष उग्रता स्थिर होता है, उतनी शुद्धि की वृद्धि है और मोक्ष अर्थात् शुद्धि की पूर्णता है। जैसा शुद्ध पूर्ण स्वभाव है, वैसी शुद्धि पूर्ण प्रगट हो जाये, इसका नाम मोक्ष है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्धि की उत्पत्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धि की उत्पत्ति, शुद्धि की वृद्धि और शुद्धि की पूर्णता, यह संवर, निर्जरा और मोक्ष। संक्षिप्त भाषा। आहाहा! शास्त्र भाषा तो जैसे बोले, वैसे बोलते हों न! संवर-निर्जरा-मोक्ष। परन्तु उसका अर्थ क्या? आहाहा!

आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, पूर्णानन्द के नाथ का लबालब भरपूर स्वभाव, उसे अवलम्बकर जितनी शान्ति और दर्शनादि प्रगट हुए, उतनी शुद्धि को संवर कहते हैं। वह संवर नये आवरण को आने नहीं देता। अब पूर्व के मिथ्यात्वभाव से बँधे हुए कर्म ज्ञानी को भी पड़े हैं, वह अपने आत्मा में विशेष एकाग्रता होने पर, शुद्ध के परमात्मदशा का विशेष अवलम्बन लेकर वह कर्म पूर्व का है, वह भी खिर जाता है और यहाँ शुद्धि की वृद्धि होती है; और शुद्धि की पूर्णता हो जाये, वह सिद्धपद—वह मोक्ष है। आहाहा! मोक्ष कोई दूसरी चीज़ नहीं। मोक्ष अर्थात् दुःख से पूर्ण छूटना और सुख से पूर्ण परिणम जाना। मोक्ष शब्द है न अर्थात् छूटना। पूर्ण दुःख से मुक्त और पूर्ण सुख की प्राप्ति, उसका

नाम मुक्ति। आहाहा! समझ में आया? यह तो पहले मांगलिक—मंगलाचरण करते हैं। निर्जरा अधिकार की पहली गाथा—पहला कलश है न, मांगलिक करते हैं। आहाहा! अब एक घण्टे में किस-किस प्रकार की बातें आवे। इसे तो बहुत ध्यान रखकर पकड़े तो (पकड़ में आये ऐसा है)। दुनिया सब क्या कहती है, क्यों कहती है, वह तो खबर नहीं? आहाहा! यह मार्ग अलग, नाथ! तेरे स्वरूप की शरण में जाना, वह पहला संवर और विशेष शरण में जाना, इसका नाम निर्जरा और पूर्ण शरण में जाना और पूर्ण प्रगट होना, इसका नाम मुक्ति। आहाहा!

सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, इसलिए हो गया, अब हमारे अब आस्रव भी नहीं और बन्ध भी नहीं और राग भी नहीं और दुःख भी नहीं। वह एक भी तत्त्व को कुछ समझे नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! परमात्मा जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि में यह आया है। सन्त संग्रह करके जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! 'मुख ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' तीन लोक के नाथ सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। ऐसे अनन्त तीर्थंकर हो गये। उनका मुख बन्द होता है। होंठ हिलते नहीं, कण्ठ हिलता नहीं। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनी' ॐ आवाज अन्दर से निकलती है। इच्छा बिना ध्वनि निकलती है। ॐ ध्वनि। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' सन्तों के नाथ गणधर, मुनि के झुण्ड के नाथ। गणधर अर्थ विचारे। 'रची आगम उपदेशे...' यह आगम का उपदेश करे। यह आगम। 'भविकजीव संशय निवारे' यह भव्य जीव। आहाहा! 'सुसत्यार्थ शारदा तासु भक्ति उर आण।' ऐसा कहकर बनारसीदास ने कहा। 'छन्द भुजंग प्रयात में अष्टक कहुं बखान' आठ गाथा करते हैं। 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता...' 'जिनादेश जाता...' जिनेन्द्र के आदेश में से निकली हुई, 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता।' भगवान के मुख से प्रसिद्ध हुई है वाणी। आहाहा! 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता।' प्रसिद्ध हुई है वाणी। समझ में आया? 'विशुद्ध प्रबुद्धा नमो लोकमाता' वह जिनवाणी लोकमाता है। विशुद्धा प्रबुद्धा। 'दुराचार दूरनिहरा शंकरानी, नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी।' तीन लोक के नाथ की वाणी जिनवाणी माता है, बापू! यह क्या है? भाई! आहाहा! उसका आश्रय लेकर जो ज्ञान प्रगट करे, वह माता जैसे बालक को पोसती है, उसी प्रकार इस वाणी में भाव आत्मा को पोसते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि वह संवरपूर्वक जो शुद्धता बढ़ी, वह क्या हुआ? ज्ञान अर्थात् आत्मा की दशा ऐसी प्रगट हुई कि जिसे '**अपावृत्तं**' अब ढँकना रहा नहीं—आवरण रहा नहीं। ऐसी दशा जिसे प्रगट हुई। आहाहा! '**ज्ञानज्योति अपावृत्तं रागादिभिः न मूर्च्छति**' **जिस निर्जरा द्वारा जीव का...** जो शुद्धि की वृद्धि से। भगवान आत्मा का उग्र आलम्बन लेकर जो शुद्धि की वृद्धि हुई, उससे **जीव का शुद्धस्वरूप निरावरण होता हुआ...** आहाहा! सन्तों ने तो भाषा बहुत संक्षिप्त करके जगत के उद्धार के लिये बातें की हैं, प्रभु! आहाहा! भाई! चौरासी के अवतार भवाब्धि में तू मर गया। चौरासी के अवतार में कहीं... उसके उद्धार का पंथ प्रभु तुझमें तू है। आहाहा!

कहते हैं कि ज्ञानज्योति '**अपावृत्तं**' प्रगट हुई। यह निर्जरा है। संवर तो था, शुद्धता तो थी, परन्तु जहाँ अन्तर का विशेष आश्रय लिया, भगवान का अपना, तो संवरपूर्वक शुद्धि '**अपावृत्तं**' आवरणरहित दिशा प्रगट हो गयी। समझ में आया? बापू! यह कथा-वार्ता नहीं है। यह तो आत्मधर्म की भागवत कथा है। यह भागवत कथा। वह तुम्हारे भागवत कथा (करे), वहाँ तो वह राग-द्वेष की कथा होती है। यह तो भागवत कथा। नियमसार की अन्तिम गाथा में कहा है। भागवत कथा है। आहाहा! भगवत्स्वरूप भगवान की यह कथा-वार्ता है। समझ में आया?

जीव का शुद्धस्वरूप निरावरण होता हुआ अशुद्ध परिणामों से अपने स्वरूप को छोड़कर रागादिरूप नहीं होता। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, संवर आंशिक प्रगट हुआ था, परन्तु जहाँ विशेष आश्रय लेकर शुद्धि बढ़ी। **अशुद्ध परिणामों से अपने स्वरूप को छोड़कर रागादिरूप नहीं होता।** प्रथम अभी संवर था परन्तु निर्जरा नहीं थी, तब तक अभी रागरूप था। धर्मी को भी रागदशा थी। अब कहते हैं कि निर्जरा होने पर राग-द्वेषरूप नहीं होता। समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१३४

(अनुष्टुप्)

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते।।२-१३४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तत् सामर्थ्यं किल ज्ञानस्य एव वा विरागस्य एव' [तत्सामर्थ्यं] ऐसी सामर्थ्य [किल] निश्चय से [ज्ञानस्य एव] शुद्धस्वरूप के अनुभव की है, [वा विरागस्य एव] अथवा रागादि अशुद्धपना छूटा है, उसकी है। वह सामर्थ्य कौन? 'यत् कोऽपि कर्म भुञ्जानोऽपि कर्मभिः न बध्यते' [यत्] जो सामर्थ्य ऐसी है कि [कोऽपि] कोई सम्यग्दृष्टि जीव [कर्म भुजञ्जानोऽपि] पूर्व ही बाँधा है ज्ञानावरणादि कर्म, उसके उदय से हुई है शरीर, मन, वचन, इन्द्रिय, सुख-दुःखरूप नाना प्रकार की सामग्री, उसको यद्यपि भोगता है तथापि [कर्मभिः] ज्ञानावरणादि से [न बध्यते] नहीं बँधता है। जिस प्रकार कोई वैद्य प्रत्यक्षरूप से विष को खाता है, तो भी नहीं मरता है और गुण जानता है, इससे अनेक यत्न जानता है, उससे विष की प्राणघातकशक्ति दूर करदी है। वही विष, अन्य जीव खावे तो तत्काल मरे; उससे वैद्य नहीं मरता। ऐसी जानपने की सामर्थ्य है। अथवा कोई शुद्रजीव, मदिरा पीता है परन्तु परिणामों में कुछ दुश्चिन्ता है; मदिरा पीने में रुचि नहीं है, ऐसा शूद्रजीव मतवाला नहीं होता। जैसा था, वैसा ही रहता है। मद्य तो ऐसा है, जो अन्य कोई पीता है तो तत्काल मतवाला होता है। सो जो कोई मतवाला नहीं होता, ऐसा अरुचिपरिणाम का गुण जानो। उसी प्रकार कोई सम्यग्दृष्टिजीव, नाना प्रकार की सामग्री को भोगता है; सुख-दुःख को जानता है परन्तु ज्ञान में शुद्धस्वरूप आत्मा को अनुभवता है; उससे ऐसा अनुभवता है कि ऐसी सामग्री, कर्म का स्वरूप है, जीव को दुःखमय है; जीव का स्वरूप नहीं, उपाधि है- ऐसा जानता है। उस जीव को ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध नहीं होता है। सामग्री तो ऐसी है जो मिथ्यादृष्टि के भोगनेमात्र से कर्मबन्ध होता है। जो जीव को कर्मबन्ध नहीं होता, वह जानपना की सामर्थ्य है-ऐसा जानना। अथवा सम्यग्दृष्टि जीव, नाना प्रकार के कर्म के उदयफल भोगता है परन्तु अभ्यन्तर शुद्धस्वरूप को अनुभवता है; इसलिए कर्म के उदयफल में रति नहीं उपजती, उपाधि जानता है, दुःख जानता है; इसलिए अत्यन्त

रूखा है। ऐसे जीव के कर्म का बन्ध नहीं होता है, वह रूखे परिणामों की सामर्थ्य है – ऐसा जानो। इसलिए ऐसा अर्थ ठहराया (कि) जो सम्यग्दृष्टि जीव के शरीर, इन्द्रिय आदि विषयों का भोग, निर्जरा के लेखे में है, निर्जरा होती है क्योंकि आगामी कर्म तो नहीं बँधता है; पिछला उदयफल देकर, मूल से निर्जर जाता है; इसलिए सम्यग्दृष्टि का भोग, निर्जरा है।।२–१३४।।

आसोज कृष्ण २, शुक्रवार, दिनांक - २८-१०-१९७७, कलश-१३४, प्रवचन-१३३

ऐसी बात है। भूतकाल में अरिहन्त हो गये, अभी है, भविष्य में होंगे। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। ऐसा पाठ है। फिर संक्षिप्त करके त्रिकाली निकाल दिया। णमो लोए सव्व साहूणं रखा। यह लोए सव्व साहूणं सबमें आता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं। उसमें त्रिकाल आता है। तीनों काल में विचरते अरिहन्तों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं को मेरा नमस्कार है। आहाहा! पंच परमेष्ठी। धवल में ऐसा पाठ है। त्रिकाली को नमस्कार। भविष्य में होंगे, उन्हें मैं अभी नमस्कार करता हूँ। आहाहा! पंच परमेष्ठी अर्थात्? जिनेन्द्रदेव अरिहन्त परमात्मा, जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान (हुआ), ऐसे अरिहन्त अनन्त हो गये, वर्तमान में विराजते हैं, भविष्य में अनन्त होंगे। सबको मैं नमस्कार करता हूँ—ऐसा पहले शुरुआत में आता है। आहाहा! उन अरिहन्तों ने जो आत्मज्ञान की बात की है, उसकी यह बात चलती है। जिनेन्द्रदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवली, जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान है। परमात्मा विराजते हैं। महाविदेह में सीमन्धर प्रभु वर्तमान में समवसरण में विराजमान हैं। आहाहा! वहाँ से यह वाणी आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ संवत् ४९ में गये थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह बनाया है। उसकी यह टीका है।

अपने निर्जरा अधिकार चलता है। १३४ कलश। शान्ति से, धीरज से समझनेयोग्य बात है, भाई! अनन्त काल हुआ, चौरासी के अवतार अनन्त किये, अनन्त बार राजा हुआ, अनन्त बार अरबोंपति सेठिया हुआ।

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते।।२-१३४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'तत् सामर्थ्य किल ज्ञानस्य एव वा विरागस्य एव' ऐसी सामर्थ्य निश्चय से शुद्ध स्वरूप के अनुभव की है,... क्या कहते हैं ? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। उसकी पर्याय में जो यह पुण्य-पाप आदि दिखते हैं, वह सब मलिनता है, दुःख है। उसका अन्तर स्वरूप तो अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। आहाहा! वह भी सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव परमेश्वर ने आत्मा कहा, वह आत्मा। दूसरे आत्मा कहते हैं, वह आत्मा इसने जाना नहीं और जाने बिना बातें की हैं। यह तो जिनेन्द्र सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्होंने अनन्त आत्मा और अनन्त रजकणों को प्रत्यक्ष देखा-जाना है। उन भगवान का ऐसा फरमान है कि जिसने यह आत्मा आनन्दस्वरूप, शुभ-अशुभ जो राग है पुण्य-पाप के भाव, उनसे भिन्न पड़कर पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव करे कि जिस अनुभव में उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसका नाम सम्यग्दर्शन परमात्मा त्रिलोकनाथ कहते हैं। जिसमें स्वभाव जो पूरा त्रिकाली ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान हो। उसका ज्ञान होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु है, तो उसका ज्ञान होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन-स्वाद आनन्द का आवे, उसे यहाँ ज्ञान और सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह कहते हैं कि जिसका सामर्थ्य **शुद्ध स्वरूप के अनुभव का है,...** आहाहा! यह शरीरादि तो मिट्टी, जड़, धूल है। यह तो पुद्गल है, यह कहीं आत्मा नहीं। यह तो जगत की मिट्टी है। अन्दर कर्म है। भगवान ने कहे आठ ज्ञानावरणादि, वह भी मिट्टी, सूक्ष्म धूल, बारीक धूल है। आहाहा! वह कहीं आत्मा नहीं। उसमें जो कुछ हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना का भाव हो, वह पापतत्त्व है; वह आत्मा नहीं। उसमें जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भक्ति आदि का भाव हो, वह पुण्यतत्त्व है; वह आत्मा नहीं। आहाहा! नव तत्त्व भगवान ने कहे। उसमें वह पुण्य और पाप के तत्त्व से भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द स्वामीनारायण में कहते हैं, वह नहीं, हों! यह तो सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु, उसका अन्तर में अनुभव होना। आहाहा! वह शुद्ध पवित्र पिण्ड प्रभु है, उसे अनुसरकर अनुभव। उसे अनुसरकर

अनुभव—वीतरागदशा प्रगट होना, आनन्द का स्वाद आना, वीर्य का अनन्त गुण की पर्याय की रचनारूप कार्य होना, ऐसा जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान... आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू!

वह जहाँ अन्दर में प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन और ज्ञान, तो कहते हैं कि वह तो शुद्ध स्वरूप का अनुभव है। आहाहा! जो अनादि काल से पुण्य और पाप के राग का अनुभव था, वह तो संसार था। वह दुःखरूप दशा थी। अब यहाँ उस राग से भिन्न पड़कर भगवान चिदानन्द प्रभु, परमेश्वर, जिनेश्वरदेव ने कहा हुआ जो आत्मा... 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल। प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल। निज सत्ताये शुद्ध अमने पेखता हो लाला।' हे नाथ! हे सर्वज्ञ परमेश्वर! आपके ज्ञान में तीन काल, तीन लोक ज्ञात होते हैं। उसमें हमारे आत्मा को आपने ऐसा देखा। 'शुद्ध (निज) सत्ताये शुद्ध सौने पेखता हो लाल।' हे परमात्मा! हमारे आत्मा को और प्रत्येक आत्मा को आप पवित्र शुद्ध सत्ता के स्वरूप से आत्मा को देखते हो। उसमें जो पुण्य और पाप तथा शरीर, वह तो पुण्य-पापतत्त्व और शरीर जड़तत्त्व में जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा जैसा परमात्मा शुद्ध सत्ता से जानते-देखते हैं, वैसा जो सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला, चौथा गुणस्थान अभी। श्रावक का पाँचवाँ है, वह दूसरी चीज़ है। अभी श्रावक है, वे समझने जैसे हैं। यह तो अन्तर की चीज़ जिसे अनन्त काल में प्रगट नहीं हुई... आहाहा! ऐसा जिसे आत्मा के आनन्द का अनुभव, शुद्ध स्वरूप का अनुभव (हुआ)। पुण्य-पाप का अनुभव वह तो अशुद्धता का—मैल का, दुःख का अनुभव है। भगवान आत्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव कहते हैं, प्रभु! तेरे आत्मा का तुझे अनुभव हो। आहाहा! यह पुण्य और पाप के राग से भिन्न पड़कर अन्तर्मुख दृष्टि होने पर जो आत्मा के आनन्द का अनुभव हो, वह अनन्त काल में कभी एक सेकेण्ड भी हुआ नहीं था। आहाहा! ऐसा जो आत्मा का अनुभव, उसका सामर्थ्य इतना है कि... यह देखो!

अथवा रागादि अशुद्धपना छूटा है,... दो। सूक्ष्म बात है, भगवान! जिसे आत्मा पुण्य और पाप के अशुद्ध मलिनभाव, वह भाव छूटे और पूर्णानन्द के नाथ के भाव के

अस्तित्व का अनुभव हुआ। आहाहा! ऐसी बात अब क्या हो? जिसमें भगवान की भक्ति, पूजा, दया, दान, व्रत, तप वह सब तो विकल्प है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। वह राग है। उस अशुद्ध राग का अनुभव छूटकर शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव हो, उसका ज्ञान हो, तब अशुद्ध रागादि का भी अभाव होता है, अर्थात् वैराग्य होता है। आहाहा! अपना स्वभाव पूर्णानन्द, पूर्ण ज्ञानघन है। हिरण की नाभि में कस्तूरी, परन्तु उस कस्तूरी की हिरण को कीमत नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा में अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की कस्तूरी भरी है, परन्तु अज्ञानी को उसकी कीमत नहीं। उसे कीमत बाहर, पुण्य करूँ, पाप करूँ, उसका फल मिले धूलादि। पाँच-पच्चीस करोड़ पैसा-धूल मिले, राज मिले, वहाँ हम मानो... ओहोहो! धूल में भी (सुखी नहीं), दुःखी है, भाई! सुन न! आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे की अपेक्षा तो सुखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी किसकी अपेक्षा से? सब दुःखी हैं। आहाहा! वह चले गये बेचारे, देखो न! सवेरे। चालीस करोड़ रुपये। शाहूजी शान्तिप्रसाद दिगम्बर के प्रमुख। हार्ट में सवेरे, कल समाप्त हो गये। चले गये। बड़े बँगले चालीस-चालीस लाख के हैं। दिल्ली में और कलकत्ता में। किस काम के? बापू! वह सब जड़ है। वह कर्म भी जड़ है अन्दर। और भाव होते हैं शुभ और अशुभयोग, वह वास्तव में प्रभु तुझे कठिन पड़े बहुत, यह दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, यात्रा का भाव, वह पुण्यभाव है, भगवान तो उसे जड़ कहते हैं। क्योंकि उस पुण्यभाव में-राग में आत्मा के चैतन्य का प्रकाश नहीं है। भगवान चैतन्यमूर्ति आनन्दस्वरूप है। उसमें यह पुण्य के भाव में आनन्द और ज्ञान के अंश का अभाव है। इसलिए उसे अचेतन कहा गया है। आहाहा!

चेतन तो प्रभु अन्दर ध्रुव नित्य अनादि-अनन्त, जिसमें ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता, ऐसी अनन्त शक्ति का रसकन्द पड़ा है, प्रभु! उसके सन्मुख देखकर, उसका अनुभव करना। आहाहा! और उसका अनुभव होने पर अशुद्ध रागादि का त्याग होना, वह वैराग्य। वस्तु के स्वरूप का भान होना, ज्ञान होना, वह ज्ञान और अशुद्ध रागादि का अभाव होना, वह वैराग्य। सम्यग्दृष्टि जीव को धर्म के पहले सोपानवाला जीव, धर्म की पहली सीढ़ीवाला जीव चौथे गुणस्थान में, उसे दोनों भाव एक साथ होते

हैं। कौन से दो ? '**ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल**' आहाहा! यह पूर्ण आनन्दस्वरूप का ज्ञान और राग का अभाव, यह ज्ञान और वैराग्य—दोनों सामर्थ्य समकिती को होती है। आहाहा!

अथवा रागादि अशुद्धपना छूटा है, उसकी है। वह सामर्थ्य कौन ? आहाहा! रागादि का अभाव होकर वैराग्य उसका नाम है। ऐसे स्त्री-पुत्र छोड़े, परिवार छोड़ा और दीक्षा ली, यह तो अनन्त बार लिया ऐसा। यह वैराग्य नहीं। वैराग्य तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं कि पूर्णानन्द के नाथ को, आत्मा को अनुभव करे और उस अनुभव के साथ में राग का अभाव (होना), उसे वैराग्य कहा जाता है। आहाहा! ज्ञान और वैराग्य धर्मी-समकिती जीव को एकसाथ दो बल होते हैं। स्वरूप का ज्ञान और राग का अभाव-वैराग्य, ऐसी दो शक्तियाँ समकिती—धर्म की पहली सीढ़ी-धर्म का पहला सोपान... आहाहा! उसे यह ज्ञान और वैराग्य के सामर्थ्य दोनों इकट्ठे-साथ में होते हैं। आहाहा! ऐसे पूर्णानन्द के अस्तित्व का ज्ञान और राग के अभाव का वैराग्य। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है, भगवान! क्या हो ? सत्य तो ऐसा है।

अनन्त काल हुआ, अनन्त-अनन्त भव हुए। साधु भी अनन्त बार हुआ, राजा राज छोड़कर पंच महाव्रत पालन किये, परन्तु वह तो राग की क्रिया है, बापू! तुझे खबर नहीं। उससे प्रभु अन्दर भिन्न है। ऐसे पूर्णानन्द के नाथ का सम्यग्ज्ञान और उसके साथ राग के अभावरूपी वैराग्य, वह समकिती जीव की पहली सीढ़ीवाले को दो सामर्थ्य साथ में होती है। आहाहा! ज्ञानी पूरी दुनिया से उदास है। चक्रवर्ती का राज था भरत चक्रवर्ती को। ऋषभदेव भगवान के पुत्र भरत चक्रवर्ती। छह खण्ड का राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव। अन्दर में हराम पर को अपना मानता हो तो। आहाहा! राग के परिणाम से लेकर सब चीज़ें, उनके प्रति उदास-वैराग्य है। आहाहा! और स्वरूप की पूर्णता के प्रति की प्रतीति का पूर्ण का ज्ञान है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! लोगों को कठिन पड़े, क्या हो ? सब दुनिया को जाना है न! आहाहा! तेरा मार्ग अलग, प्रभु! जिनेन्द्रदेव परमेश्वर (के अलावा) यह बात अन्यत्र कहीं है नहीं। जिनेन्द्र के अतिरिक्त ऐसी सत्य बात अन्यत्र कहीं नहीं है। यह बात भी

बहुत महँगी, अपूर्व बहुत, दुर्लभ बहुत। आहाहा! अभी तो सुनने को मिलती नहीं। जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव, वह राग है, वह धर्म नहीं। धर्म हो तो अनन्त बार यह किया है।

भगवान साक्षात् महाविदेह में विराजते हैं। सदा तीर्थंकर विद्यमान विराजमान ही होते हैं वहाँ। बीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे तो दूसरे बीस होते हैं। बीस मोक्ष पधारे तो दूसरे बीस होते हैं। महाविदेह में तीर्थंकर का तीन काल-तीन लोक में कभी भी अभाव नहीं होता। वहाँ यह जीव अनन्त बार जन्मा है। प्रत्येक अनन्त बार जन्मा है। तो उनके समवसरण में भी अनन्त बार गया है। आहाहा! तीन लोक के नाथ की वाणी समवसरण में सुनी है। परन्तु केवली आगळ रह गयो कोरो। वहाँ भी कोरा का कोरा रह गया। छूने नहीं दिया। यह भगवान कहते हैं, प्रभु! तू राग से भिन्न है। हमारे सामने देखकर तू सुनता है, वह राग है। उससे तेरी चीज़ भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

वह यह शब्द है। एक सज्झायमाला है न? चार सज्झायमाला है। एक सज्झायमाला में ढाई सौ, दो सौ-ढाई सो सज्झाय है। एक-एक सज्झाय में आठ-दस-पन्द्रह श्लोक हैं। ऐसी चार सज्झायमाला है। यह तो मैं वहाँ तब दुकान पर पढ़ता था। (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष। छोटी उम्र में। अभी तो ८८ हुए। यह तो ७०-७१ वर्ष पहले की बात है। वह चारों... क्या कहलाता है वह? सज्झायमाला। वह दुकान पर मँगाता था। पालेज में दुकान है न? भरूच और वडोदरा के बीच पालेज में पिताजी की दुकान है। अभी बड़ी दुकान है। मुझे तो ६४ वर्ष हुए दुकान छोड़े। दुकान तो बड़ी चलती है अभी। ३०-३५ लाख रुपये हैं। ३-४ लाख की आमदनी है, अभी। मुझे ६४ वर्ष हुए उसे छोड़े। सब देखा, बहुत जाना-देखा था।

यहाँ ऐसा कहते हैं, उसमें—सज्झायमाला में एक शब्द ऐसा आया था। दो शब्द याद है। 'केवली आगळ रह गयो कोरो।' क्या कहा यह? बहुत छोटी उम्र इसलिए कहा यह क्या? (संवत्) ६५-६६ की बात है। संवत् १९६५-६६। अर्थात् कि केवलज्ञानी की सभा में अनन्त बार गया। परन्तु लूखा। कोरा को हिन्दी में क्या कहते हैं? खाली खाली आया। आहाहा! यह राग की रुचि छोड़ी नहीं और राग की रुचि छोड़े बिना द्रव्यस्वभाव की रुचि होती नहीं। आहाहा! तो वहाँ कोरा रहा। दो शब्द आया है। पढ़ा

हुआ तो सब पढ़ा हुआ है। हजारों-करोड़ों श्लोक पढ़े हुए हैं। उसमें दो (शब्द याद रहे)। एक यह और एक दूसरा—'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो फिर पीछो पटकयो।' मैंने कहा यह क्या? मुझे दीक्षा लेनी थी। वैराग्य था। दुकान छोड़ देनी थी। उसमें यह आया। 'द्रव्य संयम से...' बाहर के क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रतादि अनन्त बार पालन किये परन्तु आत्मदर्शन और सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो।' दीक्षित होकर पुण्य के परिणाम इतने किये, पंच महाव्रतादि (पालन किये) कि जिससे नौवें ग्रैवेयक गया। भगवान ने यह चौदह ब्रह्माण्ड को देखा है, उसमें नौवें ग्रैवेयक गया। ग्रैवेयक अर्थात् यह गर्दन (के स्थान)। विमान है वहाँ। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। आहाहा! 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछो पटकयो।' परन्तु मिथ्यात्व गया नहीं। स्वरूप का अनुभव नहीं किया और राग के अभाव का वैराग्य नहीं किया। आहाहा! इससे नौवें ग्रैवेयक जाकर स्वर्ग के पुण्य के फल भोगकर नीचे पड़ा तिर्यंच में, ढ़ोर में और वहाँ से पड़कर नरक में, निगोद में चार गति में भटकता है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि ज्ञान और वैराग्य का सामर्थ्य ऐसा है कि '**यत् कोऽपि कर्म भुञ्जानोऽपि कर्मभिः न बध्यते**' **जो सामर्थ्य ऐसी है कि कोई सम्यग्दृष्टि जीव...** है? **पूर्व ही बाँधा है, ज्ञानावरणादि कर्म...** पूर्व के बाँधे हुए ज्ञानावरणीय आदि कर्म होते हैं। समकिती को होते हैं न? पूर्व में बाँधे हुए। **उसके उदय से हुई है...** वह पूर्व के बाँधे हुए कर्म हैं, उसके उदय से क्या हुआ? कि यह शरीर मिला। धूल। यह तो मिट्टी है। **शरीर-मन...** यह मन मिला एक। हृदय में मन है। विचार आत्मा करे, तब यहाँ हृदय में एक मन है। **वचन**- यह वाणी जड़ है। मन जड़, वाणी जड़, शरीर जड़—तीनों जड़ हैं। आहाहा! यह सब कर्म के उदय की सामग्री है। आहाहा! आत्मा के शत्रु कर्म, उस कर्म का सब विस्तार और फैलाव है सब। आहाहा!

यह **पूर्व ही बाँधा है, ज्ञानावरणादि कर्म...** आदि है न? आठ कर्म है न? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, अन्तराय, (नाम), गोत्र। आठ कर्म। यह पूर्व में बँधे हुए कर्म सम्यग्दृष्टि को भी पूर्व के कर्म के कारण सामग्री मिले बाहर में। चक्रवर्ती का पद मिले। भरत चक्रवर्ती। आहाहा! **शरीर-मन-वचन-इन्द्रिय...** यह जड़ इन्द्रियाँ। यह मिट्टी है न? आँख। पूर्व के बाँधे हुए को कर्म के निमित्त से इन्द्रियाँ

मिली। **सुख-दुःख...** सुख-दुःख अर्थात्? अनुकूल सामग्री और प्रतिकूल सामग्री। सुख-दुःख कल्पना नहीं। पूर्व के पुण्य के कारण यह पैसा-बैसा धूल मिले। पाँच-पच्चीस लाख, करोड़-दो करोड़, पाँच-दस करोड़। वह सब धूल है। उसने माने हुए सुख में वह निमित्त है। इसलिए उसे-धूल को सुख की सामग्री कहा जाता है। अच्छी स्त्री, अच्छे पुत्र, दुकान अच्छी, मुनिम अच्छे, व्यापार अच्छा दो-पाँच लाख महीने में पैदा करे। मुनिम अच्छा काम करे। सेठिया दुकान में जाये तो मुनिम काम करता हो तो पाँच-पाँच लाख की आमदनी महीने में (हो)। आहाहा! हृदय भर आवे। आहाहा! हृदय भर आये, कर्म बँध जाये उसे। वह तो सब जड़ की सामग्री, प्रभु! तेरी नहीं। वह कर्म से प्राप्त संयोग... आहाहा! तेरी चीज़ से वह भिन्न चीज़ है। उसे यहाँ सुख-दुःख (कहा)। सुख-दुःख अर्थात् सुख-दुःख की कल्पना नहीं लेना यहाँ। सामग्री लेना। यह पैसा, स्त्री, पुत्र, परिवार, पाँच-पचास लाख के बँगले, करोड़ के-दो करोड़ के बड़े बँगले सब, वह सुख की सामग्री कहलाती है। अज्ञानी मानता है न? और दुःख दरिद्रता, नरक में, पशु में अवतरित हुआ। वह सब कर्म की सामग्री के फल हैं, प्रभु! है?

सुख-दुःखरूप नाना प्रकार की सामग्री... नाना अर्थात् अनेक प्रकार। अनेक प्रकार की सामग्री कर्म के कारण बाहर से मिले। आहाहा! देखो न! वह सेठ गुजर गये। अब उन्हें चालीस लाख का तो बँगला है। आहाहा! चालीस करोड़ रुपये। परन्तु इससे अपना लो न वह गोवा का शान्तिलाल खुशाल। दो अरब चालीस करोड़ रुपये उसके पास हैं। गोवा में है। अभी गुजर गया। डेढ़ वर्ष पहले गुजर गया। उनकी बहिन की लड़कियाँ अपने यहाँ बालब्रह्मचारी है। चौसठ लड़कियाँ यहाँ बालब्रह्मचारी हैं, उसमें दो हैं। शान्तिलाल खुशाल, पडनाळा का था। पडनाळा का या वह? पाणसणा। खबर है पाणसणा गये थे। पाणसणा का वहाँ गया था। गोवा-गोवा गया तब कुछ नहीं था। फिर पैसे हुए दो अबर चालीस करोड़। वह अभी डेढ़ वर्ष पहले मर गया। उसके घर में चालीस लाख के बँगले हैं गोवा में। दस-दस लाख के दो बँगले। साठ लाख के बँगले हैं। मर गया मुम्बई में पाँच मिनिट में। यह हार्टफेल। दुखता है, मुझे कुछ दुखता है। बुलाओ डॉक्टर को। डॉक्टर आने से पहले... देह की स्थिति पूरी काल में होगी, बापू! इन्द्र और नरेन्द्र कोई रख नहीं सकता। आहाहा!

इन्द्र स्वयं मर जाते हैं। डॉक्टर मर जाते हैं क्षण में सब। उसकी स्थिति है। संयोगी चीज़ है। स्थिति प्रमाण रहेगी। भगवान अन्दर भिन्न चिदानन्द प्रभु है न? आहाहा! उसकी जिसे खबर नहीं, उसके ज्ञान और वैराग्य के बल का सामर्थ्य नहीं, वह इस कर्म की सामग्री में मूर्च्छित हो जाता है, कहते हैं। आहाहा! हम सेठ हैं और हम राजा हैं। हमारे लड़के काम-कर्मी जगे हैं। कर्मी अर्थात् आमदनी करनेवाले। उन्हें कर्मी कहते हैं न? वह कहीं धर्मी तो नहीं। महीने में दो-दो लाख पैदा करे। आठ लड़के हैं। सोलह लाख (हुए)। गये, अभी पोपटभाई गये न? यहाँ पोपटभाई नहीं बैठे थे? दो करोड़ रुपये। छह लड़के हैं। अभी मुम्बई गये। बड़ी आमदनी। मूल वढवाण के हैं। आहाहा! उसमें—धूल में क्या? कहते हैं, प्रभु! वह सब कर्म की सामग्री है। क्या कहते हैं अब इसमें?

मुमुक्षु : हमारी होशियार से काम....

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार किसका? ऐसा कि यह होशियार वकील थे न? रामजीभाई होशियार थे। ३५ वर्ष पहले कोर्ट में जाते थे। पाँच घण्टे के दो सौ रुपये लेते थे। यह होशियारी के कारण होगा न? धूल में भी होशियारी के कारण नहीं।

मुमुक्षु : लोग तो बहुत कहते।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग तो गहल-पागल, पागल के गुणगान करे। वह तो पूर्व के पुण्य परमाणु थे तो उसके कारण पाँच घण्टे के दो सौ रुपये लेते थे रामजीभाई कोर्ट में। ३५ वर्ष पहले, हों! अभी तो उसकी कीमत बहुत बढ़ गयी है। आहाहा! यह दलील करना, वह तो जड़ की भाषा है, प्रभु! होशियारी तो, क्षयोपशम तो यहाँ रहा। उसके कारण बाहर पैसा मिले? धूल के। बुद्धि के बारदान देखे नहीं हमने? बारदान अर्थात् बोरी जैसे। पाँच-पाँच लाख महीने में पैदा करते हैं अभी। बुद्धि के बारदान, और बुद्धि के खां। महीने में दो हजार पैसा करना हो तो पसीना उतरता है। यह क्या होशियारी से मिलता है? सेठ! नहीं? यह सेठिया रहे बड़े दोनों। करोड़पति है। दोनों भाई हैं। होशियार से मिले होंगे यह सब पैसे? धूल में भी नहीं, ऐसा कहते हैं। यह क्या कहते हैं यहाँ? वह तो कर्म के कारण सामग्री मिली है। पहले सुनावे कि इसके पास यह था परन्तु है धूल। ऐसा।

मुमुक्षु : पहले आप पैसे की महिमा करो...

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा नहीं। उसके पास कितने है इतना बतलाकर और वह सब भिखारी-गरीब है। भगवान ऐसा कहते हैं। वे रंक हैं। शास्त्र में वरांका शब्द आता है। अपनी लक्ष्मी की खबर नहीं और धूल लक्ष्मी के भिखारी हैं। ऐई! सेठ! यह तो दोनों बड़े सेठ हैं। बुन्देलखण्ड के बादशाह हैं दोनों। बड़े करोड़ों (रुपये हैं)। बड़ा बीड़ी का बड़ा धन्धा है। धूलधाणी हवा-पानी है, बापू! वह तो कर्म की सामग्री है, भाई! यहाँ तो दूसरा कहना है।

मुमुक्षु : परन्तु वह सब धन्धा करने में मेहतन कितनी करनी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मेहनत की नहीं। विकल्प किया था, क्या किया था वहाँ? रामजीभाई ने क्या किया था वहाँ? पुण्य और पाप के विकल्प किये थे वकालत में। वाणी तो जड़ की थी। और पैसे मिले हैं, वह तो पूर्व के पुण्य के कारण मिलते हैं। ऐई! शान्तिभाई! रामजीभाई अपनी बात सुनाते हैं। ऐसा है, बापू! यह तो बड़े-बड़े बहुत होते हैं न! आहाहा!

भगवान परमेश्वर ऐसा कहते हैं, प्रभु! जिसे आत्मा का ज्ञान और अनुभव हुआ, और राग से जिसे वैराग्य हुआ, उसे पूर्व के कर्म पड़े हैं, उसके फल में यह सामग्री मिलती है। यह सामग्री कही न? **शरीर-मन-वचन-इन्द्रिय-सुख-दुःखरूप नाना प्रकार की सामग्री, उसको यद्यपि भोगता है...** सम्यग्दृष्टि उसके सम्बन्ध में खड़ा होता है; इसलिए भोगता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? **तथापि ज्ञानावरणादि से नहीं बँधता है।** आहाहा! उसे वह अशुभभाव आता है, उसे काला नाग जानता है। कल आया था न? भाई! उस गुरु में, नहीं? भोग भुजंग। मुनि कैसे होते हैं? मुनि किसे कहते हैं, बापू! वह दशा अलौकिक बातें हैं। भोग भुजंग। भोग को तो काला नाग जाने। चक्रवर्ती के भोग, जिसे सोलह हजार देव तो सेवा में हैं। सोलह हजार! शकेन्द्र है यहाँ सौधर्मदेव लोक में। बत्तीस लाख विमान। उसे असंख्य देव हैं। चौरासी-चौरासी हजार देव उसके शरीर की रक्षा के लिये चारों ओर खड़े होते हैं। आहाहा! परन्तु इन्द्र सम्यग्दृष्टि है। पहले देवलोक में है। वह सम्यग्दृष्टि है, आत्मज्ञान है, वैराग्य है। आहाहा! इन सब सामग्रियों में अपनापना वह नहीं मानता। आहाहा! उसके सम्बन्ध में दिखती अवश्य

है। करोड़ों इन्द्राणियाँ होती हैं। परन्तु उसमें कहीं अपनापन अन्तर में मानता नहीं। अन्तर में मैं आनन्द और ज्ञानस्वरूपी त्रिकाल, वह मैं। पुण्य और पाप के भाव हों, वह भी मैं नहीं। और पूर्व के पुण्य-पाप से बँधे हुए कर्म के फलरूप से यह सामग्री मिली, वह मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! अब ऐसी बातें।

मुमुक्षु : भाई तो ऐसा कहते हैं कि बाबा हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाबा ही है। कब घुस गया है अन्दर? राग का भाग भी चैतन्यद्रव्य को स्पर्शा नहीं है, भिन्न है। इसने यह सुना कहाँ है? दया, दान, विकल्प जो हो, दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, तप, अपवास का विकल्प है, वह राग है। आत्मा उसे स्पर्शा नहीं। आत्मा तो निराला, निर्मल आनन्दकन्द है। आहाहा! ऐसी बातें अब। क्या हो? प्रभु! बात तो ऐसी है, भाई! आहाहा! भगवान परमात्मा वीतरागदेव के श्रीमुख से निकली हुई यह वाणी है। यह वाणी सुनने को मिलना भी पूर्व के महापुण्य के बिना मिलती नहीं। बाकी सब बहुत सुना। यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **ज्ञानावरणादि से नहीं बँधता है।** समकिती जीव... आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है। इसलिए उसे परसामग्री में कहीं रुचि जमती नहीं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि अर्थात् कि... श्रेणिक राजा। सुना है न? भगवान के समय में श्रेणिक राजा समकित प्राप्त हुए हैं, परन्तु समकित के पहले नरक का आयुष्य बँध गया था। बाद में समकित पाये हैं। आत्मा का अनुभव हुआ। आनन्द का स्वाद आया। तब जो नरक का आयुष्य लम्बा बँधा था तैंतीस सागर का, उसे तोड़ डाला, चौरासी हजार (वर्ष) का रहा। परन्तु जो वह आयुष्य बँध गया, वह छूटता नहीं। घी, गुड़ और आटा का जो लड्डू बँधा हो, उसमें से घी निकालकर पूड़ी नहीं तली जाती, आटा निकालकर रोटी नहीं होती। वह तो लड्डू खाना ही पड़ेगा। लड्डू में दो प्रकार— या उसे सुखावे दो-चार दिन और या उसमें घी डाले। परन्तु वह लड्डू तो इसे खाना ही पड़ेगा। इसी प्रकार जिसे परभव का आयुष्य बँधा हो, वह तो भोगना ही पड़ेगा, वहाँ जाना ही पड़ेगा।

श्रेणिक राजा पहले मुनि के निकट समकित को प्राप्त हुए थे। (वे) पहले बौद्ध थे परन्तु उनकी रानी—चेलना समकिती थी। आत्मज्ञानी, आत्मअनुभवी। उसने इस राजा को मुनि को निकट जाकर बोध प्राप्त कराया। फिर भगवान के समवसरण में गया है। महावीर परमात्मा के समवसरण में श्रेणिक राजा (गये हैं)। वहाँ तीर्थंकर गोत्र बाँधा है। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। परन्तु अभी वे नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति... आहाहा! ढाई हजार गये, साढ़े इक्यासी हजार बाकी हैं, तथापि अन्दर आत्मा के आनन्द का स्वाद है और राग से वैराग्य है, इसलिए पर में अपनापन कहीं नहीं मानते। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि समकिती जीव बाहर की सामग्री में खड़ा दिखाई दे और दुनिया ऐसा देखे कि यह तो भोगता है, ऐसा दिखाई दे, परन्तु वह भोगता नहीं। वह तो दुनिया की भाषा से भोगता है, ऐसा कहा। समझ में आया? वह **सामग्री, उसको यद्यपि भोगता है, तथापि ज्ञानावरणादि से नहीं बँधता है। जिस प्रकार कोई वैद्य...** दृष्टान्त देते हैं। आहाहा! जननी हो, जननी-माता। स्वयं की उम्र बीस वर्ष की हो और माता की चालीस वर्ष की उम्र हो। उसने शृंगार पहना हो ऐसे सब वस्त्र। वह लड़का माँ को देखे सही, परन्तु वह देखने की उसकी दृष्टि कैसी होती है? उसे विकारी भोगी जीव देखे और उसका पुत्र देखे। देखने-देखने में अन्तर है। और चालीस वर्ष की युवा माता सब शृंगार पहनकर (बैठी हो और देखे), परन्तु मेरी माँ है। नौ महीने इसके गर्भ में रहा हूँ। इसका शृंगार और सुन्दर रूप में उसे कहीं मोह नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार जिसे आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ है और पूर्व के अनेक सामग्री की सुन्दरता आदि हो, परन्तु उसमें वह अपनापन नहीं मानता। आहाहा! चालीस वर्ष की जवान माँ होती है न? बीस वर्ष का जवान (पुत्र हो)। आहाहा! परन्तु मेरी माँ है। उसके रूप पर इसकी नजर नहीं। उसके सुन्दर माँग (सिन्दूर भरने हेतु) की हों या गहने पहने हों, उस पर नजर नहीं है इसकी। आहाहा! यह मेरी माँ है, जननी है। इसके गर्भ में नौ महीने रहा। ऐसा धर्मी जीव पूर्व के कर्म की सामग्री को देखता है, परन्तु वहाँ मेरा है, ऐसा मोह नहीं पाता। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! अरे! अभी तो बहुत फेरफार हो गया है। सब खबर है। बाहर में मनवा दिया है,

बस। यह व्रत पालन करो, अपवास करो, यात्रा करो, यह उपधान करो तो हो गया धर्म। बापू! धर्म नहीं, भाई! यह धर्म की चीज़ बहुत महँगी है, भाई! आहाहा! यह तो अन्दर से विकल्प का छोटे में छोटा राग भगवान की भक्ति का जागे तो उससे भी भिन्न भगवान है, उसकी दृष्टि और अनुभव करे और राग से उदास हो जाए, तब उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा!

अभी तो साधु कहीं रह गये। यह तो बापू! उनकी दशायें अलग होती हैं। आहाहा! साधु तो आत्मा के आनन्द को अन्दर अनुभव करते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का बारम्बार अवलोकन करते हैं। आहाहा! उन्हें राग की आसक्ति कहीं नहीं होती। ऐसी दशा! सन्त जंगल में बसते हैं। आहाहा! जैन परमेश्वर की आज्ञा प्रमाण अन्दर आनन्द के स्वरूप में लवलीन। बाहर में जरा आवे विकल्प आवे महाव्रत का, भक्ति का, परन्तु उन्हें वह बोझा लगता है। आहाहा! उससे रहित प्रभु अन्दर है, उसका वेदन बारम्बार वे किया करते हैं। उन्हें जैनदर्शन में मुनि कहा जाता है। समझ में आया? यह और 'लोए' निकालकर क्या करता है कौन जाने? 'लोए' निकाल डालता है न? णमो लोए सव्व साहूणं। समाचारपत्र में आया है कल।

यहाँ तो प्रभु लोए का अर्थ यह कि जहाँ-जहाँ विराजते हों अरिहन्त, जहाँ-जहाँ सन्त आत्मा के आनन्द के वेदन करनेवाले कहीं ऊर्ध्व विराजते हों, उन सबको मेरा नमस्कार, ऐसा है। लोए अर्थात् लोक के दूसरे साधुओं को (ऐसा इसका अर्थ नहीं है)। वह सुशीलकुमार कहता है। स्थानकवासी है न? भाषण दे। देखो! लोए अर्थात् सब साधु इसमें आते हैं। जैन के और अन्य के सब। बिल्कुल खोटी बात है।

मुमुक्षु : अमेरिका गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चला गया, अमेरिका गया है। खबर है न, खबर है। स्थानकवासी है।

यहाँ तो लोए तो आत्मा के आनन्द का जिन्हें वेदन हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्द में जो लवलीन हैं, ऐसे परमात्मा चाहे जिस स्थल में हो, ऊर्ध्व हो, अर्ध्व हो। ऐसे आचार्य, उपाध्याय, मुनि ऊर्ध्व हों, अधो हों, कोई मेरुपर्वत पर ले गया हो, कोई नीचे हो, परन्तु

ऐसी जिनकी दशा अन्तर के आनन्द के वेदन में, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में, प्रचुर वेदन में पड़ा है, वह चाहे जिस स्थान में हो, उसे मेरा नमस्कार है, ऐसा है। वह चाहे जिस साधु को मेरा नमस्कार है, ऐसा इसमें नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : थे ही कब? जैन परमेश्वर ने जो मार्ग कहा, इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग है ही नहीं कहीं। आहाहा! इसके अतिरिक्त कहीं धर्म नहीं। आहाहा! तो साधु कहाँ से लाना दूसरे में? अभी इसके सम्प्रदायवाले को, साधु किसे कहना-इसकी खबर नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत अलग, नाथ! प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह भोग को भोगे तो भी बँधता नहीं। (क्योंकि) प्रेम नहीं, रुचि नहीं। आहाहा! बुखार में कड़वी दवा पीनी पड़ती है। (उसमें) प्रेम है? उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को आनन्द के स्वाद का अन्दर प्रेम है, उसे बाहर की स्त्रियाँ सुन्दर और राज और पाट (हो), भरत चक्रवर्ती को कहीं प्रेम नहीं। कहीं मेरी चीज़ नहीं। मेरी है वह मुझसे भिन्न नहीं। भिन्न है, वह मेरी नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं।

जिस प्रकार कोई वैद्य प्रत्यक्षरूप से विष को खाता है... वैद्य है न कोई? जहर सोमल खाता है। **तो भी नहीं मरता है और गुण जानता है,...** सोमल के गुण जानता है। **इससे अनेक यत्न जानता है,...** उस जहर को मारने की दवायें उसके पास होती हैं। इसलिए वह जहर उसे मार नहीं सकता। आहाहा! यह वैद्य का दृष्टान्त दिया है। **उससे विष की प्राणघातक शक्ति दूर कर दी है।** जहर में प्राणघातक शक्ति है, वह उसकी अनेक दवाओं से उसका नाश कर डाला है। आहाहा! **वही विष अन्य जीव खावे तो तत्काल मरे,...** वह जहर यदि दूसरा खाये तो तत्काल मर जाये। **उससे वैद्य नहीं मरता। ऐसी जानपने की सामर्थ्य है।** आहाहा! अन्तर के आनन्दस्वरूप भगवान का जहाँ ज्ञान हुआ है, उसे बाह्य की सामग्री में जहर को मार डाला है। किसी सामग्री में उसे प्रीति और राग नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें!

वैद्य विष खाने पर भी विष को मारण की शक्ति से विष का जहर टाल दिया है।

इसी प्रकार धर्मी जीव ने राग के प्रेम को मार दिया है। आहाहा! एक शुभराग हो तो भी उसे दुःख दिखता है। वह काला नाग देखता है। आहाहा! अरे! भगवान! शुभराग, हों! दया, दान, व्रत, भक्ति का राग। सम्यग्दृष्टि को वह राग काला नाग जैसा दिखता है। क्योंकि वह राग दुःख है। आहाहा! इसलिए उसे उसमें रुचि और प्रेम नहीं आता। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसके प्रेम को छोड़कर... आहाहा!

आनन्दघनजी तो एक बार ऐसा कहते हैं। चौबीस (तीर्थंकर का) स्तवन बनाया है न उन्होंने? आनन्दघनजी ने चौबीस स्तवन बनाये, उसमें तीसरे सम्भवदेव की स्तुति है। 'सम्भवदेव ते धुरे सुरे रे..., लई प्रभु सेवन भेद। सेवन कारण प्रथम भूमिका अभय अद्वेष अखेद' पश्चात् तो बात सब लम्बी है। देखा है न, सबका देखा है। करोड़ों श्लोक सब देखे। उसमें यहाँ तो मुझे इतना कहना है, 'द्वेष अरोचक भाव' उसमें है। प्रभु! यदि तुझे राग का प्रेम हो, पुण्य के राग का भी प्रेम हो तो तुझे आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा! उसका कारण कि तुझे राग रुचता है, प्रभु आत्मा रुचता नहीं। इसलिए आत्मा के प्रति तुझे द्वेष है। अरे रे! अब ऐसी बातें। द्वेष अरोचक भाव। वहाँ तीन बोल हैं। 'भय चंचलता रे परिणामनी, द्वेष अरोचक भाव, करणी करता थाकीये...' ऐसा कुछ है। 'खेद प्रवृत्ति करता थाकीये अबोध स्वभाव' चार बोल हैं। है, पढ़ा है न? बहुत वर्ष पहले की बातें हैं। (संवत्) १९७८ में सब देखा था। ७८। कितने वर्ष हुए? ५५ वर्ष हुए। आहाहा!

'द्वेष अरोचक भाव...' आहाहा! देख प्रभु! तुझे राग का, शुभराग का भी यदि प्रेम होगा न तो रागरहित चीज़ अन्दर आनन्दकन्द प्रभु तू है, उसके प्रति द्वेष है। आहाहा! द्वेष अरोचक भाव। (राग) रुचता नहीं। भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है। सिद्ध स्वरूप विराजमान अन्दर आत्मा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' वस्तु वीतगरास्वरूप है। क्यों? कि यदि वीतराग स्वरूप न हो तो पर्याय में केवलज्ञान और वीतरागपना आयेगा कहाँ से? कहीं बाहर से आव ऐसा है? उसके स्वभाव में अकेली वीतरागता और मात्र आनन्दकन्द पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? उसका जिसे प्रेम नहीं अर्थात् कि रुचि नहीं अर्थात् कि दृष्टि नहीं अर्थात् कि उसका आश्रय नहीं। उसे राग के-पुण्य की रुचि-आश्रय है, वह सब आत्मा के प्रति उसे द्वेष है। आहाहा! अब ऐसी बातें। कहीं मिलान खाये नहीं।

एक घण्टे में कितनी बातें! उसमें सब दूसरे प्रकार की आवे। सुनी हो उससे दूसरा प्रकार आवे, लो!

मुमुक्षु : नयी बात आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब खबर है न, बापू! नहीं खबर? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। **उससे वैद्य नहीं मरता। ऐसी जानपने की सामर्थ्य है।** है? जानपना अर्थात् आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन। उसका जो सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ, वह जानपने का ऐसा सामर्थ्य है। आहाहा! बाहर की सामग्री में खड़ा दिखाई दे, छियानवें हजार रानियाँ, करोड़ों अप्सरायें। समकिती जीव है इन्द्र। शास्त्र में लेख है कि शकेन्द्र है अभी। सौधर्मदेवलोक है। बारह देवलोक है न, उनमें सौधर्म देवलोक है। बत्तीस लाख विमान हैं। एक-एक विमान में असंख्यदेव हैं। उनका स्वामी शकेन्द्र है। सिद्धान्त में लेख है कि वह एकावतारी है। समकिती है और वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। समझ में आया? उसकी पत्नी इन्द्राणी भी एकावतारी है, एक भवतारी। सम्यग्दृष्टि है। सौधर्म देवलोक है। चन्द्र-सूर्य के ऊपर। यह—चन्द्र-सूर्य तो ज्योतिष है। इनके ऊपर वैमानिक देव है। बारह देवलोक है न? सौधर्म, ईशान, महेन्द्र आता है न? आहाहा! उसे यह बाहर की चीज़ में कहीं प्रेम नहीं दिखता। आत्मा के आनन्द के प्रेम के समक्ष पर में कहीं प्रेम नहीं दिखता। आहाहा! नजर तो पुत्र उस माँ पर करे और व्यभिचारी दृष्टिवाला भी उसकी माँ को देखे। दृष्टि दृष्टि में अन्तर है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में परचीज़ को देखे परन्तु वह चीज़ मेरी नहीं, मुझमें नहीं। मुझमें है, वह तो आनन्द और ज्ञान है, उसमें मैं हूँ। आहाहा! ऐसे प्रेम के कारण, उसके प्रेम के जानपने के कारण। पर में उसे प्रेम आता नहीं, यह जानपने का सामर्थ्य है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ३, शनिवार, दिनांक - २९-१०-१९७७, कलश-१३४, प्रवचन-१३४

कलशटीका, निर्जरा अधिकार है। निर्जरा अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, उसके अन्तर अनुभव से उसका ज्ञान और उसके आनन्द का स्वाद आवे, उसके जानपने में पूर्ण आत्मा है, ऐसा ज्ञान हो, उसे राग और राग के फल का प्रेम छूट जाता है। समझ में आया? जिसे आत्मा वस्तु है, शुद्ध चैतन्य आनन्द-अनाकुल आनन्द (स्वरूप है)। अन्यत्र कहीं आनन्द नहीं। शरीर में, पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में सबमें (आनन्द नहीं है)। वे दुःख के निमित्त हैं।

मुमुक्षु : दुःख के निमित्त हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त हैं। दुःख तो स्वयं खड़ा करता है। दुःख, वह कोई (सामने की) चीज़ दुःख नहीं है। वह तो ज्ञेय है। आत्मा में परचीज़ तो जाननेयोग्य ज्ञेय है। वह कहीं वस्तु ठीक या अठीक उसके स्वरूप में नहीं है। वह कहीं दुःखरूप नहीं है। दुःखरूप तो स्वयं विपरीत श्रद्धा करता है और यह चीज़ मुझे ठीक है, ऐसा मानता है, उसका इसे मिथ्यात्व का और कषाय का इसे दुःख है। दुःख नहीं परचीज़ का, दुःख नहीं आत्मा के स्वभाव में। मात्र आत्मा के आनन्द को अनादि से भूलकर परपदार्थ जाननेयोग्य है, ऐसा परवस्तु का एक ही प्रकार है, उसके यह भेद करता है कि यह ठीक है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा। दुश्मन, बिच्छू, प्रतिकूल निन्दा आदि ठीक नहीं, ऐसा भेद डालता है, वह मिथ्यात्व के कारण भेद करता है। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त काल हुआ, इसने चौरासी लाख योनि के अनन्त अवतार किये, परन्तु कहीं यह आत्मा का ज्ञान और सम्यग्दर्शन पाया नहीं। त्यागी हुआ, साधु हुआ बाहर से, परन्तु अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप और ज्ञान का पुंज प्रभु है, उसका इसने स्पर्श नहीं किया। उसे यह छुआ ही नहीं। और पुण्य तथा पाप के विकारी भावों को छुआ, स्पर्शा और यह दुःखी है। आहाहा! जब इसे आत्मज्ञान होता है कि मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ, कोई चीज़ पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह भी मेरे नहीं। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना के भाव पाप, वे भी मेरा स्वरूप नहीं। तथा दया,

दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वह भी मेरा स्वरूप नहीं। वह भी एक विकल्प-राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा मानता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है, इसलिए तो कहा जाता है न! सेठ! मानकर बैठे इसलिए तो कहा जाता है। मानता है कि उसमें सुख है। आहाहा! भगवान की भक्ति, पूजा, दान, दया, व्रत, तप, अपवास यह सब भाव शुभराग है और शुभराग है, वह दुःख है। उसकी इसे अनन्त काल में भटकते हुए खबर नहीं। इसलिए यह चौरासी के अवतार में भटककर दुःखी हुआ है। परन्तु जब इसे अन्तर में... यह निर्जरा अधिकार है न?

'**ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं**' मैं एक आत्मा ज्ञाता चैतन्यस्वरूप हूँ और मुझमें अतीन्द्रिय आनन्द छलाछल अन्दर आत्मा में भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द। उस अतीन्द्रिय आनन्द के रस की रुचि में उसे राग और पुण्य-पाप की रुचि छूट जाती है। और वह राग तथा पुण्य-पाप छूटने पर उसके बन्धन से कुछ संयोगी चीज़ मिले, उसकी भी समकिती जीव को रुचि छूट जाती है। उसे पोसाता नहीं। परवस्तु मेरी है, ऐसा पोसाता नहीं। आहाहा! अज्ञानी को आनन्दस्वरूप आत्मा पोसाता नहीं और पुण्य तथा पाप के भाव और उनके फल उसे पोसाते हैं। आहाहा! यह चार गति में भटकने के रास्ते हैं।

जब यह धर्म समझता है और प्राप्त करता है, तब इसे निर्जरा होती है, यह यहाँ बतलाना है। आहाहा! तब आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, वह इसके व्यापार-पर्याय में उसका पोषण है। धर्मी जीव को वर्तमान धर्म की दशा में पूर्णानन्द प्रभु आत्मा का पोषण है, उसकी रुचि और वह पोसाता है। उसे पुण्य-पाप के भाव हों, वे पोसाते नहीं। पोषते नहीं। आहाहा! तो उसके फलरूप से यह बाहर की धूल, पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़, पाँच-पच्चीस करोड़ धूल मिले और स्त्री-पुत्र और परिवार सब अनुकूल (मिले), वह धर्मी को यह बात पोसाती नहीं। वे मेरे और मुझे ठीक है, यह बात बैठती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहा। यहाँ तक अपने आया है। **ऐसी जानपने की सामर्थ्य है।** बीच में आया है? उस वैद्य का दृष्टान्त देकर। वैद्य है, वह (सोमल का प्रयोग करता

है)। सोमल में प्राणघात शक्ति है, परन्तु सोमल में ऐसी दवा प्रयोग करता है कि उस सोमल में प्राणघात शक्ति का नाश करे। पश्चात् वह सोमल प्रयोग करने पर भी उसकी मृत्यु नहीं होती। वही सोमल प्राणघात शक्तिवाला है, दूसरा खाये तो मर जाये। समझ में आया? परन्तु वैद्य को सोमल में प्राणघात शक्ति है, उसे नाश करने की युक्ति और दवा है। उससे उसे प्राणघात का नाश करता है। इसलिए उसका प्राणघात नहीं होता। एक बात।

मुमुक्षु : ....इसका नाश किया, इसने उसका नाश किया...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका नाश कौन कर सकता है? यह मानता है। आहाहा! वह चले गये देखो न! शाहूजी शान्तिप्रसाद, चालीस करोड़ रुपये। परसों सवेरे हार्टफेल (हो गया)। चले गये। कौन धूल? चालीस-चालीस लाख के बँगले और दिगम्बर (समाज) में प्रमुख। कोई मालिक नहीं हुआ। चले गये देह छोड़कर।

मुमुक्षु : उसमें जीव कैसे रहा? शरीर कैसे रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव तो जैसे भाव हुए होंगे, उस प्रकार से रहा होगा। यह बाहर की सामग्री कहीं उसे मददगार नहीं है। आहाहा! और वह भी उस मरनेवाले को कहाँ रोता है प्राणी? मरनेवाला मरकर कहाँ गया? ऐसी कहीं मरनेवाले की उसे दरकार नहीं है। खबर भी नहीं और वह विचार भी किया नहीं कभी कि मेरा पिता मर गया, उसे मैं किसलिए रोता हूँ? वह मरकर गया कहाँ? नरक में गया? पशु में गया? कहाँ गया? वह चाहे जहाँ गया। मुझे स्नान नहीं यहाँ। यहाँ तो मेरी सुविधा में मदद करता (था), वह जाता है, उसका मुझे दुःख है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! पूरा संसार ऐसा है। किसी ने विचार किया है कि अरे! मेरे माता-पिता मरकर गये, कहाँ गये होंगे? परन्तु उसे विचार करने का समय कहाँ है? अरे! गति चार है। नरकगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति, देवगति। तो वह मरकर गया कहाँ होगा?

मुमुक्षु : उसे खबर हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे भान कब (था) पिता को। वह तो बेचारा कहीं चला गया। आहाहा!

मुमुक्षु : पत्र में लिखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पत्र कौन लिखे? यह लिखे कि स्वर्ग में गये हैं।

मुमुक्षु : देवगत गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : देवगत। मरकर ढ़ोर में गया हो। देवगत लिखे। माया और कपट और ऐसे पाप किये हों। कहा नहीं? आहाहा! ऐसा है।

यहाँ कहते हैं कि जैसे वैद्य सोमल को खाते हुए सोमल में प्राणघात की शक्ति का नाश करके खाता है, इसलिए वह मरता नहीं। उसी प्रकार धर्मी जीव... उसके साथ पहले मिलाया है। फिर मदिरा का (दृष्टान्त देंगे।) यह ज्ञान का है, वह वैराग्य का दृष्टान्त है। दो दृष्टान्त हैं। इसी प्रकार धर्मी जीव को मैं एक आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ, मुझमें पुण्य-पाप और उसके फल वे मुझमें हैं ही नहीं। ऐसे आत्मा के आनन्द के पोषण में वह पर सामग्री के भोग में दिखाई दे, तथापि वह सब निर्जरित हो जाता है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह प्रिय में प्रिय स्त्री हो, तीस वर्ष की उम्र का जवान लड़का समकिती हो। पच्चीस वर्ष की स्त्री जवान, रूपवान, सुन्दर मर जाये। सम्यग्दृष्टि को उसका दुःख होता ही नहीं।

मुमुक्षु : किसी को उसका दुःख नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह मानता है न। अरे! मेरी सुविधा गयी। आहाहा! स्त्री ऐसी हो तो कहती जाये। सुना है सब। कि तुम दूसरी करना। तुम्हारी प्रकृति नहीं बनी रहेगी। तुम्हारी उम्र अभी छोटी है। मैं अब मर जाती हूँ। ऐसा कहे। हमारे पास सब दृष्टान्त हैं। नाम नहीं दिये जाते। आहाहा! ऐसी बातें हैं। धूल में भी नहीं। मर जाने के बाद मेहनत भी करे, परन्तु उम्र हो गयी हो ५३-५५-५६। इसलिए कोई कन्या मिलना मुश्किल पड़े। वह कह गयी हो तो भी। पैसा (रुपये) दस हजार देंगे कोई कन्या दे तो। कौन दे फिर वहाँ? आहाहा! ऐसा संसार अनादि दुःखी... दुःखी... दुःखी...

यहाँ कहते हैं कि जैसे वैद्य है, उसे जहर का जानपने का सामर्थ्य है, उसी प्रकार ज्ञानी को, धर्मी जीव को अपने आनन्द के जानपने का रुचि का भाव अन्दर भरा है। उस आनन्द की रुचि के समक्ष किसी भी संयोग के भोग में आवे तो भी उसे प्रेम नहीं है।

इसलिए वह कर्म खिर जाते हैं। उसे निर्जरा कहते हैं। आहाहा! वापस उसमें से ऐसा लिया था न? जो जहर वैद्य खाये और मर न जाये, वह जहर दूसरा खाये तो मर जाता है। इसी प्रकार ज्ञानी जो आत्मा के आनन्द के प्रेम में पड़ा है, उसे उस भोग सामग्री से निर्जरा होती है। उस भोग-सामग्री में अज्ञानी को बन्ध होता है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी जहाँ हो, वहाँ हजारों-लाखों सामग्री में खड़ा है। बस, उसे सब ऐसा लगे कि यह सब मेरा... मेरा... मेरा... मेरा... जहर का प्याला चढ़ गया है उसे। आहाहा!

धर्मी को अपने स्वरूप में अपना आनन्द ज्ञान और अनन्त गुण, वे मेरे हैं, (ऐसा भासित होता है)। आहाहा! वह धर्मी शुभभाव में आवे, वह भी उसे बोझा लगता है। आहाहा! पाप के भाव को तो धर्मी काला नाग देखता है। आहाहा! अज्ञानी उस पाप के भाव को प्रेम से भोगता है और पुण्य के भाव में धर्म होता है, ऐसा वह अज्ञानी मानता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। कहाँ पड़ी है जगत को! क्या होगा और मरकर कहाँ जाऊँगा?

दूसरा दृष्टान्त। **अथवा कोई शूद्र जीव मदिरा पीता है।** शूद्र जीव मदिरा / शराब पीवे। है न बीच में? **परन्तु परिणामों में कुछ दुश्चिन्ता है,...** कोई चिन्ता है। कोई पुत्र मर गया है या कोई अमुक। इसलिए रुचि नहीं है। पीता है परन्तु रुचि नहीं है। यह है न? **कोई शूद्र जीव मदिरा पीता है।** हल्का-नीच मनुष्य। **परन्तु परिणामों में कुछ दुश्चिन्ता है, मदिरा पीने में रुचि नहीं है,...** आहाहा! **ऐसा शूद्रजीव मतवाला नहीं होता।** वह गहल नहीं होता, पागल नहीं होता। रुचि नहीं न! आहाहा! **जैसा था वैसा ही रहता है। मद्य तो ऐसा है जो अन्य कोई पीता है तो तत्काल मतवाला होता है।** शराब तो ऐसी है कि मर जाये, दूसरा वह मतवाला-पागल हो जाये।

सो जो कोई मतवाला नहीं होता ऐसा अरुचि परिणाम का गुण जानो। पहले में जानपने का कहा था। इसमें वैराग्य का कहा है। समझ में आया? आहाहा! कितने ही समय प्रसव में कितनी ही महिलाओं को खास हो, उसे मदिरा पिलाते हैं। परन्तु प्रेम नहीं होता, इसलिए मतवाली नहीं होती। शरीर ऐसा हो न साधारण। ऐसा सुना हुआ है।

पीनेवाले हो न कितनों को प्रसव में शरीर शिथिल पड़ जाये, आहार बहुत ले नहीं सके, उसे मदिरा पिलावे। परन्तु रुचि नहीं है, इसलिए वह मतवाली नहीं होती। पागल नहीं होती। यह दृष्टान्त है। **ऐसा अरुचि परिणाम का गुण जानो।**

उसी प्रकार कोई सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी चीज़ में कोई चीज़ है ही नहीं। आहाहा! छह खण्ड का राज हो तो भी वह धर्मी छह खण्ड को साधता है, ऐसा नहीं है। सोगानी ने एक जगह लिखा है। है ? क्या ? अखण्ड। वह छह खण्ड को नहीं साधता, सम्यग्दृष्टि अखण्ड को साधता है। अखण्ड ऐसा जो आत्मा आनन्द का कन्द नाथ प्रभु, अनन्त-अनन्त गुण से भरपूर एकरूप अभेद अखण्ड, सम्यग्दृष्टि उसे साधता है। बाहर में लोग ऐसा देखते हैं कि यह छह खण्ड को साधता है। यह दुनिया देखती है। अन्दर में तो स्वरूप का साधन, उसे वह कायम साध रहा है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! वह दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति के भाव, अज्ञानी उसे धर्म मानता है। इसलिए उसमें वह मिथ्यात्व से बँधता है। आहाहा! ज्ञानी को अशुभ और शुभभाव आते हैं, तथापि उसका स्वामीपना नहीं और उसकी रुचि नहीं; इसलिए वे भाव खिर जाते हैं, ऐसा यहाँ कहा गया है। आहाहा! बड़ा अन्तर! धर्म और अधर्म, ज्ञान और अज्ञान में बड़ा अन्तर।

लोगों को कहाँ पड़ी है ? यह दुनिया की बाहर की सुविधा में जन्मा, वहाँ सुविधा कुछ हो पाँच-पच्चीस लाख पैसे या धूल और इज्जत कीर्ति हो,... जाओ मरकर ढोर में। बहुत बनिये मरकर ढोर में जानेवाले हैं। पशु। माँस, मदिरा का खुराक नहीं, धर्म-सम्यग्दर्शन क्या है, इसकी खबर नहीं और पुण्य बाँधना चाहिए सत्समागम में रहकर चार-चार, दो-चार घण्टे शास्त्र वाँचन, मनन (हो), तब तो पुण्य भी बँधे। तो उसे कुछ स्वर्ग और मनुष्यपना भी मिले। वह भी समय नहीं होता। घण्टे भर जाये और एकाध शुभभाव हो, उसमें पुण्य बँध जाये। परन्तु वह कहीं लम्बा पुण्य नहीं मिलता। आहाहा! राग से भिन्न दया, दान का विकल्प है, उससे भी भिन्न मेरी चीज़ है, उसकी दृष्टि और अनुभव नहीं। तथा दो-चार घण्टे, दिन में चौबीस घण्टे में चार घण्टे सत्समागम, शास्त्र वाँचन, मनन, चिन्तवन (होवे) तो उसमें उसे पुण्य भी बँधे। परन्तु इतना इसे समय नहीं मिलता। मुश्किल से एकाध घण्टे जाता हो। हो गया। तेईस घण्टे का पाप

और एक घण्टे का जरा पुण्य। यह हार जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

गोदावरीबेन गये हैं? चले गये हैं, नहीं। गोदावरीबेन चले गये हैं। हमारे पालेज। नहीं। यह बात की थी न मैंने। हमारे कुँवरजीभाई भागीदार बुआ के पुत्र थे। सात-सात पेढ़ी में। उगामेडी। वे भागीदार थे न? हमारे बड़े भाई के वे भागीदार थे और उनके छोटे भाई का मैं (भागीदार)। दो दुकानें। बहुत ममता। यह करूँ.... यह करूँ... यह करूँ... आहाहा! फिर एक बार मुझसे कहा गया (संवत्) १९६६ के वर्ष की बात है। ६६, मेरी उम्र तब २० वर्ष की। ६८ वर्ष पहले की बात है। तब इकट्ठे जीमते थे तीस व्यक्ति। इस दुकान से उस दुकान में गया और कहा, भाई! इतना अधिक यह क्या परन्तु पूरे दिन? कहा। कुछ नहीं, गाँव में साधु आवे तो सुनने को निवृत्ति दिन में नहीं। कुछ नहीं। विचारना नहीं, चिन्तवन नहीं और पूरे दिन यह धन्धा-पानी। पाप, पाप और पाप। सुने। कहूँ तो सुने। तुम मरकर मानों स्वर्ग में नहीं जाओगे। नरक में तो नहीं जाओगे। अपने कोई माँस-मदिरा खाते(-पीते) नहीं हैं। तथा मनुष्य में जाने के लक्षण मुझे नहीं लगते, कहा। तुम मरकर मनुष्य होओ, (ऐसा मुझे नहीं लगता)। यह १९६६ की बात है। ६८ वर्ष पहले (की बात है)। मरकर ढोर होओगे, याद रखना, कहा। पशु होओगे, कहा। वह भाई मरते हुए... दो लाख की दुकान की वर्ष की आमदनी। दुकान बड़ी, पालेज में दुकान है। दो लाख की आमदनी वर्ष की। दस लाख रुपये, पुत्र तीन। वह मस्तिष्क में भाई गहल-पागल हो गये मरते समय। मस्तिष्क में ऐसा हुआ—मैंने किया, मैंने किया, यह किया, यह किया, अरे! परन्तु बापू! अभी तो छोड़ दो। कहे, नहीं। वह मरकर ढोर (होगा)। आहाहा! बहुत तो माया, कपट, कुटिल और कषाय में... आहाहा! अरे! उसमें जिन्दगी जाती है। सब अफल होता है।

यहाँ कहते हैं कि धर्मी जीव को... आहाहा! आत्मा अन्दर वस्तु है, जो जिनेन्द्रदेव परमेश्वर ने कही, वह अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा, उसका जिसे अनुभव हुआ, वेदन हुआ कि आत्मा तो आनन्दस्वरूप है। उसमें पुण्य और पाप के भाव भी हैं नहीं। ऐसा हुआ उसे बाह्य की सामग्री भोगने में दिखायी दे, तथापि उसे वह कर्म

खिर जायेंगे। आहाहा! कहीं रस नहीं है। समझ में आया? रस की व्याख्या तो की है न? नहीं वह? ज्ञेय का। एकाग्रता... जहाँ एक में रस (आवे).... पहले आता है न? भाई! इस दस रस में समयसार (में आता है)। रस उसे कहना कि एक ज्ञेय में एकाकार हो जाना, वह रस। अन्दर टीका में है न! जीव का अधिकार पूरा हो, वहाँ अन्त में (आता है)। आहाहा!

अज्ञानी का रस शुभ और अशुभभाव अथवा शुभ के फलरूप से धूल मिली हो बाहर में पाँच-पच्चीस लाख पैसे, पुत्र, इज्जत-कीर्ति अज्ञानी का उसमें रस है, एकाकार है। वह मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व में उलझ गया है... आहाहा! वह मरकर ढोर आदि में (उत्पन्न) होनेवाला है। वस्तु ऐसी है, बापू! क्या कहें? ऐसे देखते हैं न लोगों को जहाँ तो पूरे दिन धन्धा... धन्धा... धन्धा... स्त्री, पुत्र, परिवार और धन्धा। अकेला पाप। ऐ... कामदार! उसमें और पैसा हो दो-पाँच-दस लाख, बीस लाख, करोड़, दो करोड़। तो मैं चौड़ा और गली सकड़ी।

मुमुक्षु : कितने ही तो.... खबर पड़ने न दे कि उसके पास इतने हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो खबर पड़ने न दे, परन्तु अन्दर पैसा बहुत हो। बाहर प्रसिद्ध होने न दे। यह तो होता है न! यह भी सुना है। सब खबर है। पूँजी हो दो-पाँच करोड़ की, परन्तु बाहर में खबर पड़ने न दे। बाहर में मानो कि पचास लाख है या करोड़ है। और कितने ही ऐसे होते हैं कि होवे पचास लाख की पूँजी और बाहर पाँच करोड़ की लोग कोई कहे तो इनकार न करे। इज्जत तो बढ़ती है। ऐसा यह संसार चलता है।

मुमुक्षु : आपकी लकड़ी घुमाकर बनते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लकड़ी फिरे, बापू! यह तो जड़ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी को जो सामग्री है उसमें वह एकाकार रस है, इसलिए संसार की वृद्धि करता है। तब धर्मी आत्मा के आनन्द के रस में है, उसमें उसका रस लगा है, इसलिए बाहर की सामग्री में खड़ा दिखता है, भोगता है परन्तु वह सब कर्म उसे खिर जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। किसे विचार करना है? ऐसे का ऐसा यह

तो जिस कुल में जन्मा, उसकी पत्नी हो, उसे लड़के हों और उनका विवाह करना... मरकर जाओ... आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव नाना प्रकार की सामग्री को भोगता है,... है? आहाहा! जिसे आत्मा के स्वभाव का प्रेम और अनुभव है, जिसे सम्यग्दर्शन है, वह तो आत्मा के आनन्द का जिसे स्वाद है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव आनन्द के स्वाद के समक्ष, बाहर की सामग्री में कहीं उसे स्वाद नहीं आता, कहीं रस नहीं पड़ता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है? **सुख-दुःख को जानता है,...** अर्थात्? अनुकूल सामग्री हो, उसे जानता है कि यह है, इतना। प्रतिकूल हो, उसे जानता है कि यह कहीं मेरी नहीं और मुझे नहीं। आहाहा! सुख-दुःख अर्थात् यहाँ सामग्री की बात लेना है। और कदाचित् कल्पना हो जाये कोई आसक्ति की उसे उसका रस और रुचि नहीं है। आहाहा!

परन्तु ज्ञान में शुद्धस्वरूप आत्मा को अनुभवता है,... है? यह तो मैं तो आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूप हूँ। आहाहा! मेरे स्वभाव के आनन्द के रस के समक्ष इन्द्रों के इन्द्रासन भी उसे सड़े हुए तिनके और सड़कर मर गये हुए बिल्ली और कुत्ते के मुर्दे, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को वे सब इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए बिल्ली जैसे दुःख लगते हैं। आहाहा! यहाँ तो कुछ थोड़ा-बहुत दो-पाँच-दस-पच्चीस लाख हुए तो हम सुखी हैं। धूल में भी नहीं, सुन न! समझ में आया? उसमें और दो-पाँच-सात लड़के हों और एक-एक लड़का दो-दो लाख की कमायी करता हो। आहाहा! महीने में दो-दो लाख, हों! ऐसे मानो... आहाहा! हम तो मानो फले-फूले। बढ़ गये बाहर में-पाप में।

यहाँ कहते हैं कि जिसे आत्मा के धर्म का भान हुआ है, आत्मा का धर्म अर्थात् आनन्द और ज्ञान,... आहाहा! उसका जिसे अन्तर में भान हुआ, वह बाह्य सामग्री को भोगता है तो भी उसे जीव का स्वरूप नहीं, ऐसा जानता है। वह जीव का स्वरूप नहीं। स्त्री, पुत्र, परिवार वह कोई मेरा स्वरूप नहीं है। वह तो पर है। आहाहा! वह मुझे कोई सुखदायक नहीं। मुझे दुःखदायक भी नहीं। आहाहा! वह जीव का स्वरूप नहीं, ऐसा समकिती जानता है। ऐसे लोहे जैसे जवान पुत्र आठ-आठ, दस-दस हों। २५, २७, २९, ३१ दो-दो वर्ष के अन्तर में दस लड़के हुए हों।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, है न सब। बहुत देखा है। दस वर्ष में दो वर्ष के अन्तराल-अन्तराल से आठ लड़के हुए हों। ऐसे जवान योद्धा। एक अमेरिका में गया हो और एक अफ्रीका में गया हो और एक ने कारखाना मुम्बई में लगाया हो।

मुमुक्षु : वह सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी... परन्तु यह तो पुण्य हो तो होता है, तथापि उसमें अज्ञानी इतना तल्लीन है कि जिसे आत्मा क्या चीज़ है, उसे समझने के लिये अवकाश ही नहीं। आहाहा! और धर्मी को आत्मा के अतिरिक्त जितनी चीज़ है, वह मेरा स्वरूप नहीं। उसे अवकाश नहीं कि यह मेरी चीज़ है और मुझे इससे सुख है, उसका यह अवकाश नहीं उसे। आहाहा!

मुमुक्षु : त्यागी हो तो किस सामग्री में एकत्व करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्यागी बाहर का तो पुण्य के परिणाम जो दया, दान, व्रत के करता है, वह पुण्य है, राग है, उसमें धर्म है, उसमें अज्ञानी वहाँ अटका है। साधु हुआ तो वहाँ मिथ्यात्व में अटका है। आहाहा! भान कहाँ है? साधु अर्थात् बाहर से स्त्री-पुत्र छोड़े और दुकान छोड़ी तो हो गया साधु? धूल में भी नहीं साधु। आहाहा! उसे भी जो कुछ अन्दर शुभभाव दया का, व्रत का, तपस्या का, भक्ति का, यात्रा का (आवे), वह शुभभाव है, उसे वह धर्म मानता है। वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। आहाहा! कठिन काम है, बापू! वीतराग जिनेन्द्रदेव का मार्ग अलौकिक मार्ग है। लौकिक से अलग प्रकार है, भाई! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। यह **ऐसी सामग्री कर्म का स्वरूप है, जीव का दुःखमय है,...** दुःख का निमित्त, ऐसा। समझ में आया? ज्ञानी सामग्री को दुःखमय जानता है। पैसे हुए पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये, स्त्री, पुत्र, परिवार (हो, तो भी) धर्मी जीव उसे दुःखमय जानता है-दुःख का निमित्त है। आहाहा! है? वह तो **जीव का दुःखमय है,...** आहाहा! जितना परद्रव्य में लक्ष्य जाता है, उतना विकार है और वह दुःख है। ऐसी बहुत कठिन बातें हैं, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : दुःखमय मानता है या दुःख का निमित्त मानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दुःख का निमित्त अर्थात् दुःखमय, ऐसा मानता है। निमित्त है न? परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य जाये तो मुझे दुःख ही होता है, इसलिए दुःखमय है, ऐसा। वह चीज़ तो ज्ञेय है। वह दुःख के निमित्त हैं, इसलिए दुःखमय हैं, ऐसा। वह बाह्य चीज़ कोई सुख का निमित्त है नहीं। सुख का कारण तो मेरा भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! अरेरे! सुनने को मिले नहीं, यह सत्य का श्रवण करने को मिले नहीं, वह कभी विचार करे और क्या करे? आहाहा! वह पशु जैसा अवतार, वह ढोर जैसा अवतार, वह मरकर वापस पशु हो। आहाहा!

सामग्री कर्म का स्वरूप है, जीव को दुःखमय है,... ऐसा लिखा है न? सेठ! यह पैसा-बैसा, स्त्री, पुत्र, माणेकचन्द, वह सब दुःख के निमित्त हैं।

मुमुक्षु : लड़के भी कितने मदद करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी मदद करते नहीं। ऐसा है। यह कहते हैं कि जितनी सामग्री मिली, वह सब दुःखमय है। क्योंकि उसके ऊपर लक्ष्य जाता है तो विकार होता है, विकार, वह दुःख है। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रस है, उसके ऊपर नजर जाती है, तब उसे सुख होता है। आहाहा! और परपदार्थ पर नजर जाती है, तब उसे दुःख होता है। आहाहा! दो सिद्धान्त। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति यहाँ प्रभु, उसके सन्मुख देखे तो उसे आनन्द होता है और उस पदार्थ के अतिरिक्त दूसरे पदार्थ के सन्मुख देखे तो उसे राग और दुःख होता है। आहाहा! परन्तु यह कहाँ भान है इसे? तब कहते थे न? नहीं? हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। यह नानालालभाई के वढवाणवाले। चुडगर... चुडगर। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। यहाँ बोले होंगे। व्याख्यान... सुखी की व्याख्या क्या? कहा। यह करोड़ रुपये हैं और पैसे हैं, इसलिए सुखी? ऐसे के ऐसे सब पागल इकट्ठे होकर पैसेवाले को सुखी मानते हैं। यह व्याख्यान के बाद बात हो गयी है। मणिभाई थे। मणिभाई। मणिभाई थे। वढवाण कांप में थे। चुडगर... चुडगर। वह कहे, हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। ... सुखी की व्याख्या क्या? कहा। क्योंकि करोड़ोंपति लोग यहाँ आवे, वे सब सुखी हैं और द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि। यह और माणेकचन्दभाई।

मुमुक्षु : .... मोटर में जाया जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं, मर गया है। वह मोटर के ऊपर बैठता है, वह मोटर के ऊपर बैठता नहीं, मोटर उसकी छाती पर बैठी है। उसे कैसे निभाना ऐसी ममता के झोंक में झुक गया है। आहाहा! बड़ी पाँच-पाँच लाख की मोटरें। यह बात तो बड़ी थी। अभी तो इतना अधिक नहीं। यह सेठ को सात मोटरें हैं। सात मोटर हैं इन भगवानदास सेठ को। उनके घर में धन्धे के लिये, तम्बाकू के लिये। तम्बाकू का बड़ा व्यापार। और वह वापस साठ मोटर को सुधारने का घर में... क्या कहलाता है वह? कारखाना सुधारने का घर में है। आहाहा! यह बाहर की चीज़ें तो पत्थर पड़े हैं पूरे जगत के। परन्तु क्या है? परन्तु तुझे क्या है? आहाहा! अज्ञानी बाहर की चीज़ ऐसी और यह पत्थर मेरे, पैसे मेरे (मानता है)। आहाहा! सेठ चले गये बेचारे, देखो ने! कल-परसों सवेरे। चालीस करोड़। चालीस लाख का बँगला। दिल्ली-दिल्ली। शाहूजी शान्तिप्रसाद अभी यहाँ आये थे। व्याख्यान सुनकर गये। प्रान्तिज आये तो कहे, दर्शन किये बिना मैं नहीं जाऊँगा। यहाँ आये थे। व्याख्यान सुन गये। दो दिन रह गये। प्रान्तिज से खास आये थे।

मुमुक्षु : अन्त-अन्त में रुचि हो गयी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेम था, तथापि दृष्टि की अलग बात है, परन्तु ऐसे कोई विरोध करे तो विरोध करने न दे। बाकी सब त्यागियों को भी माने। सब त्यागियों का आदर करना, ऐसा माने। यह तो संसार, संसार बापू! ऐसा है। उसमें से दृष्टि बदलना बहुत कठिन काम है।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **ऐसी सामग्री कर्म का स्वरूप है,...** यह पैसा, स्त्री, पुत्र, परिवार, बँगले, मकान बड़े दस-दस लाख, बीस लाख के, वह तो जड़ का स्वरूप, जड़ का फल है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....मेहनत का फल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेहनत का धूल में भी नहीं। इसने चित्राम् किया था, वह दिखाव आया है बाहर में। आहाहा!

जीव को दुःखमय है,... जीव का स्वरूप नहीं,... धर्मी जीव को आत्मज्ञान और आत्मदृष्टि और सम्यग्दर्शन होने से वह सब सामग्री को दुःखमय जानकर जीवस्वरूप नहीं है, ऐसा वह जानता है। आहाहा! **उपाधि है...** वह तो उपाधि है। आहाहा! वह दुकान बड़ी जमे, बड़े... क्या कहलाते हैं उसके? मुख्य-मैनेजर। मैनेजर क्या? मुख्य उसका नौकर होता है न होशियार? मुनिम... मुनिम। दो-चार मुनिम हों और दुकान पाँच-सात, दस जगह डाली हो। आहाहा! मानों कि क्या किया?

मुमुक्षु : रोजी-रोटी तो चलती है उससे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी रोटी चलती नहीं। पुण्य हो तो उसके फल तत्प्रमाण (मिला रहेगा)। रोटी तो... सुना नहीं? दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है।

मुमुक्षु : यह तो सिद्धान्त की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धान्त अर्थात् सत्य। लोग चिल्लाये। यह तो सिद्धान्त जो सत्य है, यहाँ तो उसकी बात है। देखो न! कितना लिखा है!

ऐसी सामग्री कर्म का स्वरूप है,... ऐसा समकिती धर्मी जानता है। मेरा नहीं। एक बात। **जीव को दुःखमय है,...** दो बात। **जीव का स्वरूप नहीं,...** तीन बात। यह **उपाधि है,...** चौथी बात। चार बातें। आहाहा! अज्ञानी ऐसा मानता है कि आहा! अब हम कुछ बढ़े हैं पिता के पास पूँजी नहीं थी और अपने पच्चीस-पचास लाख हुए, करोड़-दो करोड़ हुए। सब हमने बढ़ाया। दुःख को बढ़ाया है, उपाधि को बढ़ायी है। आहाहा!

ऐसा जानता है। उस जीव को... है? चार बोल लिये। बाहर का **कर्म का स्वरूप है, जीव को दुःखमय है, जीव का स्वरूप नहीं, उपाधि है, ऐसा जानता है। उस जीव को (धर्मी को) ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध नहीं होता है।** उसे बन्धन था नहीं। मिथ्यात्व आदि का जो मुख्य है, वह बन्धन होता नहीं। **सामग्री तो ऐसी है जो मिथ्यादृष्टि के भोगनेमात्र कर्मबन्ध होता है।** आहाहा! स्त्री अनुकूल हो, पुत्र रूपवान हो, स्त्री रूपवान हो, पैसा हो, बँगला बड़ा ऊँचा हो, मिथ्यादृष्टि को तो देखते ही पाप हो इतना पाप। आहाहा!

मुमुक्षु : घर में ऐसा हो तो करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में कहाँ था? उसे स्वयं को पर से भिन्न अनुभव करना, जानना। राग और पुण्य के फल से भी मैं भिन्न हूँ और पुण्य का भाव होता है, उससे भी भिन्न हूँ। ऐसा जानना और अनुभव करना, वह धर्म है। बाकी बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! मार्ग ऐसा कठिन है।

सामग्री तो ऐसी है जो मिथ्यादृष्टि के भोगनेमात्र कर्मबन्ध होता है। लो! यह तो ऐसे देखे वहाँ... आहाहा! अपने मानो क्या बढ़ गये! धन्धे में और पैसे में और शरीर में। यह लोग कहते नहीं कुछ? ६०-६० वर्ष की उम्र हुई, परन्तु हमने कभी सौंठ सिर पर चोपड़ी नहीं। हमको कभी रोग आया नहीं। हम सुखी हैं। धूल में भी सुखी नहीं, सुन न अब।

मुमुक्षु : रोग नहीं आया....

पूज्य गुरुदेवश्री : रोग नहीं आया परन्तु उसमें क्या हो गया? वह तो शरीर, मिट्टी, धूल है वह तो। यह तो जगत की मिट्टी-धूल है। उसमें रोग नहीं आया, इसमें तुझे क्या लाभ हुआ? आहाहा! ऐसा बोलते हैं अपने काठियावाड़ में। ६० वर्ष हुए परन्तु कभी सौंठ चोपड़ी नहीं। हमको रोग आया ही नहीं। हैं ऐसे दृष्टान्त एकाध-दो हैं।

मुमुक्षु : एक दरबार मिले थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अपने एक बनिया है कोई, वह कहता था। ६० वर्ष तक कभी हमको बुखार नहीं आया। हो यह तो किसी को, उसमें क्या? परन्तु इससे हुआ क्या उसमें? परन्तु उसमें आत्मा को क्या? आहाहा!

जो जीव को कर्मबन्ध नहीं होता, वह जानपना की सामर्थ्य है ऐसा जानना। आहाहा! ज्ञान और वैराग्य। आहाहा! अन्तर के चैतन्य भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द का ज्ञान है अर्थात् कि उसे ज्ञेय बनाकर ज्ञान किया है। वह जानपने का यह सब सामर्थ्य है। शास्त्र का जानपना और दूसरे जानेपने की यहाँ बात है नहीं। अन्तर चिदानन्द प्रभु, अनन्त गुण का सागर, चैतन्यरत्नाकर, ऐसा जिसे अन्तर ज्ञान है, उस जानपने के सामर्थ्य का यह फल है कि बाहर की सामग्री में खड़ा है तो भी उसे कर्म का बन्धन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

अथवा सम्यग्दृष्टि जीव नाना प्रकार के कर्म के उदयफल भोगता है, परन्तु अभ्यन्तर शुद्धस्वरूप को अनुभवता है,... देखा! आहाहा! बाहर में ऐसा दिखता है, सब सामग्री है, परन्तु अन्तर में तो आत्मा पवित्र आनन्द का नाथ प्रभु, उसे अनुभव करता है; इसलिए उसे बन्ध नहीं होता। आहाहा! अभ्यन्तर। बाह्य में यह सब दिखता है, कहते हैं। परन्तु अभ्यन्तर में चैतन्यवस्तु शुद्ध आत्मा, पवित्रता का पिण्ड प्रभु आत्मा है, उसे अन्तर में अनुभव करता है। उसे अनुसरकर आनन्द और ज्ञान का जिसे वेदन है, उस जीव को बाहर की सामग्री बन्ध का कारण नहीं होती। निर्जरा होती है, ऐसा कहना है न यहाँ? **इसलिए कर्म के उदयफल में रति नहीं उपजती,...** कर्म के फल में धर्मी जीव को प्रेम नहीं आता। दुश्मन के पुत्र पर जैसे प्रेम नहीं, वैसे इसे पर की वस्तु में प्रेम नहीं है। आहाहा! शत्रु कर्म, उस कर्म के फल की वह सब सामग्री, वह सब दुश्मन का विस्तार है। आहाहा!

मुमुक्षु : दुश्मन का विस्तार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म शत्रु है न? उस शत्रु का फल यह सब दुश्मन का विस्तार है। कर्म का फल।

कर्म के उदयफल में रति नहीं उपजती, उपाधि जानता है,... आहाहा! धर्मी तो उपाधि जानता है। आहाहा! अरे! मेरे स्वरूप में कहाँ है यह कोई? और उसमें मैं कहाँ हूँ? आहाहा! ऐसे को **दुःख जानता है...** देखा! बाह्य सामग्री को दुःख जानता है। आहाहा! दुःख का निमित्त है न उपाधि? **इसलिए अत्यन्त रूखा है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को आत्मा का ज्ञान है और आत्मा का अनुभव है, ऐसा धर्मी बाह्य सामग्री में अति रूखा है, कहीं रस नहीं पड़ता। आहाहा!

ऐसे जीव के कर्म का बन्ध नहीं होता है, वह रूखे परिणामों की सामर्थ्य है,... वैराग्य कहा न? ज्ञान और वैराग्य। आहा! बहुत काम बहुत कठिन, भाई! वैराग्य का अर्थ ऐसा नहीं कि स्त्री, पुत्र, दुकान सब छोड़कर साधु हुआ, इसलिए वैराग्य हो गया। आहाहा! वैराग्य की व्याख्या ऐसी है कि जो... आता है न पुण्य-पाप (अधिकार) में? अन्तर आत्मा में दृष्टि हुई है और पुण्य-पाप के प्रति जिसे वैराग्य है। शुभ-अशुभभाव

के प्रति जिसका वैराग्य है। पुण्य-पाप (अधिकार) में आता है। आहाहा! बाह्य सामग्री की तो बात क्या करना? परन्तु शुभ और अशुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति के प्रति भी जिसे वैराग्य है, उनके प्रति भी रुचि नहीं। आहाहा! ऐसा काम। धर्म अलौकिक बातें हैं, बापू! वह कहीं धर्म (नहीं है।) साधारण जो यह हो गया कि यात्रा कर ली और यह किया और एक घण्टे सुन लिया, इसलिए हो गया धर्म, (ऐसा नहीं है)।

इसलिए ऐसा अर्थ ठहराया... इसलिए ऐसा अर्थ निश्चित किया कि **जो सम्यग्दृष्टि जीव के शरीर, इन्द्रिय आदि विषयों का भोग निर्जरा के लेखे में है,...** अपेक्षा से लिया है, हों! जितना अन्दर में लक्ष्य जाता है, उतना राग तो है, परन्तु मिथ्यादृष्टिपना नहीं, इस अपेक्षा से उसे (निर्जरा कहा है)। इस अपेक्षा से गिना है। (कोई) ऐसा मान ले कि ज्ञानी हुआ और अब भोग और निर्जरा का हेतु है (तो) राग छोड़कर फिर चारित्र—स्वरूप में रहना—रमणता—वह कहाँ रहा? आहाहा! यह तो मिथ्यात्व सम्बन्धी का जो भाव है, वह भाव उसे नहीं है। इस अपेक्षा से उसे—सम्यग्दृष्टि को बाहर के भोग, निर्जरा का हेतु कहकर कर्म खिर जाते हैं, ऐसा कहा है। आहाहा! परन्तु उसमें से कोई ऐसा ही ले लेवे कि सम्यग्दृष्टि को चाहे जैसे परिणाम हों और चाहे जैसा भोग हो तो उसे बन्ध नहीं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : कर्म आकर खिर जाते हैं, नया बन्ध तो होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सम्यग्दृष्टि को भी जब तक राग है, तब तक नया बन्ध होता है। पुण्य का बन्ध होता है और पाप का भी बन्ध होता है। यहाँ तो उसे सम्यग्दर्शन के जोर का उसके प्रति से विरुद्ध जो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का बन्धन नहीं है, इसलिए निर्जरा है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

निर्जरा के लेखे में है, निर्जरा होती है। क्योंकि आगामी कर्म तो नहीं बँधता है,... संवर है इसलिए। सम्यग्दर्शन है, सत्यदर्शन आत्मा पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव है; इसलिए सम्यग्दर्शन, वह संवर है, इसलिए मिथ्यात्व सम्बन्धी आदि नये कर्म तो आते नहीं। और **निर्जरा के लेखे में है, निर्जरा होती है। क्योंकि आगामी कर्म तो नहीं बँधता है,...** यह संवर। **पिछला उदयफल देकर मूल से निर्जर जाता है,...** यह निर्जरा।

दोनों आ गये। आहाहा! जिसे आत्मा का दर्शन हुआ है—सम्यग्दर्शन, उसे मिथ्यात्व सम्बन्धी का आस्रव-बन्ध है नहीं, उसका तो संवर है। तदुपरान्त पूर्व के कोई तीव्र कर्म हैं, वे भी खिर जाते हैं।

पिछला उदय फल देकर मूल से निर्जर जाता है,... आहाहा! अब इसमें ऐसा ले लेवे वे लोग कि देखो! कि समकिती को जरा भी दुःख भी नहीं और आस्रव भी नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन की मुख्यता से जो बन्धन नहीं, उसे गिनने में आया है। दूसरा बन्धन है, उसे गौण गिनकर 'नहीं है' ऐसा कहने में आया है। आहाहा! बाकी तो दोपहर को अपने सब चलता है, नहीं? जब तक चारित्र वैभव अन्दर स्वरूप की रमणता न जगे, तब तक समकिती को भी जितना राग है, उतना दुःख और आस्रव है। आहाहा! दुःख भी है और आस्रव भी है और नये आवरण भी आते हैं। वीतराग का मार्ग अनेकान्त जैसा है, वैसा समझना चाहिए। एकान्त खींचकर बैठे, वह नहीं चलता। आहाहा!

उदय फल देकर मूल से निर्जर जाता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा है। देखा! भोग निर्जरा का हेतु। तब तो फिर भोग के भाव छोड़ना, वह कुछ रहता नहीं। ऐसा नहीं है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन के जोर में दृष्टि का जोर वर्तता है, इसलिए राग आता है तो भी रस नहीं है, प्रेम नहीं है। इसलिए उसे भोग निर्जरित हो जाते हैं, ऐसा कहा गया है। परन्तु उसमें खींचकर ऐसा खिंच जाये कि सम्यग्दृष्टि अब चाहे जैसे भोग भोगे और राग करे, उसे कुछ बाधा नहीं है। वह स्वच्छन्दी है। ऐसा नहीं है। मुनि-सच्चे सन्त हों, दिगम्बर मुनि जंगल में बसें, आत्मा के आनन्द के धाम में रहें, तो भी जरा पंच महाव्रत का विकल्प आवे, उतना आस्रव है, उतना दुःख है, उतना बन्धन है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को इस प्रकार निर्जरा कही गयी है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१३५

(रथोद्धता)

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः।।३-१३५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तत् असौ सेवकः अपि असेवकः' [तत्] तिस कारण से [असौ] सम्यग्दृष्टिजीव, [सेवकः अपि] कर्म के उदय से हुआ है जो शरीर, पंचेन्द्रिय विषयसामग्री, उसको भोगता है तथापि [असेवकः] नहीं भोगता है। किस कारण? 'यत् ना विषयसेवनेऽपि विषयसेवनस्य स्वं फलं न अश्नुते' [यत्] जिस कारण से [ना] सम्यग्दृष्टिजीव, [विषयसेवनेऽपि] पंचेन्द्रियसम्बन्धी विषयों को सेवता है तथापि [विषयसेवनस्य स्व फलं] पंचेन्द्रियभोग का फल है ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध, उसको [न अश्नुते] नहीं पाता है। ऐसा भी किस कारण से? 'ज्ञानवैभवविरागताबलात्' [ज्ञानवैभव] शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसकी महिमा, उसके कारण अथवा [विरागताबलात्] कर्म के उदय से है विषय का सुख, जीव का स्वरूप नहीं है; इसलिए विषयसुख में रति नहीं उत्पन्नद्य होती है; उदासभाव है, इस कारण कर्मबन्ध नहीं होता है। भावार्थ इस प्रकार है — सम्यग्दृष्टि जो भोग भोगता है, सो निर्जरा के निमित्त है।।३-१३५।।

आसोज कृष्ण ४, रविवार, दिनांक - ३०-१०-१९७७, कलश-१३५-१३६, प्रवचन-१३५

कलशटीका, १३५ कलश है। निर्जरा अधिकार है।

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः।।३-१३५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'तत् असौ सेवकः अपि असेवकः' तिस कारण से सम्यग्दृष्टि जीव... यहाँ सम्यग्दृष्टि का माहात्म्य वर्णन करते हैं। जिसे आत्मा शुद्ध पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसका जहाँ अन्तर ज्ञान हुआ, अनुभव होकर आत्मा का आनन्द का स्वाद आया है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आत्मा वस्तु है। देह, यह तो जड़-मिट्टी है। इससे भिन्न चीज़ अन्दर है। तथा कर्म जो आठ धूल जो जड़ है, उससे भिन्न चीज़ है। तथा

शुभ-अशुभभाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, पापभाव, उससे वस्तु अन्दर भिन्न है तथा दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा आदि के भाव, वे पुण्य हैं, उनसे भी आत्मा तो अन्दर भिन्न चीज़ है। आहाहा! ऐसी चीज़ की जिसे अन्तर में स्वीकार होकर आनन्द का अनुभव आया, अतीन्द्रिय आनन्द का आस्वाद आया। क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है।

मुमुक्षु : उसका स्वाद कैसा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को यह राग का स्वाद आता है, वह आकुलता है। उससे—राग से भिन्न अनाकुल स्वाद है। आहाहा!

यह संसारी अज्ञानी... यहाँ अज्ञानी और ज्ञानी दोनों की बात लेनी है। मिथ्यात्व, वही महासंसार का कारण है। इसलिए मिथ्यात्व जहाँ गया, अर्थात् सम्यग्दर्शन हुआ, उसे अब अनन्त संसार का कारण बन्ध नहीं, इस अपेक्षा से बन्ध नहीं—ऐसा कहा जायेगा। समझ में आया? आहा! अनादि से अज्ञान में पुण्य और पाप, राग और द्वेष, शुभ और अशुभभाव (होते हैं) और वे मेरे, ऐसा मिथ्यात्वभाव, उसका अज्ञानी को आकुलता का स्वाद, आस्वाद अनादि से है। आहाहा! वह साधु—दिगम्बर मुनि हुआ, तो भी अन्दर राग के स्वाद को उसने देखा है। परन्तु अन्दर राग से भिन्न भगवान आनन्दस्वरूप है, सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने जो आत्मा अन्दर देखा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, ऐसे आनन्द के स्वाद बिना चाहे जितने महाव्रतादि पालन करे, वह सब दुःखरूप दशा है। आहाहा! जिसने ऐसे पुण्य और पाप के राग के भाव से भिन्न मेरी चीज़ अन्दर है। ऐसा जिसे अपने अस्तित्व का—मौजूदगी का पर्याय में ज्ञान और प्रतीति आयी, उसमें अनन्त गुण जितने आत्मा में हैं, उन सबका एक अंश व्यक्तरूप से वेदन में आता है। आहाहा! उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

मुमुक्षु : अनन्त गुण के नाम भी होते नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण नाम भले न हो। नाम न हो तो कुछ काम नहीं। गुड़ का गुड़ नाम न आवे, इससे कहीं गुड़ का स्वाद चला जाता है? इसी प्रकार भगवान आत्मा में... सूक्ष्म बात है, प्रभु! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण हैं। नाम न आवे।

उनकी संख्या की भी कदाचित् खबर न हो। परन्तु वह अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु भगवत्स्वरूप अन्दर आत्मा स्वयं है। आहाहा! उसके सन्मुख होकर निमित्त और राग और पर्याय से विमुख होकर... शर्तें बहुत, बापू! आहाहा! जिसे अन्तर में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा अरूपी आनन्दघन का जिसे ज्ञान होकर, प्रतीति हुई और राग से भिन्न पड़ा, इसलिए अरागी आत्मा का स्वाद उसे आया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। उसे सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ी, पहली श्रेणी, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

मुमुक्षु : बहुत लम्बा

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी बातें हैं। उसे निर्जरा होती है, वह यहाँ वर्णन करना है।

मुमुक्षु : मुनि को तो त्याग हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि की अभी बात नहीं है। अभी तो सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के भाव से वह अनन्त संसार बनता है, वह नहीं होता, इतनी बात यहाँ लेनी है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी से जो बन्ध पहले मिथ्यात्व में होता था, वह नहीं। दूसरा बन्ध है, आस्रव है, उसे यहाँ गौण गिनकर, उसे 'नहीं है' ऐसा कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

वह सम्यग्दृष्टि जीव... इसकी व्याख्या हुई। सम्यग्दृष्टि की यह व्याख्या हुई। जैन में जन्मे और देव-गुरु-शास्त्र सच्चे, ऐसा माना, इसलिए सम्यग्दृष्टि है—ऐसा नहीं है। आहाहा! सम्यक्त्व तो सत् जितना सत् है, आत्मा का सत् है, '**ना**' शब्द प्रयोग करते हैं न इसमें? '**ना**', '**ना**'। '**ना**' अर्थात् आत्मा। '**ना**' शब्द है न? इसका अर्थ यहाँ आत्मा है। सम्यग्दृष्टि जीव... है न अन्दर लिखा है, देखो! '**ना**' अर्थात् **सम्यग्दृष्टि जीव...** है? पाँचवीं लाईन। यह आता है। '**ना**'-अपना स्वरूप, ऐसा बतलाना है। आहाहा! ना, यह नकार के अर्थ में नहीं है। ना, आत्मा के शुद्धस्वरूप के अर्थ में '**ना**' (शब्द) है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त काल से भटकता है, वह दुःखी है। यह अरबोंपति सेठिया या राजा या देव हैं, वे सब दुःखी हैं। राग और द्वेष के वेदनेवाले, आकुलता के वेदनेवाले, आकुलतावाले दुःखी हैं।

यहाँ तो जिसे आत्मदर्शन हुआ, आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, ऐसे अनन्त

गुणों का रसकन्द, उसका जिसे श्रद्धा में स्वीकार हुआ और ज्ञान की वर्तमान पर्याय में जिसका ज्ञान (हुआ), वस्तु नहीं आयी, परन्तु उसका ज्ञान आया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा जो सम्यग्दृष्टि जीव अनन्त काल में इसने काम नहीं किया था, ऐसा काम किया। भले वह मुनि न हुआ हो, त्यागी न हुआ हो अभी बाहर से, परन्तु अन्दर में राग के योग के सम्बन्ध से त्यागी है। राग का सम्बन्ध मुझे नहीं, मैं तो अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द के सम्बन्धवाल मेरा तत्त्व है। आहाहा! 'राग योगात' शब्द है न? सूक्ष्म बात है, हों भगवान! यह दया, दान, भक्ति, व्रत के परिणाम, वे राग हैं। जिसे वह 'राग योगात'—यह राग और आत्मा त्रिकाली चैतन्य शुद्ध, इन दोनों का जिसे सम्बन्ध है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सम्बन्ध है, वह बन्ध का कारण है। यहाँ अभी इतना लेना है। सम्यग्दर्शन के पश्चात् एकान्त खींच जाये उसमें कि सम्यग्दृष्टि है, उसे कोई बन्ध ही नहीं है, ऐसा नहीं है। उसे मिथ्यात्व और अनन्त संसार परिभ्रमण हो ऐसा बन्धन उसे नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव कर्म के उदय से हुआ है... पूर्व के कर्म के कारण शरीर मिला यह जड़-मिट्टी, पंचेन्द्रिय के विषय सामग्री मिली, अरबों रुपये हों, चक्रवर्ती का राज हो, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार लाखों-करोड़ों हों। **पंचेन्द्रियविषयसामग्री...** अर्थात् कान को सुनने की प्रशंसा की सामग्री, आँख से सुन्दर आदि देखने की सामग्री, नाक को सुगन्ध में ऐसी सामग्री, रस में अनुकूल रसवाली सामग्री, स्पर्श में अनुकूल स्त्री आदि कुटुम्ब के स्पर्श की सामग्री। आहाहा! उसे ऐसी सामग्री (होती है), **उसे भोगता है...**

मुमुक्षु : परपदार्थ को तो भोग नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो किस अपेक्षा से बात है? उसमें जरा राग आसक्ति है, इसलिए उसे भोगता है, ऐसा कहने में आता है। पर को तो भोग नहीं सकता। आत्मा भगवान अरूपी जड़ को क्या भोगे? यह स्त्री का शरीर माँस और हड्डियाँ, उसे आत्मा भोग सकता है? यह तो हड्डियाँ, चमड़ी, माँस, रक्त है। यह कहते हैं कि उसमें होनेवाला राग है, उसे भोगता है। ऐसा कहा जाता है, तथापि उस राग की एकत्वबुद्धि नहीं है और राग का स्वामी नहीं है और सम्यग्दर्शन में राग की एकताबुद्धि का मिथ्यात्व का नाश

हुआ है, इसलिए वह भोगता है, तथापि उसे सेवक नहीं कहा जाता। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। जिनेन्द्र वीतराग परमेश्वर का मार्ग अलौकिक है।

'सेवकः' उसको भोगता है, तथापि नहीं भोगता है। किस अपेक्षा से? कि सामग्री है, उसके ऊपर उसका लक्ष्य भी जाता है, थोड़ी आसक्ति होती है, परन्तु उस आसक्ति में सुखबुद्धि नहीं है। सम्यग्दृष्टि को पर में सुखबुद्धि उड़ जाती है। चाहे तो हजारों रानियाँ हों, करोड़ों अप्सरायें हों, परन्तु सम्यग्दर्शन में, पर में सुख है—इस बुद्धि का नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? पर में सुख है, इस बुद्धि का नाश होने पर, स्व में आनन्द है, ऐसी बुद्धि का जहाँ आदर हुआ भाव का अन्दर, उसे बाहर की सामग्री पूर्व के कर्म के कारण बहुत हो। चक्रवर्ती का राज हो, समकिती को इन्द्र के इन्द्रासन हों। समकिती है अभी इन्द्र, तथापि उसे कहीं किसी स्थान में सुखबुद्धि, ठीकबुद्धि यह सब उड़ गयी है। सुख तो मेरे आत्मा में है, आनन्द मुझमें है, वह आनन्द कहीं अन्यत्र राग, पुण्य-पाप के परिणाम में भी आनन्द नहीं। उसके फल में प्राप्त सामग्री के ढ़ेर, वे सब जहर के ढ़ेर हैं। उनमें कहीं सुख नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : परपदार्थ कुछ करता नहीं और फिर....

पूज्य गुरुदेवश्री : करता है, किसने कहा? उससे राग होता है, वह जहर है। वह जहर कौन सा? एकत्वबुद्धि का राग, वह जहर है। अस्थिरता के राग को यहाँ गिनने में नहीं आया। उससे अल्प बन्ध होता है, वह अनन्त संसार का बन्ध नहीं करता। यहाँ तो अनन्त संसार का परिभ्रमण अनन्त भव करता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह जिसका नाश हो गया और जिसे आत्मा का भान हुआ है। आहाहा! मैं शुद्ध चैतन्यघन, जैसे अरिहन्त परमात्मा पर्याय में हैं, वैसा ही मेरा द्रव्यस्वभाव उतना और वैसा ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य और पर्याय से दोनों से?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य से कहा। यहाँ द्रव्य से कहा न? अरिहन्त को पर्याय में परमात्मदशा है। मेरे द्रव्य में परमात्मदशा इतनी और ऐसी ही पूर्ण दशा है। आहाहा! कठिन बात, बापू! यह संसार के मोह जगत को मार डालते हैं। स्त्री में सुख है, पुत्र में

सुख है, पैसे में सुख है। यह धूल कुछ सुन्दर रूपवान शरीर तो ठीक है, यह सब मिथ्यात्वभाव अनन्त संसार का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

धर्मीजीव को... धर्मी ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके धर्म अर्थात् आनन्दादि, उसका जिसे पर्याय में स्वाद और उसका स्वीकार हुआ है। आहाहा! इससे वह पूर्व के कर्म के कारण सामग्री पाँचों इन्द्रियों की हो, ऐसा कहते हैं। पाँच इन्द्रियाँ कहीं न? पाँचों इन्द्रिय की सामग्री हो। परन्तु सबमें से सुखबुद्धि उड़ गयी है। तथा उसके प्रति की जरा आसक्ति है, उसमें सुखबुद्धि उड़ गयी है। अरे! ऐसी बातें हैं। ऐसी शर्तें हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जवान लड़का हो, माता चालीस वर्ष की हो, कोई स्नान करती हो और नग्न हो और स्नान करते हुए खाट आड़े न हो। लड़का आ चढ़ा, नजर (वहाँ पड़ी)। वह नजर वहाँ करता ही नहीं। वह जननी है, मेरी माँ है। उसके ऊपर उसकी नजर नहीं। आहाहा! इसी प्रकार धर्मी को कर्म के निमित्त से प्राप्त सामग्री, उसके ऊपर उसकी नजर नहीं। सम्यग्दर्शन की नजर तो अन्दर द्रव्य के ऊपर है। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प भले न हो। लब्धरूप सम्यग्दर्शन-प्रतीतिरूपी है। लब्धरूप ज्ञान है। शान्ति का, आनन्द का भी स्वाद है। परन्तु राग आसक्ति भी है। परन्तु उस आसक्ति का रस नहीं, आसक्ति में सुखबुद्धि नहीं। और सामग्री मिलती है, उसमें कहीं सुखबुद्धि समकिती को उड़ जाती है। आहाहा! समझ में आया? बापू! सम्यग्दर्शन क्या है? आहाहा! यह जैन परमेश्वर वीतराग के मार्ग में यह बात है, अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि **भोगता है, तथापि 'असेवकः'** है। **किस कारण?** अब कारण देते हैं। **'यत् ना विषयसेवनेऽपि विषयसेवनस्य स्वं फलं न अश्नुते'** क्या कहते हैं। **जिस कारण से सम्यग्दृष्टि जीव... 'ना'** आया न? दूसरे पद में अन्त में है न? **सम्यग्दृष्टि जीव... 'विषयसेवनेऽपि' पंचेन्द्रियसम्बन्धी विषयों को सेवता है...** आहाहा! वह चक्षु से रूप को देखे, कान से निन्दा-प्रशंसा को सुने। अनुकूल लो न, सब अपने

प्रशंसा को सुने, सुगन्ध को नाक से सूँघे, रसन (रसन इन्द्रिय) से रस का स्वाद ले और स्पर्श भोगे। अर्थात् स्पर्श में राग की आसक्ति हो तो भी पंचेन्द्रिय भोग का फल जो अनन्त संसार उसका फल है, वह फल उसे नहीं आता। आहाहा! क्योंकि जहाँ मिथ्यात्व का नाश हुआ और सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए मिथ्यात्व जो अनन्त संसार का कारण था, वह फल अब समकिती को विषय भोगने पर भी मिथ्यात्व का नाश होने से मिथ्यात्व से जो अनन्त संसार बँधता था, वह अब उसे बँधता नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व में अनन्त भव का परिभ्रमण जो था, उस परिभ्रमण का कारण अब नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें है, भाई! आहाहा! इसमें दुनिया के चतुर भी काम नहीं आते, शास्त्र का जानपना करनेवाला अकेला, वह भी काम नहीं आता। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, अनन्त आनन्द का कन्द, रसकन्द प्रभु, उसका जिसे स्वाद और वह वस्तु आनन्दमय है, ऐसे नमूने द्वारा, स्वाद द्वारा जिसे पूरा आत्मा आनन्द है, ऐसा अनुभव हुआ, उसे कर्म की सामग्री जरा भोगता है, इसलिए आसक्ति का भाव होने पर भी अनन्त संसार बन्ध का कारण कर्म उसे नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! और पाँच इन्द्रिय के विषय छोड़े हों, त्यागी-साधु हुआ जैन का, तो भी अन्दर में जिसे... आहाहा! यह दया, दान, व्रत के परिणाम पुण्य हैं, वह दुःख है, उसमें इसे सुखबुद्धि है। आहाहा! वह मुझे लाभदायक है, ऐसा मानता है। इसलिए वह मिथ्यादृष्टि अनन्त संसार बढ़ाता है। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि पूर्व के कर्म के कारण बहुत सामग्री मिली है, परन्तु मिली, वह तो पर है। मेरी कहाँ है? मुझमें कहाँ है? उसमें मैं कहाँ हूँ? आहाहा! ऐसा अन्तर में पर के स्वामित्व की बुद्धि उड़ गयी है। आसक्ति का स्वामित्व भी टल गया है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु ज्ञाता-दृष्टा का जहाँ सेवक हुआ है, उसका सेवन करनेवाला हुआ है, वह विषय को सेवन करता है, तो भी उसे अनन्त संसार का बन्धन नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....भोग निर्जरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निर्जरा कहते हैं न, यह निर्जरा। इस अपेक्षा से, हों! उसे मिथ्यात्व सम्बन्धी जो बन्ध है, वह नहीं; इसलिए उसे सम्यग्दर्शन के जोर के बल से

वहाँ सुखबुद्धि है इसलिए राग आता है, उसकी निर्जरा (होती है)। वहाँ दृष्टि की प्रधानता की अपेक्षा से आसक्ति की भी निर्जरा हो जाती है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा है, सेठ! बहुत सूक्ष्म। आहाहा!

मुमुक्षु : समझना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात मानना पड़ेगी। सोलह आने सच्ची बात है। करना, समझना पड़ेगा। यह चौरासी में भटक मरता है। आहाहा! करोड़ोंपति महल और मकान छोड़कर चले जाते हैं। आहाहा! उसमें जिसकी बुद्धि (है कि) वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ, ऐसी मिथ्याबुद्धि है, वह अनन्त संसार में भटकनेवाली है और उस सामग्री में पड़ा है तो भी जिसे राग का योग-सम्बन्ध नहीं, जिसे विकल्प, दया, दान का सम्बन्ध भी जीव के साथ नहीं है। उसे तोड़ डाला है... आहाहा! ऐसे जीव को कर्म के कारण प्राप्त सामग्री, उसे भोगता है; इसलिए जरा आसक्ति के परिणाम होते हैं, तथापि दृष्टि के जोर की अपेक्षा से मिथ्यात्व से जो अनन्त संसार बँधता है, वैसा उसे नहीं है, इसलिए निर्जरा कही गयी है। परन्तु ऐसा ही मान बैठे कि हमारी आसक्ति तो निर्जरा का कारण है (तो वह मिथ्यादृष्टि है)। यहाँ तो दृष्टि के जोर की अपेक्षा से बात की है। आहाहा! और आसक्ति का बन्ध जो है, कर्म का रस थोड़ा पड़े, स्थिति थोड़ी पड़े, उसे यहाँ गिनने में नहीं आया। परन्तु एकान्त मान ले कि सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए अब कुछ जरा भी बन्ध ही नहीं, ऐसा नहीं है। उसे राग की एकताबुद्धि महासंसार का कारण (खड़ा है)। तीन लोक का नाथ भगवान पूर्ण पवित्र और राग का कण शुभ-महा अपवित्र जहर, दोनों की एकताबुद्धि है, वह संसार महामिथ्यात्व है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव पंचेन्द्रियसम्बन्धी विषयों को... देखा! वापस पाँचों इन्द्रियाँ ली हैं। कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श के भोग। भोगता है अर्थात् उसमें जरा आसक्ति है, इतना। वरना कहीं भोग सकता नहीं। **सेवता है, तथापि पंचेन्द्रिय भोग का फल है ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध,...** जो अनन्त संसार का कारण **उसको नहीं पाता है।** जो ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी आदि अनन्त संसार का कारण हो, ऐसे कर्मबन्धन को वह प्राप्त नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? एक तो सम्यग्दर्शन के जोर में उसे अनन्त संसार

का कारण तो नहीं, परन्तु आगामी भव का आयुष्य भी जब उसे बँधता है, तब उसे शुभभाव आवे, तब बँधता है, वरना अशुभभाव भी आता है, तो भी अशुभभाव के काल में भविष्य के भव का बन्ध नहीं है। आहाहा! उसे तो स्वर्ग के विमान के आयुष्य का बन्ध (पड़ता है)। वह शुभभाव आवे तब। परन्तु यहाँ तो वह बन्ध है, ऐसा गिनने में नहीं आया है। क्योंकि अनन्त संसार का कारण नहीं, इसलिए गिनने में नहीं आया। समझ में आया? आहाहा!

कर्म का बन्ध, उसको नहीं पाता है। ऐसा भी किस कारण से? अनन्त संसार के बन्ध को करता नहीं, इसका कारण? हेतु क्या? **'ज्ञानवैभवविरागताबलात्' शुद्धस्वरूप का अनुभव, उसकी महिमा,...** एक तो। भगवान पूर्ण पवित्र अनन्त गुण का धनी, जिसमें अनन्त-अनन्त गुणराशि का ढ़ेर प्रभु आत्मा... आहाहा! उसकी जिसे अन्तर में महिमा आयी है और उसका जहाँ अनुभव-ज्ञान में उसका अनुभव हुआ है, उस अनुभव और महिमा के कारण से नया अनन्त संसार के कर्म नहीं बँधते। एक बात।

दूसरी बात। **अथवा...** है न? वह एक बात की। शुद्ध स्वरूप है परमात्मा आनन्द (स्वरूप है)... आहाहा! उस आनन्द की मिठास की महिमा के समक्ष राग का भाव आया, परन्तु उसकी मिठास उड़ गयी है। इसलिए उसे अनन्त संसार का बन्धन नहीं होता। एक बात। दूसरी बात— **अथवा 'विरागताबलात्' कर्म के उदय से है विषय का सुख, जीव का स्वरूप नहीं,...** आहाहा! वैराग्य-वैराग्य। अरे! आहाहा! यह अशुभभाव आवे परन्तु उसे काला नाग जैसा समकिती देखता है। भोगभुजंग आया था। नहीं? मुनि के लिये आया था। आहाहा! मुनिराज तो भोग को भुजंग अर्थात् काला नाग जैसा देखते हैं। यहाँ यह समकिती को लेना है। आहाहा! आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर स्वयं, उसका जिसे भान और स्वाद हुआ, उसे पर के प्रति उदास भाव है। पर में कहीं सुख नहीं, इसलिए पर से वह उदास है। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हों! इसलिए पहले लिया कि स्वरूप की महिमा है, स्वरूप का अनुभव है और परसन्मुख का वैराग्य अर्थात् उदास है। अस्ति-नास्ति किया। यह क्या कहा? कि ज्ञानवैभव। एक तो स्वरूप का वैभव-अनुभव प्रगट हुआ, उस महिमा के समक्ष उसे पर में कुछ महिमा नहीं आती। दूसरा। विषयसुख... है न?

कर्म के उदय से है विषय का सुख, जीव का स्वरूप नहीं,... आहाहा! वह छह खण्ड का राज, जिसे छियानवें हजार रानियाँ! एक रानी—एक मुख्य स्त्री-रानी, स्त्रीरत्न, हजार देव सेवा करें, परन्तु उसमें उसकी भोगबुद्धि की रुचि उड़ गयी है। उदास। अरेरे! वह चीज़ मेरी नहीं। मुझमें नहीं, मैं उसमें नहीं। आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव भले गृहस्थाश्रम में हो... आहाहा! परन्तु परपदार्थ के प्रति तो उदास, वैराग्य है। मुझमें वह है ही नहीं। आहाहा! यहाँ तो स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा और मकान से घेरा डाला हो, घेरा डाला है, उसमें रच-पच गया। आहाहा! उसमें कोई पाँच-पचास लाख पैसा हो, दो-पाँच लाख के बँगले हों, स्त्री-पुत्र-बेटा कुछ ठीक हुए हों कमाऊ—उस घेरा में वह घिर गया है। मिथ्यात्व के कारण वे मेरे हैं, ऐसा मानकर घिर गया है। सम्यग्दृष्टि उस घेरा में घिरता नहीं, कहते हैं। आहाहा! कोई चीज़ मेरी नहीं।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि का कोई दोष ही नहीं, ऐसा आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ मिथ्यात्व का दोष, वही दोष कहा गया है। अभी यह...

मुमुक्षु : दो भाई सम्यग्दृष्टि युद्ध करे तो भी कुछ दोष नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। मिथ्यात्व सम्बन्धी का दोष नहीं, वह मूल संसार का कारण है, उसकी बात है। आसक्ति का दोष है, वह आसक्ति छोड़ेगा, तब साधु होगा। आसक्ति में रहेगा और चारित्र होगा?

यहाँ तो अभी सम्यग्दृष्टि में मिथ्यात्व का जो अनन्त संसार था—बन्ध का कारण, वह भावबन्ध उड़ गया। इस अपेक्षा से निर्जरा कही जाती है। अपेक्षा लेनी चाहिए। ऐसी खींचतान करे, वह नहीं चलता। आहाहा!

ऐसे तो महामुनि, जिन्हें अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का उफान आया। मुनि किसे कहे, बापू! जिन्हें, समुद्र के किनारे समुद्र में ज्वार आवे ज्वार, वैसे आत्मा में आनन्द है, उसकी वर्तमान पर्याय में आनन्द का ज्वार आवे। आहाहा! समकिती को आनन्द है, परन्तु मुनि को तो अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है। आहाहा! समझ में आया? उसे भी जरा पंच महाव्रत का रागादि उठे, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि कर्म की पाँचों इन्द्रियों की सामग्री को आसक्तिरूप से भोगता

है। वह पर को तो भोगता कहाँ है ? वह आसक्ति है न इतनी ? तथापि उसके स्वामीपने नहीं, उसमें सुखबुद्धि नहीं, उसमें मेरापन नहीं। इसलिए अनन्त संसार का कारण उसे नहीं होता। निर्जरा होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बातें। ऐसा पकड़े वे, समकिती को कुछ दुःख भी नहीं और कुछ नहीं। ऐसा पकड़े, ऐसा नहीं चलता भाई! किस अपेक्षा से कही है, वह बात लेनी चाहिए। आहाहा!

विषय का सुख, जीव का स्वरूप नहीं,... यह क्या कहा ? कि पाँच इन्द्रिय के विषय की सामग्री है, उसमें जरा आसक्ति है, परन्तु वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि को अन्तर में वर्तता है। आहाहा! अज्ञानी को तो यह जरा अनुकूलता हो वहाँ हमको मजा है और सुखी हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : त्यागी हो जाये। सम्यग्दर्शन का क्या काम है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन त्यागी हो जाये ? भान बिना का त्यागी कौन ? अभी मिथ्यात्व का त्याग नहीं, वहाँ त्यागी किसका ? अभी मिथ्याश्रद्धा राग की एकताबुद्धि का त्याग नहीं, वहाँ बाहर का त्याग करे, वह तो सब मिथ्यात्याग है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, भाई! यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि में आयी हुई यह बातें हैं। आहाहा! उसे 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' जिस जगह जिस प्रकार से कहा है, उस अपेक्षा से वहाँ समझना। सम्यग्दृष्टि को आसक्ति है, इसलिए आसक्ति का बिल्कुल बन्ध ही नहीं (ऐसा नहीं है)। यहाँ तो मिथ्यात्व नाम का बन्धन नहीं, इसलिए आसक्ति में अपनापन नहीं, इससे मिथ्यात्व का बन्धन नहीं, इसलिए अनन्त संसार का बन्ध नहीं—ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त कोई भी पुण्य-व्रत, तप के भाव हों, वह भी पुण्य है। उसमें भी यदि 'ठीक है' ऐसी बुद्धि रहे तो वह मिथ्यात्वबुद्धि है। उसे अनन्त संसार का परिभ्रमण है और उसे अनन्त संसार के कर्म बँधते हैं। आहाहा! ऐसी बात! सम्यग्दृष्टि को विषयों में आसक्ति का भाव है, परन्तु उसमें जीव का स्वरूप यह नहीं, सुख उसमें नहीं, मुझमें सुख है और वह मेरा जीव का स्वरूप है, ऐसा जिसे राग से भिन्न पड़कर विवेक अन्तर में वर्तता है, उसे अनन्त संसार का कारण, (ऐसा) बन्ध नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : भाव में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव में अन्तर है। भाव के अन्दर की बात है। आहाहा!

ऐसे तो अनन्त बार हजारों रानियाँ छोड़ीं, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये, जैन का दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ, परन्तु उस राग की क्रिया में अपनापन माना और वह मुझे धर्म है, ऐसा माना वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि कर्म के कारण सामग्री मिले बाहर, उसमें लक्ष्य भी जाये, परन्तु उसमें कहीं उसे सुखबुद्धि, रतिबुद्धि कहीं नहीं है। आहाहा! उसके कारण ज्ञानी को—सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व सम्बन्धी और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी अनन्त संसार के कर्म नहीं बँधते। आहाहा! समझ में आया? यह जिस प्रकार से शर्तें कही जाती हैं, उस प्रकार से समझना पड़ेगा। उसमें कहीं बचाव करे तो चले, ऐसा नहीं है। ऐसा वीतराग का मार्ग है।

इसलिए विषयसुख में रति नहीं उत्पन्न होती है,... देखा! जिसे विषय के सुख की आसक्ति (रही नहीं), वह मेरा स्वरूप ही नहीं, इसलिए उसमें उसे रति उपजती नहीं। आहाहा! आसक्ति-राग आता है, परन्तु उसमें रतिपना नहीं, प्रसन्नता नहीं। आहाहा! समझ में आया? और अज्ञानी को जरा अनुकूल सामग्री मिले वहाँ प्रेम (आता है) और उसमें मुझे मजा है अथवा कोई पुण्य का भाव हुआ, उसमें मुझे ठीक पड़ता है, वह मिथ्यात्वभाव अनन्त संसार का कारण है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। सन्तों ने तो खुल्ला करके रखा है। समाज सुगठित रहेगी या नहीं? यह कुछ दरकार नहीं। मार्ग यह है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' परमेश्वर जिनेन्द्रदेव एक ही प्रकार से यह परमार्थ मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

उदासभाव है,... है? सम्यग्दृष्टि को जीव के—आत्मा के स्वाद के प्रेम के समक्ष, उस आसक्ति में उसे प्रेम और रति उपजती नहीं। उससे उदास है। आहाहा! यह सँडासी से सर्प पकड़ना है, परन्तु वह छोड़ने के लिये। इसी प्रकार राग में आया है परन्तु वह छोड़ने के लिये। आहाहा! अज्ञानी को राग आया है, वह मेरे लिये, ऐसा करके बँधने के लिये है उसे। समझ में आया? अरे! अब ऐसी बातें। सूक्ष्म बातें कहना और फिर समझ में आया? (ऐसा पूछना)। आहाहा! ऐसी बातें! यह तो सादी भाषा से बात

है। आहाहा! अन्दर तीन लोक का नाथ सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु विराजता है। सर्वज्ञ इसका— आत्मा का स्वभाव है, हों! पर्याय में सर्वज्ञ हुए, वे केवली। परन्तु यह तो गुण में सर्वज्ञ है, वह यह प्रत्येक आत्मा। आहाहा! क्योंकि यदि सर्वज्ञस्वभाव और शक्ति न हो तो सर्वज्ञपना पर्याय में केवली को प्रगट हुआ, वह कहाँ से आयेगा? कहीं बाहर से आता है? आहाहा!

यह आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, प्रभु! आहाहा! प्रत्येक भगवान आत्मायें, अरे! अभव्य का आत्मा हो, परन्तु वह तो 'ज्ञ' स्वभावी... 'ज्ञ' स्वभावी... 'ज्ञ' शक्ति... 'ज्ञ' सत्त्व। सत्त्व कहीं आया था न? किसमें? सत्त्व कहीं स्तुति में आया था। समयसार की स्तुति में है? सत्त्व कहीं आया था कल। सत्त्व, सत्त्व आया था। रात्रि में।

मुमुक्षु : रात्रि में स्तुति बोली थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह उसमें ही आया था। यही कहता हूँ। वह क्या आया था?

मुमुक्षु : हैयुं सत् सत् ज्ञान ज्ञान धबके...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सत्त्व आता है। रात्रि में आया था।

मुमुक्षु : मुमुक्षु सत्त्व झलके।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह। मुमुक्षु का सत्त्व झलकता है। इसलिए सत् ऐसा भगवान, उसका सत्त्व जो कस है, वह झलकता है-प्रगट होता है। सत् ऐसा भगवान आत्मा त्रिकाली, उसका गुण जो है, वह सत्त्व है, वह सत् का सत्त्व है। वह सत्त्व पर्याय में झलके, इसलिए उसे सत्त्व झलका कहलाता है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें, भाई! यह तो कहे दया पालो, व्रत करो और अपवास करो, दान करो, मन्दिर बनाओ और यात्रा करो। उसमें बेचारे मर गये। आहाहा! यह तो सब क्रियायें राग की क्रिया हैं। और उससे मुझे लाभ (हुआ), मानेगा, वह तो मिथ्यात्व अनन्त संसार बढ़ाता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आसक्ति होने पर भी, सामग्री तो कुछ भोगी नहीं जाती, परन्तु उसे भोगता है अर्थात् आसक्ति है उसे, तथापि उसमें यह मेरा स्वरूप है, (ऐसा

लगता नहीं), उसमें सुखबुद्धि उड़ गयी है। इसलिए वह आसक्ति से भी उदास है। आहाहा! अब ऐसी बातें। सम्यग्दृष्टि आसक्ति से उदास है। आहाहा! **विषयसुख में रति नहीं उत्पन्न होती है, उदासभाव है, इस कारण कर्मबन्ध नहीं होता है।** देखा! इस कारण से अनन्त संसार बढ़े, ऐसा बन्ध नहीं होता। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है-सम्यग्दृष्टि जो भोग भोगता है, सो निर्जरा के निमित्त है। उस आसक्ति को न गिनकर, आसक्ति भी खिर जाती है। दृष्टि के जोर में उसका आदर नहीं है, स्वामी नहीं है, सुखबुद्धि नहीं है। इसलिए सुखबुद्धि यहाँ है, आदर यहाँ है, सत्कार यहाँ है, इसलिए वह चीज़ खिर जाती है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग होगा यह? भाई! हम तो ऐसा सुनते थे अभी तक, एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया अभिहया, वतिया, लेसिया, संधाईया तस्स मिच्छामि दुक्कडम, तस्सउतरी करणेण तावकाय ठाणेणं, माणेण झाणेणं अप्पाणं वोसिरामी। आहाहा! भाई! यह सब बातें बाहर की हैं, बापू! यह तो सब राग की क्रिया की बातें हैं। आहाहा!

यहाँ तो धर्मी को उस राग की आसक्ति में सुखबुद्धि उड़ गयी है। राग का स्वामित्व उड़ गया है, राग में रति नहीं, राग में जीवस्वरूप है, ऐसा उड़ गया है और राग से उदास है। आहाहा! इसलिए उसे अनन्त संसार का कारण ऐसा कर्म नहीं बँधता। **जो भोग भोगता है, सो निर्जरा के निमित्त है।** देखा! इस अपेक्षा से, हों! आहा! सर्वथा ऐसा मान ले कि वह आसक्ति है, वह बिल्कुल निर्जरा हो जाती है और बन्ध जरा भी नहीं, ऐसा नहीं है। आसक्ति का अल्प बन्धन है, कर्म की स्थिति अल्प पड़ती है परन्तु अनन्त संसार का कारण नहीं हुआ, इसलिए उसे निर्जरा कहा जाता है। आहाहा! कितनी शर्तें इसमें? याद कितना रखना इसे? आनन्द के नाथ के सन्मुख देखना और पर्याय तथा राग के सामने देखना छोड़ दे। आहाहा! और जिसने राग और पर्याय के सामने देखा, उसने भगवान आत्मा का अनादर करके मिथ्यात्व को सेवन किया है। आहाहा! उस राग को जिसने उपादेय-आदरणीय माना, उसने भगवान आत्मा को हेय माना। और जिसने आत्मा पूर्णानन्द के नाथ को उपादेय माना, उसने जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है,

वह भाव भी हेय जाना। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! कहाँ है ऐसा? कठिन बात, बापू! जगत चला जा रहा है। आहाहा! आहाहा!

यह तो परमात्मा की पेढी है। वीतराग त्रिलोकनाथ का यह मार्ग है। सम्यग्दृष्टि जो भोग भोगता है, परन्तु उसमें भोग भोगता है, उसमें क्या अपेक्षा ली? कि आसक्ति के प्रति उदास है। पर को तो भोग सकता ही नहीं। आसक्ति के प्रति वैराग्य है, आसक्ति में सुखबुद्धि नहीं, इसलिए उसे अनन्त संसार का कारण नहीं होता और वह दृष्टि के जोर से खिर जाता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? यह १३५ (कलश पूरा हुआ)।

कलश-१३६

(मन्दक्रान्ता)

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात्।।४-१३६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'सम्यग्दृष्टेः नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः भवति' [सम्यग्दृष्टैः] द्रव्यरूप से मिथ्यात्वकर्म उपशमा है, भावरूप से शुद्धसम्यक्त्वभावरूप परिणमा है जो जीव, उसके [ज्ञान] शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप जानपना; [वैराग्य] जितने परद्रव्य-द्रव्यकर्मरूप, भावकर्मरूप, नोकर्मरूप ज्ञेयरूप हैं, उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार त्याग, [शक्तिः] ऐसी दो शक्तियाँ [नियतं भवति] अवश्य होती हैं-सर्वथा होती हैं। दोनों शक्तियाँ जिस प्रकार होती हैं, उस प्रकार कहते हैं — 'यस्मात् अयं स्वस्मिन् आस्ते परात् सर्वतः रागयोगात् विरमति' [यस्मात्] जिस कारण [अयं] सम्यग्दृष्टि, [स्वस्मिन् आस्ते] सहज ही शुद्धस्वरूप में अनुभवरूप होता है तथा [परात् रागयोगात्] पुद्गलद्रव्य की उपाधि से है जितनी रागादि अशुद्धपरिणति, उससे [सर्वतः विरमति] सर्व प्रकार रहित होता है। भावार्थ इस प्रकार है — ऐसा लक्षण, सम्यग्दृष्टिजीव के अवश्य होता है। ऐसा लक्षण होनेपर, अवश्य वैराग्यगुण है। क्या करके ऐसा होता है? 'स्वं परं च इदं व्यतिकरं तत्त्वतः ज्ञात्वा' [स्वं] शुद्धचैतन्यमात्र मेरा स्वरूप है; [परं] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का विस्तार, पराया—पुद्गलद्रव्य का है, [इदं व्यतिकरं] ऐसा विवरण [तत्त्वतः ज्ञात्वा] कहने के लिए नहीं है; वस्तुस्वरूप ऐसा ही है, ऐसा अनुभवरूप जानता है सम्यग्दृष्टिजीव; इसलिए ज्ञानशक्ति है। आगे इतना करता है कि सम्यग्दृष्टिजीव, सो किसके लिए? उत्तर इस प्रकार है — 'स्वं वस्तुत्वं कलयितुं' [स्वं वस्तुत्वं] अपना शुद्धपना, उसके [कलयितुं] निरन्तर अभ्यास अर्थात् वस्तु की प्राप्ति के निमित्त। उस वस्तु की प्राप्ति किससे होती है? 'स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या' अपने शुद्धस्वरूप का लाभ; परद्रव्य का सर्वथा त्याग—ऐसे कारण से।।४-१३६।।

कलश - १३६ पर प्रवचन

१३६।

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात्।।४-१३६।।

लो आया, देखा! '**रागयोगात्**' आया।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'सम्यग्दृष्टेः नियत ज्ञानवैराग्यशक्तिः भवति' द्रव्यरूप से मिथ्यात्वकर्म उपशमा है,... आहाहा! जिसे दर्शनमोह में मिथ्यात्व कर्म हो, वह नाश हो गया है। भले उपशमित हुआ है। **भावरूप से शुद्ध सम्यक्त्वभावरूप परिणमा है,...** आहाहा! यह लोग तो ऐसा कहे कि जीवादि को मानना, वह समकित। नौ तत्त्व को मानना, (वह समकित)। परन्तु ऐसा नहीं है। यहाँ तो शुद्धरूप, पवित्र प्रभु शुद्धरूप परिणमे, उसे यहाँ समकित कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? है? जिसे द्रव्य अर्थात् जड़कर्म दर्शनमोह उपशमित हो गया है, शान्त हो गया है और भाव में जिसे सम्यग्दर्शन, पूर्ण परमात्मस्वरूप मैं हूँ, मैं तो भगवत्स्वरूप ही पूर्ण हूँ, ऐसा जिसे ज्ञान होकर, अनुभव होकर प्रतीति हुई है, वह समकितरूप परिणमा है। परिणमा अर्थात् पर्याय में सम्यग्दर्शन की दशा हुई है। आहाहा! समझ में आया?

परिणमा है जो जीव, उसके शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप जानपना,... एक तो शुद्धस्वरूप पूर्ण है, उसका उसे ज्ञान हुआ है। वर्तमान पर्याय अर्थात् ज्ञानदशा में शुद्ध स्वरूप का अनुभव है। आहाहा! **जितने परद्रव्य द्रव्यकर्मरूप, भावकर्मरूप, नोकर्मरूप ज्ञेयरूप हैं...** और जितने शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, परिवार, देश यह परद्रव्य, द्रव्यकर्म अन्दर आठ कर्म और भावकर्म—पुण्य-पाप के भाव। पुण्य और पाप, दया, दान और व्रत-भक्ति के भाव भी भावकर्म हैं। आहाहा! और नोकर्म अर्थात् वाणी, शरीर आदि वह ज्ञेयरूप है। वह तो ज्ञान में पररूप से जाननेयोग्य है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि धर्मी की पहली दशा में वह कर्म, कर्म की प्राप्त सामग्री और पुण्य-पाप के भाव, सब ज्ञान में परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। मेरे रूप से माननेयोग्य एक भी चीज़ नहीं है। आहाहा! **जितने परद्रव्य**- शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, बँगला सब। **भावकर्म,...** पुण्य और पाप। **नोकर्मरूप...** शरीर और वाणी आदि। वे सब **ज्ञेयरूप है...** ज्ञान में पर जाननेयोग्य है। वह चीज़ मेरी है, यह माननेयोग्य धर्मी को है नहीं। आहाहा! यहाँ स्त्री को अर्धांगिनी कहे। आधा अंग स्वयं और आधा वह। एक अंग करके। मूढ़ है। ऐसी बाते हैं। परज्ञेय है। वह तो ज्ञान में पररूप से जाननेयोग्य है। आत्मा में वह मेरी चीज़ है, यह माननेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसा है। वैराग्य की व्याख्या की। यह वैराग्य की व्याख्या।

उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार त्याग... इस राग से लेकर परद्रव्य का जिसमें—स्वभाव में तो त्याग है। यह त्याग। जिसमें दया, दान के परिणाम भी त्याग है। मेरे स्वभाव में वे नहीं। उनका उसे—सम्यग्दृष्टि को त्याग है। आहाहा! समझ में आया? यह तो बाहर का त्याग करके बैठे, (इसलिए मानो) हो गये त्यागी। बापू! यह जैनमार्ग का त्याग कोई अलौकिक है। उसमें पुण्य के परिणाम उठे, वह भी मेरे नहीं, उनका त्यागी (हो), उसे भी अभी सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! फिर आसक्ति का त्याग करके स्थिर हो, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा!

उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार... भाषा देखो! समस्त परद्रव्य। समस्त में सब आ गया। जड़कर्म, भावकर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, इज्जत, मकान, पुत्र, लड़कियाँ, लड़के की बहुएँ। उसमें—परद्रव्य में आ गये या नहीं? उसे और पाँच-पच्चीस लाख। अच्छे घर की लड़की हो तो दो-पाँच लाख लेकर आयी हो। सन्दूक। यह मेरा है। धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा! यह सर्वथा... है न? सर्वथा **उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार त्याग ऐसी दो शक्तियाँ अवश्य होती हैं...** सम्यग्दृष्टि को आत्मा का अनुभव अस्तिपने का और राग के स्वभाव का अभाव त्याग-उदास, यह दो शक्तियाँ सम्यग्दृष्टि को हमेशा होती है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ५, सोमवार, दिनांक - ३१-१०-१९७७, कलश-१३६, प्रवचन-१३६

कलशटीका १३६। हिन्दी चलता है। हिन्दी (भाषी मुमुक्षु) आये हैं। निर्जरा अधिकार है। किसे निर्जरा—कर्म का खिरना और अशुद्धता का नाश होना और शुद्धि की वृद्धि होना, (ऐसी) निर्जरा किसे होती है? सम्यग्दृष्टि को होती है, यह बात चलती है।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'सम्यग्दृष्टेः नियत ज्ञानवैराग्यशक्तिः भवति' सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि जिसमें अन्तर में पुण्यादि, पापादि भाव का सम्बन्ध तोड़ दिया है। राग जो विकल्प है, शुभ या अशुभराग, उसका सम्बन्ध तोड़कर चैतन्य शुद्ध आनन्दस्वरूप के साथ सम्बन्ध जोड़ दिया है। आहाहा! अज्ञानी ने आत्मा आनन्द और शान्तस्वरूप है, उसका सम्बन्ध छोड़ दिया है और अनादि से राग के साथ सम्बन्ध जोड़ दिया है। चाहे तो राग दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का हो, परन्तु वह राग है। राग की एकता का सम्बन्ध, वही मिथ्यादृष्टि परिभ्रमण करनेवाला जीव है।

जिसे अन्तर में **द्रव्यरूप से मिथ्यात्वकर्म उपशमा है,...** जिसे जड़कर्म जो दर्शनमोह है, वह उपशमित हो गया है, अब उदय नहीं है। और **भावरूप से शुद्ध सम्यक्त्वभावरूप परिणमा है,...** आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्य आनन्द हूँ, ऐसी सम्यग्दर्शन में शुद्धदशा, शुद्धपरिणति, पवित्रदशा प्रगट होती है। आहाहा! यह तो धर्म की पहली शुरुआत की बात है। सम्यग्दृष्टि में शुद्ध सम्यक्रूप परिणमन है। अर्थात् यह दया, दान, व्रत, भक्ति के राग से भी भिन्न मेरी चीज़ पूर्ण शुद्ध आनन्द है, उसके साथ सम्बन्ध-एकत्व होकर सम्यग्दर्शन शुद्ध श्रद्धा का परिणमन पर्याय में सम्यग्दर्शन की दशा प्रगट हुई है। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बात।

उस सम्यग्दृष्टि जीव को **शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप जानपना,...** होता है। मैं तो शुद्ध चैतन्य पवित्र आनन्द हूँ, ऐसा सम्यग्दृष्टि को ज्ञान होता है। आहाहा! मैं आत्मा अन्दर शुद्ध स्वरूप पवित्र भगवान, वह मैं हूँ, ऐसा अन्दर अनुभव में शुद्धता की अनुभव में प्रतीति होती है। ऐसी चीज़ है। **शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप जानपना,...** देखा! शुद्ध

स्वरूप जो चैतन्य पवित्र; शुभ-अशुभराग अपवित्र है, उससे भगवान की चीज़—वस्तु भिन्न है। वह पवित्र भगवान आत्मा अन्दर है। ऐसी पवित्रता का अनुभव, उसका जानपना। ऐसा लिखा है न? **शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप जानपना,...** अकेले शास्त्र का ज्ञान, वह नहीं। आहाहा! मैं पवित्र शुद्ध आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप शुद्ध हूँ, ऐसे अनुभव का जानपना। वह सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाली यह चीज़ होती है। आहाहा!

शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप जानपना,... ऐसा आया न? शास्त्र का जानपना, कि वह यहाँ नहीं। तथा राग और पुण्य-पाप का ज्ञान, वह भी नहीं और एक समय की वर्तमान जो पर्याय है, वह भी नहीं। त्रिकाली शुद्ध स्वरूप के अनुभव का ज्ञान। आहाहा! मैं अखण्ड पवित्र शुद्ध पवित्र स्वरूप मैं हूँ, उसका अनुभव, पर्याय में उसके आनन्द का वेदन, उसका जानपना। आहाहा! धर्म की ऐसी शर्तें हैं। और यह दशा हुए बिना इसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। चौरासी लाख (योनियों में) अवतार कर-करके मर गया है अन्दर से। आहाहा! कहीं यह सुखी नहीं। यह पैसेवाले करोड़ोंपति हों तो भी वे दु:खी हैं बेचारे। आत्मा अन्तर आनन्द और अन्तर स्वरूप की लक्ष्मी के अनुभव का ज्ञान नहीं, वे सब अज्ञानी दु:खी है। आहाहा! समझ में आया?

और जितने परद्रव्य... जितनी आत्मा की अतिरिक्त परवस्तुएँ—स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा, माल आदि वह आत्मा के अतिरिक्त की परवस्तु। और **द्रव्यकर्म...** अन्दर आठ कर्म जड़ जो है, वह द्रव्यकर्म। और **भावकर्म...** पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव, वह मलिनभाव है। और **नोकर्मरूप...** वाणी आदि या बाहर के संयोग। वे **ज्ञेयरूप हैं...** आत्मा के ज्ञान में वे ज्ञेयरूप हैं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा चैतन्यस्वरूप ज्ञानमूर्ति प्रभु, उस ज्ञान में पुण्य-पाप के भाव, कर्मबन्धन, संयोगी चीज़, लक्ष्मी आदि, वह सब ज्ञान में ज्ञेय है। धर्मी को अपने ज्ञान में वे ज्ञेय जाननेयोग्य हैं। वह चीज़ मेरी है, यह मान्यता मिथ्यात्व की है। आहाहा!

अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप के अतिरिक्त चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव हो, वह भी ज्ञेय है। ज्ञान में जाननेयोग्य है। अपने ज्ञान में अपना माननेयोग्य नहीं।

आहाहा! और शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, इज्जत यह सब अपने ज्ञान में परज्ञेय, पर जाननेयोग्य चीज़ है—ऐसा ज्ञानी जानता है। आहाहा! उसे धर्मी कहते हैं। मेरे अतिरिक्त दया, दान का विकल्प—राग आवे, वह भी मेरे ज्ञान में जाननेयोग्य—परज्ञेय रूप से जाननेयोग्य है। आहाहा! मेरी चीज़ में वह नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

अनन्त काल परिभ्रमण करते-करते चौरासी लाख योनि, एक-एक योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। वह मिथ्यात्व के कारण। आहाहा! रागादि भाव मेरे हैं, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के कारण चौरासी (लाख योनियों) में अवतार धारण किये हैं।

मुमुक्षु : पुरानी मान्यता पर आपने पोता फेर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान्यता झूठी है। यह मेरे पैसे, यह मेरे पुत्र, यह मेरा पुत्र है, मेरी पुत्री है, मेरी स्त्री है, यह मान्यता मिथ्या है। क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु है, उसमें परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है, परन्तु 'मेरा' माननेयोग्य वह चीज़ नहीं है। आहाहा! वे मेरे हैं, ऐसा माननेयोग्य माने, वह मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! कहा न?

जितने परद्रव्य- जितने परद्रव्य। मकान, स्त्री, कुटुम्ब, पुत्र, पुत्री, इज्जत, वह सब परद्रव्य है। यह प्रभु चैतन्य तो ज्ञानस्वरूप है। इस ज्ञान में वे परद्रव्य परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। परन्तु वह परचीज़ मेरी है, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि पापी—अधर्मी है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। कहा न? **जितने परद्रव्य द्रव्यकर्मरूप,...** आठ कर्म। **भावकर्मरूप,...** शुभ-अशुभभाव। पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव शुभ, हिंसा, झूठ, चोरी के भाव अशुभ हैं। वे भाव मेरे हैं, (ऐसा माननेवाला) मिथ्यादृष्टि है। वह चीज़ मेरे ज्ञान में परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है, (ऐसा मानता है) वह जीव सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! बहुत कठिन। जवाबदारी बहुत, शर्तें बहुत।

वीतरागमार्ग में जिनेन्द्रदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग जिनवर प्रभु की दिव्यध्वनि में यह आया है कि जितने अपने आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ चाहे तो

व्रत के भाव हों, या चाहे तो भक्ति का भाव हो या चाहे तो व्यापार का भाव हो, वे सब भाव मेरे ज्ञान में परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। वह परज्ञेय मेरे हैं, ऐसी मान्यता अधर्मी जीव की है। आहाहा! अब ऐसी बातें। बाहर में जरा कुछ पाँच-पच्चीस लाख पैसे मिलें, शरीर सुन्दर, स्त्री, पुत्र, परिवार (मिले तो) बस, मानो हम (कुछ हैं)। वह मूढ़ है और उसे जैनधर्म की खबर नहीं।

जैनधर्म तो उसे कहते हैं कि सभी चीज़ें मेरी नहीं। मैं तो उसे पर से भिन्न रहकर, अपने में रहकर पर को मैं जाननेवाला हूँ, ऐसी दृष्टि हो, वह सम्यग्दृष्टि और जैन धर्म है। आहाहा! भाषा तो सादी है। वस्तु तो है वह है। आहाहा! अरे! अनन्त काल में कभी... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' पंच महाव्रत पालन किये। परन्तु पंच महाव्रत तो राग है, शुभराग है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' परन्तु यह राग से भिन्न आनन्दस्वरूप मेरी चीज़ है, इसका अनुभव और दृष्टि की नहीं। आहाहा! वह भी मिथ्यादृष्टि रहा। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार त्याग...** सम्यग्दृष्टि को सर्व परद्रव्य का त्याग है। मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! यह त्याग है। राग, पुण्य, दया-दान का भाव और लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, पुत्र, पुत्री सब, वह मेरी चीज़ नहीं, मुझमें नहीं, मैं उसमें नहीं। आहाहा! **उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार त्याग...** दृष्टि में है। सम्यग्दृष्टि—धर्म की शुरुआतवाले जीव को परद्रव्य का दृष्टि में सर्वथा त्याग है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी दो शक्तियाँ अवश्य होती हैं... दो शक्ति कौन सी? धर्मीजीव सम्यग्दृष्टि की दो शक्ति है। एक तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान के अनुभवरूप जानपना और अपने अतिरिक्त परद्रव्य का दृष्टि में त्याग, वह वैराग्य—यह दो शक्तियाँ धर्मी को हमेशा होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! यह तो मिट्टी है-धूल है, पुद्गल-जड़ की चीज़ है। वह पर है, वह ज्ञान में परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है, परन्तु ज्ञान में वह चीज़ मेरी है, ऐसा माननेयोग्य नहीं। आहाहा! यहाँ तो शरीर ठीक हो तो उसका अहंकार। सुन्दर शरीर हो तो अहंकार, पैसा हो तो अहंकार, स्त्री-कुटुम्ब कुछ

ठीक मिले तो उसका अहंकार। आहाहा! वे सब मिथ्यादृष्टि हैं, उसने चैतन्य का खून कर दिया है। आहाहा! भगवान तो ज्ञानस्वरूपी आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु है, उसने परचीज़ को अपनी मानकर अपनी चीज़ का अनादर किया है। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा!

उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार त्याग... भाषा देखी! **उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार त्याग...** अन्तर में धर्मी जीव को भले गृहस्थाश्रम में हो, चक्रवर्ती पद में समकिती हो, भरत जैसे, परन्तु अन्तर में राग-शुभराग से लेकर सभी परद्रव्य का दृष्टि में सर्वथा प्रकार से त्याग है। आहाहा! और एक आनन्दस्वरूप प्रभु का ग्रहण है। समझ में आया? है? यह दिगम्बर सन्तों की ध्वनि है। आहाहा! यहाँ तक तो आया था।

दोनों शक्तियाँ जिस प्रकार होती है, उस प्रकार कहते हैं—यहाँ तक आया था। कल यहाँ तक आया था। यह तो आज हिन्दी लिया तो वापस थोड़ा लिया।

मुमुक्षु : समकिती को त्याग होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कहा न? सम्यग्दृष्टि को पर का त्याग है। राग और यह (पर) मेरी चीज़ नहीं, ऐसा मिथ्यात्व का—विपरीत श्रद्धा का त्याग है। विपरीत श्रद्धा में वह चीज़ मेरी है, ऐसा आया।

मुमुक्षु : यह चारित्र के त्याग की बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र, अचारित्र वह दूसरी बात है। अचारित्र, वह भी ज्ञान में ज्ञेय है। सूक्ष्म बातें, बापू! राग आया या नहीं? अन्दर राग है, वह अचारित्र है। वह भी ज्ञानस्वरूप चैतन्य तो प्रज्ञास्वरूप ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान का पुंज प्रभु आत्मा तो है। उस राग से लेकर सभी परचीज़ परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। परचीज़ मेरी है, ऐसा माननेयोग्य है, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! वह जैन नहीं। समझ में आया? जिसने मिथ्यात्व का नाश किया है। इसका अर्थ? कि राग से लेकर सभी परद्रव्य हैं, वह तो मेरे ज्ञान में ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। वह चीज़ मेरी नहीं, मुझमें वह नहीं और राग और पर शरीरादि में मैं नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : त्याग की बात करो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह त्याग हुआ। दृष्टि में त्याग हुआ, वह त्याग है। बाकी परवस्तु का तो अभाव सदा त्याग ही है, कब ग्रहण किया है?

मुमुक्षु : राग को कहाँ ग्रहण किया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहण किया नहीं परन्तु माना है न! मान्यता है न कि राग मेरा है, ऐसी मान्यता की है। राग उसमें है ही नहीं, परन्तु वह तो चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! चैतन्य हीरा अनन्त शुद्ध शक्ति का भण्डार प्रभु आत्मा तो है। अरे! इसने कहाँ सुना है। आहाहा!

अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त वीर्य, अनन्त कर्ता, कर्म, करणशक्ति, प्रभुता, ईश्वरता—ऐसी अनन्त शक्तियों की पवित्रता का तो प्रभु पिण्ड है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को तो पुण्यतत्त्व कहते हैं। वह कहीं आत्मतत्त्व नहीं है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, धन्धे के भाव, वे सब पापतत्त्व हैं। वह कहीं आत्म तत्त्व नहीं। आहाहा! नव तत्त्व है या नहीं? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। आहाहा! यहाँ तो परमात्मस्वरूप जो भगवान त्रिकाली चिद्घन, उसका जिसे अन्तर में अनुभव हुआ कि यह मैं। उसे 'राग मैं' यह दृष्टि उठ जाती है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : न माने तो भी राग कहीं आत्मारूप नहीं हो जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते हैं न! मान्यता इसकी है न! है तो द्रव्यस्वभाव अबन्ध। रागरहित चीज़ अन्दर पड़ी है। परन्तु मानता है कि राग मेरा है। इस मान्यता में घेरा डाला है। आहाहा! इस मान्यता के घेरे में घिर गया है। घिर गया है, घिर गया है। आहाहा! बातें ऐसी, बापू! जिनेन्द्रदेव और वह भी दिगम्बर सन्त... आहाहा! उन्होंने जो मार्ग कहा, वह जगत के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

क्षण में देह छोड़कर चला जाता है। यह करोड़ों रुपये हों, अरबों हों, कोई शरण नहीं। आहाहा! बापू! अन्दर भगवान चिदानन्द प्रभु की जिसे दृष्टि नहीं, उसका जिसे अनुभव—यह 'है' चीज़ को अनुसरकर अनुभव नहीं, वह तो राग, पुण्य और पाप के भाव में घिर गया है। आहाहा! वह 'मेरे' ऐसा मानकर वहाँ रुक गया है। वह मिथ्यादृष्टि

चौरासी लाख योनि के अवतार में परिभ्रमण करनेवाला है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग जिनेश्वर, परमेश्वर का मार्ग ऐसा है। है?

समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार त्याग... है। सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शुद्धस्वरूप पवित्र का जहाँ अन्दर में भान हुआ, उसे उस सम्यग्दृष्टि को राग से लेकर सर्व परद्रव्य, सर्वथा प्रकार से दृष्टि में त्याग है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसी दो शक्तियाँ अवश्य होती हैं—सर्वथा होती हैं।** देखा! सर्वथा। कथंचित् ऐसा और कथंचित् ऐसा—ऐसा नहीं। आहाहा! कथंचित् राग का त्याग और कथंचित् राग का ग्रहण, (ऐसा नहीं)। सर्वथा प्रकार से समस्त परद्रव्य का, सम्यग्दर्शन की दृष्टि में चैतन्य का जहाँ ग्रहण हुआ, वहाँ परद्रव्य के रागादि का समस्त प्रकार से सर्वथा त्याग (हो गया)। आहाहा! **सर्वथा होती हैं;...** दो शक्तियाँ तो सर्वथा होती हैं। पहली श्रेणी का धर्मी—समकिती, उसे यह शुद्ध स्वरूप के अनुभव का ज्ञान और रागादि परद्रव्य का सर्वथा त्याग अर्थात् वैराग्य, दो शक्ति सर्वथा अवश्य होती है। आहाहा! अब ऐसी बातें सुनना, समझना कठिन पड़े।

अरे! यह अनादि से भटककर मर गया है। साधु भी अनन्त बार हुआ, महाव्रत पालन किये, परन्तु वह राग की क्रिया मेरी और मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यादृष्टिपना छोड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि, वह तो चक्रवर्ती के पद में खड़ा हो, तो भी अन्तरदृष्टि में शुभराग से लेकर परद्रव्य का समस्त प्रकार से, सर्व प्रकार से त्याग दृष्टि में है। ग्रहण शुद्ध का है, सर्व परद्रव्य का त्याग है। आहाहा! कहो, सेठ! ऐसी चीज़ है। आहाहा! बाहर का अभिमान मार डालता है। पैसा कुछ दो-पाँच करोड़ रुपये हों... आहाहा! हमने कमाये और हम बढ़ गये। हम उद्योगपति, उद्योग के मालिक। पाप का जो उद्योग किया, उसका वह धनी-उद्योगपति। आहाहा! कहो, शाहूजी को अभी उद्योगपति नाम दिया है या नहीं? शाहूजी गुजर गये। दिल्ली, शान्तिप्रसाद शाहू, चालीस करोड़। उद्योगपति शान्तिप्रसाद गुजर गये, ऐसा समाचारपत्र में आया था। ऐ...! उद्योग के पति थे? यह बाहर का धन्धा बढ़ाया और उसके पति। आहाहा!

मुमुक्षु : इतनी प्रसिद्धि थी न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रसिद्धि तो लौकिक पागल में प्रसिद्धि थी। पागल लोग ऐसा मानते थे। वह तो बेचारे नरम व्यक्ति थे। यहाँ अभी आ गये हैं न! अभी यहाँ व्याख्यान सुनने आये थे। प्रान्तिज से यहाँ आये थे। यहाँ बैठे थे। यहाँ दो दिन रहे। ऐसे बाहर में जरा बेचारे... परन्तु अब पूरी यह वस्तुस्थिति... आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, बापू! कठिन है। है तो इसमें, इसका सरल, परन्तु अनादि अनअभ्यास से इसे कठिन हो पड़ा है। आहाहा!

कहते हैं, **दोनों शक्तियाँ जिस प्रकार होती हैं, उस प्रकार कहते हैं—'यस्मात् अयं स्वस्मिन् आस्ते परात् सर्वतः रागयोगात् विरमति'** आहाहा! श्लोक... श्लोक तो... दिगम्बर मुनि समकिती भावलिंगी मुनि, जिन्हें अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन वर्तता है, उसे मुनि कहा जाता है। समझ में आया? जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, समुद्र में जैसे समुद्र के किनारे पानी का ज्वार आता है, वैसे मुनि को—सच्चे सन्त हों उन्हें वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की वर्तमान पर्याय में ज्वार आता है। आहाहा! वे मुनि जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! उन्हें कहीं दुनिया की पड़ी नहीं कि दुनिया समतौल रहेगी या नहीं। यह ग्रहण करने से उसका विरोध करेगी या नहीं? दुनिया दुनिया की जाने, मार्ग यह है। समझ में आया? आहाहा!

जिसे दो शक्तियाँ अवश्य होती है। किस कारण से? **जिस कारण सम्यग्दृष्टि सहज ही शुद्धस्वरूप में अनुभवरूप होता है...** आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ीवाला, मोक्षमहल का पहला सोपान, वह सम्यग्दर्शन। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन में **सहज ही शुद्धस्वरूप में अनुभवरूप होता है...** आत्मा शान्त और आनन्दस्वरूप का स्वभाविक उसे अनुभव होता है। आहाहा! और **'परात् रागयोगात्' पुद्गलद्रव्य की उपाधि से है जितनी रागादि अशुद्धपरिणति, उससे सर्व प्रकार से... 'विरमति' 'परात् रागयोगात्'** आहाहा! वह चाहे तो विकल्प गुण-गुणी के भेद का विकल्प-राग उठे, वह **'रागयोगात्'** राग के सम्बन्ध से विरक्त है। समकिती राग के योग के सम्बन्ध से विरक्त है और शुद्ध स्वरूप में अनुभव में रत है। आहाहा! यह क्रिया और यह कहाँ गया सब? यह व्रत पालना और अपवास करना। वह तो सब राग है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा!

आत्मा अन्दर ज्ञान की ज्योति जलहल ज्योति प्रभु का उसे अनुभव और राग से लेकर सब राग का योग, राग का सम्बन्ध ही जहाँ टूट गया है, उसे चैतन्य के शुद्ध स्वभाव का सम्बन्ध जिसे हुआ है... आहाहा! रंक के सम्बन्ध में था, उसे रंक ने छोड़ दिया और बादशाह के सम्बन्ध में आ गया। ऐसे रागादि पुण्य-पाप के भाव रंक-भिखारी दुःखरूप हैं। धर्मी की-सम्यग्दृष्टि की पहली दृष्टि में वह '**रागयोगात्**' राग के सम्बन्ध से छूट गया है। आहाहा! भले चारित्रमोह का राग हो। परन्तु राग मेरा है—ऐसा सम्बन्ध छूट गया है। आहाहा! समझ में आया? समझाणुं कांई? यह तो गुजराती भाषा आ जाती है। समझ में आया? आहाहा! कहो, मित्रसेनजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

यह देह तो मिट्टी, जड़ मिट्टी, धूल है। अन्दर आठ कर्म जो है, वह बारीक धूल है। बारीक धूल है। और पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभराग, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध वह भाव मलिन-अशुद्ध है। आहाहा! उस अशुद्धभाव से (विमुख होकर), जिसने अपना शुद्धभाव का संग-परिचय किया, अशुद्ध के संग बिना की चीज़—असंग चीज़ का संग-सम्बन्ध किया... आहाहा! उसने राग का सम्बन्ध छोड़ दिया। यह आया न? '**रागयोगात्**'।

पुद्गलद्रव्य की उपाधि से है जितनी रागादि अशुद्धपरिणति,... क्या कहा यह? परद्रव्य की उपाधि से अन्दर में जो राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव हों, **उससे 'सर्वतः विरमति' सर्व प्रकार रहित होता है।** आहाहा! ज्ञान का पुंज प्रभु चैतन्यस्वरूप जिसका सर्वज्ञस्वरूप त्रिकाल। शक्ति जिसकी सर्वज्ञस्वरूप त्रिकाल विराजमान है। आहाहा! उसका जहाँ सम्बन्ध किया और राग का सम्बन्ध छोड़ दिया... आहाहा! समझ में आया? वह सर्व प्रकार से पर से रहित है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—ऐसा लक्षण सम्यग्दृष्टि जीव के अवश्य होता है। धर्मी जीव को यह लक्षण अवश्य-अवश्य होता है—अवश्य होता है। यह लक्षण न हो तो वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। आहाहा! वह जैन नहीं। आहाहा! जैन अर्थात् जीतना। तो जो कुछ राग के विकल्प से लेकर परद्रव्य है, वह मेरे नहीं हैं और मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ, इसका नाम जैन कहा जाता है। आहाहा! जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, जैन कोई वाड़ा नहीं।

जैन, वह तो वस्तु का स्वरूप है। वीतरागस्वरूप विराजमान 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! यह बनारसीदास में कहा है न? 'घट घट अन्तर जिन बसे, अरु घट घट अन्तर जैन। मतमदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' 'घट घट अन्तर जिन बसे।' जैन-जिन। जिनस्वरूपी स्वयं आत्मा। आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसे, अरु घट घट अन्तर जैन।' जैनपना अन्तर में है। राग की एकता टूटी, सर्वथा रागादि परद्रव्य मेरे नहीं और मैं ज्ञायक चैतन्य शुद्ध हूँ, ऐसी अनुभव की शक्ति, वैराग्य की शक्ति (प्रगट हुई), उसे यहाँ जैन कहा जाता है। वह भी 'घट घट अन्तर जिन बसे' यह कहीं बाह्य जड़ में जैनपना नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? 'घट घट अन्तर जिन बसे घट घट अन्तर जैन, मतमदिरा के पान सो...' अपने अभिप्राय की और मत की मदिरा पीये हुए, मतमदिरा के पान—राग मेरा, पुण्य मेरा, ऐसी मिथ्यात्वरूपी मदिरा पी है। 'मतमदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' वह मतवाला हो गया। आत्मा राग से भिन्न है, ऐसी दृष्टि उसे नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहा, **ऐसा लक्षण सम्यग्दृष्टि जीव के अवश्य होता है। ऐसा लक्षण होने पर अवश्य वैराग्य गुण है।** पर से उदास और स्व से अस्ति का प्रतीति का, पूर्ण का भान। अपनी पूर्ण शक्ति का, पूर्ण प्रतीति का भास और राग से लेकर परद्रव्य से उदासरूपी वैराग्य। ये दोनों शक्तियाँ सम्यग्दृष्टि को निरन्तर-हमेशा होती हैं। आहाहा! अभी श्रावक तो बाद में। सम्यग्दर्शन होने के बाद। यह तो स्वरूप में आनन्द की थोड़ी लीनता जमे, तब श्रावक कहा जाता है, और आनन्द की बहुत लीनता हो, तब साधु कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है।

क्या करके ऐसा होता है? 'स्वं परं च हमं व्यतिकरं तत्त्वतः ज्ञात्वा' आहाहा! ऐसी ज्ञान और वैराग्यशक्ति किस कारण से होती है? अपने शुद्धस्वरूप का ज्ञान और राग से सर्व चीज़ का त्याग, वैराग्य, उदास—ऐसा किस कारण से होता है? कि **शुद्ध चैतन्यमात्र मेरा स्वरूप है,...** आहाहा! मैं स्व। अपना। वह तो शुद्ध चैतन्य पवित्र मात्र गुण, वह मैं हूँ आत्मा। आहाहा! श्लोक तो बहुत सरस है। आहाहा! अरे! परन्तु समय कहाँ है लोगों को? एक तो पूरे दिन स्त्री, पुत्र, कमाना, धन्धा, उसमें फिर दो-पाँच

करोड़ रुपये हो जायें तो मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाये उसे। मानो मैं तो बढ़ गया। आहाहा! भाई! यह सब सोजिश-सोजिश है। सोजिश को क्या कहते हैं? शरीर में सोजिश नहीं चढ़ती? सूजन। वह सूजन है। वह तुम्हारी चीज़ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : काम तो सब पैसे से चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं चलता। पैसे सब पड़े रहते हैं और रोग हो तो ऐं... ऐं... करके एक ओर पड़े नहीं रहते? खबर नहीं? दवायें कितनी पड़ी हों अन्दर?

मुमुक्षु : यह तो किसी दिन की बात है। प्रतिदिन की बात हो वह करो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु प्रतिदिन या किसी दिन शरण था? दिन-रात चौबीस घण्टे भगवान चिदानन्दस्वरूप राग से भिन्न है और चौबीस घण्टे राग से मैं एकत्व हूँ, ऐसा अज्ञानी अनादि से मानता है। आहाहा! मार्ग अलग, बापू! भगवान जिनेन्द्रदेव, उसमें भी दिगम्बर जैनधर्म, वह अलौकिक चीज़ है। यह चीज़ कहीं है नहीं। समझ में आया? आहाहा! जिसे सुनने से भी अन्दर कंपकंपी उठे कि अरर! ऐसा मार्ग! अभी सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाला! आहाहा! प्रभु! तेरा मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यमात्र मेरा स्वरूप है,... यह स्व। **'परं' द्रव्यकर्म...** अर्थात् आठ जड़कर्म। **भावकर्म...** अर्थात् पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत, काम-क्रोध के भाव, **नोकर्म...** अर्थात् वाणी आदि बाहर का संयोग। उसका **विस्तार पराया—पुद्गलद्रव्य का है,...** आहाहा! यह अन्दर शुभ-अशुभभाव (होते हैं) और उसके बन्धन और उसके फल यह धूल आदि बारह मिले, वह सब पुद्गल का विस्तार है, आत्मा का नहीं। आहाहा! है? राजमल की टीका तो देखो! इसमें से समयसार नाटक बनाया है। बनारसीदास ने इसमें से समयसार नाटक बनाया। 'राजमल जैनधर्मी'। आहाहा! जैनधर्म के मर्मी। आहाहा! श्लोक तो आचार्य के हैं। अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त, उनके श्लोक हैं। (परमागममन्दिर में) बीच में कुन्दकुन्दाचार्य हैं। ये अमृतचन्द्राचार्य, ये पद्मप्रभमलधारिदेव—नियमसार की टीका करनेवाले। तीनों दिगम्बर सन्त आनन्द के धाम में रमनेवाले। आहाहा! उनको विकल्प आया और शास्त्र रच गया। तो इस शास्त्र में यह पुकार है। आहाहा!

प्रभु! धर्मी किसे कहते हैं? कि स्व और पर। स्व अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूप को अपना माने और रागादि पुद्गल का ठाठ माने। वह मेरे नहीं। वह सब दुश्मन का विस्तार है। आहाहा! मेरा विस्तार तो अनन्त में अनन्त गुणा, वह मेरा विस्तार शुद्ध स्वरूप है और यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव और हिंसा, झूठ, चोरी के भाव और उसका बन्धन आठ कर्म और उसका फल यह संयोग, वह सब पुद्गल का विस्तार है। आहाहा! यह जड़ का फैलाव है। मोहनभाई! भारी कठिन काम!

मुमुक्षु : विस्तार हो तो साहूकार कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी साहूकार नहीं। साहूकार किसे कहे? 'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि घट में प्रगट सदा।' समयसार नाटक में आता है। 'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा, अन्तर की लक्षी सो अजाचि लक्षपति है।' आहाहा! अन्तर में आत्मा में ऋद्धि देखता है। बाहर में धूल की ऋद्धि कहाँ इसकी है? सिद्धि। यह अन्तर में सिद्धि है। पूर्णानन्द की प्राप्ति हो या शान्ति की प्राप्ति हो, वह सिद्धि और वृद्धि; यह बढ़े बाहर में पाँच-पच्चीस लाख मिले, वह धूल में भी नहीं। अन्दर में शुद्धि की वृद्धि। सम्यग्दर्शन उपरान्त चारित्र की वृद्धि होना, वह शुद्धि की वृद्धि अन्तर में देखता है। समझ में आया? 'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा, अन्तर की लक्षी सो अजाचि लक्षपति है।' लक्षपति है। यह लक्षपति, हों! यह लाखपति धूल का, वह नहीं। चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु के लक्ष का वह पति है। आहाहा! 'दास भगवन्त के उदास रहे जगत सो, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।' बनारसीदास (कृत) समयसार नाटक। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

चींटी है। आहाहा! वह चींटी भी अन्दर शक्ति से भगवान है। आहाहा! उसके आत्मा में भी अनन्त आनन्द सर्वज्ञ स्वभाव, अनन्त शान्ति, स्वच्छता पड़ी है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव से वह भी भगवत्स्वरूप है। बाहर का शरीर और रागादि, वह सब पुद्गल का विस्तार है। आहाहा! लो, सेठ! यह तुम्हारे मकान सब छह-छह लाख के और तम्बाकू के सब बड़े गोदाम भरे हों। बीड़ी के बड़े व्यापारी। भगवानलाल शोभालाल। भगवानदास शोभालाल दोनों भाई हैं। यहाँ बैठे हैं।

मुमुक्षु : एक ओर महिमा तथा दूसरी ओर धूल....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके स्वामी होते हैं, वही खोटा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लो! शाहूजी चले गये बँगले में से। चालीस करोड़ रुपये। बड़ी इज्जत, चालीस-चालीस लाख के मकान। किसकी चीज़ थी? बापू! किसकी है? भाई! आहाहा! बहुत श्लोक...

'स्वं परं च इदं व्यतिकरम्' शुद्ध चैतन्यमात्र मेरा स्वरूप है,... सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली शुरुआतवाला ऐसा अपने को मानता है कि **शुद्ध चैतन्यमात्र मेरा स्वरूप है, पर द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का विस्तार पराया...** स्व का विस्तार नहीं, वह तो पर का विस्तार है। आहाहा! **विस्तार पराया—पुद्गलद्रव्य का विस्तार है,...** आहाहा! कठिन काम। **'इदं व्यतिकरम्' ऐसा विवरण... 'तत्त्वतः ज्ञात्वा' कहने के लिए नहीं है,...** कहनेमात्र, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। अन्दर अनुभव में ऐसा माननेयोग्य इस प्रकार से है। कहनेमात्र भाषा में आवे कि यह मेरे और यह तेरे, ऐसा नहीं है। मैं तो शुद्धचैतन्यस्वरूप कहनेमात्र नहीं, परन्तु अनुभवनेमात्र। आहाहा!

वस्तुस्वरूप ऐसा ही है, ऐसा अनुभवरूप जानता है सम्यग्दृष्टि जीव,... जानता है सम्यग्दृष्टि जीव। कहनेमात्र नहीं। आहाहा! ऐसी बातें, भाई! आहाहा! यह तो बाबा हो जाये तब हो। ऐसा एक भाई (कहते थे)। बाबा ही है। कब (कोई चीज़) तेरी है? यहाँ यह तो कहते हैं? राग से लेकर सब विस्तार पर का है। तेरा विस्तार यह नहीं, यह तेरी प्रजा नहीं। आहाहा! दुश्मन के पुत्र २५-५० हो और बड़ा विस्तार हो, वे मेरे हैं—ऐसा मानता है? वह तो पराया विस्तार है। आहाहा! इसी प्रकार शुभ-अशुभभाव, कर्मबन्धन और यह सब संयोगी चीज़, वह पुद्गल का विस्तार है। पुद्गल विस्तार, मैं नहीं। आहाहा!

कहने के लिये नहीं है,... 'तत्त्वतः ज्ञात्वा' ऐसा है न? **'तत्त्वतः' वस्तुस्वरूप ऐसा ही है... 'तत्त्वतः ज्ञात्वा'** की व्याख्या। **वस्तुस्वरूप ऐसा ही है, ऐसा अनुभवरूप जानता है सम्यग्दृष्टि जीव,...** आहाहा! तिर्यंच सम्यग्दृष्टि होता है, नारकी सम्यग्दृष्टि होता है, देव सम्यग्दृष्टि होता है और मनुष्य। इन चारों ही गतियों में सम्यग्दर्शन होता है। परन्तु सम्यग्दृष्टि अपने को ऐसा मानता है। मेरी चीज़ तो शुद्धस्वरूप ही मेरी चीज़ है

और पुण्य, दया, दान, व्रत से लेकर सब पुद्गल का विस्तार है। आहाहा! यहाँ तो कुछ व्रत, भक्ति, पूजा और दया-दान किये तो मैंने किया, मैंने किया, मेरी चीज़ है। आहाहा! उस पुद्गल के विस्तार को अपना मानना, वह चैतन्य का अनादर करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

अनुभवरूप जानता है सम्यग्दृष्टि जीव, इसलिए ज्ञानशक्ति है। धर्मी को अपने स्वरूप की ज्ञानशक्ति है और रागादि पर है, उसकी भी ज्ञानशक्ति है। दोनों के विवेक की ज्ञानशक्ति है। आहाहा! मैं शुद्धस्वरूप पवित्र हूँ, ऐसा ज्ञान है और शुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति से लेकर सब भाव वह पुद्गल का विस्तार है, ऐसी भी ज्ञानशक्ति है। ज्ञान में दोनों का भान है। स्व-पर दोनों का भान है। ऐसा शब्द है न? पाठ में ऐसा है। '**स्वं परं च इदं व्यतिकरं तत्त्वतः ज्ञात्वा**' है न? '**स्वं परं च इदं व्यतिकरं तत्त्वतः ज्ञात्वा**' आहाहा! ऐसी बातें अब। लोग कहे परन्तु ऐसा यह कैसा धर्म? यह जैनधर्म होगा ऐसा? जैनधर्म में तो दया पालना, व्रत करना, यात्रा करना, भक्ति करना, मन्दिर बनाना। बापू! वह तो परचीज़ है, भाई! आहाहा! यह तो सब पुद्गल का विस्तार है। आहाहा! उसमें तू नहीं। जहाँ तू हो, वहाँ वे नहीं। आहाहा! कहो, यह विस्तार बड़ा। कालीदासभाई! बाहर में कहा जाता है कि कालीदासभाई करोड़पति हैं और विस्तार इतना। मोटर-फोटर और ढीकणा-फीकणा। और यह फिर बड़े सेठियाओं को बड़ा-बड़ा विस्तार। सात तो मोटरें घर में। बीड़ियाँ भेजने की-रखने की। ऐई! बड़े... यह सब पुद्गल का विस्तार है। आहाहा!

मुमुक्षु : अब आ पड़ा तो क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आ पड़ा तो उसके घर में रहा। वहाँ कहाँ आया है? आत्मा में आ गया है? आहाहा! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! उसमें दो-पाँच हजार का महीने में वेतन हो जाये। ऐई! मानो कि क्या बढ़ गये! आहाहा! धूल में बढ़े हैं। यह तो पुद्गल का विस्तार है। आहाहा!

मुमुक्षु : दुनिया तो पुद्गल के विस्तार में....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया उसमें ही मानकर भटक मरी है। आहाहा!

भगवान जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ के प्रवचन-दिव्यध्वनि में यह आया है। यह दिगम्बर सन्त आढ़तिया होकर जगत में प्रसिद्ध करते हैं। माल भगवान का है। समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसी बात सुनने को मिले नहीं। वह कब समझे? कब करे सम्यक्त्व? आहाहा! दुर्लभ हो पड़ा है, प्रभु! आहाहा! देखो! यह सन्तों की वाणी। दिगम्बर सन्तों की यह वाणी। आहाहा!

आगे इतना करता है सम्यग्दृष्टि जीव सो किसके लिये? इसकी बात है थोड़ी। विस्तार है....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक - ०१-११-१९७७, कलश-१३६-१३७, प्रवचन-१३७

कलशटीका, १३६ कलश है। नीचे से पाँचवीं लाईन। **अब इतना करता है सम्यग्दृष्टि जीव...** क्या कहते हैं? धर्मीजीव, जिसे यह आत्मा जिसका पवित्र शुद्ध पूर्ण स्वरूप है, ऐसा जिसे अनुभव, उस चीज़ का जिसे अनुभव हुआ है। अर्थात्? कि जो अनादि से पुण्य और पाप के भाव, उसका जिसे अनुभव और वेदन है, वह मिथ्यात्वभाव है, परन्तु उससे गुलाँट खाकर—पलटा मारकर और शुद्ध ध्रुव चैतन्य ध्रुव वस्तु, उसे अनुसरकर, ध्रुव स्वभाव को अनुसरकर अपने आत्मा का आनन्द का अनुभव-स्वाद आना, इसका नाम धर्मी और सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। ऐसी बात है।

आगे इतना करता है सम्यग्दृष्टि जीव सो किसके लिये? उत्तर इस प्रकार है— '**स्वं वस्तुत्वं कलयितुं**' स्व-आत्मा का वस्तुत्वपना। जो शुद्धपना, ध्रुवपना, आनन्दपना, स्वच्छपना, ऐसा जो वस्तु का वस्तुपना। आहाहा! भगवान आत्मा भगवत्स्वरूप ही आत्मा है। उसका पना अर्थात् वस्तुपना। अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान-आनन्दादि अनन्त गुण, वह वस्तु का वस्तुपना है। आहाहा! उसका '**कलयितुं**' उसका अभ्यास करे। अर्थात् कि उस शुद्धस्वरूप को अनुभव करे। आहाहा! है? '**स्वं वस्तुत्वं**' **अपना शुद्धपना,...** '**स्वं**' का अर्थ अपना। '**वस्तुत्वं**' का अर्थ शुद्धपना। पुण्य और पाप के भाव से भिन्न-पृथक् त्रिकाली जो आत्मा का शुद्धपना, उसे '**कलयितुं**' अभ्यास करे, वेदन करे, अनुभव करे, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव किस प्रकार होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न यह। इस ओर की दृष्टि करके अनुभव करना। आहाहा!

यह आत्मा चैतन्य शुद्ध परिपूर्ण परमात्मस्वभाव से भरपूर तत्त्व है। उसमें जो यह पुण्य और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव (होते हैं), वह पुण्य मलिनभाव है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, वह पाप मलिनभाव है। दोनों से भिन्न त्रिकाली जो आत्मा का पवित्र शुद्धस्वरूप, उसका वेदन-अनुभव करना। आहाहा! जो राग और

द्वेष, पुण्य और पाप, उसे अनादि से पर्यायबुद्धिवाला जीव अज्ञानी, वर्तमान अवस्था और राग को ही माननेवाला, वह पुण्य और पाप को अनुभव करनेवाला, वह अधर्मी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

उसमें से जिसे आत्मा का हित करना है, जन्म-मरण के चक्र का अन्त लाना है, उसे यह आत्मा का वस्तुपना (अनुभव करना)। यह पुण्य-पापभाव वह कोई आत्मा का वस्तुपना नहीं है। आहाहा! वह तो कल आ गया था न? पराया विस्तार पुद्गलद्रव्य का है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! अन्दर में पुण्य-पाप के भाव होना। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव या हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का भाव, उसे यहाँ पुद्गल का विस्तार (कहते) हैं। वह जड़ की दशा है, वह जड़ का विस्तार है। उसमें आत्मा नहीं आया। आहाहा! आत्मा तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त ज्ञानस्वभाव, शुद्ध चैतन्यमूर्ति, अनन्त शक्ति का सागर ऐसी जो चीज़, उसका जो शुद्धपना, पवित्रपना, सत् का सत्त्वपना, उसका जिसे अनुभव... आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह सम्यग्दृष्टि जीव **अपना शुद्धपना, उसके... 'कलयितुं' निरन्तर अभ्यास अर्थात् वस्तु की प्राप्ति के निमित्त।** आहाहा! वस्तु स्वयं सच्चिदानन्द प्रभु है। उस चीज़ की प्राप्ति के लिये, उस वस्तु की प्राप्ति के लिये निरन्तर अभ्यास करता है। स्वसन्मुख का निरन्तर... आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह वस्तु की परिपूर्ण दशा प्राप्त करने के लिये उस वस्तु का अभ्यास अर्थात् पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसके सन्मुख होकर उसका अभ्यास करता है। '**कलयितुं**' अनुभव करता है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? लो! यह आया। देखा?

उस वस्तु की प्राप्ति किससे होती है? 'स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या' अपने शुद्धस्वरूप का लाभ... जो अनादि से शुभ-अशुभराग का लाभ था, वह तो अधर्म का लाभ था। आहाहा! अब यहाँ वस्तु का लाभ। है? **अपने शुद्धस्वरूप का लाभ...** आहाहा! यह लाभ सवाया नहीं लिखते तुम्हारे बनिया? नामा लिखते हैं न, नामा? लाभ सवाया। धूल का भी नहीं वहाँ लाभ। वहाँ तो सब पैसे-बैसे धूल, जड़, मिट्टी और उसका भाव है, वह पाप है। पाप का लाभ है वहाँ। आहाहा! यह दिवाली में बहियों में लिखते हैं न?

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! तुझमें तो अनन्त आनन्द और अनन्त गुण, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता ऐसी तेरी चीज़ का शक्तिपना तो ऐसा है। उस शुद्धपने को स्वसन्मुख होकर प्राप्त करना, उसे आत्मा का लाभ कहा जाता है। आहाहा! यह धूल के पैसे-बैसे पाँच-पच्चीस करोड़ मिले, पाँच-पचास लाख मिले। पैसे मिले और हम सुखी हैं। बड़ा मूर्ख है। आहाहा! दुःख में डुबकी मारता है और हम सुखी हैं, ऐसा मानता है। यहाँ तो आनन्द का नाथ अन्दर... आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा गँवावे उसे मूर्ख कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कमावे उसे भी मूर्ख कहते हैं। क्योंकि पैसे से मुझे लाभ हुआ, ऐसा माना तो पाप का लाभ हुआ है वहाँ तो। पैसा तो जड़-धूल है। परन्तु मुझे मिले, ऐसा जो भाव, मिथ्या भ्रान्ति, भ्रम, वह पाप है। आहाहा! कठिन बातें हैं।

'कलयितुं' निरन्तर अभ्यास... देखो तो। आहाहा! जैसे राग और पुण्य-पाप के भाव का अनादि निरन्तर अभ्यास, अटूटक भाव से पाप का अभ्यास किया हुआ... आहाहा! इसी प्रकार अन्तर स्वरूप-सन्मुख होकर निरन्तर उसका अभ्यास। आहाहा! शुद्धस्वरूप के सन्मुख का बारम्बार अनुभव का अभ्यास (करे), उसे स्वरूप का लाभ होता है। कठिन बात है, भाई! दुनिया वह धर्म को कहीं न कहीं मान बैठी है। आहाहा! धर्म तो वस्तु के स्वरूप की प्राप्ति (हो), उसे धर्म कहते हैं। स्वभाव की प्राप्ति पर्याय में हो, उसे धर्म कहते हैं। वह व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान, दया और हिंसा, झूठ, यह सब विकार का लाभ है। वह तो विकार है। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

यहाँ तो यह कहा कि **वस्तु की प्राप्ति किससे होती है? अपने शुद्धस्वरूप का लाभ...** उससे होता है। आहाहा! समझ में आया? **परद्रव्य का सर्वथा त्याग,...** दो बातें। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प राग हो। उस राग का त्याग और स्वभाव की शुद्धता की पवित्रता का लाभ। उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि और धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह तो व्रत करो, अपवास करो, दया पालन करो, तपस्या करो। सीधा-सट्ट था भटकने का। वह तो राग की क्रिया है, भाई! तुझे खबर नहीं। उसमें वस्तु का स्वभाव आया नहीं। वह तो विभाव है। आहाहा!

त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव परमेश्वर वीतराग ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! तुझमें तेरापन कुछ है या नहीं? या विकारपना वह तेरापन है? आहाहा! तुझमें तेरापन तो शुद्धपना, वह तेरापना है। पवित्र आनन्दादि गुण, वे तुझमें तेरापन है। आहाहा! उसके सन्मुख से, निमित्त, राग और पर्याय से विमुख होकर, स्वभाव की पूर्णता के सन्मुख होने से जो शुद्धता का पर्याय में लाभ हो, वह वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म है। अन्तर वीतरागता भरी है भगवान आत्मा में। कैसे जँचे? यह वीतरागस्वरूप से ही भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसके सन्मुख होकर वर्तमान दशा में वीतरागपने का लाभ होना, उसका नाम अनुभव और धर्म है। अरे! ऐसी बातें हैं। सुनना कठिन पड़े। अरे! क्या हो? लोग बाहर में अटककर जिन्दगी निकालते हैं। आहाहा!

यहाँ तो **परद्रव्य का सर्वथा...** परद्रव्य किसे कहा ऊपर? कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! क्योंकि आत्मा में से वह निकल जाता है। स्वद्रव्य का स्वरूप हो, वह निकलता नहीं। आहाहा! यह राग का विकल्प जो है वृत्ति, उसका सर्वथा अभाव। सर्वथा क्यों कहा? कि अंश भी राग का जो दया, दान का अंश आवे, उससे कुछ लाभ हो ऐसी ... वह स्वरूप का लाभ और **परद्रव्य का सर्वथा त्याग, ऐसे कारण से।** वस्तु की प्राप्ति होती है। आहाहा!

भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव पूर्ण वीतराग और पूर्ण ज्ञानी हुए तो वह पूर्ण वीतरागता और पूर्ण ज्ञान हुआ—आया, वह कहाँ से आया? भाई! कहीं बाहर से आता है? अन्दर में पूर्ण ज्ञान और वीतरागता से भरपूर वह तत्त्व ही है आत्मा। आहाहा! उसके सन्मुख की दृष्टि और ज्ञान और रमणता (होती है), वह स्वरूप की प्राप्ति का लाभ कहा जाता है। आहाहा! ऐसा निश्चय और ऐसी बातें कहे। परमसत्य तो यह है।

आज पिछली पहर में जरा आँख में... आज तो नींद नहीं थी और कच्ची थी। सहज साढ़े चार या चार को (स्वप्न) आया, उसमें किसी ने पूछा। कुंजी बताओ। भाषा कुची नहीं थी, कुंजी थी। कोई हिन्दी का होगा। चाहे जो। कुंजी कहो, कुंजी बताओ, ऐसा कहा। कुंजी कहते हैं न तुम्हारे में? भाषा कुंजी थी। मैंने गुजराती में उत्तर दिया।

भाई! कुंजी तो यह है, कहा, भाई! स्वप्न की बात है। पिछले पहर में। यह आत्मज्ञान, वह कुंजी है। और वह कैसे (हो)? ऐसा भी कहा। 'ऐगं जाणही सव्व जाणही।' इतना कहा। भगवान आत्मा को जाने वह सबको जानता है। अब किसका प्रश्न था? कुंजी का इतना शब्द था। कोई हिन्दी होगा। अपने तो कुची कहते हैं।

मुमुक्षु : हिन्दी लोग कुंजी कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी ने पूछा चाबी का। आहा! परन्तु वह तो आधे मिनिट के अन्दर में। भाई! कुंजी तो यह है।

यह आत्मा का ज्ञान (वह कुंजी है)। राग, पुण्य और पर का ज्ञान वह तो अज्ञान है। आत्मज्ञान। अर्थात्? आत्मा की पर्याय है एक अंश का, उसका भी ज्ञान नहीं। राग का नहीं, पुण्य का नहीं, व्यवहार का नहीं, पर का नहीं परन्तु एक समय की पर्याय का भी ज्ञान नहीं। आत्मज्ञान। आत्मा जो त्रिकाली द्रव्य आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव है, उसका ज्ञान, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! ऐसा धर्म। जैनधर्म ऐसा होगा? व्रत पालना, दया पालना, छह परबी हरितकाय नहीं खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना। अब ऐसी तो सब बात समझते तुमने कहा। भाई! वह सब तो परलक्षी राग था। वह धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह मास्टर की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कुंची (चाबी) कहते हैं। आहाहा!

स्वस्वरूप वस्तुत्व की प्राप्ति, ऐसा कहा न? और रागादि जो पर है, उसका त्याग। क्योंकि जो रागादि पुण्य, दया, दान, व्रतादि हैं, वह सब पुद्गल का विस्तार है। वह पुद्गल की प्रजा है, जड़ की प्रजा है। तेरी प्रजा अर्थात् पर्याय नहीं। आहाहा! तेरी प्रजा तो वस्तुस्वरूप शुद्ध चैतन्य है। उसका अनुभव पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान होना, वह तेरी प्राप्ति और वह तेरी पर्याय कही जाती है। पर्याय क्या, यह अभी सुना न हो।

वीतराग जैनदर्शन का एकड़े का पहला शून्य—द्रव्य-गुण और पर्याय। द्रव्य, वह वस्तु उसे कहते हैं। यह द्रव्य अर्थात् यह पैसा-धूल नहीं। द्रव्य अर्थात् अनन्त गुण का पिण्ड। जो द्रवे, निर्मलता को द्रवे, प्रवाहे। पानी में जैसे तरंग उठे, वैसे भगवान द्रव्य

अर्थात् अनन्त आनन्द आदि गुण का पिण्ड, वह द्रवे। जब पर्याय में शान्ति और आनन्द को द्रवे, इसलिए उसे द्रव्य कहने में आता है। आहाहा! और उस द्रव्य में अनन्त ज्ञान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा और है। प्रभु! तेरी वस्तु में तो अनन्त ज्ञान है न, नाथ! अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द भरा है, भाई! आहाहा! यह हिरण की नाभि में कस्तूरी है, उसका हिरण को भान नहीं। मृग की नाभि में कस्तूरी। आहाहा! इसी प्रकार प्रभु! तेरे स्वभाव में मात्र आनन्द भरा है। आहाहा! अरेरे! यह सुना भी न हो।

मुमुक्षु : इतना बराबर, परन्तु कितना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त। जिसका स्व-भाव, उसका माप नहीं होता, उसे हद नहीं होती, उसे मर्यादा नहीं होती। आहाहा! वस्तु है, उसका स्व-भाव। स्व अर्थात् अपना भाव। स्व चीज़, उसका अपना भाव। आहाहा! जैसे वस्तु स्वयं अनादि-अनन्त भगवान आत्मा है, वैसे उसके ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुण भी अनादि-अनन्त ध्रुव है। आहाहा! उस ध्रुव को अवलम्बकर, उस ध्रुव का आश्रय करके जो पर्याय में राग का आश्रय था, वह दृष्टि छूट गयी। त्रिकाली भगवान का आश्रय हुआ, उसमें से जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह उसकी पर्याय, प्रजा और वह धर्म कहा जाता है। अरे! ऐसे शब्द हैं। समझ में आया? यह संक्षिप्त बात।

मुमुक्षु : आपने कहा वैसा तो कुछ इसमें लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा? स्वरूप अपना लाभ, परद्रव्य का त्याग। इतने में सब आ गया। स्वरूप शुद्ध चैतन्य की पर्याय में यह चीज़ है, उसका लाभ। और रागादि सर्व का त्याग। इसका नाम वस्तु धर्म की प्राप्ति कही जाती है। आहाहा! यह १३६ पूरा हुआ....

कलश-१३७

(मन्दक्रान्ता)

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बंधो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापाः
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः।।५-१३७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—इस बार ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टिजीव के विषय भोगते हुए, कर्म का बन्ध नहीं है, सो कारण ऐसा कि सम्यग्दृष्टि का परिणाम अति ही रूखा है; इसलिए भोग ऐसा लगता है, मानों कोई रोग का उपसर्ग होता है; इसलिए कर्म का बन्ध नहीं है—ऐसा ही है। जो कोई मिथ्यादृष्टिजीव, पंचेन्द्रियों के विषय के सुख को भोगते हैं, वे परिणामों से चिकने हैं, मिथ्यात्वभाव का ऐसा ही परिणाम है, सहारा किसका है। सो वे जीव ऐसा मानते हैं कि हम भी सम्यग्दृष्टि हैं, हमारे भी विषयसुख भोगते हुए कर्म का बन्ध नहीं है सो वे जीव, धोखे में पड़े हैं; उनको कर्म का बन्ध अवश्य है। इसलिए वे जीव, मिथ्यादृष्टि अवश्य हैं। मिथ्यात्वभाव के बिना, कर्म की सामग्री में प्रीति नहीं उपजती है, ऐसा कहते हैं— 'ते रागिणः अद्यापि पापाः' [ते] मिथ्यादृष्टिजीवराशि, [रागिणः] शरीर-पंचेन्द्रिय के भोगसुख में अवश्यकर रंजक हैं। [अद्यापि] करोड़ उपाय जो करे अनन्त काल तक, तथापि [पापाः] पापमय हैं, ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध को करते हैं, महानिन्द्य हैं। किस कारण से ऐसे हैं? 'यतः सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति' [यतः] जिस कारण से विषय-सुखरंजक है जितनी जीवराशि, वे [सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति] शुद्धात्मस्वरूप के अनुभव से शून्य हैं। किस कारण से? 'आत्मानात्मावगमविरहात्' [आतमा] शुद्धचैतन्य वस्तु, [अनात्मा] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, उनका [अवगम] हेयोपादेयरूप भिन्नपनेरूप जानपना, उसका [विरहात्] शून्यपना होने से। भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यादृष्टिजीव के शुद्धवस्तु के अनुभव की शक्ति नहीं होती, ऐसा नियम है; इसलिए मिथ्यादृष्टिजीव, कर्म के उदय को आपरूप जानकर अनुभवता है, पर्यायमात्र में अत्यन्त रत है। इस कारण, मिथ्यादृष्टि सर्वथा रागी है। रागी होने से, कर्मबन्ध (का) कर्ता है। कैसा है मिथ्यादृष्टजीव? 'अयं अहं स्वयं सम्यग्दृष्टिः

जातु मे बन्धः न स्यात्' [अयं अहं] यह जो हूँ मैं, [स्वयं सम्यग्दृष्टिः] स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ, इस कारण [जातु] त्रिकाल ही [मे बन्धः न स्यात्] अनेक प्रकार का विषयसुख भोगते हुए भी, हमें तो कर्म का बन्ध नहीं है। 'इति आचरन्तु' ऐसे जीव ऐसा मानते हैं तो मानो, तथापि उनके कर्मबन्ध है। और कैसे हैं? 'उत्तानोत्पुलकवदनाः' [उत्तान] ऊँचा कर [उत्पुलक] फुलाया है [वदनाः] गालमुख जिन्होंने, ऐसे हैं। 'अपि' अथवा कैसे हैं? 'समितिपरतां आलम्बन्तां' [समिति] मौनपना अथवा थोड़ा बोलना अथवा अपने को हीना करके बोलना, इनका [परतां] समानरूप सावधानपना, उसको [आलम्बन्तां] अवलम्बन करते हैं अर्थात् सर्वथा प्रकार इसरूप प्रकृति का स्वभाव है जिनका, ऐसे हैं। तथापि रागी होने से मिथ्यादृष्टि हैं; कर्म का बन्ध करते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई जीव, पर्यायमात्र में रत होते हुए, प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं; उनकी प्रकृति का स्वभाव है कि हम सम्यग्दृष्टि, हमें कर्म का बन्ध नहीं, ऐसा मुख से गरजते हैं; कितने ही प्रकृति के स्वभाव के कारण, मौन-सा रहते हैं, कितने थोड़ा बोलते हैं। सो ऐसे होकर रहते हैं, सो यह समस्त प्रकृति का स्वभावभेद है; इसमें परमार्थ तो कुछ नहीं। जितने काल तक जीव, पर्याय में आपापन अनुभवता है, उतने काल तक मिथ्यादृष्टि है, रागी है; कर्म का बन्ध करता है।।५-१३७।।

कलश - १३७ पर प्रवचन

अब १३७

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बंधो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापाः
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः।।५-१३७।।

आहाहा! **खण्डान्वयसहित अर्थ—इस बार ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव के...** आहाहा! जिसे सम्यक् सत्यदर्शन, सत्यस्वरूप परमात्मा स्वयं वीतरागमूर्ति ही त्रिकाली है, शक्ति और उसका स्वभाव है। ऐसा सम्यक्त्व और प्रतीति जिसे (हुए हैं), उसका ज्ञान करके, जानकर प्रतीति हुई, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। ऐसे **जीव के**

विषय भोगते हुए कर्म का बन्ध नहीं है,... ऐसा कहा। आहाहा! कर्म का बन्ध नहीं, यह क्या कहा? मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जो बन्धन है, वैसा बन्धन सम्यग्दृष्टि को विषय भोगने में भी आसक्ति है, परन्तु उस आसक्ति में अस्थिरता का दोष है। इसलिए उससे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जो कर्म बँधता है, वह नहीं बँधता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहाँ से धर्म? एक व्यक्ति तो ऐसा कहता था कि यह कहाँ से यह नया निकाला? नया नहीं, भगवान! वीतराग जिनेन्द्र परमात्मा का तो अनादि का यह मार्ग है। आहाहा! लोगों को सुनने को मिला न होम, इससे नया लगे। नया नहीं है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली इस रूप से कहते आये हैं और कहते हैं, तथा कहेंगे। इसमें कोई दूसरी बात है नहीं। आहाहा!

विषय भोगते हुए कर्म का बन्ध नहीं है, सो कारण ऐसा कि सम्यग्दृष्टि का परिणाम अति ही रूखा है,... बहुत ही रूखे। अर्थात् क्या कहा? कि पाँच इन्द्रिय के विषयों में जो खड़ा दिखता है, अस्थिरता की जरा आसक्ति भी होती है, परन्तु उसके परिणाम परसन्मुख में बहुत ही रूखे हैं। आहाहा! जिसे उस आसक्ति का भी रस नहीं। रस आत्मा का है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसके रस के समक्ष आसक्ति का रस और उसमें सुखबुद्धि जिसे उड़ गयी है। आहाहा!

ऐसा कि सम्यग्दृष्टि का परिणाम अति ही रूखा है, इसलिए भोग ऐसा लगता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का मोक्षमहल का पहला सोपान... आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, उसे भोग ऐसे लगते हैं **मानों कोई रोग का उपसर्ग होता है...** आहाहा! धर्मी जीव को आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष भोग का राग काले नाग जैसा दिखता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसे मानो रोग का उपसर्ग आया। आहाहा! जैसे मनुष्य को कोई सर्प काटे और बिच्छू काटे और उपसर्ग आवे, उसी प्रकार धर्मी को भोग का जो राग है, उसे वह उपसर्ग देखता है। आहाहा! अज्ञानी उस राग की मिठास से राग को वेदता है। आहाहा! इतना अन्तर है। आहाहा! भोग को रोग समान देखता है। उसमें तो आया था अपने स्तुति में। भोगभुजंग। भोग को भुजंग अर्थात् काला नाग ऐसे फण करता हो। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मा के स्वाद के समक्ष, गृहस्थाश्रम में हो, स्त्री-कुटुम्ब हो, भोग हो, परन्तु उस भाव को काला

नाग जैसा देखता है। आहाहा! वह उसे जहर देखता है। भगवान आत्मा के सम्यग्दर्शन के आनन्द के स्वाद के समक्ष भोग के राग को रोग समान जानता है। आहाहा! ऐसी धर्म की बातें हैं। समझ में आया?

रोग का उपसर्ग होता है। इसलिए कर्म का बन्ध नहीं है,... ऐसा। कर्मबन्ध क्यों नहीं? सम्यग्दृष्टि को भोग के भाव में बन्ध नहीं। क्यों? कि उसे काला नाग और रोग देखता है। इसलिए उसे उसका बन्धन नहीं है। आहाहा! दुःख देखता है। भोग के भाव को दुःख देखता है। आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है, प्रभु! उसका जिसे स्वाद और भान हुआ है, वह भोग के राग को रोग की भाँति देखता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा यह कैसा उपदेश! वह तो ऐसा आता था, भाई! छह काय के जीव की दया पालना। यह दया पालना, तेरी दया पालना, उसकी यहाँ बात है। आहाहा! तू जितना है, उतना मानना, वह तेरी दया पालन की कहलाती है। और उतना न मानकर राग और पुण्यवाला मानना, उसमें इसने आत्मा की हिंसा की। आहाहा! समझ में आया?

स्वदया। अर्थात्? जो पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति के स्वभाव का सागर प्रभु है, उसे उतना उस प्रकार से स्वीकार करना, जानना, अनुभव करना, उसका नाम स्व की दया कही जाती है। आहाहा! उसे उस प्रकार से उतना न मानना और दया-दान के परिणाम जितना वह आत्मा है, हिंसा की मिठास के भोग जितना आत्मा है, एक समय की पर्याय है, उतना आत्मा है, ऐसा मानना, वह जीव की हिंसा है। अपने भगवान की हिंसा है। आहाहा! ऐसी व्याख्या कैसी होगी? जिनेन्द्रदेव परमेश्वर वीतराग परमात्मा का यह हुकम है। यह दुनिया माने, न माने इससे कहीं वस्तु बदल नहीं जाती। आहाहा!

मुमुक्षु : दुनिया माने, ऐसा करो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह माने, उसकी बात तो चलती है। परन्तु इसे मानना, न मानना तो इसे है या नहीं? जिसे पर में मिठास वर्ती, वह यह माने किस प्रकार? चीज़ देखी नहीं, उसे मानना किस प्रकार?

यहाँ तो सम्यग्दर्शन और ज्ञान में वह वस्तु देखकर, जानकर अनुभव की है। आहाहा! समझ में आया? उसके समक्ष यह भोग का राग आवे, वह जहरीला नाग जैसा

कठोर देखे, वैसा यह तो देखता है। आहाहा! उससे शीघ्र कैसे छूटना? अज्ञानी को उसकी मिठास के प्रेम के प्रवाह में दौड़ जाता है अन्दर। वस्तु पड़ी रहती है अन्दर। समझ में आया? ऐसा है। और समझ में आया? कुछ समझ में आया? ऐसा। समझ जाये वह तो अलग बात, परन्तु क्या कहना चाहते हैं, वह पद्धति इसे समझ में आती है? आहाहा!

त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव परमात्मा की यह आज्ञा है। सम्यग्दृष्टि जीव को भोग से कर्म का बन्ध नहीं। क्यों नहीं? कि उसे यह राग और दुःख लगता है। आहाहा! अरे! मेरा नाथ आनन्दस्वरूप प्रभु में आनन्द को माननेवाला, वह राग के भोग को दुःख मानता है, रोग मानता है। रोग आया, यह रोग आया। आहाहा!

मुमुक्षु : रोग न समझे उसे बन्ध सही?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोग समझता है, उसे बन्ध नहीं है। परन्तु रोग नहीं समझता वह मुझे प्रेमवाली चीज़ है, उसे मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी का बन्ध है। आहाहा! उसे मिथ्यात्व का बन्ध है। मिथ्यात्व अर्थात् अनन्त संसार का कारण। जिसे राग की मिठास वर्तती है, चाहे तो पाप के राग की या पुण्य के राग की जिसे मिठास वर्तती है, वह स्वभाव का अनादर करनेवाला मिथ्यात्व का सेवन करता है। आहाहा! और धर्मी को पुण्य परिणाम तो अलग बात, परन्तु ऐसे आसक्ति के भाव भोग के आये, उसे वह रोग और दुःखदायक जानता है। क्योंकि अपना स्वरूप आनन्द है, ऐसा जाना है, उस आनन्द के साथ तुलना करता है तो उसे दुःख लगता है। आहाहा! ऐसा है। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा! अरे! दुनिया ने नोंच डाला है, नोंच डाला है। मार्ग को कुछ उल्टा रूप दे दिया है। अरे! प्रभु! जिन्दगी जाती है। आहाहा!

कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि जीव के विषय भोगते हुए कर्म का बन्ध नहीं है, सो कारण ऐसा कि सम्यग्दृष्टि का परिणाम अति ही रूखा है,...** वीतरागभाव-सम्यग्दर्शन जिसे प्रगट हुआ है... आहाहा! इससे राग आवे उसमें उसकी रुचि नहीं। भोग के राग के भाव की उसे रुचि नहीं। अन्तर में वह पोसाता नहीं, परन्तु आता है इससे उसे बन्ध नहीं होता। पोषाण नहीं, रुचि नहीं, इसलिए (बन्ध नहीं)। और वह बन्ध नहीं। कौन सा? मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का उसे बन्ध नहीं। आसक्ति है, उतना

चारित्रमोह का बन्ध है। परन्तु उसे यहाँ गौण गिनकर मुख्य मिथ्यात्व का बन्ध नहीं, इसलिए उसे भोग में निर्जरा है, ऐसा कहने में आता है। वरना भोग से निर्जरा हो तो भोग छोड़कर अन्दर चारित्र अंगीकार करना रहता नहीं। आहाहा! किस अपेक्षा से कहते हैं? उसे अन्दर परिणाम रूखे हैं और रोग समान भोग को देखता है। आहाहा!

इसलिए कर्म का बन्ध नहीं है, ऐसा ही है। देखा! ऐसा ही है। **जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव पंचेन्द्रियों के विषय के सुख को भोगते हैं,...** देखा! अब पाँच इन्द्रिय विषय की ओर इज्जत को सुनकर प्रसन्न हो, आँख से सुन्दर रूप देखकर प्रसन्न हो, सुगन्ध देखकर प्रसन्न हो, रस देखकर प्रसन्न हो, भोग का स्पर्श देखकर प्रसन्न हो। वह मिथ्यादृष्टि पाँचों इन्द्रिय के विषय का लोलुपी... आहाहा! उसे अणीन्द्रिय का नाथ भगवान का अनादर करके... आहाहा! है? **पंचेन्द्रियों के विषय के सुख को भोगते हैं,...** वह सुख को मानता है। पाँच इन्द्रिय के विषय में अज्ञानी सुख मानता है। आहाहा! सुन्दर रूपवान शरीर, युवा अवस्था, २५-३० वर्ष की उम्र हो जवान। स्त्री भी जवान हो... आहाहा! और उसमें भोग में मिठास मानता है, वह मूढ़ जीव अनन्त संसार के बन्धन को करता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। आहाहा!

वे परिणामों से चिकने हैं,... उसमें लिया था न? कि रूखे हैं। तो यहाँ परिणाम चिकने हैं। आहाहा! उसे एक भी पाँच इन्द्रिय का विषय प्रसन्नता, खुशीपना उत्पन्न हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! वह प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। मुझे पैसे मिले, मुझे भोग मिले, मुझे इज्जत मिली, मेरी प्रशंसा हुई। इस प्रकार परपदार्थ में उसे प्रसन्नता हो जाती है। इसीलिए वह अनन्त संसार के कर्म को बाँधता है। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में ऐसा आता है कि सम्यग्दृष्टि अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिये बहुत प्रयत्न करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अस्थिरता की बात है। अस्थिरता का भाग आवे, परन्तु रस नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : रूखा भोजन करे, वह कहाँ प्रसन्न हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : रूखा भोजन करे, परन्तु राग है न अन्दर। खाने के भाव में राग

है और उसमें मुझे मजा आता है, ऐसा मानता है। भले रूखा खाये। (वह) धर्म का त्यागी है और राग का भोगी है। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि भरत चक्रवर्ती जिसे आहार में बत्तीस ग्रास का आहार। उसमें एक ग्रास ऐसा होता है कि छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सकते। ऐसी उसमें भस्म होती है। हीरा की भस्म, लोहे की भस्म, ताँबे की भस्म, मणिरत्न की भस्म। जिसकी दासी ऐसी होती है, दासी! कि हीरा हाथ में हीरा लेकर (हाथ से मसलकर) ऐसा करे वहाँ चूरा हो जाये। उसकी भस्म को रोटी के आटे में डाले। और वह रोटी खाये, वह बत्तीस ग्रास का आहार और उसका एक ग्रास छियानवें करोड़ (सैनिक) पचा नहीं सकते। एक पचावे तो भी वह भोग का भोगी नहीं। उसमें सुखबुद्धि नहीं। आहाहा! क्या कहा?

मुमुक्षु : उस समय ऐसी शक्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में शक्ति नहीं। शक्ति तो बहुत... तुम्हारे पास नहीं सब भस्म? भस्म बहुत की हुई है घर में। हीरा की। अपने सेठ सब रखता है। थोड़ा नमूना ले नहीं आये थे यहाँ? वह डॉक्टर ने कहा तब आया था न तुम्हारे यहाँ? 'सुकंदरा' वह धूल में... आहाहा! अज्ञानी को उसमें रस आता है। ज्ञानी को उसमें दुःख लगता है। इतना अन्तर है। आहाहा! अब जिसकी दृष्टि में पूरा अन्तर। आहाहा!

मिथ्यात्वभाव का ऐसा ही परिणाम है,... है? अज्ञानी के चिकने परिणाम हैं। भले अकेला खाखरा खाता हो, परन्तु खाते हुए उसे मिठास अन्दर राग की मिठास है। आहाहा!

मुमुक्षु : रूखा खाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिकने राग को खाता है। ऐसी बातें हैं।

'सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जानी।' सर्वज्ञ का—परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ का 'धर्म सुशर्ण जानी आराध्य आराध्य प्रभाव आनी। अनाथ एकान्त सनाथ होगा, इसके बिना कोई बाह्य न स्हाशे।' भाई! आहाहा! त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ का यह फरमान है। मिथ्यादृष्टि भोग में प्रसन्नता से—खुशी से भोगता है, इसलिए उसे कर्मबन्धन है। आहाहा! और ज्ञानी ऐसे बत्तीस ग्रास (खाये), जिसका एक ग्रास छियानवे करोड़ (सैनिक) पचा न सकें, ऐसे बत्तीस ग्रास का प्रतिदिन आहार और जिसे ३६० रसोईया,

उसे ३६० रसोईया को, एक रसोईया को ३६० में एक दिन पकाने का कहा जाता है। पकावे तो रसोईया, परन्तु उसके अधिपति। ३६० दिन तक एक दिन रसोई बनानी हो उसकी सब तैयारी ३६० दिन करे। ऐसे-ऐसे ३६० तो रसोईया के अमलदार हों। उस अमलदार को एक बार हुकम किया जाये कि आज महाराज के लिये यह बनाना। आहाहा! और वह चीज़, वह भी कैसी! आहाहा! उन्हें कुछ प्रेम नहीं। आता है उसमें। हीरा की भस्म डाला हुआ हलुवा आवे, लड्डू आवे। वह सब पुद्गल, मिट्टी, जड़ है। और उसके प्रति उत्पन्न हुआ राग जहर है, दुःख है। वहाँ उसे कहीं सुहाता नहीं। आहाहा! उस धर्मी को ऐसे राग में कहीं सुहाता नहीं और अज्ञानी को उस राग के सुहाने में सुहाना-सुहाना हो गया। आहाहा! अब इसका अन्तर कौन जाने? समझ में आया?

ऐसा ही परिणाम है, सहारा किसका है? इसमें दूसरी आवश्यकता और मदद किसकी? अज्ञानी को विषय में प्रेम है, राग है, सुखबुद्धि है और समकिती को राग में सुखबुद्धि नहीं, जहरबुद्धि देखता है। इस प्रकार दोनों में अन्तर अन्दर परिणाम में है। उसमें सहारा किसका? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है? **सो वे जीव ऐसा मानते हैं कि हम भी सम्यग्दृष्टि हैं,...** हम भी रूखा खाते हैं, हम धर्मी हैं। आहाहा! हमारे भी विषयसुख भोगने से कर्म का बन्ध नहीं है, ऐसा वह अज्ञानी मानता है। हम भी धर्म को माननेवाले हैं, वीतराग को मानते हैं और हमको भोग में हमारे बन्ध नहीं है। दृष्टि में मिथ्यात्व है, तथापि वह ऐसा मानता है कि भोग भोगते हुए हमको धर्म है, निर्जरा है। आहाहा!

हम भी सम्यग्दृष्टि हैं, हमारे भी विषय सुख भोगते हुए कर्म का बन्ध नहीं है। सो वे जीव धोखे में पड़े हैं... आहाहा! जिसे पाँच इन्द्रिय के विषय अर्थात् शब्द-प्रशंसा के, रूप-आँख का, सुन्दर रूप देखने में, सुगन्ध, रस-मिठास, लड्डू और रसगुल्ला, मैसर और स्त्री के भोग का स्पर्श, इन पाँचों इन्द्रिय के विषयों में अज्ञानी ऐसा कहता है कि हमको तो वह भोग निर्जरा का कारण है। हमारे बन्ध नहीं है। वह मूढ़ जीव है। मिठास है और बन्ध नहीं है, ऐसा कहता है। आहाहा! उसमें सुखबुद्धि पड़ी है और ऐसा कहता है कि हमारे बन्ध नहीं है। ऐसा नहीं चलता, बापू! यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं है। आहाहा! समझ में आया? है?

उनको कर्म का बन्ध अवश्य है। इसलिए वे जीव मिथ्यादृष्टि अवश्य हैं। आहाहा! क्यों? **मिथ्यात्वभाव के बिना कर्म की सामग्री में प्रीति नहीं उपजती है, (ऐसा कहते हैं...)** भाषा यह। आत्मा के अतिरिक्त जितने पुण्य-पाप के भाव और शरीर मिले, पैसा धूल आदि यह सामग्री, वह सब पुद्गल-जड़ की सामग्री, उसमें जिसे प्रेम है, वह मिथ्यात्व बिना प्रेम नहीं हो सकता। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का नाथ, उसका प्रेम छोड़कर और इस कर्म की सामग्री में जिसे प्रेम चिपटा है, वह मिथ्यादृष्टि जीव कदाचित् भोग न भोगे तो भी उसे बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी कैसी बातें परन्तु! मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा! अनन्त काल इसने मूढ़रूप से व्यतीत किया। अनन्त अवतार करके, बापू! आहाहा! यह मनुष्य होकर मरकर जाये ढोर में। और ढोर मरकर नरक में जाये। आहाहा! भाई! ऐसे अवतार तूने अनन्त किये हैं। भाई! भूल गया। यह मिथ्यात्व के कारण। यह पाँच इन्द्रिय के विषयों में तुझे मिठास लगी। जिसमें जहर है, दुःख है, उसमें तुझे मिठास लगी, भाई! तूने आत्मा को मार डाला। अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ का तूने अनादर किया और पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुखपना माना, यही मिथ्यात्वभाव महा झूठा भाव संसार में भटकने का कारण है। आहाहा! है?

मिथ्यात्वभाव के बिना कर्म की सामग्री में... यह कर्म की सामग्री आ गयी है। यह पुण्य और पाप के भाव और उसका फल सब कर्म की सामग्री है। वह दुश्मन-वैरी की सामग्री है। आहाहा! उसके प्रति जिसे प्रेम है, उसे आनन्द के नाथ भगवान आत्मा के प्रति अप्रेम-द्वेष है। आहाहा! जो कुछ शुभ-अशुभराग और उसके फल के पक्ष में चढ़कर प्रेमी है, उसे आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा का उसे द्वेष है। आहाहा! अरे! ऐसी व्याख्या कैसी! बापू! कुछ अपूर्व बात रह जाती है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

'ते रागिणः अद्यापि पापाः' 'ते' मिथ्यादृष्टि जीवराशि... 'रागिणः' शरीर पंचेन्द्रिय के भोगसुख में अवश्यकर रंजक हैं। देखा! उसमें उसे सुखबुद्धि है। आहाहा! राग के रंग में रंग गया है। आहाहा! रंजित कहा न, रंजित? आहाहा! यहाँ तो आगे कहेंगे कि पंच महाव्रत पालन करे, समिति भले पालन करे। यह शब्द कहेंगे बाद में, देखो! '**समितिपरतां**' है न? पाँच समिति पालता हो। देखकर चले, विचारकर। परन्तु अन्दर

में राग के प्रेम में पड़ा है, वह भले पुण्य का राग है, परन्तु वह पुद्गल का भाग है, उसमें जिसे प्रेम और रुचि है, वह महाव्रत और पाँच समिति को पालने पर भी मिथ्यादृष्टि पापी है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। और सम्यग्दृष्टि जीव छह खण्ड के राज में पड़ा दिखाई दे... आहाहा! तथापि उसे राग में प्रेम और सुखबुद्धि उड़ गयी है। मेरा नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान है, उसके प्रेम के रस के स्वाद के समक्ष सबमें से जिसे स्वाद उड़ गया है। उसे कर्मबन्धन नहीं, उसे तीव्र बन्धन नहीं। समझ में आया? और इसे तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का महापाप का बन्धन है। कर्म की सामग्री के प्रति प्रेम है और आत्मा की सामग्री के प्रति इसे द्वेष है। अन्तर आनन्द और ज्ञान का सागर भगवान, उसके प्रति इसे अरुचि है और राग की इसे रुचि है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब।

बापू! वीतराग का मार्ग (कोई अलग है)। प्रभु! तू वीतरागस्वरूप है, भाई! उनका मार्ग, उसमें जाने का और स्थिर होने का कोई अलौकिक है। आहाहा! यह बाहर के किसी कारण से, साधन से वहाँ अन्दर जाया जाता है... आहाहा! अर्थात् कि राग की मन्दता के साधन से अन्दर में जाया जाता है, ऐसा तू नहीं है। आहाहा! यह आगे कहेंगे। पंच महाव्रत पालन करे, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अजीवन शील—ब्रह्मचर्य पालन करे, परन्तु अन्दर में जो राग भाव आता है, उसका इसे प्रेम है। चाहे तो दया, दान, व्रत का राग है, परन्तु उसका जिसे प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि राग में सुख मानता है। आहाहा! गजब बात की है न! यह पंच महाव्रतादि राग है, उसे साधन मानता है। मेरे सुख का वह साधन है। आहाहा! कठिन बात पड़े, इसलिए क्या करे? मेरा धर्म जो वीतराग स्वभाव, उसमें यह व्रत और तप का जो भाव-राग, वह साधन है, उससे साध्य प्रगट होगा।—ऐसा मिथ्यादृष्टि पंच महाव्रत और पाँच समिति में तत्पर रहा हुआ हो तथापि वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक - ०२-११-१९७७, कलश-१३७, प्रवचन-१३८

कलशटीका, १३७ कलश है। यहाँ बीच में आया है। **मिथ्यात्वभाव के बिना कर्म की सामग्री में प्रीति नहीं उपजती...** है? बीच में है। क्या कहते हैं? मुद्दे की रकम है। जहाँ मिथ्यात्वभाव न हो, वहाँ पर में प्रीति नहीं होती और मिथ्यात्वभाव बिना पुण्य और पाप के भाव-राग हो, या उसका बन्धन और उसका फल स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत-कीर्ति यह सब पुद्गल का विस्तार है। आहाहा! उसमें जिसकी प्रीति वर्तती है। अन्दर शुभराग, दया, दान, व्रत, तप का भी शुभराग (हो), उसमें जिसकी प्रीति वर्तती है, वह मिथ्यात्व के बिना नहीं हो सकती। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

जिसे आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, इसके अतिरिक्त शुभ-अशुभराग या उसका बन्धन या उसका फल यह बाह्य, उस किसी भी चीज़ में उसे प्रेम है, वह कर्मसामग्री में प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि है। वह जैन नहीं, उसे जैन की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं अन्दर?

मुमुक्षु : स्पष्ट समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न यह! अभी विस्तार आता है। यह तो इसका... मिथ्यात्व बिना अर्थात् कि विपरीत श्रद्धा बिना अर्थात् कि अनन्त संसार का कारण विपरीत मान्यता, उसके बिना परपदार्थ में प्रीति सम्भव नहीं है।

मुमुक्षु : परपदार्थ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग-राग। राग की रुचि। अन्दर दया, दान, व्रत, तप, अपवासादि का जो विकल्प-राग उठा है, उस राग की जिसे रुचि है, राग जिसे पोसाता है, वह मिथ्यादृष्टिपने बिना नहीं हो सकता। कहो, शान्तिभाई!

मुमुक्षु : राग तो धर्मी को भी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। प्रीति नहीं उसे। राग को ज्ञानी / धर्मी ज्ञेय, पररूप से—ज्ञेयरूप से जानता है। आहाहा! ऐसी बात है। कहाँ बेचारे अनन्त काल में... वह भले महीने-दो-दो महीने के अपवास करता हो या आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालता हो,

वह सब भाव शुभराग है और उस राग में जिसका प्रेम है, उसे आत्मा के स्वभाव के प्रति द्वेष है। इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात! है या नहीं इसमें? पहले आ गया है, नहीं? इसके पहले।

शुद्ध चैतन्यमात्र मेरा स्वरूप है, द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म का विस्तार पराया-पुद्गलद्रव्य का है,... यह १३६ कलश में आ गया है। आहाहा! यह शुभ और अशुभभाव, कि इसके फलरूप से यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत आदि मिलना, वह सब पुद्गल-जड़ का विस्तार है, वह पुद्गल-जड़ की सामग्री है। आहाहा! ऐसी बात!

मुमुक्षु : पुत्र-पुत्रियों को जड़ मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुद्गल का स्वभाव है कि उसकी सामग्री मिली। उसमें वास्तव में यह जीवपना उसमें नहीं। इसलिए वास्तव में इस अपेक्षा से तो वे सब जड़ ही हैं। पुत्र मेरा है, ऐसा जो भाव, वह महा अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : किसका पुत्र?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा किसका? किसी का होता नहीं। आत्मा, आत्मा का; शरीर, शरीर का। सेठ! आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव वीतराग परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि मिथ्याश्रद्धा-अनन्त संसार का कारण ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, इसके बिना परपदार्थ में प्रीति सम्भव नहीं है। आहाहा! यह तो सादी भाषा है। आहाहा!

मुमुक्षु : भाव तो बहुत गहरे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव गहरे हैं परन्तु भाषा सरल है। एक शब्द का ऐसा अर्थ है और अभी विस्तार करेंगे। तुम्हारे सामने पुस्तक रखी है या नहीं?

मुमुक्षु : यह प्रकाशित हुए हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाशित यहाँ या चाहे जहाँ प्रकाशित हो। चीज़ किसकी है? सन्तों ने कही हुई (चीज़ है)। और राजमल धर्मी, जैनधर्म के प्रेमी ने किया हुआ अर्थ है, यह पाठ में है उसका अर्थ है। समझ में आया?

देखो! पाठ में क्या है? '**रागिणोऽप्याचरन्तु। आलम्बन्तां समितिपरतां ते**

यतोऽद्यापि पापा' यह मूल पाठ में है। '**रागिणोऽप्याचरन्तु**' पंच महाव्रत पालन करे, समिति, गुप्ति, व्यवहार पालन करे। '**रागिणोऽप्याचरन्तु आलम्बन्तां समितिपरतां**' समिति-गुप्ति का आलम्बन ले, पंच महाव्रत पालन करे '**यतोऽद्यापि पापा**' तो भी वह पापी है। आहाहा! मूल श्लोक में है। वहाँ बीड़ी में और पढ़ने में नहीं मिले वहाँ। सेठ को उलहाना देते हैं। आज जानेवाले हैं।

मुमुक्षु : अब तो छोड़ दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ सब सम्हाले ध्यान रखकर। वे लड़के-बड़के करें परन्तु सब पूछ ले। आहाहा! यह तो सबको है न? इनकी क्या (बात है)। यह तो बड़े दृष्टान्त सामने बैठे, इसलिए (देते हैं)। पूरी दुनिया कर रही है। आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? तू तो चैतन्यस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा है। यह आत्मा अपने स्वरूप की रुचि, अनुभव छोड़कर अन्दर में दया, दान, महाव्रत और समिति का राग हो, उस राग का राग जिसे रुचि है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे जैनधर्म की खबर नहीं। आहाहा! है नहीं सब अन्दर? हीरालालजी! अन्दर है अन्दर? ऐई! बसन्तीलालजी! है? क्या कहा? देखो! मिथ्यात्वभाव बिना... आहाहा! अरे..रे..! जिन्दगी ऐसी की ऐसी पशु की भाँति चली जा रही है।

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में आया, उसे सन्तों ने जगत के समक्ष प्रसिद्ध किया। दिगम्बर सन्तों ने प्रसिद्ध किया, भाई! परमात्मा जिनेश्वरदेव इन्द्रों और गणधरों की सभा के मध्य में प्रभु ऐसा कहते थे। आहाहा! है? कि जिसे दया, दान, व्रत, अपवास का विकल्प—राग उठता है, वह तो राग है, उस राग की जिसे रुचि है—वह मुझे लाभ करेगा और वह मेरी चीज़ है, इस मान्यता को मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्वभाव कहते हैं कि जो मिथ्यात्वभाव चौरासी लाख योनि के अनन्त अवतार का कारण है, भाई! आहाहा! अरे रे! कहाँ इसने देखा है। कहाँ इसने जाना और क्या देखा? कुछ खबर नहीं होती। आहाहा!

प्रभु! तू अन्दर आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु है न! पूरे जगत के ज्ञेय को जाननेवाला—देखनेवाला तू है न! उसके बदले परज्ञेय जो दया, दान, व्रत, तप का

विकल्प उसे, वह भी परज्ञेय है। उसे तू प्रेम से आदर (कि) यह राग मेरा है, वह राग की रुचि है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! है? सेठ! है या नहीं? यह तुम्हारा अन्तिम पाथेय आता है। सेठ जाते हैं न अब! ऐसा मार्ग है, प्रभु!

सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर अकषाय करुणा से... उन्हें विकल्प है नहीं, वाणी की ध्वनि उठती है, उस वाणी में ऐसा आया 'मुख ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' भगवान के श्रीमुख से ॐ की ध्वनि निकली त्रिलोकनाथ को। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' गण अर्थात् सन्तों के समूह के धरनेवाले वे गणधर वीतराग की वाणी को सुनते हैं। 'रचि आगम उपदेशे...' उसमें से गणधर, सन्त आगम/शास्त्र रचते हैं। 'रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' प्राणी, पवित्र योग्य जीव हो, वह संशय को निवारण करता है। संशय अर्थात् मिथ्यात्व। अज्ञानी, जैन की सभा में अनन्त बार गया, जैन परमेश्वर के समवसरण में महाविदेह में अनन्त बार यह उत्पन्न हुआ। समवसरण में अनन्त बार गया, अनन्त बार सुना। आहाहा! परन्तु वहाँ यह केवली आगल रह गयो कोरो। रूखा रह गया। आहाहा! क्योंकि इसने अपने आनन्द और ज्ञान स्वभाव से विरुद्ध भाव ऐसा जो दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, उसका प्रेम और रुचि इसने छोड़ी नहीं। आहाहा! ऐसा है, भाई! अरे! वीतराग के मार्ग के नाद को कौन सुनेगा? ऐसा स्वरूप है, प्रभु! आहाहा!

एक महाव्रत का या अपवास का, महीने के अपवास करूँ, यह विकल्प है, राग है। उसे कोई धर्म नहीं होता। उस राग की जिसे रुचि है कि मुझे राग पोसाता है, वह जीव मिथ्यादृष्टि बिना राग का पोषण और रुचि हो नहीं सकता। अरेरे! उसने किया क्या? पशु की भाँति जिन्दगी व्यतीत की और ऐसा का ऐसा मरकर ढोर में जानेवाला है वापस। आहाहा! ऐसे संस्कार भी जिसे अन्दर नहीं,... आहाहा! कि मैं एक आत्मा अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द के स्वभाव से भरपूर भगवान हूँ। भगवत्स्वरूप हूँ, मैं भगवान हूँ। पूर्ण हूँ, कृतकृत्य हूँ। आहाहा! ऐसे आत्मा का अनुभव और दृष्टि किये बिना... आहाहा! पुत्र, पुत्रियाँ, स्त्री, पुत्र तो कहीं पृथक् रह गये। वह कर्म का फल पुद्गल का विस्तार है। परन्तु यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध ये भाव

भी पुद्गल की-जड़ की सामग्री है। वह चैतन्य के घर की सामग्री नहीं। आहाहा! पुण्य के फल और पुण्य, दोनों का जिसे अन्दर में प्रेम है, वीतराग ऐसा कहते हैं कि तू मिथ्यादृष्टि है, तेरी दृष्टि झूठी है। सत्य से तेरी मान्यता अत्यन्त विरुद्ध है। सत्य का खून करनेवाली तेरी मान्यता है। आहाहा!

मुमुक्षु : गृहस्थ पूजा-भक्ति कर सके, दूसरा क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था पूजा-भक्ति? राग करे। पर की क्रिया स्वाहा (हो), वह क्रिया तो जड़ की है।

मुमुक्षु : इसमें तो लिखा है - '**पापा**'।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! मित्रसेनजी कहते हैं कि इसमें तो पापी लिखा है। ऐसा कहते हैं। बात सच्ची है, भाई! है? यह मूल तो दूसरे पद का अन्तिम शब्द है न? '**रागिणोऽप्याचरन्तु। आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा**' आहाहा! यह पंच महाव्रत पालन करे और पाँच समिति, गुप्ति पालन करे... यह आयेगा अभी, तो भी वह राग का प्रेमी है। वह कर्तव्य मेरा है, राग कर्तव्य है... आहाहा! इतना (करते) होने पर भी वह पापी है। शुभभाव इतना होने पर भी वह पापी प्राणी है। क्योंकि उसने अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, उसका उसने अनादर किया और उससे विरुद्ध राग का विभावभाव— दया, दान, व्रत, भक्ति का, उसका उसने आदर किया, वह मिथ्यात्व के बिना नहीं हो सकता। आहाहा! गजब बात है। है न? सेठ! आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्यभाव आदरणीय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव से विरुद्ध भाव है। विकार भाव, दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, यह तो राग का भाव वृत्ति का उत्थान है। वृत्ति उठती है, वह तो राग है। जिसे राग का प्रेम है, उसकी दृष्टि पर्यायबुद्धि है। उसकी दृष्टि में राग ही रुचता है। आहाहा! यहाँ तक आया। संसार के पाप के धन्धे—पूरे दिन स्त्री, पुत्र, परिवार, कमाना, काम, वह तो अकला पाप, पाप और पाप। उसमें तो पुण्य भी नहीं। आहाहा! परन्तु यहाँ तो ऐसे पुण्य में आया है, ऐसा कहते हैं। महाव्रत और पाँच समिति—गुप्ति बराबर चुस्त पालन करे— शुभराग, परन्तु वह सब शुभविकल्प वृत्ति राग है। और उस राग की जिसे रुचि है, वह

राग जिसे पोसाता है, वह मिथ्यादृष्टि बिना यह बात नहीं हो सकती। आहाहा! गजब बात है! '**यतोऽद्यापि पापा**' अभी आगे आयेगा।

यहाँ तो एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर प्रभु आत्मा, अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान और आनन्द का भण्डार प्रभु! आहाहा! ऐसे आत्मराम के अतिरिक्त जितने पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव (होते हैं) और उनके फलरूप से यह स्त्री, पुत्र, पैसा, धूल, पुत्र (हों)... आहाहा! वह सब पुद्गल का विस्तार—वह सब चीज़ें गाँव। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक गाँव के किसी भी अंश में जिसे प्रेम और रुचि है, (वह मिथ्यादृष्टि है)। पुनातर! ऐसी बाते हैं। वीतरागमार्ग, बापू! अरेरे! इसने कभी सुना नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी ढोर की भाँति चली जायेगी और वापस जायेगा ढोर में / पशु में अवतरित होनेवाला है। आहाहा! नहीं जिसे ऐसे संस्कार, नहीं जिसे ऐसे संस्कार डालकर शुभभाव किये हुए... आहाहा! समझ में आया? उसे तो पशु की गति है। और वहाँ से मरकर वापस जाये नरक और निगोद में चला जायेगा। आहाहा! वह यह कोई सामग्री वहाँ नहीं रहेगी, प्रभु! ओहोहो! श्लोक!

इसमें पाटिया भरा है न भाई उसमें। समयसार में, उसमें बड़ा पाटिया भरा है। दो पाटिया भरे हैं। अर्थ भरा है। ऐस कि जड़ की क्रिया जड़ से होती है और मानता है कि मुझसे होती है। राग की क्रिया है शुभभाव वह बन्ध का कारण और मानता है मुझसे। अशुभ से बन्ध मानता है और शुभ से नहीं मानता। बड़ा पाटिया भरा है। समयसार में। आहाहा! वह इसमें से भरा है। दो ओर भरा है। और शिष्य ने प्रश्न भी किया है कि इतने महाव्रत पालन करे, समिति-गुप्ति पालन करे, आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे, महीने-महीने के अपवास करे, तथापि तुम पापी कैसे कहते हो? क्योंकि वह तो शुभभाव है। वह सब शुभ-पुण्यभाव है और तुम उसे पापी कैसे कहते हो? तो कहते हैं, सिद्धान्त में मिथ्यात्व को ही मुख्य पाप कहा है। और वह मिथ्यात्वपाप वह पुण्य के परिणाम का रस और रुचि है, वही मिथ्यात्व है। इसलिए पंच महाव्रत और पाँच समिति-गुप्ति पालन करे हजारों रानियाँ छोड़कर, दुकान का धन्धा-बन्धा छोड़कर ब्रह्मचर्य पालन करे परन्तु उसे वह पंच महाव्रत के राग का प्रेम है, वह पापी है। आहाहा! उसमें आयेगा, लम्बा

है अभी। यह तो अभी उसका उपोद्घात होता है। शीर्षक बाँधकर, उसका फिर विस्तार (करेंगे)। आहाहा!

अरे! ऐसी वीतराग की वाणी, इसे सुनने को मिले नहीं, आहाहा! वह कब दिशा बदले और कब दशा हो? आहाहा! अज्ञानी की दिशा राग की रुचि में परसन्मुख है। आहाहा! चाहे तो वह महाव्रत का शुभराग हो। यह दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, व्रत का, तप का (राग हो)... आहाहा! त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू वीतरागस्वरूप है। उसे छोड़कर ऐसे राग की रुचि यदि की, प्रभु! तेरे जैसा कोई पापी नहीं। आहाहा! परन्तु पापी तो भाई कसाईखाना (चलावे), बकरा काट, माँस खाये, वह पापी (कहलाये)। इसे कैसे पापी? पाठ में कहा है। '**रागिणोऽप्याचरन्तु आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा**' आहाहा! क्योंकि पाप तो मिथ्यात्व, वह महापाप है। महापाप है कि जिसमें अनन्त निगोद के भव करने की सामर्थ्य है। अनन्त पशु के भव करने की मिथ्यात्व में सामर्थ्य है। इस मिथ्यात्व का लक्षण... आहाहा! छोटे में छोटा पुण्य का राग आवे, उस राग की रुचि करे और वह राग उसे पोसावे, वह मिथ्यादृष्टि जीव... आहाहा! वह चौरासी लाख भवाब्धि के समुद्र में भटकने का अभिलाषी है। आहाहा! कहो, समझ में आया? भाषा तो बहुत सादी है, बापू! आहाहा! अरे रे! ऐसा अवसर कब मिले? अरे! ऐसे का ऐसे गँवा दिया जगत ने। ५०-५०, ६०-६०-, ७०-८० (वर्ष) हुए परन्तु कुछ किया नहीं। तत्त्व क्या वस्तु है, (यह पहिचाना नहीं)। आहाहा!

मिथ्यात्वभाव के बिना... मिथ्यात्वभाव लिया है न? **कर्म की सामग्री में प्रीति नहीं उपजती है,...** वह सब कर्म की सामग्री है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी विकार राग, वह कर्म की सामग्री है; आत्मा की नहीं। आहाहा! अभी यहाँ आया नहीं और अकेले पाप के परिणाम में रुचि में पड़ा, उसे तो मिथ्यादृष्टि को गति भी दुर्गति है। आहाहा! यह तो पंच महाव्रत पाले, समिति-गुप्ति पाले, अजीवन ब्रह्मचर्य पाले तो उसके फलरूप से शुभ है, इसलिए स्वर्ग में जायेगा, परन्तु है मिथ्यादृष्टि तो अनन्त संसार में भटकेगा। आहाहा! अरेरे! कहाँ अवतरित होगा? कोई इसका द्रव्य नहीं, क्षेत्र

नहीं, काल नहीं, भाव नहीं। वह सब भूलकर कहाँ अवतरित होगा। आहाहा! वहाँ किसी की सिफारिश चले, ऐसा नहीं है। आहाहा! नहीं, ऐसा कहते हैं। है?

मिथ्यात्व बिना **प्रीति नहीं उपजती है, ऐसा कहते हैं... 'ते रागिणः अद्यापि पापाः'** है? आहाहा! **'ते' मिथ्यादृष्टि जीवराशि शरीर पंचेन्द्रिय के भोगसुख में अवश्यकर रंजक हैं।** आहाहा! शरीर की रुचि है, पाँच इन्द्रिय अर्थात् कि शब्द सुनना, उसमें उसे प्रेम है। उसकी प्रशंसा सुने कि तुम तो ऐसे और ऐसे। आहाहा! तो उसमें उसे प्रेम है। वह सब मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव भवाब्धि में रुलनेवाले हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय—कान से प्रशंसा सुने, आँख से रूपवान स्त्री और पुत्र देखे, मकान बड़े बँगले पचास-पचास लाख के आँख से देखे। अच्छे कपड़े और गहन देखे, शरीर रूपवान देखे। कहते हैं, वह सब पंचेन्द्रिय के भोग, आहाहा! शरीर के स्पर्श के भोग। आहाहा! रस के मैसूर के भोग, वह राग के भोग, उन पाँच इन्द्रिय के विषयों में... आहाहा! वह तो भोगसुख में अवश्य रागी है। आहाहा! श्लोक बहुत सरस आया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अरेरे! अभी सुनना मुश्किल पड़ जाये। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सब पाँच महाव्रत निरतिचार पाले, समिति-गुप्ति निरतिचार (हो), उसके लिये बनाये हुए आहार-पानी प्राण जाये तो भी न ले, तो भी वह शुभराग है। और उस राग की रुचि है कि इससे मुझे लाभ होगा, वह मिथ्यादृष्टि जीव है, वह पापी है, ऐसा यहाँ कहा है। **शरीर पंचेन्द्रिय के भोगसुख में अवश्यकर रंजक हैं। 'अद्यापि' करोड़ उपाय जो करे अनन्त काल तक तथापि पापमय हैं।** वह तो पापी है, कहते हैं। आहाहा! करोड़ों भव और करोड़ों वर्ष में वह पंच महाव्रत पालन करे, समिति पालन करे, राज, कुटुम्ब छोड़े, करोड़ों भव तक या करोड़ों वर्षों तक, परन्तु जिसे राग में रुचि है वह पापी प्राणी है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा कहाँ सुना है? आहाहा!

यह धूल-मिट्टी यह किसी की चीज़-जगत की। जो रजकण बिच्छू के डंक थे, तब ऐसे उंहुं...हुं...हुं... लगता था। वह बिच्छू के डंक यहाँ अभी शरीररूप परिणमे हैं। वे रजकण यहाँ आये हैं। यह परमाणु जगत की चीज़ है। उसे मेरे रूप से मानकर सवेरे

से शाम तक। आहाहा! नहाना, धोना और खाना... पागल जैसा लगे ऐसे-ऐसे करे। आहाहा! क्या है, प्रभु! यह तुझे? यह सन्निपात किसका लगा? यह राग में एकताबुद्धि है, प्रभु! आहाहा! वह पापी प्राणी है। वह तो पापी है, परन्तु फिर आगे लेंगे, पाँच महाव्रत और समिति बराबर पालन करे, परन्तु वह राग है, वह कहीं धर्म नहीं। वह तो वृत्ति का उत्थान है कि मैं दया पालूँ, ब्रह्मचर्य पालूँ, झूठ न बोलूँ, वह तो वृत्ति का उत्थान, वृत्ति—राग है। उसमें जिसे रुचि है वह '**अद्यापि**' यहाँ तक आया तो भी वह पापी है।

मुमुक्षु : पहले आचार पालन करो फिर सम्यग्दर्शन हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो जायेगा मिथ्यात्व से। मिथ्यात्व का आचरण करेगा तो मरकर जायेगा नरक और निगोद में। समझ में आया? यहाँ क्या कहते हैं? यह पुकार करते हैं। आहाहा!

देखो! **अनन्त काल तक तथापि...** कहते हैं ऐसा भले अनन्त काल पर्यन्त पालन करे, **तथापि पापमय हैं। ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध को करते हैं, महानिन्द्य हैं।** आहाहा! **किस कारण से ऐसे हैं? 'यतः सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति' जिस कारण से विषयसुखरंजक है...** वह पाँच इन्द्रिय के राग में, रस में रंग गया है **जितनी जीवराशि वे शुद्धात्मस्वरूप के अनुभव से शून्य हैं।** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द और शुद्ध चैतन्य, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से भरपूर, प्रभु! उसकी उसे प्रतीति और उसका उसे अनुभव, उससे खाली है। आहाहा! ऐसी बातें अब।

एक आर्यिका ऐसा कहती, एक व्यक्ति है अपना। वेजलका का। वड़ोदरा में चन्दुभाई है। बहुत युवक, बहुत अभ्यास। वह आर्यिका के पास गया होगा। वह कहे, दूसरा सब तुम्हारा ठीक, परन्तु तुम तप को धर्म नहीं मानते। ऐसा कहा बाई ने—आर्यिका ने। वह कहे, परन्तु कौन सा तप? तेरे अपवास-बपवास वह सब राग की क्रिया है, तप नहीं। चन्दुभाई है। वेजलका, यहाँ राणपुर के पास वेजलका है न? वह... जानते हैं। नहीं? तुम्हारे चूड़ा और राणपुर के बीच वेजलका है। उसमें चन्दुभाई, वडोदरा रहते हैं। अपना स्थानकवासी है। लड़का बहुत होशियार। आर्यिका का पास गया वहाँ। उस आर्यिका ने सब बात करते-करते कहा, दूसरी (बात) तुम्हारी ठीक

परन्तु यह तपस्या, वह धर्म नहीं यह हमको नहीं बैठता। वह आर्यिका कहे। परन्तु कौन सी तपस्या? वह तो सब तेरा लंघन है। आहाहा! जहाँ अभी आत्मा राग के रस में पड़ा है, ऐसे तेरे अपवास सब लंघन है। आहाहा! आहाहा! प्रभु उसे लंघन कहते हैं। 'विषय-कषाय... जहाँ विद्यते नहीं।' जिसमें विषय और कषाय नहीं, 'आहार विद्यते' वहाँ आगे उसे आत्मा के आनन्द का... अतीन्द्रिय आनन्द, जैसे सोना, गेरु से ओपता और शोभता है, उसी प्रकार अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु रागरहित होकर वीतरागभाव से शाभता है, उसे तप कहा जाता है। वह 'तपंति इति तप', बाकी सब लंघन है। आहाहा! कठिन बातें हैं, बापू! आहाहा! है?

अनन्त काल तक, तथापि पापमय हैं। आहाहा! क्यों? कि समकित से वह रहित है। आहाहा! जिसे राग की रुचि है, वह मिथ्यादृष्टि है और इसलिए वह आत्मा के अनुभव से-समकित से वह खाली है। आहाहा! शून्य है, रिक्त है। आहाहा! अरेरे! कहाँ पड़ी है लोगों को? दो-चार लड़के अच्छे पकें, दो-दो लाख की आमदनी हो, रूपवान हो, गहने-वहने, वस्त्र ठीक से पहन हों... आहाहा! श्मशान की हड्डियाँ हैं सब। उसके प्रेम में फँस गया। आहाहा!

एक बार हमारे पालेज में ऐसा था। पहले-पहले गये। १३ वर्ष की उम्र। ५९ के वर्ष, संवत् १९५९। देश में से दुकान में गये, १३ वर्ष में। छोटी उम्र। छह कक्षा पढ़ने के बाद पढ़ने का बन्द कर दिया। फिर आसोज महीने का समय था। ५९। संवत् १९५९ का आसोज महीना। वह पूर्णिमा का दिन। उसमें साथ में जीन है। वहाँ महिलायें रासडा लेती होंगी। हमने तो पूछा, यह क्या है? हमको वहाँ जाने न देने के लिये कहा, वहाँ चुडगर है सब, चुडुं आयी है। चुडैल। छोटी उम्र। तेरह वर्ष की उम्र। १९५९ के वर्ष की बात है। और कोमल शरीर। इसलिए बाहर जाने न दे। मुझसे दो वर्ष छोटा मगन था। दोनों छोटे। पहले-पहले गये। ५९ के आसोज महीने में। वे कहे, वहाँ चुडैल है। वह खा जाये, भक्षण कर जाये। चुडैल समझते नहीं? चुडैल-व्यन्तरी देव। उसे डाकिन कहते हैं। फिर तो दो वर्ष होने के बाद खबर पड़ी। क्योंकि वह तो हमारे ग्राहक थे। दुकान में माल लेने आती थी बेचारी। उसके पैसे उगाहने को हम वहाँ जाते थे। अरे!

यह तो महिलायें हैं। परन्तु पिता को वहाँ जाने नहीं देना, इसलिए (कहा), वह चुडैल है। आहाहा! यहाँ परमात्मा कहते हैं कि राग का भाग, वह चुडैल है, डाकिन है। उसका यदि प्रेम किया तो वह खा जायेगी और मार डालेगी। आहा! १९५९ की बात थी। आसोज महीना। चन्द्र बराबर आया हुआ। आसोज महीने में गये, उमराला से पालेज। ५९। कितने वर्ष हुए? ७४ वर्ष पहले की बात है। आहाहा!

यहाँ तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तेरे पास तो अनन्त आनन्द, ज्ञान और शान्ति पड़ी है न, नाथ! उसे छोड़कर तू यह राग पुण्य का; पाप की तो बात क्या करना? संसार के स्त्री, पुत्र, परिवार सम्हालना, धन्धा, शरीर (सम्हालना), वह तो अकेला पाप, आहाहा! वह तो दुर्गति में जानेवाला। परन्तु यहाँ तो पंच महाव्रत के पालनेवाल, हजारों रानी को छोड़कर महीने-महीने के अपवास करनेवाले, वह भी शुभराग की वृत्ति है। उसकी यदि रुचि रखी तो तू मर गया। मैं आनन्द का नाथ, उसे तूने मार डाला। आहाहा! तूने आत्मा को घायल कर दिया। यह पुण्य के राग के प्रेम में जैसे चैतन्य को, जैसे शरीर को छुरा द्वारा घायल करे, वैसे तूने तेरे चैतन्य के आनन्द को घायल कर डाला है, प्रभु! तुझे कुछ खबर नहीं। आहाहा! अरेरे! समझ में आया? कहो, सुजानमलजी!

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं, देखो! अभी आता है। अभी धीरे-धीरे आता है। पंच महाव्रत और पाँच समिति का आलम्बन लेनेवाले और उसे पालन करनेवाले, करनेवाल। परन्तु वह राग है और उसकी जिसे रुचि है, वह पापी-मिथ्यादृष्टि पापी है। आहाहा! ऐसा कैसा? जैन के वाडा में सुनने को मिले नहीं। आहाहा! अरेरे!

मुमुक्षु : शर्मजनक बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी परम सत्य बात। वीतराग वीतरागभाव से धर्म बतावे। वह रागभाव से धर्म माने, वह महा वीतराग के विरोधी हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा तो आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ इसमें क्या है यह? यह नामा है कुछ? ढिंढ़ोरा पीटकर छनावट करके यहाँ कहा जाता है। आहाहा! वह लोगों में नहीं कहा जाता कि छाछ लेने

जाये और बर्तन छुपाया जाये ? घर में मेहमान आये हों और प्रतिदिन छाछ, दो सेर, तीन सेर (लाते हों)। तो (ऐसा कहते हैं), मामी! आज तो मेरे घर में मेहमान आये हैं। आधा मण सामने रखना पड़े। तब मानो। हमारे घर में ऐसा था न! यह सब घर में बना हुआ है। हमारी मामी और मामा पैसेवाले थे। घर में भैंसें। वहाँ प्रतिदिन छाछ लेने जायें। हमारी माँ जाये। मेहमान घर में आये हों, अधिक छाछ चाहिए हो, तो सामने रखे कि बर्तन भर देना पड़ेगा, मामी! देखो! मेहमान घर में आये हैं। वह बर्तन पीछे छिपाकर रखते होंगे ? छाछ लेने आया, वह बर्तन छिपाता होगा ? यह अपने कहावत है। छाछ लेने जाये और बर्तन छिपावे ? बोघड़ों अर्थात् बर्तन।

इसी प्रकार यहाँ सत्य मार्ग में असत्य को खुल्ला करके उघाड़ा करे, कहते हैं। वहाँ उसे छुपा नहीं रखते। आहाहा! प्रभु! तू पंच महाव्रत पाल, पाँच समिति पाल। वह तो है ही कहाँ अभी ? परन्तु वह पालता हो कि जो हजारों रानियाँ छोड़कर, महीने-महीने के अपवास (करे), रूखा आहार करे। परन्तु वह सब राग की वृत्तियाँ हैं, बापू! वह तेरा स्वरूप नहीं। तू तो ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप प्रभु तू है। उसमें से राग की वृत्तियाँ उठती हैं। उस राग की रुचि (रखनेवाल) पापी हैं, पापमय है। है ? आहाहा! क्योंकि वह (आत्मानुभव से) खाली—शून्य है।

किस कारण से ? शुद्ध चैतन्य वस्तु, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म... अनात्म है। देखो! है ? '**आत्मानात्मावगमविरहात्**' आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु और अनात्मा जड़कर्म। द्रव्यकर्म अर्थात् आठ जड़कर्म, भावकर्म अर्थात् दया, दान, पुण्य-पाप के भाव, वे भावकर्म। आहाहा! नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी। **उनका हेयोपादेयरूप भिन्नपनेरूप जानपना, उसका शून्यपना होने से।** अज्ञानी को यह राग हेय है और उपादेय चैतन्यमूर्ति है, उसके हेय-उपादेय के ज्ञान से अज्ञानी शून्य है। आहाहा! गजब बात है न ? उसमें फिर पाँच-पच्चीस लाख पैसा मिले और लड़के अच्छे (पके), इसलिए देख लो वह तो तुम्हारे। मैं चौड़ा और गली सकड़ी। आहाहा! मर जानेवाले हैं। ढोर में और कहीं नरक में जानेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया ?

परमात्मा का पुकार है कि... द्रव्यकर्मभूत आत्म-अनात्मा, दो शब्द पड़े हैं न ?

आत्मा और अनात्मा। आत्मा वह शुद्ध चैतन्यवस्तु और अनात्मा अर्थात् जड़कर्म; भावकर्म अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे भावकर्म; नोकर्म अर्थात् शरीर। **उनका हेयोपादेय...** अर्थात् भावकर्म हेय है और शुद्ध आत्मा, वह उपादेय है, ऐसे **उनका हेयोपादेयरूप भिन्नपनेरूप जानपना, उसका शून्यपना होने से।** उससे अज्ञानी शून्य है। आहाहा! भाष तो सादी है, सेठ! समझ में आये ऐसी है। आहाहा! इसने दरकार की नहीं, हों! आहाहा! अरे! मैं कौन हूँ? और मुझसे भिन्न क्या चीज़ है?

यहाँ दो शब्द आये न? आत्मा और अनात्मा। आत्मा, वह शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु। और दया, दान, व्रत, (पुण्य) परिणाम। पाप के हिंसा, झूठ, स्त्री-पुत्र को सम्हालने का भाव, वह सब पाप (परिणाम), वह सब अनात्मा है। जीव शुद्ध स्वरूप और अजीव—द्रव्यकर्म-भावकर्म-अनात्मा। **उनका हेयोपादेयरूप भिन्नपनेरूप जानपना,...** उससे शून्य अज्ञानी है। आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है—**अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त हैं, देखो! वे हजार वर्ष पहले हुए। वे स्वयं पुकार करते हैं। सन्त पुकार करे, दिगम्बर मुनि! आहाहा! जिसे पंच महाव्रत के परिणाम आते हैं, परन्तु कहते हैं कि उसमें हमारी रुचि नहीं, हों! हम तो उसे हेय जानते हैं। हमारा चिदानन्द आत्मा, उसे हम उपादेय जानते हैं। आहाहा!

ऐसे हेय—उपादेयपने का जानपना, उसका भिन्नपना ऐसा वापस। आत्मा और अनात्मा का भिन्नपना है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और दया, दान, व्रत का विकल्प राग और शरीरादि, इन दो को भिन्नता है। आहाहा! दोनों कभी एक हुए नहीं और एक हैं नहीं। इस भिन्नपने के जानपने से अज्ञानी शून्य है। उसे कुछ भान नहीं। हेय क्या है और उपादेय क्या है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! भले वह करोड़ोंपति, अरबोंपति हो, परन्तु वे सब मिथ्यादृष्टि, पापी हैं, कहते हैं। आहाहा! और बड़े आचार्य और उपाध्याय नाम धराते हों, परन्तु जिसे राग की रुचि है, वह पापी प्राणी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है या नहीं सामने अन्दर? इसका अर्थ होता है या नहीं?

मुमुक्षु : आप हमको सिखलाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसा अर्थ इसमें है या नहीं? क्या कहते हैं? देखो!

हेयोपादेयरूप भिन्नपनेरूप जानपना,... इससे अज्ञानी शून्य है। है या नहीं अन्दर? आहाहा! इसे कहाँ दरकार है, इस जगत के समक्ष? अरे रे!

मुमुक्षु : सब हाँ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह सत्य है, उसका इनकार करे तो चले कैसे? आहाहा! तू मनुष्य है, इसकी हाँ करे। परन्तु गधा है, (ऐसा कहे तो) उसकी न करे या नहीं यह? इसी प्रकार यहाँ राग को अपना माननेवाले, हेय को अपना माननेवाले, उपादेय को अपना नहीं माननेवाले, भिन्नपने के जानपने से जो शून्य है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! लोगों को न जँचे, कठिन पड़े बेचारों को।

यहाँ कहते हैं कि भिन्नपने के ज्ञान से तू शून्य है। तू यह राग होता है, उसे उपादेय मानता है। महाव्रत का रागादि है, वह आदरणीय है और उससे मेरा कल्याण होगा, (ऐसा मानता है) तो तूने राग को उपादेय माना। राग, वह अनात्मा है और भगवान अन्दर आत्मा आनन्द शुद्ध है, दो के भिन्नपने के जानपने से शून्य है; इसलिए मिथ्यादृष्टि पापी है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो मिथ्यादृष्टि है इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा यहाँ। यह नहीं कहा? '**रागिणः अद्यापि पापाः**' पाठ में है। राग के रागी पापी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है या नहीं अन्दर? अपने समयसार में इस गाथा के अर्थ में बड़ा पृष्ठ भरा है। पूरे दो पृष्ठ भरे हैं। पण्डित जयचन्द्रजी ने।

भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यादृष्टि जीव के शुद्ध वस्तु के अनुभव की शक्ति नहीं होती.... जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, राग की रुचि के प्रेम में पड़ा है, उसे जीव के शुद्ध वस्तु का आनन्द का अनुभव, ऐसी उसे शक्ति नहीं होती। आत्मा के शुद्धस्वरूप के अनुभव की शक्ति अज्ञानी को नहीं होती। आहाहा! **ऐसा नियम है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्म के उदय को आपरूप जानकर अनुभवता है,...** यह दया, दान, राग विकल्प है, वह तो कर्म का उदय है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसा श्लोक है। वे दूसरे सब विवाद करे, हों! अभी तो नौवें ग्रैवेयक में गया, ऐसे व्रत अभी कहाँ हैं? आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख

लेश न पायो।' यह महाव्रत के परिणाम, वे भी दुःखरूप हैं, शुभराग दुःख है। पापराग तो दुःख है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा मेरा वह तो महापाप और महादुःख है। परन्तु यहाँ तो महाव्रत के पुण्य परिणाम भी दुःख हैं। राग है न? आहाहा!

जीव के शुद्ध वस्तु के अनुभव की शक्ति नहीं होती, ऐसा नियम है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्म के उदय को आपरूप जानकर अनुभवता है,... यह राग है, वह तो विकार है। वह तो कर्म का उदय है। तो कर्म के निमित्त से हुआ उसका भाव है, आत्मा का स्वभाव नहीं। समझ में आया? उसे अपनेरूप अनुभव करता है। वह शुभराग महाव्रत का भी मेरेरूप अनुभव करता है। **पर्यायमात्र में अत्यन्त रत है।** आहाहा! अब इसका स्पष्टीकरण लेना है। द्रव्यदृष्टि नहीं, ऐसा। पुण्य-पाप के फल में, पुण्य-पाप के भाव में अज्ञानी रत—लीन है। आहाहा! और अपने को बादशाह मानता है। हम सब सुखी हैं। आहाहा! धूल में भी नहीं। दुःखी है, सुन न!

मुमुक्षु : लौकिक में तो सुखी....

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक, पागल लौकिक में। पागल के पास पागल अच्छे कहलाते हैं। पागल हैं सब। पागल के अस्पताल में पागल बहुत अच्छा हो, वह ऊँचा कहलाता है। इसी प्रकार उस पागल के अस्पताल में राग को अपना माननेवाला हो, वह होशियार कहलाता है। आहाहा! उद्योगपति। ऐसा कहे, देखो! माँ-पिता के पास कुछ नहीं था। अपने बाहुबल से उद्योग करके पाँच-पचास करोड़ इकट्ठे किये। परन्तु किसके? धूल के? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल, वह प्राप्त करनी है कहाँ? उसके पास तो ममता आती है। आहाहा! मैंने प्राप्त किये और मैं कमाता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अजीव को मैंने प्राप्त किया। अजीवतत्त्व को प्राप्त कर सकता है यह? वह तो अजीव है। यहाँ तो राग को अपना मानना, वह मिथ्यादृष्टि है तो अजीव को अपना मानना, उसकी तो बातें कहाँ करना? आहाहा! अरेरे!

मुमुक्षु : अनन्त शक्ति होती है परन्तु अनुभव की शक्ति नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। अज्ञानी को अनुभव की शक्ति नहीं। समकिती को ही वह शक्ति है। पर्याय में रत है, उसे अनुभव की शक्ति कहाँ से आयी? राग के रस में पड़ा है, वह पर्यायबुद्धि है, वर्तमानबुद्धि है। त्रिकाल भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि और अनुभव नहीं है। आहाहा! भारी कठिन श्लोक आया।

इस कारण मिथ्यादृष्टि सर्वथा रागी है। देखो! **पर्यायमात्र में अत्यन्त रत है इस कारण।** पर्यायमात्र राग पुण्य, दया, दान, व्रत, विकल्प वह सब पर्याय विकार है। उसमें **रत है। इस कारण मिथ्यादृष्टि सर्वथा रागी है।** वह सर्वथा रागी है। भले राज-कुटुम्ब छोड़ा हो। आहाहा! सर्वथा रागी है। कथंचित् रागी और कथंचित् अरागी, ऐसा नहीं है। आहाहा! जिसे कर्म के निमित्त, पुण्य-पाप के भाव और उसके फल यह स्त्री, पुत्र, पैसा, धूल, धमाका, पुत्र आदि, पुत्रियाँ और अच्छे दामाद यह सब विस्तार जड़ का। आहाहा! उसमें जो **रत है। इस कारण मिथ्यादृष्टि सर्वथा रागी है।** वह तो सर्वथा रागी प्राणी है। आहाहा! अरेरे!

ऐसी बाते सम्प्रदाय में कहाँ है? कहीं नहीं। हमको तो दोनों सम्प्रदाय की खबर है न! स्थानकवासी में तो यह है ही नहीं। मूल दिगम्बर में से तो श्वेताम्बर निकले हुए हैं, दो हजार वर्ष पहले। उसमें शास्त्र बनाये, उसमें तो यह बात आयी नहीं। और उसमें से स्थानकवासी निकले अभी ५०० वर्ष पहले, उसमें से यह तेरापंथी तुलसी अभी निकला। लाडनू। आहाहा! प्रभु! प्रभु! कठिन मार्ग, भाई! अब अणुव्रत... क्या कहलाता है वह? आन्दोलन। सबको अणुव्रत दे। मिथ्यादृष्टि हो, उसे भी अणुव्रत दे। आहाहा! अणुव्रत का आन्दोलन। उसमें भी विवाद हो गया है। दो साधु अलग पड़ गये हैं। एक नगराज है बड़ा विद्वान। वह उसमें से—तेरापंथी में से अलग पड़ गया। उसकी उल्टी लाईन देखकर। उसकी लाईन बहुत उल्टी। उसके गुरु भिखनजी से भी उल्टी। एक महेन्द्र है। दोनों बड़े होशियार। दोनों साधु तेरापंथी में से अलग पड़ गये। अपने तेरापंथी का था, गोवलिया, याद है? तुम्हारे रायचन्द गोवलिया। प्रेमचन्दभाई! तुम्हारे रायचन्द गोवलिया और दूसरे क्या? ओघड? ओघड गोवलिया। ये दोनों। प्रेमचन्दभाई आये है

गोवलिया। चूडा से। परन्तु इनके पिता जो हैं काका, वे ओघड गोवलिया अलग और वे ओघड अलग। रायचन्द गोवलिया और ओघड गोवलिया। वे आगे रहते हैं वे। वे सब तेरापंथी थे। खबर है न सब खबर है। बहुत वर्ष (हुए)। (संवत्) १९७१ के वर्ष से चूडा आये थे। १९७१ के वर्ष में पहले चूडा आये थे। दीक्षा १९७० में (ली, पश्चात्) तुरन्त आये थे। आहाहा! वहाँ हमारे छोटे भाई का विवाह हुआ था न तो दर्शन करने आया था। वहाँ चूडा १९७१ के वर्ष की बात है। फिर मर गया। ७१ में विवाह और ७३ में मर गया। दो वर्ष का विवाह। वह चूडा आये थे। ७१ की बात है। तब भाई ने नियम लिया था। गुलाबचन्द वोरा और उसके पिता का नाम क्या? गुलाबचन्द के पिता का नाम। छगनभाई? उसने पहले नियम लिया था, फिर गुलाबचन्द ने लिया था। १९७१ के चैत्र महीने की बात है। यह तो बहुत वर्ष पहले। ६२ वर्ष हुए। आहाहा! यह सब बाहर की बातें। व्रत और यह और यह। मानो धर्म हो गया। बापू! मार्ग अलग, भाई! यह तो तेरापंथी की बात चलती थी। रायचन्द गोवलिया तेरापंथी थे। तथापि हमारे प्रति उन्हें प्रेम था, हों! ओघड गोवलिया और रायचन्दभाई पीछे पड़ गये। वृद्ध (थे)। पोपटभाई थे न? उनके पिताश्री? सबको प्रेम था। सबको पहिचानते थे। उपाश्रय के साथ सब... तुरन्त ही वह। वहाँ १९७१ में पहले आये थे। फिर तो अन्तिम १९७८ में आये थे सम्प्रदाय में। आहाहा!

कर्मबन्ध कर्ता है। रागी होने से कर्मबन्ध कर्ता है। रागी क्यों? दया, दान, व्रत का भाव है, वह राग है और राग की जिसे रुचि है, वह मिथ्यादृष्टि रागी है। और **रागी होने से कर्मबन्ध कर्ता है।** आहाहा! उसे संवर-निर्जरा तो नहीं परन्तु कर्मबन्ध का कर्ता है। आहाहा! विशेष है परन्तु अब बाद में....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक - ०३-११-१९७७, कलश-१३७, प्रवचन-१३९

कैसा है मिथ्यादृष्टि जीव ? सूक्ष्म विषय है, अपूर्व विषय है। '**अयं अहं स्वयं सम्यग्दृष्टिः जातु मे बन्धः न स्यात्**' मिथ्यादृष्टि अर्थात् ? कि जिसे वह रागभाव है पुण्य का, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव है, उस राग की जिसे रुचि है और उस राग से मुझे लाभ होगा, (ऐसा मानता है), उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। मिथ्यादृष्टि स्वयं **यह जो हूँ मैं, स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ,...** ऐसा मानता है। हम धर्मी हैं, व्रत करते हैं, अपवास करते हैं, भक्ति करते हैं, दान करते हैं तो हमको भगवान की श्रद्धा नहीं ? ऐसा अज्ञानी मानता है। हम सम्यग्दृष्टि हैं। हम भगवान को मानते हैं, देव को मानते हैं, गुरु को मानते हैं, शास्त्र को मानते हैं। व्रत पालते हैं। तो हम सम्यग्दृष्टि नहीं ? ऐसा अज्ञानी मानता है। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! चाहे तो व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे या देव-गुरु-धर्म को माने, वह तो सब रागभाव है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! वह तो विकल्प है, वृत्ति का उत्थान है। उसमें जिसकी रुचि और प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि फिर माने कि हम तो धर्मी नहीं ? ऐसा करते हैं।

वह मिथ्यादृष्टि जीव **त्रिकाल ही अनेक प्रकार का विषयसुख भोगते हुए भी हमें तो कर्म का बन्ध नहीं है।** ऐसा कहे। हम धर्मी हैं, हम समकिती हैं, हम पर में प्रेम रखकर विषय के सुख भोगें तो हमको बन्ध नहीं।—ऐसी अज्ञानी दलील करता है। आहाहा!

'**इति आचरन्तु**' **ऐसे जीव ऐसा मानते हैं तो मानो...** यह अर्थ किया है। इसमें अर्थ ऐसा किया है। '**इति आचरन्तु**' ऐसा मानो तो मानो। राग की क्रिया करता है और राग की रुचि में प्रेम से पड़े हैं और कहते हैं कि हम सम्यग्दृष्टि हैं। आहाहा! ऐसा मिथ्यादृष्टि है (और) ऐसे तुम सम्यग्दृष्टि हो, तुम मानो तो मानो। '**आचरन्तु**' का अर्थ ऐसा किया। और संस्कृत टीका तथा जयचन्द्र पण्डित में अर्थ ऐसा किया है कि '**आचरन्तु**' महाव्रत पालन करो। पंच महाव्रत, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यह पंच महाव्रत का भाव राग है। आहाहा! ऐसा कठिन काम। यह महाव्रत पालो और शास्त्र का अध्ययन करो। लाखों-करोड़ों पुस्तकें और शास्त्र पढ़ो तो वह सब राग है।

आहाहा! क्योंकि उसकी बुद्धि पर्याय वर्तमान अंश पर और वर्तमान राग के भाव पर उसकी रुचि और उसका झुकाव वहाँ है। इसलिए उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि कहा है। आहाहा! वह पंच महाव्रत पालता हो, वह राग है, वह तो आस्रव है। पंच महाव्रत तो आस्रव है। शास्त्र अध्ययन करता हो तो शास्त्र अध्ययन करना, वह परसन्मुख के लक्ष्यवाला विकल्प-राग है। ग्यारह अंग का ज्ञान करे, नौ पूर्व की लब्धि प्रगटे, वह क्या चीज़ है? उसे तो राग में पुण्य की क्रिया में प्रेम है और वह मानता है कि हम सम्यग्दृष्टि हैं।

मानो, तथापि उनके कर्मबन्ध है। तो भी उसे मिथ्यात्व का कर्मबन्धन है। ऐसा कठिन है। नये लोगों को तो यह सुनते हुए... यह तो कोई अनजानी बात नहीं। हमने तो लाखों लोग देखे हैं न! यहाँ तो साधु नाम धरावे दिगम्बर, पंच महाव्रत पालन करे, तो भी उसे राग में प्रेम है, यह महाव्रत का भाव, वह राग है और राग में उसकी रुचि है, दृष्टि उसमें वहाँ है; इसलिए उसे मिथ्यादृष्टि कहा गया है। आहाहा! पानाचन्दभाई! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! भाई आये हैं। प्रेम से आये हैं। ऐसा मार्ग है, बापू!

अरेरे! कहते हैं, अनन्त काल से इसने अन्तर चिदानन्दस्वरूप आत्मा का, सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव ने परमेश्वर ने अन्दर वस्तु आत्मतत्त्व जो शुद्ध आनन्दकन्द, अनन्त बल और अनन्त आनन्द का घर, उसके सन्मुख इसने एक सेकेण्ड कभी नजर नहीं की। आहाहा! यह भगवान शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द, जिनेश्वर सर्वज्ञ वीतरागदेव ने देखा वह। अज्ञानी दूसरे आत्मा-आत्मा करते हैं परन्तु उन्होंने देखा नहीं, इसलिए उनका आत्मा सच्चा नहीं। यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ने जो आत्मा को देखा, प्रत्येक आत्मा को देखा, वह आत्मा तो शुद्ध आनन्दघन देखा। अन्दर साथ में जो दया, दान के विकल्प हैं, उसे तो पुण्यतत्त्व रूप से भिन्न तत्त्व देखा। आहाहा! अज्ञानी उस भिन्न तत्त्व को अपना तत्त्व 'वह मैं हूँ' ऐसा मानता है। आहाहा! दृष्टि पर्याय पर है। पर्याय अर्थात्? त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है, उस पर दृष्टि का अभाव है और वर्तमान पर्याय अर्थात् प्रगट दशा और राग दया, दान आदि पर उसकी दृष्टि है। इसलिए वह पर्यायबुद्धि—मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह कहा न पहले। बात तो हो गयी। यह पर्याय-वर्तमान अवस्था राग—उसके पीछे प्रभु चैतन्य ध्रुव अनादि-अनन्त है। यह तो पलटती अवस्था है। पलटती, जिसे भगवान उत्पाद-व्यय कहते हैं। परन्तु अन्दर ध्रुव जो अनादि-अनन्त चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु आत्मा, उस पर तो इसने दृष्टि की नहीं। आहाहा! और इसकी नजरों में यह निधान जब तक न आवे, तब तक वह मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकनेवाला, परिभ्रमण करनेवाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म का काम है या आत्मा का काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म वह कहाँ होता होगा? धर्म, वह आत्मा धर्मी है वस्तु, उसमें धर्म है—धारण की हुई चीज़। अनन्त ज्ञान। जिसका ज्ञान—जानना वह बेहद अनन्त है। पर्याय में अल्पज्ञता है। वस्तु में अनन्त बेहद अपरिमित अनन्त ज्ञान आत्मा में है। जिसे अनन्त आनन्द है, अनन्त शान्ति है, अनन्त ईश्वरता प्रभु आत्मा में भरी है। एक ईश्वर नहीं, ऐसी अनन्त ईश्वरता आत्मा में भरी है। ऐसे द्रव्यस्वभाव की दृष्टि बिना एक समय की पर्याय में महाव्रत का आचरण करो, ग्यारह अंग पढ़ो, वह सब पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। ऐसी बात है। प्रभु! दूसरों को कठिन लगे, क्या हो? पानाचन्दभाई कहते थे कि मैं सुनने जाऊँ परन्तु वहाँ ऐसी बात तो नहीं आती थी। नहीं? डॉक्टर। बात सच्ची। बात सच्ची, भाई! सब हमने देखा है न बापू यह तो। स्थानकवासी में सब देखा है, यह तो तुमको खबर ही है। आहाहा! बापू! यह मार्ग कोई प्रभु का अलग है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह राग के रुचिवाले, भले यह दया, दान, व्रत के परिणाम हों परन्तु वह राग है। वह राग लोगों को नहीं बैठता। व्रत है, वह संवर है और अपवास है वह निर्जरा है—ऐसा अज्ञानी मानते हैं। प्रभु ऐसा कहते हैं, तत्त्वार्थसूत्र में और समयसार में, कि जो कुछ उपवास करने की वृत्ति उठती है, वह सब राग शुभ है और व्रतादि के भाव पंच महाव्रत के, शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे, दया का भाव अहिंसा का, पर को नहीं मारने का रखे, वह सब भाव तो भाई! राग की क्रियावाला भाव है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव... आहाहा! परमेश्वर का तो अनादि का यह पुकार है, परन्तु उसे गिना नहीं। ननूर हो गया है, ननूर। ननूर नहीं कहते? लोगों को बहुत मारे वहाँ

कहे, ननूर हो ? ननूर अर्थात् नूर—तेज नहीं होता। चैतन्य का तेज नहीं होता। वह बाई बहुत ऐसी हो न मारे फिर उंहकारा नहीं करे। तब कहे, ननूर है ? ननूर कहते हैं ? निंभर कहे परन्तु ननूर कहते हैं। एक भाषा है। निंभर कहते हैं और ननूर भी कहते हैं। यहाँ तो सब सुना हुआ और देखा हुआ है न घर में। ननूर-ननूर अर्थात् कि न—नहीं, नूर। चैतन्य का तेज चाहिए, वह न हो और मात्र राग और द्वेष में पड़ी है, मुख सी लेती है बोलती नहीं कुछ ? ऐसे मारे। यह तो सब देखा है। नजरों से देखा है, सुना हुआ है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते हैं कि ऐ मीढडा! तेज हीन! तुझे इतना-इतना उपदेश अनन्त काल से तीर्थंकर का, मुनियों का मिले कि तेरी चीज़ में यह दया, दान के विकल्प नहीं हैं और है तो तुझमें अनन्त आनन्द और शान्ति पड़ी है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! उसका तुझे स्वीकार नहीं और इस राग का तुझे स्वीकार है और ऐसा मानता है कि हम धर्मी हैं। मानो। कौन इनकार करता है ? आहाहा! वह कर्मबन्धन को करता है। अनन्त संसार के कर्म को वह तो बाँधता है। आहाहा! ऐसी बात सुनी जाये नहीं। मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा!

बाई विधवा होती है न ? तब दुनिया (उसे) दुखियारी कहती है। ऐसा है न ? पानाचन्दभाई! परन्तु वास्तव में वह दुखियारी नहीं। वह तो इतनी निवृत्ति मिली है। दुखियारी तो उसे प्रभु कहते हैं कि जिसे अन्दर राग का, पुण्यादि का भाव आया और उसे मेरा माना, वह दुखिया, मिथ्यादृष्टि दुखिया प्राणी है। दुनिया से उल्टा है, बापू! आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा है। यह गाथा ही ऐसी आयी है न! आहाहा! पंच महाव्रत और बारह व्रत और यात्रा, भक्ति, पूजा, दान और दया करो, परन्तु तुम इस राग की क्रिया में धर्म माननेवाले हो, इसलिए मिथ्यादृष्टि हो। आहाहा! और इसलिए उस अनन्त संसार का बन्धन है। अरर्र! यह बात। अब वे माने धर्म; यहाँ कहते हैं कि तुझे अनन्त संसार बढ़ता है। क्योंकि राग की रुचि का राग का तुझे प्रेम है। प्रभु का आनन्द के नाथ का स्वभाव जो द्रव्य है, उसके सामने तो तू देखता नहीं और इस राग की क्रिया के सन्मुख देखकर प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। पुनातर! ऐसी बाते हैं।

ऐसे जीव ऐसा मानते हैं तो मानो, तथापि उनके कर्मबन्ध है। आहाहा! अरे! बातें सुनना भी मुश्किल, बापू! यह अनादि का दुखिया। यह वैसे करोड़ोंपति, अरबोंपति, भगवान तो उसे रंक-भिखारी कहते हैं। अन्तर के आनन्द और शान्ति की लक्ष्मी अन्दर पड़ी है। बेहद आनन्द पड़ा है। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। उसकी लक्ष्मी की तो खबर नहीं होती और यह बाहर की लाओ... लाओ... लाओ... लाओ... लाओ... बड़ा भिखारी माँगनेवाला है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, जैन का साधु हुआ हो। दिगम्बर साधु, हों! आहाहा! वस्त्रवाले साधु को जैन सिद्धान्त में साधु नहीं कहते। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह दिगम्बर साधु होओ, वस्त्र का टुकड़ा न रखो, पंच महाव्रत पालन करो और छठ-छठ, अठम-अठम के अपवास करके पारणा करो, रूखा आहार करो, परन्तु वह सब क्रिया राग की है और उसमें राग के रस में तुझे प्रेम है, भले धर्मी नाम धरावे, परन्तु तू कर्मबन्धन करेगा। सुजानमलजी! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : उपयोगी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोगी है। आहाहा! अरेरे! सत्य बात कान में न पड़े। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ का कथन सत्य क्या है, वह कान में न पड़े, उस जीव का क्या होगा? भाई! बाहर में कोई शरण नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि वह ऐसा नाम धरावे तो धराओ। और '**उत्तानोत्पुलकवदनाः**' **ऊँचा कर फुलाया है गाल मुख जिन्होंने,...** हम धर्मी हैं। महीने-महीने के अपवास करते हैं। सब ऐसा करते हैं... आहाहा! परन्तु अब क्या है? भाई! है? **ऊँचा कर फुलाया है गाल मुख...** मुख... बस, ऐसे, आहाहा! महीने-महीने के अपवास करते हैं, पारणा में रूखा खाते हैं, रस छोड़ते हैं, घी और दूध नहीं खाते हैं, खाखरा और छाछ पीते हैं और तुम हमको कहो कि धर्मी नहीं। फूला तू तेरा मुँह। आहाहा! प्रभु! तुझे राग का भाग है, उसकी खबर नहीं। वह भाग तेरा नहीं। उस राग रहित अन्दर चीज़ है प्रभु चैतन्य आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द—सत्-शाश्वत् चीज़, ज्ञान और आनन्द का घर अन्दर पड़ा है। भाई! तूने सुना नहीं।

'अब हम कबहू न निजघर आये।' निजघर इसने कभी देखा नहीं। भजन में आता है। 'अब हम कबहू न निजघर आये, परघर भ्रमत अनेक नाम धराये।' मैंने दया पालन की, मैंने व्रत किये, मैंने अपवास किये, ऐसी परघर की बातें अनेक प्रकार के मैंने नाम धराये। 'अब हम कबहू न निजघर आये।' आहाहा! निजघर अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु। सर्वज्ञ केवली जिनेन्द्रदेव ने जो केवलज्ञान और अनन्त आनन्द प्रगट किया, वह कहाँ से आया? कहीं बाहर से आता है? वह अन्दर में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान पड़ा है। आहाहा!

छोटी पीपर में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है। यह छोटी पीपर नहीं कहते? छोटी पीपर। घोंटे चौसठ पहर। चौसठ पहर घोंटे अर्थात्? चौसठ अर्थात् कि रुपया अर्थात् सोलह आना। उसे चौसठ पहर घोंटे तो चौसठ पहरी चरपराहट बाहर आवे। वह कहाँ से आयी? पत्थर में से आयी है? अन्दर में पड़ी है, वह आयी है। आहाहा!

इसी प्रकार इस भगवान आत्मा में केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द जो परमात्मा को प्रगट होता है, प्रभु! वह कहाँ से आया? भाई! तुझे खबर नहीं। तेरे स्वरूप में पूर्ण आनन्दादि अन्दर भरा है। वह अतीन्द्रिय आनन्द का दल है, अतीन्द्रिय ज्ञान का कन्द है। आहाहा! समझ में आया?

शक्करकन्द नहीं कहते बहुत बार? शक्करकन्द नहीं होता? शक्करिया। पानाचन्दभाई! शक्करिया। वह शक्करकन्द देखो तो ऊपर की लाल छाल जरा। शक्करकन्द-शक्करकन्द समझते हो, भाई? शक्करकन्द होता है न? उसके ऊपर की लाल छाल होती है न? लाल छाल न देखो तो अन्दर शक्करकन्द है। शक्कर अर्थात् मिश्री की मिठास का पिण्ड। इसलिए उसे शक्करकन्द कहा है। शक्कर अर्थात् मिश्री। मिश्री की मिठास का पिण्ड। ऊपर जरा लाल छाल है, उसे न देखो तो (शक्कर का कन्द है)।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह लाल छाल है। आहाहा! उसे न देखा तो अन्दर में आनन्द का कन्द प्रभु है। अरे! कहाँ बैठे? यह बात सुनने को मिलती नहीं और सुनने को मिले तो कहे ऐ... ऐ... ऐ... ऐ... यह तो

एकान्त है... एकान्त है.. एकान्त है... ऐसा करके निकाल दिया बेचारे ने। क्या करे? समझ में आया? इसका दृष्टान्त देते हैं। नारियल का देते हैं।

नारियल नहीं? नारियल। नारियल समझते हो? श्रीफल। श्रीफल होता है न? नारियल। नारियल के ऊपर की छाल, वह अलग चीज़ है। काचली। काचली को हिन्दी में क्या कहते हैं? नरेटी। वह काचली भिन्न चीज़ है, छाल भिन्न चीज़ है और काचली के ओर की लाल छाल है। खोपरापाक महिलायें बनावे तब उसे घिस डालती हैं न? लाल छाल। वह लाल छाल, काचली और छिलका, उनसे अन्दर भिन्न सेर-डेढ़ सेर का मीठा खोपरा, गोला सफेद और मीठा, उसे नारियल कहते हैं।

इसी प्रकार इस देह में... यह देह है, वह ऊपर की छाल है। कर्म अन्दर आठ कर्म वह काचली है और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध का भाव, वह लाल छाल है। उस लाल छाल के पीछे श्रीफल का गोला सफेद और मीठा है; इसी प्रकार आत्मा निर्मल और आनन्द का दल पड़ा है अन्दर। परन्तु कैसे (जँचे)? भाई! कभी खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? इसके ऊपर नजर नहीं और मात्र उस लाल छाल पर नजर। यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे लाल छाल / छिलके हैं। आहाहा! कठिन काम।

यह यहाँ कहते हैं, भले मुख फुलाओ। हम धर्मी हैं, ऐसा मानो तो कौन इनकार करे? बापू! हो तो मिथ्यादृष्टि। आहाहा! अरे रे! अनन्त अवतार हुए। अनन्त-अनन्त अवतार कौवे, कुत्ते के... आहाहा! नरक-निगोद में (गया), भाई! तू भूल गया। तू अनादि का प्रभु है न! तो तू कहाँ रहा? यह रहा चार गति में दुःखी होकर भटकता रहा। नरक के, मनुष्य के, पशु के, स्वर्ग के सब चारों गति के दुःख। आहाहा! ऐसे दुःख के अनन्त भव किये, प्रभु! तू थका नहीं। तुझे थकान नहीं लगी। आहाहा! अब तो समझ, कहते हैं। यह कहेंगे अभी। १३८ कलश में कहेंगे। आहाहा! अब तो अवसर आया, प्रभु! अब समझ तो सही! आहाहा! अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है न प्रभु तू। अतीन्द्रिय आनन्द का दल है तू। यह इन्द्रिय के विषय में सुख मानता है, वह तो कल्पना, राग और जहर है। आहाहा!

यहाँ व्रतादि तप का भाव शुभ, उसे प्रभु तो जहर कहते हैं। समयसार, मोक्ष अधिकार। राग है, इसलिए जहर है। भगवान अन्दर राग से भिन्न अमृत का सागर पड़ा है। आहाहा! उसकी नजर करता नहीं, उसे स्वीकार करता नहीं, उसकी ओर का सत्कार और स्वीकार (करता) नहीं और इस राग की क्रिया का स्वीकार (करके) मानता है कि धर्म करते हैं और (मुख) भले फुला, परन्तु तू अनन्त संसार में से निकल नहीं सकेगा। समझ में आया? कहो, कालीदासभाई! ऐसी बातें हैं। यह पैसा-बैसा का क्या करना? करोड़ों रुपये और फैलाव बहुत हो न, दो-पाँच-दस-पच्चीस करोड़ (हों)। धूल है मिट्टी। वहाँ कहाँ सुख था? सुख तो यहाँ (आत्मा में) है। उसमें से सुख आता होगा? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मुख फुलावे तो फुला। है? **अथवा कैसे हैं? 'समितिपरतां'** आहाहा! साधु होकर ईर्यासमिति से देखकर चले, विचारकर बोले। वह सब क्रियायें राग की हैं। आहाहा! उसके लिये बनाया हुआ आहार न ले, ऐषणासमिति से (निर्दोष आहार ले)। तो वह भी विकल्प और राग है। आहाहा! इन पाँच समिति में... कहते हैं, **'समितिपरतां आलम्बन्तां' मौनपना अथवा थोड़ा बोलना अथवा अपने को हीना करके बोलना,...** कितने ही ऐसे होते हैं कि बहुत थोड़ा बोलते हैं, इसलिए मानो कि ओहोहो! मौन रखकर कम बोले इसलिए... उसमें क्या? क्या भला हुआ? धूल। आहाहा! बनिया व्यापार में नहीं कहते? कुछ भला हुआ? ऐसा कहते हैं बनिया। नहीं? कुछ भला हुआ? भला अर्थात्... इसी प्रकार इसमें क्या भला हुआ तेरा? कहते हैं। आहाहा! यह तो सब राग की क्रिया फुला मन, मान भले, माने तो कौन इनकार करता है तुझे? वीतराग तो तुझे कहते हैं कि तू मिथ्यादृष्टि है। तेरा नाथ अन्दर विराजता है सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी तो तुझे खबर नहीं, उसका तुझे स्वीकार नहीं, उसका तुझे सत्कार नहीं, उसका तुझे आदर नहीं और राग की क्रिया जो शुभ की, जो स्वभाव से विरोध है, उसका तुझे आदर है, सत्कार है, स्वीकार है, माने कि मैं धर्मी हूँ परन्तु कर्मबन्धन (करके) एकान्त संसार बढ़ाता है। आहाहा! पानाचन्दभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! ऐसा सुना नहीं जिन्दगी में। आहाहा! है अन्दर? है या नहीं? यह सोनगढ़ का है? यह शास्त्र किसका है?

मुमुक्षु : सेठ होते तो कहते कि सोनगढ़ का है। कहीं सत् नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्लोक तो पहले के हजारों वर्ष के हैं। अमृतचन्द्राचार्य के। इसके मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य के २००० वर्ष पहले के हैं। और यह अर्थ किया, वह २०० वर्ष पहले के राजमलजी हैं, उन्होंने किया है। आहाहा!

कहते हैं **मौनपना...** रखो! बोलना नहीं। मौन। बारह-बारह महीने तक मौन रहे, परन्तु उससे क्या हुआ अब इसमें? यह तो जड़ की क्रिया है तो भाषा नहीं हुई। उसमें मौनपने में धर्म कहाँ आया? आहाहा! वह जामनगर में था न? नहीं? मौन रहता था। प्रोफेसर नहीं। नाम भूल गये। कैसा नाम?

मुमुक्षु : भंसाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : भंसाली नहीं। वह नहीं। बाहर जामनगर बाहर में थे एक, नहीं? ब्राह्मण थे और फिर साधु हो गये हैं। उसका बड़ा यज्ञ किया था। जामनगर के बाहर। नाम भूल गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या नाम?

मुमुक्षु : महाराज थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह, यह, वह बाहर थे और बड़ा यज्ञ किया था। बहुत मौन रहते थे। काष्टमौन। उसमें क्या भला हुआ? जामनगर के बाहर थे। उनका नाम भूल गये। गुजर गये। बहुत वर्ष से जानते थे न! जामनगर तो बहुत वर्ष से आते थे न! वे थे। एक ब्राह्मण महाराज थे। मौन रहे और फिर लोग एकत्रित हों। बड़ा यज्ञ कराया था। लाखों रुपये खर्च किये थे। बहुत लाखों खर्च किये थे। उसमें क्या हुआ? बापू!

यहाँ उद्यापन करे न बड़े वर्षीतप करके? पाँच-दस-पच्चीस लाख खर्च करे। उसमें क्या भला हुआ? वहाँ धर्म कहाँ आया? वर्षीतप में तो अपवास में तो करे। राग की मन्दता की हो तो मिथ्यादृष्टिसहित पुण्य का भाव है। आहाहा! तेरा नाथ अन्दर है, उसकी तो तुझे नजर नहीं। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! जिसका एक समय में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, दर्शन—ऐसी अनन्त

शक्तिरूप गुण का भण्डार बड़ा है। अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम प्रभु अन्दर है। अरे! प्रभु! तुझे खबर नहीं। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि अनन्त गुण का गोदाम आत्मा है, भाई! तेरे गोदाम तो सब समझने जैसे हैं। आहाहा! ऐसा जीव स्वरूप, जो आत्मा का त्रिकाली स्वरूप, शुद्ध चैतन्य को अन्तर में दृष्टि में लिये बिना (सब व्यर्थ है)। आहाहा! भगवानस्वरूप विराजता है स्वयं, उसका अनादर और राग की क्रिया / विभाविक क्रिया जो स्वभाव से विरुद्ध, उसका आदर। मान तू तुझे धर्म मान। संसार में भटकेगा, मरेगा। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, बापू! अभी की शैली से अलग प्रकार है। अभी की शैली तो सर्वत्र सुनने में यही मिले—व्रत करो, अपवास करो, उपधान करो, यात्रा करो, मन्दिर बनाओ, गजरथ चलाओ, बड़ी शोभायात्रा निकालो।

मुमुक्षु : मुनियों को आहार दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनियों को आहार दो। अभी तुम मुनि हो या नहीं, इसकी तुमको खबर नहीं। देनेवाला मुनि मानकर देता है तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भगवान! बहुत अन्तर... बहुत अन्तर।

मुमुक्षु : यह कसौटी बहुत कठोर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ऐसा है। जिसके एक क्षण में सम्यग्दर्शन... जिसका स्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, उसके ज्ञान में वह ज्ञेय पूर्ण जो आवे और रागादि परज्ञेयरूप से जिसमें भासित हो, ऐसी जो सम्यक् दशा और सम्यग्दर्शन, वह अलौकिक चीज़ है। उसके बिना जन्म-मरण का अन्त कभी नहीं आयेगा, बापू! आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं।

'**समितिपरतां**' देखा! '**समितिपरतां**' आहाहा! **समानरूप सावधानपना...** बोलना नहीं, कम बोलना, मौन रखना। आहाहा! इससे क्या हुआ? बापू! वह तो जड़ की क्रिया पूरी... आहाहा! और कदाचित् उसमें राग की मन्दता रखी हो शुभभाव, वह भी राग है। आहाहा! ऐसी क्रिया में धर्म करते हैं, ऐसा तू मानता है तो मान। समिति में पर में बराबर तत्पर। ऐषणासमिति, देखकर चले, देखकर आहार ले, निर्दोष ले। उसके लिये बनाया हुआ प्राण जाये तो भी न ले। ऐसी समिति पालन करे तो पाल, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना वह सब तेरा व्यर्थ है। आहाहा! है?

उसको अवलम्बन करते हैं अर्थात् सर्वथा प्रकार इसरूप प्रकृति का स्वभाव है... वह तो प्रकृति का स्वभाव है। आहाहा! राग मन्द हुआ, वह प्रकृति का स्वभाव है। तेरा स्वभाव नहीं, प्रभु! ऐसी बातें। आहाहा! लाखों-करोड़ों लोग कुछ माने और यह कुछ बात! अब इसमें भटकन ही खड़ी होगी न! आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! अन्तर निधान पड़ा है बड़ा। आहाहा! अनाकुल आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है। अनाकुल अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर आत्मा है। आहाहा! अनाकुल ईश्वरता की शक्ति का भण्डार है। उस ओर की नजर बिना तेरी नजर वर्तमान पर्याय की क्रिया और राग पर है। मानो तत्पर होकर। है तो मिथ्यादृष्टि, कहते हैं।

'**समितिपरतां**' पाँच समिति में तत्पर रहे बराबर। '**परतां**' है न? और पाँच समिति का अवलम्बन ले। देखकर चले। परन्तु वह सब क्रिया तो राग की है। आहाहा! अरेरे! ऐसी बात सुने कहाँ? यह वह जैनधर्म का ऐसा मार्ग होगा? ऐसा सुना था? पानाचन्दभाई! यह तो उपाश्रय के साथ रहनेवाले। आहाहा! बापू! मार्ग अलग, भाई! इसने करवट बदली नहीं। यह राग के पक्ष में पड़ा है। यह स्वभाव के पक्ष में आया नहीं। आहाहा! यह रात्रि में सोते हैं न? एक ओर (सो रहा हो) फिर करवट बदले। करवट कहलाती है। इसी प्रकार इसने पर्यायबुद्धि में से करवट बदली नहीं, स्वभाव सन्मुख गया नहीं। आहाहा!

'**समितिपरतां आलम्बन्तां**' आलम्बो। आलम्बन लो भले। परन्तु वह तो प्रकृति का स्वभाव है, तेरा नहीं—आत्मा का नहीं। आहाहा! गजब बातें हैं। प्रभु! तू कौन है? तू तो ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु है न तू? तुझे तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? और पामर चीज़ जो रागादि, उसकी तुझे महिमा और सत्कार। आहाहा! हैरान हो गया, प्रभु! तू। आहाहा! समझ में आया? वाड़ा में रहे तो वाड़ा में रहने न दे।

मुमुक्षु : जंगल में रहे तो समझ में आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो जंगल है। जिसे मानना हो वह मानो, बापू! मार्ग यह है। आहाहा! हमारे तो बहुत आया था न! (संवत्) १९८० के वर्ष में से थोड़ी प्ररूपणा

की थी बाहर में कि यह सम्प्रदाय की दृष्टि, वह सम्यग्दर्शन है—ऐसा नहीं है, कहा। वस्तु दूसरी है। वहाँ खलबलाहट-खलबलाहट हो गयी। (संवत्) १९८० की बात है। बोटाद में चातुर्मास था। ८०। ५३ वर्ष हुए। चातुर्मास पूरा हुआ फिर अन्त में (कहा)। मूलचन्दजी हमारे गुरुभाई थे। (उन्होंने) सबको इकट्ठा करके (कहा) देखो! भाई! यह तुमने चाहे जो सुना। अपनी श्रद्धा तो गणधर जैसी है, समकिती हैं। अब अपने व्रत और तप करना, वह चारित्र है। ऐसा कहकर सबको समाधान किया। यह तो ५३ वर्ष पहले की बात है। लोग तो हजारों। सभा में-व्याख्यान में पन्द्रह सौ-पन्द्रह सौ लोग, वहाँ बोटाद में तो। १९८०, १९७७ का चातुर्मास, १९७९, १९८० का सब वहाँ किया। आहाहा! खलबलाहट-खलबलाहट हो गयी। यह तो १९८० (की बात हुई)।

पश्चात् १९८५ में तो सभा बड़ी। पन्द्रह सौ लोग वहाँ। ३०० घर। अपने दशाश्रीमाली के घर। रायचन्द गाँधी और बड़े गृहस्थ पैसेवाले। विशाश्रीमाली में नारायण भुदर, वे संघ के सेठ थ। नारायण भुदर, बोटाद। सब व्याख्यान में आते थे। उपाश्रय में समाते नहीं। फिर उस दिन बात की। धीरे से देकर। १९८५ की बात है। कहा, यह पंच महाव्रत के परिणाम हैं, वे आस्रव हैं। पानाचन्दभाई! ५३ वर्ष पहले बोटाद में कहा। और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है। धर्म से बन्धन नहीं होता और जिस भाव से बन्धन हो, वह भाव धर्म नहीं। आहाहा! सब सेठिया बैठे थे। रायचन्द गाँधी। बड़ी सभा। उसमें भी हमारा मान बड़ा था न! सम्प्रदाय में तो। पोपटभाई और सब आते थे तुम्हारे पिता। चुडा। सबको पहिचानते हैं न? १९७१ से जानते हैं चुडा को तो। १९७१ में पहले आये थे। आहाहा!

एक पुलिस था। व्याख्यान छपा था। वह बरामदा है न बाहर? वहाँ बैठा हुआ। अब बदल दिया जरा। बाहर बरामदा था। पुलिस ने सब सुना। कहे, महाराज! तुम यह सबको साधु कर दोगे तो फिर उन्हें आहार देनेवाला कौन रहेगा? एक पुलिस ने ऐसा प्रश्न किया। चूडा में। बापू! यह प्रश्न ऐसा नहीं होता। सज्जन व्यक्ति ऐसा कहे, मैं करोड़पति होऊँगा, तो फिर बर्तन साफ करनेवाला कौन रहेगा? ऐसा विचारता होगा? यह तो उस दिन की बात है, हों! लगभग १९७८ का वर्ष होगा। आहाहा! लोग अन्दर

समावे नहीं, इसलिए बरामदे में बैठे सामने। सामने खीमचन्द वोरा की दुकान थी। खीमचन्द वोरी दुकान सामने थी। आहाहा!

यहाँ प्रभु कहते हैं, मार्ग अलग... आहाहा! जिसमें जन्म-मरण का अन्त आवे, बापू! (वह धर्म है)। इसके बिना सब बातें थोथी-थोथी हैं। यहाँ तो कहते हैं, पंच महाव्रत पालन करे और ग्यारह अंग के शास्त्र के करोड़ों-अरबों श्लोक जानो, कण्ठस्थ करो और पाँच समिति में तत्पर रहो, तो भी वह संसार है, राग की क्रिय है। आहाहा! सुना जाये नहीं, हों! जगत को कठिन पड़े। क्या हो? लोगों ने और साधुओं ने ऐसी प्ररूपणा की है और सुननेवाले को वही मिला है बेचारे को। सब प्ररूपणा यही करे— यह करो, व्रत करो, अपवास करो, यात्रा करो।

भगवान यहाँ तो कहते हैं कि पाँच समिति में भले तत्पर हो। आहाहा! है? **सर्वथा प्रकार इसरूप प्रकृति का स्वभाव है जिनका, ऐसे हैं।** वह तो प्रकृति का स्वभाव। वह कहीं तेरा धर्म नहीं, कहते हैं। **तथापि रागी होने से मिथ्यादृष्टि हैं,...** परन्तु वह राग का प्रेम है न, वह क्रिया का राग है, विकल्प है। उसका प्रेम है, राग की रुचि है और स्वभाव की अरुचि है। आहाहा! त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, प्रभु! उसके प्रति अरुचि है और राग की तुझे रुचि है। मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। तुझे जैन की खबर नहीं है। आहाहा!

कर्म का बन्ध करते हैं। है? आहाहा! **तथापि रागी होने से...** पाँच समिति में तत्पर, पंच महाव्रत पलन करे, तो कहते हैं, रागी है। क्योंकि वह विकल्प है, वह तो वृत्ति है। वह कहाँ आत्मा का स्वभाव है। आहाहा! **कर्म का बन्ध करते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई जीव पर्यायमात्र में रत होते हुए...** देखो! **प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं...** देखो! क्या कहते हैं? **जीव पर्यायमात्र में रत...** पर्याय राग और पुण्य और दया, दान और वर्तमान पर्याय में रत है। अहाहा! द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाल है, उसकी तो उसे खबर ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? हिन्दी है या गुजराती? हिन्दी है। ठीक!

जो कोई जीव पर्यायमात्र में रत होते हुए प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं... आहाहा! जिसे यह पर्याय अर्थात् वर्तमान दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह पर्यय राग है। रागबुद्धि है, वह पर्यायबुद्धि है। आहाहा! है उसमें? ऐसा है। यह श्लोक तो ऐसा आया है। आहाहा!

जो कोई जीव... यह राग की क्रिया, अरे! राग क्या? वर्तमान ज्ञान का उघाड़ एक समय का है, वह पर्याय है—अवस्था है। उसकी जिसे रुचि है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! भगवान आत्मा एक समय की अवस्था के पीछे त्रिकाली सच्चिदानन्द आनन्दकन्द प्रभु विराजता है। उसकी तो जिसे नजर करने का समय नहीं, उसके सामने देखने का समय नहीं मिलता। आहाहा! अब ऐसी बातें।

कहते हैं, वह **प्रगट मिथ्यादृष्टि है...** है? प्रगट मिथ्यादृष्टि। गुप्त भी नहीं। उसकी प्ररूपणा में ही यह आता है। व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, उसमें से तुम्हें धर्म होगा। यह उसकी प्ररूपणा ही ऐसी मिथ्यादृष्टि की है, कहते हैं। आहाहा! पुनातर! ऐसी बातें हैं। **उनकी प्रकृति का स्वभाव है...** यह तो प्रकृति का स्वभाव है। राग मन्द करके अपवास किये, व्रत पालन किये, वह तो प्रकृति का स्वभाव है। वह कहीं भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु का वह स्वभाव नहीं। आहाहा!

हम सम्यग्दृष्टि, हमें कर्म का बन्ध नहीं, ऐसा मुख से गरजते हैं,... हम धर्मी हैं, हम धर्म करते हैं। हमको क्या श्रद्धा नहीं भगवन की? हम समकिती हैं। भगवान को नहीं मानते हम? परन्तु भगवान को माने तो वह तो राग है। परमेश्वर को मानना, वह भी राग का भाग है। आहाहा! अरे! ऐसे बैठे कैसे? बापू! यह कहते हैं। **हम सम्यग्दृष्टि, हमें कर्म का बन्ध नहीं, ऐसा मुख से गरजते हैं,...** मुख से गरजे। बातें बड़ी-बड़ी करे कि आहाहा! हमने तो वर्षीतप किये, बाद में पिचहत्तर हजार रुपये खर्च किये। यह सेठानी ने किये थे न? जेसंग उजमशी ने, मिलवाला अहमदाबाद। यहाँ तो आये थे न! सब आते हैं न। जेसंग, सब सेठिया सब आ गये हैं न यहाँ। उसके सेठ मंगलभाई थे। उनकी बहू दूसरी नयी थी, उसने वर्षीतप किया था। वह तो करोड़पति व्यक्ति है। यहँ पालीताणा आये थे। लेकर... क्या कहते हैं? स्पेशल। पिचहत्तर हजार खर्च किये। पौण लाख। गृहस्थ व्यक्ति अब पौण लाख। गृहस्थ व्यक्ति। पिचहत्तर हजार क्या धूल, वहाँ गिन तो उसकी कहाँ है? परन्तु मानता है कि हमने धर्म किया, और साधु भी उन्हें आहाहा! फूलमाला पहनावे, यह करे, वह करे। सब प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये।

हमें कर्म का बन्ध नहीं, ऐसा मुख से गरजते हैं, कितने ही प्रकृति के स्वभाव के कारण मौन-सा रहते हैं,... मौन रहना आदि तो प्रकृति का स्वभाव है। राग का

स्वभाव है। वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! **कितने थोड़ा बोलते हैं।** बहुत थोड़ा बोले, इसलिए मानो कि... आहाहा! इसने बहुत त्याग किया। मौनपना सेवन करे तो लाभ हुआ। वह भी कैसा मौनपना? बापू! आहाहा! है? **सो ऐसे होकर रहते हैं जो यह समस्त प्रकृति का स्वभावभेद है।** वह तो कोई प्रकृति की मन्दता राग की हो, वही करावे। वह कहीं वस्तु का स्वरूप नहीं।

इसमें परमार्थ तो कुछ नहीं। है? पंच महाव्रत पालन करे, पाँच समिति में निर्दोष आहार ले। अभी तो उसके लिये किये हुए सब तैयार रखे। आहार लेने आवे न सवेरे, दूध करके रखे, चाय करके रखे। उसकी बात तो यहाँ है ही नहीं। यह तो बराबर समिति पालन करे, उसके लिये बनाया हुआ ले नहीं। महाव्रत अच्छे पालन करे, परन्तु तो भी वह परमार्थ नहीं है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा दिल्ली में कहाँ है? परमात्मा के घर की बातें हैं, बापू! जिनेन्द्रदेव वीतराग स्वभाव की बातें करनेवाले। राग की क्रियायें, वे परमार्थ मार्ग नहीं है। आहाहा!

जितने काल तक जीव पर्याय में आपापन अनुभवता है... यह उसका योगफल लिया। जितने काल तक वर्तमान दशा और वर्तमान दशा में राग की मन्दता की क्रिया, उस पर्याय में जितने काल तक रत है... आहाह! **उतने काल तक मिथ्यादृष्टि है,...** ऐसा है। **जितने काल तक जीव पर्याय में...** पर्याय अर्थात् अवस्था-हालत। द्रव्य ध्रुव है त्रिकाली प्रभु, उसमें उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। यह भगवान की वाणी। उसमें उत्पाद-व्यय है, वह पर्याय है; ध्रुव, वह त्रिकाली शक्ति का पिण्ड है पूरा। अब वह त्रिकाली वस्तु है, उसकी तो उसे खबर नहीं होती, उसकी नजर नहीं होती, उसका अनुभव नहीं होता और पर्याय, राग, वर्तमान दशा में रत है, आहाहा! उसमें **आपापन अनुभवता है...** देखा! वह राग की क्रिया मेरी है, मैंने की है, मुझे लाभदायक है, ऐसा अनुभव करता है।

मुमुक्षु : जो काम करना है, वह तो पर्याय में करना है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, परन्तु कौन सी पर्याय? निर्मल पर्याय। वह निर्मल पर्याय होती है कब? त्रिकाली द्रव्य का आश्रय ले तब। पर्याय के आश्रय से पर्याय नहीं होती। सूक्ष्म बात है, बापू! वर्तमान पर्याय के आश्रय से समकित पर्याय नहीं होती।

समकित वह पर्याय है, परन्तु वह त्रिकाली ज्ञायकभाव चिदानन्द प्रभु के आश्रय से समकित होता है। आहाहा! अब इसमें कहाँ मिलान करना? सम्प्रदाय में तो रहने न दे, खड़े रहने न दे, ऐसी बातें हैं, बापू! यह तो जंगल है। यह तो जंगल था। यह तो अब बस्ती बढ़ गयी। यहाँ तो भैंसे बैठते थे। बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई!

जितने काल तक जीव पर्याय... अर्थात् वर्तमान दशा। देखो! वर्तमान दशा— यह रागादि क्रिया, वह वर्तमान दशा और वर्तमान पर्याय एक अंश जो उघड़ा हुआ क्षयोपशमभाव है, वर्तमान पर्याय का अंश है, उसमें रत है, उसे **अनुभवता है, उतने काल तक मिथ्यादृष्टि है,...** पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि; द्रव्यबुद्धि समकितदृष्टि। द्रव्य अर्थात् क्या यह पैसा? अन्दर द्रव्य भगवान आनन्द का नाथ पड़ा है, भाई! तुझे खबर नहीं। जिसमें से केवलज्ञानी परमात्मा को केवलज्ञान, अनन्त आनन्द प्रगटा ही करता है। वह केवलज्ञान भी पर्याय है। वह पर्याय प्रगटा ही करे, ऐसी खान अन्दर है। आहाहा! अरे रे! कौन है ध्रुव? और क्या है? इसकी खबर नहीं होती। पर्यायबुद्धि इतना काल तो मिथ्यादृष्टि है। **रागी है...** जिसे राग की क्रिया में प्रेम है, वे सब मिथ्यादृष्टि रागी हैं। ओहोहो! जो परिचय में आवे, वह बात खोटी, कहते हैं और वह (अनुभव में) नहीं आता (वह सच)। **जितने काल तक जीव (वर्तमान) पर्याय में (और राग में) आपापन अनुभवता है, उतने काल तक मिथ्यादृष्टि है,...** उतने काल तक **रागी है,...** उतने काल तक नये अनन्त संसार का कारण **कर्म का बन्ध करता है।** आहाहा! यह १३७ श्लोक पूरा हुआ। आहाहा!

हम धर्मी हैं, हम धर्म करते हैं, वर्षीतप करते हैं, हमारे यह चलता नहीं, हमारे यह चलता नहीं। वह चाण्डाल का दृष्टान्त दिया है न? चाण्डालिनी के दो पुत्र। एक पुत्र ब्राह्मण ले गया। वह कहे, हमारे यह चलता नहीं, हमारे यह चलता नहीं, हमारे यह चलता नहीं। परन्तु है तो चाण्डालिनी का पुत्र। इसी प्रकार पुण्यपरिणाम शुभ है, वह चाण्डालिनी का पुत्र विभाव है। वह कहे, हमारे यह चलता नहीं, अमुक चलता नहीं, अमुक चलता है। परन्तु है कौन? चाण्डालिनी विभाव शुभभाव में तू है। आहाहा! विशेष कहेंगे, लो... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१३८

(मन्दक्रान्ता)

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ता:
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धा:।
एतैतेत: पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातु:
शुद्ध: शुद्ध: स्वरसभरत: स्थायिभावत्वमेति।।६-१३८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'भो अन्धा:' [भो] सम्बोधन वचन, [अन्धा:] शुद्धस्वरूप के अनुभव से शून्य है जितनी जीवराशि। 'तत् अपदं अपदं बिबुध्यध्वं' [तत्] कर्म के उदय से है जो चार गतिरूप पर्याय तथा रागादि अशुद्धपरिणाम तथा इन्द्रियविषयजनित सुख-दु:ख इत्यादि अनेक हैं, वह [अपदं अपदं] जितना कुछ है, कर्मसंयोग की उपाधि है; दो बार कहने पर, जीव का स्वरूप सर्वथा नहीं है, [विबुध्यध्वं] ऐसा अवश्य कर जानो। कैसा है मायाजाल? 'यस्मिन् अमी रागिण: आसंसारात् सुप्ता:' [यस्मिन्] जिसमें-कर्म का उदयजनित अशुद्धपर्याय में [अमी रागिण:] प्रत्यक्षरूप से विद्यमान हैं जो पर्यायमात्र में राग करनेवाले जीव, वे [आसंसारात् सुप्ता:] अनादिकाल से लेकर, उसरूप अपने को अनुभवते हैं। भावार्थ इस प्रकार है — अनादिकाल से लेकर, ऐसे स्वाद को सर्व मिथ्यादृष्टि जीव आस्वादते हैं कि मैं देव हूँ, मनुष्य हूँ, सुखी हूँ, दु:खी हूँ — ऐसा पर्यायमात्र को, आपा अनुभवते हैं; इसलिए सर्व जीवराशि जैसा अनुभवती है, सो सर्व झूठा है; जीव का तो स्वरूप नहीं है। कैसी है सर्व जीवराशि? 'प्रतिपदं नित्यमत्ता:' [प्रतिपदं] जैसी पर्याय ली, उसीरूप [नित्यमत्ता:] ऐसे मतवाले हुए कि कोई काल कोई उपाय करनेपर, मतवालापन उतरता नहीं। शुद्धचैतन्यस्वरूप जैसा है, वैसा दिखलाते हैं — 'इत: एत एत' पर्यायमात्र अवधारा है आया, ऐसे मार्ग मत जाओ, मत जाओ, क्योंकि (वह) तेरा मार्ग नहीं है, नहीं है। इस मार्ग पर आओ, अरे! आओ, क्योंकि 'इदं पदं इदं पदं' तेरा मार्ग यहाँ है, यहाँ है। 'यत्र चैतन्यधातु:' [यत्र] जिसमें [चैतन्यधातु:] चेतनामात्र वस्तु का स्वरूप है। कैसा है? 'शुद्ध: शुद्ध:' सर्वथा प्रकार सर्व उपाधि से रहित है। दो बार कहकर अत्यन्त गाढ़ किया है। और कैसा है? 'स्थायिभावत्वं एति' अविनश्वरभाव को पाता है। किस कारण से? 'स्वरसभरत:'

[स्वरस] चेतनास्वरूप उसके [भरतः] भार से अर्थात् कहनामात्र नहीं है, सत्यस्वरूप वस्तु है; इसलिए नित्य शाश्वत् है। भावार्थ इस प्रकार है—जिसको-पर्याय को मिथ्यादृष्टिजीव, आपा कर जानता है, वे सर्व तो विनाशीक हैं; इसलिए जीव का स्वरूप नहीं है। चेतनामात्र, अविनाशी है; इसलिए जीव का स्वरूप है।।६-१३८।।

आसोज कृष्ण ९, शनिवार, दिनांक - ०५-११-१९७७, कलश-१३८, प्रवचन-१४०

कलशटीका, १३८ कलश है।

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति।।६-१३८।।

सूक्ष्म विषय है, प्रभु! अनादि काल का आत्मा, जो अपना अन्दर स्वरूप है, शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द प्रभु आत्मा का स्वरूप है, उसे भूलकर अनादि काल से पुण्य और पाप के भाव और यह शरीरादि धूल जड़ और अशुद्धादि पुण्य-पाप के फल, उन्हें वह अपना स्वरूप मानता है। परन्तु स्वयं अन्दर चिदानन्दस्वरूप है। वीतराग जिनेश्वर परमेश्वरदेव अन्तर स्वरूप शुद्ध परमानन्द की मूर्ति आत्मा है। आहाहा! तो उसे प्रथम ऐसा सम्बोधन करते हैं।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'भो अन्धाः' हे अन्ध! आहाहा! अन्दर भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा विराजता है, तुझे खबर नहीं, भाई! हे अन्ध! ऐसा कहा। आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर इन्द्र और गणधरों की सभा के बीच में, चक्रवर्ती छह खण्ड के स्वामी, जिन्हें छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, उनका साहेबा बैठा हो सभा में (उस सभा में प्रभु ऐसा फरमाते हैं)। प्रभु की वाणी सन्त उस वाणी के आड़तिया होकर भगवान की वाणी जगत को कहते हैं। हे अन्ध! आहाहा! अर्थात् क्या?

अन्दर में चैतन्यमूर्ति आनन्द का नाथ प्रभु है, उसे तू देखता नहीं, मानता नहीं, जानता नहीं और यह पुण्य और पाप के भाव और उसका (फल) यह प्राप्त हुआ शरीर

धूल, वाणी, पैसा आदि बाह्य (चीज़), उसमें उलझकर पड़ा है। तू अन्ध है। आहाहा! यह करुणा का वचन है। सन्तों के वचनों में करुणा है। हे अन्ध! आहाहा! अन्दर ज्ञानानन्द प्रभु विराजता है। भाई! तुझे खबर नहीं। तेरा स्वरूप तो अन्दर शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है। प्रभु! तू उसे देखता नहीं, तुझे (तू) जानता नहीं। भले बड़ा चक्रवर्ती हो, अरबोंपति आमदनीवाला, परन्तु कहते हैं कि हे अन्ध! जो देखना चाहिए, देखना चाहिए, उसे देखता नहीं। आहाहा! और यह शरीर, वाणी, मन, धूल, मिट्टी, स्त्री, पुत्र, परिवार है, वह तो जड़ पुद्गल की सब सामग्री जड़ की है; और अन्दर में भी तुझे जो कुछ पुण्य और पाप का भाव होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, वह भी राग है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग का भाव, वह पापराग है। उस राग को तू जाननेवाला और राग के पीछे चैतन्यमूर्ति प्रभु (विराजता है), उसे नहीं जाननेवाला तू अन्ध है। कहो, शान्तिभाई! यह सब पैसेवाले ऐसे होंगे? करोड़ोंपति, अरबोंपति लोग ऐसा कहते हैं न? धूल के पति। आहाहा! प्रभु! तुझे खबर नहीं है।

'भो अन्धाः' 'भो' सम्बोधन वचन,... है। सम्बोधन आता है न? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, सम्बोधन (ऐसे) सात बोल आते हैं। छह विभक्ति और सातवाँ सम्बोधन। हे आत्मा! ऐसा करके सम्बोधन (करते हैं)। आहाहा! **'अन्धाः' शुद्ध स्वरूप के अनुभव से शून्य है...** आहाहा! तेरा नाथ अन्दर शुद्ध चैतन्य भगवान विराजता है, उसके अनुभव से तू खाली है। आहाहा! और पुण्य तथा पाप के भाव में अन्ध होकर उनमें तू मूर्च्छित हो गया। आहाहा! अमृतस्वरूप भगवान आत्मा इस मृतक कलेवर-शरीर-मुर्दा है, यह तो मुर्दा—मृतक कलेवर है, अमृतस्वरूप भगवान मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! इसलिए परमात्मा जिनेन्द्रदेव... उन्हें कहाँ वहाँ ऐसी पड़ी है कि यह बड़ा राजा है या रंक है? वे सब अन्ध हैं। आहाहा! अन्तर रिद्धि सिद्धि चैतन्य में भरी हुई है। वसोयाजी! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा!

प्रभु! तेरे स्वरूप में... तूने सुना नहीं, तुझे खबर नहीं, भाई! अनन्त ज्ञान और अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल भरा प्रभु है पूरा। आहाहा! उसे तू देखता नहीं और जो उसमें नहीं, उस राग को, पुण्य को, पाप को, उसके फल को तू देखता है।

पुनातरजी! अन्ध है। आहाहा! करुणा तो देखो! सन्तों की करुणा। हे अन्ध! जो देखना चाहिए, उसे देखता नहीं और जो देखनेयोग्य नहीं, उसे देखता है। आहाहा! मार्ग वीतराग का, जिनेन्द्र प्रभु वीतराग परमात्मा साक्षात् विराजते हैं। महाविदेह में सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं। वहाँ से आयी हुई यह वाणी है। आहाहा!

मुनि, दिगम्बर सन्त आत्मा के अनुभव के रसिक, वे जगत को ऐसा कहकर करुणा से कहते हैं। '**भो अन्धाः**' हे आत्मा! तू अन्ध है। आहाहा! जिसमें अन्तर में अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति और अनन्त अतीन्द्रिय वीतरागता भरी हुई है, ऐसा आत्मतत्त्व जो अन्दर है, (वह) विद्यमान चीज़ है, उसे तू देखता नहीं, उसकी ओर तेरी नजर नहीं। तेरी नजर सब पुण्य और पाप के भाव और फल में है। अन्ध है, भाई! आहाहा! भले वह शास्त्र ग्यारह अंग पढ़ा हो। अरे! पंच महाव्रत पालता हो, राग, वह राग की क्रिया है। परन्तु उस राग से अन्दर भिन्न भगवान चैतन्य प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, वस्तु है न! सत् है न? सत् है न? है, उसकी आदि नहीं। अनादि चीज़ है। और अनन्त काल रहनेवाली वह चीज़ है। कोई नाशवान हो, ऐसी चीज़ नहीं है। ऐसा भगवान अनादि-अनन्त आत्मा जिसमें अनन्त आनन्द और शान्ति पूर्ण भरी हुई है। भगवान! तू उसे देखता नहीं। तू तुझे देखने को निवृत्त नहीं, तू तेरी ऋद्धि जानने के लिये निवृत्त नहीं। तुझे क्या कहना अब? कहते हैं। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा!

यह तो सब गोरा नरम, शरीर, वाणी, मन, हड्डियाँ, जड़, मिट्टी-धूल है। आहाहा! उसके प्रेम में फँसा है। और अन्दर में होनेवाले पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, वह भी राग है, उस राग में फँस गया, उसमें एकाकार होकर। आहाहा! प्रभु! तेरा निजपद अन्दर पड़ा रहा। आहाहा! चैतन्यधातु, जिसने चैतन्यस्वभाव धार रखा है, ऐसा जो जो भगवान आत्मा, उसे देखने को तूने नजरें नहीं कीं, नाथ! आहाहा! भले क्रियाकाण्ड करता हो, पंच महाव्रतादि पालता हो, परन्तु वह सब राग की क्रिया, वह राग को देखता है। उसके पीछे प्रभु ज्ञाता-दृष्टा सच्चिदानन्द प्रभु है, वीतराग सर्वज्ञ ने कहा वह, हों! अन्य कोई आत्मा को कहे, वह परमात्मा ने देखा है, ऐसा दूसरे ने किसी ने देखा नहीं। यह अन्ध की व्याख्या की है।

'**भो**' यह सम्बोधन किया। हे भाई! ऐसा। हे अन्ध! आहाहा! क्यों? शुद्धस्वरूप जो अन्दर पवित्र... आहाहा! अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का तो रसकन्द प्रभु अन्दर है। उसके अनुभव से खाली है, इसलिए तुझे हम अन्ध, ऐसा कहते हैं, कहते हैं। आहाहा! विद्यमान आँखें अन्ध! आँख तो पर को देखें। वह तो मिट्टी-धूल है और देखनेवाला तो आत्मा है। वह कहीं धूल जानती नहीं, वह तो मिट्टी है। इस जाननेवाले को तूने जाना नहीं। आहाहा! पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी, पूर्ण सर्वदर्शी, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण अनन्त बल-वीर्य अनन्त स्वच्छता और अनन्त शान्ति का सागर, वह पर्वत स्वयं भगवान है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह सब जवान शरीर, यह सब हड्डियाँ श्मशान की राख होंगी, भाई! उसमें तू नहीं। आहाहा! उसमें बाहर में कुछ पैसा हो जाये दो-पाँच-दस करोड़, (तो) मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाये इसे। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या हुआ तुझे यह? तेरी चीज़ में तो अनन्त आनन्द और शान्ति पड़ी है, उसे तो तुझे देखने की फुरसत नहीं। आहाहा! और जो तुझमें नहीं, ऐसी कृत्रिम, क्षणिक, अनित्य, नाशवान चीज़ के प्रेम में फँस गया, प्रभु! आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बात है।

जितनी जीवराशि.... जितना जीव का ढ़ेर है। भगवान ने तो अनन्त जीव देखे हैं। परमेश्वर वीतरागदेव ने... आहाहा! एक लहसुन की कणी में, राई जितना टुकड़ा लें तो उसमें असंख्य तो शरीर हैं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! उस एक-एक शरीर में अनन्त आत्मायें हैं और एक-एक आत्मा पूर्ण आनन्द से भरपूर तत्त्व है। आहाहा! अरेरे! तुझे वहाँ देखने का समय नहीं मिलता। आहाहा! इसलिए उसे अन्धा कहकर, (कहते हैं), **जितनी जीवराशि। 'तत् अपदं अपदं विबुध्यध्वं'** आहाहा! **कर्म के उदय से है जो चार गतिरूप पर्याय...** आहाहा! यह मनुष्यपना मिले, नरक में नारकी हो, देव का देव हो या ढ़ोर हो, वह सब कर्म की सामग्री, प्रभु! उसमें तू नहीं। वह तेरी नहीं। आहाहा! अजीतभाई! ऐसी बातें हैं। चार गति, वह तू नहीं, वह तुझमें नहीं। प्रभु! तू कौन है? आहाहा! गतिरूप तू हो तो गति भिन्न पड़कर कभी सिद्ध नहीं हो सकेगा। आहाहा! यह चार गति, वह तू नहीं, आहाहा! वह कर्म की सामग्री है। है?

रागादि अशुद्धपरिणाम... यह पुण्य और पाप के अशुद्धभाव। चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग का राग हो, या चाहे तो दया, दान, व्रत, तप का राग हो परन्तु

सब राग है, बापू! तुझे खबर नहीं। भगवान! तू कौन है, इसकी तुझे खबर नहीं। सोने की ईंट जैसे पड़ी हो, वैसे आनन्द की ईंट अन्दर चैतन्यभगवान है। भाई! भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, अनन्त जिनेन्द्र ऐसा फरमाते हैं, भाई! तू अनन्त आनन्द की ईंट, जैसे सोने की ईंट हो, (वैसा तू पवित्र है)। आहाहा! अथवा बर्फ की शिला होती है न बड़ी? मुम्बई में २५-२५, ३०-४० मण की बर्फ की शिला होती है। ट्रक में निकलती हो तो देखते हों, ऐसे जायें न। इसी प्रकार यह शीतल आनन्द के नाथ की यह स्वयं शिला है। अतीन्द्रिय आनन्द की शिला आत्मा, अरे! कैसे जँचे इसे? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द जिसके स्वभाव में तो अनन्त केवलज्ञान ऐसी अनन्त पर्याय पड़ी है। ऐसे को तू देखता नहीं और **रागादि अशुद्धपरिणाम...** यह पुण्य और पाप के भाव हुए, उन्हें देखे, कि यह मैंने किये और मेरे। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है भाई! जिनेन्द्रदेव का मार्ग, वीतराग परमेश्वर का मार्ग पूरी दुनिया से अलग है। आहाहा!

यह चार गति की दशा, पुण्य और पापादि अशुद्ध परिणाम, वह सब राग और विकार है, प्रभु! और **इन्द्रियविषयजनित सुख-दुःख...** आहाहा! अनुकूल स्त्री और पैसा और मकान दो-पाँच-दस लाख के। उसमें सुख माने, वह इन्द्रियजनित सुख, वह तो जहर है। भाई! तुझे तेरे अमृत के नाथ की खबर नहीं। वह जहर का प्याला पीकर तू अन्दर पड़ा है। आहाहा! **इन्द्रियविषयजनित...** कान से सुनते हुए महिमा करे दूसरे तो, आहाहा! तुम तो कर्मी जगे। कर्मी जगे, ऐसा कहते हैं न? धर्मी जगे, ऐसा कहते हैं? हिम्मतभाई! क्या कहे? कर्मी जगा, मेरा पुत्र कर्मी जगा। कर्मी अर्थात् कर्म का-पाप का करनेवाला। आहाहा! वह प्रसन्न हो। मेरे पिता ने कर्मी कहा न हमें!

मुमुक्षु : आपकर्मी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आपकर्मी धूल भी नहीं वहाँ। उसके पिता के पास न हो और इसने कुछ २५-५० लाख पैदा किये हों तो आपकर्मी। धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा! वह तो कोई पूर्व के पुण्य के परमाणु पड़े हों तो बाहर दिखे। वह तू कहाँ है? वह तेरे कारण कहाँ आया है? आहाहा!

भगवान परमात्मा जिनेन्द्रदेव जगत को प्रसिद्ध करते हैं कि हे अन्ध! यह **इन्द्रियविषयजनित सुख-दुःख इत्यादि अनेक हैं वह...** प्रतिकूल में निर्धनता हो, तब हम दुःखी हैं, रोटियाँ मिलती नहीं, खाने को मिलता नहीं, सोने को मिलता नहीं। आहाहा! गुप्तरूप से यहाँ बहुत पत्र आते हैं। बहुत पत्र आते हैं। यहाँ का नाम बड़ा पड़ा है न कि यहाँ तो बड़े करोड़पति पड़े हैं। यहाँ तो बापू! धर्म है। यहाँ कहीं पैसा-बैसा नहीं। कहते हैं, अन्तर में जो पाँच इन्द्रिय के विषय, उनसे माना हुआ सुख-दुःख। समझ में आया? **सुख-दुःख इत्यादि अनेक हैं, वह जितना कुछ है-... 'अपदं अपदं'** आहाहा! क्या कहते हैं? महा गाथा है बापू! यह तो। यह चार गति। पुण्य, दया, दान, राग-द्वेष के परिणाम, इन्द्रियविषयजनित सुख-दुःख की कल्पना वह **'अपदं अपदं' कर्म संयोग की उपाधि है,...** आहाहा! यह मानता है कि मैं सुखी हूँ। पाँच-पचास लाख मिले, स्त्री रूपवान मिली, पुत्र अच्छे हुए। आहाहा! उपाधि है और मर गया उपाधि अपनी मानकर। आत्मा के स्वरूप में... आहाहा! यह आत्मा के स्वरूप को इसने घायल कर दिया। ऐसे भाव मेरे पुण्य और पाप, इन्द्रिय के विषय के सुख-दुःख। आहाहा! प्रभु! ऐसा कहते हैं कि वह अपने हैं, ऐसा मानकर तूने तेरे चैतन्य आनन्द के नाथ को घायल कर दिया है। आहाहा! इसकी तुझे खबर नहीं, भाई! यह किस प्रकार का उपदेश यह!

वे कहें, व्रत पालना, भक्ति करना, हरितकाय नहीं खाना, ऐसा कहे तो समझ में भी आये। क्या धूल समझ में आये, उसमें था क्या? आहाहा! वह सब राग की क्रियाओं को देखनेवाले अन्धे अन्दर राग से भिन्न भगवानस्वरूप चैतन्य विराजता है, उसे देखते नहीं, भाई! वह अपद है, उपाधि है। संस्कृत टीका में अपद का अर्थ किया है, भाई! यह शुभ-अशुभभाव, चार गति, विषयजनित सुख-दुःख, वह तेरा स्थान नहीं, तेरा लक्षण नहीं। तेरा रक्षण नहीं। तीन शब्द प्रयोग किये हैं।

फिर से। आहाहा! क्या कहा? बापू! यह कहीं वार्ता-कथा नहीं है। यह तो आत्मधर्म की बात है, प्रभु! यह कहीं एकदम समझ में आये या पकड़ में आये, (ऐसा नहीं है)। इसके लिये तैयारी चाहिए। आहाहा! एक धूल के लिये पूरे दिन मेहनत करता है। दो-पाँच-पचास हजार कमाने के लिये मेहनत (करके) मर जाता है पूरे दिन।

आहाहा! परदेश में जाये सगे, प्रिय, कुटुम्ब को छोड़कर बाहर जाये। यह पाप के लिये। आहाहा! बापू! यह तो अनन्त काल में अनन्त भव में कभी धर्म क्या है, यह इसने सुना नहीं। सुना हो तो वह समझने की दरकार की नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह चार गति, पुण्य-पाप के भाव, पाँच इन्द्रिय के विषय आदि यह सब अरक्षण है। तेरा रक्षण नहीं। उनका रक्षण करने जाता है, वहाँ तेरा घात हो जाता है। आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह भी तेरा पद नहीं, प्रभु! तेरा स्थान नहीं, वह तेरा रक्षण नहीं, वह तेरा लक्षण नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! अरेरे! मनुष्यपना मिला और पशु को मिला नहीं परन्तु यह वस्तु क्या है, वीतराग कहते हैं वह समझ में न आवे (तो) मनुष्यपना मिला, न मिला (बराबर है) पशु को नहीं मिला और इसे इसे मिला, यह सब समान हो जायेगा। आहाहा! भले इसके पाँच-पचास करोड़ इकट्ठे किये हों। आहाहा! सेठ चले गये, नहीं? २७वीं तारीख को। चालीस करोड़ रुपये। शान्तिप्रसाद, शाहू शान्तिप्रसाद दिल्ली। २७ तारीख को सवेरे ग्यारह बजे गुजर गये। चालीस करोड़। धूल में क्या? मिट्टी है।

यहाँ तो कहते हैं कि यह चार गति और पुण्य-पाप का भाव और विषयजनित सुख-दुःख की कल्पना या सुख की सामग्री, वह सब अपद है। तेरे लिये वह रक्षण नहीं। अस्थान है, अपद है, अलक्षण है—लक्षण नहीं, वह तेरा लक्षण नहीं। आहाहा! यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम शुभराग हों, वह भी निवृत्त कहाँ है अभी दुकान के धन्धे और पाप के कारण। पूरे दिन पाप। बाईस घण्टे पड़े। कभी घण्टे भर फिर सुनने जाये। उसमें सुनने का ऐसा मिले। कुगुरु लूट ले इसका अवतार। इसे धर्म मना दे व्रत में, अपवास में और यह धर्म है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह सब अस्थान और अलक्षण है। वह तेरा लक्षण नहीं। समझ में आया? आहाहा! अपद है... अपद है। दो बार कहा है। है न? अपद है, अपद है। वह तेरा लक्षण नहीं, तेरा रक्षण नहीं और तेरा धाम नहीं, तेरा स्थान नहीं। आहाहा! वहाँ तू रहनेयोग्य नहीं। आहाहा! **दो बार कहने पर सर्वथा जीव का स्वरूप नहीं है,...** क्या कहा यह? यह चार गति मिली मनुष्यगति आदि, वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं। पुण्य

और पाप के भाव हुए अन्दर में, वे कहीं जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों के ढ़ेर मिले और उसके ऊपर लक्ष्य जाकर हम सुखी हैं, ऐसी कल्पना की, वह कहीं तेरी चीज़ नहीं, जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! कठिन काम, भाई!

मुमुक्षु : पुण्य (होवे तो) पाप से बचा जाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं ही पापी है। वह पुण्यपरिणाम मेरे हैं, अपद को पद मानता है, अस्थान को स्थान मानता है, अलक्षण को लक्षण मानता है, अरक्षण को रक्षण मानता है, वह मिथ्यादृष्टि पापी है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहा जाता है न? समझ में आ जाये वह तो निहाल हो जाये, परन्तु किस पद्धति की रीति है (वह समझ में आता है)? आहाहा! प्रभु का वीतरागदेव का पुकार है। अरेरे! सुनने को मिले नहीं इसे।

यहाँ कहते हैं कि वह सब जीव का स्वरूप सर्वथा नहीं है। यह दया, दान, व्रत के परिणाम राग है। तुझे खबर नहीं। वह जीव का स्वरूप सर्वथा नहीं। जैसे यह शरीर, वह जीव का स्वरूप सर्वथा नहीं। वह तो मिट्टी है। वह तो पुद्गल मिट्टी जड़, धूल, श्मशान की राख होनेवाली है। आहाहा! इसी तरह अन्दर में पाप के भाव (हों), वे सर्वथा जीव के स्वरूप से भिन्न हैं। इसी तरह पुण्य के भाव (सर्वथा भिन्न हैं)। आहाहा! यह निवृत्ति ही कहाँ है पुण्य की? यह तो पाप ही किया है, बाईस घण्टे पूरे दिन। आहाहा! जवाहरात के धन्धे में पाप होगा? एकेन्द्रिय जीव को मारता नहीं न! परन्तु वह मैं करता हूँ और मेरा धन्धा और वह मुझे लाभ हो, यह भाव ही सब पाप है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई!

यह श्लोक ही एक-एक ऐसे हैं। आहाहा! जहाँ देखना चाहिए, वहाँ देखता नहीं और जहाँ नहीं देखना, वहाँ देखकर प्रसन्न होता है। आहाहा! भाई! तू अन्ध है। आहाहा! अन्दर में भगवान सच्चिदानन्द प्रभु तेरा पद है। वह आयेगा बाद में। देखो! है? यह **सर्वथा जीव का स्वरूप नहीं है,...** आहाहा! क्या सर्वथा जीव का स्वरूप नहीं? ऊपर तीन बातें कीं। एक तो चार गति, पश्चात् पुण्य-पाप के रागादि अशुद्ध परिणाम, इन्द्रियविषयजनित सुख-दुःख की कल्पना और सामग्री, वह सब जो है, वह सर्वथा

जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! सुनाई देता है न? पानाचन्दभाई! ऐसी बातें सुनने को कहीं मिली नहीं हैं। ऐसा मार्ग भगवान! आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव पुकारते हैं। अरे! भाई! जहाँ देखना चाहिए, वहाँ देखता नहीं और जो तुझमें नहीं, उस चीज़ को देखकर मुस्करा गया, मुस्करा गया। आहाहा! मर गया, बापू ते! तू अन्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु : दया बिना तुच्छ जीवों का क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन तुच्छ है? दया का भाव ही राग है। उसका तो आयुष्य होगा तो जीयेगा। कोई जिला सकता है पर को? पर की दया कोई पाल सकता है? भगवान तो बन्ध अधिकार में कहते हैं, जिसका आयुष्य हो, वह जीता है। तूने उसे आयुष्य दिया? तूने जिलाया उसे? तूने उसे जिलाया? तेरा आयुष्य दिया उसे? उसे तूने जिला दिया? आहाहा! और उसे मार डाला मैंने। तूने मारकर उसका आयुष्य तोड़ दिया? तुझमें शक्ति है उसके आयुष्य को तोड़ने की? आहाहा! यह तो उसका जीवन काल देह में रहने का था, आयुष्य के कारण, वहाँ तक रहा। आयुष्य पूरा हुआ तो एकदम चला जायेगा। कहीं भटकता राम। आहाहा! वह आँधी का तिनका जाकर कहाँ पड़ेगा? आहाहा! इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि का भाव यह मेरे, राग मेरा, पुण्य मेरा, पाप मेरा, फल मेरा, वह मिथ्यात्व की आँधी में चढ़ा है, वह चौरासी लाख की योनियों में कहाँ जाकर पड़ेगा? आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं। उसमें कुछ जवानी ठीक सी मिली हो, शरीर रूपवान हो, उसमें पाँच-पचास लाख पैसे (रुपये), स्त्री ठीक, पुत्र ठीक और मुनिम-बुनिम अच्छे मिल गये हों, दो-पाँच हजार वेतनवाले और आमदनी अच्छी इसलिए मानो कि आहाहा! हम फावी गये। चार गति में भटकने के लिये फाव्या। आहाहा!

भगवान! यहाँ तो गाथा ऐसी बोलती हैं न। आहाहा! वह **सर्वथा जीव का स्वरूप नहीं है, ऐसा अवश्य कर जानो।** है? **'विबुध्यध्वं' 'विबुध्यध्वं'** विशेष अवश्य जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव और यह गति आदि इन्द्रियजनित सामग्रियाँ और विषयसुख की कल्पनाएँ, वह सब मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसा बराबर जान। आहाहा! अरे! तू कब निवृत्त हो? बालपना हो, वह खेल में जाये, जवानी स्त्री

में जाये, स्त्री में मोहित होकर जाये, वृद्धापना हो जाये ६०-७०-८० इसलिए... हाय... हाय... ! आहाहा ! 'बालपन खेल में खोया, युवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धापन देखके रोया।' हार गया। हो गया। जाओ चौरासी के अवतार में। ऐसा है। आहाहा !

वह **अवश्य जानो।** देखा ! उसे अवश्य जानो कि यह मेरा स्वरूप नहीं। आहाहा ! पुण्य-पाप के भाव आ गये अन्दर ? अशुद्ध रागादि आया न ? अशुद्ध रागादि आ गया। उसमें पुण्य-पाप। महाव्रत के परिणाम, वह राग है, वह तेरा स्वरूप नहीं। तूने कभी जाना नहीं तेरे स्वरूप को, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! **कैसा है मायाजाल ?** आहाहा ! यह सब मायाजाल है। आहाहा ! शुभ-अशुभराग, चार गति और पाँच इन्द्रिय के विषय। पाँच इन्द्रिय। कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श। उसे अनुकूल प्रशंसा आदि, अनुकूल रूप आदि, अनुकूल गन्ध आदि, अनुकूल रस आदि, अनुकूल स्पर्श आदि। आहाहा ! यह सब तेरा स्वरूप नहीं, प्रभु ! आहाहा !

तुझे भगवानरूप से बुलाते हैं और तू जागे नहीं, नाथ ! आहाहा ! इसकी माँ इसे झूले में सुलावे (तब) महिमा करने से सोता है। मेरा बेटा सयाना है और पाटे पर बैठ नहाया है, ऐसा कुछ गाते हैं न ? तब वह सो जाता है। गालियाँ दोगे तो नहीं सोयेगा। एक बार देख लेना तुम्हारे। मारा रोया सो जा (ऐसा कहोगे तो) नहीं सोयेगा। अव्यक्तरूप से भी उसके गीत गाओगे तो सो जायेगा। यहाँ भगवान त्रिलोकनाथ तेरे गीत गाते हैं न, नाथ ! तेरी माँ तुझे सुलाती है और प्रभु तुझे जगाते हैं। अरे ! जाग रे जाग, नाथ ! तुझमें अनन्त शान्ति की ऋद्धि पड़ी है न, प्रभु ! उस शान्ति को तू पर में कहाँ खोजने जाता है ? आहाहा ! समझ में आया ? यह मायाजाल है। आहाहा !

'यस्मिन् अमी रागिणः आसंसारात् सुप्ताः' 'यस्मिन्' जिसमें-कर्म का उदयजनित अशुद्ध पर्याय में,... पुण्य-पाप में, गति में **प्रत्यक्षरूप से विद्यमान हैं जो पर्यायमात्र में राग करनेवाले जीव...** है न ? **'यस्मिन् अमी रागिणः'** आहाहा ! यह दया, दान का राग है, उस राग के करनेवाले वे सब रागी जीव अज्ञानी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! **'यस्मिन् अमी रागिणः' 'यस्मिन्'** यह प्रत्यक्ष अशुद्धपर्याय में विद्यमान। प्रत्यक्ष कहते हैं न ? पर्यायमात्र में राग करनेवाले। आहाहा ! राग का राग, पुण्य का राग, पाप का राग,

शरीर का राग, स्त्री का राग, परिवार का राग, पैसे का राग। आहाहा! वह सब मायाजाल के प्रेमी हैं। तेरे चैतन्यस्वरूप का तुझे द्वेष है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर है, भगवान तीर्थंकर पुकारते हैं, उसका तुझे प्रेम नहीं और यह मायाजाल का तुझे प्रेम है। आहाहा! तू चैतन्य का खूनी है। आहाहा! इस मायाजाल का प्रेमी है। आहाहा!

शुद्ध स्वरूप जो भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर हुए वे कहाँ से सर्वज्ञ हुए? सर्वज्ञ अतीन्द्रिय आनन्द को परमात्मा अरिहन्त प्राप्त हुए, वे कहाँ से प्राप्त हुए? कहीं बाहर से चीज़ आती है? अन्दर में पड़ी है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! कुँए में हो, वह हौज में आता है। इसी प्रकार अन्दर में हो, वह बाहर में आता है। सर्वज्ञ परमेश्वर हुए जिनेन्द्रदेव, केवलज्ञानी, केवलदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, वह सब प्रगट हुआ कहाँ से? नाथ! वह खजाना अन्दर में है। आहाहा! उस खजाने को न देखकर जिसमें तेरी चीज़ नहीं, ऐसी खाली चीज़ के राग में रुल गया, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

राग करनेवाले जीव। '**पर्यायमात्र में राग करनेवाले जीव वे... 'आसंसारात्' अनादि काल से... 'आसंसारात्'** अर्थात् यह संसार अनादि काल से। आहाहा! यह लहसुन और प्याज में पड़ा था अनन्त काल से। आहाहा! अभी इतने अधिक जीव पड़े हैं, उसमें से कभी त्रस हुए नहीं, इतने जीव पड़े हैं। निगोद में लहसुन और कन्दमूल में। आहाहा! भगवान के ज्ञान में, केवलज्ञानी के ज्ञान में ऐसा आया है कि ऐसे जीव पड़े हैं, अभी कि कभी लट अभी हुए नहीं। उस कन्दमूल में अनन्त काल का रहा है। आहाहा! भाई! तुझे मनुष्यपना मिला न! तो उस मनुष्यपने में तो ज्ञायते इति मनुष्यपना। चैतन्य को जानना और अनुभव करना तो वह मनुष्यपना गिना जाता है। नहीं तो मृगा स्वरूप। मनुष्यास्वरूपे मृगा चरंति। मनुष्य के शरीर में हिरण जैसे—मृग जैसे तेरे अवतार हैं। गोसलियाजी! ऐसी बातें हैं, भाई!

अन्यमति में एक नरसिंह मेहता थे न? उनकी बहू मर गयी। फिर भजन करने बैठे थे। बहू मर गयी। सुना तो कहे, 'सुखे भजीशुं श्रीगोपाल।' 'भलुं थयुं भांगी जंजाल।' इस उपाधि में अब उपाधि गयी। 'भलुं थयुं भांगी जंजाल, सुखे भजीशुं श्री

गोपाल' ऐसे यह महिलायें विधवा हो तो दु:खी हुए, ऐसा इन्हें नहीं मानना। वह जंजाल छूट गयी। अब अपने आत्मा के लिये करने का अब समय मिला है। ऐसा ले न! आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख मिले हों और लड़का एक ही हो और मर जाये। फिर ऐई शोर मचाये। परन्तु वह जीवित रहता तो सब रुपये रखते और तेरे दान में खर्च करने के लिये तुझे अवसर मिला, ऐसा ले न। आहाहा! यह तो पूरी दुनिया से अलग लाईन है। वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की पुकार है। यह बाहर की चीज़ तुझमें नहीं। उसमें तू उलझ गया। आहाहा!

यह **अनादि काल से सो रहे हैं...** है न? अनादि काल से सो रहे हैं। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव और उनके फल में अनादि काल से जीव सो रहे हैं। जागते नहीं परन्तु जागने का सुनने को मिले तो भी जागते नहीं। समझ में आया? आहाहा! **अनादि काल से लेकर उसरूप अपने को अनुभवते हैं।** है? वे सो रहे हैं। आहाहा! चैतन्यस्वरूप जो ज्ञाता-दृष्टा भगवान आत्मा त्रिकाली ज्ञाता-दृष्टा और अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, उसे छोड़कर यह पुण्य और पाप और उसके फल में अनादि से सो रहे हैं। मायाजाल में रचपच गये हैं। आहाहा!

पर्यायमात्र राग करनेवाले जीव वे अनादिकाल से सो रहे हैं अर्थात् अनादि काल से लेकर उसरूप अपने को अनुभवते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—अनादिकाल से लेकर ऐसे स्वाद को सर्व मिथ्यादृष्टि जीव आस्वादते हैं... क्या कहते हैं यह? निगोद से लेकर अनादि काल के सब प्राणी इस राग के स्वाद को स्वादते हैं। जो विकारी राग है, उसका स्वाद लेते हैं। आहाहा! उसे नहीं पैसे का स्वाद, नहीं उसे स्त्री के शरीर के भोग का स्वाद। वह तो मिट्टी-धूल है, उसे आत्मा स्पर्श कैसे करे? आत्मा तो अरूपी है। उस समय 'यह ठीक है', ऐसा राग करे और राग को भोगता है। रागी प्राणी राग को अनादि से भोगता है। परन्तु राग रहित मेरा नाथ अन्दर भिन्न है, उसे देखने के लिये निवृत्त नहीं होता। अभी तो यह उपदेश मिलता नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! आहाहा!

कहते हैं कि अनादि काल से सो रहा है। यह क्या किया मैंने? कि राग के स्वाद

के कारण सो रहा है। आहाहा! उसने राग का ही अनुभव किया है। चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो। शुभ तो किसी को होता है। यह अशुभ तो अनादि का है न? यों ही अभी संसार में बाईस घण्टे पाप में (जाते हैं)। सो रहा हो तो पाप के धन्धे की हालत में सो रहा हो और स्वप्न भी वे आते हों। ऐसा लिया और ऐसा लिया। हमारे राणपुर में एक भगत थे। नाराणभाई के... रहते थे। वैसे नरम व्यक्ति था। मेरे पास दीक्षा लेने का भाव था। हमने कहा, दीक्षा-बीक्षा में हम मानते नहीं और हम दीक्षा देते नहीं। दीक्षा किसे कहना, वह सूक्ष्म बातें, बापू! वे रात्रि में उठे... बड़ा धन्धा था। लाखों का। फाड़ ऐसा (बोले), लो, आधा। आहाहा! सोफा को फाड़कर आधा स्वप्न में, निद्रा में... परन्तु जिसकी जिसे लगन, वह उसे स्वप्न में आवे। आहाहा! अरेरे!

यहाँ कहते हैं, वह सब राग को अनुभव करता है। वह राग के स्वाद को लेता है। **सर्व मिथ्यादृष्टि जीव आस्वादते हैं...** क्या? मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, यह सब राग को अनुभव करनेवाले हैं, दुःख को अनुभव करनेवाले दुःखी प्राणी हैं बेचारे। वे बेचारे कहलाते होंगे? करोड़पति हों। पाँच-पाँच, दस करोड़, पच्चीस करोड़। अरे! इन्द्र के इन्द्रासन हों तो भी दुःखी है। बापू! तुझे खबर नहीं। सुख तो अन्दर आत्मा में सच्चिदानन्द नाथ पड़ा है, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। उसके सुख के स्वाद को कभी देखा-जाना नहीं। और यह अनादि जगत के राग के रागी के स्वाद में पड़ा है। आहाहा! वीतराग के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं है नहीं। पानाचन्दभाई! ऐसी बात है। जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर... आहाहा! करुणा-अकषाय करुणा है। भगवान! तू सो रहा है न! और तूने अनादि से राग का, विकार का ही स्वाद लिया है। तो फिर अशुभराग हो तो भी राग; शुभराग हो तो भी राग, उस राग का तुझे स्वाद है, तेरा स्वाद तुझे नहीं। आहाहा! तू अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है, उसका स्वाद तुझे अनादि से नहीं है। ले, वह क्या होगा? स्वाद क्या होगा? आहाहा! यह ढोकला खाये मिर्ची डालकर, रसगुल्ला दूध के बनाकर खाये, उसका स्वाद होगा? वह तो जड़ है। आत्मा अरूपी है, वह तो रूपी है। मात्र उस पर लक्ष्य करके 'ठीक है' ऐसा राग करे, उस राग का स्वाद है। आहाहा! प्रभु! तूने राग का; राग अर्थात् दुःख। दुःख अर्थात् आकुलता का स्वाद तूने लिया है, नाथ! आहाहा! ऐसी बात। यह वीतराग के अतिरिक्त कहाँ से आवे यह बात?

मैं सुखी हूँ... कहा था न एक बार? नहीं अपने, नानालालभाई थे अपने राजकोटवाले, करोड़पति। उनके रिश्तेदार आये थे राजकोटवाले। क्या कहलाते हैं वे? चुडगर, मणिलाल चुडगर। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। वे मानो कि यहाँ बहुत करोड़पति लोग आते हैं न! सुखी कहना किसे? धूल में भी नहीं। बड़े दुःखी के सरदार हैं। आहाहा! मेरा, इस मान्यता में महामिथ्यात्व और राग की आकुलता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह **मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, ऐसा पर्यायमात्र को आपा (रूप) अनुभवते हैं,...** अपनेरूप अनुभव करता है। मेरा है, यह राग मेरा है। आहाहा! यह स्त्री मेरी है, पुत्र मेरा है, मकान मेरे हैं, ऐसे राग को अनुभव करता है, उस वस्तु को नहीं। आहाहा! वह दुःखी, दुःखी प्राणी दुःख को वेदता है। भान नहीं। सन्निपातिया को भान नहीं। सन्निपात जिसे हो... सन्निपात समझते हो? वात, पित्त और कफ वक्र हो, उसे सन्निपात कहते हैं। सन्निपात अर्थात् तीन का जुड़ान। वात, पित्त और कफ। तीनों वक्र हो जाये। वक्र हो जाये अर्थात् विशेष फटे। जैसे सूकर, वकरे और सुंवर हो। भुंड का सुवर होता है न? वह वकरे तब सुवर होता है। यह तो सब... ऐसे वात, पित्त और कफ वक्र हो जाये अन्दर बढ़ जाये तो सन्निपात होता है। और यह दाँत निकालता है वह। सुखी है? दुःख की पराकाष्ठा बढ़ गयी है; इसलिए भान भूल गया है। इसी प्रकार अज्ञानी बाहर की अनुकूलता में सुखी मानता है, वह सन्निपातिया, आहाहा! मिथ्यादृष्टि, उसे सन्निपात लगा है। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण का सन्निपात है उसे। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें!

यह यहाँ कहते हैं, वह पर्यायमात्र को अपने से **इसलिए सर्व जीवराशि जैसा अनुभवती है, सो सर्व झूठा है,...** आहाहा! **जीव का तो स्वरूप नहीं है।** वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं, प्रभु! जीव तो आनन्द का नाथ ज्ञाता-दृष्टा ज्ञान और आनन्द के सागर से भरपूर भगवान है। आहाहा! अरे! प्रभु! तुझे खबर नहीं। तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं। तेरी महिमा का माप करना तुझे नहीं आया, नाथ! आहा! और तेरे अतिरिक्त की बाहर की चीज़ की महिमा का माप करके हर्षित हो गया। आहाहा! यहाँ तो ऐसी बात

है, भाई! समझ में आया? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ भी तेरी बात करे। 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जो। उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे, अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा।' आहाहा! श्रीमद् में (अपूर्व अवसर काव्य में आता है)। आहाहा!

अनन्त ज्ञान और दर्शन का धनी प्रभु... आहाहा! वह अपने को भूलकर राग के रस में अनादि से चढ़ गया है। आहाहा! जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा, परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव, उन्होंने भी वाणी द्वारा, वाणी जड़ द्वारा आत्मा की बातें करना, कितनी करे? प्रभु! शत्रु द्वारा मित्र की महिमा कराना। यह तो वाणी जड़-धूल है। उसके द्वारा आत्मा ऐसा और आत्मा ऐसा, कितना कह सके? आहाहा! 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जो। उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे? वह तो अनुभव गोचरमात्र रहा वह ज्ञान जो।' आहाहा! राग और पुण्य-पाप से भिन्न भगवान आत्मा का स्वाद, वह अनुभवगम्य है, वह अनुभव के अतिरिक्त कोई जान नहीं सकता। आहाहा! सर्वज्ञ भी उसकी बात पूरी नहीं कह सकते। ऐसा वचनातीत, विकल्पातीत प्रभु विराजता है। आहाहा! उसकी तुझे महिमा नहीं और जगत की धूल और पुण्य-पाप के भाव की महिमा में चढ़ गया। हैरान होकर चौरासी के अवतार में भटकता भटकाऊ हो गया तू, प्रभु! आहाहा! सुजानमलजी! आहाहा! श्लोक ऐसा है न! आहाहा! सन्तों के हृदय के... आहाहा!

सो सर्व झूठा है, जीव का तो स्वरूप नहीं है। कैसी है सर्व जीवराशि? अब जीव कैसे हैं? अज्ञानी अनादि काल के। आहाहा! **प्रतिपदं नित्यमत्ताः**' जैसा शरीर मिला, जैसा राग मिला, जैसा धारण किया, **उसीरूप ऐसे मतवाले हुए कि कोई काल कोई उपाय करने पर मतवालापन उतरता नहीं।** आहाहा! उसमें कहा नहीं था? बनारसीदासजी ने। 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' त्रिलोकनाथ की वाणी में समयसार नाटक में ऐसा कहा, 'घट घट अन्तर जिन बसे', भगवान अन्दर घट में देह से भिन्न अन्दर जिन है। उसका स्वरूप जिनस्वरूप ही है। आहाहा! जिनस्वरूप है, वह पर्याय में जिन—वीतरागता होती है। आहाहा! 'घट

घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन।' जैनपना कहीं बाहर में लिबास-फिबास में नहीं। राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता का स्वाद ले, उसे जैन कहा जाता है। वह घट घट अन्तर जैन बसता है। आहाहा! उसके अन्दर में कोई बनियापना या चाण्डालपना या स्त्रीपना, पुरुषपना, स्वरूप में नहीं है। वह तो बाहर के वेश सब भिन्न हैं। आहाहा! 'मत मदिरा के पान सो...' परन्तु अपने मत की (अभिप्राय की) मदिरा पीये हुए, गहल-पागल हो गये, 'मतवाला समझे न' मतवाला समझता नहीं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, जैसी पर्याय मिली, (वैसा मानकर) मतवाला हो गया। आहाहा! **कोई काल कोई उपाय करने पर मतवालापन उतरता नहीं। शुद्ध चैतन्यस्वरूप जैसा है, वैसा दिखलाते हैं...** अब शुद्ध चैतन्यवस्तु कैसी है अन्दर? यह दिखायेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १०, रविवार, दिनांक - ०६-११-१९७७, कलश-१३८, प्रवचन-१४१

कलश टीका, निर्जरा अधिकार। १३८ कलश है। अर्थ। '**भो अन्धाः**' ऐसा सम्बोधन किया है। हे जीवो! अन्धों! भगवान अन्दर चैतन्यस्वरूप शुद्ध वीतराग अमृत का सागर भरा है, उसे देखते नहीं, नजरें वहाँ करते नहीं और यह पुण्य और पाप तथा पर्याय में नजरें करके रुक गया है। तो हे अन्ध! ऐसा सम्बोधन किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : त्रिकाली स्वरूप जानता नहीं इसलिए अन्ध?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना मूल स्वरूप जानता नहीं। मूल चीज़ वह है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। एक समय की विकृत अवस्था के अतिरिक्त पूरा पद जो है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय अमृत का सागर है। प्रभु! तू उसे देखता नहीं। उसकी नजर करता नहीं और अन्ध है? विद्यमान चीज़ है, उसे देखता नहीं और अविद्यमान चीज़ जो कायम रहनेवाली नहीं, नाशवान है और जो चीज़ स्वरूप में नहीं, उसे देखकर वहाँ रुक गया है। अन्ध है। आहाहा!

सन्तों की करुणा है। वीतरागी सन्त, दिगम्बर मुनि, अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते हैं। वे जगत को कहते हैं, हे अन्ध! '**भो**' तो सम्बोधन है। अन्ध! जो देखने का है, उसे देखता नहीं और जो देखनेयोग्य नहीं, उसे देखता है। आहाहा! अन्तर भगवान एक समय में विकृत अवस्था के पीछे पूरा पद पड़ा है। पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति जिसका स्वभाव अमाप, अनहद है, ऐसी शक्ति का भण्डार भगवान; भगवान अर्थात् तू, हों! दूसरे भगवान, वे भगवान नहीं। उसे तू देखता नहीं। इसलिए तू अन्ध है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विद्यमान चीज़ को देखता नहीं और अविद्यमान जो नाशवान (चीज़) उसके स्वरूप में नहीं, उसे देखकर वहाँ अटककर तू भ्रमणा में भूला है। आहाहा! इसलिए हम कहते हैं कि **शुद्धस्वरूप के अनुभव से शून्य...** अन्धे की व्याख्या की। आहाहा! जो चीज़ जाननेयोग्य, आनन्दने योग्य, अनुभवनेयोग्य है, ऐसी अन्दर चीज़ है, उसे तू देखता नहीं। अन्ध! क्या कहें तुझे? वह जितनी जीवराशि है। जीव का ढ़ेर सब जितने हैं। आहाहा! अनन्त जीव हैं।

'**तत् अपदं अपदं विबुध्यध्वं**' **कर्म के उदय से है जो चार गतिरूप...** आहाहा!

यह मनुष्यपना अर्थात् यह शरीर नहीं। मनुष्य की गति की योग्यता अन्दर मनुष्य। यह चार गति की योग्यता, वह कर्म के कारण से है। वह तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! चार गति। देवगति या मनुष्यगति वह तो कर्म-वेरी, शत्रु की सामग्री है सब। आहाहा! समझ में आया? आत्मा से विरुद्ध ऐसा यह कर्म तत्त्व, उसका यह सब विस्तार और सामग्री है। आहाहा! उसे तेरी नजरों में तूने अनादि से लिया। परन्तु प्रभु अन्दर विराजता है, उसे तूने नजर में नहीं लिया। शास्त्र पढ़ा, पंच महाव्रत धारण किये, परन्तु वह सब राग और विकल्प में पड़कर तू चिपट गया। आहाहा!

वह **कर्म के उदय से है जो चार गतिरूप पर्याय तथा रागादि अशुद्धपरिणाम...** शुभ और अशुभराग, वह अशुद्धपरिणाम है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव-राग भी अशुद्ध है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग का भाव तो अशुद्ध पाप ही है, परन्तु यह व्रत, तप, भक्ति-पूजा का विकल्प भी अशुद्ध और राग है। आहाहा! वह अशुद्ध रागादि परिणाम, वह भी कर्म की सामग्री है। वह कर्म का विस्तार है। प्रभु! तू वहाँ नहीं। तू वहाँ नहीं। जहाँ तू है, वहाँ वे नहीं। आहाहा! अरेरे! चौरासी के अवतार करते-करते अनन्त अवतार किये, वह दुःखी... दुःखी... दुःखी... आनन्द का नाथ और सुख का भण्डार सुख का सागर आत्मा, उसके सामने नजर नहीं की और जो चीज़ उसमें नहीं, कर्म के संयोग की है, उसे अपनी माना। आहाहा!

इन्द्रियविषयजनित सुख-दुःख... पाँचों इन्द्रियों के (विषय)। कान से जो प्रशंसा हो, उसे सुने। आँख से रूप दिखाई दे, नाक से गन्ध सूँघे, रसना से रस का स्वाद लेने की वृत्ति हो और स्पर्श को भोगने की वृत्ति, वह सब पाँच इन्द्रिय के विषय हैं, वे सब। उनके विषयों में सुख-दुःख की **इत्यादि अनेक है, वह जितना कुछ है-कर्म संयोग की उपाधि है,...** वे सब दुश्मन का विस्तार है। आहाहा! सुन्दर शरीर मिले, पैसा मिले पाँच-पच्चीस लाख, स्त्री, पुत्र, वे सब दुश्मन, कर्म-दुश्मन की वह सब सामग्री है। आहाहा! वह तेरा स्वरूप नहीं, भगवान! आहाहा! तू जहाँ है वहाँ वे नहीं और वे जहाँ हैं, वहाँ तू नहीं। ऐसी बातें हैं। आहाहा!

कहते हैं, **सर्वथा जीव का स्वरूप नहीं है,...** देखा! कथंचित् शुभराग भी जीव का स्वरूप है और जीव को लाभ करे, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप (—ऐसा नहीं)। वह

सब कर्म का भाग है, बापू! भाई! तेरी जाति नहीं। तेरी जाति में वह कलंक है। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प, वह सब कलंक है। कर्म की सामग्री है। आहाहा! अरे! तुझे तेरी खबर नहीं होती। **जीव का (सर्वथा) स्वरूप नहीं है,... 'विबुध्यध्वं' ऐसा अवश्य कर जानो।** उसे अवश्य यह जानो। आहाहा! ऐसा तू अवश्य जान। आहाहा!

कैसा है मायाजाल? वह सब मायाजाल है। पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव, शरीर, वाणी, मन, पैसा, इज्जत, कीर्ति, स्त्री, पुत्र, परिवार, वह सब मायाजाल है, भाई! आहाहा! तुझे उसमें फँसा दिया है। उत्साह-उत्साह से फँस जाता है। आहाहा! हर्ष-हर्ष से हर्ष का सबडका लेकर वहाँ तू अन्दर घुस जाता है। आहाहा! जो सामग्री कर्म की, पुण्य और पाप के भाव चार गति, पाँच इन्द्रिय के अनुकूल विषय, वह सब कर्म की सामग्री में तू हर्षित हो गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : सब अनुकूलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी अनुकूलता नहीं। अनुकूल तो प्रभु आत्मा आनन्द, वह अनुकूल है और पुण्य और पाप का भाव, वह अनिष्ट और प्रतिकूल है। प्रवचनसार में आता है। पुण्य और पाप का भाव, वह अनिष्ट है। आहाहा! इष्ट तो भगवान आत्मा आनन्द का दल है। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर प्रभु है, भाई! तुझे खबर नहीं। तेरी बुद्धि पर्याय में रुक गयी है, इसलिए एक समय की पर्याय के पीछे प्रभु भगवान महत्, जिसकी महिमा का पार नहीं, जिसकी महिमा सर्वज्ञ भी पूरी वाणी द्वारा कह नहीं सकते, ऐसी तेरी अन्दर चीज़ है। आहाहा! उसे देखने को निवृत्ति-फुरसत नहीं मिलती। और ऐसा भी कहे बहुत तूफानी बारकस हो वे तो, अभी मरने की भी फुरसत नहीं, ऐसा कहे। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत जोरदार धन्धा चलता हो, तब ऐसा ही कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहे न! सब सुना है और सब देखा है। अभी मरने की भी फुरसत नहीं। बापू! मरने का देह होगा, तब तेरा मुँह फटा रहेगा। यह पैर नहीं चलेंगे, वहाँ पड़े रहेंगे। आहाहा! भगवान चला जायेगा बाहर भटकने। आहाहा!

कहते हैं कि सर्वथा यह मायाजाल है। किसमें? **जिसमें—कर्म का उदयजनित अशुद्ध पर्याय में...** देखो! कर्म के निमित्त से हुए अशुद्ध उपादान में पुण्य और पाप का जाल। आहाहा! **'अमी रागिणः' प्रत्यक्षरूप से विद्यमान हैं जो पर्यायमात्र में राग करनेवाले जीव...** आहाहा! प्रत्यक्ष राग, पुण्य दया और वर्तमान पर्याय जो व्यक्त प्रगट अंश है, उसमें प्रत्यक्ष मायाजाल में तू प्रत्यक्ष विद्यमान में रचपच गया है। शान्तिभाई! अरे... अरे! ऐसी बात है। 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन, परन्तु मतमदिरा के पान सो...' 'घट घट अन्तर जिन बसे' प्रभु! अन्दर जिनस्वरूप विराजमान घट में तू प्रभु है। और 'घट घट अन्तर जैन।' जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। यह पर्यायबुद्धि छोड़कर वस्तु की दृष्टि करना और अनुभव करना, वह जैन है। आहाहा! 'परन्तु मतमदिरा के पान सो...' अपने मत की मदिरा के पीने से गहल-पागल हो गया है। 'मतवाला समझे न' वह मत की मदिरा पीने से प्रभु को समझता नहीं। आहाहा!

तीन लोक का नाथ जगत में तीन काल का जाननेवाला ऐसा आनन्द का नाथ चैतन्य प्रभु, उसे मतवाला समझे न। मत की मदिरा जिसने पी है। पुण्य, वह मैं और पुण्य के फल यह धूल आदि पाँच-पचास लाख वे मेरे, ऐसे मतवाला-मत की मदिरा पीये हुए, वे मतवाला चैतन्य को समझते नहीं। शान्तिभाई! पानाचन्दभाई! ऐसा है, बापू! आहाहा!

भगवान है न, बापू! आहाहा! शरीर, वाणी न देख, नाथ! पुण्य-पाप के भाव भी न देख। प्रभु अन्दर परमात्मा विराजता है। तू परमात्मा है। अरे! कैसे जँचे? आहाहा! स्वभाव और शक्ति सत्त्व तेरा, उसमें सत्त्व नहीं आया था? मुमुक्षु जीव का सत्त्व... नहीं? आहाहा! स्तुति में यह शब्द आया था। भगवान आत्मा का सत्त्व, वह प्रभु स्वयं सत् है। त्रिकाली अविनाशी अनाकुल आनन्द का कन्द है। उसका सत्त्व अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, वह सत् का सत्त्व अपरिमित शक्ति का भण्डार है। आहाहा! अरे! तूने तेरी पर्यायबुद्धि के कारण उसे देखा नहीं तूने। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

कर्म का उदयजनित अशुद्ध पर्याय में... 'आसंसारात् सुप्ताः' बाद में लेंगे। **प्रत्यक्षरूप से विद्यमान हैं जो पर्यायमात्र में राग करनेवाले जीव...** क्योंकि उसे प्रत्यक्ष

यही लगता है कि यह पुण्य और दया, दान, व्रत और विकल्प तथा उनका फल, उसे प्रत्यक्ष भासित होते हैं। भगवान परोक्ष रह गया अन्दर उसे। आहाहा! **प्रत्यक्षरूप से विद्यमान हैं जो पर्यायमात्र में राग करनेवाले जीव... 'आसंसारात्' 'आसंसारात्'** कब से है यह सब? **'अनादि काल से सो रहा है...** आहाहा! अनादि काल से पुण्य और पाप के भाव और उसके फल में सो गया है। आहाहा! निद्रा में सो रहे हैं। घोर निद्रा में सो गये हैं। आहाहा! बाहर की मिठास... आहाहा! शास्त्र के पठन की मिठास भी मिथ्यात्व है। आहाहा! जहाँ अन्दर भगवान आनन्द का नाथ (विराजता है), जिसे पर की कोई अपेक्षा नहीं, ऐसा निरपेक्ष तत्त्व प्रभु अन्दर विराजता है। ऐसे तत्त्व के भान बिना प्रत्यक्ष पर्याय में रत हो गये हैं। आहाहा! है?

अनादिकाल से लेकर-उसरूप अपने को अनुभवते हैं। आहाहा! **'आसंसारात्' 'प्रतिपदम्'** अनादि संसार से जीव इस अवस्था में पड़े हैं। आहाहा! भगवान को भूल गये हैं। अपना भगवत्स्वरूप है अन्दर। आहाहा! उसे वह भूल गया है। **उसरूप अपने को जानता है—अनुभवते हैं।** रागरूप, गतिरूप, देवपना। मैं देव हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं रानी हूँ, मैं राजा हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं पण्डित हूँ। आहाहा! ऐसी पर्याय में मुझे अनुकूलता के ढ़ेर हैं। किसके हैं ढ़ेर? प्रभु! यह तो सब दुश्मन के-शत्रु के ढ़ेर हैं। आहाहा! भाई! तुझे तेरे सत्जन की खबर नहीं। आहाहा! गाथा तो गाथा है न! एक बार तो उछल निकले ऐसा है। सब पानी निकल जाये ऐसा है। आहाहा!

यहाँ तो यह पुकार करते हैं कि अनादि काल से ऐसे स्वाद को (अनुभव करता है)। स्वाद अर्थात्? यह पुण्य और पाप का भाव तथा राग और द्वेष का स्वाद लेकर, भगवान के आनन्द के स्वाद को भूल गया है। समझ में आया? यह तो कल सब आया था। आज तो रविवार है, नये कोई आये हों, इसलिए फिर से लिया है। आहाहा! **ऐसे स्वाद को सर्व मिथ्यादृष्टि जीव आस्वादते हैं...** आहाहा! मैं मनुष्य हूँ, राजा हूँ, रानी हूँ, स्त्री हूँ, देव हूँ, मैं पुण्यवाला हूँ, मैं पापवाला हूँ—ऐसे जहर के स्वाद को सर्व जीव स्वादते हैं। समझ में आया? आहाहा! क्या स्वादते हैं? कि **मैं देव हूँ,...** देखो! **मनुष्य हूँ, सुखी हूँ,...** अभी बहुत सुखी हूँ। पाँच-पचास लाख पैसा है, लड़के-बड़के कमाऊ हैं, स्त्री भी अच्छे ठिकाने से आयी है, पाँच-पच्चीस लाख लायी है। हम सुखी हैं।

आहाहा! मूर्ख के कहीं गाडा अलग होते हैं? कहते हैं।

मुमुक्षु : पुण्य को योग हो, तब सब व्यवस्थित दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब धूल में भी व्यवस्थित नहीं। पाप का पोटला है सामने सब। दुश्मन ने घेरा डाला है और प्रसन्न हुआ है कि मुझे दुश्मन ने घेरा डाला। नटुभाई! ऐसी बातें हैं। यह पूर्व के बाँधे हुए कर्म, उस दुश्मन ने घेरा डाला है। पैसा, स्त्री, पुत्र, मकान, पाँच-पचास लाख के मकान-बड़े बँगले, उसमें पाँच-दस लाख का घर प्रयोग का फर्नीचर। आहाहा!

मुमुक्षु : वह अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण रखना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धूल में स्थिति। यह कहा नहीं था मैंने अभी? गत वर्ष गये थे मुम्बई। नहीं? मुम्बई? एक तो बेचारा विजयकुमार था। गुना का जवान लड़का। बहुत प्रेमी था। यहाँ महीने-महीने कुँवारा (था, तब) रह जाता था। विवाह किया और फिर रह जाता था। बारह महीने का विवाहित। लड़का भी होशियार। गुना का था। टाटा में बड़ी नौकरी। वहाँ दर्शन देने गये थे। तब तो ठीक नहीं था। तो फिर आया था दर्शन करने दादर में। किडनी का दर्द था। उसकी माँ ने किडनी दी। लड़का मर गया। ऐसा लड़का था। छोटी उम्र जवान परन्तु शास्त्र का रस और विवाह से पहले और विवाह के बाद भी (यहाँ रहता था, उसे) दर्शन के लिये, गये थे तब शाम का हमारा आहार था, मणिभाई के यहाँ। शान्ताबहिन के बहिन के ननदोई थे वहाँ। पाँच-छह करोड़ रुपये मुम्बई में। उनके यहाँ आहार था। तो आहार करके फिर चरण कराये। चारों ओर मखमल बिछा हुआ। बहुत वे... क्या कहलाते हैं तुम्हारे? कमरा-कमरा। मखमल... मखमल... मखमल... पाँच लाख का तो मात्र बाहर का फर्नीचर होगा। मुझे तो देखकर ऐसा हुआ... फर्नीचर कहो यह सब। मुझे तो ऐसा हुआ कि अरेरे! इसमें से निकलना कठिन पड़ेगा, भाई! वहाँ दृष्टि को चिपका दिया है, उसमें से निकलना (कठिन) पड़ेगा। हाय... हाय... जंगल का वास करना पड़ेगा, बापू! यह छोड़कर। आहाहा! कोई जहाँ तेरा नहीं। तुझे कोई पहिचाननेवाला नहीं, तू किसी को पहिचाननेवाला नहीं। ऐसी (जगह) जाकर जन्मेगा कहीं ढोर में। आहाहा! निकलना कठिन पड़ेगा, बापू!

मुमुक्षु : जहाँ गया होगा न, वहाँ भी मेरापन करेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ कौन है वापस? यहाँ से मेरापन लेकर गया तो वहाँ भी मेरापन करेगा। आहाहा! ज्योतिषी ने राजा को कहा था कि तुम मरकर पिल्ला होओगे। कुत्ती का बच्चा। हें! मैं कुत्ती का बच्चा होऊँ तो मुझे आकर मार डालना। राजा मरकर कुत्ती का बच्चा हुआ। क्योंकि बड़े पाप। बेचारा कोई नरम व्यक्ति होगा। बहुत पाप नहीं किये हों। नहीं तो नरक में जाये। परन्तु बहुत तिर्यंच-पशु में जानेवाले हैं। पशु की पंचेन्द्रिय की संख्या इतनी अधिक शास्त्र में वर्णन करते हैं कि बहुत तो माँस न खाये, शराब न पीवे, इसलिए नरक में तो न जाये। तथा धर्म की खबर नहीं होती कि धर्म क्या? तथा धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य चाहिए, एक दिन में बारह महीने में प्रतिदिन दो-चार घण्टे, चार घण्टे सत्समागम, सत्श्रवण, वाँचन-मनन का पुण्य (चाहिए), उसका भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! ऐसे मरकर तो लगभग ऐसे पिल्ले और बकरी के बच्चे और गिलहरी के गर्भ में सब अवतरित होनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं। **सुखी हूँ, दुःखी हूँ, ऐसा पर्यायमात्र को आपा अनुभवते हैं, इसलिए सर्व जीवराशि जैसा अनुभवती है, सो सर्व झूठा है,...** आहाहा! सत्य प्रभु अन्दर विराजता है, वह रह गया और असत्य... आहाहा! इस सामग्री के अनुभव में अनन्त काल व्यतीत किया। आहाहा! अवसर मिला, तब भूल गया। बाहर में फँस गया। समझ में आया? आहाहा! यह अनादि काल से ऐसे झूठे... **जीव का तो स्वरूप नहीं।** शुभ-अशुभभाव और उनका फल, वह कोई जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा!

कैसी है सर्व जीवराशि? 'प्रतिपदं नित्यमत्ताः' जैसी पर्याय ली (धारण की) उसीरूप ऐसे मतवाले हुए... जो जो अवस्था इसे प्राप्त हुई... आहाहा! ढेढ की अवस्था मिली, बाघरी की मिली, कुत्ते की मिली, सिंह की मिली। वहाँ-वहाँ उस-उस पर्याय को मेरा मानकर तल्लीन हो गया है। है? **जैसी पर्याय ली उसीरूप ऐसे मतवाले हुए...** अभिप्राय में यह मैं हूँ, यह मैं हूँ। सिंह का शरीर मिला तो मैं सिंह हूँ, स्त्री का शरीर मिला तो कहे मैं स्त्री हूँ, पुरुष का शरीर मिला तो कहे मैं पुरुष हूँ। आहाहा! निम्न जाति की स्त्री का शरीर मिला तो कहे मैं बाघरी हूँ। अरे! बापू! यह तो सब सामग्री, वह तू नहीं। पैसे की सामग्री मिली तो कहे, मैं सेठ हूँ। निर्धनता-खाने को ग्रास मिलना

मुश्किल पड़े, तब कहे, अरे! मैं निर्धन हूँ। आहाहा! यह सब सामग्री मायाजाल है।

जैसी पर्याय ली (धारण की) उसीरूप ऐसे मतवाले हुए कि कोई काल कोई उपाय करने पर मतवाला उतरता नहीं। आहाहा! मदिरा पी है ऐसे। मिथ्याश्रद्धा की मदिरा पीकर ऐसे मतवाला हो गया है, कहते हैं। आहाहा! साधु हुआ तो भी उस राग का रागी, उस व्रत को, तप को, भक्ति का भाव, वह राग। उस राग का रागी मतवाला पागल मिथ्यादृष्टि है। ऐसी बातें हैं। आहाहा! **कोई काल कोई उपाय करने पर...** आहाहा! भगवान के समवसरण में जाकर आया, परन्तु उसके अभिप्राय और पर्यायबुद्धि को छोड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध चैतन्यस्वरूप जैसा है, वैसा दिखलाते हैं—'इतः एत एत' कल यहाँ तक आया था। आधा घण्टा हुआ। कल तो अभी पहला (था)। पहला हो इसमें... आहाहा! **पर्यायमात्र अवधारा है आपा, ऐसे मार्ग मत जाओ...** आहाहा! प्रभु का पुकार है। **'इतः एत एत'** उस पर्याय मार्ग में न जाओ... न जाओ। आहाहा! वह पर्याय पुण्य-पाप के भाव की दशा और वर्तमान ज्ञान की उघाड़ दशा और बाहर की सामग्री, उस पर्याय मार्ग में न जा, नाथ! तू वहाँ न जा। तुझे वहाँ लूट पड़ती है, बापू! तेरे स्वभाव की लूट पड़ती है। आहाहा!

(संवत्) १९८४ के वर्ष में राणपुर में चातुर्मास था। फिर बाहर में एक ढेढ खाट भरने आया था। क्या कहलाता है? खाट भरने (बुनने) आया था। भरा। खाट भरते-भरते समय हो गया। दस-ग्यारह (बजे) स्त्री आयी, रोटियाँ लायी, छाछ लायी, लड़का आया, लड़की आयी। खाते थे परन्तु मानो चक्रवर्ती का राज हो, ऐसा लगे। आहाहा! मैं ऐसे उपाश्रय में बैठा हुआ और नीचे वे। लड़की और लड़का तथा स्त्री और सब नीचे। प्रसन्न-प्रसन्न। क्या है परन्तु प्रभु यह तुझे? तू कहाँ का रहनेवाला? कहाँ का रहनेवाला? किसकी सम्पदा का स्वामी और कहाँ लेकर रुका प्रभु तू? आहाहा! सुजानमलजी! आहाहा! यह १९८४ की बात है। आहाहा! कहा, देखो न! छाछ का दोना और रोटी खाते थे। सब तीन-चार जनें इकट्ठे होकर—लड़की, लड़का, स्त्री। इसी प्रकार यह सब शत्रु का झुण्ड इकट्ठा हुआ। शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि सब कुटुम्ब,

स्त्री, पुत्र मिले हैं, वह आजीविका की ठगों की टोली तुझे मिली है। ठगों की टोली मिली है तुझे। मेरा-मरा करके तुझे मार डालेंगे। आहाहा! ऐसा कैसा?

मुमुक्षु : उसे यह मिला वह ठग मिला है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ठग है यह भी। उसकी अनुकूलता के लिये मिथ्या प्रयास करता है। आहाहा!

भगवान अन्दर चैतन्यस्वरूपी ज्ञाता-दृष्टा आनन्द का सागर अन्दर डोलता है। अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल / लबालब भरा है, प्रभु! आहा! उसके सन्मुख देखता नहीं और जिसमें तू नहीं, वहाँ पर्यायमात्र में रुक गया, प्रभु! आहाहा! अब **पर्यायमात्र अवधारा है आपा, ऐसे मार्ग मत जाओ,...** आहाहा! उस बाहर के पन्थ में न जा, नाथ! तू हैरान होकर मर गया है। अनन्त अवतार हुए। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, व्रतादि भाव भी सब बाहर हैं, हों! आहा! संस्कृत टीका में डाला है। व्रतादि अपद में (डाले हैं)। आहाहा! यह व्रत, नियम, तप और अपवास करे तो ऐसा हो जाये कि आहाहा! और लोग महिमा करे तपस्वी है, मान दो, शोभायात्रा निकालो। वडघोळा है सब। आहाहा!

भाई! यहाँ तो कहते हैं कि यह पुण्य और पाप के परिणाम और उनके फल, उस ओर न जा, नाथ! न जा, उसमें न जा, भाई! वह सब दुश्मन का विस्तार है। उसमें फँस जायेगा, भाई! आहाहा! भगवानजीभाई! आहाहा! मुम्बई किया परन्तु ठीक सा न आया, वह लड़का नहीं आया तो यहाँ से समेटकर अब वहाँ जायेंगे। क्या करना परन्तु तब? एक लड़का आया और एक लड़का नहीं आया, तो करना क्या? यह तो दृष्टान्त है। ऐसा ही अन्दर अटपटा ऐसी चीज़ संसार है। ऐसे मानो देश में रहूँगा तो अपने होंगे। और वहाँ से छुटकारा होगा, वह कहीं यहाँ आया नहीं, यह कहे, मैं अकेला कर नहीं सकता। चलो वहाँ वापस भटकने। ऐसा है न अनादि से। ऐसा ही है, बापू! कुछ... कुछ... कुछ... ऐसे इसे साधन मिल जाते हैं और उसमें रुक जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : संसार में अनेक उपाधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेक-अनेक उपाधि, बापू! यह तो एक दृष्टान्त सबको चारों ओर की (उपाधि) आहाहा! चालीस करोड़ का स्वामी शाहूजी २७ तारीख को सवेरे

(गुजर गये)। चालीस करोड़ रुपये होंगे, उसे कितने साधन होंगे? चालीस लाख का तो बँगला था। आहाहा! अकेले। स्त्री पहले मर गयी, दो-तीन वर्ष पहले। ऐसा है। स्वयं दिगम्बर (समाज) के प्रमुख गिने जाते हैं। ऐसे नरम व्यक्ति बेचारा। अभी यहाँ आये थे। लड़के की बहू रजनीश को मानती है। छोटा लड़का कुछ दूसरे रास्ते चढ़ गया है। आहाहा! धन्धा-व्यापार बड़ा कारखाना देखो तो कलकत्ता में बड़े-बड़े कारखाने। चालीस करोड़ रुपये अर्थात्! अरे! अकेले चले गये हैं। देह छूट गयी। जाओ। बड़े डॉक्टर उनके घर में पड़े ही हों। ... कौन रखे? भाई! आहाहा!

भगवान यहाँ पुकारते हैं कि उस पर्याय के रास्ते न जा। आहाहा! पर्याय के रास्ते अर्थात् वर्तमान जो पर्याय उघड़ी हुई है, उस रास्ते न जा। आहाहा! और राग और द्वेष तथा उनके फलरूप से सब पर्यायदृष्टि का फल यह सब। उसमें न जा, भाई! तुझे घायल कर डालते हैं अन्दर। आहाहा! तेरी शान्ति की पर्याय को छुरा पड़ते हैं, चोट पड़ती है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! है? **पर्यायमात्र अवधारा है...** देखा! स्वयं को पर्यायमात्र जाना है। एक समय की पर्याय और रागवाला तथा राग के फलवाला। बस। आहाहा!

ऐसे मार्ग मत जाओ, मत जाओ,... दो बार कहा है। पाठ में है, हों! '**इतः एत एत**' है न? **मत जाओ, मत जाओ....** भाई! वहाँ तू दुःखी होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **क्योंकि तेरा मार्ग नहीं है, नहीं है।** आहाहा! एक समय की उघड़ी हुई पर्याय और पुण्य-पाप के भाव, वे तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! वह तेरा मार्ग नहीं। आहाहा! सन्तों की करुणा है जगत पर, भाई! तू कहाँ जाता है? आहाहा!

इस मार्ग पर आओ, अरे! आओ,... आहाहा! '**एत एत**' यहाँ आओ... यहाँ आओ, प्रभु! अन्दर भगवान विराजता है आनन्द का नाथ, वहाँ आओ न! आहाहा! जहाँ कहीं यह कर्म की उपाधि और रागादि नहीं, ऐसा भगवान अन्दर विराजता है अनादि शाश्वत्। जैसे अनादि पर्यायबुद्धि में रुका हुआ है, वैसे अनादि से ऐसी की ऐसी चीज़ पड़ी है। आहाहा! गहरे कुएँ में उतारा है आत्मा को।

पति मर जाये न? फिर बहू रोवे, छोटी स्त्री रोवे। सब सुना हुआ है। हमारे घर में हुआ था। (संवत्) १९५७ के वर्ष। हमारे बड़े भाई थे होशियार, बहुत रूपवान। १९५७ की बात है, हों! मुम्बई का पानी लगा हुआ। और मेरी उम्र तो उस समय तो

ग्यारह वर्ष की। ५७ के वर्ष। वह स्त्री बहुत रोवे। बड़े भाई गुजर गये तब। आहाहा! अरे! गहरे कुँए उतार दिया और डोरी काट दी। यह किया... ऐसा करके रोवे। पानाचन्दभाई! यह तो सब सुना है न! घर में बना हुआ है। बड़े भाई थे बहुत रूपवान, होशियार बहुत थे। बहुत होशियार। मुम्बई में नौकरी थी। लाठीवाला सोनी नहीं? रामजी भगवान है। लाठीवाला। खबर है। तब हमको खबर। मुझे तो ग्यारह वर्ष की छोटी उम्र से बहुत खबर है। उसमें उन्हें नौकरी थी। उसमें पानी लगा और देह छूट गया। शाम का समय। हम सब छोटी उम्र के। ग्यारह वर्ष की। मुझसे छोटा था वह नौ वर्ष का। यहाँ से चले जाओ मामा के घर। यह १९५७ की बात है। घर में मामा का परिवार सब पैसेवाला, इज्जतवाला, दुकानें, मकान, बहुत पैसेवाले थे। वहाँ जाओ। यहाँ रहने दो। भाई को ठीक नहीं तो चले जाओ। आहाहा! और वह फिर स्त्री रोवे। गहरे कुँए उतारकर डोरी काटी। यह कुँए में डालते हैं न? परन्तु यह गहरे कुँए चार गति में जाकर तूने शान्ति को काट डाला है, बापू! आहा! भाई! तुझे आनन्द का नाथ बादशाह हाथ न आया और यह रंकाई की चीज़ें तुझे हाथ आयी। हें! आहाहा! भाई! यहाँ आओ... यहाँ आओ। है?

क्योंकि (वह) तेरा मार्ग नहीं है, नहीं है। इस मार्ग पर आओ, अरे! आओ,... '**एत एत**' इस ओर आओ, इस ओर आओ, भाई! क्यों? क्योंकि '**इदं पदं इदं पदं**' आहाहा! **तेरा मार्ग यहाँ है, यहाँ है...** आहाहा! अन्दर ज्ञानानन्द भगवान शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण की बस्ती का घर है। अनन्त गुण की बस्ती का यह देश है। आहाहा! इस स्वदेश में आओ, आओ, परदेश से हट जा। दो-दो बार कहा। आहाहा! **तेरा मार्ग यहाँ है, यहाँ है...** '**यत्र चैतन्यधातुः**' कहाँ? क्या? **चेतनामात्र वस्तु का स्वरूप है।** आहाहा! वह तो चेतना जानन-देखन स्वभाव का स्वरूप उसका है। उसमें एक समय की पर्याय भी नहीं, उसमें पुण्य और पाप नहीं और उसके फल, वह वस्तु में नहीं। ऐसा चैतन्यस्वरूप अन्दर शाश्वत् विराजता है। अनादि-अनन्त चैतन्यस्वभावी भगवान, वहाँ आओ रे आओ! समझ में आया? सिर घूम जाये ऐसा है एक बार तो जरा। आहाहा! भाई! तुझे कैसे रुचता है? उस अरुचिकर चीज़ में तुझे प्रभु सुहाता है? और सुहाती चीज़ में क्यों नहीं आता अन्दर? आहाहा! आहाहा! दो-दो बार कहा है, हों! वहाँ से हट जा, वह मार्ग नहीं, वह मार्ग नहीं और यहाँ आ जा, यहाँ आ जा। भगवानजीभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : अनादि का भूला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ चिपटा है और क्या है, इसकी कुछ खबर नहीं। आहाहा! थैली में हवा भरे, वह हवा न रहे। ऐसे पकड़ रखने से वह वस्तु नहीं रह सकती, वह वस्तु तो नाशवान है। आहाहा! नित्य भगवान अन्दर नित्य आनन्दस्वरूप आत्मा है। उस नित्य में आ जा। वहाँ आ जा, प्रभु! वहाँ आ जा। अनित्य में से हट जा, वहाँ से हट जा। आहाहा! लो! यह रविवार के कारण, मनसुखभाई! यह तुम्हारे कारण यह सब रामजीभाई कहे, फिर से लेना है। यह रविवार है। आहाहा!

अन्दर भगवान विराजता है, प्रभु पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्दस्वरूप है। तेरा भगवान तुझसे भिन्न कहीं नहीं है। तुझे तेरी महिमा के माहात्म्य की प्रभु! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! दो बार कहा? **इस मार्ग पर आओ, अरे! आओ, क्योंकि तेरा मार्ग यहाँ है, यहाँ है,...** कैसा? कि **जिसमें चेतनामात्र वस्तु का स्वरूप है।** वह तेरा मार्ग है। जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... चेतना... चेतना... चेतना... चेतना... चेतना... चेतना... अनादि-अनन्त ऐसा जो चेतनास्वरूप भगवान तेरा है, वहाँ आ जा। तुझे आनन्द होगा, तुझे शान्ति मिलेगी, तुझे भव का अन्त आयेगा। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहा यह? '**चैतन्यधातुः**' कही? अर्थात् क्या कहा? कि जैसे सोना धातु है न? सोनापन धार रखा है। उसी प्रकार यह भगवान चैतन्यधातु है। इसने चेतनारूपी धातु धार रखी है। इसने पुण्य-पाप और राग, वह कुछ धार नहीं रखा, वह इसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **जहाँ चेतनामात्र...** भाषा देखी! '**चैतन्यधातुः**' इसका अर्थ **चेतनामात्र वस्तु का स्वरूप है।** ऐसा। आहाहा! **कैसा है?** स्वरूप भगवान अन्दर? '**शुद्धः शुद्धः**' आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। तेरा नाथ अन्दर आनन्द का सागर सच्चिदानन्द प्रभु... आहाहा! वह शुद्ध है—वस्तु से शुद्ध है और कर्म के निमित्त से होते विकार से भी भिन्न शुद्ध है। दो बार कहा न? समझ में आया? आहाहा! सन्तों की, दिगम्बर सन्तों की बलिहारी है। आहाहा! जगत के समक्ष सत्य रखने की रीति और असत्य से हटने की रीति बताना। आहाहा!

कैसा है? स्वरूप तेरा? **सर्वथा प्रकार से सर्व उपाधि से रहित है।** अन्दर

भगवान। चैतन्यधातु जिसने चेतना-चेतना, जानना-देखना ऐसे स्वभाव को धार रखा है। उसमें दूसरा पुण्य और पाप, संसारगति-फति उसमें है नहीं। आहाहा! जिसमें व्रत के विकल्प की वृत्ति भी जिसमें नहीं। वह तो चेतनधातु जानन-देखन, जानन-देखन— ज्ञाता-दृष्टा। ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव से भरपूर-धारा हुआ तत्त्व वह है। आहाहा! एक बार तो इसे संसार के हर्ष का रस उतर जाये ऐसा है। पंकज को तीन लड़के, यह सब है। नीचे बैठकर फिर बातें करते हों। बापूजी यह है और बापूजी यह है। आहाहा! क्या है यह सब मधुलार।

मुमुक्षु : मायाजाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : मायाजाल कही न? मायाजाल। आहाहा!

चेतनामात्र वस्तु का स्वरूप है। कैसा है? सर्वथा प्रकार सर्व उपाधि से रहित है। 'शुद्ध शुद्ध' दो बार कहकर अत्यन्त गाढ़ किया है। आहाहा! प्रभु! तू शुद्ध है, अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है। जो परमात्मा का स्वरूप तुझे ज्ञान में आता है कि भगवान ऐसे हैं और भगवान ऐसे हैं। वह सब पर्याय में प्रगट किये हुए, परन्तु तेरा स्वरूप ही ऐसा है अन्दर। आहाहा! अरे! सच्चा सुनने को मिले नहीं। सच्चा सुनने के लिये निवृत्ति मिलती नहीं, वह कब समझे? आँख बन्द करके चला जाता है। चला जाता है। वह वापस उसे कोई रोता नहीं कि कहाँ मरकर पशु में गया या नहीं? आहाहा! पिता ढोर में गया या पुत्र ढोर में गया पशु में, उसे हमारे स्नान क्या आवे? हमारी सुविधा गयी, उसे वह रोता है। अरर! ऐसा संसार, बापू! सब ऐसा ही है यह तो।

यहाँ कहते हैं, **अत्यन्त गाढ़ किया है। और केसा है? 'स्थायिभावत्वं एति'** आहाहा! वह तो स्थायी भाव को प्राप्त वस्तु है। **अविनश्वरभाव को...** प्राप्त आत्मा अन्दर वस्तु है। स्थायी। लोग नहीं कहते कि स्थायी भाव किया इस दुकान ने? या आओ-जाओ करते हो या स्थायी किया? आहाहा! यह स्थायी भाव। स्थिर भाव, अविनश्वरभाव नित्यानन्द प्रभु। अनुत्पन्न हुआ अविनाशी ऐसा उसका अनादि अनन्त नित्य आनन्द स्वभाव... आहाहा! **अविनश्वरभाव को पाता है।** स्थायी अर्थात् अविनश्वर गिना। स्थिर भाव को प्राप्त है अन्दर। स्थिर है, ध्रुव है। भगवान अन्दर स्वभाव से ध्रुव है।

स्थिरपने को प्राप्त है। अविनश्वरपने को प्राप्त है वह। आहाहा! वहाँ आ जा एकबार, कहते हैं। आहाहा!

वास्तव में तो पर्याय नाशवान गिनी है। केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान गिनी है। धर्म की पर्याय है एक समय की पर्याय है, वह भी नाशवान है। वस्तु तो स्थायी है न? आहाहा!

नित्यानन्द प्रभु अन्दर वीतराग परमेश्वर जिनेश्वरदेव जिनेन्द्रों ने जिन्होंने आत्मा प्रगट किया, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति, अनन्त दर्शन इन सब पर्यायों में अनन्तता आयी, वह आयी कहाँ से? प्रभु! कहीं बाहर से आती है? वह अन्दर में पड़ी है। प्रभु! तेरे स्वभाव में पूर्ण सब पड़ा है। आहाहा! वह स्थिर भाव पड़ा है अन्दर, ध्रुव भाव पड़ा है अन्दर। आहाहा! पर्याय की एक समय की अवस्था को भी उड़ा देते हैं अभी तो। आहाहा! स्थिरभावपने को प्राप्त वस्तु अन्दर है न। है जैसी है, वैसी अविनाशी वहाँ जा न! आहाहा! अन्दर में जा। बाहर में से छोड़ दे।

मुमुक्षु : सच्चा रास्ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग है।

'स्थायिभावत्वं एति' अविनश्वरभाव को पाता है। वस्तु ऐसी है। ध्रुव के ध्यान में ध्येय को लेकर... आहाहा! ध्रुवधाम भगवान आत्मा को ध्यान का विषय बना, उसे वर्तमान ध्यान की पर्याय का विषय कर। यह संस्कृत में है। पर्याय का विषय छोड़ दे। आहाहा! और त्रिकाली नाथ अन्दर अविनाशी ध्रुव विराजता है, अनन्त शक्ति का सागर... आहाहा! वहाँ नजर कर। उसे तू प्राप्त कर जो स्थिर वस्तु अन्दर पड़ी है। आहाहा! वह सत् है। वह सच्चिदानन्द है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पूर है। भाई! तुझे खबर नहीं। अरूपी और रूपी दो के बीच में विभाजन करने से, यह अरूपी महासागर का समुद्र अन्दर विराजता है। आहाहा! अरेरे! सुनने का समय मिलता नहीं, सुनना मिलता नहीं, वह कहाँ जाये? क्या करे? आहाहा!

किस कारण से? 'स्वरसभरतः' चेतनास्वरूप के... देखो! **'स्वरस'** है न? वह चेतना का रस अन्दर भरा है, कहते हैं। यह पुण्य-पाप के रस से खाली चीज़ है। पुण्य-

पाप के स्वाद में जो पड़ा है अनादि से, उसके स्वाद से यह खाली चीज़ है। चेतना के रस से भरपूर हैं। आहाहा! जिसमें चेतनारस। इसमें लीन होने से तुझे आनन्द आवे, ऐसा चेतनारस से भरपूर भगवान है। अरे! ऐसी बातें। यहाँ तो अधिक क्या कहना है? **चेतनास्वरूप के... 'भरतः' भार से...** अर्थात् क्या कहते हैं? यह चेतनास्वरूप कहनेमात्र नहीं है, ऐसा कहते हैं। चेतनास्वरूप वस्तुस्वरूप है। आहाहा! चेतना कहनेमात्र नहीं। '**भरतः**' भरपूर स्वभाव से स्थित है। आहाहा! अतिशय से, संस्कृत में ऐसा अर्थ किया है। भरपूर का अर्थ। अनुभव के अतिशय से शोभित है भगवान। आहाहा! '**भरतः**' यह कहते हैं, चेतनावस्तु चेतनस्वरूप वस्तु स्वभाव, ध्रुव, वह कहनेमात्र नहीं है। आहाहा! सत्स्वरूप वस्तु है। अन्दर सत्यस्वरूप प्रभु अविनाशी अनादि-अनन्त, चिदानन्द भगवान अनादि-अनन्त स्वरस से भरपूर वस्तुस्वरूप है। आहाहा! अरे! उसके घर की खबर नहीं होती और परघर की सब लगायी है। वे नहीं कहते कि 'घर के लड़के चक्की चाटे और पड़ोसी को आटा' कहावत है न अपने? घर के लड़के चक्क चाटे और पड़ोसी को आटा। उसे आटा दो। इसी प्रकार यह पुण्य, पाप और यह सब। परन्तु तेरे घर के लड़के चक्की चाटते हैं। राग को चाटते हैं अन्दर। स्वभाव की तो उन्हें खबर नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है फिर यह सोनगढ़वाले तो अकेली निश्चय की बातें करते हैं। व्रत करना और तप करना, (यह तो कुछ कहते नहीं)।

मुमुक्षु : निश्चय में व्यवहार आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निश्चय का निर्णय किया, यही पर्याय व्यवहार है। पर्यायमात्र व्यवहार है। आहाहा! परन्तु पर्याय के लक्ष्य से पर्याय का निर्णय नहीं होता। आहाहा! जहाँ अन्दर पूर्ण वस्तु है, वहाँ नजर करने से उसका निर्णय होता है। आहाहा!

यह '**भरतः**' वस्तु स्वरूप है। **इसलिए नित्य शाश्वत् है। भावार्थ इस प्रकार है— जिसको-पर्याय को मिथ्यादृष्टि जीव आपा कर जानता है, वे तो सर्व विनाशीक हैं, इसलिए जीव का स्वरूप नहीं हैं। चेतनामात्र अविनाशी है, इसलिए जीव का स्वरूप है।** चेतना अविनाशी जानन... जानन... जानन... देखन, ऐसा उसका स्वभाव, वह अविनाशी जीव का स्वरूप है। इसलिए वहाँ नजर कर तो तुझे समकित होगा। सच्ची दृष्टि की वहाँ नजर होगी, ऐसा कहते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक-०७-११-१९७७, कलश-१३८ से १४०, प्रवचन-१४२

कलशटीका १३८ कलश की अन्तिम ढाई लाईन है। भावार्थ। भावार्थ। १३८ कलश। अन्तिम है न? अन्तिम भावार्थ।

जिसको-पर्याय को... पर्याय अर्थात् शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप आदि जो वस्तु है। भिन्न चीज़ है। वह अपनी नहीं। ऐसी **पर्याय को मिथ्यादृष्टि जीव आपा कर जानता है...** शरीर को, वाणी को, राग को, पुण्य-पाप के भाव को जो जीव अनादि से मिथ्यादृष्टि अपनेरूप जानता है, **वे तो सर्व विनाशीक हैं,...** वह तो सब नाशवान है। **इसलिए जीव का स्वरूप नहीं हैं।** वह भगवान आत्मा का स्वरूप वह नहीं है।

चेतनामात्र अविनाशी है,... भगवान तो चेतनामात्र है। भेद भी नहीं। चेतनामात्र स्वभाव। जैसे वस्तु त्रिकाल है, वैसे उसका चेतनास्वभाव जानना-देखना, वह स्वभाव भी त्रिकाल है। वह **चेतनामात्र अविनाशी है,...** बाकी सब राग दया, दान, व्रतादि के विकल्प सब नाशवान हैं। आहाहा! **इसलिए जीव का स्वरूप है।** चेतनामात्र अविनाशी जीव का स्वरूप है। परन्तु पुण्य और पाप के भाव और उसके फलरूप से शरीरादि (मिले) वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं। ऐसी संक्षिप्त बात पहले कह गये हैं। भावार्थ कहा।

कलश-१३९

(अनुष्टुप्)

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः।।७-१३९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'तत्पदं स्वाद्यं' [तत्] शुद्धचैतन्यमात्र वस्तुरूप [पदं] मोक्ष के कारण का [स्वाद्यं] निरन्तर अनुभव करना। कैसा है? 'हि एकं एव' [हि] निश्चय से [एकं एव] समस्त भेद-विकल्प से रहित, निर्विकल्प वस्तुमात्र है। और कैसा है? 'विपदां अपदं' [विपदां] चतुर्गति संसार-सम्बन्धी नाना प्रकार के दुःखों का [अपदं] अभावलक्षण है। भावार्थ इस प्रकार है—आत्मा, सुखस्वरूप है। साता-असाताकर्म के उदय के संयोग से होते हैं जो सुख-दुःख, सो जीव का स्वरूप नहीं है; कर्म की उपाधि है। और कैसा है? 'यत्पुरः अन्यानि पदानि अपदानि एव भासन्ते' [यत्पुरः] जिस शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप आस्वाद आने पर, [अन्यानि पदानि] चार गति की पर्याय, राग-द्वेष-मोह, सुख-दुःखरूप इत्यादि जितने अवस्थाभेद हैं, वे [अपदानि एव भासन्ते] जीव का स्वरूप नहीं है; उपाधिरूप है, विनश्वर हैं, दुःखरूप हैं—ऐसा स्वाद स्वानुभवप्रत्यक्षरूप से आता है। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्धचिद्रूप उपादेय; अन्य समस्त हेय।।७-१३९।।

कलश - १३९ पर प्रवचन

अब १३९।

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः।।७-१३९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'तत्पदं स्वाद्यं' शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तुरूप... भगवान शुद्ध चैतन्यमात्र पदार्थ, त्रिकाली ध्रुव शुद्ध चैतन्य, वह पद। **मोक्ष के कारण का निरन्तर अनुभव करना।** आहाहा! वह मोक्ष का कारण अर्थात् कि... बहुत सूक्ष्म बातें, भगवान!

शुद्ध चैतन्य नित्य ध्रुव का अनुभव करना, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया? '**स्वाद्यं**' उसका स्वाद लेना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर लबालब भरा हुआ प्रभु है। यह तो वस्तु (हुई)। अब इसका अनुभव-स्वाद लेना, वह पर्याय है। आहाहा! यह स्वाद लेना, वह मोक्ष का कारण है। दूसरी भाषा से कहें तो 'अनुभव रत्न चिन्तामणि' यह अनुभव जो है आत्मा के आनन्द का, वह चिन्तामणि वस्तु है। 'अनुभव है रसकूप' आत्मा के स्वाद का अनुभव वह आत्मा के आनन्द का कूप है। आहाहा! 'अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' आहाहा! ऐसी बात है। यह चैतन्यवस्तु महाप्रभु, जिसमें अनन्त चैतन्यरत्नाकर—यह अनन्त चैतन्य रत्न का आकर—समुद्र है। आहाहा! क्षेत्र भले संक्षिप्त हो असंख्य प्रदेश, परन्तु उसके स्वभाव की महिमा का पार नहीं। आहाहा! यह सब पुण्य और पाप के विकल्पों से भिन्न, अपने अनन्त आनन्द के स्वभाव का स्वाद लेना, आस्वादना... आहाहा! अर्थात् कि उसे वेदन में लेना... आहाहा! वह एक ही मोक्ष का कारण है। है? **मोक्ष के कारण का निरन्तर अनुभव करना।** आहाहा!

मुमुक्षु : अपनी वस्तु को मोक्ष का कारण...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपना मोक्ष का कारण परिणति वह।

शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तुरूप मोक्ष के कारण का निरन्तर अनुभव करना। ऐसा जो पद। अपना निजपद त्रिकाली, परन्तु उसका अनुभव करना, वह पद है। आहाहा! रागादि और व्रतादि, वे सब अपद हैं। वह अनुभव पर्याय नहीं। आहाहा! **शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तुरूप मोक्ष के कारण का निरन्तर अनुभव करना। कैसा है? निश्चय से समस्त भेदविकल्प से रहित (निर्विकल्प) वस्तुमात्र है।** आहाहा! वास्तव में तो वह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श परचीज़, उससे तो भिन्न है। दया, दान, रागादि के विकल्प से भी भिन्न है और पर्याय में मति-श्रुतादि भेद जो पड़े, वे भी भेद हैं, उनसे भी रहित है। यह २०५ गाथा का श्लोक है न? मति-श्रुतज्ञान आता है न? वह एक स्वरूप है अन्दर। भेद नहीं। भले श्रुतज्ञानी को केवलज्ञान नहीं, तथापि केवलज्ञान उसके लक्ष्य में होता है कि ऐसा होता है। उसे परोक्ष लक्ष्य में होता है, तो भी उसकी ओर के झुकाव से अनुभव नहीं।

आहाहा! मार्ग बहुत (कठिन)। जन्म-मरणरहित के—भव के अन्त का उपाय तो यह है। आहाहा! भगवान अनन्त चैतन्य रत्नाकर प्रभु का अनुभव। उसके अनुभव का अर्थ कि उसकी पर्याय में उसका वेदन। आहाहा! उसका वेदन है, वही मोक्ष का कारण है। व्रत, तप, भक्ति, और पूजा, वह तो सब बन्ध के कारण हैं। आहाहा!

समस्त भेदविकल्प से रहित निर्विकल्प वस्तुमात्र है। वह तो अभेद एकरूप सामान्य (वस्तु है)। विशेषों के भेद से भी रहित है। आहाहा! राग से रहित, वर्ण, गन्ध आदि बाह्य निमित्त-चीज़ें, उनसे रहित, परन्तु उसमें विशेष भेद पड़ते हैं, उनसे भी रहित। आहाहा! अकेली सामान्य दृष्टि करने से यह सामान्य है, ऐसा भले उसे न हो। क्योंकि यह सामान्य है और दृष्टि करता हूँ, वह भी एक भेद हो गया। परन्तु दृष्टि जहाँ अन्तर में झुकती है, इसका अर्थ ही कि उसे ध्येय ही सामान्य रहता है। उसे यह सामान्य है और लक्ष्य-आश्रय करता हूँ, ऐसा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। परन्तु पर्याय और भेद से लक्ष्य छोड़कर अन्तर में लक्ष्य जाता है, उस अभेद और सामान्य पर जाता है। इसलिए सामान्य का ध्येय बनाया है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। है?

और कैसा है (वस्तु)? चतुर्गति संसारसम्बन्धी... आपदा-विपदा। आहाहा! वह स्वर्ग में भी विपदा और आपदा है। मनुष्यपने में सेठाई करोड़ों-अरबोंपति सब आपदा को वेदन करनेवाले हैं। आहाहा! सम्पदा का पद तो प्रभु अन्तर (में) है। यह सब आपदा के स्थान हैं। आहाहा! ऐई! शान्तिभाई! यह सब जवाहरात-फवाहरात के धन्धे और लाखों रुपये की आमदनी आपदा है, विपदा है; सम्पदा नहीं। यह प्रभु आत्मा की सम्पदा नहीं। ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : परपदार्थ तो कुछ नुकसान करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नुकसान करता है, ऐसा किसने कहा? परन्तु पर का लक्ष्य करता है, तब राग होता है। वह आपदा है और विपदा है। आहाहा!

चार गतिरूपी अनेक प्रकार के दुःखों का अपद है। भगवान प्रभु उन दुःखों का अपद है। अन्दर चैतन्य आनन्दस्वरूप, उन चार गति के दुःखों का अस्थान है। उसमें दुःख है नहीं। आहाहा! है? **आत्मा सुखस्वरूप है,...** भावार्थ करते हैं। **साता-असातादकर्म**

के उदय के संयोग होते हैं... देखो! साता-असाता कर्म है, उनके उदय के कारण अनुकूल-प्रतिकूल बाहर की सामग्री मिलती है। **जो सुख-दुःख सो जीव का स्वरूप नहीं है,...** आहाहा! प्रतिकूल-अनुकूल (संयोग), वह जीव का स्वरूप नहीं और उसमें—कल्पना में आवे कि यह ठीक है और यह अठीक है, वह भी जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कर्म की उपाधि हैं। आहाहा! शरीर, वाणी, पुण्य और पाप, यह सब पुद्गल का विस्तार है। भगवान आत्मा की यह प्रजा नहीं। आहाहा! समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव या हिंसा, झूठ, चोरी आदि का भाव, वह सब अपद है, पुद्गल का स्वरूप है। आत्मा के पद में वह चीज़ नहीं।

'**अपदानि**' अपद। आहाहा! **आत्मा सुखस्वरूप है, साता-असाताकर्म के उदय के संयोग होते हैं जो सुख-दुःख सो जीव का स्वरूप नहीं है, कर्म की उपाधि हैं।** आहाहा! करोड़पति हुआ और बड़ा स्वर्ग का देव हुआ। आहाहा! जिसे हजार-हजार वर्ष में सागरोपम की स्थिति बड़ी है, उसे हजार वर्ष में अमृत बरसे—कण्ठ में से अमृत (झरे)। परन्तु वह दुःखी है। आहाहा! वह विपदा को वेदता है, वह सम्पदा को वेदता नहीं। भगवान आत्मा की सम्पदा तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द से भरपूर सम्पदा है। आहाहा! यह चार गति की विपदा को भोगनेवाला, यह अपद है।

कर्म की उपाधि हैं। और कैसा है? 'यत्पुरः अन्यानि पदानि अपदानि एव भासन्ते' जिस शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप आस्वाद आने पर... आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु सच्चिदानन्द, उसके सन्मुख से जो कुछ आनन्द का स्वाद आता है... आहाहा! है? **चार गति की पर्याय,...** आहाहा! वह सब अपद है। उसे अपद—अस्थान भासित होता है। मेरा स्थान नहीं। पुण्य और पाप के भाव, रागादि, व्रतादि भाव, वे सब '**अपदानि**' है। समझ में आया? संस्कृत का अपद का अर्थ किया है। 'अध्यात्म तरंगिणी' में अपद का अर्थ व्रतादि लिया है। संस्कृत में। व्रत, नियम, विकल्प, वह सब अपद है। वह आपदा है। आहाहा! ऐसी बातें अब।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं कि व्रत करना नहीं और...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! प्रभु! ऐसा कहते हैं बेचारे लोग। क्या करे? भाई! व्रत तो कब होते हैं? व्यवहार व्रत भी तब होते हैं, जब अनन्त आनन्द के नाथ को वेदन में लिया हो। आहाहा! वह अनन्त-अनन्त शान्ति का सागर है, उसकी शान्ति का स्वाद जिसने लिया हो। आहाहा! ऐसे जीव को जब शान्ति का स्वाद बढ़ जाये, तब उसे ऐसे व्रतादि के विकल्प आते हैं, परन्तु वे भी दुःखरूप हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान तो अकषायस्वरूप है न! ऐसे तो कल कहा था। नहीं? 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन। परन्तु मतमदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' 'घट घट अन्तर जिन बसे।' भगवान तो जिनस्वरूपी वीतरागमूर्ति आत्मा है। आहाहा! यह रागादि उसका स्वरूप नहीं है, उसके स्वरूप में नहीं है। 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन।' जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, जैन कोई वाडा नहीं। वह राग की पर्याय को जीतकर जिसने वीतरागस्वरूप में आनन्द का स्वाद जिसने लिया और राग के स्वाद को जीता, वह जैन। वह 'घट घट अन्तर जैन बसे।' जैन कोई सम्प्रदाय नहीं कि वाडा में... वह तो अन्तर में जैनपना बसता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन, परन्तु मतमदिरा के पान सो...' परन्तु अपने मत की मदिरा पीये हुए, मतमदिरा का जिसने पान किया। अपना अभिप्राय मैं रागवाला हूँ, पुण्यवाला हूँ, ऐसे अभिप्राय की मदिरा इसने पी है। 'मतमदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' यह मतवाला भगवान आनन्द के नाथ को जान नहीं सकता। अपने मत की मदिरा के प्याले में चढ़ा हुआ—मैंने पुण्य किये हैं, मैंने दया पाली, मैंने व्रत किये हैं। ऐसे मत की मदिरा का पान इसने किया है। आहाहा! अरे! उसके कारण मतवाला—यह राग का मतवाला वस्तु को समझता नहीं। आहाहा! अन्दर भगवान परमात्मस्वरूप विराजता है। परमात्मस्वरूप ही तू प्रभु है। आहाहा! पर्याय में रागादि है, वह तो पर्याय में है। वस्तु में कहाँ? वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! परमात्म भगवत्स्वरूप ही तू है। ऐसे वस्तु के स्वरूप को राग के मतवाले अथवा अपने पक्ष की मत की मदिरा पीये हुए, वे मतवाले वस्तु को समझते नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

जिस शुद्ध स्वरूप का अनुभवरूप आस्वाद आने पर चार गति की पर्याय,...

आहाहा! वह अपद भासित होती है, कहते हैं। मेरा स्थान नहीं, वह मेरा पद नहीं। आहाहा! यह कहा था न? रक्षण नहीं, लक्षण नहीं। यह पुण्य-पाप चार गति मेरा रक्षण नहीं, मेरा लक्षण नहीं। तीन बोल कहे थे न? स्थान नहीं। स्थान नहीं। आहाहा! **राग-द्वेष-मोह...** आहाहा! चार गति की पर्याय—मनुष्यपना, देवपना... शरीर की बात नहीं, हों! यह। अन्दर गति है न चार, मनुष्य गति का उदय। वह सब पर्यायें और पुण्य तथा पाप के भाव और कल्पना में हर्ष-शोक का वेदन **इत्यादि जितने अवस्थाभेद हैं वे... 'अपदानि एव भासन्ते'** आहाहा! अमृत के स्वाद के समक्ष जहर का स्वाद अस्थान भासित होता है। आहा! अपने आनन्द के स्वाद के समक्ष सम्यग्दृष्टि को-धर्मी को-धर्मी ऐसा जो आत्मा, उसका धर्म जो अनन्त आनन्द आदि, उसका जिसे अन्तर अनुभव वेदन है, ऐसा जो धर्मी, उसे अपने आनन्द के स्वाद के समक्ष व्रतादि के भाव को भी वह अपद और अस्थान और जहर भासित होते हैं। आहाहा! स्त्री, पुत्र, पैसा, परिवार तो धूल कहीं रह गयी। आहाहा! वे तो इसके हैं नहीं, उनमें तू नहीं, तुझमें वे नहीं, परन्तु यहाँ तो पुण्य-पाप के भाव में तू नहीं, तुझमें वे नहीं। इसलिए उन्हें अपद कहा जाता है। आहाहा! **इत्यादि जितने अवस्थाभेद हैं, वे जीव का स्वरूप नहीं हैं,... 'अपदानि' उपाधिरूप है,...** आहाहा! यहाँ तो प्रसन्न होता है। दो-पाँच करोड़ रुपया मिले, लड़के अच्छे हों जरा रूपवान तो प्रसन्न होता है। मूर्ख, वह भी मूर्खाई का घर है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुत्र हो तो रोने बैठे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पुत्र उसके घर में। कब पुत्र था आत्मा को? आत्मा को पुत्र कैसा और आत्मा पिता कहना किसका? कहो, रमणीकभाई! किसका पुत्र? आहाहा! भगवान आत्मा में विकारी प्रजा भी उसकी प्रजा नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे भी आत्मा की प्रजा नहीं; वह भी विकार कर्म की प्रजा और उपाधि है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! अरे! यह दुःख के समुद्र में गहरा घुस गया है परन्तु भान नहीं होता। पूरे दिन मानो प्रसन्नता में इसकी जिन्दगी जाती हो। हर्ष का सबड़का जहर का है। आहाहा!

कहते हैं, वह सब जीव का अपद है। **उपाधिरूप है, विनश्वर है,...** आहाहा!

यह व्रतादि के भाव भी उपाधि है। आहाहा! गजब बात है। संस्कृत टीका में, भाई! व्रत लिया है। लिखा है न! व्रतादि।

मुमुक्षु : व्रतादि के भाव में कितना दुःख सहन किया। परमाध्यात्म तरंगिणी में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब कहा था। उसमें लिखा है, तब अध्यात्म तरंगिणी में होगा। यह लिखा था। उसमें लिखा है। आहाहा!

दया, दान, अहिंसा, सत्य, अचौर्य के भाव, कहते हैं कि वह विकल्प है, राग है, वह अपद है, जहर है, दुःख है, उपाधि है। आहाहा! प्रभु! तेरा पद तो अलौकिक अन्दर है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! इस सब भूतावल में तू भरखा गया है। आहाहा! भूतावल। आहाहा! अरे! प्रभु! तू कहाँ है? आहा!

नहीं कहा था? एक बार हम पालेज गये थे। ५९ के वर्ष। संवत् १९५९। पालेज में पिताजी की दुकान थी। तब उम्र छोटी, तेरह वर्ष की उम्र। शरीर बहुत कोमल। और आसोज महीने में गये और उसमें साथ में दुकान के पीछे जिन है। महिलायें छाती कूटकर रोती होंगी। इसलिए हमने पूछा। हम तो बालक—छोटे लड़के। (हमने पूछा) कि यह क्या है? तो जाने नहीं देने के लिये कहे... क्या कहलाताा है? चुडैल छाती पीटकर रोती है। इसलिए छोटे लड़के और बालक और वापस बहुत रूपवान शरीर। तेरह वर्ष की उम्र, इसलिए (कहे) चुडैल छाती पीटकर रोती है। वहाँ जाये तो खा जाती है। जाने न देने (के लिये कहे)।

यहाँ परमात्मा कहते हैं, पुण्य-पाप के भाव चुडैल हैं, हों! यदि वहाँ जायेगा तो तुझे खा जायेंगे। आहाहा! अनन्त आनन्द के सागर का समुद्र अन्दर भरा है, उसमें प्रवेश कर न! यह प्रवेश करके मर गया है अनन्त काल से, भाई! आहाहा! इसे खबर कहाँ है? भान कहाँ है? शरीर मिला कुछ ठीक हुआ, बस, हम अब सुखी और प्रसन्न हैं। पागल हैं।

मुमुक्षु : चेहरा लाल दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या धूल भी दिखती नहीं वहाँ। होली दिखती है इसे, राग।

आहाहा! उसके पास तो राग आता है। पैसा आता है उसके पास? स्त्री, पुत्र उसके पास आते हैं अन्दर में? (यह मेरे) ऐसा राग और ममता इसके पास आते हैं। वे तो महादु:खदायक अस्थान है। आहाहा! भाई! तुझे तेरे स्वरूप की खबर नहीं। आहाहा! अभव्य को अनादि-अनन्त संसार है। आहाहा! गजब बात। अभव्य जीव को तो अनादि-अनन्त संसार। वे मात्र आपदा में पड़े हैं। आहाहा! भव्य जीव में पात्र जीव को... अनन्त भव्य तो अज्ञानीरूप से अभी निगोद में पड़े हैं। अभी बाहर निकले ही नहीं। आहाहा! उसमें से अनन्तवें भाग के कोई जीव निकले और उसे यह भान हो कि, अरे! मेरी चीज़ तो आपदारहित है। शुभ-अशुभ विकल्प और उसके फलरूप से बन्धन और उसके फलरूप से संयोग (मिले), वह सब आपदा और उपाधि है। आहाहा! समझ में आया? वह दु:खरूप है। है?

विनश्वर है, दु:खरूप है—ऐसा स्वाद स्वानुभवप्रत्यक्षरूप से आता है। आहाहा! स्वरूप अन्दर जो नित्यानन्द प्रभु, अविनाशी भगवान, उसका स्वाद लेने से अर्थात् पुण्य-पाप के स्वाद को छोड़कर, पर्याय के भेद की स्वाद को भी छोड़कर... आहाहा! अभेद चिदानन्द प्रभु भगवान के सन्मुख के स्वाद में... आहाहा! है? वह **स्वानुभव-प्रत्यक्षरूप से आता है।** आनन्द के स्वाद में कोई मन और राग की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह तीन मोक्ष का मार्ग, वह त्रिकाल स्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। उसे कोई व्यवहाररत्नत्रय या भेद की अपेक्षा है ही नहीं। ऐसी वह निरपेक्ष चीज़ अन्दर पड़ी है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा स्वाद स्वानुभवप्रत्यक्षरूप से... ऐसा कि स्वाद किसी को आता है और स्वयं जानता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जैसे राग और द्वेष का स्वाद स्वयं वेदता है, वैसे आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प से भिन्न पड़कर स्वरूप के निजपद में आता है तो उसका स्वाद प्रत्यक्ष स्वयं अनुभव करता है। आहाहा! अरेरे! क्या हो? लोगों को धर्म के नाम से कुछ चढ़ा दिया है। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र का मार्ग तो... आहाहा! जिनस्वरूपी प्रभु तू है न! उसका स्वाद लेना मोक्ष का मार्ग, वह जैनपना है। जैनपना कोई वाडा का नहीं कि हम स्थानकवासी, मन्दिरवासी और दिगम्बर। आहाहा! अन्तर में आनन्द का नाथ पूर्ण भरपूर चैतन्यस्वभाव, उसकी अन्तर सन्मुख होकर

अनुभव प्रत्यक्षरूप से वेदन करना, वह जैन है। आहाहा! बाकी सब थैली पर लिखा हो शक्कर और अन्दर हो काली जीरी। अफीम भरी हो और ऊपर लिखा हो शक्कर। उसी प्रकार यह जैन नाम धरावे परन्तु अन्दर की वस्तु की तो खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ठग विद्या हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठग विद्या ने मार डाला जगत को। आहाहा!

जैन अर्थात् जिनस्वरूपी भगवान आत्मा के सन्मुख होकर वीतरागता का वेदन करना, वह वेदन / अनुभव करना, वह जैनपना है। वह घट घट अन्तर जैन बसे। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा स्वाद स्वानुभवप्रत्यक्षरूप से आता है। भावार्थ...**

बहिन के वचनामृत पढ़कर चिमनभाई को तो इतना हर्ष आया है। चिमनभाई ठाकरसी। यह पत्र अभी पढ़ा जायेगा। मुम्बई से आया है। स्वयं भी स्वयं इतना प्रेम और इतना उत्साह बतलाया है। उनके शब्द देखो तो अन्दर... यह वचनामृत पढ़कर तो अन्दर से... आहाहा! यह पत्र है। व्याख्यान के बाद पढ़ा जायेगा। सबको सुनना है। तब तुम नहीं थे न? रात्रि में पढ़ा गया था। आहाहा! उत्साह बताया है और उनके शब्द की शैली! आहाहा! उनकी होशियारी भी उसमें दिखती है। चिमनभाई को बहुत प्रेम है न। यह उनका चिरंजीवी बैठा है। इसके पिता हैं वे। आहाहा! बहिन के वचनामृत पढ़कर तो लोगों को ऐसे रोमांच खड़ा होता है। आहाहा! अरे! ऐसा बाहर आया! वे तो ऐसा कहते हैं कि बहिन के वचनामृत (यह नाम) निकाल डालो। भगवान की वाणी— दिव्यध्वनि के वचनामृत हैं यह (ऐसा रखो), ऐसा कहा है। आहाहा! बात तो सच्ची है। अपने बदलना नहीं परन्तु उन्होंने ऐसा कहा है। यह तो दिव्यध्वनि, तीन लोक के नाथ, सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में आया है, वह स्वरूप इसमें आया है। आहाहा! कल नहीं आया था? वह आया है। थोड़ा फेरफार (करने का लिखा है) कि इस जगह देव-गुरु का लेखन है, इस जगह समकिती... परन्तु यहाँ कौन फेरफार करे? जो आया वह रामजीभाई कहे, जो आया वह प्रकाशित करना। आहाहा! जगत का भाग्य। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरे चैतन्य के आनन्द के स्वाद के समक्ष अर्थात् स्वाद अर्थात् अनुभव-वेदन के समक्ष व्रतादि के भाव

भी तुझे अपद और जहर भासित होंगे। तो फिर यह स्त्री, पुत्र अच्छे पके (हुए) और अमुक हुए, यह कहाँ रहा? व्यर्थ का हैरान होकर मर गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध चिद्रूप उपादेय,... है। आहाहा! बाकी व्रतादि के विकल्प और रागादि, वे उपादेय नहीं हैं। इस प्रकार यह योगफल किया। उपादेय अर्थात् अंगीकार करनेयोग्य। शुद्ध स्वरूप है, वह अंगीकार करने, स्वीकार करनेयोग्य, सत्कार करनेयोग्य, अनुभव करनेयोग्य, उपादेय और आदरणीय तो यह एक ही चीज़ है। समझ में आया? **अन्य समस्त हेय।** है। चाहे तो व्रत का विकल्प हो, यह भगवान की भक्ति का विकल्प हो, णमो अरिहंताणं, ऐसा विकल्प भी हेय है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता की क्या बातें करना? प्रभु भी पूरा कह नहीं सके तेरी बात को। उन्हें अनुभव में आया सब, परन्तु वाणी द्वारा—यह वाणी जड़, उसके द्वारा आत्मा की बातें करना। आहाहा! वचनातीत, विकल्पातीत को वचन द्वारा कहना, बापू! कितना कहा जा सकता है? आहाहा! समझ में आया? ऐसा वह चिद्रूप, वह उपादेय है। ऐसा भगवान चिद्रूप, स्वरूप शुद्ध, चिद्स्वरूप त्रिकाली चैतन्यस्वरूप अविनाशी अनादि-अनन्त, बस, वह एक ही आदरणीय है। आहाहा! (बाकी) सब हेय है। १३९ हुआ।

यह निर्जरा का अधिकार है। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद आया, उसे कहते हैं, अशुद्धता निर्जरित हो जाती है। निर्जरा के तीन प्रकार हैं। एक, कर्म का खिरना; अशुद्धता खिरे, तब कर्म भी खिरते हैं। दूसरा, अशुद्धता का खिरना और तीसरा, शुद्धता का बढ़ना—इन तीनों को निर्जरा कहा जाता है। समझ में आया? यहाँ शुद्धि की वृद्धि और अनुभव होना, वह शुद्धि की वृद्धि। संवर में शुद्धि की उत्पत्ति हुई। शुद्ध तो त्रिकाल है। उसमें संवर उसे कहते हैं कि शुद्धि की उत्पत्ति पर्याय में हुई; निर्जरा उसे कहते हैं कि शुद्धि की वृद्धि हुई; मोक्ष उसे कहते हैं कि शुद्धि की पूर्णता हुई। आहाहा! समझ में आया? अरेरे! इसके घर की बातें सुनने को मिलती नहीं, वह क्या करे? दु:खी प्राणी बेचारे। बाहर के रूपवान शरीर और यह दिखाव... मर जानेवाला है वहीं।

आहाहा! शरीर की तो श्मशान में राख होगी, बापू! कोई साथ में कुछ नहीं आयेगा। सेठिया गये, देखो न! शाहूजी। चालीस करोड़ रुपये। २७ तारीख को सवेरे देह छूट गयी। चालीस लाख का बँगला। धूल सब बाहर में। आहाहा! सब भुतावल है।

मुमुक्षु : आप ७० लाख के बँगले में उतरे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ७० लाख में वहाँ मुम्बई उतरे थे न! ८७वाँ (वर्ष) लगा न वहाँ? आमोदवाले हैं न? रमणीकभाई आमोदवाले। उनका ७० लाख का बँगला। उसमें हमारा आवास था। पाँच-छह करोड़ रुपये, दोनों भाई हैं दिगम्बर। पालेज के साथ आमोद है। बेचारे को बहुत प्रेम है। अभी पत्र आया न। हीराभाई कहीं है। परदेश में... कहाँ? वह पत्र आया है। मैं देश में आता हूँ। मुझे सोनगढ़ आना है। छोटा भाई। दो भाई है। हीराभाई है और वह बड़ा रमणीक है। ७० लाख का एक बँगला था, उसमें मेरा आवास था। समुद्र के किनारे, मुम्बई। वे बेचारे नरम। उनकी माँ और वे सब नरम। आहाहा! अरे! बापू! ७० लाख क्या, ७० अरब रुपये का हों तो भी क्या? धूल के कंकड़ जड़ अजीव। वे तेरे नहीं, उनमें तू नहीं और उन्हें (मेरे हैं) मानने से तुझे दुःख होगा, वह दशा है। और भगवान को मानने से तुझे आनन्द आयेगा। मैं एक पूर्णानन्द का नाथ अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ, ऐसा स्वीकार—सत्कार होने से तुझे अतीन्द्रिय आनन्द आयेगा। भाई! तुझे शान्ति मिलेगी। आहाहा! इसलिए वह चिदानन्द प्रभु उपादेय है। आहाहा!

कलश-१४०

(शार्दूलविक्रीडित)

एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्
स्वादं द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयन् किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकताम्।।८-१४०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'एष आत्मा सकलं ज्ञानं एकतां नयति' [एष आत्मा] वस्तुरूप विद्यमान चेतनद्रव्य, [सकलं ज्ञानं] जितनी पर्यायरूप परिणमा है ज्ञान — मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक विकल्परूप परिणमा है; ज्ञान — उसको [एकतां] निर्विकल्परूप [नयति] अनुभवता है। भावार्थ इस प्रकार है — जिस प्रकार उष्णतामात्र अग्नि है; इसलिए दाह्यवस्तु को जलाती हुई, दाह्य के आकार परिणमती है; इसलिए लोगों को ऐसी बुद्धि उपजती है कि काष्ठ की अग्नि के स्वरूप का विचार करनेपर, उष्णतामात्र अग्नि है, एकरूप है। काष्ठ, छाना, तृण, अग्नि का स्वरूप नहीं है; इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है, जानता हुआ, ज्ञेयाकार परिणमता है। इससे ज्ञानी जीव को ऐसी बुद्धि उपजती है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान — ऐसे भेदविकल्प, सब झूठे हैं। ज्ञेय की उपाधि से मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल — ऐसे विकल्प उपजे हैं, कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है; वस्तुस्वरूप का विचार करनेपर, ज्ञानमात्र है। नाम धरना, सब झूठा है। ऐसा अनुभव, शुद्धस्वरूप का अनुभव है। 'किल' निश्चय से ऐसा ही है। कैसा है अनुभवशीली आत्मा? 'एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्' [एक] निर्विकल्प, ऐसा जो [ज्ञायकभाव] चेतनद्रव्य, उसमें [निर्भर] अत्यन्त मग्नपना, उससे हुआ है [महास्वादं] अनाकुललक्षण सौख्य, उसको [समासादयन्] आस्वादता हुआ। और कैसा है? 'द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः' [द्वन्द्वमयं] कर्म के संयोग से हुआ है विकल्परूप आकुलतारूप, [स्वादं] अज्ञानीजन सुख करके मानते हैं परन्तु दुःखरूप हैं — ऐसा जो इन्द्रियविषयजनित सुख,

उसको [विधातुं] अंगीकार करने के लिए [असहः] असमर्थ हैं। भावार्थ इस प्रकार है— विषयकषाय को दुःखरूप जानते हैं। और कैसा है? 'स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्' [स्वां] अपना द्रव्यसम्बन्धी [वस्तुवृत्तिं] आत्मा का शुद्धस्वरूप, उससे [विदन्] तद्रूप परिणमता हुआ। और कैसा है? 'आत्मात्मानुभवानुभावविवशः' [आत्मा] चेतनद्रव्य, उसका [आत्मानुभव] आस्वाद, उसकी [अनुभाव] महिमा, उसके द्वारा [विवशः] गोचर है। और कैसा है? 'विशेषोदयं भ्रस्यत्' [विशेष] ज्ञानपर्याय, उसके द्वारा [उदयं] नाना प्रकार, उनको [भ्रस्यत्] मेटता हुआ। और कैसा है? 'सामान्यं कलयन्' [सामान्यं] निर्भेदसत्तामात्र वस्तु को [कलयन्] अनुभव करता हुआ।।८-१४०।।

कलश - १४० पर प्रवचन

१४०।

एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्
स्वादं द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयन् किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकताम्।।८-१४०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— आहाहा! **'एष आत्मा सकलं ज्ञान एकतां नयति'** अन्तिम पद पहले लिया। **वस्तुरूप विद्यमान आत्मा अर्थात् चेतन द्रव्य,...** भगवान ध्रुव अनादि-अनन्त अनुत्पन्न-अनाश—ऐसा भगवान आत्मा अन्दर अविनाशी है। आहाहा! वह **चेतनद्रव्य,...** आहाहा! वस्तु विद्यमान है। है। आहाहा! कहनेमात्र नहीं। है। आहाहा! **'सकलं ज्ञान' जितनी पर्यायरूप परिणमा है ज्ञान—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक विकल्परूप परिणमा है ज्ञान—उसको निर्विकल्परूप अनुभवता है।** आहाहा! अब यहाँ से आगे ले गये। निमित्त तो नहीं, राग तो नहीं, परन्तु ज्ञान में पाँच प्रकार के पर्यायभेद मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ऐसे भेद, वे भी जिसमें नहीं। आहाहा! अकेला ज्ञानस्वरूप। उसे अन्दर अनुभवे, पाँच भेद का लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! निमित्त के लक्ष्य को तो छोड़ दे। दया, दान और व्रत

के, विकल्प के राग का भी लक्ष्य छोड़ दे, परन्तु ज्ञान की पर्याय में ऐसे पाँच भेद हों, उनके लक्ष्य को छोड़ दे। आहाहा! ऐसी बातें हैं। २०५ गाथा है न? आहाहा!

जितनी पर्यायरूप परिणमा है ज्ञान— भेदरूप **मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान...** आहाहा! परन्तु है नहीं न केवलज्ञान अभी? परन्तु उसके ख्याल में आता है न कि यह दशा होने पर आगे पूर्ण केवल(ज्ञान) होगा। परन्तु वह सब दशा है, अवस्था है। आहाहा! उस अवस्था के भेदों का भी लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! कहाँ से कहाँ उठाकर रखते हैं! स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान में से उठा दिया। उनके प्रति राग हो और व्रत का राग हो, वहाँ से उठा दिया। अब इसके ज्ञानगुण की पर्याय में पाँच भेद पड़ते हैं, वहाँ से उठा देते हैं। यह कहेंगे आगे, हों! '**भ्रश्यद्विशेषोदयं**' विशेष जो प्रगट है। तीसरा पद है न? तीसरे पद का अन्तिम शब्द। '**भ्रश्यद्विशेषोदयं**' यह आगे कहेंगे। यह विशेष जो उदय है, उससे हट जा। आहाहा!

'**एकतां**' **निर्विकल्परूप अनुभवता है।** आहाहा! पाँच भेद पर भी (लक्ष्य) नहीं। गजब बात है न! अभी तो उसे व्रतादि के विकल्प को धर्म मनवाना है। अरे! भगवान! तुझे कहाँ जाना है? भाई! ऐसे व्रतादि तो अनन्त बार किये, अरे! शास्त्र का ज्ञान भी ग्यारह अंग का अनन्त बार किया। वह कुछ चीज़ नहीं है। आहाहा! यहाँ तो उसके गुण की पाँच पर्याय भेद, वह भी लक्ष्य में से छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। शास्त्रज्ञान का लक्ष्य तो छोड़ दे। आहाहा! निमित्त का लक्ष्य छोड़ दे, राग का छोड़ दे, शास्त्रज्ञान का लक्ष्य छोड़ दे और पर्याय में पाँच भेद पड़ें, उनका भी लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा!

जहाँ भगवान अनादि-अनन्त निधान स्थित है। उन लोगों में आता है। नहीं? गीता में आता है। 'नैनं छेदंति शस्त्राणि' शस्त्र से छिदता नहीं, अग्नि से जलता नहीं। परन्तु क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर नहीं होती। यह तो द्रव्य वस्तु त्रिकाल है, उसमें अविनाशी शक्तियाँ त्रिकाल हैं, उनका परिणमन होता है, एक ज्ञानगुण का पर्यायरूप पाँच भेद (पड़ते हैं), उनका भी लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है सही। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य, गुण और पर्याय। तीन वस्तु का स्वरूप है। यह सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त कहीं नहीं है। उनके सम्प्रदाय में

हों, उसने कब सुना वहाँ द्रव्य, गुण और पर्याय। पानाचन्दभाई! इतने वर्ष में द्रव्य-गुण-पर्याय (सुन हैं?) आहाहा!

मुमुक्षु : सामायिक और प्रौषध, यह तो सुना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : सामायिक और प्रौषध धूल में... राग का रोना था। सामायिक कहाँ थी? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि यदि तुझे निर्मलदशा प्रगट करनी हो, धर्म / मोक्ष का मार्ग, तो विशेष के ज्ञान की पर्याय के भेद का भी लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! अभेद ऐसी चीज़ जो अखण्डानन्द नाथ प्रभु! उसे ध्येय बना और उसे दृष्टि का विषय बना। आहाहा! ऐसी बातें अब सूक्ष्म पड़े। वह **निर्विकल्परूप अनुभवता है।** भेद नहीं, कहते हैं। एक ज्ञानस्वरूपी। ज्ञान एक गुण भी नहीं। निमित्त तो नहीं, दया-दान के विकल्प तो नहीं, पर्याय के भेद तो नहीं, परन्तु गुणी और गुण का भेद भी नहीं। गुणी भगवान आत्मा और उसमें ज्ञान और आनन्द गुण है, ऐसा भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसा निर्विकल्प अनुभव करता है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि—जिस प्रकार उष्णतामात्र अग्नि है,... उष्ण... उष्ण। अग्नि-अग्नि। **इसलिए दाह्यवस्तु को जलाती हुई...** जलनेयोग्य वस्तु को जलाता हुआ। **दाह्य के आकार परिणमती है,...** लकड़ी, कण्डे, सूखा गोबर अग्नि उसरूप आकार से परिणमती है, तथापि वह तो उष्णपणेरूप ही रही है। पर के आकार हुई ही नहीं। आहाहा! **इसलिए लोगों को ऐसी बुद्धि उपजती है कि काष्ठ की अग्नि,...** यह काष्ठ की अग्नि। **छाना की अग्नि,...** सूखा गोबर आता है न? अडाया अमथा? गाय-भैंस जंगल में छोड़ी हो और सूख जाये, उसे उठाकर यह कण्डा इकट्ठा करे, उसे छाणा कहा जाता है और यों ही सूखा पड़ा हो, उसे अडाया कहा जाता है। परन्तु उस सूखे गोबर को जलावे तो वैसा अग्नि का आकार हो जाता है। परन्तु उसके आकार हुई है, वह वास्तव में तो अग्निरूप है। समझ में आया? आहाहा! **लोगों को ऐसी बुद्धि उपजती है कि काष्ठ की अग्नि, छाना की अग्नि, तृण की अग्नि। सो ये समस्त विकल्प झूठे हैं। अग्नि के स्वरूप का विचार करने पर उष्णतामात्र अग्नि है,...** वह तो उष्ण स्वरूप है,

बस। पर के आकार हुई, वह तो अपना स्वरूप है। आहाहा! **एकरूप है। काष्ठ, छाना, तृण अग्नि का स्वरूप नहीं है,...** आहाहा! यह तो दृष्टान्त कहा।

उसी प्रकार ज्ञान चेतनाप्रकाशमात्र है,... भगवान तो चेतनामय—चैतन्य प्रकाशमय चन्द्र। चेतनचन्द्र, जिनचन्द्र। वह जिनचन्द्र प्रभु है। आहाहा! वह प्रकाशमात्र चैतन्यचन्द्र है। **समस्त ज्ञेयवस्तु को जानने का स्वभाव है...** समस्त जाननेयोग्य वस्तु है, उसे जानता है। **इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है, जानता हुआ ज्ञेयाकार परिणमता है। इससे ज्ञानी जीव को ऐसी बुद्धि उपजती है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान—ऐसे भेदविकल्प सब झूठे हैं।** ज्ञेयाकार से भेद पड़ा, वह भी नहीं। मात्र ज्ञानस्वरूप, वह मैं हूँ। है?

ज्ञेय की उपाधि से... आहाहा! **मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल—ऐसे विकल्प उपजे हैं...** आहाहा! वह ज्ञेय-परज्ञेय के लक्ष्य के भेद से वे भेद पड़े। स्वज्ञेय के लक्ष्य में देखो तो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, उसमें भेद है नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। **ज्ञेय की उपाधि से मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल—ऐसे विकल्प...** भेद उत्पन्न हुए, हों! क्योंकि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है; जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है... उस ज्ञेय का जाननेवाला होता है, **वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है।** राग का ज्ञान करे, अमुक का ज्ञान करे, यह व्यवहार की बातें हैं। आहाहा! वह तो स्वयं अपना ज्ञेय करके स्वयं ज्ञान करके ज्ञान जानता है। अपने को ज्ञेय करके ज्ञान जानता है। राग को ज्ञेय करके ज्ञान जानता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। हैं?

ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है, (परन्तु) वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है। लोक को जानता है या इसे जानता है और अमुक को जानता है, वे सब भेद के कथन हैं। वह ज्ञान, ज्ञान को जानता है। आहाहा! ज्ञान अपने ज्ञान की पर्याय ज्ञेय को जानता है। आहाहा! सूक्ष्म बहुत! यह श्लोक तो आता है अपने कलश में। नहीं? समयसार में आता है। ज्ञान वह तू, ज्ञेय वह तू, ज्ञाता भी तू। आगे है। (कलश-२७१), ज्ञाता तू, ज्ञेय तू, ज्ञान भी तू। तीन भेद कुछ

है नहीं। आहाहा! तू का तू ज्ञेय, तू का तू ज्ञान और तू का तू ज्ञाता। ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा! कहाँ से कहाँ ले जाना इसे? आहाहा! परमसत्य एकरूप वहाँ है, वहाँ ले जाना है उसे। आहाहा! और वह परमसत्य एकरूप है, उसके आश्रय बिना सम्यग्दर्शन, ज्ञानादि प्रगट नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

नाम धरना सब झूठा है। ऐसा अनुभव शुद्ध स्वरूप का अनुभव है। लो! आहाहा! **निश्चय से ऐसा ही है। कैसा है अनुभवशीली आत्मा?** यह विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक-०८-११-१९७७, कलश-१४० से १४१, प्रवचन-१४३

कलशटीका, निर्जरा अधिकार। १४० चलता है न? सूक्ष्म है। कहते हैं कि यह आत्मा जो है, वह अनन्त रत्नाकर चैतन्य रत्नाकर स्वरूप है। अब उसमें जो ज्ञान गुण है, उसमें उसकी जो पाँच पर्याय होती है... सूक्ष्म बात है। उस पर्याय को ज्ञेय के कारण से नाम पड़ते हैं। अमुक को जाने, वह मतिज्ञान; अमुक को जाने, वह श्रुतज्ञान; अमुक को जाने, वह अवधिज्ञान; मन को जाने, वह मन:पर्ययज्ञान; तीनों काल को जाने, वह केवलज्ञान। यह सब ज्ञेयाकार के कारण से भेद पड़े हैं। क्या कहा यह?

ज्ञेय की उपाधि से मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल—ऐसे विकल्प उपजे हैं, क्योंकि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। सूक्ष्म बात है। जाननेयोग्य वस्तु अनन्त अनेक प्रकार से है। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है...** जैसे जाननेयोग्य ज्ञेय का ज्ञानाकार यहाँ होता है, **ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है,...** क्या कहते हैं? कि ज्ञेय अनन्त प्रकार के हैं। बहुत सूक्ष्म बात है। उसमें ज्ञान की जो पाँच पर्याय है, वह ज्ञेय को जानने से उनके नाम भिन्न-भिन्न पड़े हैं कि इसका नाम मति, इसका नाम श्रुत और इसका नाम अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान। वह ज्ञेय के अनेक प्रकार के जानने के कारण से नामभेद पड़े हैं। क्या कहा, समझ में आया?

क्योंकि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है... आहाहा! ज्ञान की पर्याय में जैसा ज्ञेय (हो), उसे जाननेवाला होता है, जैसे ज्ञेय हैं, उसका जाननेवाला ज्ञान होता है, **वैसा ही नाम पाता है,...** मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल, यह नाम ज्ञेय को जिस प्रकार से जाने, उस प्रकार से उसके नाम पड़े हैं। क्या कहा यह? आत्मा वस्तु है। वह ज्ञानादि अनन्त गुणों का भण्डार है। अब यहाँ सम्यक् ज्ञान हुआ। उस ज्ञान में भी ज्ञान के पाँच भेद जो हैं, वे जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है—जैसा ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा उसमें नाम पड़ता है। अरे! ऐसी बातें हैं। क्या कहा, समझ में आया?

जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है... जैसे कि केवलज्ञान तीन काल के ज्ञेय का ज्ञायक होता है। मन:पर्ययज्ञान सामनेवाले के मनादि को जाने, वैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता

है। अवधि—उसकी मर्यादावाले पदार्थ ज्ञेय हैं, उनका ज्ञायक होता है। श्रुत—उसकी योग्यता प्रमाण परज्ञेय का परोक्ष ज्ञायक होता है। मतिज्ञान में भी श्रुत के पहले जो मतिज्ञान हो, उसके योग्य प्रमाण जो परज्ञेय है, उसे जानता है। ये पाँच भेद जैसे ज्ञेय को ज्ञायक जानता है, वैसे उसमें नामभेद पड़े हैं। बहुत सूक्ष्म है। क्या कहा? यह तो मार्ग अलौकिक है, बापू! आहाहा!

यहाँ तो प्रभु आत्मा वस्तुस्वरूप से अनन्त गुण का पिण्ड है। उसमें एक ज्ञानगुण वही आत्मा, ऐसा कहकर पूरा आत्मा सिद्ध किया है। पश्चात् उसकी ज्ञान की पर्याय पाँच होती हैं—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल, वे नाम कैसे पड़े? कि जैसे ज्ञेय का जाननेवाला, ज्ञेय का जाननेवाला (होता है), तत्प्रमाण नाम पड़े। आहाहा! अब वे नाम भी झूठे हैं, कहते हैं। शान्ति से समझना। बापू! यह तो अलौकिक मार्ग है। आहाहा!

क्योंकि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। जाननेयोग्य वस्तु अनन्त अनेक प्रकार से है। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है,... जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है,...** जरा कठिन पड़े ऐसा है, परन्तु वस्तु... आहाहा! भगवान आत्मा, उसकी ज्ञान की पर्याय में पाँच भेद हैं, वह जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है, जिस प्रकार के ज्ञेय का वह ज्ञायक होता है, वैसा उसमें नाम पड़ता है। समझ में आया? **वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है। नाम धरना सब झूठा है...** आहाहा! क्या कहते हैं। शान्ति से (समझना)। ज्ञान की पर्यायें पाँच। राग को कहीं निकाल दिया, पर कहीं रह गया। अब तो यहाँ ज्ञान में जो पाँच पर्याय होती हैं, उन पाँचों के नाम पड़े—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, (केवल), वे नाम जैसे ज्ञेय को जाने, वैसे उसके नाम पड़े। समझ में आया? आहाहा! है या नहीं अन्दर? कल आ गया था न? चल गया था न? कल एकदम लिया गया था। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, तेरा स्वरूप जो है, वह तो अनन्त चैतन्य... आयेगा। चैतन्य रत्नाकर। १४१ में आयेगा। परन्तु उसमें ज्ञानगुण जो त्रिकाल है, द्रव्य तो अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें ज्ञानगुण है। उस ज्ञानगुण की पाँच पर्यायें जो पड़ती हैं, उनके नाम जो पड़े—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञान, वे जैसे ज्ञेय को जानते हैं, उस प्रकार से उसके नाम पड़े। आहाहा!

वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है,... ज्ञेय के कारण से जैसे नाम पड़े, वे भी झूठे हैं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कल आया था यह? यह तो पढ़ते हुए एकदम अन्तिम था न कल तो? पीछे आ गया है इसलिए। आहाहा! भगवान आत्मा का ज्ञानगुण, वह तो एक है, ऐसे तो अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्यरत्नाकर समुद्र है। आहाहा! समुद्र जैसे जल से भरा है, वैसे भगवान आत्मा अनन्त गुण के रत्न से भरपूर है। जैसे उस समुद्र में तरंग उठती है, उसी प्रकार आत्मा के ज्ञानगुण में... यहाँ प्रधानता ज्ञान की लेनी है न? उसमें तरंग उठती है। अब उसकी तरंग के जो नाम पड़े... आहाहा! मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल नाम पड़े, वे जैसे ज्ञेय को ज्ञायक जानता है, वैसे नाम पड़े हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय तो सही, परन्तु उसे नाम कैसे पड़े? यहाँ एक-एक शब्द में अन्तर पड़ता है। आहाहा! पर्याय तो है, परन्तु उसके नाम मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल नाम कैसे पड़े? कहते हैं। प्रत्येक का ज्ञेय है, उस ज्ञेय को, वह जैसे ज्ञेय को जानता है, वैसा उसमें नाम पड़ा है। आहाहा! टीकाकार ने कितना स्पष्ट किया है! गृहस्थ है, देखो! परन्तु उसमें क्या है? आहाहा!

यहाँ तो एक बात सिद्ध करनी है कि आत्मा में कर्म, शरीर तो नहीं ही। तथा दया, दान, व्रत और काम, क्रोध के परिणाम झूठे हैं, वे आत्मा में नहीं। परन्तु यहाँ तो आत्मा की ज्ञानपर्याय में जैसा ज्ञेय जाने, ज्ञेय के प्रकार जैसे जाने, वैसे वह नाम पड़े। वह नाम पड़े, वे झूठे हैं, कहते हैं।

मुमुक्षु : केवलज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह केवलज्ञान नाम पड़ा न, तीन काल को जानने की अपेक्षा से? वह भी अपेक्षा से नाम पड़ा, वह झूठा है। वह तो ज्ञान की पर्यायमात्र इतनी बात, बस। वह ज्ञान की पर्याय है, इतनी बात। परन्तु पर्याय के सब इस प्रकार से नामभेद पड़े... आहाहा! दास! ऐसी बात है, भगवान!

मुमुक्षु : बहुत सूक्ष्म है और अधिक स्पष्टता....

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक कहते हैं न धीरे-धीरे, आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! यहाँ तो सम्यग्दर्शन का विषय एक सामान्य त्रिकाल, यह सिद्ध करना है। परन्तु यह सिद्ध होने पर, अब कहते हैं कि ज्ञान की पर्यायें जो हुईं, उन्हें जैसा ज्ञेय ज्ञात होता है, जिस-जिस पर्याय को जिस प्रकार का ज्ञेय ज्ञात होता है, उस ज्ञेय का नाम, वह ज्ञात हुआ ज्ञेय उसका नाम उसे देना पड़ा। उसका नाम देना पड़ा। मति में अमुक ज्ञेय ज्ञात होते हैं, इसलिए मति; श्रुत में अमुक ज्ञात होते हैं, इसलिए श्रुत; अवधि में अमुक मर्यादित वस्तु ज्ञात होती है, इसलिए अवधि; मन:पर्यय में मन को जानने की योग्यता है, इसलिए मन:पर्यय; केवल में तीन काल को जाने इसलिए केवल। आहाहा! समझ में आया? कल तो चल गया। त्रम्बकभाई कहे, चल गया है। यहाँ से बाकी है।

मुमुक्षु : वह चला उसमें अन्तर बहुत पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब अन्तिम समय था न? एकदम विस्तार करने जाये तो एक लाईन चले नहीं तब तो। आहाहा! यह तो केवलज्ञान में तीन काल का जाना, इसलिए केवल नाम पड़ा। नाम पड़ा, वह झूठा है। पर्याय है, वह पर्याय है भले। बस। और वह भी पर्याय के ऊपर दृष्टि करनेयोग्य नहीं है।

मुमुक्षु : ....केवलज्ञान हुआ, उसमें विशेष नहीं आया, परन्तु अकेला ज्ञान आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। केवलज्ञान में केवल लोकालोक ज्ञेय का जाननेवाला आया। लोकालोक—तीन काल, तीन लोक को ज्ञेय का नाम आया जानने में उसमें। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग, बापू! आहाहा! यह बात कहीं है नहीं। इस दिगम्बरदर्शन के अतिरिक्त....

मुमुक्षु : दिगम्बरदर्शन तो बराबर परन्तु सोनगढ़ के अतिरिक्त कहाँ है!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! कहाँ ले जाना है इसे?

कहते हैं कि जिसमें दया, दान और व्यवहार की बातें करते हैं न, और दो नय है तो दो नय का विषय भिन्न-भिन्न हैं और वे दो नय विरुद्ध हैं। व्यवहार दया, दान, व्रत को विषय करे, इसलिए उसे धर्म कहे, व्यवहार से। और यहाँ निश्चय त्रिकाली ज्ञायक के आश्रय से धर्म हुआ, उसे निश्चय धर्म कहे। परन्तु दोनों विरोध है, इसलिए वह धर्म

और यह धर्म दो विरोध है। यह व्यवहारनय का धर्म, वह राग है। और आत्मा के ज्ञायक का जो आश्रय धर्म, वह वीतरागता है। आहाहा! इससे वीतरागता राग के कारण से होती है, ऐसा नहीं है। तथा राग का विषय व्यवहार का नहीं, ऐसा नहीं है। तथा विषय होने पर भी वह निश्चय का कारण हो, ऐसा नहीं है। यहाँ तो इससे आगे ले जाने की बात है। आहाहा! ज्ञान के पाँच भेद हैं, वह पर्याय है उसकी। यह तो कहेंगे अभी। १४१ में। पर्याय उसकी है। पर्याय है। समुद्र उछलता है तरंगों से, वह उसकी पर्याय है। इसी प्रकार यह ज्ञानादि की पाँच पर्याय है। तो वह इसकी। परन्तु उसमें यह नाम पड़े... आहाहा! इसलिए कहा न?

वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है। ऐसा आया न? है? **क्योंकि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** नाना अर्थात् अनेक प्रकार। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है।** जिस प्रकार के जाननेयोग्य ज्ञेय का जाननेवाला होता है, जिस प्रकार से जाननेयोग्य ज्ञेय का जाननेवाला होता है **वैसा ही नाम पाता है,...** यह तो सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! यह नाम पाड़ना कहते हैं कि उसे जाने इसलिए यह और उसे जाने इसलिए यह। यह सब नाम पाड़ना झूठा है। वह तो ज्ञान की पर्याय है, बस, इतना। समझ में आया? आहाहा!

वस्तुस्वरूप का विचार करने पर... यह नाम पाता है, वह **नाम धरना सब झूठा है।** बाकी ज्ञानमात्र है, वह सच्चा है। आहाहा! मतिज्ञान पर्याय, श्रुतज्ञान पर्याय, पर्याय, हों पर्याय। पर्यायरूप से बराबर है। परन्तु उसे यह नाम पाड़ना... आहाहा! राजमल टीका करते हैं। इसमें से समयसार नाटक बनाया है। अब उसे लोग ऐसा कहें कि भाँग पीकर नाचे हैं, अरर! प्रभु! बापू! भाई! तुझे अभी ऐसा चलेगा... आहाहा! टोडरमल और बनारसीदास अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं। भगवान! बापू! सहन करना कठिन पड़ेगा, भाई!

मुमुक्षु : व्यवहार की रुचिवाले ऐसा ही कहें।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दुःख पड़ेगा, बापू! भाई! तू भगवान है। तुझे दुःख हो, वह कोई कुछ प्रसन्न हो? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं... आहाहा! तेरे नाम पड़े मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय वे तो ज्ञेय को जानने की (अपेक्षा से पड़े हैं)। जैसे जिस प्रकार का उसका ज्ञेय जानने का है, वैसे प्रकार का नाम पड़ा है। वह तो पर की अपेक्षा से नाम पड़ा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा मुम्बई में नहीं चलता, हों! रसिकभाई! वहाँ तो बहुत सूक्ष्म पड़े। विस्तार से चलता है। ठीक है। परन्तु यह कलश आवे तब चले। ऐसा। सामने चीज़ हो, तब स्पष्ट होगा न? चीज़ बिना खींचकर लाने से मुश्किल पड़ जाये। ऐसा कहने का आशय है। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तुझमें शरीर, वाणी, मन तो नहीं, पुण्य-पाप तो नहीं, वास्तव में (तो) द्रव्य में पर्याय भी नहीं। परन्तु पर्याय में पर्याय है, उसके जो नाम (पड़े वे) ज्ञेय को जैसा जाने वैसे पड़े हैं, वे झूठे हैं। आहाहा! वह तो ज्ञानमात्र है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, बस। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... आहाहा! नाम पड़े, वे सब झूठे हैं, कहते हैं। आहाहा! **नाम धरना सब झूठा है।** आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा को आत्मा कहना, उसे भी खोटा कहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा शब्द कहाँ है? वह शब्द है कहाँ? नाम धराया है, वह झूठा है। आत्मा तो अतति गच्छति इति आत्मा। वास्तविक अपने अनन्त गुण को परिणमता है। अतति गच्छति। अपना स्वरूप कायम रखकर परिणमता है, इसलिए आत्मा, बस, इतना। समझ में आया? नाम-निक्षेप से उसे कहा जाता है। ४७ नय में आता है न? ४७ नय आते हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव। नामनिक्षेप से कहा जाता है। आहाहा! देखो! मार्ग तो देखो। नामनिक्षेप से कहा जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **नाम धरना सब झूठा है। ऐसा अनुभव शुद्धस्वरूप का अनुभव है।** अर्थात् क्या कहा? ज्ञेय की ओर के नाम धारने का तू लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! और आत्मा भगवान आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है, उसके सन्मुख का अनुभव (करने का प्रयत्न कर)। आहाहा! **ऐसा अनुभव शुद्धस्वरूप का अनुभव है।** नाम धरना झूठा करके और वह तो ज्ञानमात्र है। आहाहा! ज्ञेय को जानने के कारण जाननेवाले के ऐसे नाम पड़े, उसे छोड़ दे। आहाहा! वह तो जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला...

जाननेवाला... है। ज्ञानमात्र है। आहाहा! **'किल' निश्चय से ऐसा ही है। 'किल'** है न? **'किल'** अर्थात् निश्चय, वास्तव में। वास्तव में। वास्तव में ऐसा ही है। एक तो शुद्ध चैतन्यस्वभाव को अनुसरकर होना-अनुभव, बस, वही करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सूक्ष्म है, शीघ्र समझ में आये ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो धीरे-धीरे कहा जाता है। सूक्ष्म है, ऐसा कहते हैं, उसका स्पष्टीकरण भी होता है। आहाहा! जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, यह तो वीतराग के पंथ की बात है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : आपने महिमा बतायी परन्तु उसका स्वरूप कहा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वरूप यह कहा न! जिसमें ज्ञेय के कारण से नाम पड़े, वे झूठे। निकाल दिये। ज्ञान पर्याय है बस, इतना। वह भी उसके ऊपर लक्ष्य नहीं। बाद में तो कहेंगे, पर्याय इसकी अपनी है। यहाँ तो लक्ष्य छुड़ाने को, द्रव्य का लक्ष्य कराने के लिये यह बात की है। बाकी तो पर्याय तेरी है, तुझमें है और वह पर्याय अनेकरूप उछलती है, वह तेरा स्वरूप है। पर्याय अनेकरूप उछलती है, वह स्वरूप, हों! उसके नाम पड़े, उसकी यहाँ बात नहीं। आहाहा! समझ में आया?

निश्चय से ऐसा ही है। कैसा है अनुभवशीली आत्मा? यह क्या कहते हैं? अनुभव जिसका स्वभाव है, ऐसा भगवान आत्मा कैसा है? आहाहा! राग जिसका स्वभाव नहीं। अब नाम पाड़ना, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अनुभवशील। वह अनुभव के स्वभाववाला ही आत्मा है। स्वरूप जो पूर्णानन्द का नाथ चैतन्यरत्नाकर, उसे अनुभव करना, ऐसा उसका स्वभाव ही है। राग और पुण्य और और व्यवहाररत्नत्रय, वह कहीं उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात कहाँ है? बापू! अरे!

कैसा है अनुभवशीली आत्मा? 'एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्' निर्विकल्प... आहाहा! वस्तु एकरूप। त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, वस्तु स्वभाव... आहाहा! एकरूप भाव अर्थात् निर्विकल्प। **ऐसा जो चेतनद्रव्य...** एकरूप ऐसा जो

चैतन्य पदार्थ, **उसमें... 'निर्भर' अत्यन्त मग्नपना,... 'निर्भर'** आहाहा! उस ज्ञायकभाव में अत्यन्त निमग्नपना, **उससे हुआ है, 'महास्वादं समासादयन्'** उसके कारण महास्वाद आया। **अनाकुललक्षण सौख्य,...** आया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात तो है न, भाई! मार्ग सूक्ष्म है। जो वस्तु स्वरूप है, उसका अनुभव करने से **'महास्वादं'** इसका अर्थ किया **अनाकुललक्षण सौख्य,...** वरना महास्वाद अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया पर्याय में। आहाहा! त्रिकाली एकरूप ज्ञायकभाव का आश्रय लेने से पर्याय में महास्वाद आया। स्वाद आया परन्तु महास्वाद आया। अतीन्द्रिय आनन्द का अनाकुल स्वाद आया। आहाहा! स्वाद आया, ऐसा स्पष्टीकरण न करके अनाकुल लक्षण (ऐसा कहा)। जिसका अनाकुल लक्षण ऐसा सुख। **उसको... 'समासादयन्' उसे आस्वादता हुआ।** आहाहा! देखा! यह निर्जरा के लक्षण। उसे कर्म की निर्जरा होती है, उसे अशुद्धता गलती है और उसे शुद्धता बढ़ती है। निर्जरा के तीन प्रकार। समझ में आया? आहाहा! यह तो कहते हैं कि अपवास करो तो तपस्या कहलाये। तपस्या हो गई तो निर्जरा हो गयी। निर्जरा, वह धर्म हुआ और धर्म, वह मोक्ष का कारण हो गया, जाओ। भाई! सूक्ष्म बात, बापू! भाई! तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं।

यह **'महास्वादं समासादयन्'** आनन्द के स्वाद को लेता हुआ। आहाहा! अन्तर में ज्ञायकभाव में जाने से। जाने से का अर्थ उस ओर झुकाव होने से। ज्ञायकभाव में कहीं पर्याय प्रविष्ट नहीं हो जाती। आहाहा! परन्तु ज्ञायकभाव की ओर झुकाव होने पर, उसका अनुभव होने पर उस महास्वाद को स्वादता हुआ। आहाहा! महास्वाद अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द। अर्थात् अनाकुल लक्षण ऐसा सुख। उसे अनुभवता-स्वाद में लेता हुआ। आहाहा! देखो! यह अनुभव की दशा। अतीन्द्रिय आनन्द को चाटता हुआ। जो अनादि से पुण्य और पाप के राग को अनुभव करता है, चाटता है, वेदन करता है आकुलता के दुःख को। कहेंगे, अभी कहेंगे। विषयकषाय दुःख है, (ऐसा) कहेंगे। आहाहा!

अनाकुललक्षण सौख्य, उसको आस्वादता हुआ। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव चैतन्य महाप्रभु के धाम में जहाँ नजर गयी... आहाहा! तब उसे अनुभव हुआ और उस अनुभव में क्या हुआ? अनाकुल लक्षण सुख जो महास्वाद। उसे महास्वाद कहा।

अनाकुल लक्षण सुख, वह महास्वाद। आहाहा! उसे आस्वादता हुआ। '**समासादयन्**' है न? '**समासादयन्**' सम्यक् प्रकार से आस्वाद लेता हुआ—आस्ववादता हुआ। आहाहा! **और कैसा है? 'द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः'** आहाहा! **कर्म के संयोग से हुआ है, विकल्परूप, आकुलतारूप,...** आहाहा! चाहे तो वह शुभराग दया, दान, व्रत का हो, परन्तु है तो वह आकुलता दुःखरूप। आहाहा!

वह **कर्म के संयोग से हुआ है,** संयोगी भाव **विकल्परूप, आकुलतारूप, स्वाद अर्थात् अज्ञानीजन सुख करके मानते हैं...** आहाहा! उस शुभराग का स्वाद भी आकुलता है। पाप के स्वाद का-अशुभ का तो क्या कहना? आहाहा! वह तो पाप का स्वाद तो तीव्र दुःखरूप है, परन्तु शुभराग का स्वाद भी आकुलतारूप दुःख है। **अज्ञानीजन सुख करके मानते हैं...** आहाहा! राग के हर्ष में हर्षित हो जाता है। उसे हर्ष आता है। उसे शुभभाव में हर्ष आता है। आहाहा! **परन्तु दुःखरूप है...** आहाहा! आनन्द के नाथ के अनुभव के समक्ष वह आकुलता शुभराग, वह आकुलता दुःखरूप है।

ऐसा जो इन्द्रिय विषयजनित सुख,... पाँचों इन्द्रिय, हों! उनके विषय को लक्ष्य में रखकर उत्पन्न होता सुख अर्थात् कल्पना। **उसको अंगीकार करने के लिये असमर्थ है।** धर्मी। आहाहा! ज्ञायकभाव के स्वाद को लेता हुआ, विषयजनित स्वाद को लेने में धर्मी असमर्थ, अशक्य है। आहाहा! अब ऐसी बातें। दूसरा धर्म लगे और फिर सोनगढ़ ने नया निकाला, ऐसा कहते हैं। यह सोनगढ़ का है यह? आहाहा! भाव यहाँ का, यह बराबर। परन्तु वस्तु यह कहाँ, यह लेखन किसका है? आहाहा! यहाँ कहते हैं, विषय के शुभराग को भी वेदने को, अनुभव करने को धर्मी अशक्य है, असमर्थ है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा जो इन्द्रिय विषयजनित सुख, उसको अंगीकार करने के लिये असमर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है—विषय-कषाय को दुःखरूप जानते हैं।** अभी भाव है सही। आहाहा! परन्तु उसे दुःखरूप जानता है। आहाहा! तो यह विषयकषाय को दुःखरूप जाने, वह वेदता भी है।

मुमुक्षु : भोक्तापना कहाँ आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण आनन्द का वेदन नहीं। वहाँ आगे पूर्ण आनन्द का अभाव है, वहाँ दुःखभाव है और उसे वेदता है। आहाहा!

यह **विषय-कषाय को दुःखरूप जानते हैं।** आहाहा! विषय-कषाय शब्द से मात्र पाँच इन्द्रिय के बाहर के यह विषय नहीं। यहाँ तो अन्दर में राग उठे, वह भी परवस्तु है। आहाहा! वह इन्द्रिय का विषय है। अणीन्द्रिय का विषय तो भगवान आत्मा है। ऐसे राग को दुःखरूप जानता है। आहाहा!

'स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्' 'स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्' 'स्वां' अपना द्रव्यसम्बन्धी... स्व-स्व **'स्वां'** है न? स्वद्रव्य सम्बन्धी अपना जो स्वरूप **'स्वां' अपना द्रव्यसम्बन्धी... 'वस्तुवृत्तिं'** आहाहा! **आत्मा का शुद्धस्वरूप, उससे 'वस्तुवृत्तिं'** वस्तु जो आत्मा त्रिकाली अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, **आत्मा का शुद्धस्वरूप, उससे 'विदन्' तद्रूप परिणमता हुआ।** आहाहा! त्रिकाली वस्तु जो है आनन्द का नाथ प्रभु, उसके साथ तादात्म्यरूप से अनुभवता हुआ। आहाहा! **तद्रूप परिणमता हुआ।** यह पर्याय आयी। **तद्रूप परिणमता हुआ।** यह पर्याय आयी। वह वस्तु वृत्ति **आत्मा का शुद्धस्वरूप, उससे तद्रूप परिणमता हुआ।** त्रिकाल के साथ उस पर्याय को तद्रूप परिणमता हुआ। आहाहा!

और कैसा है? 'आत्मात्मानुभवानुभावविवशः' भगवान पूर्ण द्रव्यस्वरूप **चेतनद्रव्य, उसका आस्वाद उसकी महिमा उसके द्वारा...** आत्मानुभव। वह **चेतनद्रव्य, उसका आस्वाद उसकी महिमा उसके द्वारा... 'अनुभाव'** का अर्थ महिमा किया। आहाहा! **'विवशः'** गम्य हो गया, गोचर हो गया। आहाहा! महिमा द्वारा अन्दर आत्मा गम्य हो गया। आहाहा! उसकी महिमा ज्ञान में आ गयी। गम्य हो गया। अगम्य था, वह गम्य हो गया। **चेतनद्रव्य... 'आत्मानुभव'** अर्थात् आत्मा का अनुभव अर्थात् आस्वाद। ऐसा यहाँ सीधा अर्थ लिया। उसकी **महिमा द्वारा...** गम्य हो गया। अन्दर में उसकी महिमा में गुम हो गया। आहाहा!

और कैसा है? 'विशेषोदयं भ्रस्यत्' 'विशेष' अर्थात् **ज्ञानपर्याय उसके द्वारा नाना प्रकार उनको... 'भ्रस्यत्' मेटता हुआ।** पर्याय के भेद को लक्ष्य में से छोड़ता हुआ। आहाहा! ऐसी बात है। कल कहा था न? **'भ्रस्यत्'** का, भाई! नहीं? **'भ्रस्यत्'** और **'भृशम्'**। पहले **'भृशम्'** आया है २३१। २३१ श्लोक में **'भृशम्'** आया है। वहाँ **'भृशम्'** का अर्थ निरन्तर है। और यहाँ **'भ्रस्यत्'** का अर्थ भ्रष्ट है। आहाहा! क्या कहते हैं? **'विशेषोदयं भ्रस्यत्'** विशेष जो पर्याय के भेद जो हैं, उन्हें **मिटाता हुआ। 'भ्रस्यत्'**

अर्थात् **मिटाता हुआ।** त्रिकाली सामान्य पर दृष्टि देता हुआ। आहाहा! समझ में आया? **'विशेषोदयं भ्रस्यत्'** आत्मद्रव्य में विशेष प्रकार की पर्यायों का जो प्रगटना। **'विशेषोदयं भ्रश्यत्'** उसे छोड़ता हुआ। विशेष भाव को लक्ष्य में से मिटाता हुआ। आहाहा!

उसमें **'भृशम्'** था। अपने आया था न? २३१ श्लोक है न? **'भृशम् आत्मतत्त्वं भजतः'** '**भ्रशम् आत्मतत्त्वं भजतः**' आहाहा! २३१ कलश है। नीचे से तीसरी-चौथी लाईन है। है न? आहाहा! एक **'भ्रस्यत्'** और एक **'भृशम्'।** बड़ा पूर्व-पश्चिम का (अन्तर) है। **'भृशम्' निरन्तर आत्मतत्त्व को...** भजता हुआ, अनुभव करता हुआ, सेवन करता हुआ। आहाहा! यह भजन है। आनन्द का भजन करना-अनुभव (करना), वह आनन्द का भजन है। आहाहा! समझ में आया? शब्द एक सरीखे जैसे लगते हैं। परन्तु दोनों के अर्थ पूरे उल्टे हैं। यहाँ **'भ्रस्यत्'** अर्थात् पर्यायभेद को मिटाता हुआ और यहाँ **'भृशम्'** अर्थात् निरन्तर आनन्द का अनुभव करता हुआ। आहाहा!

और कैसा है? यह अन्तिम ले लिया। अब सामान्य, बस। पर्याय के भेदों को मिटाता हुआ। आहाहा! पहले तो पर्याय में जो ज्ञेय के नाम से नाम पड़े, उन्हें झूठा सिद्ध किया इतना। अब यहाँ तो पर्याय के भेद हैं, उन्हें छोड़ता हुआ। आहाहा! ऐसा कहीं मिले, ऐसा नहीं है यह वस्तु, बापू! आहाहा! दुनिया को लगे ऐसा। क्या हो? आहाहा!

यह पर्याय के नाम पड़े हैं वे झूठे-खोटे हैं। अब पर्याय है, यह बात बराबर है। परन्तु उस पर्याय को भी **'विशेषोदयं'** इसका भेद है, उसे छोड़ता हुआ। आहाहा! त्रिकाली सामान्य एकरूप प्रभु चैतन्य अन्दर विराजता है। आहाहा! **'सामान्यं' निर्भेद सत्तामात्र वस्तु का...** है? **'सामान्यं कलयन्'** '**सामान्यं**' का अर्थ **निर्भेद सत्तामात्र वस्तु का... 'कलयन्' अनुभव करता हुआ।** आहाहा! सामान्य का अनुभव करता हुआ। सामान्य का अनुभव होता है? अनुभव तो पर्याय का होता है। परन्तु सामान्य पर लक्ष्य है, इसलिए सामान्य का अनुभव है, ऐसा कहा जाता है। पर्याय का जो भेद का अनुभव है, वह छूटकर अभेद का अनुभव है। वस्तु तो अभेद है, वह है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, उस **सत्तामात्र वस्तु का अनुभव करता हुआ।** द्रव्य जो वस्तु ध्रुव सत्ता प्रभु, उसका अनुभव करता हुआ। अर्थात् उसके सन्मुख में... आहाहा! ऐसी

वस्तु है, लो! ऐसा कैसा उपदेश! अनजाना व्यक्ति आया हो, उसे तो ऐसा लगे कि यह क्या है? यह जैन मार्ग होगा ऐसा? यह कोई वेदान्त लगता है यह तो। वेदान्त में ऐसी बातें (नहीं हैं)। अरे! बापू! आहा! यह तो जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव, परमात्मा एक समय में तीन काल जाने, ऐसा केवलज्ञान को नाम पड़ा, वह कहते हैं लोकालोक को जाने इसलिए... आहाहा! पूर्णदशा, वह रहने दे, कहते हैं। आहाहा!

अब यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय का लक्ष्य है, उसे छोड़ दे। आहाहा! और सामान्य जो वस्तु है, सत्तामात्र वस्तु, उसका '**कलयन्**' अभ्यास, अनुभव, वेदन। इस '**कलयन्**' के बहुत अर्थ हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! तीन लोक के नाथ परमात्मा की यह वाणी है, भाई! आहाहा! यह कहीं कल्पित वाणी करके नहीं रखी है। आहाहा! ऐसे '**सामान्य कलयन्**' एकरूप चिदानन्दघन भगवान को वेदता हुआ। अर्थात् उसे अनुसरकर पर्याय को देखता हुआ। भाषा तो ऐसी है कि सामान्य को वेदता है। वेदन करे, वह तो पर्याय है। परन्तु सामान्य पर दृष्टि है, इसलिए सामान्य को वेदता है, ऐसा कहने में आता है। इसमें कहीं अफ्रीका में सूझे, ऐसा नहीं, वहाँ अपने आप पढ़े तो। कहो, अजितभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! अमेरिका में जाये और दो-तीन हजार डॉलर वेतन आवे और मानो कि हम बड़े बादशाह हो गये। पूछने में भी वापस इतना बोले कि तीन-चार हजार डॉलर। एक नाम नहीं कि तीनेक हजार। ऐसा नहीं।

अभी भूपत आया था न? यहाँ व्याख्यान में एक जरा रुका बाकी भटका-भटक, भटका-भटक। हरगोविन्दभाई की पुत्री का पुत्र। बात हुई। कहा, वेतन कितना? कि तीन-चार हजार डॉलर। परन्तु उसमें एक भी नहीं रहता। उसमें तेरा अधिक-अधिक बोलना, क्या है? और... साठ हजार कमाता है। उसमें क्या? खर्च भी कितना होता है वहाँ उसका। आहाहा! अरेरे! धर्म कहाँ? पुण्य भी कहाँ? धर्म तो कहीं रहा? परन्तु सत्समागम, शास्त्र का श्रवण, वाँचन, दो-चार घण्टे, ऐसा जो पुण्य है, उसका भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! अरेरे! इसे कहाँ जाना? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं '**सामान्यं कलयन्**' आहाहा! उसे वेदता हुआ, करता हुआ-अनुभव करता हुआ। आहाहा! १४० हुआ।

कलश-१४१

(शार्दूलविक्रीडित)

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्त्यो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः।।९-१४१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'स एष चैतन्यरत्नाकरः' [स एषः] जिसका स्वरूप कहा है तथा कहेंगे—ऐसा [चैतन्यरत्नाकरः] जीवद्रव्यरूपी महासमुद्र। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य (को) समुद्र की उपमा देकर कहा गया है सो इतना कहनेपर, द्रव्यार्थिकनय से एक है; पर्यायार्थिकनय से अनेक है। जिस प्रकार समुद्र है, तरंगावलि से अनेक है। 'उत्कलिकाभिः' समुद्र के पक्ष में तरंगावलि, जीव के पक्ष में एक ज्ञानगुण के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इत्यादि अनेक भेद, उनके द्वारा 'वल्गति' अपने बल से, अनादि काल से परिणम रहा है। कैसा है? 'अभिन्नरसः' जितनी पर्याय हैं, उनसे भिन्न सत्ता नहीं है; एक ही सत्त्व है। और कैसा है? 'भगवान्' ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इत्यादि अनेक गुणों से विराजमान है। और कैसा है? 'एकः अपि अनेकीभवन्' [एकः अपि] सत्तास्वरूप से एक है तथापि [अनेकीभवन्] अंशभेद करनेपर, अनेक है। और कैसा है? 'अद्भुतनिधिः' [अद्भुत] अनन्त काल तक चारों गतियों में फिरते हुए जैसा सुख कहीं नहीं पाया, ऐसे सुख का [निधिः] निधान है। और कैसा है? 'यस्य इमाः संवेदनव्यक्तयः स्वयं उच्छलन्ति' [यस्य] जिस द्रव्य के [इमाः] प्रत्यक्षरूप से विद्यमान [संवेदन] ज्ञान, उसके [व्यक्तयः] मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक पर्यायरूप अंशभेद, [स्वयं] द्रव्य का सहज ऐसा ही है, उस कारण [उच्छलन्ति] अवश्य प्रगट होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—कोई आशंका करेगा कि ज्ञान तो ज्ञानमात्र है, ऐसे जो मतिज्ञान आदि पाँच भेद, वे क्यों हैं? समाधान इस प्रकार है—जो ज्ञान की पर्याय है, विरुद्ध तो कुछ नहीं। वस्तु का ऐसा ही सहज है। पर्यायमात्र विचारनेपर मति आदि पाँच भेद विद्यमान है; वस्तुमात्र अनुभवनेपर, ज्ञानमात्र है। विकल्प जितने हैं, उतने समस्त झूठे हैं, क्योंकि विकल्प, कोई वस्तु नहीं है; वस्तु तो ज्ञानमात्र है। कैसी है संवेदन

व्यक्ति? 'अच्छाच्छाः' निर्मल से भी निर्मल है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई ऐसा मानेगा कि जितनी ज्ञान की पर्याय हैं, वे समस्त अशुद्धरूप हैं, सो ऐसा तो नहीं, कारण कि जिस प्रकार ज्ञान, शुद्ध है; उसी प्रकार ज्ञान की पर्याय, वस्तु का स्वरूप है; इसलिए शुद्धस्वरूप है। परन्तु एक विशेष—पर्यायमात्र का अवधारण करनेपर, विकल्प उत्पन्न होता है, अनुभव निर्विकल्प है; इसलिए वस्तुमात्र अनुभवनेपर समस्त पर्याय भी, ज्ञानमात्र हैं; इसलिए ज्ञानमात्र अनुभव योग्य है। और कैसी है संवेदनव्यक्ति? 'निःपीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ताः इव' [निःपीत] निगला है [अखिल] समस्त [भाव] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश, ऐसे समस्त द्रव्य, उनका [मण्डल] अतीत, अनागत, वर्तमान अनन्त पर्याय, ऐसा है। [रस] रसायनभूत दिव्य-औषधि, उसका [प्राग्भार] समूह, उसके द्वारा [मत्ता इव] मग्न हुई है, ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई परम-रसायनभूत दिव्य-औषधि पीता है तो सर्वांग तरंगावलि सी उपजती है; उसी प्रकार समस्त द्रवयों के जानने में समर्थ है ज्ञान; इसलिए सर्वांग आनन्दतरंगावलि से गर्भित है।।९-१४१।।

कलश - १४१ पर प्रवचन

१४१ (कलश), अब देखो! यह पर्याय निर्मल उत्पन्न होती है, उसे सिद्ध करते हैं। पर्याय उसकी है, ऐसी वापस बात करते हैं। उसका लक्ष्य छुड़ाया है परन्तु पर्याय है तो उसकी। आहाहा!

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्त्यो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः।।९-१४१।।

देखो! '**भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्**' पर्याय में अनेकपना होता है, ऐसा है। ऐसा सिद्ध करना है। यह तो उसका लक्ष्य और आश्रय करे, परन्तु वस्तु अनेकरूप है। आहाहा!

खण्डान्वयसहित अर्थ—'स एष चैतन्यरत्नाकरः' 'स एषः' 'स' वह य। **'स'** वह यह। प्रत्यक्ष बताते हैं। भगवान अन्दर वह यह। आहाहा! (जैसा स्वरूप) **जिसका स्वरूप कहा है तथा कहेंगे ऐसा... 'चैतन्यरत्नाकरः'** आहाहा! वह चैतन्य के रत्न का सागर है-समुद्र है। आहाहा! स्वयंभूरमण समुद्र में तल में रत्न भरे हैं। उसमें वहाँ रेत नहीं। अन्तिम समुद्र है। वहाँ रेत के बदले रत्न हैं। आहा! यह स्वयंभू भगवान आत्मा, जिसके चैतन्यरत्नाकर। चैतन्यरूपी रत्न का समुद्र यह तो है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह रत्न कहाँ होते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में होते होंगे। बाहर में होते होंगे शान्तिभाई को, उन्हें यह नहीं। धूल नहीं। आहाहा!

'चैतन्यरत्नाकरः' यह मेरे, प्रभु! यह चैतन्य के रत्न का आकर-समुद्र है भगवान। आहाहा! आचार्य ने शब्द तो देखो प्रयोग किया है! यह चैतन्य के रत्न का आकर / समुद्र है यह तो। बापू! जैसे समुद्र में, स्वयंभूरमणसमुद्र में अकेली रत्न की रेत है। उसी प्रकार इसके समुद्र में चैतन्य के रत्न की रेत है। आहाहा! क्या शब्द प्रयोग किया है? **'चैतन्यरत्नाकरः'** फिर भाषा सादी कर दी। **जीवद्रव्यरूपी महासमुद्र...** ऐसा। **जीवद्रव्यरूपी महासमुद्र...** आकर है न? अर्थात् समुद्र। कैसा है चैतन्यरत्न। अर्थात् कि जीवद्रव्य, ऐसा। चैतन्यरत्न अर्थात् जीवद्रव्य, आकर अर्थात् समुद्र। आहाहा! कलश की टीका तो देखो! एक-एक कलश, वह कलश अमृत से भरा है! आहाहा!

'स एष चैतन्यरत्नाकरः' यह भगवान चैतन्यरत्नाकर। **भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य समुद्र की उपमा देकर कहा गया है,...** जीवद्रव्य भगवान आत्मा को समुद्र की उपमा देकर कहा गया है। **सो इतना कहने पर द्रव्यार्थिकनय से एक है,...** देखा! दो सिद्ध करते हैं अब। **द्रव्यार्थिकनय से एक है, पर्यायार्थिकनय से अनेक है।** पर्यायनय से अनेक है। पर्याय नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा! अब ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा कि व्यवहार पर्याय झूठी है। अभूतार्थ कही। झूठी है। यहाँ कहते हैं कि अनेक पर्याय है। सत् है। वहाँ दूसरा हेतु था, यहाँ दूसरा हेतु है। वहाँ परमपारिणामिक त्रिकाली स्वभाव का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। इसलिए उसे सत्य कहकर, मुख्य कहकर, वह

ही है, ऐसा कहा। और पर्याय का आश्रय छुड़ाने के लिये उसे गौण करके, व्यवहार कहकर 'नहीं' ऐसा गौण करके, व्यवहार कहकर (झूठा कहा)। व्यवहार का अर्थ असत्य होता है। निश्चय का अर्थ सत्य होता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो निर्जरा की जो शुद्धि की वृद्धि (होती है), वह पर्याय है—ऐसा कहते हैं। आश्रय करनेयोग्य है या नहीं, यह प्रश्न अभी नहीं है। यहाँ तो शुद्धि चैतन्य भगवान शुद्ध पूर्ण स्वरूप के अवलम्बन में जो शुद्धि की वृद्धि होती है, वह शुद्धि की वृद्धि इन पर्यायों का भेद है। उस पर्यायरूप से भगवान अनेक है। द्रव्यरूप से एक है और पर्यायरूप से अनेक है। आहाहा! लो! निर्जरा में तो यह आया। शुद्धि बढ़ती है न, वह पर्याय है। आहाहा! पर्याय का आश्रय करनेयोग्य है, यह प्रश्न अभी यहाँ नहीं है। आश्रय तो त्रिकाली ध्रुव ही सामान्य एक वस्तु, बस। वह एक ही सिद्धान्त। परन्तु उसके आश्रय से उत्पन्न हुई निर्मल पर्यायें अनेक, एकरूप में से पर्याय अनेक भी है। आहाहा! व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

निर्जरा; संवर की शुद्धि की उत्पत्ति पहले होती है, पश्चात् निर्जरा शुद्धि की वृद्धि होती है, पश्चात् शुद्धि की पूर्णता हो, वह मोक्ष। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह है। संवर है, निर्जरा है, मोक्ष है। पर्याय का अस्तित्व है। आहाहा! समझ में आया? कोई ऐसा कहे कि देखो! ११वीं गाथा में पर्याय को झूठी कहा तो वेदान्त के ढाले में ढाला। अब सुन न, भाई! वेदान्त में और अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय और उसमें विकार तथा विकार का निमित्त कर्म, यह वस्तु कहाँ है? आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर का वेदान्त है। ज्ञान का सार है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **द्रव्यार्थिकनय से एक है, पर्यायार्थिकनय से अनेक है। जिस प्रकार समुद्र एक है, तरंगावलि से अनेक है।** तरंग उठे, वह भी है। तरंग उसकी अपनी पर्याय है। वह कहीं हवा के कारण तरंग उठी है, (ऐसा नहीं है), इसी प्रकार कर्म हटा, इसलिए निर्मलता हुई है, ऐसा नहीं है, यह कहना है। निर्मलता अपनी पर्याय में है। अब इसकी विशेष बात है...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक - ०९-११-१९७७, कलश-१४०, प्रवचन-१४४

कलशटीका, निर्जरा अधिकार। १४० कलश फिर से। '**एष आत्मा सकलं ज्ञान एकतां नयति**' '**एष आत्मा**' यह प्रत्यक्ष आत्मा, ऐसा सिद्ध करना है। यह आत्मा ज्ञान की पर्याय में यह आत्मा प्रत्यक्ष '**एष आत्मा**' **वस्तुरूप विद्यमान...** '**एष**' का अर्थ किया। विद्यमान है। वस्तु है, वह विद्यमान है कहो, या है कहो। ऐसा जो **आत्मा अर्थात् चेतनद्रव्य, जितनी पर्यायरूप परिणमा है...** अब यहाँ पर्याय को सिद्ध करना है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, जितनी वर्तमान पर्याय में पर्यायरूप परिणमा है, वह **ज्ञान—मतिाान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान...** केवलज्ञान पर्याय यहाँ (ली है)। छद्मस्थ को केवलज्ञान नहीं, परन्तु परोक्ष रीति से केवलज्ञान ऐसा होता है, ऐसा उसे भाव होता है। तो कहते हैं कि **इत्यादि अनेक विकल्परूप परिणमा है...** यह तो भेदरूप हुआ। भेदरूप परिणमा। पाँच प्रकार पड़े न?

ज्ञान—उसको निर्विकल्परूप अनुभवता है। आगे कहेंगे, है अवश्य पर्यायें। यह बाद में '**अच्छाच्छाः**' में कहेंगे। परन्तु अनुभव निर्विकल्प का अनुभव होता है। वस्तु की पर्याय ज्ञानरूप से पाँच पर्यायें हैं, परन्तु वह भेदरूप है विकल्प, उसके आश्रय से विचार करने पर विकल्प उत्पन्न होता है। इससे एकरूप वस्तु जो त्रिकाल, उसका आश्रय लेने से निर्विकल्प अनुभव होता है। भेदरहित चीज़ जो अभेद चीज़ है, उसका अनुभव। अनुभव है पर्याय, परन्तु उसका अनुभव होता है, ऐसा कहा जाता है। है तो वस्तु त्रिकाल अभेद। पर्याय में वह आती नहीं। भाषा ऐसी ली जाती है कि त्रिकाली अभेद वस्तु है, उसे अनुभव करता है। अर्थात् कि उसकी सन्मुखता में उसकी पर्याय होती है, इसलिए उसे अनुभव करता है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म मार्ग है।

भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार उष्णतामात्र अग्नि है,... अग्नि तो उष्णतामात्र ही है। उसे भेद से कहना **दाह्यवस्तु को जलाती हुई...** वह अग्नि जलनेयोग्य वस्तु को जलाती हुई **दाह्य के आकार (जलनेयोग्य के आकार) परिणमती है,...** अग्नि। सूखे

कण्डे होते हैं। सूखे कण्डे समझे? साधारण कण्डे हों, वे सूख जायें तो अग्नि उस आकार होती है। कण्डा हो दूसरे तो उस कण्डे के आकार अग्नि होती है, लकड़ी के आकार अग्नि होती है। वह **आकार परिणमती है, इसलिए लोगों को ऐसी बुद्धि उपजती है कि काष्ठ की अग्नि,...** वह मानो लकड़ी के आकार अग्नि हुई तो लकड़ी की अग्नि, ऐसा लोगों को लगता है। **कण्डे...** की अग्नि। **तृण की अग्नि...** तिनके। परन्तु **सो ये समस्त विकल्प झूठे हैं।** वह कहीं अग्नि उनकी नहीं है। उस आकार हुआ है, वह तो ज्ञान का आकार है। कहीं ज्ञेय का आकार नहीं है। लकड़ी का आकार अग्नि में नहीं। **अग्नि के स्वरूप का विचार करने पर उष्णतामात्र अग्नि है, एकरूप है,...** उष्णतास्वरूप **काष्ठ, छाणा, तृण अग्नि का स्वरूप नहीं है...** वह कहीं अग्नि का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

उसी प्रकार ज्ञान चेतनाप्रकाशमात्र है,... भगवान आत्मा में ज्ञानप्रकाश चेतना तो प्रकाशमात्र है। **समस्त ज्ञेयवस्तु को जानने का स्वभाव है, इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तु को जानता है, जानता हुआ ज्ञेयाकार परिणमता है। इससे ज्ञानी जीव को ऐसी बुद्धि उपजती है...** ज्ञेयाकार परिणमती है, इसलिए ज्ञानी जीव को ऐसी बुद्धि उपजती है **कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान—ऐसे भेदविकल्प सब झूठे हैं।** किस अपेक्षा से? कि पर्याय के भेद हैं, वह वस्तु नहीं। वस्तु तो त्रिकाली अभेद है। इसलिए उसका नाम ज्ञेयाकार जो ज्ञान हुआ, उस प्रकार से ज्ञानी उसे भिन्न मानता है। आहाहा! जैसे लकड़ी के आकार यह अग्नि हुई, ऐसा नहीं। उसी प्रकार ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। ज्ञान तो अपने आकार ही हुआ है। आहाहा!

ज्ञेय की उपाधि से मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल—ऐसे विकल्प (भेद) उपजे हैं, कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। अब यहाँ जरा है, सूक्ष्म यहाँ है। ज्ञेय अर्थात् ज्ञान में जाननेयोग्य वस्तु... बापू! प्रभु का मार्ग तो सूक्ष्म है। प्रभु अर्थात् आत्मा। **ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** ज्ञान में जाननेयोग्य चीज़ अनेक प्रकार से ज्ञेय है। अब यह सिद्धान्त यहाँ है। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है...** यहाँ सिद्धान्त है। **जैसे ही ज्ञेय का...** जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है। **ज्ञायक होता है...** ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य अनन्त अनेक

हैं। अब **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है...** जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है, **वैसा ही नाम पाता है,...** मति का नाम मतिज्ञान पड़ा। क्योंकि उसके योग्य जो ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, इसलिए उसका नाम मतिज्ञान पड़ा। श्रुत में परोक्षरूप से सब ज्ञेयों के आकार ज्ञान हुआ, इसलिए उसका नाम श्रुतज्ञान पड़ा। अवधि—उसके योग्य मर्यादित जो पदार्थ हैं, उनके आकार जानना हुआ, इसलिए अवधि नाम पड़ा। मन (के विषय) को जानने के कारण से, मन:पर्ययज्ञान को मन:पर्यय नाम पड़ा। और केवलज्ञान तीन काल के, तीन लोक के ज्ञेय को जाने, इसलिए (केवल नाम पड़ा)।

वह **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है... वैसा ही नाम पाता है,...** ऐसा कहा। अर्थात् केवलज्ञान भी जैसे ज्ञेय का ज्ञायक हुआ... आहाहा! **वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है, नाम धरना सब झूठा है।** यह इसे जाने, इसलिए मति; इसे जाने, इसलिए श्रुत; इसे जाने, इसलिए अवधि; इसे जाने, इसलिए मन:पर्यय; इसे जाने, इसलिए केवल, यह नाममात्र झूठे हैं। आहाहा! समझ में आया? वह तो ज्ञान की पर्यायमात्र है। उसे जाने इसलिए और उसे जाने, इसलिए जो पाँच भेद पड़े, वे भेद झूठे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : झूठे हैं, तब तो उसमें से पाँच भेद निकाल डालना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच किस प्रकार? यह पाँच है, उनका भिन्न-भिन्न ज्ञेय जानने का ज्ञायक है, इस अपेक्षा से झूठे हैं, ऐसा कहा। पर्यायरूप से है। पर्यायरूप से उनका नाम... यह कहते हैं, देखो! **ज्ञानमात्र है,... वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है,...** है? वह ज्ञानमात्र है। पर्याय भी ज्ञान है न? ज्ञेयाकार है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञानमात्र है अर्थात् भेद बिना का।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भले। यह नहीं। यहाँ तो ऐसा कहना है कि ज्ञेयाकार जो नाम पड़े, वे झूठे हैं। ज्ञानमात्र कहना वह। ज्ञानमात्र अर्थात्? भले पर्याय है, परन्तु वह ज्ञानमात्र है। ज्ञेयाकार के कारण जो भेद पड़ा, वह उसमें नहीं है। सूक्ष्म बात है।

नाम धरना सब झूठा है—ऐसा कहा है। मति, श्रुत, आदि ज्ञानपने की पर्याय है, वह ज्ञानमात्र पर्याय है। अभी त्रिकाली की बात यहाँ नहीं। समझ में आया? वह

ज्ञानमात्र है **नाम धरना सब झूठा है।** देखो! ज्ञानमात्र है वहाँ ह्रस्वई रखी है न? क्या कहलाता है वह?

मुमुक्षु : अल्पविराम।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्पविराम। क्योंकि वहाँ उसका पूरा नहीं होता।

यहाँ त्रिकाली ज्ञान है, यह बात सिद्ध नहीं करना है। यहाँ तो ज्ञान की वर्तमान पर्याय में... ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होती। ज्ञान की पर्याय में जैसे ज्ञेय को जानने से ज्ञायक होता है, वैसे ज्ञेय को जानने से ज्ञायक होता है, ऐसा जो उसमें नाम पड़ता है, वह झूठा है। बाकी ज्ञान पर्यायमात्र है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... पर्यायमात्र, यह बराबर है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! टीकाकार ने कितनी गम्भीर टीका की है!

यहाँ लेना, देखो! **ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है...** नाना प्रकार से है, ऐसा कहा न? तीसरी लाईन। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है...** ज्ञेय का ज्ञायक होता है, यह बात लेनी है। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है...** पर्याय में।

मुमुक्षु : ज्ञेय का ज्ञायक है या अपना ज्ञायक है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। पर्याय में ज्ञेय का ज्ञायक है, **वैसा ही नाम पाता है...** वह झूठा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कल तो बहुत कहा था। यह ज्ञेय का ज्ञायक है, ऐसे नामभेद हैं, वे झूठे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में भेद आवे तो वहाँ सब झूठे हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रकार के भेद झूठे हैं। पर्याय, पर्यायरूप से बराबर है। परन्तु पर्याय के पाँच भेद में जैसा ज्ञेय है, उसे जानना, इस प्रकार से ज्ञान का नाम पड़े, वह झूठा है, ऐसा कहते हैं। लालचन्दभाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू!

यहाँ तो बाद के उसमें तो सिद्ध करेंगे। '**अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति**' यह ज्ञान की पर्याय ज्ञेय के कारण से जानने के लिये उछलती है, ऐसा नहीं। वह अपना स्वभाव ही ज्ञान का है कि ज्ञान की पर्याय स्वयं उछलती है। और उस ज्ञान की अनेकता वह है। वस्तुरूप से एक है और पर्यायरूप से, परिणमनरूप से अनेक है। अनेक का आश्रय करनेयोग्य है या नहीं, यह प्रश्न नहीं। परन्तु पर्याय अनेक है।

मुमुक्षु : कुछ खूँटे बँधता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खूँटे बँधता है इस प्रकार। यह किस अपेक्षा से? एक त्रिकाल की अपेक्षा से एक। कहेंगे। अभी यहाँ। देखो! बाद में कहेंगे।

द्रव्यार्थिकनय से एक है, पर्यायार्थिकनय से अनेक है,... बाद के श्लोक में। है अस्ति सिद्ध करना है यहाँ। पर्याय नहीं-नहीं, ऐसा कहा था ११ (गाथा) में। आहाहा! ११वीं गाथा में ऐसा कहा था... सूक्ष्म बात है, प्रभु! आज तो धनतेरस का दिन है। लक्ष्मी, धन, अर्थात्, हों! यहाँ भगवान की लक्ष्मी आयेगी। भग-भग। भग अर्थात् लक्ष्मी, वान अर्थात् लक्ष्मीवाला प्रभु है। परन्तु कैसी लक्ष्मी? ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मीवाला यह प्रभु है। आहाहा!

यहाँ तो दो बात सिद्ध करनी है कि त्रिकाली सत्ता भी है और वर्तमान वह जैसे ज्ञेयों को जानने के नाम पड़ते हैं, वे झूठे। परन्तु जैसा ज्ञान परिणमता है, वह अनेकपना होना, वह यथार्थ है। ज्ञान का पर्याय में अनेकपना होना, वह यथार्थ है। अनेकपने में ज्ञेय को जानने की अपेक्षा से जो नाम पड़े थे, वे झूठे हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है। आहाहा! समझ में आया? ११वीं गाथा में तो ऐसा कहा था कि पर्याय अभूतार्थ है। पर्याय है ही नहीं। इसलिए ऐसा कहते हैं न, वे एक थे वे नाथूलाल प्रेमी। (वे कहते थे) समयसार को कुन्दकुन्दाचार्य ने वेदान्त के ढाले में ढाला है। पर्याय नहीं कही है न? परन्तु ऐसा नहीं है। वहाँ नहीं कहा है, वह गौण करके—पर्याय को गौण करके, गर्भित में रखकर, व्यवहार गिनकर 'नहीं' ऐसा कहा है। और त्रिकाली को मुख्य गिनकर, निश्चय गिनकर वह सत्य है, ऐसा कहा है। आहाहा! वह यहाँ अब सिद्ध करते हैं कि पर्याय एक स्वरूप है आत्मा, तथापि पर्यायरूप से अनेकरूप है। परन्तु उस पर्याय में जो नाम जैसे ज्ञेय को जानने के ज्ञान के नाम पड़ते हैं, वे झूठे हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। बनियों को निवृत्ति नहीं मिलती, व्यापार-धन्धे के कारण। अब ऐसी बातें। आहाहा!

मुमुक्षु : दृष्टान्त देकर समझाओ तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त कहा न वह लकड़ी का, अग्नि का दिया है न। तब

ध्यान कहाँ रखा है ? अग्नि का दृष्टान्त दिया नहीं ? लकड़ी के आकार अग्नि, कण्डे के आकार अग्नि, ऐसा कहना वह व्यवहार है, ऐसा नहीं। अग्नि, अग्नि के आकार हुई है। दृष्टान्त तो आ गया पहले। ध्यान नहीं। समझ में आया ? कण्डे की अग्नि, लकड़ी की अग्नि, पत्ते की अग्नि, तिनके की अग्नि, यह बात झूठी है। परन्तु अग्नि अग्निरूप से हुई है, यह बात बराबर है। वह पर्याय अग्निरूप वह है। आहाहा! समझ में आया ? पहले दृष्टान्त देकर समझाया। तिनके की अग्नि, लकड़ी की अग्नि, सूखे गोबर की अग्नि, कण्डे की अग्नि, ऐसा कहना वह झूठा है परन्तु अग्नि उष्णतामय है। पर्याय की बात है, हों! यहाँ तो अभी। उष्णतामय है। बस, उष्णतामय है। उसके आकार और उसके आकार, इसलिए ऐसा नहीं। उष्णतामात्र है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने ज्ञान में... पर्याय में, हों! यहाँ तो अभी। ऐसा है न यहाँ तो ?

जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है... इस शब्द में जोर है। तीसरी लाईन। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है...** जिस प्रकार जैसे लकड़ी के आकार अग्नि होती है, उसी प्रकार जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है। **वैसा ही नाम पाता है,...** ऐसे लकड़ी की अग्नि, कण्डे की अग्नि, सूखे गोबर की अग्नि। **वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है,...** यह पर्याय की बात है। इस प्रकार अग्नि को वस्तु विचारने पर उष्णतामात्र है। उसी प्रकार भगवान आत्मा की पर्याय में ज्ञान का विचार करने पर वह ज्ञानमात्र है। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : उष्णतामात्र अर्थात् त्रिकाल स्वरूप का या पर्याय का ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, पर्याय का कहा न! दो-तीन बार कहा। जैसे अग्नि उष्णतामात्र है वह भी पर्याय में है। उसके भेद उसके आकार से है, उसके आकार से है, वह झूठा है। समझ में आया ? आहाहा!

देखो! **वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है,...** पर्याय, हों! **नाम धरना सब झूठा है।** क्या कहा यह ? उसे ऐसा कहना कि यह मतिज्ञान इसे जानता है, श्रुतज्ञान इसे जानता है, अवधि ज्ञान इसे जानता है—ऐसा कहना झूठा है। आहाहा! समझ में आया ? गजब शैली है! ज्ञेय को सिद्ध करते हैं। ज्ञेय को जानना सिद्ध

करते हैं, परन्तु जैसा ज्ञेय को जानता है वह ज्ञान ज्ञेय की ओर का हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है। कहाँ लोगों को फुरसत है! आहाहा! ऐसा भगवान!

त्रिकाली स्वरूप है, वह तो ध्रुव है। अब तो उसके परिणमन के दो प्रकार के विचार किये कि जो ज्ञान का परिणमन, जैसे ज्ञेय को जाने, वैसा ज्ञायक नाम पड़े उसे। वह ज्ञेय के आकार से नाम पड़े, वह बात झूठी है। समझ में आया? आहाहा! **नाम धरना सब झूठा है।** नाम धरना सब झूठा है। **ऐसा अनुभव शुद्धस्वरूप का अनुभव है।** आहाहा! पर्याय की बात, हों! आहाहा! शान्ति से विचार करे जरा धीजर से, बापू! यह तो अपूर्व मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव के मुख में से दिव्यध्वनि निकली, उसका यह सब सार है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है।

एक तो ज्ञेय सिद्ध करते हैं। ज्ञेय नहीं, ऐसा नहीं। एक ओर पर्याय में ज्ञेयाकार जैसे ज्ञेय को जानता है और ज्ञान नाम पड़ता है। दो बातें। तो भी वह नाम झूठा है और ज्ञानपर्यायमात्र है—यह तीन बात। उसमें कहीं पैसा-बैसा में तो हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा को पर्याय सिद्ध करना है। परन्तु उस पर्याय के नाम में भेद पड़े कि उसे इतना जाने, इसलिए मति और श्रुत इसे जाने, इसलिए श्रुत; मर्यादित पदार्थ को जाने, इसलिए अवधि; मन के भाव को जाने, इसलिए मनःपर्यय, तीन काल को जाने, इसलिए केवल, यह नाम धरना झूठा है। आहाहा! वास्तव में तो पर को जानता नहीं। पर को क्या जाने? परवस्तु का स्पर्श नहीं। एक-दूसरे में अभाव है। अपने में रहकर परसम्बन्धी और अपने सम्बन्धी का ज्ञान अपने में उछलता है। आहाहा! वह ज्ञेय के कारण उछलता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? और ज्ञेय के नाम से यहाँ नाम पड़ा है, वह भी नहीं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं सामने पुस्तक?

ऐसा अनुभव शुद्धस्वरूप का अनुभव है। यहाँ पर्याय की बात है। समझ में आया? जैसा ज्ञेय है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है, इसलिए वह ज्ञान की पर्याय के ज्ञेयाकार के परिणमन के कारण से नामभेद पड़े, वे झूठे हैं। आहाहा! समझ में आया? समझ आये उतना समझना, बापू! यह तो वीतराग का गहन मार्ग है। आहाहा! अनन्त ज्ञेयों को

भी सिद्ध करते हैं। है न ऊपर? आया न? **कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** ऐसा आया न पहले? पहले यह सिद्ध तो किया। **कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** नाना अर्थात् अनेक प्रकार के हैं। अर्थात् ज्ञेय अनेक प्रकार के हैं, यह बात सिद्ध की। वह वेदान्त (मानता है ऐसा) वह ज्ञेय है ही नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? एक बात।

अब जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है। यह वापस दूसरी बात। ज्ञेय अनेक प्रकार के हैं अर्थात् अनन्त प्रकार के हैं। अब जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है, जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है। समझ में आया? यह समझना तो पड़ेगा या नहीं? भाई! कठिन पड़े तो भी (समझना पड़ेगा या नहीं)? आहाहा! हमको नहीं समझ में आता, ऐसा करके कहीं निकाल दिया जाता है? आहाहा! अरे! ऐसे अवसर में नहीं समझे, भाई! कब समझेगा? यहाँ तो पर्याय में ज्ञेय अनेक हैं, ऐसा सिद्ध करके और जैसा उस ज्ञेय का यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा ज्ञान की पर्याय में नाम पड़ता है, वे नाम पाड़ना झूठे हैं, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो उसका सच्चा नाम क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा नाम ज्ञानपर्याय। ज्ञान की पर्याय, बस। दास! ऐसा है। आहाहा!

नाम धरना सब झूठा है। ऐसा कहा न? पर्यायमात्र तो सच्ची है, परन्तु उसे जैसे ज्ञेय जाने, वैसा नाम रखा है, वह भी खोटा है।

मुमुक्षु : मति-श्रुत यह नाम खोटे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नाम पड़े, ऐसा नहीं। ज्ञानपर्याय। आहाहा!

तत्त्वार्थसूत्र में तो परोक्ष की बात ली है। मतिज्ञान मन और इन्द्रिय द्वारा जाने, वह मतिज्ञान। वहाँ प्रत्यक्ष की बात गौण रखी है। समझ में आया? वरना वास्तव में मति तो अपने को—स्व को जानता है। मतिज्ञान तो स्वयं—स्व को जानता है। यह तो कहा नहीं? १७-१८वीं गाथा। (समयसार) कि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही स्वपरप्रकाशक है। भले अल्प ज्ञान हो, अज्ञान हो परन्तु उस पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। इसलिए उस ज्ञान की पर्याय में आबाल-गोपाल को—बालक से लेकर वृद्धों को—ज्ञान

की पर्याय का स्वरूप स्वपरप्रकाशक होने से ज्ञान की पर्याय में पूरा आत्मा ही ज्ञात होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर ज्ञात होता है या आत्मा ज्ञात होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा ज्ञात होता है। आत्मा पर्याय में आता नहीं परन्तु पर्याय में पूरा आत्मा ज्ञात होता है। क्योंकि उस पर्याय का स्वपरप्रकाशकपना स्वरूप है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। वह तो कहे, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। ऐसा था या नहीं? वे कहे, मन्दिर जाओ, यात्रा करो, भक्ति करो। यह दिगम्बर कहे, वस्त्र छोड़ो और यह करो। अरे! प्रभु! सुन तो सही! तेरा नाथ अन्दर क्या है? और उसकी पर्याय की स्वतन्त्रता उस-उस काल में उत्पन्न होनेवाली स्वतन्त्र पर्याय की जाति कैसी है? कि उस ज्ञान की पर्याय को जैसे ज्ञेय है, वैसा जानना हो; इसलिए उस ज्ञेय के नाम से उसके नाम पड़ें, परन्तु वे नाम झूठे हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उसके कारण से नाम पड़े तो सच्चे नाम कितने?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा नाम ज्ञानपर्याय। सच्चा नाम ज्ञानपर्याय, बस। नाम निक्षेप से कहें तो यह कहा जाता है। आत्मा को नाम निक्षेप से कहें तो आत्मा कहलाता है। बाकी आत्मा-वस्तु में कहाँ है, यह शब्द। समझ में आया? आहाहा! वीतराग का मार्ग अचिन्त्य और अलौकिक! उसका फल भी अचिन्त्य अलौकिक है न! आहाहा!

असंख्य समय का साधकपना, भविष्य का सादि-अनन्त काल भूत से अनन्तगुना, उसके आनन्द की प्राप्ति हो, वह उपाय कैसा होगा? बापू! आहाहा! क्या कहा यह? क्या कहा यह? स्वरूप को साधने के लिये पूर्ण होने में असंख्य समय चाहिए, अनन्त समय नहीं चाहिए। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई, उसे केवलज्ञान प्राप्त करने में असंख्य समय ही होते हैं। भले सात-आठ भव करे तो भी वह असंख्य समय में आ जाते हैं। आहाहा! तब उसके एक-एक समय का फल अनन्त-अनन्त समाधि। 'अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त सहित जो। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?' आहाहा! जिसके फलरूप से... भविष्य काल अनन्तगुना है न? भविष्य काल कितना है? प्रत्येक के लिये। जिसने आत्मा को अन्दर स्वरूप में साधन अनुभव

करके किया है, उसके अनुभव के समय तो असंख्य समय ही हैं। आहाहा! और उसके फलरूप से अनन्त-अनन्त काल जिसे अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का भोग, वह, बापू! क्या चीज़ है? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : समझ में आया, ऐसा कहना कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, समझ में आया....

मुमुक्षु : हाँ, करना कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धीरे-धीरे तो कहा जाता है, बापू! आहाहा! चैतन्यसागर उछलता है न! कहते हैं। '**अच्छाच्छाः**' कहेंगे। बाद का कलश है न। कलश-कलश? '**अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति**' निर्मल से निर्मल धारा उछलती है अन्दर से। आहाहा!

मुमुक्षु : साधक को निर्मल पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पूर्ण निर्मल और साधक को एक के बाद एक निर्मल धारा। निर्जरा अधिकार है न? संवर है, वह शुद्धि की उत्पत्ति करता है और निर्जरा है, वह शुद्धि की वृद्धि करता है और मोक्ष है, वह शुद्धि की पूर्णता है। आहाहा!

निर्जरा के प्रकार भी तीन हैं। कर्म का गलना। वह तो स्वतन्त्र उसका स्वभाव है। अशुद्धता का जाना, वह पर्याय में से और शुद्धता का बढ़ना, इन तीनों को निर्जरा कहा जाता है। आहाहा! वह तो एक पकड़े कि कर्म का खिर जाना, वह निर्जरा। किस अपेक्षा से? बापू! कर्म तो जड़ है। उसका खिरना, न खिरना तो... कर्म की अकर्मरूप पर्याय होना, वह तो उसका स्वभाव है। वह कहीं इसने शुद्धता प्रगट की, इसलिए वह अकर्मरूप हुई, ऐसा नहीं है। परन्तु जहाँ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बतलाकर जहाँ आत्मा के स्वभाव के आश्रय से जहाँ शुद्धि की वृद्धि (हुई, वह निर्जरा)। यह संवरपूर्वक निर्जरा की व्याख्या है। उसमें पहले आ गया है कि संवरपूर्वक यह निर्जरा की व्याख्या है। अज्ञानी को कर्म खिरते हैं, उसे कहीं निर्जरा नहीं कहा जाता। आहाहा! अर्थात्? संवर अर्थात्? कि सम्यग्दर्शनरूपी जो संवर... आहाहा! उस पूर्वक जो पूर्व के कर्म खिरते हैं, अशुद्धता गलती है और शुद्धता बढ़ती है, उसे यहाँ निर्जरा कहा जाता है। वह तो पर्याय है। निर्जरा तो शुद्ध पर्याय है।

उस पर्याय को यहाँ कहते हैं कि उसकी पर्याय में—ज्ञान की पर्याय में जैसे ज्ञेय जाने, वैसा नाम ज्ञान का पड़े, तो भी वे नाम झूठे हैं। वह तो ज्ञानपर्याय... ज्ञानपर्याय... ज्ञानपर्याय... ज्ञानपर्याय... बस। लालचन्दभाई! आहाहा! समझ में आया? समझ में आये ऐसा है, बापू! न पकड़ में आये, (ऐसा नहीं है)। परमात्मा भगवत्स्वरूप विराजता है। आहाहा! वह तो भगवत्स्वरूप ही है प्रभु तो। प्रत्येक का। अरे! अभव्य का भी। आहाहा! समझ में आया?

एक बार कहा नहीं था? (संवत्) १९८५ में सम्प्रदाय में चर्चा हुई थी। १९८२ में चर्चा यह हुई थी। वह क्या कहलाता है? मोहनलालजी लींबड़ीवाला। ऐसा कि अभव्य को २६ मोहनीय प्रकृति की सत्ता होती है, भव्य को २८ होती है। ऐसी एक 'मोहनमाला' पुस्तक प्रकाशित की है। वह मुझे भेजी थी। संवत् १९८० में, ८० में। ५३ वर्ष हुए। कहा, यह झूठी बात है। भव्य हो या अभव्य, सबको २६ ही प्रकृति सत्ता में होती है। २८ तो जब समकित प्राप्त करे, पश्चात् २८ होती है। एक बात खोटी। दूसरी बात, वे कहें—अभव्य को तीन आवरण होते हैं, पाँच नहीं होते। मति, श्रुत और अवधि तीन आवरण होते हैं। मन:पर्यय, केवलज्ञान दो आवरण उसे नहीं होते, क्योंकि उसे दो नहीं होते। यह १९८५ में बात हुई। फिर जरा गड़बड़ करने लगे थोड़ा-थोड़ा। परन्तु मणिलालजी साथ में थे, मणिलालजी। सुनो-सुनो कानजीस्वामी कहते हैं वह, कानजीमुनि कहते हैं वह सुनो। दुनिया में उनकी छाप है। वे कहेंगे उसे मानेंगे। और हम ५० वर्ष की दीक्षा लेकर बैठे हैं परन्तु अपनी छाप नहीं है बाहर। वे कहेंगे, बात प्रसिद्ध करेंगे कि यह लोग ऐसा कहते हैं और इनकार करते हैं।

मैंने कहा, बापू! अभव्य को भी पाँच आवरण हैं। पाँचों हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मन:पर्यय, (केवल)। प्रगट न हो, इसलिए आवरण नहीं है, (ऐसा नहीं है)। क्यों? कि अभव्य के स्वभाव में भी सर्वज्ञस्वभाव है। शक्ति तो उसकी सर्वज्ञस्वभाव है। आहाहा! उसकी पर्याय में अल्पज्ञता का परिणमन और केवलज्ञानावरणीय प्रगट है निमित्त। वह पर्याय अभव्य पलटा नहीं सकता, उसकी योग्यता नहीं है। बाकी तो सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु आत्मा पूरा है। आहाहा! प्रत्येक समय में सर्वज्ञस्वभावी प्रभु अनादि-

अनन्त पड़ा है। उसे सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हो तो भी सर्वज्ञस्वभाव ही है उसका। आहाहा! अरे! प्रभु! तू कौन है? बापू! तुझे खबर नहीं। यह यहाँ नीचे कहेंगे। वह चैतन्यरत्नाकर है। १४१ में कहेंगे। चैतन्यरत्नाकर है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। उसमें चैतन्यरूपी मणियाँ अनन्त भरी हैं। आहाहा! तेरे बाहर के पैसे तो अरब, दो अरब, खर्व, निखर्व ऐसा सब आता था हमारे समय में। सौ अरब का खर्व और सौ खर्व का निखर्व, ऐसा आता था। अभी अब अरब तक चलता है। परन्तु वह सब धूल... आहाहा! यह तो अनन्त... अनन्त... अनन्त चैतन्यरत्नाकर का सागर नाथ अन्दर विराजता है। बापू! तुझे खबर नहीं। उस चैतन्यरत्नाकर का भान हुआ, तब जो ज्ञान की पर्याय के प्रकार पलटे, वह ज्ञान जो ज्ञेय को जानने से ज्ञान का नाम पड़ा, वह बात नहीं। पर के कारण नाम पड़ा, वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा... आहाहा! उनका पन्थ है। उनका (जैसा) तेरा स्वभाव है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने से वे नाम झूठे। नाम झूठे, हों! ज्ञानपर्याय है, वह बराबर है। मन और इन्द्रिय से जाने, वह मति; अकेले मन से जाने, वह श्रुत। ऐसा आता है न शास्त्र में तो? मर्यादित चीज़ को जाने, वह अवधि; सामनेवाले के मन के भाव को जाने, वह मनःपर्यय और तीन काल के भाव को जाने, इसलिए केवल। यह नाम नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तो सच्चा नाम क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा नाम पर्याय, बस। ज्ञानपर्याय। ज्ञानगुण की है, इसलिए ज्ञानपर्याय। बस! आहाहा! उसमें बहुत भेद हैं। एकान्त से ऐसा मानते हों कि कोई ज्ञेय ही नहीं है। और ज्ञेयाकार ज्ञान परिणमता है, वह है। परन्तु वह व्यवहार है। समझ में आया? परन्तु ज्ञान ज्ञानरूप होता है। बस। उसे नाम देना (कि) इसे जाने, इसलिए मति, इसे जाने इसलिए श्रुत—ऐसे नाम नहीं। आहाहा! ठठडी (अर्थी) को ननामी कहते हैं न? उसी प्रकार यह तीन लोक का नाथ, इसकी पर्याय को कोई नाम न देना। आहाहा! वह जागती ज्योति ननामी है।

मुमुक्षु : जागती ज्योति नाम तो दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जागती ज्योति तो स्वभाव की व्याख्या की है। यह तो उसके स्वभाव को बतलाया है। समझ में आया?

बहिन ने नहीं लिखा? वचनामृत में कहा था न? 'जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये? अवश्य प्राप्त होगा।' आहाहा! यह शब्द तो... सिद्धान्त की बात है। परन्तु सादी-सादी गुजराती। बालक समझे चार कक्षा पढ़ा हुआ। हमारे धरमचन्द मास्टर ऐसा कहते हैं कि चार कक्षा पढ़ा हुआ समझे, ऐसी भाषा, लो। जागता जीव ध्रुव है न, अर्थात् अकेला ज्ञायकभाव टिकता तत्त्व ध्रुवरूप से है न। आहाहा! सिद्धान्त की भाषा सिद्धान्त प्रमाण हो और चलती साधारण लोगों को समझाने की शैली ऐसी सादी भाषा। समझ में आया? जागता-जागता ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... जीव खड़ा अर्थात् ध्रुव है न, वह कहाँ जाये? वह पर्याय में जाये? राग में जाये? कहाँ जाये? आहाहा! समझ में आया? ऐसा है यह। ऐसा उपदेश है। वह किस प्रकार का उपदेश! तेरा मार्ग अलग, नाथ! आहाहा! तेरी पर्याय को ज्ञेय को जानने से नाम पाड़ना, यह कहते हैं, शोभा नहीं देता। अरर! समझ में आया? ज्ञेय को जानने से तेरे ज्ञान की पर्याय के नाम पाड़ना, वह शोभा नहीं देता।

मुमुक्षु : मति-श्रुत का विषय तो आत्मा है। अवधि-मन:पर्यय का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है। उसमें नाम कहाँ पड़ा? ज्ञेय को जानने से ज्ञायक, यह कहाँ आया? यहाँ तो ज्ञेय को जानने से ज्ञान, ऐसा शब्द आया है न? यह नहीं। यह स्वज्ञेय की बात नहीं। यहाँ तो ज्ञेय वस्तु अनेक प्रकार से हैं। उसकी बात है। शब्द देखो न अन्दर। बहुत सरस टीका है।

दूसरी लाईन। **कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है।** आत्मा नहीं लिया वहाँ, दूसरे को लेते हैं। **जैसे ही ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है,...** आहाहा! राजमल की टीका और इसमें से बनाया समयसार नाटक। अरेरे! उसे ऐसा कहे कि बनारसीदास और टोडरमल अध्यात्म की भांग पीकर नाचे हैं। प्रभु! तुझे शोभा नहीं देता, प्रभु! ऐसा कहना (शोभा नहीं देता), हों! आहाहा! तू भी भगवान है, बापू! तेरी भूल नहीं देखते। आहाहा! ऐसा आत्मा कहता है कि ज्ञेय को (जाने)। अनेक प्रकार के पर ज्ञेय हैं, और

ऐसे ज्ञेय को जानने से ज्ञायक नाम पड़ता है कि उसका ज्ञान और इसका ज्ञान, वह झूठा है। **ऐसा अनुभव शुद्धस्वरूप का अनुभव है...** आहाहा! राजमल गृहस्थ टीका करे, ऐई! प्रवीणभाई! उसे समझने के लिये... आहाहा! भगवान! आत्मा गृहस्थ कहाँ है? और वह गृहस्थ है। गृह-स्थ है। गृह अर्थात् अपने घर में रहा हुआ आत्मा। उसमें लेख है। भाई ने पढ़ा है या नहीं? 'अध्यात्म पंचसंग्रह'। अभी भाई ले गये हैं। चन्दुभाई यहाँ से। 'अध्यात्म पंचसंग्रह'। तरंगिणी नहीं। अध्यात्म पंचसंग्रह भाई दीपचन्दजी कृत है। (अध्यात्म) तरंगिणी तो संस्कृत है। अध्यात्म तरंगिणी, वह तो कलश की संस्कृत टीका है। यह तो एक दीपचन्दजी का अध्यात्म पंचसंग्रह है। फिर यहाँ एक पुस्तक अधिक थी तो चन्दुभाई पढ़ने को ले गये थे, वहाँ राजकोट। वापस दे गये।

उसमें एक लिखा है कि गृहस्थ अर्थात् क्या? कि आत्मा गृह अर्थात् निजघर में स्थ-स्थिर रहे, वह गृहस्थ। आहाहा! यह गृहस्थ व्यक्ति है और यह पैसेवाला है, वह धूल का नहीं यहाँ। निज घर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु... आहाहा! उसके ध्रुव स्वभाव में स्थ—रहे, अन्दर में टिके, उसका नाम गृहस्थ, धर्मात्मा कहा जाता है। बात-बात में अन्तर है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं न! आहाहा!

'किल' निश्चय से ऐसा ही है। कैसा है अनुभवशीली आत्मा? अब कहते हैं कि **कैसा है अनुभवशीली आत्मा?** अनुभवशील आत्मा, द्रव्य आत्मा वह नहीं। **'एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्' निर्विकल्प... 'एक'** अर्थात् **निर्विकल्प ऐसा जो चेतनद्रव्य, उसमें अत्यन्त मग्नपना,...** वह पर्याय। **अत्यन्त... 'निर्भर' निर्भर अत्यन्त मग्नपना, उससे हुआ है अनाकुललक्षण सौख्य,... 'महास्वादं'** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण अभेद स्वरूप को महास्वादता हुआ। आहाहा! अनादि का उसे कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का स्वाद था... आहाहा! अब उसे ज्ञानचेतना का स्वाद आया। समझ में आया? उस महास्वाद को... है? महास्वाद की व्याख्या की **अनाकुललक्षण सौख्य,...** मूल अनाकुल लक्षण सुख, वही महास्वाद है। आहाहा! आत्मा अभेद का अनुभव होने पर पर्याय में अनाकुल लक्षण सुख हुआ, उसका जिसे स्वाद है। महास्वाद की व्याख्या ही यह की। आहाहा! अनजाने नये व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं? यह होगा यह? बापू! प्रभु का मार्ग ऐसा है, भाई!

महास्वाद को '**समासादयन्' आस्वादता हुआ।** आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ को—प्रभु अन्दर भगवान विराजता है, उसे आस्वादता हुआ—अनाकुललक्षण सुख का स्वाद लेता हुआ। आहाहा! अर्थातृ ज्ञानचेतना प्रगट करता हुआ। उस ज्ञानचेतना में अनाकुल आनन्द का स्वाद है। पुण्य-पाप के कर्मचेतना में आकुलता-दुःख का स्वाद है। आहाहा! समझ में आया? '**द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः' कर्म के संयोग से हुआ है विकल्परूप, आकुलतारूप स्वाद अर्थात् अज्ञानीजन सुख करके मानते हैं परन्तु दुःखरूप है ऐसा जो इन्द्रियविषयजनित सुख, उसको अंगीकार करने के लिये असमर्थ है।** आकुलता के स्वाद लेने को धर्मी असमर्थ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निर्विकल्प चैतन्य के महास्वाद को स्वादता हुआ, वह विकल्प के-आकुलता के स्वाद को लेने में अयोग्य हुआ। आहाहा! रतिभाई! यह पैसे का स्वाद कैसा होगा?

मुमुक्षु : मलूकचन्दभाई के पुत्र को खबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : मलूकचन्दभाई का पुत्र कहता था, अहमदाबाद में, कि बापू ने कहाँ पैसे का रस चखा है। बापू के पास ३०-३५-४० हजार थे, छोटाभाई के पास। इसके पास पाँच करोड़ रुपये। उनके पास कहाँ थे? अहमदाबाद में कहता था। वे बैठे थे न, कहा था। ऐसा कि बापू ने स्वाद कहाँ चखा है पैसे का? पाँच करोड़, करोड़, पाँच करोड़। उनके पास लाख भी नहीं थे, वहाँ नारणसेठ के पास। ३५ हजार, ऐसा कहते थे, ४० हजार। और उनके पास ८० हजार कहलाते थे। कस्तूरभाई, कस्तूरभाई। कस्तूरभाई के पास ८० हजार कहलाते थे। यहाँ है न धीरुभाई, उनके पिता पैसेवाले। यह नारणसेठ एक बार पैसे लेने गये बाहर उगाही को। सादे कपड़े। उसमें डाकू आये। उन्हें खबर पड़ी। डाकू को खबर पड़ी। डाकू अर्थात् चोर। सेठ निकले हैं, यह नारणसेठ ३५-४० हजार तब अर्थात्! नागनेश में उगाही करने गये होंगे तो दो-चार हजार होंगे। उसमें खबर पड़ी तो सेठ घोड़े पर चले आ रहे थे। वस्त्र साधारण। उसमें चोर आये। यह तो होशियार व्यक्ति बनिया। ऐई! बापू! दूर रहना... दूर रहना... तब वे समझे कि यह तो कोई हरिजन लगता है। यह मलूकचन्दभाई के पिता के पिता। क्योंकि दो-तीन हजार रुपये उगाही के लाये थे। उन्हें ले जायेंगे। भाषा तो कुछ दूसरी थी। ऐ

भाई दूर रहना... दूर रहना। वे नजदीक आने लगे। घोड़े पर बैठे थे। पैसे तो होंगे। दूर रहना। ओहो! यह नारणसेठ नहीं। जाओ, चाहे जो हो। घर पहुँच हो गये। आहाहा!

इस राग से दूर रहना, प्रभु! हमको छुआना नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव से (उतरकर) हम चैतन्य के घोड़े पर चढ़े हैं। आहाहा! उसे राग से भिंटाना नहीं तुम। तुम हमको छूना नहीं, हों! यह नर का नारायण होने का यह उपाय है। कहो, गुलाबचन्दभाई! उसे नारायण। आहाहा! आकुलतारूप है। है न, अंगीकार असमर्थ है।

अब अन्तिम योगफल दिया। **विषय-कषाय को दुःखरूप जानते हैं।** लो! प्रेमचन्दभाई! **विषय-कषाय को दुःखरूप जानते हैं।** ज्ञानी। प्रेमचन्दभाई को कहा। यह तुम्हारे दिल्ली में वह विवाद उठा है। दीपचन्द सेठिया को ऐसा विवाद है न? ज्ञानी को दुःख होता नहीं। सोगानी कहे, ज्ञानी को शुभभाव भट्टी लगता है। ऐई! वहाँ से भड़के। शल्य घुस गया और दूसरे को बहुत शल्य डाल गये। आहाहा! अभी तो ज्ञानचन्दजी कहते हैं, हमें यह बात बैठती नहीं। ज्ञानी को दुःख हो, यह बात हमें बैठती नहीं। वे लोग गये होंगे। अरे! बापू! विषय-कषाय का भाव ज्ञानी को होता है, परन्तु दुःख लगता है। जब तक वीतराग न हो, (तब तक जितना राग है, उतना दुःख वेदता है)। मिथ्यादृष्टि को जरा भी आनन्द नहीं, पूर्ण दुःख है। केवली को जरा भी दुःख नहीं, पूर्ण आनन्द है। साधक को थोड़ा आनन्द और थोड़ा दुःख है। आहाहा! ऐसा है, बापू! इसीलिए तो ४७ नय में कहा है कि कर्ता-भोक्ता के ज्ञान से देखें तो जितना राग है, उसका कर्ता है। करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। परन्तु परिणमे, इसलिए कर्ता और भोगता है, इसलिए भोक्ता है। भोगता है। मुनि भी राग को भोगते हैं। वह दुःख है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **विषय-कषाय को दुःखरूप जानते हैं।** है, उसे जानता है या नहीं उसे? आहाहा! जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक ऐसा राग, अशुभ और शुभराग आता है, परन्तु वह दुःखरूप है। मेरे आनन्द के साथ उसका मिलान करने पर उसे वेदन में दुःख दिखता है। आनन्द के वेदन की अपेक्षा से। जिसे आनन्द का वेदन नहीं, उसे दुःख का ख्याल भी कहाँ? उसे तो दुःख, वह सब सुख ही है। आहाहा!

और कैसा है? अपना द्रव्यसम्बन्धी आत्मा का शुद्धस्वरूप,... 'वस्तुवृत्तिं' 'वस्तुवृत्तिं' कहा न? **उससे तद्रूप परिणमता हुआ।** लो! धर्मी तो आनन्द के नाथ के साथ परिणमता हुआ। आहाहा! **चेतनद्रव्य, उसका आस्वाद उसकी महिमा उसके द्वारा...** आत्मा के आनन्द के स्वाद की महिमा द्वारा गम्य है। गोचर अर्थात् गम्य है। आनन्द की महिमा द्वारा चैतन्य गम्य है। आहाहा! है? **ज्ञानपर्याय उसके द्वारा नाना प्रकार उनको मेटता हुआ।** यह बात अधिक हुई थी। परन्तु अभी समय हो गया है।

'**भ्रस्यत्**' और '**भृशम**' दो शब्द अपने आये। २३१ में '**भृशम**' आया है। यहाँ '**भ्रस्यत्**' आया है। दोपहर में अधिकार आया था। २३१। इस '**भ्रस्यत्**' का अर्थ यहाँ मिटाता है और यहाँ '**भृशम**' अनुभव निरन्तर करता हुआ। शब्द '**भ्रस्यत्**' और '**भृशम**' शब्द पड़े हैं। २३१ कलश में है '**भृशम**', इस १४० कलश में है '**भ्रस्यत्**'। समझ में आया? यह बात बहुत हो गयी है। **निर्भेद सत्तामात्र वस्तु को अनुभव करता हुआ।** लो! यह श्लोक पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक - १०-११-१९७७, कलश-१४१, प्रवचन-१४५

कलशटीका १४१। श्लोक बोला जा चुका है। फिर से।

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्त्यो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः।।९-१४१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'स एष चैतन्यरत्नाकरः' 'स एष चैतन्यरत्नाकरः' 'स' अर्थात् यह भगवान-यह प्रत्यक्ष आनन्दस्वरूप। **'एष'** इसकी विद्यमानता को-अस्तित्व को बताता है। **'स'** यह। **'एष'** ज्ञायक विद्यमान पदार्थ है। यह स्वरूप उसका जो कहा। यह कहेंगे विशेष। कैसा है? **'चैतन्यरत्नाकरः' 'चैतन्यरत्नाकरः' जीवद्रव्यरूपी महासमुद्र।** उसमें अनन्त चैतन्यरत्न की मणियाँ भरी हुई हैं। स्वयंभूरमण समुद्र के तल में मात्र हीरा-माणिक भरे हुए हैं। स्वयंभूरमण समुद्र अन्तिम समुद्र है। उसके नीचे मात्र मणिरत्न की रेत है। प्रकृति का समुद्र है। उसी प्रकार यह स्वयंभूस्वरूप भगवान, अनन्त चैतन्य की रत्नरूपी मणि से भरपूर भगवान है। आहाहा!

चैतन्य-रत्न-आकर। आकर अर्थात् समुद्र। चैतन्य के रत्न अर्थात् मणि। चैतन्य की मणि का सागर है, प्रभु। आहाहा! त्रिकाली द्रव्य की बात चलती है। वस्तु जो है वस्तु, वह चैतन्यमणि से भरपूर सागर / समुद्र है। अर्थात् एक-दो-तीन नहीं, परन्तु अनन्त चैतन्यमणियों से भरपूर भगवान है। आहाहा! जीवद्रव्य अर्थात् अर्थ ऐसा किया न? चैतन्य का अर्थ जीवद्रव्य किया। रत्नाकर का अर्थ महासमुद्र किया। आहाहा! **'चैतन्यरत्नाकरः'** इसके दो शब्द किये हैं। **'चैतन्य'** अर्थात् जीवद्रव्य वस्तु। **'रत्नाकरः'** अर्थात् समुद्र। चैतन्य के रत्न का मणिस्वरूप समुद्र। आहाहा! ऐसा भगवान अन्दर विराजता है।

भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य समुद्र की उपमा देकर... जीववस्तु को समुद्र की उपमा देकर **कहा गया है, सो इतना कहने पर द्रव्यार्थिकनय से एक है,...** वस्तु से

देखें तो वह एक है। चैतन्य की अनन्त मणियों का खजाना, इसरूप से एक है। **पर्यायार्थिकनय से अनेक है।** वह है, ऐसा सिद्ध करना है। उसमें ऐसा कहा था कि जैसे ज्ञेय को जानते हुए ज्ञान का नाम पड़ते हैं, वे नाम झूठे हैं। परन्तु यह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा एकरूप होने पर भी पर्याय में अनेकरूप परिणमता है। पर्याय, वह अस्ति है। उसका आश्रय लेना, यह प्रश्न अभी नहीं है। उस पर्याय में यहाँ निर्जरा बतलानी है न? अर्थात् शुद्धता बढ़ती है, वे सब पर्याय हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यरत्नाकर का जहाँ प्रथम निःशंक सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ कि जो चैतन्यरत्नाकर अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय में प्रगट होता है, तो भी वह स्वयं समुद्र चैतन्यरत्न समुद्र तो उतना का उतना बढ़-घट रहित है। समझ में आया? एक बात। और उसकी जो पर्याय पूर्ण प्रगटे, उसमें जो भाग पड़े, उसके अविभाग-अंश... अर्थात्? उसमें पर्याय के अनन्त प्रकार। केवलज्ञान में लोकालोक जानता है न? या अनन्त केवली ज्ञात होते हैं न पर्याय में? तो उस पर्याय के भाग करने पर अविभाग-भाग करने पर फिर भाग न पड़े ऐसा अन्तिम अविभाग अंश, ऐसे अनन्त अंश हैं। आहाहा! पर्याय में अनन्त अंश हैं। अरे! अभी तो पर्याय स्वीकार करना कठिन पड़े, उसमें—पर्याय में अनन्त अंश। और वे भी अनन्त अंश जितने एक समय में प्रगट हुए, उतने ही दूसरे समय में उतने और वे के वे। आहाहा! जैसा द्रव्य स्वभाव चमत्कारी है, केवलज्ञानादि प्रगट (होने) पर भी उसमें बढ़-घट नहीं। ऐसी उसकी पर्याय में, पूर्ण पर्याय में अनन्त सामर्थ्य अविभाग प्रतिच्छेदरूप से प्रगट हुआ, वह प्रगट हुआ, उसमें अब बढ़-घट नहीं। दूसरा समय, तीसरा समय आवे तो वे सब इकट्ठे होकर बढ़े, ऐसा नहीं है। क्या कहा यह?

भगवान आत्मा चैतन्यरत्नाकर कहकर जितने गुण स्वभावरूप रत्न भरे हैं, उसमें उसे बढ़-घट कहीं होती नहीं। उसे केवलज्ञान प्रगट होओ। यह निर्जरा अधिकार है न? निर्जरा का फल तो फिर कैवल्य है। आहाहा! परन्तु यहाँ कैवल्य हो, उसकी अनन्त अविभाग शक्ति के भाग करने से अनन्त भाग पड़ते हैं। उसे अविभाग प्रतिच्छेद (कहते हैं)। छेदते-छेदते प्रतिच्छेद। छेदते-छेदते भाग बाकी न पड़े, अन्तिम में अन्तिम अंश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। ऐसे एक समय की पर्याय में अनन्त अविभाग

प्रतिच्छेद है। आहाहा! दूसरा समय आवे तो भी उतने और तीसरा समय आवे तो भी उतने। सब समय के इकट्ठा करके बढ़ते हैं, ऐसा (नहीं है)। आहाहा! विशिष्टता तो देखो! कहाँ चैतन्य क्या चीज़ है, बापू! आहाहा!

जिसके अनुभव में अनन्त आनन्द की आश्चर्यता प्रगटे... आहाहा! ऐसा जो भगवान, (उसे) यहाँ चैतन्यरत्नाकर, ऐसा आचार्य ने बुलाया है। समझ में आया? वह भी बढ़-घट रहित चीज़ ऐसी की ऐसी अनादि-अनन्त है। आहाहा! और पूर्ण पर्याय में भी जो पर्याय प्रगट हुई, जितने अविभाग प्रतिच्छेद से, बस, उसमें अब बढ़-घट नहीं है। दूसरे समय में, तीसरे समय में, अनन्त समय में वह सब पर्याय भले अविभाग प्रगटे, परन्तु वे सब अनन्त समय के इकट्ठे करके बड़ा समूह हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! द्रव्य जैसे चैतन्य चमत्कार से सरीखा भरा हुआ है, वैसे पर्याय भी अविभाग प्रतिच्छेद के अनन्त अंशों से सरीखी भरपूर है। आहाहा! पूर्ण के समय। अधूरे की बात करेंगे। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ ने देखा है, वह स्वरूप ऐसा अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा!

ऐसा जो भगवान चैतन्य रत्नाकर समुद्र पक्ष से... कहते हैं, वहाँ द्रव्यार्थिकनय वस्तु से देखें तो एकरूप है। पर्याय से देखें तो अनेक पर्याय का परिणमन है। उसमें तो पर्याय को ज्ञेय-जानने की अपेक्षा से ज्ञायक कहने पर, उसका निषेध किया था। यहाँ तो पर्याय अनेक है। वस्तुरूप से एक है और उसमें परम तरंगें उठती हैं। समुद्र में जो तरंग उठती है, वह अनेक है, उसी प्रकार आत्मा में पर्याय / अवस्था / हालत उठे, वह अनेक है। आहाहा! समझ में आया?

जिस प्रकार समुद्र एक है, तरंगावलि से अनेक है... 'उत्कलिकाभिः' समुद्र के पक्ष में तरंगावलि, जीव के पक्ष में एक ज्ञानगुण के... है? **समुद्र के पक्ष में तरंगावलि,...** पर्यायें। **जीव के पक्ष में एक ज्ञानगुण के...** पाँच आदि भेद। यहाँ अभी तरंगावलि में यह लेना है। समझ में आया? आगे लेंगे संवेदनव्यक्ति में, तो वस्तु तो यही लेंगे। यहाँ पर्याय की अनेकता है, मति, श्रुत, अवधि- यह अनेक पर्याय होने पर भी वह एकपने को अभिनन्दन करती है। अनेक होने पर भी वह भेद को पुष्टि नहीं करती। टीका में आ गया है, भाई! २०४। २०४ गाथा की टीका में आ गया है। यह उसका श्लोक है। क्या

कहा यह ? कि भगवान आत्मा चैतन्यरत्नाकर का समुद्र द्रव्य से देखो तो एक है; पर्याय से देखने पर वह अनेक पर्याय में उठता है। पर्याय और तरंगावलि। वह पर्याय, पर्यायरूप से अनेक है, वह है।

मुमुक्षु : पर्याय तो उपचार है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार किस अपेक्षा से ? कायमी नहीं इसलिए। वस्तु है। पर्याय वस्तु है, उसमें चतुर्भंगी उठती है। अनन्त सप्तभंगी उठती है। आहाहा!

अनुभवप्रकाश में यह प्रश्न उठा है कि यह पर्याय वस्तु है या एक अवस्तु ? एक समय है न ? प्रश्न उठा है वह इसमें डाला है। वह तो वस्तु है। वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से उसे उपचार और व्यवहार कहा है। वस्तु की-त्रिकाली की अपेक्षा से वह अवस्तु। जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य अवस्तु है। आहाहा! स्वचैतन्य वस्तु की अपेक्षा से दूसरी सभी चीज़ें अवस्तु है। उसकी अपेक्षा से। इसकी अपेक्षा से वस्तु है। इसी प्रकार चैतन्य के पर्याय की अनेकता की अपेक्षा से वस्तु, परन्तु त्रिकाल के द्रव्य की अपेक्षा से पर्यय उसमें नहीं और इसलिए भिन्न गिनें तो उसे अवस्तु कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों में से एक भी निश्चित नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों निश्चित ही है। दो का अनेकान्तरूप से निश्चित हुआ। अनेकान्तरूप से निश्चित है। समझ में आया ?

फिर से। यहाँ कहाँ अपने वहाँ समय की... आहाहा! वस्तुरूप से जब आत्मा त्रिकाल है, उसे तो निर्मल पर्याय हो तो भी नियमसार में उसे परद्रव्य कहा है। अपनी निर्मल पर्याय भी परद्रव्य। किस अपेक्षा से ? आहाहा! जैसे परद्रव्य में से अपनी निर्मल नयी पर्याय नहीं आती, उसी प्रकार निर्मल पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। तो कहते हैं, हमारे हिसाब से वह परद्रव्य है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : उसका आश्रय नहीं लेने के लिये परद्रव्य कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आश्रय नहीं लेने के लिये नहीं। वह वस्तु ही अलग है। और उसमें से नयी पर्याय नहीं आती, इसलिए परद्रव्य है। धीरे से समझना।

जैसे आत्मा, उसे दूसरे आत्मा या दूसरे परमाणु में से नयी पर्याय नहीं आती। उसी प्रकार आत्मा में क्षायिक समकित हुआ। आहाहा! अरे! केवलज्ञान हुआ। परन्तु उस पर्याय में से पर्याय अब नहीं आती। इसलिए कहा है। यहाँ इसलिए कहते हैं न! पर्याय में से पर्याय आती नहीं, इसलिए उसे सत् त्रिकाली की अपेक्षा से जिसमें से पर्याय नयी आवे, वैसा स्वद्रव्य। जिसमें से नयी पर्याय न आवे, उसे परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! प्रवीणभाई! ऐसी बातें हैं। अरे! वीतरागमार्ग तो देखो, भाई! आहाहा! यह तो चैतन्यरत्नाकर शब्द आया है न? आहाहा!

भगवान! तू चैतन्य की मणियों से, चैतन्य की मणियों से भरपूर है, हों! वह पत्थर की मणि नहीं। इसलिए कहा चैतन्यरत्न। ऐसा शब्द प्रयोग किया है। वह पत्थर के रत्न तुम्हारे। इन्हें जवाहरात का धन्धा है न? तुम्हारा आया है न भरत, कहाँ गया? आया है। हाँ। ऐसा देखा था सही। समझ में आया? आहाहा! यह जवाहरात पत्थर के यह नहीं। यह तो चैतन्य के रत्न, ऐसा शब्द प्रयोग किया है न? वह पत्थर का रत्न नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : दो प्रकार के हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह तो दो प्रकार के हैं। वे यह जड़ हैं और यह चेतन है। आहाहा!

उसे समुद्र के पक्ष से लें तो समुद्र वस्तु एक, तरंगावलि तरंगें उठें, वे अनेक हैं। इसी प्रकार द्रव्य की अपेक्षा से भगवान चैतन्यरत्नाकर एक, पर्याय की अपेक्षा से मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल की अपेक्षा से अनेक है। वह अनेक है, ऐसा कहते हैं। जैसे एक है, वैसे अनेक भी है। जिसे ११वीं गाथा में ऐसा कहा कि पर्याय झूठी है, उसे यहाँ कहते हैं कि अनेक पर्याय निर्जरा में जो शुद्धि बढ़ती है, वे पर्यायें हैं। आहाहा!

यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि द्रव्य जो त्रिकाली वस्तु है, उसका आश्रय लेने से जो आनन्द का वेदन आवे, उस वेदन में मति, श्रुत का ज्ञान साथ में है। उस मति-श्रुत ज्ञान में ज्ञान की वृद्धि होती है और आनन्द की वृद्धि होती है, उसे निर्जरा कहते हैं। परन्तु वह सब शुद्धि की वृद्धियाँ, वे पर्यायें हैं, ऐसा कहते हैं। जैसे संवर पर्याय है, वैसे

निर्जरा भी पर्याय है, वैसे मोक्ष भी एक पर्याय है। आहाहा! प्रभु का मार्ग ऐसा है, भाई! प्रभु अर्थात् तू, हों! आहाहा!

इस तरंगावलि की अपेक्षा से, देखा! **एक ज्ञानगुण के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इत्यादि अनेक भेद...** आहाहा! यहाँ निर्मलता की बात है, हों! मति अज्ञान और वह बात नहीं। यहाँ विकार की बात नहीं। यहाँ तो चैतन्यरत्न से भरपूर भगवान एकरूप होने पर भी उसकी पर्याय में अनेकरूप उसका निर्मल परिणमन हो, अनेकपना होने पर भी वह एकपने को ही अभिनन्दन करता है। अनेकपना, इसलिए अनेकपने की पुष्टि करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसी बातें अब। लोगों को समझने का ठिकाना नहीं। बापू! समझना पड़ेगा, भाई! मार्ग तो यह है। आहाहा! अरबोंपति ऐसे रंक होकर ऐसे रुल जाते हैं।

तब गये थे न, फतेहकुमार गुजर गया। बड़ोदरा दरबार। तीन करोड़ की आमदनी। यह तो उस दिन की बात है। (संवत्) १९६४-६५ की। उसका इकलौता पुत्र था शिवाजी न, वह छोटी उम्र में गुजर गया। एक लड़का वर्ष-दो वर्ष का छोड़कर अभी जो है। फिर उसने गायन जोड़ा था। हमारे पास वहाँ आया था। 'रतन रोळायुं श्मशाने रे... रतन रोळायुं...' राजकुमार, पाटवी कुमार। तीन करोड़ की तो उस समय की आमदनी, हों! ६० वर्ष पहले। अभी तो बहुत अधिक बढ़ गया। आहाहा! यह गायन जोड़े हुए। 'रतन रोळायुं श्मशाने, हाय रतन रोळायुं।' बापू! यह रतन ठीक सब धूल था। इस चैतन्यरत्नाकर ने राग को, विकार को अपना मानकर रतन रुल गया, नाथ! आहाहा! घायल पड़ा उसके ऊपर। आहाहा! पुण्य का दया, दान और व्रतादि का राग विकल्प है, वह मुझे लाभ करेगा, वे मेरे हैं। मेरे माना, इसका अर्थ, मेरा माना इसका अर्थ कि लाभ करेगा। लाभ माना इसका अर्थ कि मेरे हैं। बात समझ में आयी? आहाहा!

यहाँ तो अकेली निर्मल पर्यायों को विकसित करना है। समझ में आया? यह उसमें है। विकार-फिकार की यहाँ बात है ही नहीं। आहाहा! शक्तियों का जहाँ वर्णन किया, ४७ शक्तियों का वर्णन किया, वहाँ विकार की बात ली ही नहीं। आहाहा! शक्तियाँ जो रत्नाकर यह शक्तियाँ। उनका जो भण्डार भगवान, उसका परिणमन है

क्रमसर, परन्तु निर्मल पर्याय का क्रमसर (परिणमन) है। अक्रम से गुण हैं, क्रम से पर्याय है। वहाँ विकार की बात ली ही नहीं। ४७ शक्ति के वर्णन में विकार की बात ली ही नहीं। पर्याय विकारी है, उसकी उसमें, वह बात ही नहीं ली। समझ में आया? क्योंकि शक्तियाँ जो यह रत्नाकर कहा न? वह अनन्त शक्तियाँ जो हैं, उसका पर्याय में परिणमन कहलाये उसका। है तो पर्याय का परिणमन, परन्तु वह गुण का परिणमन पर्याय, वह सब उसका निर्मल परिणमन है।

शक्ति के वर्णन में कहीं विकार को लिया ही नहीं। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय शुद्ध। तीनों। क्रम-अक्रम का पिण्ड, वह आत्मा—ऐसा वहाँ लिया है। उस क्रम में निर्मल पर्याय की बात ली है। विकार की बात ४७ शक्ति में ली ही नहीं, क्योंकि वहाँ शक्तिप्रधान, द्रव्यप्रधान कथन है; और ४७ नय में ज्ञानप्रधान कथन है, वहाँ तो एक-एक अंश मलिन है, वह भी इसका है, इसमें है और उसका यह स्वामी है—ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : इन दोनों में क्या समझना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब इन दोनों को बराबर मानना चाहिए। कहो, किसलिए कहते हैं। इसमें कोई पाया बँधता नहीं, ऐसा कहते हैं। यही पाया अनेकान्त का है, भाई! आहाहा! अनेकान्त का ऐसा अर्थ नहीं कि व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है। अनेकान्त का यह अर्थ है... आहाहा! एक बार इसे ऐसा कहे कि विकारी पर्याय इसमें है ही नहीं। दूसरी बार ऐसा कहे कि इसकी (आत्मा की) पर्याय में विकार है, यह अनेकान्त है। समझ में आया? ऐसा कहाँ है? एक तो निवृत्ति भी नहीं मिलती। घड़ी-दो घड़ी उपाश्रय जा आवे, वे मन्दिर में जा आवे। हो गया धर्म। गोसलियाजी!

मुमुक्षु : हो गया धर्म या रह गया धर्म?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा था न? बापू! ऐसा सब था। आहाहा! यह वीतरागता।

तीन लोक के नाथ कहते हैं—तू तो चैतन्यरत्नाकर है न, प्रभु! आहाहा! तुझमें तो चैतन्य के रत्नों का खजाना है। कम न हो इतना खजाना है। आहाहा! भाई! तुझे

खबर नहीं। आहाहा! कल दृष्टान्त नहीं लिया था वह जरा नि:शंक का? नरभेरामभाई का दृष्टान्त नहीं दिया था? उसी प्रकार यहाँ पहले घड़ाके नि:शंकताआती है। समकित का नि:शंक गुण पहला है न? आठ आचार है न पहले? वह नि:शंकता पहले धड़ाके आती है। सम्यग्दर्शन होने पर वह परिपूर्ण परमात्मा है, उसमें हीनाधिक कभी तीन काल में होता नहीं। ऐसा भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी प्रतीति में उसे नि:शंकता आती है। बात समझ में आती है? आहाहा!

रात्रि में दृष्टान्त नहीं दिया था? नरभेरामभाई थे। है या नहीं इनके पुत्र के पुत्र? लाभुभाई के। है। उसे कहे मेरा लाडला हो। खबर है, कहा। हमको खबर नहीं? उन्होंने कहा, कि नि:शंक हो जाये कुछ? नि:शंक हो जाये किसी दिन? सुनो, कहा। (संवत्) १९८७ की बात है। वीछिया से जब राजकोट आये न? आये उपाश्रय में। दोपहर को बाहर बैठे थे। नि:शंकता तुम कहते हो कि ऐसी है, यह ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा। सुनो! बस वर्ष की लड़की के साथ सगाई की। वह तो और अभी पहले परिचय करे और दो-चार दिन इकट्ठे रहे और घूमे-फिरे। तब तो उसके माँ-बाप सगाई कर आवे, मुख भी देखा न हो। वह पहले दिन विवाह करके आवे, वह एकदम अनजानी बाई, अनजाना वह (वर) शंका पड़ती है तुमको तब कि यह मुझे मार डालेगी या नहीं? अनजानी बाई है, कभी सामने देखा नहीं और यहाँ आयी है तेरे पास।

मुमुक्षु : तब तो .... कि बनिया की पुत्री को मार डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ कहना नहीं। पुत्री भी मार डाले। ब्राह्मण की पुत्री ने पति को मार डाला राणपुर में। समझ में आया? आहाहा!

वींछिया में... कैसे कहलाये वे? खोजा-खोजा। वींछिया में खोजो था। रूपवान शरीर। बड़ा धन्धा। स्त्री कोळी थी। वह कोळी अठारह वर्ष की कोळी जवान। इसकी उम्र ३५-३६ वर्ष की, परन्तु जवान कोळी था, उसके साथ चलती थी। इसलिए उसके पति को मार डालना, ऐसा भाव हो गया। आहाहा! उसमें लोहे का एक घन बनाया। बनाकर वह बेचारा आकर सो रहा होगा, उसमें उन दोनों व्यक्तियों ने रात्रि में घन मारा। एक घन मारा वहाँ तो... वह शरीर से बहुत मजबूत था। खड़ा हुआ। इसलिए उसको

कहती है कि मार... मार दूसरा। उसकी बहू—स्त्री। राणपुर में ऐसा बना है। सर्वत्र समझने जैसी बातें हैं। परन्तु ऐसा होता है न?

एक तो राजा की रानी ऐसी थी। नाम—बाम नहीं देते। हमको सब खबर होती है। यहाँ तो बहुत बातें सुनी हैं। ऐसी राजा की रानी थी। उसके पति को करोड़ों की आमदनी थी। कुछ बोलने लगा, वह कहे देखो! राजन्! हम क्षत्रियाणी हैं। इसलिए स्त्रीरूप से गिनकर तुम दूसरे प्रकार से अपमान करोगे तो सहन नहीं करेंगे। ध्यान रखो। गुप्तरूप से दोनों व्यक्ति (बोले)। अब करना क्या? वह राजा बड़ा। करोड़ों की आमदनी। एकान्त में वह बोली कि यदि कुछ किया, हम क्षत्रियाणी हैं। हम बनिया नहीं, बनियाणी जैसी। किसे कहना यह बाहर? बाहर बात तो आयी। वहाँ हम पालेज थे सही न साथ में। अठारह कोस साथ में पालेज और वडोदरा। नौ वर्ष रहे न पालेज में। आहाहा! बापू! सब समझने जैसा है।

यह तो नियमसार में नहीं कहा? ठगों की टोलियाँ हैं सब। रामजीभाई ने तो ऐसा कहा कि पिता पुत्र को ठग और पुत्र पिता को ठग! कहा, हाँ। ठगों की टोली में सब आवे न! भाई ने पूछा था। कि पुत्र ठगों की टोली, पुत्र बहू को, लड़कों को यह। पिता आवे या नहीं? उसका पिता भी ठग है और वह भी ठग है। पढ़ा है तू। तुझे पढ़ाया है, पैसे खर्च किये हैं। बराबर कमाना पड़ेगा, अमुक करना पड़ेगा, अमुक करना पड़ेगा। ऐई!

मुमुक्षु : संसार....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार, बापू! यह तो जरा चर्चित करे, तब खबर पड़े।

यहाँ कहते हैं, तीन लोक का नाथ भगवान... आहाहा! वह जब प्रगट होता है, तब उसकी पर्यायें उसमें है। आहाहा! पर्याय नहीं, ऐसा नहीं। एक ओर 'नहीं' ऐसा कहा था; यहाँ 'है' ऐसा कहा है। किस अपेक्षा से? बापू! यही कहते हैं, देखो!

समुद्र के पक्ष में तरंगावलि, जीव के पक्ष में एक ज्ञानगुण के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इत्यादि अनेक भेद उनके द्वारा अपने... अब क्या कहते हैं अभी? आहाहा! **अपने बल से अनादि काल से परिणम रहा है।** यह परिणति जो निर्मल है, निर्मल जीव है, उसका तो परिणमन है, परन्तु उसे अन्दर में ज्ञान की परिणति निर्मल हो, वह परिणमन सदा

चालू ही है वहाँ। निर्मल परिणति अपने बल से चालू है। ऐसा कहकर यह कहते हैं कि कर्म के निमित्त दूर हों, इसलिए यह निर्मल परिणति शुद्धि की वृद्धि हो, निर्जरा हो—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं, बापू! यह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर... आहाहा! जिन्हें एकावतारी, एक भवतारी इन्द्र जिन्हें पिल्ले की भाँति व्याख्यान में ऐसे सुने। इन्द्र और इन्द्राणी एक भवतारी। सौधर्म देवलोक का इन्द्र, असंख्य देव का स्वामी और करोड़ों अप्सराओं का पति और अप्सरा, उसकी मुख्य अप्सरा इन्द्राणी, दोनों अभी एक भवतारी हैं। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे जब सभा में आते हैं तो प्रभु तो यह कहते हैं। वह वाणी कैसी होगी? बापू! आहाहा! एक चिड़ा लाया चावल का दाना, चिड़िया लाई मूँग का दाना खिचड़ी बनायी। खिचड़ी कुम्हार को दी, कुम्हार ने घड़ा दिया... यह गप्प ही गप्प। आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि (उसमें) यह आया है।

प्रभु! तू कौन है? आहाहा! तू एक और अनेक दो रूप है। आहाहा! वस्तुरूप से, गुणरूप से चैतन्यरत्नाकर रूप से एक और मति, श्रुत आदि अनेक। यहाँ अभी इतनी बात लेनी है। पश्चात् संवेदनव्यक्ति में भिन्न करेंगे। दोनों भिन्न किये हैं। संवेदन व्यक्ति है न, वह बाद में आयेगा। देखो! **'इमाः संवेदनव्यक्त्यः स्वयं उच्छलन्ति'** बाद में आयेगा। आहाहा! किस अपेक्षा से? जहाँ चला है, उसे उस रीति से जानना चाहिए।

यहाँ तो एकरूप भगवान है, वह निर्मल की पर्यायरूप से अपने बल से—सामर्थ्य से अनेकरूप परिणमता है। ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न? अपने बल से परिणम रहा है। आहाहा! उसे कोई कर्म का अभाव हो तो अन्दर निर्मल परिणति का परिणमन हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! अपने बल से स्वयं परिणम रहा है। सिद्ध की पर्याय भी अपने बल से परिणम रही है। निर्जरा करनेवाला धर्मी धर्मात्मा की बात चलती है न यहाँ तो? उसे शुद्ध द्रव्य का अनुभव है, इसलिए उसकी अनुभवधारा शुद्धि की वृद्धि, वह अपने बल से होती है। समझ में आया? आहाहा! यह अपवास किये, इसलिए तपस्या हो गयी, तपस्या हो गयी और निर्जरा हो गयी—ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा वह चैतन्य चमत्कारी परमात्मा, उसका जहाँ पर्याय में अद्भुत आनन्द का स्वाद जहाँ

आया, उसकी जो शुद्धि की वृद्धि होती है, वह अपने बल से होती है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं न? यह पुरुषार्थ उड़ाते हैं न पुरुषार्थ? तब बात हुई थी न, (संवत्) १९७२ के वर्ष में हमारे सम्प्रदाय में बड़ा विवाद हुआ। १९७२ के फाल्गुन महीने में। कितने वर्ष हुए? ६१। बड़ी चर्चा (हुई) कि सर्वज्ञ ने देखा वैसा होता है, हम उसमें पुरुषार्थ क्या करें? ऐसी बड़ी चर्चा चली। मूलचन्दजी थे हमारे गुरुभाई। हमारे गुरु बेचारे भद्रिक थे। उनकी छाप तो बड़ी थी। बड़ी छाप। हजारों लोगों में, तीन-तीन हजार में व्याख्यान वाँचन करे। 'हीरा अेटला हीर बाकी सूतरना फाळका।' ऐसी छाप। दृष्टि खोटी। तत्त्व की तो कहाँ थी? था ही कहाँ?

वे मूलचन्दजी ऐसा बोले। ऐसा उन्होंने कहा। दो-चार सुना। सर्वज्ञ भगवान ने जो देखा, वैसा होगा, उसमें हम क्या पुरुषार्थ करें? उसमें अपना कुछ पुरुषार्थ चलता नहीं, ऐसा दो वर्ष तो सुना। और फिर रास्ते में भाई को बताया था। जसदण-जसदण है न? वहाँ आवास में उतरे थे और उसमें रात्रि में यह चर्चा चली। दो वर्ष की दीक्षा। हीराजी महाराज प्रतिक्रमण करके माला फेरते थे। व्यक्ति शान्त... शान्त... प्रकृति बहुत। और यह जरा अभिमानी बहुत थे मूलचन्दजी। बारम्बार ऐसा कहे। कहा, तुम यह कहते हो कि पुरुषार्थ कुछ कर सकते नहीं, भगवान ने देखा वैसा होगा। यह वाक्य शास्त्र में कहाँ है? भाई! क्या शास्त्र में वाक्य है? गजसुकुमाल का तो यह पाठ है, कहा। तब (संवत्) १९७२ की बात है।

गजसुकुमाल, श्रीकृष्ण का भाई। जिसे माता के पास, माता कहे - मेरा पुत्र नहीं, मैंने दुलार नहीं किया, माँ! मेरा भाई होगा मैं करूँगा। आहाहा! कृष्ण जैसे तीन खण्ड के धनी वासुदेव, माता देवकी कहती है, भाई! छह-छह पुत्र अन्यत्र पले और तू आया, वह वहाँ ग्वाले के घर पला। मैंने किसी को नहीं पाला। माँ! मैं एक उपाय करूँगा। मुझे छोटा भाई हो वह। आहाहा! यह तो देखो! उस देव को याद किया। हरणगवेषी देव आता है। भाई! मुझे भाई नहीं है। कहीं आत्मा ऐसा हो तो यहाँ लाओ। देवलोक में से लाओ। इस प्रकार से जो आया गजसुकुमाल। जिसे कृष्ण स्वयं लाये। आहाहा! वह कृष्ण स्वयं गोद में बैठाकर भगवान के दर्शन करने जाते हैं। गजसुकुमाल को बैठाकर।

यह पाठ है अंतगडा(सूत्र) में। तब तो पढ़ा हुआ न सब वह। ऐसे भगवान के दर्शन करते हैं।

नेमिनाथ भगवान पधारे हैं द्वारिका के बाहर। श्रीकृष्ण हाथी के हौदे छोटे भाई को गोद में बैठाकर जाते हैं और गजसुकुमाल। गज अर्थात् हाथी के तलुवे जैसे सुकुमाल ऐसा उनका शरीर। हाथी के तलुवे जैसा शरीर। उसमें एक सोनी की पुत्री थी, वह सोने के गेंद से खेल रही थी। वह ऊपर देखी उन्होंने—कृष्ण ने। देखा और कहा, ओहोहो! यह तो गजसुकुमाल को विवाह कराने जैसी है। जाओ, उस कन्या को अन्त:पुर में ले जाओ।

वह गजसुकुमाल भगवान के पास जाते हैं, वहाँ एकदम वैराग्य हो जाता है, सुनते हैं वहाँ। आहाहा! एकदम... वह वाणी कैसी होगी यह? अब यहाँ उसे वह कन्या विवाह करने के लिये खबर है कि भाई ने अन्त:पुर में लड़की को भेजा है। सोनी की लड़की थी। क्या... कुछ? नाम भूल जाते हैं। वह भगवान के पास जहाँ सुनते हैं। प्याला फट जाता है। प्रभु! मैं गृहस्थाश्रम छोड़कर मुनिपना अंगीकार करना चाहता हूँ। प्रभु कहते हैं... यह तो उनकी शास्त्र की भाषा है न। आहाहा! सोहम्! देवानुप्रिया! जैसे आपको आनन्द हो, सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबन्ध नहीं करना। ऐसी वाणी तो कहाँ थी? भगवान को तो ॐ निकलता है। वे माता के पास जाते हैं। माता! मैं दीक्षित होना चाहता हूँ। मेरे आनन्द की लीनता को बढ़ाना चाहता हूँ। मैं तो वनवास में जाना चाहता हूँ। मुझे कहीं रुचता नहीं। मुझे इसमें कहीं रुचता नहीं, माँ! आहाहा! वह रोती है। तो कहते हैं, माता! तुझे रोना हो तो रो ले, माँ! परन्तु मैं जिस रास्ते जाता हूँ, वहाँ अब फिर से माता नहीं बनाऊँगा, ऐसे रास्ते जाता हूँ। फिर से अवतार नहीं करूँगा, ऐसे रास्ते मैं जाता हूँ, माँ! आहाहा! फिर तो उसकी माँ ऐसा कहती है, भाई! जा। तेरा रास्ता हमको होओ। ऐसा भाई बोलती हैं। कहा, यह क्या पुरुषार्थ की बात है! माता अन्त में ऐसा कहती है, पुत्र! जा भाई! तेरा मार्ग मुझे होओ। आहाहा! तू जिस रास्ते जाता है, वह रास्ता हमको होओ। ऐसा हम माँगते हैं। आहाहा!

'सर्वज्ञ ने देखा वैसा होगा।' कहा, सर्वज्ञ है या नहीं जगत में? सर्वज्ञ एक समय में त्रिकाल जाननेवाली पर्याय की सत्ता की अस्ति जगत में है, ऐसा जिसने स्वीकार

किया, उसे अनन्त भव उसके भव में होते नहीं। उसे भव का छेद होकर ज्ञायक पर दृष्टि जाती है, कहा। ज्ञायक पर दृष्टि तब नहीं था परन्तु ज्ञान पर जाता है, ऐसा था। तब दो वर्ष की दीक्षा।

मुमुक्षु : परन्तु भणकार ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भणकार यह आया। ज्ञान में उसकी दृष्टि जाती है, ज्ञान में प्रविष्ट हो जाता है। भगवान की एक समय की केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार, प्रभु! आहाहा! यह शब्द प्रवचनसार में फिर निकला ८० (गाथा में)। '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**' शैली यह थी। जो कोई परमात्मा के केवलज्ञान को माने... आहाहा! वह आत्मा साथ में अन्दर मिलान करता है और उसका मोह नाश हुए बिना रहता ही नहीं। आहाहा!

यह भगवान के पास गये थे और इतना प्याला फट गया (वैराग्य बढ़ गया)। और फिर दीक्षा लेकर भी देखो तो सही, कहा। प्रभु! मैं बारहवीं (प्रतिमा) भिक्षुक लेना चाहता हूँ। भिक्षुक अन्तिम बारहवीं प्रतिमा है। दिगम्बर में भी है। परन्तु बाहर प्रसिद्ध नहीं है। उसमें है। अन्तिम प्रतिमा बारहवीं साधु की होती है कि जिसमें से या परीषह सहन करे, केवलज्ञान हो जाये। न सहन करे तो मस्तिष्क फट जाये। ऐसा है। आहाहा! नेमिनाथ भगवान को ऐसा कहे। वे प्रभु तो केवली हैं। प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो इस महाकाल श्मशान में अकेला जाकर खड़ा रहूँ। आहाहा! (गजसुकुमाल) राजकुमार जाकर खड़े रहते हैं। वहाँ वह सोमिल आता है—उस लड़की का पिता। अरेरे! मेरी पुत्री को इसने भटकाया। वहाँ श्मशान की मिट्टी होती है, उसे सिर पर (पाल) बाँधकर अग्नि रखी। हळ... हळ... हळ... हळ... सिर जले। एकदम अन्दर से एकदम केवलज्ञान अन्दर से प्रस्फुटित हुआ। उपसर्ग सहन किया। जलहल ज्योति एक समय, अरे! जिस दिन दीक्षा, उसी दिन केवल(ज्ञान), उसी दिन मोक्ष। आहाहा! तब कहा था, बापू! यह क्या है यह? ऐसा रहने दो। भगवान ने देखा तब होगा, पुरुषार्थ क्या करें? ऐसा रहने दो, भाई! ऐसा रहने दो।

भगवान अरिहन्त परमात्मा जिन्हें एक समय में केवलज्ञान! बापू! वह भाषा ही

यह है। उस भाव को समझे तो उसे खबर पड़े। समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञान एक समय में जिसे तीन काल तीन लोक जानने में आवे, यह कहना व्यवहार है। उस पर्याय का ही इतना सामर्थ्य है कि पर्याय को जानने से लोकालोक ज्ञात हो जाता है। ऐसी पर्याय की सत्ता का जो स्वीकार करे... आहाहा! उसकी दृष्टि ज्ञान में घुस जाये और उसे अनन्त भव नहीं हो सकते। भगवान ने उसके अनन्त भव नहीं देखे, कहा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! यह चैतन्यचमत्कार जब उछलता है, तब पर्यायें अनेक प्रकार की निर्मल से निर्मल होती जाती है, वह है—ऐसा सिद्ध करना है। निर्जरा अधिकार है न? आहाहा! वह तीन लोक का नाथ चैतन्यरत्नाकर प्रभु, जिसकी शरण में जाता है, जिसका आश्रय लेता है उसका, उसकी पर्याय में निर्मल से निर्मल, निर्मल पर्यायें तरंग उठती हैं। वह निर्मल शुद्धि की वृद्धि होती है, उसका नाम निर्जरा है। समझ में आया? ऐसे निर्जरा के तीन प्रकार कहे थे। एक कर्म खिरे, वह निर्जरा; अशुद्धता गले, वह निर्जरा और शुद्धता बढ़े, वह निर्जरा। परन्तु यहाँ अस्ति से बात लेनी है। शुद्धि की वृद्धि। निर्जरा है न? मति-श्रुतज्ञान ऐसे बढ़ता जाता है निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल... आहाहा! बापू! वीतराग का मार्ग बहुत... यह तो सर्वज्ञ त्रिकाल ज्ञान से जाना हुआ, देखा हुआ, कहा हुआ, अनुभव किया हुआ (मार्ग है)। आहाहा! आहाहा! भाई! यह मार्ग अलौकिक है। यह कहीं वार्ता और बात नहीं। जगत को ऐसी बात मिलना मुश्किल है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **अपने बल से अनादि काल से परिणम रहा है।** भाषा देखो! आहाहा! वह निर्मल परिणति—शुद्ध अवस्था अपने बल से हो रही है। आहाहा! समझ में आया? **कैसा है? 'अभिन्नरसः'** देखो! **'अभिन्नरसः'** कहा न? वह पर्याय भेद-भेद है, तथापि अभिन्न होता है। **जितनी पर्याय हैं, उनसे भिन्न सत्ता नहीं है, एक ही सत्त्व है।** निर्मल से निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं। सत्त्व तो शुद्धि की अभेदता होती है। वहाँ भेद पड़ता नहीं। अभिन्नरस है। आहाहा! पर्यायें अनेक कही, तथापि अनेकपने का भेद नहीं पड़ता। वे अनेक पर्यायें प्रगट होती हैं, वे अभिन्न रस को अभिनन्दन करती हैं। आहाहा! भाषा जरा वह, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग। आहाहा! अनन्त काल में कहीं...

मुमुक्षु : ऐसा का ऐसा रस आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा अन्दर रस प्रगट होता है शुद्ध-शुद्ध। अभी अब इतनी पर्याय प्रगटे, इतनी बात ली है। संवेदन व्यक्ति में फिर लेंगे कि वह तो उसका भाग है। कहा न, भाई! अभी किसी ने कहा न भाई ने। पण्डितजी ने नहीं कहा? वह इसमें है। संस्कृत में है, हों! '**अच्छाच्छाः**' है न? ... ... इस प्रकार से लिया है। समुद्र तो वही है। परन्तु उसका पूर्व भाग, पश्चिम भाग, उत्तर भाग... ऐसे भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द एकरूप है परन्तु उसकी पर्याय है, वह उसका एक भाग है। आहाहा! इसकी टीका है। पहले यहाँ पर्यायें कहीं और फिर वे पर्यायें संवेदन व्यक्तियाँ, अन्तर आनन्द की वृद्धि की प्रगटतायें, वह समुद्र का अर्थात् आत्मा का एक भाग है। दया, दान, व्रत, परिणाम, वह कोई आत्मा का भाग नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो यह (कहते हैं), **भिन्न सत्ता नहीं है, एक ही सत्त्व है।** वह भले अनेक पर्याय कही, तथापि सत्त्व तो एकपना वहाँ सिद्ध करते हैं, अभिन्नपना सिद्ध करते हैं। अनेकपने में भेद सिद्ध नहीं होता। आहाहा! ऐसी भाषा और यह भाव। सादडी में कभी सुना नहीं होगा वहाँ। आहाहा! बापू! यह तो मार्ग भगवान का... आहाहा! कहते हैं, वह विराजमान है। आहाहा! अभिन्न रस है।

और कैसा है? 'भगवान्' है। है? आहाहा! भग अर्थात् ज्ञान-लक्ष्मी होती है, संस्कृत टीका में है। उसमें ही। महात्म्य, कीर्ति, प्रताप, लक्ष्मी, श्री—ऐसे सब भग के अर्थ हैं। भग के अर्थ हैं। भग अर्थात् श्री होता है, लक्ष्मी होता है, प्रताप होता है, कीर्ति होता है, महात्म्य होता है। यहाँ भग अर्थात् ज्ञानलक्ष्मी लेना। आहाहा! भग-ज्ञानरूपी लक्ष्मीवान है वह तो। आहाहा! भगवान आत्मा तो ज्ञानलक्ष्मीवान है। यह धूल की लक्ष्मीवाला वह नहीं है। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा!

'भगवान्' ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इत्यादि अनेक गुणों से विराजमान है। देखा! भग का अर्थ इतना किया। लक्ष्मी अर्थात् ऐसे गुण। उसका वान अर्थात् स्वरूप है वह। आहाहा! भाई! पर्याय के पीछे प्रभु है, एक समय की पर्याय के पीछे प्रभु है, उसके सामने इसने नजर नहीं की। आहाहा! इसकी क्रीड़ा पर्याय में अनादि से है। यह पर्यायबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' यह पंच

महाव्रतादि दुःखरूप आस्रव है। आहाहा! समझ में आया? यह भग अर्थात् लक्ष्मीस्वरूप नहीं, वह तो प्रकृति का स्वभाव, जड़ स्वभाव। आहाहा! आहाहा! यहाँ तो स्वभाव की अपेक्षा से बात चलती है न? अभी दोपहर में कहेंगे कि पुण्य और पाप आत्मा है, ऐसा कहेंगे। 'स्वच्छन्न न जाने किंचीन' आता है न? भाई! गाथा का अर्थ आता है। आहाहा! बापू! वह तो ज्ञान की विचिक्षणता की विशालता है। इस अपेक्षा से ऐसा और इस अपेक्षा से ऐसा, यह ज्ञान की विशालता है। आहाहा!

कहते हैं, वह भगवान है। **ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इत्यादि अनेक गुणों से विराजमान है।** भगवान की व्याख्या इतनी की। **और कैसा है? 'एकः अपि अनेकीभवन्' सत्तास्वरूप से एक है तथापि... 'अनेकीभवन्' अंशभेद करने पर अनेक है।** मति, श्रुत, अवधि, शुद्धि की वृद्धि ऐसे अंशभेद करने से अनेक है। राग, पुण्य और संयोग से अनेक है, वह नहीं। आहाहा! वह नहीं। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप चैतन्य रत्नाकर का अन्दर पर्याय में अनेकपना-परिणमन होना, वह अभिन्नरस है और इसलिए वह त्रिकाली स्वभाव का एक भाग है। आहाहा! उसके भाग में आनन्द का अनुभव आया है। आहाहा! वह आनन्द का अनुभव, वह द्रव्य का एक भाग है। द्रव्य में अनन्त आनन्द है।

अंशभेद करने पर अनेक है। और कैसा है? 'अद्भुतनिधिः' अनन्त काल तक चारों गतियों में फिरते हुए जैसा सुख कहीं नहीं पाया ऐसे सुख का निधान है। आहाहा! भगवान तो अनन्त आनन्द की खान है। आहाहा! अरेरे! यह कहाँ? आत्मा की बातों के अतिरिक्त दूसरी बातें कर-करके मर गया है। दया पालन की, व्रत पालन किये, पूजा की, भक्ति की, धूल की सब। आहाहा! यह तो अद्भुत निधि भगवान आत्मा। है? अनन्त काल से **नहीं पाया ऐसे सुख का निधान है।** आहाहा! अब यह आया।

'यस्य इमाः संवेदनव्यक्त्यः स्वयं उच्छलन्ति' वहाँ भाग लिया है। पश्चिम और उत्तर के वहाँ भाग लिये हैं। समुद्र तो पूरा है परन्तु उसे यह पश्चिम का भाग और उत्तर का भाग ऐसा भाग करना वस्तु में। इसी प्रकार प्रभु तो अनन्त आनन्द का नाथ पूर्ण है। उसकी पर्याय में भाग करना, उसका आनन्द का भाग लेना, शुद्धि का भाग, वह वस्तु का

भाग है। आहाहा! समझ में आया? भाई! जरा अभ्यास चाहिए। इसके लिये प्रयत्न करना चाहिए, बापू! अनादि का अनजाना मार्ग, उसे जानपने में लेने में अपूर्व प्रयत्न है। समझ में आया? वह कभी इसने किया नहीं। इससे इसे कठिन लगता है और यह दया, दान, व्रत करना, वह सरल लगता है।

यहाँ कहते हैं, **'यस्य इमाः संवेदनव्यक्त्यः' जिस द्रव्य के 'इमाः' प्रत्यक्षरूप से विद्यमान...** देखा! **प्रत्यक्षरूप से विद्यमान, संवेदन अर्थात् ज्ञान, उसके व्यक्तियों...** प्रगट। वहाँ जो पर्याय कही थी, उसे ही यहाँ संवेदनव्यक्तियाँ (कहा)। **मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक पर्यायरूप अंशभेद,...** उसका अंशभेद है। वह अंशी का त्रिकाली आनन्द का नाथ, उसका यह मति आदि अंशभेद है। आहाहा! पर्याय को अंश कहा है न? भाई! प्रवचनसार। पर्याय को अंश कहा। आहाहा! भगवान अंशी अर्थात् पूर्णानन्द का सागर, उसके अनुभव के वेदन का भाग, वह उसका अंश है, कहते हैं। आहाहा! वह उसका अंश है। भगवान का अंश है। वह पामरता का अंश नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो सन्तों के शब्द हैं। यह तो रामबाण हैं। आहाहा! यह कहीं वार्ता-कथा नहीं। आहाहा! उसमें दिगम्बर सन्त... आहाहा! केवलज्ञान के पथानुगामी, केवलज्ञान खड़ा करके खड़ा रखा है।

प्रभु कहते हैं कि तू तो चैतन्यरत्नाकर से भरपूर प्रभु है न! और उसका जो अंश प्रगट होता है, वह तेरा ही अंश है। निर्जरा जो होती है शुद्धि की वृद्धि, (वह उसका अंश है)। आहाहा! समुद्र जैसे पश्चिम का-उत्तर का भाग कहलाता है उसका। है तो वह। उसी प्रकार यह भिन्न-भिन्न आनन्द की शुद्धि की निर्जरा में वृद्धि होती है... आहाहा! वह वस्तु का ही भाग है। पूर्णानन्द का नाथ, उसका ही वह अंश है, और उसका ही भाग है। आहाहा! विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १५, शुक्रवार, दिनांक-११-११-१९७७, कलश-१४१, प्रवचन-१४६

कलशटीका, १४१ कलश।

खण्डान्वयसहित अर्थ— गाथा के पद का खण्ड-खण्ड भिन्न करके उसका सम्बन्ध करते हैं। '**स एष चैतन्यरत्नाकरः**' यहाँ से शुरु किया है। '**स एषः**' वह यह चैतन्यरत्नाकर—ऐसा जो भगवान आत्मा वह यह प्रत्यक्ष। '**चैतन्यरत्नाकरः**' अर्थात् चैतन्य अर्थात् जीवद्रव्य, रत्नाकर अर्थात् समुद्र। यह प्रत्यक्ष भगवान आत्मा चैतन्यद्रव्य रत्नाकर अर्थात् समुद्र की भाँति। जैसे समुद्र में स्वयंभूरमणसमुद्र के तल में रेत नहीं है। वहाँ केवल मणिरत्न हैं। (उसी प्रकार इस आत्मा में) इसके तल में अनन्त मणि—चैतन्यमणिरत्न भरे हैं। आहाहा! क्षेत्र की विशालता की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

एक आकाश नाम का पदार्थ हो, परन्तु उसका सत्ता नाम का गुण इतना व्यापक है, तथापि सत्ता वह सरीखी है। और इतना वह गुण एक परमाणु में एक सत्तागुण है। तो सत्तागुण है, इसलिए क्षेत्र बड़ा, इसलिए सत्ता बड़ी है, ऐसा नहीं है। उसका अस्तित्व जितने में है, उतने में वह बड़ा है, बड़ा। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा जितने अस्तित्व में मौजूदगी में है, वह पूर्ण वस्तु चैतन्यरत्नाकर है। आहाहा! चैतन्यरत्न। उसमें जड़रत्न। आहाहा! ज्ञानरत्न, दर्शनरत्न, आनन्दरत्न। ४७ शक्तियाँ कही, वे सब रत्न हैं। एक-एक रत्न में भी दूसरे अनन्त रत्नों का रूप है। ऐसा जो भगवान चैतन्यरत्नाकर भगवान आत्मा स्ववस्तु शुद्ध जीवद्रव्य कहा, बस इतना। रत्नाकर का अर्थ महासमुद्र। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य समुद्र की उपमा देकर कहा गया है सो इतना कहने पर द्रव्यार्थिकनय से एक है,... वस्तुरूप से देखने से तो द्रव्य से एक ही स्वरूप है। परन्तु वह ही वस्तु पर्यायार्थिक (नय से) अनेकरूप है। पर्यायों से-अवस्थाओं से अनेकरूप है। ११वीं गाथा में पर्याय नहीं, ऐसा जो कहा था कि पर्याय झूठी है, अभूतार्थ है। वह तो गौण करके कहा था। यहाँ कहते हैं कि वे पर्यायें विद्यमान—मौजूद है। कौन? निर्मल। चैतन्यरत्नाकर द्रव्य वस्तु है, पर्याय और अवस्था—हालत से देखो तो अनेक पर्याय, अनेकरूप है। आहाहा! समझ में आया?

जिस प्रकार समुद्र एक है, तरंगावलि से... तरंग का उछाला मारता हुआ तरंगों का प्रवाह-आवली-श्रेणी, उससे **अनेक है। 'उत्कलिकाभिः' समुद्र के पक्ष में तरंगावलि, जीव के पक्ष में एक ज्ञानगुण के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इत्यादि अनेक भेद...** आहाहा! **उनके द्वारा अपने बल से...** आहाहा! यह जो मतिज्ञान आदि पर्यायों में अतीन्द्रिय आनन्द आदि, वीर्य की रचने आदि अनन्त गुण की जो पर्याय वर्तमान में होती है, वह अपने बल से होती है। समझ में आया? कर्म का अभाव हुआ, इसलिए वहाँ अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की धारा आयी—ऐसा नहीं है। आहाहा! वह अपने स्वयं पुरुषार्थ से (हुई है)। क्यों?—कि वीर्य नाम का गुण जो है, उसका कार्य अनन्त निर्मल पर्याय की रचना करना, वह उसका कार्य है। विकार की रचना करना, उस वस्तु की यहाँ अभी बात नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे द्रव्य शुद्ध है... भाषा तो जैसी है वैसी है। वस्तु तो ऐसी कठिन है जरा। वस्तु है, जिसमें ज्ञात होती है, ऐसी जो चैतन्य सत्तावाली वस्तु। जिसमें ज्ञात होती है, वह ज्ञात होती है, वह पर नहीं। चैतन्यसत्ता अस्तिरूप है '**एषः**' उसमें वह ज्ञात होती है, ऐसा जो कहना, वह भी व्यवहार है। उसमें जाननेवाला उसे उस सम्बन्धी के ज्ञान को जाननेवाला जानता है—स्वयं को। समझ में आया? आहाहा! ऐसी चैतन्यसत्ता एकरूप होने पर भी, समुद्र एकरूप होने पर भी तरंगावली उसकी ही है। तरंग की आवली-प्रवाह। उसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तु से एक है, परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान आदि की पर्याय में तरंगावलि है। अभी अनेक है, इतना सिद्ध करना है। बाद में दूसरा सिद्ध करेंगे।

उनके द्वारा अपने बल से अनादि काल से परिणम रहा है। भाषा ऐसी है। अशुद्धपने परिणमता है, वह बात यहाँ गौण करनी है। उसका स्वभाव ही ऐसा है कि अनादि से आत्मायें जो शुद्ध हैं, उनका परिणमन जो शुद्ध होता है, वह अपने बल से होता है। आहाहा! समझ में आया? वह अपने पुरुषार्थ से-वीर्य से अनन्त गुण की निर्मल पर्याय की रचनारूप वीर्यगुण का वह कार्य है। ४७ (शक्ति) में आता है न वीर्य? स्वरूप की रचना—स्वरूप की रचना। राग की रचना और पर की रचना, वह यहाँ नहीं। पर की रचना कर नहीं सकता और दया, दान, व्रत या काम, क्रोध की रचना, वह

आत्मबल—आत्मशक्ति कर नहीं सकती। आहाहा! इतनी तो यह नपुंसकता है, जितनी पुण्य और पाप के भावरूपी रचना होती है, उतना स्ववीर्य नहीं। स्ववीर्य तो स्वरूप की निर्मल रचना करे। ऐसा ही उसका एकरूप रहकर अनेकरूप होना, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया?

कैसा है? जितनी पर्याय हैं, उनसे भिन्न सत्ता नहीं है,... उस पर्याय की सत्ता उसकी स्वयं की है। आहाहा! **एक ही सत्त्व है।** पर्याय-पर्याय, ज्ञान, मति, श्रुत, अवधि आदि भेद पड़े। परन्तु वे भेद, भेद को पुष्टि नहीं करते। वे भेद, अभेद का अभिनन्दन करते हैं। आया है? २०४ (गाथा समयसार)। समझ में आया? उसका यही यह श्लोक है। आहाहा! मति, श्रुत साधक तो वह है। अवधि, मन:पर्यय तो एक पर को जानने की एक सम्पदा है। और केवल। उस सम्पदा की पर्याय को प्रगट करने का अपने बल से अनेकरूप होता है। आहाहा! तथापि अनेकरूप होने पर भी एकरूप में फेरफार बढ़-घट नहीं होती। समझ में आया? पर्याय में अनेक शुद्धि की वृद्धि (होती है), तथापि वह वस्तु है, वह तो एकरूप ही त्रिकाल रहती है। एक बात।

दूसरी बात, कि उसकी जो पर्याय में परिपूर्णता प्रगट होती है, उसका जितना सामर्थ्य है, एक समय की पर्याय का उतना ही सामर्थ्य दूसरे समय में, तीसरे समय में, चौथे समय में। उन सबका योगफल करके उसका सामर्थ्य है, ऐसा नहीं। आहाहा! जैसे द्रव्य एकरूप सामर्थ्यवाला है, वैसे पूर्ण पर्याय भी एकरूप (सामर्थ्यवाली है)। सम। सम तो वीतरागभाव मस्तिष्क में आ गया। वीतरागभाव जो एकरूप है। यहाँ केवलपर्याय वीतरागभाव है न! आहाहा! उस वीतरागभाव का पहले समय में हुई केवलपर्याय, दूसरे समय में सादि-अनन्त। उन सबका योगफल होकर पर्याय का सब अविभाग प्रतिच्छेद अनन्तगुणा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो कोई बात! वस्तु में से अनन्त केवलज्ञान प्रगटे तो भी वस्तु सरीखी और पर्याय में अनेक पर्यायें हों तो भी वह पर्याय एक ही सरीखी। अधिक पर्याय का समुदाय होकर पर्याय की ताकत बढ़ती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह यहाँ तरंगावली शब्द प्रयोग किया है।

'एकः अपि अनेकीभवन्' सत्तास्वरूप से एक है तथापि अंशभेद करने पर अनेक है। वह पर्याय कहो या अंश कहो। **और कैसा है? 'अद्भुतनिधिः'** आहाहा!

अनन्त काल तक चारों गतियों में फिरते हुए... कहीं शान्ति नहीं थी। चार गति में कहीं सुख नहीं। स्वर्ग में, सेठाई में कहीं सुख नहीं। आहाहा! **जैसा सुख कहीं नहीं पाया ऐसे सुख का निधान है।** आहाहा! '**अद्भुतनिधिः**' की व्याख्या की। अनन्त काल में चार गति में भटकते हुए अरबोंपति मनुष्य हो, बड़ा इन्द्र नौवें ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ, परन्तु कहीं सुख नहीं वहाँ। आहाहा! ऐसा अद्भुत निधि-सुख की अद्भुत आश्चर्यकारी खान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**अद्भुतनिधिः**' की व्याख्या की।

अनन्त काल तक चारों गतियों में फिरते हुए जैसा सुख कहीं नहीं पाया, ऐसे सुख का निधान है। आहाहा! अपनी ज्ञानपर्याय में परवस्तु की अनेकता ज्ञात होने पर उसकी विशेषता कहीं लग जाये तो उसका अर्थ यह हुआ कि उसमें सुख है। अपनी विशेषता जो अतीन्द्रिय आनन्द की इसे भासित नहीं हुई। कुछ भी इसका वीर्य, अपने अतिरिक्त अनेक शरीर, वाणी, मन, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, मकान उसमें कुछ आश्चर्यकारी ऐसा है, ठीक है—ऐसा वीर्य में उल्लसित हो, वह इसे पर में सुख की बुद्धि हुई। आहाहा! समझ में आया? उसे यह सुख कहीं नहीं था, कहते हैं। ऐसी स्थिति में अनन्त बार ऐसे विस्मय और अद्भुतता पर में भासित हुई। शरीर कुछ सुन्दर हो, पैसा ठीक हो, मकान ठीक हो, स्त्री-पुत्र ठीक हो। कुछ अन्दर अपने अतिरिक्त.... समयसार की ३१ गाथा में कहा है न? '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' इसके अतिरिक्त—यह आत्मा भगवान पर से अधिक-भिन्न है, ऐसे अधिक भासना चाहिए। उसके बदले इसकी अपेक्षा दूसरी जगत की पर्याय चाहे तो स्वर्ग की, पैसे आदि की, शरीर सुन्दर आदि की आकृति, उसमें विशेषता भासित हो तो अधिकपना उसे आत्मा से पृथक्पने में अधिकपना भासित हुआ। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, वह **सुख का निधान है।** कहीं सुख नहीं। सुख नहीं अर्थात् कहीं वीर्य को उल्लसितता आवे, ऐसी कोई चीज़ कहीं नहीं। आहाहा! समझ में आया? वीर्य में उल्लसितपना आवे, ऐसा अद्भुत सुख तो आत्मा में है। आहाहा! समझ में आया? **और कैसा है? 'यस्य इमाः संवेदनव्यक्तयः स्वयं उच्छलन्ति'** अब पहली बात तो कह गये कि पर्याय अनेक हैं। अब यहाँ जरा भाग दूसरा करना है। **जिस द्रव्य के प्रत्यक्षरूप से... 'इमाः'** है न '**इमाः**'? **विद्यमान संवेदन अर्थात् ज्ञान, उसके व्यक्तियों अर्थात् मतिज्ञान,**

श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि... इत्यादि अर्थात् आनन्द की पर्याय, वीर्य की पर्याय, अनन्त गुण की पर्याय इत्यादि **अनेक पर्यायरूप अंशभेद,...** है। आहाहा! क्या कहते हैं?

टीका में तो ऐसा रखा है, कि जैसे समुद्र तो एक है। परन्तु उस समुद्र को उत्तर का समुद्र, पश्चिम का समुद्र, दक्षिण का समुद्र, ऐसे भाग पाड़कर कहना, वह उसका अंश है। उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें यह आनन्द की पर्याय और ज्ञान की पर्याय और शुद्ध की पर्याय, ऐसे भाग पाड़कर कहना, वह अंशभेद है। वह वस्तु का एक भाग है। निर्मल पर्याय प्रगट हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्द अनन्त गुण की पर्याय एक समय में प्रगट होती है। आहाहा! वह वस्तु का भाग है। पहली पर्याय अनेक रूप से कही थी। अब यहाँ कहते हैं कि वह वस्तु का भाग है। समुद्र में जैसे पूर्व और पश्चिम का समुद्र कहलाता है, वह समुद्र का भाग है। तरंगावली को पहले कहा था। पश्चात् इस भाग को दूसरा कहा। पश्चिम का समुद्र, पूर्व का समुद्र। उसी प्रकार पर्यायों की अनेकता, वह एकरूप होने पर भी पर्याय की अनेकता उसका स्वरूप है। वहाँ इतना रखकर अब यहाँ कहते हैं।

वह पर्याय जो वस्तु भगवान पूर्णानन्द में से अनन्त निर्मल पर्यायें प्रगट हुईं, वह वस्तु का भाग है। आहाहा! यह भाग नहीं कहते लड़के? कि हमारा भाग दो-भाग दो। इसी प्रकार यह भाग है, कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तू आनन्द का नाथ चैतन्यसागर है न! आहाहा! चैतन्यरत्नाकर से तो बुलाया है। क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम को भी रत्नत्रय कहा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो अभी अपूर्ण निर्मल पर्याय, द्रव्य के आश्रय से-अवलम्बन से प्रगट हुई व्यक्तता को रत्नत्रय कहा। और उसका फल पूर्ण केवलज्ञान तो रत्नत्रय का फल महारतन। आहाहा! और ऐसे-ऐसे केवलज्ञान के अनन्त रत्न जिसमें पड़े हैं, वह तो महारतन! तीनों रत्न सिद्ध किये। चैतन्यरत्नाकर शुद्ध है न? आहाहा! समझ में आया?

भगवान चैतन्यरत्नाकर, अन्तर में उसके सन्मुख होकर उसका ज्ञान, उसकी प्रतीति (हो), उसकी प्रतीति अर्थात्? ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञेय जितना है, उतना ज्ञान होकर उसमें उसकी प्रतीति (हो) और उसके स्वरूप में रमणतारूप चारित्र का अंश

(प्रगट हो), उन तीन को रत्नत्रय कहा। आहाहा! उस रत्नत्रय के फलरूप से केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, वह तो महारत्नत्रय। महारत्नत्रय के साथ अनन्त गुण होते हैं। और ऐसी-ऐसी पर्यायें जिसमें—रत्नाकर में अनन्त पड़ी है, वह तो महा चैतन्यरत्नाकर है। आहाहा! निधि है, निधान है। इसलिए यहाँ चैतन्यरत्नाकर सम्बोधन कर (ऐसा कहते हैं)... आहाहा! उसमें पड़े-बिछे हुए अनन्त रत्न हैं। आहाहा! एक के बाद एक, एक के बाद एक, ऐसा नहीं। एक साथ पूरा दल। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त... जितनी शक्तियाँ हैं, उतनी अनन्त और उन-उन शक्ति का अनन्त रूप। वह सब एकसाथ दल पड़ा है। पूरा भगवान आत्मा दल है।

वह दल के लड्डू नहीं होते थे पहले? सुना है? दल के लड्डू होते थे। दिवाली पर बनाते थे। अब तो सब सुधरा हुआ हो गया। अब घुघरा और फाफडा हो गये। घुघरा और फाफडा हो गये। आहाहा! गेहूँ के दल के लडडू बनाते थे। पानाचन्दभाई! सुना है या नहीं? पहले बनाते थे पहले। शक्करपारा बनाते थे। एक सेर चने का आटा और उसमें चार सेर घी पिलाकर बनावे उसे मैसूर कहते हैं। परन्तु गेहूँ का एक सेर आटा और चार सेर घी पिलाकर बनावे उसे शक्करपारा कहते हैं। गेहूँ के आटे में चार सेर घी पिलाकर शक्कर डालकर बनावे, उसे शक्करपारा कहा जाता है। चने के आटे में चार सेर घी पिलाकर शक्कर डालकर बनावे, उसे मैसूब कहा जाता है। परन्तु यह तो कहते हैं महा मीठा सागर अन्दर... आहाहा! समुद्र डोलता है अन्दर। आहाहा!

उसमें आता है न? अन्यमत में नहीं आता? वह 'चेलो'। 'चेलैयो' सत् का चूके, महेरामण माजा न मूके। यह बात आती है कि एक बाबा आया था। आया था न दरबार? एक बाबा आया था और फिर माँस माँगा। अब माँस तो कहाँ से लाना? लड़का आवे उसे खांडीने लाओ। लड़के को खबर पड़ी कि घर में पिताजी ऐसा करना चाहते हैं। इसलिए तू घर में जाना नहीं। तब कहता है, 'महेरामण माजा न मूके, चेलैयो सत् न चूके।' यह महेरामण माजा कभी मूके नहीं और दरिया में से आगे न जाये। वैसे चेलैयो सत् न चूके। वह चाहे जैसे होगा।

इसी प्रकार यहाँ चेलैयो अर्थात् पर्याय, प्रजा वह चेला है और वस्तु वह स्वयं त्रिकाली गुरु है। वह प्रजा सत् न चूके। उसकी जो मर्यादा है, उसमें रहे। आनन्द की

धारा में बहे। आहाहा! भगवान आत्मा के अनुभव में उसकी अतीन्द्रिय आनन्द की धारा का धोरिया बहे, वह मर्यादा नहीं छोड़ता। आहाहा! यह चैतन्यरत्नाकर। यह निर्जरा का अधिकार है न? निर्जरा का अधिकार अर्थात्? शुद्धि की वृद्धि। यह चलता है। वैसे तो निर्जरा के तीन प्रकार कहे थे। कर्म का खिरना एक निर्जरा; अशुद्धता का गलना एक निर्जरा, परन्तु अस्तिरूप से तो शुद्धि की वृद्धि होना, वह निर्जरा है। समझ में आया? वह यहाँ शुद्धि की वृद्धि की धारा धर्मी को '**अच्छाच्छाः**' यह शब्द है न पहला? निर्मलधारा... निर्मलधारा... चलती जाती है अन्दर से। आहाहा! धोरिया बहते हैं, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा?

'**यस्य इमाः संवेदनव्यक्तयः स्वयं उच्छलन्ति**' इस संवेदन व्यक्ति को पहली तरंगावलि की पर्यायों को अनेकता कही थी। अब यहाँ '**संवेदनव्यक्त्यः**' कहा। अर्थात् कि जो वस्तु है, उसका वह निर्मल अंश, आनन्द का, शुद्धि का, वृद्धि का (अंश), उसे '**संवेदनव्यक्त्यः**' अर्थात् कि वस्तु का एक भाग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह वस्तु ने भाग दिया। आहा! संस्कृत टीका में यह है। उत्तर का समुद्र, पश्चिम का समुद्र जैसे भाग कहलाता है, वैसे इस पर्याय के अतीन्द्रिय आनन्द की अनन्त पर्यायें, वह वस्तु का एक भाग है। राग और पर के साथ यहाँ कुछ सम्बन्ध है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसी संवेदनव्यक्तियाँ हैं न? व्यक्ति / प्रगटता। **जो द्रव्य को प्रत्यक्षरूप से विद्यमान संवेदन अर्थात् ज्ञान, उसकी व्यक्तियाँ...** प्रगटतायें। **मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक पर्यायरूप अंशभेद,...** देखो! इसका अंशभेद, भागभेद है। आहाहा! तीन लोक का नाथ चैतन्यरत्नाकर, जिसके खजाने में अनन्त निधान पड़े हैं। आहाहा! जिसके स्वभाव में अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त ईश्वरता, रागादि और पर का कारणकार्य न होना, ऐसी अकार्यकारण नाम की समुद्र शक्ति पड़ी है अन्दर बड़ी। आहाहा! राग का कारण भी न होना और राग का कार्य न होना। अर्थात् कि राग है व्यवहार, इसलिए यहाँ संवेदनव्यक्ति प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! और संवेदनशक्ति प्रगट दशा, वह राग को उत्पन्न करती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

यहाँ '**संवेदनव्यक्त्यः**' शब्द पड़ा है। आहाहा! पर्यायरूप से उसे प्रगट शब्द प्रयोग किया है। द्रव्य, वह प्रगट ही है। परन्तु पर्याय प्रगट है, इस अपेक्षा से द्रव्य को अप्रगट कहते हैं। अव्यक्त कहा है न? अव्यक्त कहो या (अप्रगट कहो)। तथापि अपनी अपेक्षा से तो व्यक्त ही है, प्रगट है। आहाहा! चैतन्यरत्नाकर भगवान पूर्णानन्द का नाथ विद्यमान प्रभु विराजता है, वहाँ सिंहासन में बैठ जरा। आहाहा! बड़ा सिंहासन है वहाँ। वहाँ बैठक कर न! तुझे आनन्द आयेगा, तुझे शान्ति आयेगी। आहाहा! यह भाग उस भाग का है। वस्तु है, उसका यह भाग है। समझ में आया? रागादि हों, वह कहीं वस्तु का भाग नहीं। क्योंकि वस्तु में अनन्त शक्तियाँ हैं, आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुणी शक्ति, परन्तु ऐसी कोई शक्ति नहीं कि विकार करे। आहाहा! वह तो भ्रमणा से विकार को उत्पन्न करे। यह काल दोपहर में आ गया है। भ्रमणा से शुभ-अशुभभाव को, मिथ्यात्व को उत्पन्न करता है। पर्यायबुद्धि से—भ्रमणा से। जिसे अन्तर द्रव्यबुद्धि हुई नहीं। आहाहा! उसे तो द्रव्यबुद्धिवाले को तो संवेदन आनन्दादि पर्यायों की व्यक्तता प्रगट होती है। निर्जरा है न? शुद्धि की वृद्धि कहना है न? संवर, वह शुद्धि है; निर्जरा, वह शुद्धि की वृद्धि है; मोक्ष, वह शुद्धि की पूर्णता है। आहाहा! तो संवेदन व्यक्तियाँ, वह निर्जरा के प्रकार को बताता है। शुद्धि की वृद्धियाँ अन्दर होती हैं। आहाहा!

चैतन्य आनन्द के हिलोरे चढ़ता है। पूर्णानन्द का नाथ शिखर भरा है पूर्ण, कहते हैं। आहाहा! उसका जब सत्कार और आदर होता है, तब पर्याय में आनन्द हिलोरे चढ़ता है। आहाहा! समझ में आया? सत्कार कहो या आश्रय कहो, स्वीकार कहो। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ का स्वीकार जहाँ होता है... आहाहा! तब पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की संवेदन व्यक्तियाँ उछलती हैं, कहते हैं। यह निर्जरा की व्याख्या चलती है, भाई! वे तो कहें, अपवास कर तो निर्जरा होगी, बापू! आहाहा! वह वस्तु अलग, भाई! यह वह मार्ग नहीं। आहाहा!

यह तो निर्जरा उसे कहते हैं। यह निर्जरा अधिकार है न? आहाहा! ऐसे तो नि—विशेष झरना। तो कर्म का झरना, अशुद्धता का झरना परन्तु विशेष शुद्धता का झरना-निकलना, (वह निर्जरा है)। आहाहा! भगवान अनन्त आनन्द का नाथ सागर पड़ा है, कहते हैं। उस सागर का जहाँ स्वीकार होता है, वह स्वभाव का स्वीकार होता

है, तब पर्याय में व्यक्तियाँ अर्थात् संवेदन आनन्द के वेदनवाली प्रगट दशायें प्रगट होती हैं। आहाहा! उसे निर्जरा कहते हैं। उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? यह उसका भाग है। अन्तिम आया न?

अंशभेद,... है। है? यह केवल अकेले पाँच में पूरा नहीं रखा। **इत्यादि...** अर्थात् अनेक गुण की पर्याय, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा जितनी शक्ति का पिण्ड है, उसका सम्यक् सत्यदर्शन होने पर, सत्यदर्शन अर्थात् सत्य है, उसकी प्रतीति को यहाँ दर्शन कहते हैं, उसमें जितनी शक्तियाँ हैं, उतना एक अंश उसमें से समकित में प्रगट होता है। जिसे सर्व गुणांश वह समकित कहा है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में एकदेश ज्ञानादि भाग कहा है। टोडरमलजी ने (कहा है)। आहाहा! अर्थात्? कि जितनी संख्या से शक्तियाँ हैं, उन सभी शक्तियों का सुन्दर तत्त्व आत्मा स्वयं, उसका जहाँ आदर हुआ, स्वीकार हुआ, उससे अनन्त शक्तियों के एक अंश की पर्याय में अनन्त व्यक्त दशा होती है। उसे यहाँ संवेदन व्यक्त दशा कहा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग।

अब निर्जरा की वह व्याख्या। कहा था न? चन्दुभाई है एक। चन्दुभाई न? राणपुर और चुड़ा के बीच। वड़ोदरा रहते हैं। लड़का है स्थानकवासी परन्तु यहाँ का प्रेमी है। वेजलका वाला। राणपुर और चुडा के बीच है न वेजलका? वह वहाँ का है। वड़ोदरा रहता है। यहाँ का बहुत अभ्यास है। एक आर्जिका के साथ बात करते-करते उसके साथ गया होगा। भाई! मार्ग बहुत अलग है। तब आर्जिका कहे, वह दूसरी तुम्हारी चाहे जो बात हो, परन्तु अपवास है, वह तपस्या है और तपस्या है, वह धर्म है, निर्जरा है। ऐसा शास्त्र में लेख है। इसलिए हम इस बात के अतिरिक्त दूसरी नहीं मानेंगे। अपवास तप, तपसा निर्जरा, आता है न? णमो अरिहंताणं कहना, वह निर्जरा है। उसमें तो यह आता है। स्वाध्याय आता है। आता है न? वांचन, पूछना, पर्यटन, ऊनोदरी को तप कहा है, तप को निर्जरा कहा है। किस अपेक्षा से? भाई! किस ओर से लक्ष्य छोड़ा है, इतना बतलाने के लिये उसे (तप) कहा है। जाना है तो यहाँ अन्दर अर्थात् कि शुद्धता की पर्याय प्रगट करनी है। वह निर्जरा है और वह तप है। परन्तु किसकी ओर से लक्ष्य छोड़ा, उसके बाद नाम दिया कि उपवास अर्थात् आहार का लक्ष्य छोड़ा, इसके

ऊपर से लक्ष्य छोड़ा, विनय के ऊपर से लक्ष्य छोड़ा। इसलिए उसके तप के भाग यह किये। वह तप नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग!

उसे यहाँ **केवलज्ञान इत्यादि...** अब पाँच पर्याय तो आ गयी। इत्यादि अर्थात् कि अनन्त गुण की जितनी पर्यायें हैं... आहाहा! वह संवेदनव्यक्ति में आ जाती है। समझ में आया? आहाहा! **द्रव्य का सहज ऐसा ही है उस कारण...** आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यरत्नाकर का सहज स्वरूप ऐसा है कि उसका आश्रय लेने से '**उच्छलन्ति**' आहाहा! अवश्य प्रगट होता है। आहाहा! देखा! बहिन में आया है न यह। पढ़ा है न? वचनामृत में। 'जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये? अवश्य प्राप्त होगा।' आहाहा! इतने शब्द हैं। इतने शब्द हैं। वचनामृत में हैं। 'जागता जीव ध्रुव है...' न, अर्थात्? भगवान आत्मा ज्ञायकभाव, वह ध्रुव है न! भाषा ऐसी की परन्तु वस्तु यह। आहाहा! अन्दर भगवान जागता ज्ञायकभाव से ध्रुव है न? ऊभो अर्थात् खड़ा है ऐसा। आहाहा! वह कहाँ जाये? वह ध्रुव कहाँ जाये? खड़ा है, वह जाये कहाँ? तत्त्व है, वह तत्त्व जाये कहाँ? आहाहा! समझ में आया?

कल रात्रि में कहा था, नहीं? श्रीमद् का वाक्य। सत् है। सत् सरल है। सत् सर्वत्र है। बतलानेवाले चाहिए। आहाहा! सत् है, सरल है। सरल है अर्थात्? है, उसे प्राप्त करना है, उसमें क्या? आहाहा! राग को अपना करना हो, परमाणु को अपना करना हो तो नहीं हो सकता। आहाहा! परन्तु है। सत्ता अस्तित्व प्रभु महा। है, है उसे प्राप्त करना, वह तो सरल वस्तु उसकी है। आहाहा! समझ में आया? सत् है। सत् सरल है। सत् सर्वत्र है। भाई! तू चाहे जिस क्षेत्र में जा परन्तु सत् तो वहाँ का वहीं पड़ा ही है वह तो। आहाहा! चाहे जिस क्षेत्र में जा, चाहे जिस पर्याय में रागादि में हो, परन्तु सत् तो वहाँ पड़ा है, सर्वत्र सत् पड़ा ही है अन्दर।

मुमुक्षु : निमित्त बिना प्राप्त नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। बतलानेवाला चाहिए इतना। बतलानेवाला उसे कहते हैं कि, देख भाई! यह चीज़ है, इतना। ऐसी स्थिति है। देशना मिलनी चाहिए, इतनी बात है, ऐसा कहना है। आहाहा! भगवान तो है नहीं। सत् है न! सत् अर्थात् है। है

अर्थात् ध्रुव है। आहाहा! ध्रुव है, ऐसा का ऐसा। आहाहा! जागती ज्योति। है... है... है... है... है... है... और वह सरल है अर्थात् कि है, उसमें जाना है। न हो उसमें जाना हो तो ठीक। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! ऐसा है। आहाहा!

यह तो दिवाली का दिन है। भगवान का मोक्ष (हुआ)। आहाहा! अनादि शान्त सागर हो गया। सादि-अनन्त मोक्ष हो गया। आहाहा! दो भाग पड़ गये। आज भगवान को रात्रि के पिछली पहर में संसार अनादि शान्त हो गया। आहाहा! पर्याय। वस्तु तो वस्तु है। पर्याय में अनादि की संसारदशा, उसका अन्त हो गया। आहाहा! चौदहवें गुणस्थान में विराजते हैं तो भी प्रभु कहते हैं, उसे हम असिद्ध कहते हैं। वहाँ तक। आहाहा! असिद्ध है। सिद्ध तो उदयभाव नाश होकर अकेला पारिणामिक रहेगा, तब सिद्ध कहते हैं। आहाहा! अब उसके बदले (कहते हैं कि) समकित प्राप्त करे, वहाँ उसे आस्रव और बन्ध नहीं है और दुःख नहीं है। अरर्र! कहाँ घुस गये भाई? समझ में आया? इन सेठिया के कारण फेरफार हो गया। ज्ञानचन्दजी... वह अभी मानते नहीं यह। यह अलग पढ़ते हैं। उन्हें ऐसा कि समकिती-ज्ञानी को दुःख होता ही नहीं। अरे! प्रभु! किस अपेक्षा की बात है, भाई! यहाँ तो चौदहवें तक भी असिद्ध कहा। वह कर्म के कारण नहीं। कर्म तो परद्रव्य है। वह तो बाहर लोटता है। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? इसकी योग्यता में अभी सिद्धदशा पूरी हुई नहीं। आहाहा! उसे भी असिद्ध कहा। उदयभाव है न? वह उदयभाव उसकी अपनी पर्याय है या नहीं? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ आत्मा... आहाहा! **द्रव्य का सहज ऐसा ही है उस कारण अवश्य प्रगट होते हैं।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! द्रव्य अर्थात् वस्तु। आदि-अन्त बिना की त्रिकाल उस-उसरूप से एक स्वरूप है, उसे नजर डालने पर वह प्राप्त होती है। आहाहा! अन्य में कहा जाता है, 'मेरी नजर के आलस्य से रे मैंने निरखे न नयन से हरि।' दरबार! आता है न? यह प्रत्येक को बात ऐसी है। यहाँ हरि का अर्थ आत्मा है। पंचाध्यायी में हरि शब्द कहा है। अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, वह हरि। हरि, वह यह आत्मा। आहाहा! 'मेरे नयन के आलस्य से रे मैंने निरखे न नयन से हरि।' यह भगवान हरि, हों! कोई हरि दूसरा नहीं। अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, वह हरि। ऐसा तीन लोक का नाथ चैतन्य सहजात्मस्वरूप स्वयं। आहाहा! नयन के आलस्य से

नजर में नहीं लिया, बस! इतनी बात है। कर्म के कारण, अमुक के कारण, ऐसा नहीं है।

वह यहाँ कहते हैं कि नजरें जहाँ निधान में गयी... आहाहा! तो द्रव्य है, वह अवश्य ऐसा है कि उस कारण से अवश्य प्रगट होता है। आहाहा! उसमें पर्याय की एकता करने से शक्ति में से व्यक्तता अवश्य होती है, कहते हैं। आहाहा! जैसे फुब्बारे को ऐसा करे और फटे। रात्रि में कहा था न? वह पाताल कुँआ। नहीं? जनडा। जनडा है बोटाद के पास। कुँआ खोदा हुआ। बहुत खोदा... बहुत खोदा... पानी निकले नहीं। फिर लोगों ने उकताकर बन्द कर दिया। गहरा कुँआ। और उसमें बारात निकली। वह मानो कि इसमें पानी है, इसलिए खाने के लिये बारात उतारी। दस, साढ़े दस (हुए थे)। पहले तो आगे जाना हो तो गाडा मे जाते थे न? यहाँ जहाँ देखा तो पानी नहीं मिलता। कुँआ गहरा देखा तो ऐसे... उसमें दस मण, पन्द्रह मण का पत्थर ऊपर होगा। एक व्यक्ति कहे, परन्तु ऐसा बड़ा (कुँआ) है और पानी क्यों नहीं? और अपने यहाँ पड़ाव डाला। वह पत्थर डाला अन्दर। एक थोड़ा सा ऐसा पत्थर का तल बाकी रह गया था। ऊपर से डाला तो ऐसे सीर उड़ी अन्दर से। पानी की धारा बही। अभी अठारह कोस बहते हैं। एक कुँए में अठारह... क्या कहलाते हैं? कोस-कोस। अठारह कोस बहते हैं। हम साथ में निकले थे। जनडा। अठारह कोस से पानी, परन्तु कम नहीं हो इतना पानी है, बापू! आहाहा! पाताल कुँए में से।

इसी प्रकार इस भगवान के तल पाताल... आहाहा! उसमें जिसकी नजरें गयीं, उसे भेदज्ञान हुआ और छिद्र पड़ गया अन्दर में। राग और भगवान के बीच भेदज्ञान हो गया। आहाहा! वह अन्दर के तल में से भगवान का फुब्बारा फूटा। आहाहा! यह कहते हैं, जरूर होगा तुझे। आहाहा! द्रव्य का तूने आदर किया तो तुझे अवश्य व्यक्तियाँ प्रगट (होगी)। आहाहा! निर्जरा है न यहाँ? समझ में आया? इतने अपवास किये और इतने यह किये, इसलिए निर्जरा होगी, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो!

द्रव्य का सहज ऐसा ही है उस कारण अवश्य प्रगट होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—कोई आशंका करेगा कि ज्ञान तो ज्ञानमात्र है, ऐसे जो मतिज्ञान आदि पाँच भेद वे क्यों हैं? वह तो ज्ञानस्वरूप है। उसमें फिर भेद क्या यह मति और श्रुत? एक बात

तो अपने आ गयी थी १४० में। आयी थी न? जैसे ज्ञेय का ज्ञायक हो, वैसा नाम पाता है। दूसरी लाईन है। है न? १३० पृष्ठ। **जैसे ज्ञेय का ज्ञायक होता है, वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूप का विचार करने पर ज्ञानमात्र है, नाम धरना सब झूठा है;...** आहाहा! यह मन, इन्द्रियों से जाने इतने ज्ञेय को, इसलिए मति। इतने और इसे जाने, इसलिए श्रुत। यह अवधि-मर्यादा को जाने, इसलिए अवधि। मन को जाने, इसलिए मनःपर्यय। तीन काल को जाने, इसलिए केवल। ऐसे ज्ञान की पर्याय के नाम देना वे झूठे हैं। आहाहा! वह तो ज्ञान की पर्याय है, बस। और वह जानता है स्वयं अपने को। समझ में आया? कठिन बातें हैं, भाई! अभ्यास नहीं न... आहाहा! इससे कठिन। अनभ्यास से कठिन। अभ्यास से तो वस्तु स्वयं है। आहाहा!

कहते हैं कि यह ज्ञानमात्र जो भेद है, वह किस कारण से है? **समाधान इस प्रकार है—जो ज्ञान की पर्याय है,...** भले भेद है, परन्तु है ज्ञान की पर्याय। यहाँ पर्याय सिद्ध करनी है, चन्दुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अभी नहीं। यहाँ तो तीन बातें ली हैं न? पहली तरंगावलि ली। तरंग उठती है। पश्चात् संवेदन, उसका भाग है, पश्चात् कहते हैं कि नाम पड़े भले झूठे, परन्तु है ज्ञान की पर्याय। आहाहा! ज्ञानस्वभाव जो सत्त्व जो पूर्ण है, उसके अवलम्बन से प्रगट हुई पर्यायें, वह सब ज्ञानपर्याय ही है। वह ज्ञान ही दशा है। वह ज्ञान का भाग है, ज्ञान ही दशा है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान तो ज्ञानमात्र है,... ज्ञान की पर्याय है, विरुद्ध तो कुछ नहीं। आहाहा! **वस्तु का ऐसा ही सहज है।** क्या सहज है? कि पर्याय से देखने पर वह ज्ञान की पर्याय है, वह वस्तु का सहज है। वस्तु से देखने पर द्रव्य एकरूप है, वह भी वस्तु सहज है। आहाहा! अरेरे! आत्मा भगवान परमात्मस्वरूप ही विराजता है। कहा नहीं था तब? 'जिन सोही है आत्मा, अन्य सोही है कर्म।' नहीं, यह नहीं। 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन। घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन; मतमदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' अपने अभिप्राय की मदिरा पीये हुए प्राणी उस वस्तु के स्वरूप को

नहीं समझ सकते। वह जिनस्वरूप विराजमान प्रभु तो है। प्रत्येक आत्मा 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन।' उस जिन को जिसने जाना और राग की एकता तोड़ी, वह जैन घट—अन्दर में है। वह कहीं बाहर में जैनपना लटकता नहीं। आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन।' जैन कोई वाडा नहीं। जैन कोई पक्ष नहीं, सम्प्रदाय नहीं। वह वस्तु का स्वरूप ही वीतरागमूर्ति जिन है, उसे पर्याय में प्राप्त करना, वह जैन है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। 'मत मदिरा के पान सो...' अपने अभिप्राय की मदिरा पीये हुए मतवाला नहीं समझे। मतवाला वह जिन और जैन क्या? आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। ऐसी बात कहाँ? यह तो कोई एक-एक बात सुनी हो उसमें कि कुछ आवे नहीं। लो! सब बातें अलग लगे। पानाचन्दभाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर पर्याय में जिन हुए। परन्तु वह जिनपना आया कहाँ से? सर्वज्ञ हुए, वह सर्वज्ञ पर्याय आयी कहाँ से? वस्तु सर्वज्ञ स्वभाव का पिण्ड है। सर्वज्ञस्वभावी। ऐसी शक्ति कही है। सर्वज्ञशक्ति है। सर्वज्ञशक्ति कहो, सर्वज्ञगुण कहो, सर्वज्ञस्वभावी वस्तु, बस। आहाहा! और जिनस्वरूप ही वह है। क्योंकि अकषायस्वरूप वीतरागस्वरूप अनादि-अनन्त वह निधान पड़ा है। वह जिन है। जिन तो यह कपासवाले को जिन कहते हैं। नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : जिन का कपड़ा भी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! पींजण से पींजे उसे जिन कहते हैं। यह जिन तो नाथ... आहाहा! जिसके पींजण में चढ़ा, उसे राग के पींजण उड़ जाते हैं एकदम। वीतराग पर्याय जिसे प्रगट होती है, ऐसा यह जिनस्वरूप है। समझ में आया? उस पींजण में तो अभी रुई चिपक जाती है थोड़ी। उसमें तो रुई चिपटे... आता है न? प्रवचनसार में आता है। पींजण का दृष्टान्त दिया है। शास्त्र में सब दृष्टान्त पड़े हैं। आहाहा! वह ऐसी-ऐसी धार करे न? वहाँ रुई थोड़ी चिपक जाये उसे। यहाँ तो उसे झनझनावे तब वीतरागता प्रगट होती है, कहते हैं। वीणा के तार बजे अन्दर में। भगवान चैतन्यमूर्ति अनन्त आनन्द का नाथ, स्वीकार में जहाँ दृष्टि में आया, (वहाँ) वीणा बजी

अन्दर से। आहाहा! वह अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की पर्याय के अंश लेता आवे अन्दर से। आहाहा! यह दिवाली के लड्डू हैं ये। धूल में कुछ दिवाली नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह **ज्ञान की पर्याय है, विरुद्ध तो कुछ नहीं। वस्तु का ऐसा ही सहज है। पर्यायमात्र विचारने पर मति आदि पाँच भेद विद्यमान हैं,...** देखा! आहाहा! अब ११वीं गाथा में ऐसा कहते हैं कि पर्याय झूठी है। अभूतार्थ कहो, असत्यार्थ कहो। परन्तु किस अपेक्षा से? बापू! उसमें शब्द का आशय क्या है, वह लेना चाहिए। पर्याय झूठी है तो हो गया तो द्रव्य ही अकेला रहा। झूठी है, ऐसा निर्णय करनेवाला कौन? निर्णय ध्रुव करता है न? परन्तु वह तो पर्याय हो गयी। आहाहा! यह द्रव्यस्वभाव शुद्ध चैतन्य अखण्ड है, ऐसी दृष्टि कौन करता है? ध्रुव करता है या पर्याय करती है? आहाहा! इसीलिए तो कहा है कि अनित्य से नित्य जानने में आता है। चिद्विलास। आहाहा!

भगवान नित्यानन्द प्रभु, वह अनित्य ऐसी पर्याय से जानने में आता है। अनित्य से नित्य जानने में आता है। क्योंकि कार्य तो पर्याय में होता है। उस पर्याय को सिद्ध करते हैं। पर्याय है। पर्याय एक समय की है और नहीं, नाशवान कहा। नियमसार की ३८ गाथा में कहा न? केवलज्ञानादि। संवर, निर्जरा, मोक्ष, आस्रव, बन्ध वे सब नाशवान हैं। केवलज्ञान भी नाशवान है। क्योंकि एक समय की पर्याय की अवधि है उसकी। यहाँ कहते हैं भले नाशवान हो, परन्तु एक समय की है न? नहीं, ऐसा कहने से तू नास्तिक हो जायेगा। आहाहा!

विद्यमान हैं, वस्तुमात्र अनुभवने पर ज्ञानमात्र है। भेद नहीं, ऐसा कहते हैं। भेद नहीं। अर्थात् अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १, शनिवार, दिनांक-१२-११-१९७७, कलश-१४१-२६८, प्रवचन-१४७

कलशटीका १४१। यहाँ से शुरु करना। **कैसी है संवेदन व्यक्ति? 'अच्छाच्छाः'** यह आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप चैतन्य का स्वीकार सन्मुख होकर करने से, आत्मा... आज सुप्रभात है न? यह '**अच्छाच्छाः**' से शुरु किया है। सुप्रभात पढ़ते हैं हर समय। है, देखो! अन्त में? २५४ पृष्ठ पर है। २५४ पृष्ठ पर है। देखो! २६८ कलश। २५४ पृष्ठ। २६८ कलश। है?

चित्पिंडचंडिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।

रात्रि का अन्धकार मिटने पर सवेरे प्रभात होता है, उसी प्रकार अज्ञान मिटने पर आत्मा में सुप्रभात सम्यग्दर्शन-ज्ञान का होता है, उसे सुप्रभात कहते हैं। उसे आत्मा में नया वर्ष लगा, ऐसा कहते हैं। यद्यपि यहाँ पूर्णता ली है। '**चित्पिण्ड**' है न? वह '**चित्पिण्ड**' का अर्थ यहाँ किया है अपने उसमें। अनन्त दर्शन, अनन्त दर्शन वह सुप्रभात है। शुद्ध प्रकाश है, वह अनन्त ज्ञान है। आनन्द है, वह अनन्त आनन्द है और अन्तिम शब्द '**अचलार्चि**' आत्मा। अर्ची है, वह वीर्य है। वह अनन्त वीर्य है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, वह सुप्रभात है। यह प्रभात तो होता है और वापस दोपहर होकर शाम हो जाती है। परन्तु यह प्रभात तो उगा, वह उगा। आहाहा! '**अच्छाच्छाः**' शब्द अपने यहाँ है न?

शास्त्र में एक लेख है कि दो लाख योजन का जो यह लवणसमुद्र है, यह लाख योजन का जम्बूद्वीप है, उसे घेरता हुआ दो लाख योजन का लवण समुद्र। उसके मध्य में एक योजन डगमाळ पानी चढ़ा है। क्या कहा? ऐसा स्वभाव अनादि का है। पानी के तल में से दो लाख समुद्र के मध्य में दूर कुछ है स्याही। सब याद नहीं। मध्य में एक योजन पानी का डग तल से ऊँचा है ऐसा। समझ में आया? वह अनादि का ऐसा स्वभाव है। खारे समुद्र में भी बीच में डगमाळ ऊँचा है वह घटता नहीं। समझ में आया? भगवान ने कहा हुआ है। लवणसमुद्र में (ऐसा है)। पानी सीधा तो हो ऐसे, परन्तु पानी के तल से एक योजन ऊँचा पानी ऐसे चढ़ा है। चारों ओर....

मुमुक्षु : साईन्स नहीं मानता।

पूज्य गुरुदेवश्री : साईन्स नहीं मानता। साईन्स के बाप को भान कब है ? यह तो विज्ञान का विज्ञान है।

सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव जिनके ज्ञान में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हुए, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। उनकी पर्याय में ही ऐसा स्वभाव है। आहाहा! जैसे स्वच्छ पानी में रात्रि में ऊपर चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, करोड़ों तारे हैं, वे पानी का स्वच्छत्व देखने पर उसमें वे ज्ञात हो जाते हैं। पानी की स्वच्छता ऐसे देखने पर उसमें वे ज्ञात हो जाते हैं। वह पानी की अवस्था है। वे कहीं वह चीज़ नहीं उसमें और उस चीज़ की अवस्था वहाँ नहीं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा के ज्ञान में लोकालोक है, वह लोकालोक नहीं। जैसे वे चन्द्र और तारे दिखते हैं, वे चन्द्र तारे नहीं हैं वहाँ। वह पानी का स्वच्छता का स्वरूप ऐसा है। इसी प्रकार भगवान आत्मा... '**अच्छाच्छाः**' आया है न अपने ? आहाहा!

निर्मल सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तेरी पर्याय में वह समुद्र महाप्रभु है। वह क्षार समुद्र सागर दो लाख योजन का। उसके मध्य में एक योजन डगमाळ ऊँचा पानी का (भाग है)। आहाहा! कुदरत के स्वभाव के नियम प्रमाण वह कायम रहनेवाला है। समझ में आया ? उसी प्रकार यह भगवान आत्मा चैतन्य के स्वभाव का... आया है न अपने ? चैतन्यरत्नाकर आया है न ? समुद्र के साथ उपमा दी है। लवण के साथ यहाँ उपमा दी। आहाहा! भगवान चैतन्यरत्नाकर प्रभु, उसके सन्मुख देखने पर, उसका स्वीकार करने पर वह है, है तो है, परन्तु इतनी शक्तिवन्त महाप्रभु है, ऐसी प्रतीति में महाप्रभु की प्रतीति आवे, उस प्रतीति का जोर कितना! समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्य पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उस सत्य का दर्शन, सत्य की प्रतीति, सत्य जितना बड़ा है, उतना उसकी ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञान आया और ऐसा ज्ञान आया, उसमें उसकी प्रतीति आयी कि यह तो परमानन्द और अनन्त गुण का (पिण्ड) प्रभु अखण्ड है। आहाहा! ऐसी जो पर्याय, वह '**अच्छाच्छाः**' अपने चलता है। निर्मल से निर्मल ज्ञान धर्मात्मा को प्रगट होता है। समझ में आया ? आहाहा! और वह प्रकाश, वह पूर्ण अनन्त दर्शन होता है, उसे यहाँ '**चित्पिण्ड**' '**चित्पिण्ड**' कहा

'**चित्पिण्ड**' वह ज्ञान का पिण्ड अनन्त दर्शन का, पर्याय में अनन्त दर्शन को डगमाळ खड़ा होता है। आहाहा! प्रभु मीठा समुद्र है। अनन्त पवित्रता के रत्नाकर गुणों से भरपूर मीठा समुद्र। आहाहा! 'सहज समुद्र उलस्यो जेमां रत्न तणाणा जाय। भाग्यवान कर वावरे अेनी मोतीअे मुठीयुं भराय।' यह भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त रत्नाकर से भरपूर प्रभु समुद्र... आहाहा! उसके सन्मुख की दृष्टि करने से, उसका स्वभाव जितना जैसा है, उतना ज्ञान की पर्याय में और श्रद्धा में स्वीकार करने से पर्याय में निर्मल धारा बहती है। समझ में आया? उसे यहाँ सुप्रभात कहा। अकेला प्रभात शब्द नहीं। सुप्रभात। यह प्रभात तो अनन्त सवेरे उगे और जाये। यह तो सुप्रभात।

इसलिए आचार्य तो ऐसा ही कहते हैं ३८, ९२। ९२ (गाथा) प्रवचनसार में, ३८ (गाथा) समयसार में। आहाहा! भगवान आत्मा ऐसा जो चैतन्यरत्नाकर प्रभु, उसका हमको आगमज्ञान से अथवा अनुभव से जो ज्ञान हुआ, ऐसी जो ज्ञान में हमको सम्यग्दर्शन की प्रतीति हुई। हम छद्मस्थ अल्पज्ञ प्राणी, पंचम काल के प्राणी केवली के विरह में रहे। परन्तु हम कहते हैं कि हमको हमारा ज्ञान प्रगट हुआ है। सम्यग्दर्शन हुआ, वह अब वापस गिरेगा नहीं। वह तो केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। आहाहा! वह भी छद्मस्थ अल्पज्ञ प्राणी! वस्तु कहाँ छद्मस्थ और अल्पज्ञ है? आहाहा! वस्तु तो सर्वज्ञस्वभावी, सर्वदर्शीस्वभावी, अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्दस्वभावी, अतीन्द्रिय अनाकुल वीर्य के बल से भरपूर भगवान... आहाहा! उसे स्वीकार करने पर, उसका मान देने पर अर्थात् यह है, ऐसा जहाँ स्वीकार किया। मैं रागवाला हूँ, अल्पज्ञ हूँ, वहाँ तक उसने स्वभाव का अपमान किया है। आहाहा! स्वभाव-महिमा का अनादर किया है।

एक बड़ा व्यक्ति मिलने आवे। दो-पाँच-दस करोड़वाला और दस मिनिट की अवधि के लिये आया हो। उसमें उसे लड़का दो वर्ष का हो इतना, वह उसके साथ खेले और वह दस मिनिट में चला जाये, वह खड़ा होकर चला जाये। समझ में आया? इसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त है। भगवान आनन्द का नाथ महा (प्रभु) विराजमान है, उसके साथ बात न करके, उसका आदर न करके वह पर्याय में और राग की क्रीड़ा में बालक के साथ खेलने में जाता है। वह चीज़ खो जाती है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, '**चित्पिण्ड' जीव को अवश्य कर जीव पदार्थ सकल कर्म**

का विनाश कर प्रगट होता है, अनन्त चतुष्टयरूप होता है। देखो! यहाँ सुप्रभात में। **अनन्त चतुष्टयरूप होता है।** जरा इसमें अर्थ में अन्तर है। और समयसार के अर्थ में अन्तर है थोड़ा। खबर है। '**अचलार्चिः**' **सर्व काल एकरूप है केवलज्ञान केवलदर्शन...** यह केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रगट हुआ। उसमें '**अर्चि**' का अर्थ यह किया है— वीर्य। अनन्त वीर्य जहाँ प्रगट हुआ, उस वीर्य के कारण, वहाँ पूरे अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन की रचना हुई, वह ऐसी की ऐसी रहनेवाली है। आहाहा!

यहाँ तो निचली श्रेणी में भी पूर्णानन्द के नाथ का स्वीकार और सम्यग्दर्शन करने पर वह बदलता नहीं, गिरता नहीं, ऐसा जहाँ आत्मा का पुकार है। आहाहा! धर्मात्मा पंचम काल के धर्मात्मा का यह पुकार है। हमको केवलज्ञानी का विरह है। हम किसे पूछकर यह करें? कि हम यह भगवान आत्मा हैं, उसे पूछकर कहते हैं। आहाहा! यह जो सम्यक् प्रतीति और सम्यक्ज्ञान हुआ, वह हमारा वापस नहीं फिरेगा। चारित्र है, वह तो जायेगा। स्वर्ग में जाऊँगा। चारित्र नहीं रहेगा, परन्तु यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान तो धारावाही यहाँ से जाऊँगा स्वर्ग में, वहाँ से मनुष्य होकर केवल(ज्ञान) प्राप्त करूँगा, तब तक सम्यग्दर्शन की धारा उसके साथ रहेगी। आहाहा! यह नूतन वर्ष की वोहनी है न! आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! तू कौन है, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ कहत हैं कि अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन **तेजपुंज जिसका ऐसा है। और कैसा है?** '**चित्पिण्ड**' का अर्थ यहाँ ज्ञानपुंज किया। और वहाँ आगे '**चित्पिण्ड**' का अर्थ दर्शन किया है। समयसार में। पिण्ड है न? पिण्ड अर्थात् दर्शन किया है। '**चित्पिण्ड**' अर्थ में दर्शन किया। वह तो अपेक्षा से (किया है)... **ज्ञानपुंज के प्रताप की एकरूप परिणति ऐसा जो प्रकाशस्वरूप...** आहाहा! **उसका...** '**हासः**' '**हासः**' का अर्थ **निधान है** यहाँ। '**हासः**' का अर्थ '**हासः**' नहीं। हीनता नहीं। '**हासः**' भगवान आत्मा... आहाहा! उसके हर्ष का आनन्द अन्दर में से उछलता है और प्रगट होता है, तब कहते हैं कि निधान प्रगट हुआ उसे तो। है?

यह निधान है। **प्रकाशस्वरूप उसका निधान है।** आहाहा! **और कैसा है? रागादि अशुद्ध परिणति को मेटकर हुआ जो शुद्धत्वरूप परिणाम उसकी बार बार जो शुद्धत्वरूप परिणति...** '**भर**' '**भर**' भरा हुआ नहीं? यह लोग नहीं कहते कि गाड़ा भरे

तब भूसा भरा है, ऐसा कहते हैं न? आहाहा! वैसे भगवान आत्मा, उसकी निर्मल पर्याय में भर भरा है। आहाहा! स्वभाव की बात तो क्या करना, परन्तु स्वभाव में प्रगट हुए ज्ञान और दर्शन, वह भर है बड़ा। जैसे पच्चीस मण का गाडा भरे और भर भरे ऐसा कहे, उसी प्रकार यहाँ आत्मा आनन्द के नाथ को उछालकर पर्याय में भर भरते हैं। आहाहा! जिसे ज्ञान की कला, आनन्द की कला अनन्त प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन में यह है। आहाहा!

चारित्रपाहुड़ है, उसमें तो ऐसा कहा है कि चारित्र जो है, चारित्र—स्वरूप की रमणता, वह अक्षय अमेय है—ऐसा कहा है। गुण की, द्रव्य की बात नहीं। चारित्र जो है... यह पाठ है चारित्रपाहुड़ में। अक्षय अमेय। आहाहा! नाथ प्रभु जैसे अक्षय है, वैसे उसका दर्शन, ज्ञान और चारित्र जहाँ प्रगट हुआ, कहते हैं कि वह अक्षय है, अब क्षय नहीं होगा। आहाहा! और अमेय है। उसकी मर्यादा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

रात्रि में कहा नहीं था जरा बहिन का? कि यह विकार है वह उसकी सीमा है। पर्याय में जो विकार है, परन्तु वह सीमा है—उसकी हद है। वह अपरिमाण और अनहद वह चीज़ नहीं। आहाहा! चाहे तो शुभ-अशुभराग और मिथ्यात्व हो, परन्तु उस विकार को हद है, मर्यादा है। इसलिए वहाँ से विमुख हुआ जा सकता है। समझ में आया? यह वचनामृत में है। आया है देवजीभाई? वचनामृत आ गया? पढ़ा थोड़ा? ठीक। कानातलाव के कृषिकार हैं। आहाहा!

कहते हैं कि विकार की पर्याय है, वह मर्यादित और हदवाली है। प्रभु! वहाँ से विमुख हुआ जा सकता है। परन्तु तेरा स्वभाव है, वह अक्षय और अमेय है। उसकी प्रतीति और चारित्र रमणता हुई, उसे भी हम तो अक्षय और अमेय कहते हैं। आहाहा! अमेय—उसकी मर्यादा नहीं। आहाहा! जहाँ मीठा समुद्र भरपूर उछलता है पर्याय में। आहाहा! उसकी शान्ति की स्थिरता लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहते हैं। उस चारित्र को यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं छद्मस्थ पंचम काल के सन्त कहते हैं। भाई! चारित्र को अक्षय कहते हैं हम। प्रभु! परन्तु पर्याय में है न? आप ३८

गाथा में ऐसा कहते हो कि केवलज्ञानादि पर्याय नाशवान है। ३८ में। संवर, निर्जरा और केवलपर्याय भी नाश पायेगी। बापू! वह तो एक समय की अवधि की अपेक्षा से कहा। परन्तु उस समय में जो केवलज्ञान है, वह तो अमेय है। अरे! चारित्र छद्मस्थ दशा... आहाहा! जिसे अभी अल्पज्ञ दशा है। मति और श्रुत दो ही वर्तते हैं, परन्तु जिन्हें आनन्द के नाथ में एकमेक हो गया है अन्दर... आहाहा! सम्यग्दर्शन उपरान्त लगनी लगी है अन्दर लीनता में, कहते हैं कि वह चारित्र की है तो पर्याय, परन्तु हम तो उसे अक्षय-अमेय कहते हैं। आहाहा! डाह्याभाई! आहाहा! वह पर्याय हुई नहीं, होगी। प्रभु! एक ओर ऐसा कहते हैं कि हमें दर्शन हुआ है, वह वापस गिरेगा नहीं। दूसरी ओर ऐसा कहते हैं कि चारित्र है, वह अक्षय है। तथापि चारित्र तो छद्मस्थ का है इसलिए मुनि जायेंगे तो चला जायेगा, परन्तु उसका अंश स्वरूपाचरणचारित्र तो रहेगा ही। समझ में आया? आहाहा!

जहाँ भगवान ध्रुव को ध्येय में लिया, ऐसी जो पर्याय प्रगट हुई दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, वह अक्षय और अमेय है। आहाहा! हद बिना की पर्याय की इतनी ताकत निर्मल की है। सम्यग्दर्शन की और सम्यग्ज्ञान की अल्पज्ञता में और चारित्र की यथाख्यात -चारित्ररहित का चारित्र.... आहाहा! भाई! जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव को हद नहीं होती। ऐसे स्वभाव का जहाँ पर्याय में प्रगटरूप से विकास हुआ, '**हासः**' — विकास निधान अन्दर से प्रगट हुआ। आहाहा! पर्याय में निधान आया। समझ में आया? अरे! उसे कहते हैं। **निधान है। 'हासः'** का अर्थ देखो! शब्द '**हासः**' परन्तु उसका अर्थ निधान है।

और कैसा है? रागादि अशुद्ध परिणति को मेटकर हुआ जो शुद्धत्वरूप परिणाम उसकी बार बार जो शुद्धत्वरूप परिणति... 'भर' का अर्थ यह किया। **उससे हुआ है साक्षात् उद्योत... 'सुप्रभातः'** का अर्थ किया। **साक्षात् उद्योत...** आहाहा! यह चैतन्य की पर्याय... इसमें तो स्वयं की बातें है, बापू! पर का इसमें कुछ... आहाहा! पर का करना या पर को कराना, यह बात तो यहाँ है ही नहीं। वह तो स्वयं अपने में स्वयं प्रगट करे और प्रगट किया हुआ, ऐसा का ऐसा रखे, आहाहा! ऐसा ही उसका स्वभाव है, कहते हैं। आहाहा! है? क्या अब स्पष्टीकरण देते हैं, देखो!

मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति को मेटकर.... वह रात्रि थी। **मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति...** (रूप) रात्रि **मेटकर शुद्धत्व परिणाम....** उस रात्रि का नाश करके प्रकाशरूप परिणमे। आहाहा! **विराजमान जीवद्रव्य प्रगट होता है।** शुद्धत्व परिणाम से विराजमान। आहाहा! परिणाम से विराजमान। ऐसा है न? चन्दुभाई! आहाहा! अपने आसन में अब विराजता है। आहाहा! दूसरी गाथा में कहा न? '**जीवो चरित्तदंसणणाण-ठिदो तं हि ससमयं**' उसे आत्मा कहते हैं। तथा राग और पुण्य के भाव में स्थित हो—रुके, उसे परसमय अनात्मा कहते हैं। आहाहा! यहाँ लोगों को दिक्कत यह आती है। कि जो पुण्य के, दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय है, उससे निश्चय होता है। इतना दूसरा तुम्हारा सब अच्छा है। तुम बहुत ठीक करते हो। परन्तु यह एक भूल है। परन्तु छद्मस्थ है, इसलिए भूल होती है, ऐसा करके... कल आया था न? विद्यानन्दजी का।

'**छलं ण घेत्तव्वं**' परन्तु उसका अर्थ ही नहीं वहाँ। '**छलं ण घेत्तव्वं**' वहाँ तत्त्व की भूल है और '**छलं**' (नहीं) खोजना यह बात वहाँ नहीं है। वहाँ तो बापू! मैं जो आत्मा के अनुभव की बात करता हूँ... '**जदि दाएज्ज पमाणं**' '**तं एयत्तविहत्तं**' स्वभाव की एकता और विकल्प की पृथक्ता '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' मेरे वैभव से मैं कहूँगा। अब कहूँगा तो आया दूसरे पद में। '**दाएहं**' तथापि तीसरे पद में लिया '**जदि दाएज्ज पमाणं**' आहाहा! जो धारा आयी... आहाहा! '**जदि दाएज्ज**' '**दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' मेरे निज वैभव से (कहूँगा)। अतीन्द्रिय स्वसंवेदन—भावलिंग, वह मेरा निज वैभव। आहाहा! उससे मैं समयसार कहूँगा। उसे तुम '**जदि दाएज्ज**' जो दिखाऊँगा। दिखाऊँगा ऐसा तो पहले कहा दूसरे पद में। '**दाएहं अप्पणो सविहवेण**' परन्तु '**जदि**' यदि आया, दिखाऊँ (तो) प्रमाण करना। यह प्रमाण अर्थात् हाँ, ऐसा नहीं। आहाहा! अनुभव करके प्रमाण करना। आहाहा! छद्मस्थ पंचम काल के सन्तों की वाणी तो देखो! आहाहा! प्रभु! परन्तु कब? प्रवचनसार के पीछे है। आज। आहाहा! है? आज शब्द पड़ा है। तत्काल तो शीघ्र। वहाँ दो गाथा प्रवचनसार में अन्त में है। आज। वह यहाँ कहते हैं कि मैं कहता हूँ, उसे प्रमाण करना, प्रभु! वायदा करना नहीं। वायदा करे वह बुरा है। आहाहा! प्रमाण करना। '**जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण**

घेत्तव्वं' किसी शब्द में, व्याकरण की भाषा में फेरफार आवे और तुझे उस व्याकरण का ख्याल हो, तुझे ऐसा लगे कि उसमें कुछ... वहाँ तू खड़ा नहीं रहना। मेरा हेतु जो कहने का है, उसे तू लक्ष्य में लेना। कोई व्याकरण की और शब्द की भाषा में फेरफार आवे और तुझे उस प्रकार का ज्ञान हो तो तुझे ख्याल में आवे कि यहाँ भूलते हैं (तो) उस पर लक्ष्य नहीं रखना। आहाहा!

हम कहते हैं, उस भाव में भूल नहीं है। भगवान की वार्ता में भगवान में भूल नहीं होती। आहाहा! यह शब्दों के व्याकरण के नियम में कोई फेरफार आवे (परन्तु) मेरा जोर वहाँ है अनुभव में। यह व्याकरण के शब्दों की शैली ऐसी और यह और ऐसी, वह मेरा लक्ष्य नहीं है। आहाहा! तो उसका ध्यान नहीं रखना। वह तो शब्द की शृंखला में व्याकरण के भेद में लक्ष्य न रखना, यह बात की है। परन्तु तत्त्व की भूल हो और कहे लक्ष्य में नहीं लेना—ऐसा नहीं, बापू! आहाहा! कल तो यह डाला है। भाई!

यहाँ तो परमात्मा अखण्डानन्द प्रभु, जैसे रात्रि का नाश होकर प्रभात उगता है... आहाहा! उसी प्रकार अज्ञान का नाश होकर प्रभु चैतन्य के प्रकाश से सुप्रभात से प्रकाशित होता है। आहाहा! यह सुप्रभात अब फिर गिरनेवाला नहीं है, कहते हैं। आहाहा! यह सुप्रभात उगा, सो उगा। आहाहा! यहाँ अप्रतिहतभाव से बात चलती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! हम छद्मस्थ हैं, इसलिए हमारे पर तू ऐसा नहीं मानना कि यह अल्पज्ञ हैं, इसलिए कुछ वापस गिर भी जाये, भ्रष्ट भी हो जाये। ऐसा नहीं मानना, बापू! ओहोहो! हम अल्पज्ञ हैं परन्तु हैं हम केवलज्ञान के पथानुगामी। आहाहा! और हम इस धारा से केवलज्ञान लेनेवाले हैं। आहाहा! अटूट अप्रतिहतभाव से बात करते हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी तो देखो! आहाहा! अरे! उसकी गहराई में क्या-क्या भरा है! आहाहा! उसके तल में वाणी के अन्दर तल में... आहाहा! कैसे भाव भरे हैं! ऐसी बात कहीं नहीं है, प्रभु! दूसरे को दुःख लगे कि हमारी बात को मान्य नहीं रखते। प्रभु! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जैसे रात्रि टलकर सबेरे प्रकाश होता है... आहाहा! उसी प्रकार मिथ्या भ्रम और उस प्रकार के राग-द्वेष का नाश होकर चैतन्य के स्वभाव में से जहाँ निधान उछलते हैं... आहाहा! वह रत्न का ढ़ेर डग अन्दर उछलता है। जो

अशुद्धता को तो टालकर खड़ा होता है। कर्म का टलना तो उसके कारण से है। वह कहीं आत्मा के कारण से नहीं है। समझ में आया? वह **अशुद्ध परिणति को मेटकर (शुद्धत्व परिणाम) विराजमान जीवद्रव्य प्रगट होता है।** आहाहा! भाषा कैसी प्रयोग की है! शुद्ध जीव अज्ञान का नाश करके और सम्यग्दर्शन-ज्ञान के प्रकाशरूप से विराजमान होता है। आहाहा! उसके आसन अब बदल गये हैं, कहते हैं। जो राग में आसन थे, वह निर्मल में आसन लगा दिये। आहाहा! उदासीन शब्द है न? उदासीन का अर्थ यह है—राग से हटकर उदासीन—अपने स्वरूप में आसन डालना। वहाँ स्थिर होना, दृष्टि करना और स्थिर होना। इसका नाम उदासीन है। समझ में आया? आहाहा!

द्रव्य के परिणामरूप अतीन्द्रिय सुख के कारण... आहाहा! कहते हैं कि प्रभु स्वयं अपने निर्मल परिणाम में विराजमान हुआ, तो अतीन्द्रिय आनन्द लेता हुआ विराजमान हुआ है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की यह वाणी है, भाई! सन्त तो आड़तिया हैं। दिगम्बर सन्त तो आड़तिया हैं। माल सर्वज्ञ के घर का, वह पूर्णरूप से प्रगट नहीं हुआ तो भी पूर्ण स्वरूप का आश्रय प्रगट हुआ, इसलिए हम पूरे हैं। समझ में आया? आहाहा! लो! यह नूतन वर्ष! यह सुप्रभात कहलाता है, बापू!

भगवान! तू भगवान है न! आहाहा! तू हीन न मान। यह तो कहा नहीं था? कल और प्रतिदिन कहते हैं। 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन। परन्तु मतमदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' 'घट घट अन्तर जिन बसे...' यह जिन भगवान यहाँ है और बाहर है, वे नहीं। इस देहघट में भगवान अन्दर विराजता है जिन जिनस्वरूप विराजता है। अरे! कैसे बैठे? आहाहा! पामरता की पर्याय का स्वीकार करनेवाला... कल एक भाई बोले थे न कि हमको-पामर को प्रभु कहते हैं। तब चन्दुभाई कहे, प्रभु को प्रभु कहते हैं, ऐसा कहो। बोले थे न? पामर नहीं। पर्याय में पामरता, वह कहीं तू नहीं। आहाहा! जाने, ज्ञान में जाने। यह 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में लिया है कि मुनि धर्मात्मा अपने स्वरूप की परिणति को जानते हैं। परन्तु स्वयं तृण जैसी (जानते हैं)। कहाँ केवलज्ञान और कहाँ यह? ऐसा देखने पर उसे तृण जैसा

देखते हैं। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में (आता है)। आहाहा! तथापि उस प्रभुता को भूलते नहीं। आहाहा!

एक बार पोरबन्दर में था। उपाश्रय में बैठे थे। उसमें एक लड़की उसकी माँ के हाथ से खिसक गयी। थोड़ी-सी आगे चली गयी और कुछ हाथ नहीं आयी। अब पुलिस आयी। लड़की को पूछे, तू कहाँ की है? किस मोहल्ले की? मेरी माँ। तेरा नाम क्या? मेरी माँ। एक ही बात। उपाश्रय के साथ में पुलिस आयी और वह लड़के रोवे... रोवे... रोवे... रोवे... उसकी माँ के हाथ से छूट गयी और माँ कहीं चली गयी। तेरी सखी कौन? ऐसा करके किसी गाँव की, बाई, लड़की, सहेली हो तो पहिचाने। वह (कहे), मेरी माँ। उसी प्रकार धर्मी को मेरा नाथ परमपारिणामिकस्वभाव, वह मेरा है। समझ में आया? आहाहा! उसकी दृष्टि में पारिणामिकभाव का एक समय विरह पड़ता नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा...

कहते हैं, **आकुलता से रहितपना...** आनन्दरूप से प्रगट होता है। आहाहा! सुप्रभात। आहाहा! यह सुप्रभात। सम्यग्दर्शन होने पर आनन्द को साथ लेकर प्रगट होता है। केवलज्ञान होने पर अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द की पूर्णता को लेकर केवलज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया?

अरेरेरे! इसने कभी की नहीं, स्व की दरकार की नहीं। बाहर में जरा शरीर मिला, पैसे मिले और कुछ जानपने का उघाड़ हुआ, वहाँ हो गया, फटा प्याला अन्दर से। आहाहा! भगवान! तू कौन है? भाई! तेरा ज्ञान तो अन्तर के स्वभाव में से प्रस्फुटित होकर आवे, तब ज्ञान कहलाये। आहाहा! उस ज्ञान को यहाँ कहते हैं कि आनन्दसहित आता है। अकेला शास्त्रज्ञान ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़े, (परन्तु) वह दुःखरूप ज्ञान है। आहाहा! वह ज्ञान अन्तर के स्वभाव के आश्रय से रात्रि टलकर प्रकाश सुप्रभात हुआ। उसी प्रकार अनादि का अज्ञान टलकर भगवान का प्रकाश बाहर आया। प्रकाश तो था ही अन्दर। बाहर आया। आहाहा! उसकी पर्याय में प्रकाश आया। वह आनन्द लेता आया, कहते हैं। अकेला प्रकाश नहीं। वह चैतन्य का ज्ञान हुआ, वह अकेला ज्ञान नहीं, साथ में आनन्द लेता आया है। यहाँ है न?

अतीन्द्रिय सुख के कारण जो आकुलता से रहितपना उससे सर्व काल अमिट है... आहाहा! बदलेगा नहीं अब। यहाँ तो केवलज्ञान की बात ली है। पहले से सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, वह सुप्रभात हुआ। आहाहा! महापुरुष परमात्मा स्वयं, उसकी जिसे भेंट हुई श्रद्धा में। आहाहा! अब अमिट है। वह नहीं मिटेगा। वह नहीं बदलेगा। वह चारित्र की रमणता लेकर केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। आहाहा! यह श्रीमद् में आता है। २९ वें (वर्ष में)। समकित होने के पश्चात् तू कहे कि हमारे केवलज्ञान नहीं चाहिए। फिर नहीं चलेगा। लालचन्दभाई! उसमें है। २९वीं छाया में है। आहाहा! तूने महाप्रभु को स्वीकार किया दर्शन में, श्रद्धा में, प्रतीति में, ज्ञान में, अब (तू कहेगा कि) हमारे केवलज्ञान नहीं चाहिए। नहीं चलेगा, केवलज्ञान लेना ही पड़ेगा। दूज उगी तो पूर्णिमा होगी ही। वह दूज अब वापस नहीं फिरेगी। आहाहा! इसी प्रकार बोधिबीज भगवान पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति ज्ञान में भान होकर हुई... आहाहा! वह दूज वापस नहीं फिरेगी। वह दूज केवलज्ञान की पूर्ण (होगी)। पूनम अर्थात् पूर्ण। सोलह कला खिले तब पूर्णिमा कहलाती है। अमावस्या की भी एक कला तो खिली ही होती है वह। एकम् की, दो और दूज के दिन तीन कला होती है। पूर्णिमा को सोलह कला होती है। इसी प्रकार आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, कहते हैं कि सम्यग्दर्शन उगे, वहाँ तीन कला इकट्ठी-साथ में है, एक कला नहीं।

मुमुक्षु : दूज की तीन कला अर्थात् यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन कला। क्योंकि एक कला तो सदा खुल्ली ही होती है। अमावस्या हो तो भी चन्द्र की एक कला तो खुली ही होती है। आहाहा! चाहे जितना आवृत्त हो जाये तो भी अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़ तो निगोद में भी रहता है। आहाहा! समझ में आया? जिसे दूसरे 'आत्मा है' ऐसा स्वीकारना भी मुश्किल पड़े। यह सम्प्रदाय में कहते थे। कि भगवान आत्मा जितना है, उतना न मानकर उसे लांछन लगाये, अभ्याख्यान दे, वह रागवाला है, पुण्यवाला है, पापवाला है, यह लांछन चढ़ाया तूने। आत्मा को लांछन दिया है। लांछन दिया, वह मरकर निगोद में जायेगा तो दूसरे जीव उसे मानेंगे नहीं, ऐसी स्थिति में वह जायेगा। आहाहा! क्योंकि तूने इतना बड़ा प्रभु था, उसे माना नहीं और तूने अनादर किया। आहाहा! तूने स्वीकार नहीं किया, अनादर

करके। हम कुछ ज्ञानी हैं, हम धर्मी हैं और हम जानते हैं। प्रभु! यह दशा तेरे स्वीकारने में नहीं आयी तो ऐसी स्थिति में तू जायेगा कि लोग 'जीव है' ऐसा स्वीकार नहीं करेंगे। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं '**(-अटल) है... 'अस्खलित'** शब्द लिया है न? '**अस्खलित' अमिट है, तद्रूप सर्वस्व जिसका...** आहाहा! यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्रगट हुआ, वह अमिट है। आहाहा! यहाँ तो पूर्ण की बात की है। परन्तु उस पूर्ण को यहाँ पूर्ण का जो अंश है, वह सब एक ही जाति है। वह अवयवी का अवयव है। केवलज्ञान है, वह अवयवी है और मति-श्रुतज्ञान उसका अवयव है। एक अवयव को देखने से उसे अवयवी कितना, यह भी उसके ज्ञान में आ गया है। आहाहा! समझ में आया? और धवल में तो ऐसा कहा है, यह जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान जो प्रगट हुआ—अवयव, वह केवलज्ञान को बुलाता है। आहाहा! ऐई! आओ आओ, भाई! कहाँ मार्ग है? ऐसे मति और श्रुतज्ञान जहाँ सम्यक् कला खिली... आहाहा! वह धवल में पाठ है। वह केवलज्ञान को बुलाता है। आओ, भाई! आओ, अल्प काल में।

मुमुक्षु : चला आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चला आता है। आहाहा! लालचन्दभाई! आहाहा! वहाँ ऐसा पाठ है कि बुलाता है। हे अवयवी! पूर्ण केवलज्ञान! मुझे वर्तमान परोक्ष है। परन्तु मैं तुझे बुलाता हूँ। आओ अब झट। यह बीच की अपूर्णता छोड़ दे। आहाहा! देखो! यह छद्मस्थ सन्तों की वाणी के... आहाहा! जोर तो देखो जोर! आहाहा! जिसे सुनकर पावर फट जाये अन्दर से। कायर का कलेजा कँप उठे परन्तु वीरों का वीर प्रस्फुटित हो। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह नूतन वर्ष। ३४वाँ वर्ष लगा न?

मुमुक्षु : अच्छी बोणी...

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छी बोणी हुई। लो! हमारे चन्दुभाई कहते हैं, अच्छी बोणी हुई। आहाहा! हर समय सुप्रभात पढ़ते थे, परन्तु अपने यहाँ '**अच्छाच्छाः**' आया और उसके साथ मिलान कर दिया।

अब अपने चलता है वह। '**अच्छाच्छाः' निर्मल से भी निर्मल है।** आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश का पुंज प्रभु जलहल ज्योति से चैतन्य प्रकाशित होता है, उसका जहाँ भान हुआ, वहाँ पर्याय में प्रकाश '**अच्छाच्छाः**' निर्मल... निर्मल... निर्मल की धारा बहती है। निर्जरा अधिकार है न? निर्मल की निर्मल बढ़ती है, वह निर्जरा है न? शुद्ध-शुद्ध। शुद्धि की वृद्धि। आहाहा! दिगम्बर सन्तों के कलश, उनकी गाथा क्या कहें? आहाहा! जिसने भगवान का विरह भुलाया है। केवलज्ञान का विरह जिसने भुलाया, ऐसी सन्त की वाणी है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **भावार्थ इस प्रकार है—कोई ऐसा मानेगा कि जितनी ज्ञान की पर्याय हैं, वे समस्त अशुद्धरूप हैं,...** कोई ऐसा मानेगा। **सो ऐसा तो नहीं, कारण कि जिस प्रकार ज्ञान शुद्ध है, उसी प्रकार ज्ञान की पर्याय वस्तु का स्वरूप है,...** यह ज्ञान जैसे त्रिकाली स्वभाव, त्रिकाली ज्ञानस्वभाव शुद्ध है, वैसे जो मति-श्रुतादि प्रगट हुए हैं, वह नाम भले (न दो) परन्तु उनकी जो पर्याय प्रगट हुई है, वह शुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा की वर्तमान दशा में जो ज्ञान की, शान्ति की, आनन्द की, अनन्त गुण की जो पर्याय प्रगट हुई है, वह शुद्ध है। पर्याय है; इसलिए भेद है, इसलिए अशुद्ध है—ऐसा नहीं है। शुद्ध है। मात्र अन्तर कितना? यह कहते हैं।

उसी प्रकार ज्ञान की पर्याय वस्तु का स्वरूप है, इसलिए शुद्धस्वरूप है। परन्तु... अब शुद्ध को सिद्ध करते हैं। **एक विशेष—पर्यायमात्र का अवधारण करने पर विकल्प उत्पन्न होता है,...** इतनी बात। बाकी है तो पर्याय शुद्ध। परन्तु पर्यायमात्र (के ऊपर) लक्ष्य जाने से उसे राग की उत्पत्ति होती है। आहाहा! शुद्धपर्याय के भेद पर लक्ष्य जाने से भी राग होता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इसमें पक्ष कहाँ है? इसमें वाड़ा कहाँ है? यह तो स्वरूप ही जहाँ ऐसा है। पश्चात् ढेढ हो, भंगी हो, कोली हो या... आत्मा कहाँ अन्दर भंगी है? वह तो भगवानस्वरूप विराजता है नाथ। आहाहा! यह कहे, तुम्हारा यह मत है, यह दिगम्बर का। वह कहे, हमारा यह मत है श्वेताम्बर का। बापू! रहने दो भाई! यह तो स्वभाव का जैसा स्वरूप है, उसका मत है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... एक ही अभेद।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, दृष्टि में यह चीज़ अलौकिक, बापू! आहाहा! उसके द्रव्य, गुण और पर्याय और उसकी पर्याय में अनन्त-अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। उस सामर्थ्य को स्वीकार करना। या तो अकेला द्रव्य-गुण स्वीकार करे और या अकेली पर्याय स्वीकार करे या अकेली पर्याय में अनन्त अविभागप्रतिच्छेद (उसे स्वीकार करे)। वस्तु क्या है उसकी खबर न हो। आहाहा! वह तो सम्प्रदाय में तो अभी तपस्यायें करो, अपवास करो। बस, यह हो गयी तपस्या और यह हो गयी निर्जरा। ब्रह्मचर्य लो, पति-पत्नी को जहाँ हो गया। धूल भी नहीं अब यह तो। ब्रह्मचर्य, वह तो एक शुभभाव है। ब्रह्मचर्य कैसा वहाँ? आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आनन्द का चरना, आनन्द के स्वरूप में रमणता, उसका नाम परमात्मा ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारी कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो तेरे घर की बात है न, प्रभु! तू है, उसकी बात चलती है। यह कोई सम्प्रदाय है, वाडा है, ऐसा यह कुछ नहीं है। आहा! यह तो आत्मधर्म की बात है। आहा! उस पर्याय को लक्ष्य में लेने से-अवधारण करने से अर्थात् लक्ष्य में लेने से विकल्प उत्पन्न होता है।

अनुभव निर्विकल्प है,... आहाहा! ऐसे भेद पर आश्रय जाने से विकल्प उत्पन्न होता है और अन्तर में एकाग्र होने पर निर्विकल्पता होती है। क्योंकि अनुभव में उस भेद का विकल्प और आश्रय है नहीं। **इसलिए वस्तुमात्र अनुभवने पर समस्त पर्याय भी ज्ञानमात्र है,...** आहाहा! चाहे तो मति हो। अरे! अक्षर के अनन्तवें भाग का हो। है तो मति न? और है तो ज्ञान की पर्याय न? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में कहा है कि उघाड़ है, वह केवलज्ञान का अंश है। क्योंकि अंश है, वह बढ़कर केवलज्ञान होता है। और साथ में यदि चारित्र का अंश शुद्ध न हो तो यह शुद्ध है, वह बढ़कर केवल हो और शुद्ध का अंश यदि साथ में न हो तो अशुद्धता बढ़कर यथाख्यात होगा? आहाहा! इसलिए शुभयोग में भी एक शुद्धता का अंश गर्भित है। दो अस्ति सिद्ध करना है न? ज्ञान का अंश ज्ञान को पूर्ण करेगा। चारित्र का शुद्ध अंश वह यथाख्यात को पूर्ण करेगा। परन्तु यदि बिल्कुल अंश शुद्ध ही न हो तो अशुद्धता की सामर्थ्य नहीं कि अशुद्धता आगे जाकर चारित्र को प्राप्त करे। इसके लिये सिद्ध किया। परन्तु किसे? ग्रन्थीभेद हुआ उसे वह शुद्धता का अंश काम करता है। आहाहा! बहुत सरस लिखा है। आहाहा! जिसने राग की एकता तोड़ी है। ग्रन्थि अर्थात् गाँठ... आहाहा! और ग्रन्थिभेद किया है, उसे

वह शुद्ध का अंश काम करेगा। आहाहा! ग्रन्थिभेद बिना का शुद्ध का अंश है, परन्तु वह कार्य नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **वस्तुमात्र अनुभवने पर समस्त पर्याय भी ज्ञानमात्र है, इसलिए ज्ञानमात्र अनुभवयोग्य है।** आहाहा! आत्मा ज्ञानमात्र ज्ञानस्वरूप चैतन्यचन्द्र, जिनचन्द्र। जिन, वह आत्मा, वह शीतलता का चन्द्र है। **ज्ञानमात्र अनुभवयोग्य है।** आहाहा! **और कैसी है संवेदनव्यक्ति?** यह संवेदनव्यक्ति का कल अर्थ किया था। भाग। जैसे समुद्र का भाग है कि उत्तर का समुद्र, पश्चिम का समुद्र, परन्तु समुद्र का वह भाग है। उसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन की निर्मल दशा पर्याय में प्रगट हुई है, वह उसका भाग है। राग उसका भाग नहीं। व्यवहाररत्नत्रय राग है, वह उसका भाग नहीं। वह उसका स्वरूप नहीं, इसलिए स्वरूप का वह अंश भी नहीं। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन—प्रतीति और ज्ञान जो स्वभाव के आश्रय से हुए, वे तो शुद्ध और उसका स्वरूप ही वह है। समझ में आया? वह संवेदन उसका भाग है। आहाहा! लोग ऐसा नहीं कहते? मुझे मेरा भाग दिया? मेरा भाग रखा? इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि मेरा भाग अर्थात् शुद्ध चैतन्यघन में से श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति निकाली, वह उसका भाग है। मेरा भाग मुझे मिला। मेरा यह भाग है। आहाहा! बाकी लड्डू और बड्डू और अमुक, ढ़ीकणा के भाग करे। आहाहा!

और कैसी है संवेदनव्यक्ति? 'निःपीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ताः इव' आहाहा! **'इव'** उपमा है न? **निगला है समस्त...** जिसकी पर्याय में समस्त छह द्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान हो गया है। वह तो श्रुतज्ञान की पर्याय में भी छह द्रव्य का ज्ञान हो जाता है। मात्र परोक्ष है इतना। उस पर्याय का-ज्ञान का ही इतना स्वभाव है। निर्मल प्रगट हुई पर्याय, वह पर्याय द्रव्य-गुण को पूर्ण को और वह पर्यायें त्रिकाली पर्याय को एक पर्याय जानती है, भविष्य की अनन्त होनेवाली है, उसे वह जानती है, कहते हैं। उस पर्याय की इतनी सामर्थ्य है कि अनन्त पर्याय जो होनेवाली है फिर, श्रुतज्ञान की और केवलज्ञान की (उसे जानती है)। आहाहा!

मुमुक्षु : जामी इसीलिए ही बोला जाता है न गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है और उसकी है, कहते हैं। यहाँ तो कहना है कि श्रुतज्ञान की पर्याय में केवलज्ञान की पर्याय ज्ञात हो जाती है।

मुमुक्षु : बुलाने नहीं जाता?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञात हो जाती है इसलिए बुलाता है। ज्ञात हो जाती है। आहाहा! उस पर्याय में कमी क्या हो, भाई! आहाहा! जिसमें पूरा द्रव्य और गुण ज्ञात हो गया। द्रव्य और गुण पर्याय में आये नहीं, परन्तु ज्ञात हो गया। न्यूनता नहीं रही और अपनी भी त्रिकाली पर्यायें ज्ञात हुईं। न ज्ञात हो तो एक द्रव्य को ही जाना नहीं। आया है न? प्रवचनसार में आया है। एक को जाने, वहाँ सर्व को जाने। क्योंकि वह स्वयं त्रिकाली पर्यायवाला पूरा तत्त्व है, उस एक को जब जाने, तब उसकी पर्याय भविष्य की जो है, उसमें तीनों काल ज्ञात हो, उस एक को जाने तो सबको जानता है। आहाहा! समझ में आया?

'अखिल' समस्त छह जीव (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश) ऐसे समस्त द्रव्य उनका अतीत, अनागत, वर्तमान, अनन्त पर्याय ऐसा है रसायनभूत दिव्य... आहाहा! रसायन पीने से जैसे पावर फटता है और अन्दर में तरंग उठती है, ऐसा कहते हैं। उसी प्रकार इस पर्याय में रसायन है वह। केवलज्ञान उसमें ज्ञात हो जाता है। तीन काल तीन लोक ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा! यह विशेष कुछ है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ३, रविवार, दिनांक-१३-११-१९७७, कलश-१४१-१४२, प्रवचन-१४८

कलशटीका, निर्जरा अधिकार। १४१ है न अन्तिम? **'अखिल' समस्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश...** उसमें जीव में अनन्त केवली भी आये, अनन्त निगोद के जीव भी आये। पंच परमेष्ठी भी केवलज्ञान की पर्याय में आये। तो कहते हैं, ऐसे छह द्रव्य का, **समस्त द्रव्य उनका... 'मण्डल' 'मण्डल'** अर्थात् भूत-भविष्य-वर्तमान समस्त पर्यायों का समूह। **रसायनभूत दिव्य औषधि...** आहाहा! यह दृष्टान्त दिया है। कि जैसे रसायन पीकर तरंग उठती है, वैसे जिसकी पर्याय में तीन काल तीन लोक की पर्यायें ज्ञात हो जाती हैं, उसे ज्ञान की तरंग के साथ अनन्त आनन्द की तरंग उठती है। रसायन पीकर जैसे मत और मस्त हो जाता है, वैसे आत्मा के ज्ञान की पर्याय—पूर्ण की बात न? छह द्रव्य और उसके गुण अनन्त और उनकी पर्यायें, उन सबका मण्डल, मण्डल वह। मण्डल नहीं कहते? मण्डल अपने यहाँ कहते हैं न? मण्डल अर्थात् समूह। तीन काल—तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय के समूह, जिसकी ज्ञान की पर्याय में मग्न हो गये हैं। ज्ञात हो गये हैं। रसायन और औषधि पीकर जैसे मस्त हो जाये, वैसे तीन काल—तीन लोक की पर्यायें जानकर आनन्द की, अतीन्द्रिय आनन्द की मस्त हो जाती है। अतीन्द्रिय ज्ञान तो है परन्तु साथ में अतीन्द्रिय आनन्द से मस्त हो जाता है। आहाहा! है?

रसायनभूत दिव्य औषधि उसका समूह उसके द्वारा... 'मत्ताः इव' 'मग्न हुई है,... आहाहा! जिसकी पर्याय में... यहाँ निर्जरा अधिकार है न? जिसे अन्तर आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप का ध्यान करते-करते ज्ञान को ध्येय बनाकर, जिसने ज्ञान का—आत्मा का आश्रय लिया है, उस आश्रय के कारण, उसे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। निर्जरा से केवलज्ञान होता है, ऐसा कहना है। आहाहा! उस केवलज्ञान में तीन काल की पर्याय का मण्डल अर्थात् समूह, एक समय की पर्याय में रसायन की भाँति आनन्द के रस के साथ ज्ञान की पर्याय मग्न हो गयी है। आहाहा! देखा! यह पर्याय केवलज्ञान और उसका उपाय निर्जरा। उसका फल यह केवलज्ञान। ऐसा बतलाना है न? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—कोई परम रसायनभूत दिवय औषधि पीता है तो सर्वांग

तरंगावलि सी उपजती है,... आँख, शरीर ऐसा जाने तरंग उठे अन्दर। **उसी प्रकार समस्त द्रव्यों के जानने में समर्थ है ज्ञान,...** केवल (ज्ञान) **इसलिए सर्वांग आनन्द-तरंगावलि से गर्भित है।** ऐसा कहना है। आहाहा! एक समय का केवलज्ञान, अनन्त आनन्दगर्भित तरंगावलि से उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का रस अन्दर प्रस्फुटित होता है। चैतन्य में जो अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण अपरिमित स्वभाव भरा है, वह केवलज्ञान की पर्याय के काल में उस पर्याय में अनन्त आनन्द का रस रसायन जगता है। आहाहा! ऐसा उस केवलज्ञान का स्वभाव है। वह निर्जरा से होता है। अब विशेष लेते हैं।

कलश-१४२

(शार्दूलविक्रीडित)

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि।।१०-१४२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'परे इदं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना प्राप्तुं कथं अपि न हि क्षमन्ते' [परे] शुद्धस्वरूप अनुभव से भ्रष्ट हैं जो जीव, वे [इदं ज्ञानं] पूर्व ही कहा है समस्त भेदविकल्प से रहित ज्ञानमात्र वस्तु, उसको [ज्ञानगुणं विना] शुद्धस्वरूप अनुभवशक्ति के बिना, [प्राप्तुं] प्राप्त करने को [कथं अपि] हजार उपाय किये जायें तो भी, [न हि क्षमन्ते] निश्चय से समर्थ नहीं होते हैं। कैसा है ज्ञानपद? 'साक्षात् मोक्षः' प्रत्यक्षतया सर्वथा प्रकार मोक्षस्वरूप है। और कैसा है? 'निरामयपदं' जितने उपद्रव-क्लेश हैं, उन सबसे रहित है। और कैसा है? 'स्वयं संवेद्यमानं' [स्वयं] आपके द्वारा [संवेद्यमानं] आस्वाद करनेयोग्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानगुण, ज्ञानगुण के द्वारा अनुभवयोग्य है। कारणान्तर के द्वारा, ज्ञानगुण ग्राह्य नहीं। कैसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि? 'कर्मभिः क्लिश्यन्तां' विशुद्धशुभोपयोगरूप परिणाम, जैनोक्त सूत्र का अध्ययन, जीवादिद्रव्यों के (तत्त्वों के) स्वरूप का बारंबार स्मरण, पञ्च परमेष्ठी की भक्ति इत्यादि हैं जो अनेक क्रियाभेद, उनके द्वारा [क्लिश्यन्तां] बहुत आक्षेप [घटाटोप] करते हैं तो करो, तथापि शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होगी, सो तो शुद्धज्ञान द्वारा होगी। कैसी है करतूति? 'स्वयं एव दुष्करतरैः' [स्वयं एव] सहजपने [दुष्करतरैः] कष्टसाध्य है। भावार्थ इस प्रकार है जितनी क्रिया हैं, वे सब दुःखात्मक हैं। शुद्धस्वरूप अनुभव की नाईं, सुखस्वरूप नहीं हैं। और कैसी है? 'मोक्षोन्मुखैः' [मोक्ष] सकल कर्मक्षय, उसकी [उन्मुखैः] परम्परा-आगे मोक्ष का कारण होगी, ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है सो झूठा है। 'च' और कैसे हैं मिथ्यादृष्टि जीव? 'महाव्रततपोभारेण चिरं भग्नाः क्लिश्यन्तां' [महाव्रत] हिंसा, अनृत, स्तेय, ब्रह्म, परिग्रह से रहितपना, [तपः] महा-परीषहों का सहना, उनका [भार] बहुत बोझ, उसके द्वारा [चिरं] बहुत काल पर्यन्त [भग्नाः] मरके

चूरा होते हुए [क्लिश्यन्तां] बहुत कष्ट करते हैं तो करो, तथापि ऐसा करते हुए कर्मक्षय तो नहीं होता।।१०-१४२।।

कलश - १४२ पर प्रवचन

१४२ कलश। सूक्ष्म आया जरा। लोगों को अभी कठिन पड़ता है न!

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि।।१०-१४२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'परे इदं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना प्राप्तुं कथं अपि न हि क्षमन्ते' जिसे यह आत्मा शुद्ध स्वरूप पवित्र है, उसका सम्यग्दर्शन नहीं और अनुभव नहीं। आहाहा! वस्तु शुद्ध चैतन्य आनन्ददल, जिसके ध्रुव में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता (भरी है), ऐसी जो वस्तु, उसका जिसे पर्याय में अनुभव नहीं अर्थात् कि अनुभव की शक्ति जिसने प्रगट नहीं की। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके **अनुभव से भ्रष्ट है...** शुद्ध स्वरूप का अनुभव नहीं। राग की रुचि में पड़े हैं। आहाहा!

जो जीव वे... 'इदं ज्ञानं' पूर्व ही कहा है समस्त भेदविकल्प से रहित ज्ञानमात्र वस्तु... भगवान तो ज्ञानमात्र आत्मा है। चैतन्यचन्द अकेला... चन्द्र क्यों कहा? कि चैतन्य शीतल ज्ञान से भरपूर है। आहाहा! शीतल, ठण्डा... ठण्डा उपशमरस। उपशमरस से भरपूर ज्ञान, ऐसा जो भगवान आत्मा, वह **ज्ञानमात्र वस्तु उसको... 'ज्ञानगुणं विना' शुद्धस्वरूप अनुभवशक्ति के बिना...** वह ज्ञानस्वरूपी भगवान, उसके ज्ञानस्वरूप के अनुभव बिना उसे पा नहीं सकते। आहाहा! और उसे **अनुभवशक्ति के बिना प्राप्त करने को... 'कथं अपि' हजार उपाय किये जायें...** आहाहा! कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति और तप को **'कथम् अपि'** किसी भी प्रकार से अनन्त-अनन्त किये जायें। आहाहा! तो भी वह भगवान आत्मा उनसे प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में

आया ? वह चैतन्य की लहर से भरपूर भगवान, चैतन्य के स्वभाव से ही वह प्राप्त होता है। वह राग की क्रिया '**कथम् अपि**' हजार क्या, लाख क्या, करोड़ हो, (उनसे प्राप्त नहीं होता)। आहाहा! छहढाला में कहा है न ? लाख। 'लाख बात की बात। लाख बात की बात निश्चय उर लाओ, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद एक आतम उर ध्याओ।' आहाहा! राग तो छोड़ परन्तु द्वंद्व—द्वैतपना—यह गुणी और गुण, ऐसा द्वैतपना भी द्वंद्व छोड़। आहाहा! 'लाख बात की बात...' यहाँ हजार कहा वहाँ लाख कहा, वहाँ अनन्त ले लेना। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्धचैतन्य पवित्र का पिण्ड प्रभु, उसके सन्मुख का चैतन्य का अनुभव, शुद्ध को अनुसरकर आनन्द का वेदन होना, उसके बिना अनेक उपाय करो तो भी वह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! '**कथम् अपि**' है न ? **हजार उपाय किये जायें तो भी निश्चय से समर्थ नहीं होते हैं।** वह आत्मज्ञान कर नहीं सकता। आहाहा! लाख मन्दिर बनावे, गजरथ चलावे, अरबों रुपये धर्मादे में मन्दिर खाते खर्च करे, करो, परन्तु उससे वस्तु प्राप्त नहीं की जा सकती। आहाहा! क्योंकि वस्तु में वह द्वैतपना, विकल्पपना भी नहीं जहाँ, ऐसी चीज़ को प्राप्त करने के लिये यह हजार, लाख, करोड़ क्रियायें करो। आहाहा! अभी यह कठिन पड़ता है। यहाँ तो '**क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः**' आहाहा! यह बाद में लेंगे। इसका अर्थ।

मुमुक्षु : जैनधर्म की बात यह दूसरी....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाद में लेंगे।

'**साक्षात् मोक्षः**' कैसा ? ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा का **प्रत्यक्षतया सर्वथा प्रकार मोक्षस्वरूप है। और कैसा है ? 'निरामयपदं'** आहाहा! **जितने उपद्रव-क्लेश हैं, उन सबसे रहित है।** यह पुण्य और पाप के, दया और दान के, व्रत और भक्ति के विकल्प, वे सब क्लेश हैं। आहाहा! उस क्लेश से प्रत्यक्षरूप से सर्वथा जितने उपद्रव क्लेश हैं, उन सर्व से रहित है। आहाहा! यह कठिन पड़ता है न ? यह प्राप्त करने का साधन क्या ? ऐसा कहते हैं। साधन राग से भिन्न करके प्रज्ञाछैनी उसका साधन है। आहाहा! परसन्मुख झुकते राग को स्वसन्मुख झुकती दशा द्वारा भिन्न करना। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू!

आहाहा! क्योंकि राग की दिशा पर के ऊपर है। राग की दिशा पर के ऊपर जिसकी दशा है और वीतरागी पर्याय की दशा उसकी दिशा द्रव्य के ऊपर है। समझ में आया? बात थोड़ी परन्तु भाव गहन है। आहाहा!

कहते हैं, **जितने उपद्रव-क्लेश हैं, उन सबसे रहित है।** आहाहा! **और कैसा है? 'स्वयं संवेद्यमानं'** यह भाषा है। **'स्वयं संवेद्यमानं'** रागादि है, वह तो परवस्तु विकार और विभाव है। उससे आत्मा स्व **'संवेद्यमानं'** हो नहीं सकता। इसलिए **'स्वयं संवेद्यमानं'** अपने आनन्द और ज्ञानस्वभाव से स्वयं वेदन में आ सके, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? यह कठिन पड़ता है न? वहाँ गये थे अगास, तो यह सब सुना घण्टे भर व्याख्यान। फिर कोई मारवाड़ी आया था। परन्तु यह सब ठीक निश्चय। इसका साधन? वह सर्वत्र साधन का विवाद आता है। ऐसा कहे कि यह भक्ति करना, पूजा करना, दया, दान और यह व्रत पालना, ब्रह्मचर्य पालना, वह सब साधन। साधन-फाधन है ही नहीं। आहाहा!

साधन तो साध्य का यह है कि राग से भिन्न करके स्वभाव में एकाग्र होना। एकत्व-विभक्त। स्वभाव में एकत्व होना और राग से विभक्त होना। यह तीसरी गाथा से शुरु किया है न? **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो'** यह पाँचवीं और **'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे'** आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप, वह अपने में एकत्व की प्राप्ति करे और राग से विभक्त हो। यह नास्ति से बात की और स्वभाव की अन्तर एकता करे, यह अस्ति से कही। वह जगत में सुन्दर है और वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसी बातें हैं। लोग बेचारे चिल्लाहट मचाते हैं। कल (ऐसा आया), यह सोनगढ़वाले चर्चा से इनकार करते हैं। उन्हें किसी के साथ बात नहीं करनी। अपना ही मार्ग चलाना है। साधु इतना इतना कहते हैं, वह बात एकान्त है, निश्चयाभास है। परन्तु किसी का सुनते नहीं। अरे! भगवान! बापू! भाई! तू कौन है, बापू! तुझे खबर नहीं। भाई! तू कोई ऐसे विकल्प की क्रिया के क्लेश से पाया जा सके, ऐसी चीज़ तू नहीं है। आहाहा! भाई! यह तो तेरे हित की बात है, नाथ! यह भाषा क्या है? देखो!

'स्वयं संवेद्यमानं' यह क्या कहते है? स्वयं अपने निर्मल स्वभाव से संवेद्यमान

दशा प्रगट करता है। आहाहा! राग और दया-दान और व्रत-भक्ति वह कहीं स्वयं नहीं, वह तो पर राग है, विकार है। आहाहा! निश्चय से तो उसे पुद्गल के परिणाम कहे हैं। उनसे अमृत के परिणाम, पुद्गल के परिणाम से कैसे प्रगट हों? भगवान अमृत का सागर अन्दर भरा है। आहाहा! वह अमृत के परिणाम द्वारा ही अमृत का सागर ज्ञात हो, ऐसा है। राग के परिणाम द्वारा उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। आहाहा! ऐसी बात तो स्पष्ट है। उसे श्रद्धा सुधारने में अभी दिक्कत आती है। इससे होता है, यह मिथ्यात्वभाव है। उससे नहीं होता। वह लाख क्रिया करे, ब्रह्मचर्य पूरी जिन्दगी पालन करे और अहिंसा—दया पालने का भाव महाव्रत सत्य आदि कहेंगे, सब करे, वह राग है। उससे आत्मा प्राप्त हो और धर्म हो, यह तीन काल-तीन लोक में नहीं है। परन्तु लोगों को ऐसा लगे, ऐसे हाथ जोड़ करे, ब्रह्मचर्य करे (पालन करे) इसलिए बस, हम अब तिर गये। ब्रह्मचर्य देनेवाला भी उसे ऐसा कहे, ओहोहो! बहुत अच्छा किया। भाई! वह तो सब राग की क्रिया है। तुझे खबर नहीं। ज्ञानस्वरूप भगवान में वृत्ति का उत्थान होना, वह तो जहर है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर का फरमान, हुकम है कि '**स्वयं संवेद्यमानं**' यह राग की लाख-करोड़ क्रिया कर तो उससे वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! '**स्वयं संवेद्यमानं' आस्वाद करनेयोग्य है।** आहाहा! अलिंगग्रहण में भी यह आया है न? छठवाँ बोल। छह बोल है न पहले। पहले चौदह, बीस। भगवान आत्मा इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। इन्द्रिय से जाने, वह आत्मा नहीं। इन्द्रिय को प्रत्यक्ष हो, वह आत्मा नहीं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष, वह स्वरूप ही आत्मा का नहीं। आहाहा! दूसरों के द्वारा अनुमान से ज्ञात हो, वह आत्मा नहीं। आहाहा! स्वयं भी अनुमान से पर को जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! फिर छठा अस्ति से योगफल लिया। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! वह यह—'**स्वयं संवेद्यमानं**'। शान्तिभाई! ऐसी कठिन बातें हैं, बापू! भाई! अरे! जन्म-मरण के अवतार कर करके दुःखी... दुःखी... दुःखी है। उसके दुःख देखनेवाले को देखने पर आँख में से धारावाही अश्रु बहे। ऐसे भी दुःख सहन किये हैं, भाई! इस मिथ्यात्व के कारण से। आहाहा! साधु हुआ, वह पंच महाव्रत पालन करे तो भी वह दुःख है। अरर!

मुमुक्षु : उसमें कुछ पोचा (ढीला) रखा जाये ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पोचा रखा जाये ऐसा है कि उससे कुछ लाभ नहीं होता यह। वे भाई कहते थे, आये थे न। हिम्मतभाई लाये थे। घासीलालजी है न? वहाँ मुम्बई में। कुछ स्वामीजी ढीला रखे और कुछ हम ढीला रखें। दोनों इकट्ठे हो जायें। यह कहीं वनियावड है?

बनिया किसान से पाँच हजार रुपये माँगता था। फिर निश्चित करने बैठे। तब बनिया को खबर पड़ी कि इसके पास दो हजार से तो अधिक नहीं है। भैंस-बैल बेचे तो भी दो हजार से अधिक नहीं होगे। उसको खबर पड़ी कि मेरे पास दो हजार से अधिक नहीं है। परन्तु बनिया कहे कि पाँच हजार में एक पाई कम लेना नहीं। वह कहे कि एक हजार के अतिरिक्त पायी मेरे पास नहीं। और करते-करते बनिया चार हजार में आया। वह बारह सौ में आया, वह तीन हजार में आया, वह पन्द्रह सौ में आया। ऐसा होगा उसमें कुछ? अन्त में पटेल ने कहा कि दो हजार के अतिरिक्त तो एक पाई मेरे पास साधन नहीं है। तो बनिया बेचारा कहे जाओ। कहो, ...भाई! ऐसी यहाँ बनियावड होगी? कि थोड़ा राग की क्रिया से भी होता है और स्वभाव के साधन से होता है, ऐसे दो प्रकार होंगे? बापू! 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' आहाहा! अरे! उसे श्रद्धा में भी यह बात रुचे नहीं, उसे कहाँ जाना है? भाई! उस विकार के रस के अनन्त रस में डोल गया है। आहाहा! वह दु:खी है। बाहर से भले ऐसा दिखाई दे कि पाँच-पचास लाख पैसा, शरीर रूपवान और धूल... महादु:ख के समुद्र में वह डूब गया है, भाई! तुझे खबर नहीं। वह आनन्द का सागर भगवान, उससे विरुद्ध जितने विकल्प हैं, वे सब दु:ख हैं। आहाहा! भाई! तुझे तेरे स्वभाव की शक्ति का माहात्म्य कितना है, यह तुझे खबर नहीं।

भगवान अन्दर अनन्त अनाकुल आनन्द के रस से भरपूर लबालब भरपूर भगवान है। आहाहा! वह आत्मा '**स्वयं संवेद्यमानं**' यहाँ अपने वजन इतना है। वह स्व शुद्ध स्वभाव के अनुभव से प्राप्त हो, ऐसा है। आहाहा! बाकी तो करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करे दान में, पूजा में, भक्ति में, मन्दिर बनाओ। चाहे जो हो, परन्तु उससे आत्मा प्राप्त हो, वह वस्तु का स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

'**स्वयं संवेद्यमानं**' आहाहा! **आपके द्वारा आस्वाद करनेयोग्य है।** आहाहा! भाषा कैसी? '**संवेद्यमानं**' का अर्थ किया। मूल तो पर्याय निर्मल स्वयं प्रगट होती है, उससे ज्ञात होता है, ऐसा कहना है। परन्तु यहाँ यह तो आस्वाद्यमान। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के आस्वाद से वह स्वयं प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का विशाल पर्वत.. आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का महा पाताल कुँआ है। भाई! उसे क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं। उसके स्वभाव में एक-एक प्रदेश में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान भरा है। ऐसा असंख्य प्रदेश में है। आहाहा! जिसका पाक अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आवे, वह उसका पाक है। आहाहा! बहुत कठिन शर्तें बहुत, जवाबदारी बहुत, भाई! पूरा पलटा मारना है न, भाई! जो राग की दिशा परसन्मुख है उस दिशा को स्वसन्मुख झुकाकर दशा प्रगट करनी... आहाहा! अभी बुखार है भाई को? बुखार आया है न? आहाहा! मुम्बईवाले। यह आत्मा जो है वस्तु, उसके तल में अनन्त आनन्द पड़ा है। उसके ध्रुव स्वभाव में अनन्त आनन्द है।

मुमुक्षु : तल में आनन्द कुछ ऊपर कैसे जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर पर्याय है। पर्याय में अभी कहाँ है? पर्याय में प्रगट करे तब आता है, ऐसा कहना है। इसलिए पर्याय में ज्ञान के उघाड़ का अंश है। परन्तु आनन्द नहीं है। अज्ञानी को अनादि से ज्ञान की पर्याय का अंश विकास क्षयोपशमरूप है परन्तु आनन्दरूप अवस्था है ही नहीं। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि वह आनन्द की अवस्था हो कब? वह आनन्द से भरपूर भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ स्व-स्वयं संवेद्यमान है। आहाहा! वह स्वयं ही अपने निर्मल स्वभाव के अनुभव से प्राप्त होता है। कोई राग की क्रिया व्यवहार व्रत, तप, भक्ति, पूजा या हिंसा, झूठ, वह पाप तो न ही हो, प्रश्न क्या है, परन्तु यह पुण्य की क्रियायें लाख-करोड़ करे। '**कथम् अपि**' कहा न? किसी प्रकार से लाख-करोड़-अरबों रुपये खर्च करे धर्म के नाम से, करोड़ों मन्दिर बनावे। लाखों अरबों शास्त्र बनावे, हजारों रानियाँ छोड़कर महाव्रत पालन करे, परन्तु उससे वह प्रभु प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

'**स्वयं**' शब्द पड़ा है। '**स्वयं' आपके द्वारा आस्वाद करनेयोग्य है।** भगवान जो

राग, दया, दान और व्रत परिणाम वह स्वयं स्वरूप नहीं, वह तो विकारी विभावस्वरूप है। वह तो दुःखरूप है। आहाहा! प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द की... आहाहा! शक्ति के सागर से भरपूर भगवान, उसकी वर्तमान दशा में शुद्ध अनुभव आनन्द की दशा से वह आस्वाद करनेयोग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? कहो, बलुभाई! यह तुम्हारे वर्षीतप-वर्षीतप वे सब थोथे निकले, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा जिसकी ऊपर पर्याय में राग और द्वेष आदि और लाख-करोड़ क्रियाकाण्ड करे, परन्तु वह आत्मा उससे प्राप्त हो, ऐसी चीज़ नहीं। वह तो स्वयं आस्वाद करनेयोग्य है। आहाहा! है? गजब बात है, भाई! वह ज्ञानस्वरूपी प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूपी स्वभाव, वह अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद करनेयोग्य है, जाननेयोग्य है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का आस्वाद करनेयोग्य है। उससे ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानगुण, ज्ञानगुण के द्वारा अनुभवयोग्य है। भाषा देखो! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, वह ज्ञानस्वरूप से ज्ञात होनेयोग्य है। है? **ज्ञानगुण, ज्ञानगुण के द्वारा अनुभवयोग्य है।** आहाहा! ज्ञानस्वभाव वह व्यवहार के क्रियाकाण्ड से अनुभव में आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह लोगों को कठिन पड़ता है। इसलिए फिर विरोध खड़ा करते हैं। करते हैं तो उनका विरोध वे। आहाहा! प्रभु! तुझे खबर नहीं। भाई! तेरा नाथ तो भगवत्स्वरूप है। आहाहा! तू स्वरूप से भगवत्स्वरूप है। आहाहा! वह भगवत्स्वरूप, भगवत्स्वरूप की पर्याय से प्राप्त हो ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह ज्ञानगुण, ज्ञानगुण के बिना अनुभवयोग्य नहीं है। **ज्ञानगुण, ज्ञानगुण के द्वारा अनुभवयोग्य है। कारणान्तर के द्वारा ज्ञानगुण ग्राह्य नहीं।** भाषा देखो! कारण-अन्तर। यह कारण है, इसके अतिरिक्त अन्य द्वारा ज्ञानगुण ग्राह्य नहीं है। भगवान आत्मा वर्तमान में उसके सन्मुख होने पर जो निर्मल आनन्द और निर्मल ज्ञान ज्ञात हो, उससे वह आस्वादयोग्य और ज्ञात होनेयोग्य है। कारणान्तर—इस कारण के अतिरिक्त अन्य कारण, इस कारण के अतिरिक्त अन्य कारण—कारणान्तर। भगवान आत्मा राग से भिन्न

प्रज्ञाछैनी से छेदकर भिन्न करने से, वह भिन्न पड़ने से ज्ञात होनेयोग्य होता है। यह उसका कारण है। है न?

कारणान्तर के द्वारा... इस कारण से अन्य द्वारा, ऐसा। इस कारण से अन्य कारण द्वारा **ज्ञानगुण ग्राह्य नहीं।** भगवान ज्ञात होनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अभी जिसकी श्रद्धा में सुधार नहीं, उसे समकित कब होगा? अनुभव कब होगा? अर्थात् क्या कहा है यह? अभी तो श्रद्धा में ऐसा माने कि यह दया, दान, व्रत और भक्ति करते-करते होगा। तो उस श्रद्धा के संस्कार मिथ्यात्व के उल्टे हैं वे तो। आहाहा! परन्तु अन्दर में राग से भिन्न पड़कर, मेरा स्वरूप तो शुद्ध चैतन्य है, वह स्वभाव से प्राप्त होगा, ऐसे श्रद्धा के संस्कार सुधारने में भी इसे दिक्कत होती है। प्रवीणभाई! आहाहा! भगवान! तेरा उद्धार तो वहाँ है, हों! वह दूसरे प्रकार से करने जायेगा तो नहीं मिलेगा, प्रभु! दुःखी होगा, भाई! यह चौरासी के निगोद के अवतार... आहाहा! एक अन्तर्मुहूर्त में अठारह भव, भाई! तूने सुने नहीं। आहाहा!

राग के प्रेमी जीव एक निगोद के एक श्वास में अठारह भव करते हैं। आहाहा! यह महिलायें इत्यादि इनके पास बहुत साड़ियाँ होती हैं न? दस, पाँच, पन्द्रह प्रकार की। तो एक दिन में बहुत बार बदले। दिशा को जाये तब दूसरी, सगे-सम्बन्धियों के यहाँ जाये तब दूसरी, चार बजे रोने जाये कोई मर गया हो न? वहाँ फिर दूसरी। भोगीभाई! यह तो सब देखा है न, हमने तो सब देखा है। इसका अर्थ कि जिसके ऊपर प्रेम है, उसकी बातें बदला ही करता है। जूते बदले। भावनगर दरबार के पास दो सौ जूते थे। मर गये। दो सौ जूते। दो सौ प्रकार के जूते। यहाँ घर में घूमे तब दूसरे, बाहर निकले तब दूसरे, दिशा को जाये तब दूसरे, कोर्ट में जाये तो दूसरे, ऑफिस में जाये तो दूसरे। यह दो सौ प्रकार के जूते।

यहाँ दूसरा कहना है। जिसके ऊपर प्रेम है, उस बात को बहुत बदला करता है। इसी प्रकार जिसे यह राग का प्रेम है, वह बारंबार भव बदला ही करता है। निगोद के जीव अन्तर्मुहूर्त में अठारह भव करे, प्रभु! भाई! तूने किये हैं, वह तू भूल गया। भूल गया, इसलिए कहीं वस्तु भूल जाये, इसलिए कुछ न हो, ऐसा हो जायेगा? आहाहा!

जन्मने के बाद छह-बारह महीने की खबर है, क्या हुआ यह ? खबर नहीं, इसलिए नहीं था—ऐसा कौन कहे ? इसी प्रकार अनन्त भव किये, वह कैसे है, इसकी खबर नहीं, इसलिए नहीं थे—ऐसा कैसे कहा जाये ? भाई ! ये निगोद के जीव... आहाहा ! एक श्वास में अठारह भव, ऐसे अनन्त बार किये हैं। आहाहा !

प्रभु तो यहाँ तक कहते हैं कि माता के गर्भ में भी प्रभु ! तू एक बार बारह वर्ष रहा, हों ! यह सवा नौ महीने में जन्म होता है, वह तो साधारण नियम। परन्तु कायस्थिति का वर्णन जहाँ आता है, (वहाँ ऐसा कहा है कि) माता के गर्भ में एक बालक बारह वर्ष तक रहे। उल्टे सिर वह लटकता हुआ दु:खी। और वहाँ से मरकर भी फिर से या तो उसकी माँ के गर्भ में आवे और या दूसरी माता के गर्भ में (जाये)। ऐसे चौबीस वर्ष तक माता के गर्भ में रहे। आहाहा ! कहीं श्वास लेने का छिद्र न मिले, आहार लेने को कुछ साधन न मिले। आहाहा ! वह कैसे निकाले होंगे चौबीस वर्ष ? वह एक बार नहीं, अनन्त बार। भाई ! तू भूल गया। वह भवभ्रमण के दु:खों का तुझे त्रास नहीं आया, भाई !

इसीलिए कहते हैं न भाई ! वहाँ योगसार में योगीन्द्रदेव। भवभय से डरी चित्त। भव के भय से अब चित्त डर गया है। इसलिए मैं आत्मा की बात कहूँगा। आहाहा ! भव के किसी भी प्रकार के कारण में और भव के कार्य में वीर्य को कुछ उसमें उल्लसित लगे, वह मिथ्यात्वभाव है। चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ, उसकी अपेक्षा दूसरे में कुछ भी विशेषता, आश्रयता लगे... आहाहा ! वह मिथ्यात्वभाव अनन्त संसार का कारण है। आहाहा ! उसे छोड़कर प्रभु ! अब एक बार तो ऐसा कर।

इस ज्ञानगुण बिना **कारणान्तर के द्वारा...** आहाहा ! भाषा स्पष्ट की है। आनन्द के अनुभव से और ज्ञान के अनुभव से ही वह प्राप्त हो सकता है। बाकी लाख-करोड़ दूसरे क्रियाकाण्ड हों, उनसे बन्ध है, उनसे अबन्धपरिणाम नहीं होते। समझ में आया ? और वह अबन्धपरिणाम जो कारण है, उससे कारणान्तर—अन्य कारण... आहाहा ! राजमलजी ने टीका भी कितनी की, देखो न ! आहाहा ! इसमें से समयसार नाटक बनाया। **कारणान्तर के द्वारा...** यह कारण ज्ञान का वेदन-स्वसंवेदन। ज्ञान, ज्ञान से ज्ञात हो। वह ज्ञान आनन्द की पर्याय के आस्वाद से ज्ञात हो, वह ज्ञान शान्ति के अंश के स्वाद से यह शान्ति पूरा

स्वरूप है, ऐसा ज्ञात हो। इस कारण बिना अन्य कारणों से वह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। है? **कारणान्तर के द्वारा ज्ञानगुण...** भगवान आत्मा ग्राह्य हो सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। यह सोनगढ़ की बात है, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! यह तेरे स्वरूप की बात है न, प्रभु!

बहिन का तो बोल है न, उसमें कहा है न एक? वचनामृत में। द्रव्य उसे कहते हैं, भगवान आत्मा द्रव्य उसे कहते हैं। सादी भाषा। जिसके कार्य के लिये अन्य द्रव्य की राह देखना न पड़े। समझ में आया? बहुत सादी भाषा और पूरा मर्म मार्ग का। द्रव्य उसे कहते हैं... आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि जिसके निर्मल कार्य के लिये अन्य द्रव्य की राह देखना न पड़े। पोपटभाई! पढ़ा है थोड़ा? चौथी बार चलता है। कितनी बार पढ़ा हो तो पार न आवे, ऐसा हो गया। आहाहा! समझ में आया? लो! रसिकभाई! हमारे रसिकभाई कहते हैं, कुछ न कुछ थोड़ा कहना। यह है? कितने बोल लिख लिये हैं सामने, हों! आहाहा! द्रव्य का कहा न? आहाहा! अणगार की बात ली है।

जैसे पुत्र में पिताजी की झलक आती है। पुत्र में पिता की झलक आती है, उसी प्रकार मोक्ष के मार्गी जीव में वीतराग की झलक आती है। ऐ..! रसिकभाई! है उसमें? कहीं है अवश्य? १६१। १६१ पृष्ठ है। लिख रखा है, हों! यह। देखो! यहाँ है, **जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखती है...** उसका मुख। **उसी प्रकार जिन भगवान की झलक मुनिराज में दिखती है।** आहाहा! वीतरागी बिम्ब दिखते हैं। परमात्मा हैं, वैसे मुनिराज दिखते हैं। अकषाय वीतराग परिणाम से परिणमित, जिनका बिम्ब शान्तरस, शरीर में (भी) शान्तरस की झलक दिखती है। आहाहा! शान्तिभाई!

जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखती है... आहाहा! **उसी प्रकार जिन भगवान की झलक मुनिराज में दिखती है।** आहाहा! मुनि छठे-सातवें गुणस्थान में रहे, उतना काल कहीं आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना रहते हैं, ऐसा नहीं है। वहाँ के वहाँ खड़े नहीं रहते। आहाहा! आगे बढ़ते जाते हैं। केवलज्ञान न हो, तब तक शुद्धि बढ़ाते जाते हैं। यह मुनि की अन्तर (दशा है)। एक बार तो मध्यस्थ से (होकर) पढ़ेगा, उसके

अन्तर कलेजे में चोट लग जाये ऐसा है। यह पक्ष की बात नहीं, यह तो वस्तु के स्वरूप की बात है और सादी भाषा। लड़के चार कक्षा पढ़े हुए वाँच-समझ सकते हैं। आहाहा!

क्या कहा? द्रव्य। ८४ है। ८४ पृष्ठ पर है। ८४ पृष्ठ पर है। डेढ़ लाईन है। **द्रव्य उसे कहा जाता है कि...** भगवान आत्मा **द्रव्य उसे कहा जाता है कि जिसके कार्य के लिये...** जिसके आनन्द के अनुभव और केवलज्ञान के कार्य के लिये **दूसरे साधनों की राह देखनी न पड़े।** मिला है या नहीं यह? आया है? पढ़ा है थोड़ा? पिताजी ने पढ़ा है या नहीं? पिताजी ने पढ़ा है या नहीं? पढ़ा है थोड़ा? ठीक। आहाहा! यह सब भेंट आनेवाला है। आत्मधर्म गुजराती-हिन्दीवालों को सबको भेंट देनेवाले हैं। अरे! ऐसी बातें। कहते हैं... है?

वस्तु चैतन्य भगवान उसे कहा जाता है कि जिसके निर्मल कार्य के लिये अन्य द्रव्य की राह (देखने की) आवश्यकता न पड़े। जिसे कारणान्तर—व्यवहाररत्नत्रय की राह देखनी न पड़े। वह हो तो यह हो, ऐसा नहीं है। कहो, नवरंगभाई! आहाहा! समझ में आया? दूसरा तो कहा गया है कितना ही। आहाहा! **स्वर्ण को जंग नहीं होती, अग्नि में दीमक नहीं होती...** उसी प्रकार तीन लोक का नाथ परमात्मा भगवान, उसके द्रव्य स्वभाव में आवरण नहीं होता, उसके द्रव्य स्वभाव में हीनता नहीं होती, उसके द्रव्य स्वभाव में अशुद्धता नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं।

कारणान्तर के द्वारा ज्ञानगुण ग्राह्य नहीं। कैसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि? भाषा जीवराशि। जीव के ढ़ेर मिथ्यादृष्टि के पड़े हैं, कहते हैं। आहाहा! **कैसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि? 'कर्मभिः क्लिश्यन्तां' विशुद्ध शुभोपयोगरूप परिणाम,...** भाषा देखो! कर्म अर्थात् कार्य। कार्य अर्थात् विशुद्ध शुभोपयोग। विशुद्ध शुभोपयोग। अकेला शुभ नहीं, विशुद्ध शुभोपयोग। आहाहा! वह **परिणाम, जैनोक्त सूत्र का अध्ययन,...** वह परिणाम लाख-करोड़ करे, अनन्त करे। और **जैनोक्त सूत्र का अध्ययन,...** आहाहा! **जीवादिद्रव्यों के स्वरूप का बारबार स्मरण,...** आहाहा! बहुत अध्ययन करे। आहाहा! **पंच परमेष्ठी की भक्ति...** अरिहन्त की, सिद्ध की, आचार्य, उपाध्याय, साधु की भक्ति **इत्यादि है जो अनेक क्रियाभेद उनके द्वारा...** वह क्रिया के प्रकार बहुत आक्षेप करते हैं

तो करो। वह क्लेश करो तो करो। वह तो क्लेश है, कहते हैं। अरर्र! समझ में आया? भगवान आत्मा उससे प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, कहते हैं। वह शास्त्र का अध्ययन, भक्ति, पूजा, जीवादि द्रव्यों के स्वरूप का स्मरण, वह तो सब विकल्प है। आहाहा!

विशुद्ध शुभोपयोगरूप परिणाम,... वे सब **अनेक क्रियाभेद उनके द्वारा बहुत आक्षेप (आडम्बर) करते हैं तो करो,...** भाषा ऐसी प्रयोग की है। क्लेश ऐसा तो कहना है। वह क्लेश करो तो करो। भाषा ऐसी प्रयोग की है कि बहुत आक्षेप-आडम्बर करो तो करो। बड़े मानो ऐसे भक्ति की, मानो ऐसा किया, मानो ऐसा किया। ओहोहो! मानों क्या कर आये! आहाहा! बाह्य का दिखाव करो तो करो। परन्तु उससे प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! अरे! जिसे सुनने को मिले नहीं, वह विचार कब करे? भेदज्ञान कब करे और वस्तु को प्राप्त कब करे? आहाहा! अरे! उसकी इसे दुर्लभता हो पड़ी है। इसकी उसे दुर्लभता हो पड़ी है। आहाहा! वह सब सरल हो पड़ा—यह क्रियाकाण्ड। आहाहा!

परमार्थ वचनिका में आता है न? अज्ञानी को आगम की पद्धति सरल (लगती) है, इसलिए करता है। उसे सरल लगता है। क्योंकि अनादि का अभ्यास है। शुभ का और अशुभ का। आहाहा! इसलिए उसे सरल लगता है। परन्तु अध्यात्म का व्यवहार भी वह जानता नहीं। अध्यात्म का व्यवहार अर्थात्? राग से भिन्न शुद्ध परिणति, वह अध्यात्म का व्यवहार है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के वीतरागी परिणाम, वह अध्यात्म का व्यवहार है। मोक्ष का मार्ग जो सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो है, वह अध्यात्म का व्यवहार है। आहाहा! उसे वे जानते भी नहीं। आहाहा! और बाहर की प्रवृत्ति के कायक्लेश में पड़े हैं। प्रभु! तेरा उद्धार कब हो? जो मोक्ष का कारण है, उसे करता नहीं और कारणान्तर द्वारा वह प्राप्त होगा, ऐसा तू मानता है, भाई! आहाहा! ऐसे सब बहुत ऐसा कहते हैं। कल आया है सोनगढ़ के नाम से। करो, करो। ऐसा कि वे लोग दान, दया, पूजा, भक्ति को तो धर्म कहते नहीं। मुनि और श्रावक का मूल धर्म तो वह है। अरे! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! जो आत्मा को नुकसान करनेवाला है, उसे लाभ करनेवाला मानना, महा मिथ्यात्व का शल्य भाव है। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

अनेक क्रियाभेद उनके द्वारा बहुत आक्षेप करते हैं तो करो,... आहाहा! मानो ऐसे भगवान की भक्ति करे लय खींचकर। हारमोनियम (बजाकर) ऐसे मानो... आहाहा! मानो क्या किया। हारमोनियम (बजाकर) गाये न भक्ति? लाखों लोग बैठे हों। आहाहा! वह लड़की है वहाँ जयपुर। क्या कहलाता है वह? आदर्शनगर में। परन्तु उसका कण्ठ देखा कण्ठ! पाँच-सात हजार लोग थे व्याख्यान में। वहाँ व्याख्यान पढ़ा था एक बार। व्याख्यान हो गया, लड़की बोली परन्तु कण्ठ वह कण्ठ। भाषा सादी थी। परन्तु कण्ठ वह ऐसा कण्ठ। भाषा बोली जहाँ, वहाँ सभा स्तब्ध हो गयी। परन्तु वह तो कण्ठ का आडम्बर है—पुद्गल का आडम्बर है। उसने कण्ठ से बहुत गाया और बहुत हुआ, इसलिए उसमें धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

अनेक क्रियाभेद उनके द्वारा बहुत आक्षेप करते हैं तो करो, तथापि शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होगी सो तो शुद्ध ज्ञान द्वारा होगी। आहाहा! जब तुझे भगवान की भेंट होगी, तब निर्मल शुद्ध परिणति से होगी। वह राग की क्रिया लाख-करोड़-अनन्त बार कर, परन्तु उससे होगी नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब यह करतूती कैसी है, यह विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ४, सोमवार, दिनांक-१४-११-१९७७, कलश-१४२-१४३, प्रवचन-१४९

कलशटीका, १४२ कलश है। यहाँ से फिर से। '**कर्मभिः क्लिश्यन्तां**' है? नीचे से पाँचवीं लाईन। कर्म अर्थात् कार्य। क्या कार्य? कि **विशुद्ध शुभोपयोगरूप...** विशुद्ध शुभोपयोगरूप। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह शुभोपयोग। वह क्रिया, राग की क्रिया है। वह दुःखरूप है। '**कर्मभिः क्लिश्यन्तां**' इस शब्द का अर्थ चलता है। कर्म अर्थात् कार्य। कार्य अर्थात् कौन? कि **विशुद्ध शुभोपयोगरूप परिणाम,...** आहाहा! दया के, दान के, व्रत के, भक्ति के, पूजा के, मन्दिर बनाने के इत्यादि शुभभाव, वह क्रिया-कार्य विकार है। ऐसी बात है, बापू! बहुत कठिन पड़े जगत को। तुमने तो किया है न सब उल्टा? वर्षीतप किया था।

जैनोक्त सूत्र का अध्ययन,... अन्यमति के नहीं परन्तु जैन के कहे हुए। परमेश्वर, वीतराग ने कहे हुए सिद्धान्त और आगम, उनका अध्ययन करता हो, अध्ययन। वह भी एक राग की क्रिया है। आहाहा! और वह भी दुःखरूप है। आहाहा! ऐसी बात भारी कठिन। जगत को कहाँ भटकना है! हाह (श्वास) निकल जाये ऐसा है। दुनिया को कहाँ खबर है कि सत्य क्या है? क्या करता हूँ और कहाँ जाऊँगा? उसकी कहाँ पड़ी है उसे! आहाहा! बाहर में कहीं पाँच-पच्चीस लाख पैसा मिले, शरीर कुछ ठीक, स्त्री-पुत्र मानो ठीक है। मर गया तू, सुन न! उस राग की क्रिया में तेरी मृत्यु है, प्रभु! तुझे खबर नहीं।

तेरा जीवन तो चैतन्यस्वरूपी आनन्द का नाथ भगवान, उस आनन्द के जीव को जीना, वह तेरा जीवन है। आहाहा! वह पैसा और यह शरीर और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, उसके लिये होता हुआ भाव तो पाप, अकेला पाप। उसकी तो यहाँ बात है नहीं। क्योंकि वह तो पाप तो दुर्गति में परिभ्रमण के लिये कारण है। यह सब करोड़पति बैठे।

मुमुक्षु : लाईन से बैठे है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाईन से बैठे हैं। यह भी हमारे जीतुभाई। अजीतभाई हैं न?

यह सब करोड़पति कहलाते हैं। पाँच, दस, बीस लाख कम हो तो और यह तो दो करोड़ है। सब धूलपति हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हैं नहीं दुःखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं न दुःखी, ऐसा कहते हैं न। आहाहा!

अरे! यह भगवान आत्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ने कहा, वह आत्मा तो सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार प्रभु है। उसके सामने देखना नहीं, उसे श्रद्धा में लेना नहीं और यह बाहर के प्रपंच-जाल में फँसकर मर गया है अन्दर। आहाहा! यहाँ तो यह पाप के परिणाम संसार के लिये की तो बात की ही नहीं। वह तो दुर्गति का कारण है। परन्तु जो यहाँ शुभोपयोग क्रियाकाण्ड का है, ब्रह्मचर्य का, दया का, दान का, व्रत का, पूजा का, भक्ति का, शास्त्र अध्ययन का।

मुमुक्षु : जैन शास्त्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जैन शास्त्र। अन्य के शास्त्र नहीं। यह तो वीतराग त्रिलोक के नाथ, परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ने कहे हुए सिद्धान्त, उनका अध्ययन भी शुभराग है। आहाहा! वह दुःख है, कष्ट है। अरे! जाना कहाँ इसे? कान्तिभाई!

मुमुक्षु : आपने क्रान्ति ला दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग यह है, बापू! आहाहा! क्या हो? जगत बेचारा कहीं भटकता है। कुछ भान नहीं होता। धर्म के बहाने भी यह व्रत, तप, पूजा और भक्ति, उसे तो यहाँ क्लिष्ट कार्य '**क्लिश्यन्तां**'। वह तो क्लेश है, दुःख है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। जिनेन्द्रदेव वीतराग परमात्मा... अरे! अभी तो बाहर कहीं झगड़े-बगड़े में भटकन (करता है)। आहाहा!

ऐसे **सूत्र का अध्ययन, जीवादि द्रव्यों के स्वरूप का बारबार स्मरण,...** अनन्त जीव हैं, और जड़ अनन्त है और ऐसे नव तत्त्व के स्वरूप का बारम्बार स्मरण करना, वह भी एक विकल्प और राग है। आहाहा! भगवान! सूक्ष्म बात है। यह राग है, वह दुःख है, वह कष्ट है। आहाहा! अरे! इसे सत्य सुनने को मिलता नहीं, प्रभु! बेचारा कहाँ जाये? यहाँ परमात्मा जिनेन्द्रदेव कहते हैं, प्रभु! यह पंच परमेष्ठी की भक्ति, अरिहन्त,

सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। जिन के कथित, हों! अन्य के कहे हुए की यहाँ बात नहीं है। जिनेन्द्रदेव परमेश्वर ने जिसे पंच परमेष्ठी रूप से जाना-स्वीकार किया है, उनकी भक्ति भी शुभराग है, वह दुःख है। कठिन बात, बापू! जगत को यह गले उतरना (कठिन पड़ता है)। अनन्त काल से भटका है, मर गया है।

अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान,
सेये नहीं गुरु सन्त को छोड़ा नहीं अभिमान।

आहाहा! यहाँ यह कहते हैं कि उन **पंच परमेष्ठी की भक्ति इत्यादि...** इत्यादि अर्थात् जितने शुभ विकल्प होते हैं, शास्त्र श्रवण के, कहने के इत्यादि विकल्प **जो अनेक क्रियाभेद उनके द्वारा... 'क्लिश्यन्तां'** क्लेश करो तो करो, कहते हैं। आडम्बर। आहाहा! उस संसार-धन्धे की तो बात यहाँ की ही नहीं। वह तो अकेला पाप है। आहाहा! यहाँ तो धर्म के बहाने ऐसा करे, वह भी प्रभु वीतराग त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं प्रभु! तुझे खबर नहीं। वह वृत्ति का उत्थान है, राग है, दुःख है। आहाहा! समझ में आया? यह **'क्लिश्यन्तां'** ऐसा शब्द पड़ा है न? क्लेश करो तो करो, कहते हैं। **आक्षेप (आडम्बर)...** है बड़ा बाहर में। आहाहा! मानो क्या किया? व्रत पालन किये, भक्ति की, आडम्बर बड़ रथयात्रा और मन्दिर करोड़ों के बनाये, बड़ी रथयात्रा निकाली और मानो क्या किया! भाई! सुन तो सही! धीर हो... धीर हो... ऐ बापू! शुभराग की क्रिया का आक्षेप-आडम्बर है सब। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसा है। अरेरे! बेचारे किसी ने तो सुना भी न हो। बनिया के कुल में अवतरित हुआ हो तो भी (सुना न हो)। अन्य में तो है ही कहाँ? परन्तु जैनकुल में अवतरित हुआ, उसकी उसे खबर नहीं कि जैन परमेश्वर दुःख किसे कहते है और किसे धर्म कहते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आडम्बर। यह बड़ा दिखाव बाहर में मानो... आहाहा! चार महीने के अपवास किये, करोड़ों रुपये खर्च किये और मन्दिर बनाये और आजीवन का ब्रह्मचर्य सजोड़े लिया। वह क्या क्रिया, बापू! यह तुझे खबर नहीं। वह तो सब शुभराग की क्रिया का क्लेश है। आहाहा! समझ में आया? बात दूसरी है, भाई! जगत में चलती प्रथा से भगवान के मार्ग की पद्धति कोई अलग है। यह वर्षीतप करो तो करो, क्लेश

करो, ऐसा कहते हैं। आडम्बर! लो! यह तो बड़ी उम्र के पैसेवाले व्यक्ति हैं वर्षीतप किया था। सब क्लेश था। भान कहाँ है?

मुमुक्षु : उस समय खबर नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं थी। ऐसा कि उस समय खबर नहीं थी, भाई कहते हैं। बात सच्ची, बात सच्ची। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, उस क्रिया से **बहुत आक्षेप करते हैं तो करो, तथापि शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होगी सो तो शुद्ध ज्ञान द्वारा होगी।** आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर ने-वीतरागदेव ने जो आत्मा कहा अन्दर, वह तो अन्दर की ज्ञान की क्रिया द्वारा प्राप्त होगा, बाकी इस क्रिया द्वारा प्राप्त होगा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! तुझे किसका रस चढ़ गया है? प्रभु! ऐसा कहते हैं। संसार के रस तो चढ़े पाप के, परन्तु धर्म के नाम से यह राग के रस चढ़ गये हैं तुझे, प्रभु! यह राग का रस है, वह धर्म नहीं। आहाहा! मूलचन्दभाई तो बारम्बार कहते थे, ऐसी बात कहीं सुनने को मिलती नहीं। ऐसा बहुत कहते थे। पत्र में लिखते थे वे। आहाहा! प्रभु! कहीं नहीं है, बापू! हमको तो खबर है न! आहाहा! यहाँ चौसठ वर्ष तो दीक्षा लिये हुए। चौसठ वर्ष। शरीर को अठ्यासी वर्ष हुए। नब्बे में दो कम। दिखाव नहीं लगता। शरीर को अठ्यासी वर्ष हुए। आहाहा! तेरह वर्ष जन्मधाम उमराला, नौ वर्ष दुकान पालेज। डेढ़ वर्ष गुरु के पास पढ़े और चौंसठ वर्ष की दीक्षा। अठ्यासी का योगफल हुआ है। बहुत सब देखा है जगत को। हिन्दुस्तान में दस-दस हजार मील तीन बार घूमे हैं। मोटर द्वारा। यह मार्ग (कही नहीं है)। आहाहा! क्या हो? प्रभु!

ऐसा मनुष्यपना... देखो न! सुनते हैं। छोटी-छोटी उम्र के, पच्चीस-पच्चीस वर्ष के, अट्ठाईस वर्ष के। आज हरिभाई गये। हमारे जीवणलालजी के भतीजे हरिभाई हरिचन्द अहमदाबाद। उनके भाई का पुत्र। छोटा भाई प्रेमचन्द। उसका पुत्र अट्ठाईस वर्ष का विवाहित, विवाहित। यहाँ आँत में व्याधि होगी तो ऑपरेशन कराया था। ठीक था, वह यहाँ आया था पूछकर। समाचार आया कि देह छूट गया। अट्ठाईस वर्ष की उम्र। परन्तु बापू! देह की स्थिति हो, उस समय में उस प्रकार होनेवाली। बड़े इन्द्र ऊपर से उतरे (तो भी बदल नहीं सकते)। डॉक्टर स्वयं मर जानेवाले हैं, जिस समय में

मरनेवाले हैं तब। आहाहा! यह तो धूल है और मिट्टी है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। यह तो संयोगी चीज़ है। यह संयोग से आयी हुई चीज़ है। यह तो मिट्टी-धूल है, पुद्गल है। आहाहा! उसकी स्थिति-अवधि है, तब तक रहेगी। तेरी लाख दवा करे और दवायें करे। यह बहुत दवायें बनाते थे। लाया था तुम्हारा एक वह कल। तीसरा नहीं था? अमलदार है न? कौन है? वह तुम्हारे आने से पहले आया था। उसने तुम्हारी बातें की थीं। पैर जरा काँपते हैं, नहीं? बड़ा अमलदार है।

मुमुक्षु : परसों मुम्बई में छापा मारकर आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या मुम्बई में...?

मुमुक्षु : छापा मारकर आया था। छापा मारकर अर्थात् किसी को पकड़कर। केस पकड़कर व्यापारियों का।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था मेरे पास थोड़ी देर। बहुत पैर छूकर खड़ा था। आहाहा! अरे! कहीं चैन नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। सुख तो प्रभु आत्मा में है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर उछलता है। उसकी खबर नहीं होती, उसके सामने देखना नहीं होता और यह बाहर की प्रवृत्ति के परिणाम में रुककर सब जिन्दगी अफल जाती है।

यहाँ तो, वह तो पाप के परिणाम की बात। उसमें प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। दो-पाँच करोड़ मिले तो मानो... आहाहा! मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाये। यहाँ तो कहते हैं कि तूने निवृत्ति ली और साधु हो, और बाहर में पाँच महाव्रत पाल और शुभोपयोग से भक्ति भगवान की कर, शास्त्र का अध्ययन कर, वह सब राग की क्रिया दुःख की है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। जिनेश्वर, परमेश्वर त्रिलोकनाथ। वह वीतरागभाव से प्रगट होता है, वह राग से धर्म प्रगट नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। हैं?

यह तो **शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होगी सो तो शुद्ध ज्ञान द्वारा होगी।** उस राग की क्रिया से भिन्न भगवान आत्मा, उसे ज्ञानस्वरूप में एकाग्र होगा, तब उसका कल्याण होगा। बाकी लाख मर जाये क्रियाकाण्ड करके तो उससे आत्मा और धर्म प्राप्त नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? **कैसी है करतूति?** यह क्रिया कही न जो? शुभोपयोग की—दया, दान, व्रत, पूजा और भक्ति। **कैसी है करतूति? 'स्वयं एव दुष्करतरैः'**

'स्वयं' सहजपने कष्टसाध्य है। आहाहा! सुरेन्द्रजी! वह कष्टसाध्य है, दुःख है। अरर! यह बात सुनना कठिन पड़े। यह पंच महाव्रत के परिणाम, आजीवन शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, (अपरिग्रह) यह पंच महाव्रत पालन करे। आहाहा! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! वह तेरा स्वरूप नहीं। वह तो वृत्ति का उत्थान और राग की क्रिया है। वह कष्टदायक है। कष्टसाध्य कहा। देखा? उसमें दुःख साध्य है। आनन्द साध्य नहीं उसमें। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : ऐसा होता है कि यहाँ ही रुक जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वहाँ कहा था। तुम्हारे पिता को बैंगलोर में। भाई के पिता ने चार लाख रुपये डाले और मन्दिर बनाया। बैंगलोर। आठ लाख भभूतमल, भभूतमल ने आठ लाख डाले, इन्होंने चार लाख डाले। बारह लाख का मन्दिर बनाया। दिगम्बर मन्दिर। विशाल, देखे तो ऐसे... परन्तु उस समय कहा, तुम ऐसा समझना नहीं कि बारह लाख खर्च किये इसलिए हमें धर्म हो गया।

मुमुक्षु : मुझे लगता है कि मन्दिर बनाने के बाद कहा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, पहले से। यहाँ तो पहले से कहते आये हैं। ऐई! शान्तिभाई!

यह सब २६-२६ लाख के मकान (मन्दिर) हुए, देखो! मात्र संगमरमर और पौने चार लाख अक्षर। यह पहले से कहा था, बापू! बाहर की जितनी क्रियाओं में लक्ष्य जाये, वह सब शुभराग और शुभ (भाव) है। वह धर्म नहीं। बापू! धर्म तो चैतन्य भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसका आश्रय लेने से, शुद्ध स्वरूप का ध्यान करने से, शुद्ध स्वरूप को ज्ञान में लेने से उसे धर्म होता है। कठिन बातें, भाई! अनन्त-अनन्त काल हुआ परिभ्रमण करते हुए इसे थकान नहीं लगी। इसे भान भी कहाँ? यह विचार भी कहाँ है? बालकपना आवे खेल में जाये। जवानी आवे वहाँ स्त्री में खो जाये, फिर धन्धे में खो जाये। आहाहा! वृद्धावस्था आवे तब हो गया, फिर रोवे। 'बालपन खेल में खोया, जुवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धापन देखकर रोया।' यह हमारे पालेज में बोलते थे.... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, तू कौन है? इसके अतिरिक्त की जो यह क्रिया है न, वह भी कष्टदायक है। तेरे संसार के पाप के परिणाम, कमाने के, भोग के और उसमें सम्हालना और ब्याज और यह करना, वह तो पाप परिणाम महा दुःखदायक है। आहाहा! कहो, मनसुखभाई! अरेरे! ऐसा है। **कष्टसाध्य है।** है? यह शुभ उपयोग, शास्त्र अध्ययन। है? जीवादि का स्मरण, पंच परमेष्ठी की भक्ति, वह सब कष्टसाध्य है। उसमें राग की वृत्ति उठती है, वह दुःख है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जितनी क्रिया है, वह सब दुःखात्मक है। है? आहाहा! धार्मिक क्रिया की बात है, हों! वह क्रिया जो संसार की, वह तो पाप ही है। खटपट, माया और कपट और दुःख... आहाहा! यह तो शुभक्रिया।

मुमुक्षु : और फिर धर्म से लगती।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म के नाम की क्रिया की बात है न यह शुभ।

यह **जितनी क्रिया है, वह सब दुःखात्मक है।** दुःखस्वरूप है। आहाहा! **शुद्धस्वरूप अनुभव की नाईं सुखस्वरूप नहीं है।** भगवान आत्मा ज्ञानबिम्ब प्रभु सर्वज्ञस्वभावी और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा, उसके सन्मुख होकर जो अनुभव करना, वह सुखरूप है और यह क्रियाकाण्ड सब दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह करने को निवृत्ति कहाँ है अभी! संसार के पाप के कारण पूरे दिन फँसा है बाईस घण्टे, तेईस घण्टे वहाँ। छह-सात घण्टे नींद में जाये, दो-चार घण्टे स्त्री को प्रसन्न करने में जाये, लड़के को खिलाने में जाये। उसमें दुकान में बैठने में पेढी में जाये। अरर! घण्टा भर मिले, सुनने जाये वहाँ इसे कुगुरु लूट लेता है। इसे बतावे कि व्रत कर और तप कर, इससे तुझे धर्म होगा। आहाहा! श्रीमद् कहते हैं, कुगुरु एक घण्टा लूट लेता है। इसे ऐसा बतावे-व्रत करो, अपवास करो, दान करो, पैसा धरो, मन्दिर बनाओ—तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। वह कुगुरु जगत को लुटा दे, लूटता है। ऐसी बातें हैं। आहाहा!

शुद्धस्वरूप अनुभव की नाईं सुखस्वरूप नहीं है। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान—जानना। शास्त्र जानना, वह नहीं। यहाँ तो

ज्ञान (अर्थात्) जिसकी सत्ता में यह है, ऐसा ज्ञात होता है। यह है... यह है... यह है... जिसकी सत्ता में ज्ञात होता है, वह ज्ञानस्वरूप-ज्ञानस्वरूप ज्ञान भगवान ज्ञानस्वभावी प्रभु है। उस ज्ञानस्वभाव का अनुभव, उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव (होना), वह सुखरूप है। वे क्रियाकाण्ड के भाव सुखरूप नहीं, किन्तु दुःखरूप है। आहाहा! सिर घूम जाये ऐसा है। आहाहा! अरेरे! इसे मनुष्यपना मुश्किल से मिले अनन्त काल में, उसमें और पाप के प्रसंग में रुक जाये और उसमें यहाँ प्रसंग मिला और उसमें पुण्य की क्रिया का समय मिला तो वह पुण्य की क्रिया में रुक गया। वह धर्म है। (ऐसा माने)। हो गया। मर गया।

यहाँ कहते हैं कि **शुद्धस्वरूप अनुभव की नाईं सुखस्वरूप नहीं है। और कैसी है? सकलकर्मक्षय उससे उन्मुख है...** आहाहा! जिससे कर्म का क्षय हो, उससे सब उलटी क्रिया है। आहाहा! अरे! यह सुनने को मिले नहीं। है? '**मोक्षोन्मुखैः**' मोक्ष अर्थात् **सकलकर्मक्षय...** उससे **उन्मुख है।** उल्टा है। यह व्रत, भक्ति, पूजा और शास्त्र अध्ययन... **सकलकर्मक्षय उन्मुख है अर्थात् उसकी परम्परा-आगे मोक्ष का कारण होगी, ऐसा भ्रम (अज्ञानी को) उत्पन्न होता है...** आहाहा! हम यह व्रत पालते हैं और अपवास करते हैं और तपस्यायें करते हैं और वर्षीतप करते हैं। और यह सब लेखन में यही आता है—सब स्थानकवासी श्वेताम्बर में तो। इतने अपवास किये... इसने इतने अपवास किये... इतने अपवास किये... और इतनी तपस्यायें कीं। कहते हैं कि वह सब क्रियायें मोक्ष अर्थात् आठ कर्म के क्षय से होता मोक्ष, उससे उन्मुख / उल्टी क्रिया है। अर्थात् कि बन्धन की करनेवाली है। आहाहा!

आगे मोक्ष का कारण होगी,... अथवा ऐसा मानेगा, ऐसा कहते हैं कि अपने करते-करते परम्परा से कुछ जल्दी हो जाये न। पहले पाप छोड़ें और फिर... पहले पाप छोड़ें और फिर पुण्य करें और फिर पुण्य छोड़ेंगे। ऐसे परम्परा से फिर धर्म होगा। वह मूढ़ जीव ऐसा मानकर वहाँ रुक गये हैं। आहाहा! परन्तु भगवान त्रिलोकनाथ ऐसा क हते हैं, अन्दर चैतन्य सागर भगवान है न! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से छलाछल / लबालब भरपूर प्रभु अन्दर है, भाई! तुझे खबर नहीं। उसका अनुभव करना, इसका नाम मोक्ष की क्रिया अर्थात् धर्मक्रिया है। उसकी क्रिया से यह सब विरुद्ध है। आहाहा!

एक बार तो हर्ष उतर जाये ऐसा है सब। बाहर के सब हर्ष के सहडका लिये हैं न! जरा स्त्री ठीक मिले, पैसा ठीक मिले, व्यापार ठीक चले, उसमें मुनिम-बुनिम अच्छे मिले हों, दो-पाँच करोड़ की पूँजी में। हर्ष... हर्ष... मानो... ओहोहो! सन्निपात है। यहाँ तो प्रभु कहते हैं, यह तो छोड़ा और कदाचित् वह व्रत और तप, भक्ति और पूजा में आया और करोड़ों रुपये दान में खर्च किये। विशाल रथयात्रा निकाली, शोभायात्रा निकाली...

मुमुक्षु : उस समय बहुत निकला था।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न सब। मुम्बई में तुम्हारे दीक्षा (दी)। दस-दस वर्ष के लड़के को दीक्षा। अभी समकित किसे कहना, इसका भान नहीं होता और दीक्षा कहाँ से आ गयी? दख्या है। कहा न? कष्ट-दुःख है। और वह कहाँ है, उसके पास? वह सब हमको तो खबर है न! आहाहा! जिसे पंच महाव्रत कहते हैं, वह व्यवहार है, वह भी कहाँ है? उसके लिये बनाया हुआ आहार-पानी ले, वस्त्रादि बिकते हुए ले, कम्बल बड़ी बिकती हुई लेकर दे। व्यवहार का भी कहाँ ठिकाना है, पंच महाव्रत का। और पंच महाव्रत हो तो भी राग है और दुःखरूप है। उसे कब महाव्रत थे? कठिन बात, बापू! प्रभु! बहुत अन्तर है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **उसकी परम्परा आगे मोक्ष का कारण होगी, ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है, सो झूठा है।** है? **सो झूठा है।** ऐसा कि यह करते-करते बाद में होगा न, एक कदम आगे तो चले हैं। पाप के परिणाम तो छोड़े हैं। अब यह पुण्य के परिणाम करते हैं। पश्चात् आगे धर्म करेंगे।

मुमुक्षु : दूसरे से तो आगे बढ़े हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी बढ़े नहीं। संसार और संसार के पाप में पड़ा है। आहाहा!

कैसे हैं मिथ्यादृष्टि जीव? 'महाव्रततपोभारेण चिरं भग्नाः क्लिश्यन्तां' महाव्रत पाले मिथ्यादृष्टि जीव। **हिंसा...** झूठ, चोरी **अब्रह्म, परिग्रह से रहित...** होता है। आहाहा! वह वस्त्र का धागा न रखे कदाचित् बाहर से। नग्न मुनि हो। जैनदर्शन में तो नग्न मुनि को मुनि कहा जाता है। वस्त्रसहित को मुनिपना जैनदर्शन में नाममात्र भी कहते नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बातें, भाई! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि हिंसा छोड़ दे, झूठ छोड़ दे, चोरी छोड़ दे, ब्रह्मचर्य पालन करे, अब्रह्म छोड़ दे, परिग्रह छोड़ दे। अर्थात् कि वस्त्र का धागा भी न रखे और नग्न मुनि हो। आहाहा! समझ में आया? बहुत कठिन बातें। अपरिग्रह उसे कहते हैं न? निर्ग्रन्थ किसे कहते हैं? कि जिसे वस्त्र का धागा न हो और जैसी माँ से जन्मा, वैसी जिसकी दशा शरीर की हो और अन्दर में वीतरागी दशा अन्दर आनन्द के नाथ को जगाकर... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में झुलता हो। प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे वेदन हो, उसे मुनि कहा जाता है। बाहर में नग्नदशा होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : चश्मा होता है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : चश्मा-बश्मा अपने ऐसा कुछ नहीं होता। वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता तो चश्मा कहाँ से? किसी की-व्यक्ति की अपने (बात नहीं), यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। बापू! आहाहा! चश्मा कैसा और घड़ी कैसी? वस्त्र का धागा (नहीं होता)। भगवान तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! कठिन काम है भाई! आहाहा! वस्त्र का टुकड़ा रखकर हम मुनि हैं, ऐसा माने, मनावे, माननेवाले को भला जाने, (वह) निगोदगामी है। वह निगोद में अवतरित होनेवाला है। लहसुन और प्याज में जानेवाला है वह। आहाहा! प्रभु! कठिन पड़े, भाई! परमात्मा का यह वचन है। सूत्रपाहुड़ में। समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

यहाँ कहते हैं, वह परिग्रह से रहित है। यह लिया है, हों! ऐसे जीवों को लिया है। यह वस्त्र के पोटले रखे और परिग्रहरहित है, (ऐसा माने), वह तो परिग्रहरहित भी नहीं, वह तो महापाप के अव्रत के पाप में पड़े हैं। आहाहा! अरे! दुनिया... और उसके निकट ब्रह्मचर्य लेना, मिथ्यादृष्टि के निकट। हाथ जोड़ना, मिथ्यात्व का पोषण है। स्वयं मिथ्यात्व को सेवन करता है, उसे मिथ्यात्व का पोषण करता है यह। आहाहा! ऐसा बहुत कठिन काम, बापू! पूरी दुनिया से अन्तर है, यह तो खबर नहीं? आहाहा! यह अलग चीज़ है भाई! तीन लोक के नाथ, जिनेन्द्रदेव... आहाहा! उनका मार्ग....

यह **महा परीषहों का सहना,...** पंच महाव्रतधारी, वस्त्र का टुकड़ा भी न रखे, ब्रह्मचर्य पालन करे, झूठ न बोले, चोरी न करे, एकेन्द्रिय जीव के प्राण को घात न करे, एक हरितकाय का भी जो है, उसे भी घात न करे। भले हो वह। सब राग की क्रिया है,

कहते हैं। आहाहा! वह और **महा परीषहों का सहना,...** आहाहा! तृषा ऐसी लगी हो कि पानी की बूँद न ले। सर्प डंसा हो तो दवा न ले, बिच्छू काटा हो तो सहन करे, महापरीषह सहन करे।

उनका बहुत बोझ उसके द्वारा बहुत कालपर्यन्त मरके चूरा होते हुए... आहाहा! कठिन काम, बापू! ऐसी क्रिया करते-करते मरकर चूर्ण हो, परन्तु तुम्हारा परिभ्रमण उससे मिटेगा नहीं। आहाहा! दो-दो महीने के अपवास, अपवास और पारणे में रूखा आहार (करे)। बापू! वह सब क्रियायें हैं, वे करो, अनन्त बार। राग की मन्दता की है और शरीर को जीर्ण करो और मर जाओ। **मरके चूरा होते हुए बहुत कष्ट करते हैं तो करो, तथापि ऐसा करते हुए कर्मक्षय तो नहीं होता।** उससे मिथ्यात्व का नाश और कर्म का क्षय अंश भी नहीं है। ऐसा मार्ग है। नये व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि क्या है यह? यह वह जैनधर्म ऐसा होगा? बापू! मार्ग तो यह है, भाई!

अरे! तूने दुःख सहन किये हैं, प्रभु! भूतकाल में नरक में... नरक में... आहाहा! अरबोंपति का राजकुमार हो और उस दिन का विवाह हो और करोड़ों रुपये जिसने विवाह में खर्च किये हों, पच्चीस वर्ष की उम्र और युवा हो और रानी भी करोड़ोंपति, अरबोंपति की पुत्री आयी हो और उसे पहली रात्रि के भोग का पहला दिन हो, उसके शरीर को जमशेदपुर की भट्ठी में सीधे जीवित डाले और पीड़ा हो, उससे अनन्तगुणी पीड़ा, प्रभु! नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति में है। आहाहा! भाई! तूने सुना नहीं। तुझे प्रसन्नता कहाँ से आयी यह? आहाहा! उस राजकुमार को ऐसे सीधे जीवित भट्ठी में डाले। अरबोंपति और करोड़ों रुपये खर्च किये हों विवाह में। है न एक राजा अभी? करोड़ रुपये एक दिन में खर्च किये थे। एक दिन में करोड़ रुपये (खर्च किये)। विवाह के दिन।

मुमुक्षु : ईरान।

पूज्य गुरुदेवश्री : ईरान का राजा। यह नाम बराबर। एक रात-दिन के करोड़। पहले दिन सुहागरात में। वह तो अरबों रुपये खर्च करे बड़ा, परन्तु उसे जीवित डाले उसमें और दुःख हो, उससे अनन्तगुणी पीड़ा पहले नरक में है। दस हजार वर्ष की

स्थिति में पहले नरक में दु:ख अनन्तगुना है। आहाहा! वह सब मिथ्यात्व के कारण से भटककर मर गया है। वे क्रियायें आदि कीं, परन्तु मिथ्यात्व है और उनसे धर्म होगा, ऐसा मानकर मिथ्यात्व को सेवन किया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वह **मरके चूरा होते हुए...** देखा! '**भग्नाः**' कहा है न? '**भग्नाः**' शरीर को जीर्ण कर डालना। अपवास कर-करके। मर जा न, कहते हैं। शरीर को तो भी उससे धर्म कहाँ है वहाँ? आहाहा! कर्मक्षय तो होता नहीं। आहाहा! कठिन पड़े, हों!

मुमुक्षु : जवानी बिजली के झपकारे जैसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : झपकारे जैसा है, बापू! इस बिजली के झपकारे में मोती पिरो लो, पिरो लो। इसी प्रकार यह तो अवसर आया, बापू! अन्तर चैतन्य वस्तु है, वहाँ जा। तुझे संसार का अभाव होगा। वहाँ आनन्द होगा, वहाँ समकित होगा। वह चीज़ अन्दर में है। आहाहा! बाहर में भटककर मरा ऐसा का ऐसा। आहाहा! यह सेठिया बेचारे, देखो न! चले गये। २७ तारीख को। शाहूजी। ४० करोड़ रुपये। अभी यहाँ दर्शन करने आये थे। व्याख्यान सुनकर गये थे। तीन व्याख्यान सुने। पाँच दिन से आते थे। चालीस करोड़। पाँच-सात करोड़ की तो वर्ष की आमदनी है। यहाँ तीन बार आ गये। यह वस्तु अलग वस्तु। २७ तारीख को सवेरे हार्टफेल। ६६ वर्ष की उम्र। देह छोड़कर चले गये। आहाहा!

मुमुक्षु : मुम्बई में चर्चा करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब प्रश्न करते थे और बहुत करते थे। वहाँ दिल्ली में किये। दिल्ली में भी किये थे। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहारी को व्यवहार का उपदेश देना। ऐसा नहीं कहा वहाँ ऐसा अर्थ। दिल्ली में, कलकत्ता में सर्वत्र मिले थे न, सर्वत्र आते थे व्याख्यान में। आहाहा!

कहते हैं, '**भग्नाः क्लिश्यन्तां**' शरीर का चूरा कर डाल न, व्रत पालन करके और अपवास करके, परन्तु उससे जरा भी धर्म नहीं है। आहाहा! कहो, मीठालालजी! ऐसी बातें कठिन पड़े, हों! आहाहा! यह १४२ (कलश पूरा) हुआ।

कलश-१४३

(द्रुतविलम्बित)

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं
सहजबोधकलासुलभं किल।
तत इदं निजबोधकलाबलात्
कलयितुं यततां सततं जगत्।।११-१४३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ततः ननु इदं जगत् इदं पदं कलयितुं सततं यततां' [ततः] तिस कारण से [ननु] अहो [इदं जगत्] विद्यमान है जो त्रैलोक्यवर्ती जीवराशि, वह [इदं पदं] निर्विकल्प शुद्धज्ञानमात्रवस्तु, उसका [कलयितुं] निरन्तर अभ्यास करने के निमित्त, [सततं] अखण्ड धाराप्रवाहरूप [यततां] यत्न करे। किस कारण के द्वारा 'निजबोधकलाबलात्' [निजबोध] शुद्धज्ञान, उसका [कला] प्रत्यक्ष अनुभव, उसका [बलात्] समर्थपना, उससे। क्योंकि 'किल' निश्चय से ज्ञानपद, 'कर्मदुरासदं' [कर्म] जितनी क्रिया है, उससे [दुरासदं] अप्राप्य है और? 'सहजबोधकलासुलभं' [सहजबोध] शुद्धज्ञान, उसका [कला] निरन्तर अनुभव, उसके द्वारा [सुलभं] सहज ही प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुभ-अशुभरूप हैं जितनी क्रिया, उनका ममत्व छोड़कर, एक शुद्धस्वरूप-अनुभव, कारण है।।११-१४३।।

कलश - १४३ पर प्रवचन

१४३,

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं
सहजबोधकलासुलभं किल।
तत इदं निजबोधकलाबलात्
कलयितुं यततां सततं जगत्।।११-१४३।।

आहाहा! सन्त-दिगम्बर मुनि जगत की करुणा करके कहते हैं। आहाहा! दिगम्बर

सन्त की यह कथनी है। जो प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में स्थित हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर वेदन, जो अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते हैं। आहाहा! मुनिपना किसे कहें! समझ में आया? जिसे प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द (प्रगट हुआ है)। समकिती जीव गृहस्थाश्रम में समकित हो, आत्मा के आनन्द का अनुभव, उसे भी आनन्द का अंश आता है। तो मुनि को अतीन्द्रिय आनन्द, प्रचुर वेदन अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे होता है, वे मुनिराज जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

खण्डान्वयसहित अर्थ—'ततः ननु इदं जगत् इदं पदं कलयितुं सततं यततां' तिस कारण से अहो विद्यमान है जो त्रैलोक्यवर्ती जीवराशि... सबको सम्बोधन किया है। तीन लोक में वर्तनेवाले हे जीवो! आहाहा! **'इदं पदं' इस पद का अर्थात् निर्विकल्प शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु उसका... 'कलयितुं' निरन्तर अभ्यास...** करो। आहाहा! इस राग की क्रिया से भिन्न पड़कर भगवान आनन्दस्वरूप है, उसके अनुभव का अभ्यास करो। राग से भिन्न करने का (अभ्यास करो)। आहाहा! वह क्रियाकाण्ड का राग है, उससे भी भिन्न करने का अभ्यास कर। श्रद्धा को सुधार। आहाहा! पहले मूल सुधार, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इस पद का...** इस पद अर्थात्? **निर्विकल्प शुद्ध ज्ञान वस्तु...** अन्दर विकल्प अर्थात् रागरहित चीज़ अभेद चैतन्य भगवान विराजता है। आहाहा!

'घट घट अन्तर जिन बसे' वह जिनस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर बसता है। आहाहा! वह जिनस्वरूप ऐसा **शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु... 'कलयितुं'** निरन्तर अभ्यास करो। आहाहा! राग के विकल्प से भिन्न प्रभु निर्विकल्प चीज़ विराजती है अन्दर। अभेद वस्तु भगवान आत्मा अन्दर है। अरे! इसे कैसे जँचे? आहाहा! इस विकल्प के पीछे भगवान चैतन्यमूर्ति अन्दर विराजता है। उसका राग से भिन्न पड़कर अभ्यास कर। आहाहा! भेदज्ञान कर, भेदज्ञान। आहाहा! समझ में आया?

भेदज्ञान का **'कलयितुं'**। फिर भाषा **निरन्तर अभ्यास करने के निमित्त...** आहाहा! **'कलयितुं सततं' अखण्ड धाराप्रवाहरूप यत्न करे।** आहाहा! जैसे पीपर, चौसठ पहरी पीपर को चौंसठ पहर अखण्ड धारा से घोंटे, तब चौसठ पहरी चरपराहट बाहर आती है। छोटी पीपर। चौसठ पहर घोंटे। उसमें एक मिनिट भी थकान नहीं। भैया बदलावे।

चार भैया रोकते हों तो दिन के वापस बदलावे, रात्रि के चार अलग। चौंसठ पहर तक (घिसे) तब वह चरपराहट बाहर आती है। उसी प्रकार यहाँ आनन्द के नाथ को बारम्बार अन्तर में अखण्ड धारा से अनुभव कर, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भाषा कैसी ली! देखा!

अखण्ड धाराप्रवाहरूप यत्न करे। 'सततं' 'यततां' 'सततं यततां' 'सततं यततां'। सतत् निरन्तर यत्न करो। तेरे नाथ का यत्न कर वहाँ अन्दर। आहाहा! वह विकल्प से पार वस्तु अन्दर पड़ी है। उसका **'सततं यततां'** निरन्तर यत्न-जतन करो। आहाहा! यह परजीव की यत्न करते हैं न, वह तो शुभराग है। आहाहा! **'यततां सततं जगत्'** अन्तिम शब्द है न? **'कलयितुं यततां सततं जगत्'** अखण्ड धारा। अरेरे! इसे समय कहाँ? पाप के कारण समय नहीं मिलता, उसमें पुण्य में रुक जाये। आहाहा! भाई! तुझे जन्म-मरण टालना हो, चौरासी के भव का अन्त लाना हो... आहाहा! तो चैतन्य सहजात्मस्वरूप, सहजात्म प्रभु का निरन्तर अन्तर्मुख होकर अभ्यास कर, अनुभव कर। आहाहा! **'सततं यततां'** निरन्तर यत्न कर, अनुभव कर। यत्न का अर्थ अनुभव। आहाहा! है न?

यत्न करो। अखण्डधाराप्रवाहरूप यत्न करो। यत्न-यत्ना उसकी कर, नाथ की। आहाहा! एक समय भी उसे विसार नहीं। आहाहा! ऐसा समय कहाँ मिले इसमें? बाहर में पैसे पैदा होते हों। पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख। करोड़ोंपति ऐसे बेचारे मशगूल-मशगूल। पाप में। आहाहा!

प्रभु तो ऐसा कहते हैं... सन्त कहते हैं, वे वीतराग के आड़तियाँ हैं। जिनेन्द्रदेव के आड़तिया हैं, वे माल देते हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्त... आहाहा! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर से उछला है। पाँचवीं गाथा में कहा है न? कुन्दकुन्दाचार्य ने (कहा है)। मेरे निज वैभव से मैं इस शास्त्र को कहूँगा। मेरा निज वैभव कौन? कि आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन। मैंने मेरे अतीन्द्रिय आनन्द का बहुत-बहुत वेदन (प्रगट किया है), वह जिसमें मोहरछाप है। जैसे मोहरछाप लगाते हैं न पत्र में? उसी प्रकार हमारे अनुभव में आनन्द की मोहरछाप है। आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं कि निज वैभव से मैं कहूँगा। मेरा निज वैभव क्या? कि अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ मेरा प्रभु, उसमें से मैं अतीन्द्रिय

आनन्द को बाहर निकालकर वेदन करता हूँ। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द प्रचुर, स्व-स्वयं से प्रत्यक्ष वेदन करूँ, वह मेरा निज वैभव है। आहाहा! यह मुनिराज का यह वैभव। आहाहा! उसे मुनि कहते हैं। वे कहते हैं कि मैं मेरे निज वैभव से यह समयसार कहूँगा। प्रभु! तू प्रमाण करना, हों! ऐसा वापस कहा है। आहाहा! भगवान! तू अनुभव से प्रमाण करना। यह गजब बात है न! यह वे कहते हैं। **अखण्डधाराप्रवाह...** जैसे पानी का प्रपात गिरे अखण्ड। है न कहीं? नहीं गये थे कैसा जोग?

मुमुक्षु : जोगफॉल।

पूज्य गुरुदेवश्री : जोगफॉल गये थे न वहाँ। पानी का धोध गिरता है ऐसे, धारावाही। ऊपर से। वह धारावाही प्रपात।

इसी प्रकार अन्दर में ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरस से भरपूर प्रभु, उसका पर्याय में उसे अखण्ड धारा से अनुभव कर। आहाहा! जिसमें बीच में राग न आवे, टूटक न हो। आहाहा! जैसी चीज़ नित्य और ध्रुव है, वैसी ही पर्याय में ध्रुवता, अटूटता ला। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह सूत में पुणी नहीं साँधते? सूत कातते हैं न? एक पुणी हो गयी हो तो दूसरी पुणी ऐसे सांधे। गाँठ पड़ने न दे। रुई की पुणी। एक जहाँ पूरी हो, वहाँ दूसरी। बीच में गाँठ पड़ने न दे। इसी प्रकार भगवान को अखण्ड धाराप्रवाह अन्दर में अनुभव-यत्न कर, कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें सुनना भी मुश्किल पड़े।

मुमुक्षु : सुनने को मिले नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले ऐसा नहीं। अरेरे! क्या हो? बापू! सब खबर है न! आहाहा!

'दाह लाग्यो दुनियामां बेनुं क्यां जाईने कहीअे।' ऐसा एक आता है। भजन में एक भक्ति आती है। 'दाह लाग्यो दुनियामां बेनुं क्यां जाईने कहीअे?' आहाहा! पुण्य और पाप की दाह लगी है अन्दर। अग्नि की ज्वाला सुलगती है। यह राग की क्रिया, वह भी कषाय की अग्नि की ज्वाला है। आहाहा! भगवान की शान्ति वहाँ जलती है। अरे! ऐसी बातें किस प्रकार की? जिनेश्वर का मार्ग तो दया पालना, कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन नहीं करना, ब्रह्मचर्य पालना, महाव्रत पालना। ऐसी क्रिया हो, ऐसा सुना था।

अब यह दूसरे प्रकार की (बात) कहाँ से निकाली ऐसी? आहाहा! भाई! यहाँ तो भव के अभाव की बात है। जो क्रिया भव के अभावरूप न हो, वह क्रिया ही नहीं है। आहाहा!

अखण्डधाराप्रवाहरूप यत्न करो। 'यततां' यतियों। हे यतियों! यत्न करो, पुरुषार्थ। आहाहा! बाहर के रस को छोड़ दे, प्रभु! एक बार। और अतीन्द्रिय आनन्द के रस को एक बार तो चाट। आईसक्रीम नहीं लेते? आईसक्रीम। लड़के चूसते हैं। आनन्द का नाथ अन्दर पड़ा है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। तुझमें अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द पड़ा है, प्रभु! भाई! आहाहा! अरिहन्त परमात्मा को जो अनन्त आनन्द प्रगट होता है, वह कहाँ से आया? बाहर से आता है कहीं? त्रिलोकनाथ अरिहन्तदेव सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य (प्रगट किये), वह सब कहाँ से आया? वह कुँए में पड़ा है तो हौज में आता है। आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं। वह वस्तु के स्वरूप में सब पड़ा है अन्दर। उसमें एकाग्र करके बाहर निकलाते हैं। यह क्रियाकाण्ड से कुछ आता नहीं, ऐसा कहते हैं। निर्जरा अधिकार है न? आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, प्रभु! तू भगवन्तस्वरूप है, तेरा जिनस्वरूप है। आहाहा! उसे अन्दर में चूस। एकाग्र होकर अखण्डधाराप्रवाहरूप से... आहाहा! यत्न करो।

किस कारण के द्वारा 'निजबोधकलाबलात्' शुद्ध ज्ञान... जो निज-अपना ज्ञान, हों! इतना शास्त्र का ज्ञान और वह सब अध्ययन शुभ विकल्प में गया। निज-अपना शुद्ध ज्ञान उसका। निज का अर्थ यह किया। शुद्ध। शुद्ध वह स्वयं ही स्वयं। ऐसा। **शुद्ध ज्ञान, उसका प्रत्यक्ष अनुभव,...** कला। वर्तमान। कला अर्थात् कलयन, अभ्यास, अनुभव। कला, कलयन, अभ्यास, अनुभव। वह वर्तमान प्रत्यक्ष अनुभव, **उसके सामर्थ्य द्वारा...** आहाहा! सूक्ष्म बात तो है, प्रभु! क्या हो? इसने कभी किया नहीं। (ऐसी बात) सुनने को मिलती नहीं। क्या कहा?

मुमुक्षु : बात अब सूक्ष्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म नहीं? बात सच्ची, भाई! अब बाहर बहुत बात आ गयी है। सच्ची बात भाई की। आहाहा!

मुमुक्षु : अभ्यास करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास करे तो हो सकता है। घर की चीज़ है। घर में जाना है न। वह ढोर जैसे मनुष्य... ढोर हो। सवेरे बाहर निकाले तो मुश्किल-मुश्किल से निकले। और शाम को दरवाजा बन्द हो तो सिर मारे, अन्दर जाने के लिये। गायों को बाहर निकाला हो न? तो मुश्किल-मुश्किल से बाहर जाये। और शाम को तो कोई व्यक्ति भी न हो लाने में और आकर दरवाजा बन्द हो तो सिर मारे। अन्दर चारागाह जाने के लिये घर में। घर में जाने के लिये सिर मारे। इसी प्रकार घर में जाने के लिये राग से भिन्न पड़कर सिर मार अन्दर में। आहाहा! अरे! पहले ज्ञान तो, श्रद्धा तो कर कि मार्ग यह है। समझ में आया? आहाहा!

प्रत्यक्ष अनुभव, उसका समर्थपना उससे। आहाहा! **निश्चय से ज्ञानपद जितनी क्रिया है, उससे अप्राप्य है,...** आहाहा! जितनी यह व्रत की क्रिया, शुभोपयोग की क्रिया, पंच महाव्रत की, शास्त्र के अध्ययन की, उस क्रिया से भगवान आत्मा की प्राप्ति अप्राप्य है। पानाचन्दभाई! ऐसा सब सुना नहीं, वहाँ के वहाँ कमाने में और कमाने में। यह तो भाई गुजर गये और यह निवृत्ति ली, इतना ठीक किया। विशेष कहा जायेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ५, मंगलवार, दिनांक-१५-११-१९७७, कलश-१४४, प्रवचन-१५०

आज वचनामृत का मुहूर्त होता है। हमारे हसमुखभाई कहे, थोड़ा शुरु करना। हमारे मण्डल के पुराने हैं। वहाँ स्थानकवासी में मुख्य थे। हमारे सामने ही इनका घर है।

यह बहिन का वचन है। **द्रव्य उसे कहते हैं...** यहाँ समुच्चय बात है। परन्तु आत्मा की मुख्य बात है। वरना द्रव्य तो छह द्रव्य है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ने छह द्रव्य सर्वज्ञपने में देखे हैं। उसमें यहाँ अपने द्रव्य में आत्मा विशेष लेना है। दूसरे अनन्त परमाणु आदि जड़ हैं। एक आकाश है, धर्मास्ति, अधर्मास्ति है।

यहाँ तो आत्मद्रव्य अर्थात् वस्तु। भगवान आत्मा इस जड़ शरीर से अन्दर भिन्न है। कर्म जो हैं, आठ कर्म, जो धूल-रजकण, वे भी जड़ और भिन्न हैं। अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वे पुण्य हैं, वे भी आत्मा से भिन्न चीज़ है। आहाहा! और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना के भाव, वह पापवासना, वह भी आत्मा से भिन्न है और उससे भगवान आत्मा भिन्न है। वह आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु है। सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव परमेश्वर ने उसे ऐसा देखा है उन्होंने, प्रत्येक आत्मा वह शुद्ध चैतन्यघन है। वह आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्दघन है। उसे खबर नहीं। अनन्त काल से ऐसे का ऐसा चौरासी लाख में अवतार गँवाये। मर गया अवतार कर-करके। परन्तु वह वस्तु क्या है, उसका इसने ज्ञान किया नहीं। आहाहा! दूसरा डोढ डाह्या (चतुर) संसार का हुआ। और पैसे प्राप्त किये करोड़ों-अरबों रुपये धूल। धूल-धूल। सच्ची बात होगी? यह सब तुम्हारी जवाहरात-बवाहरात धूल। आहाहा!

प्रभु अन्दर चैतन्यमूर्ति है अनादि। जो स्वयंसिद्ध चीज़ है, जो अविनाशी है, जिसकी उत्पत्ति नहीं। है, उसकी उत्पत्ति क्या? और है, उसका नाश क्या? और है, वह चीज़ अपने गुण और स्वभाव से खाली नहीं होती। जैसे शक्कर उसके मीठेपन के स्वभाव से खाली नहीं होती, उसी प्रकार भगवान आत्मा देह से भिन्न, उसके अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान के स्वभाव से भिन्न चीज़ नहीं है। वह भरपूर चीज़ है। आहाहा! यहाँ उसे द्रव्य कहा जाता है।

यह तो एक शब्द की पहली व्याख्या है। बापू! सूक्ष्म बातें, भाई! इसने धर्म तो अनन्त काल में चौरासी के अवतार, अनन्त-अनन्त चैरासी लाख के किये। चौरासी लाख योनियों में एक-एक में अनन्त अवतार किये। स्वर्ग के भी अनन्त किये। अरबोंपति सेठिया धूल का स्वामी जो कहलाता है, वह अनन्त बार हुआ। परन्तु आत्मा अन्दर कौन है, उसकी इसने खबर नहीं की, विचार नहीं किया, अनुभव नहीं किया।

कहते हैं कि **द्रव्य...** वस्तु अन्दर वह आत्मा सत् अर्थात् शाश्वत्, सच्चिदानन्द— ज्ञान और आनन्द का भरपूर भगवान, छलाछल ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर, उसे यहाँ द्रव्य कहा जाता है। जगत की भाषा से सब यह अलग बातें हैं। यह **द्रव्य उसे कहते हैं...** आहाहा! यह वस्तु भगवान अन्दर है, उसे द्रव्य कहते हैं **कि जिसके कार्य के लिये...** सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह वस्तु ऐसी है कि... द्रव्य अर्थात् वस्तु और कार्य अर्थात् उसकी दशा। वर्तमान दशा। उसकी वर्तमान दशा के लिये अर्थात् कि वर्तमान कार्य के लिये। यह तो सर्वज्ञ की अमृत वाणी है। यह सूक्ष्म बातें, बापू! अभी तो सब गड़बड़ चली है।

मुमुक्षु : गड़बड़ उड़ जाने लगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। यह ऊपर पाटिया है। इसका ही चौका (पाटिया) है। ऊपर पाटिया है देखो यह। यह सब चौके ये हैं। यह सब इसके भरे हुए। वचनामृत के हैं सब।

द्रव्य अर्थात् अन्तर भगवान आत्मा। द्रव्य अर्थात् कि द्रवति इति द्रव्यं। जैसे पानी है द्रव्य तो पानी में तरंग उठती है अन्दर। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, सूक्ष्म बात, प्रभु! यह वस्तु, उसे सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। वह वाणी यहाँ है। **उसे कहा जाता है कि जिसके कार्य के लिये...** जिसकी अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट करने के लिये। कार्य अर्थात् यह। यह (शरीर) तो मिट्टी, धूल, जड़ है। धूल है, अजीव है। कर्म भी मिट्टी, धूल, अजीव है। और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग के भाव होते हैं वे पाप हैं, दुःख हैं, मैल हैं और दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के भाव हों, भगवान की भक्ति या व्रत, तप, वह सब विकल्प—राग और मैल है। आहाहा! उससे

भिन्न भगवान आत्मा वस्तु जो है, पदार्थ है, अस्ति है, मौजूदगी चीज़ है। जिसमें अनन्त अनन्त जगत के पदार्थ, जिसकी सत्ता में—जिसके अस्तित्व में ज्ञात होते हैं, ऐसी चैतन्यसत्ता, उसे यहाँ द्रव्य कहा जाता है। आहाहा!

उसके कार्य के लिये। **जिसके कार्य के लिये...** आहाहा! अर्थात्? कि आत्मा को द्रव्य के, मोक्ष के कारणरूप, मोक्ष के मार्ग के लिये। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर निश्चय... बापू! सूक्ष्म बात है, भगवान! जिनेन्द्रदेव परमेश्वर की बातें बहुत सूक्ष्म हैं। लोगों को कहाँ दरकार पड़ी है? यह होली, पूरे दिन दुकान धन्धा-पानी और पाप के पोटले बाँधे २०-२०, २२ घण्टे। घण्टे, दो घण्टे सुनने जाये, वहाँ उलटा मिले। उसे यह वास्तविक तत्त्व क्या है, इसकी खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं कि जो द्रव्य है, उसके कार्य के लिये। द्रव्य वस्तु है वह कारण है। अब उसकी वर्तमान निर्मल वीतरागी धर्मदशा, आनन्ददशा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो दशा, वह मोक्ष का मार्ग या मोक्ष, दोनों कार्य हैं। **जिसके कार्य के लिये...** आहाहा! **दूसरे साधनों की...** बहुवचन है। इसमें एकवचन लिखा गया है। उसे दूसरे साधनों की (अर्थात् कि) कोई शरीर की, वाणी की और मन की या पुण्य के परिणाम, दया, दान, व्रत के परिणाम की, उसे आत्मा में शान्ति के धर्म के कार्य के लिये या रागादि की राह (देखने की) उसे आवश्यकता नहीं है। आहाहा! भगवान सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या कहें? आहाहा! कान्तिभाई! हसमुखभाई ने माँगा था, बापू! वे कहे... मुझे वहाँ मुहूर्त करो। आहाहा! प्रभु! यह तेरा मुहूर्त है। इसे वास्तु कहते हैं कि जो चीज़ में अन्दर आनन्दकन्द प्रभु है, उसमें बसे, उसे वास्तु कहते हैं। यह सब मकान के वास्तु सब समझने जैसे हैं। पोपटभाई!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं... वह वाणी बहिन की है। परन्तु है वाणी वीतराग की वाणी है, उसे बहिन ने कहा है। समझ में आया? ३१०० पुस्तकें प्रकाशित हो गयीं। समाप्त हो गयी। भाई ने सबको दी है। हसमुखभाई ने बहुत सर्वत्र बाँटे हैं न? बोटाद में दिये हैं न? सर्वत्र दिये हैं। भावनगर दिये, यहाँ दिये हैं। ३१०० समाप्त हो गयी हैं। अब ६००० गुजराती प्रकाशित होती है और १०,००० हिन्दी प्रकाशित होती है। १६,०००

प्रकाशित होती है। वह जितने आत्मधर्म के ग्राहक हैं, उन सबको भेंट देनेवाले हैं।

यहाँ कहते हैं, उसमें चौरासीवाँ बोल है, अवतार को टालने का बोल है यह आहाहा! चौरासी लाख योनि, भगवान! एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये प्रभु! तू दु:खी है। आहाहा! तुझे सुख कहाँ है इसकी खबर नहीं। इस पैसे में सुख और इज्जत में सुख और धूल में सुख (मानता है)। बापू! प्रभु! सुख तो तेरे अन्तर में पड़ा है। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी, मृग को कस्तूरी की कीमत नहीं। यह हिरण। मृग की नाभि में कस्तूरी। नाभि में। उसकी गन्ध आने पर मानो यह वन में से आती होगी? परन्तु यहाँ (अन्तर में) है, इसकी उसे खबर नहीं होती।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द उसकी नाभि में, उसके घर में पड़ा है। अरे! यह अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसे यहाँ द्रव्य कहते हैं। उस द्रव्य के कार्य के लिये वर्तमान आनन्द का कार्य प्रगट करने के लिये या वर्तमान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का मार्ग, वह सम्यक् सत्यदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्रगट करने के लिये, उस द्रव्य के कार्य के लिये दूसरे द्रव्य के साधन की राह (देखने) की उसे आवश्यकता नहीं है। पोपटभाई! यह तो तुम्हारे आ गया है। पढ़ा है न?

जिसके कार्य के लिये... अर्थात् कि आत्मा के मोक्ष को मार्ग के कार्य के लिये। अर्थात् कि मोक्ष की पूर्ण आनन्द की पर्याय (होने के लिये)। मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द की दशा प्रगट होना, वह मोक्ष। मोक्ष अर्थात् अनन्त दु:ख से मुक्त हो जाना और अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु है, वह प्रगट होकर अतीन्द्रिय आनन्द दशा में आवे, उसका नाम मोक्ष। मोक्ष वह कार्य है और उसके कारणरूप जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भी कार्य है। उस कार्य के लिये **दूसरे साधनों की...** साधन एक शब्द है, इसमें एकवचन है। परन्तु सब साधन अर्थात् कोई शरीर हो तो यह तो इस आत्मा का कार्य हो, दया-दान के परिणाम हो तो आत्मा का कार्य हो, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर केवली तीर्थंकरों ने वर्तमान कार्य में पर्याय में जिसने प्रगट किया, ऐसा प्रभु आत्मा सब अन्दर विराजता है।

उसे अपने **जिसके कार्य के लिये...** जिसके कार्य के लिये। आहाहा! **दूसरे साधनों की...** शरीर के संहनन की अनुकूलता हो और बाहर की अनुकूलता हो, अन्दर दया, दान और भक्ति के परिणाम शुभ हों, ऐसे पर साधन के राह की आत्मा के धर्म के कार्य के लिये आवश्यकता नहीं है। सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : देशनालब्धि?

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारा अभी काम नहीं। समझ में आया? अभी काम नहीं तुम्हारा। यहाँ तो देशनालब्धि क्या? अन्दर में राग की मन्दता हुई हो देशना सुनकर, उसकी भी अपेक्षा नहीं उसे। ऐसी बात है। जिसके आनन्द के नाथ को... आहाहा! यह कल नहीं कहा था? कल और बहुत बार कहते हैं।

शक्करकन्द होता है न? (गुजराती भाषा में) शक्करिया-शक्करिया (कहते हैं)। शक्करकन्द। उसकी जो छाल है-लाल छाल, वह लाल छाल न देखो तो वह शक्करकन्द है। शक्करकन्द अर्थात्? शक्कर की मिठास का पिण्ड है वह। शक्करिया, अपने फिर भाषा ऐसी हो गयी है। शक्करकन्द। मूल तो शक्कर का (मिठास का) पिण्ड है। शक्कर की मिठास का पिण्ड है। एक लाल छाल बिना देखो तो।

इसी प्रकार भगवान आत्मा को पुण्य-पाप के विकल्प की, वृत्ति की छाल न देखो तो वह भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द पड़ा है। आहाहा! कहाँ कहना? कौन सुने? पूरी जिन्दगी दुनिया की मजदूरी की है। यह व्रत, तप, भक्ति के परिणाम भी मजदूरी दुःखदायक है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। यह वृत्तियाँ हैं, राग के उत्थान के कार्य हैं। वह आत्मा का स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की... बहुवचन है। उसे मनुष्यपना हो तो ही आत्मा का कार्य हो, संहनन मजबूत हो तो आत्मा का केवलज्ञान कार्य और मोक्षमार्ग हो, ऐसे पर के कार्य के साधनों की। अर्थात् बहुत साधनों की, कोई साधन की जिसे आवश्यकता नहीं। पोपटभाई! इस प्रकार दिया। नहीं तो छपकर आयेगा बाहर... सबके हाथ में होगा न, जब अर्थ होता हो, तब अधिक ठीक पड़ता है। इसलिए सोलह हजार प्रकाशित होती हैं। यह पुस्तक पाँच-पाँच की पड़ेगी। सबको भेंट दे देनेवाले हैं। परन्तु

सबके हाथ में हो फिर पढ़े तो अधिक (ख्याल में आवे)। क्योंकि इसका अर्थ कैसे होता है। नामा मिलान करते हैं न बनिया? यह दशहरे के, दिवाली के दिनों में नहीं मिलाते? तेरे पास इतना लेना, मेरे पास इतना निकलता है। तू कहता है दस हजार निकलते हैं और इसमें निकलते हैं पाँच हजार। मिलान करो। वहाँ बनिया मिलान करता है। यहाँ मिलान नहीं मिलता।

यहाँ आत्मा आनन्द का नाथ, प्रभु! सच्चिदानन्द सागर आनन्द के सागर से भरपूर प्रभु... आहाहा! उसके धर्म के कार्य के लिये, उसके मोक्ष के मार्ग के कार्य के लिये, उसकी मोक्षरूपी पर्याय के कार्य के लिये... आहाहा! है? **दूसरे साधनों की राह नहीं देखनी पड़ती।** आहाहा! यह मांगलिक पहला शुरु किया। पाटिया यह है, देखो! ऊपर होगा। **द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की...** इतना चाहिए। **राह देखनी न पड़े।** आहाहा! जिसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव, उसका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र, इस कार्य के लिये व्यवहार दया, दान के रत्नत्रय की राह देखनी नहीं पड़े। आहाहा! समझ में आया?

भगवान अन्तर में बसने के लिये... आहाहा! उसे बाहर के कोई विकल्प के कारणों की राह देखनी न पड़े। सूक्ष्म (बात) है, प्रभु! यह तो सब भगवान है, भाई! अन्तर स्वरूप से तो भगवान ही है। तब भगवान अरिहन्त हुए कहाँ से? वह बाहर से कोई आते हैं? परमात्मा सर्वज्ञ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द को प्राप्त हुए, वे कहाँ से प्राप्त हुए? कहाँ से आया? बाहर से आता है कुछ? अन्दर में पड़ा है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरा नाथ अनन्त गुण की शक्ति से भरपूर भगवान है। उसे धर्म के कार्य के लिये,... संसार के कार्य तो पाप के हैं, उसका यहाँ प्रश्न है नहीं। आहाहा! उसे आत्मा की शान्ति... शान्ति... शान्ति... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के लिये दूसरे साधनों की राह देखनी नहीं पड़ती। आहाहा! एक टुकड़ा यह और एक टुकड़ा सौवीं गाथा (पृष्ठ) में लेते हैं। सौ। हसमुखभाई ने माँग की है। कल ना किया था। परन्तु अभी कहा, ले लेते हैं। सौ पृष्ठ है। उसकी अन्तिम लाईन ली जायेगी। अन्तिम लाईन। है? क्या है यह?

मुमुक्षु : जागता जीव ध्रुव है...

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह। लो! इसमें लिखा है। **जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये? अवश्य प्राप्त होगा ही।** यहाँ लिखा है। वह यह शब्द है। कान्तिभाई! कभी सुना नहीं वहाँ तुम्हरे बोटाद में सब। बोटाद में २१ वर्ष रहे हैं न! वहाँ चातुर्मास भी बहुत किये। तुम्हारे उपाश्रय में। (संवत्) १९७० का चातुर्मास, ७४ का चातुर्मास, ७७ का चातुर्मास, ७९ का चातुर्मास, ८० का चातुर्मास सब बोटाद किये। आहाहा! बापू! यह बात दूसरी, भाई! यह मार्ग त्रिलोकनाथ का दूसरा है। यह अब यहाँ निचला एक शब्द लेना है।

जागता जीव ध्रुव है वह... यह सामने है। कान्तिभाई! इस पाटिया में तुम्हारे चिरंजीवी ने लिखा है। **जागता जीव ध्रुव है...** ध्यान रखना शब्दों में। यह शब्द कहीं कथा नहीं, बापू! यह तो कोई अलौकिक बाते हैं, भाई! आहाहा! **जागता जीव ध्रुव है...** क्या कहते हैं? यह जगत है, उसे जानता है, वह जाननेवाला चैतन्य आत्मा है। जाननेवाला ज्ञायक प्रभु ज्ञातादृष्टा ज्ञायक-जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला के रस से भरपूर। वह जागता अर्थात् जाननेवाला जीव। **जागता जीव...** दो ज-जा हो गये। **जागता जीव...** अन्दर चैतन्यमूर्ति भगवान जागता जीव है। आहाहा! चैतन्य के स्वपरप्रकाश के स्वभाव से भरपूर भगवान, वह जागता जीव (ध्रुव है)। शास्त्रभाषा उसे ज्ञायक कहती है। परन्तु यह तो सादी गुजराती भाषा में लिखा है।

जागता जीव ध्रुव है... उभो छे अर्थात्? ध्रुव है न अन्दर। आहाहा! जागता जीव ध्रुव है न, ध्रुव है... ध्रुव है। आहाहा! है... है... है... है... है... है... है... अनादि से ध्रुव है। ध्रुवरूप से है। निश्चय ध्रुव नित्यानन्द प्रभु है। आहाहा! समझ में आया? **जागता जीव ध्रुव है...** यह इसका अर्थ इतना। ज्ञायकभाव वह ध्रुव है न! **जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये?** क्या कहा? सुनो! आहाहा! जिसकी सत्ता में जगत ज्ञात होता है। यह जाननेवाला भगवान अन्दर ज्ञायकमूर्ति सच्चिदानन्द प्रभु, वह जागता-जागता है। सोता नहीं, वह जागता ज्ञायक है। और वह खड़ा है न? खड़ा है अर्थात्? है न ऐसा का ऐसा नित्य। अनादि का ज्ञायक आत्मा अनादि का नित्य है। यह घर में कहीं समझ में आये, ऐसा नहीं है इसमें। कान्तिभाई! यह अलग बात है न, बापू! आहाहा! और यहाँ चलती है, कहाँ यह बात सम्प्रदाय में? आहाहा! क्या हो?

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव, यह वाणी बहिन की, वह वाणी दिव्यध्वनि की वाणी है। समझ में आया? भाई हमारे चिमनभाई ने तो लिखा है वहाँ से। चिमनलाल ठाकरसी। तुमने बहिनश्री के वचनामृत लिखे हैं परन्तु बहिन के वचनामृत दिव्यध्वनि के आगम के वचनामृत हैं, ऐसा लिखो। आया है न कल? पढ़ा है न कल? सुरेन्द्रभाई! चिमनभाई का पत्र आया है। चिमनभाई ठाकरसी।

मुमुक्षु : मोदी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोदी।

जागता जीव ध्रुव है... इस शब्द में मर्म है। सादी भाषा। प्रभु! तू जानन स्वभाव से, जानन स्वभाव से, जानन स्वभाव से खड़ा है—ध्रुव है न! **वह कहाँ जाये?** ध्रुव ज्ञायक प्रभु आत्मा, वह कहाँ जाये? आहाहा! वह क्या राग में आवे? वह शरीर में आवे? उसकी पर्याय में जागता जीव पर्याय में आवे? कहते हैं। आहाहा! **जागता जीव ध्रुव है...** न। ऐसे खड़ा / ध्रुव है न, अनादि-अनन्त प्रभु है न। समझ में आया? पुस्तक दी है न भाई! बालकृष्णजी! पुस्तक दी है घर में। दी है। आहाहा!

यह मृग की नाभि में कस्तूरी, उसी प्रकार तेरे घर में अन्दर ज्ञायकभाव भरपूर प्रभु। जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... ज्ञानरस से भरपूर तत्त्व। वह ज्ञायकभाव से खड़ा है न! ज्ञायकभाव से अर्थात् जागता वह जीव ज्ञायक जीव खड़ा है न? ऐसे पड़ा है न ध्रुव। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह कहाँ जाये? ध्रुव वस्तु है, वह कहाँ जाये? आहाहा! पलटती अवस्था है, वह तो पलटे। एक समय में आवे और दूसरे समय में पलटे, विचार। परन्तु वस्तु ध्रुव है, वह कहाँ जाये? आहाहा! समझ में आया?

अवश्य प्राप्त होगा ही। बस। आहाहा! ध्रुव है न प्रभु वहाँ। अब तुझे वहाँ जाना है। जहाँ खड़ा है वहाँ जाना है। ध्रुव है भगवान अन्दर-अन्दर। वह अवश्य वहाँ जाने से तुझे प्राप्त होगा। आहाहा! बलुभाई! आहाहा! है? अवश्य प्रभु खड़ा / ध्रुव है न, ऐसा का ऐसा। आहाहा! उसे कहीं शोधना पड़े, ऐसा नहीं है। है न ऐसा का ऐसा। है वहाँ जाना है, अवश्य तुझे प्राप्त होगा। आहाहा! राजेन्द्रभाई! पुस्तक दी है न? आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? चाहे जितने भव व्यतीत हुए, चाहे जितने रागादि और द्वेषादि आये और गये। परन्तु प्रभु अन्दर तो ज्ञायकरस से तो अनादि ध्रुवरूप से खड़ा है। आहाहा! सामने दो चौके (पाटिया) में है। **जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये?** अर्थात् क्या? ध्रुव है, वह कहाँ जाये? नित्यानन्द प्रभु है न! आहा! नित्य प्रभु है, वह कहाँ जाये? अनित्य में न आवे तो अन्यत्र कहाँ जाये? आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें तो साहेब कुछ करने का आता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करने का आता नहीं? अन्दर जाना, वह करने का नहीं? कूदना है कुछ? बाहर में कूदना है? अन्तर में ध्रुव है, उसकी नजर करे, वह करने का नहीं? करने का तो यही है। बाकी धूलधाणी है सब। यह प्रश्न नारद है। कहो, समझ में आया? बारह महीने में आवे किसी दिन, बाकी फिर वहाँ भटके घर में। यह सब समझने के लिये समय चाहिए।

जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये? कहाँ जाये, यह वचन है। ध्रुव है, वह कहाँ जाये? प्रभु नित्य है न। अनादि है न! अनादि है, अनन्त काल रहनेवाला है। आदि और अन्त बिना की चीज़ अन्दर है। वह चीज़ कहाँ जाये? आहाहा! समझ में आया? इसलिए **अवश्य प्राप्त होगा ही।** प्रभु! वहाँ नजर कर तो तुझे निधान मिले, ऐसा है। परन्तु वहाँ नजर करनी चाहिए। नजर बाहर में घूमा करती है अनादि से। भगवान ध्रुव जहाँ विराजता है, वहाँ नजर नहीं की। लो, यह दो बोल ८४ और १०० हुए। (अब) अपने चलता (अधिकार)।

कलश - १४३ पर प्रवचन

टीका १४३। लो, आधे घण्टे चला। १४३ कलश फिर से लेते हैं। **इस कारण से...** है? **अहो विद्यमान है...** लो, भाषा यह आयी वापस।

मुमुक्षु : जागता जीव आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जागता। यह विद्यमान वस्तु है न! आहाहा! यह अमृतचन्द्राचार्य

दिगम्बर सन्त की वाणी। उसकी राजमल टीका करते हैं। हजार वर्ष पहले मुनि हो गये। दिगम्बर सन्त जंगलवासी। आत्मा के आनन्द के उफान को वेदन करनेवाले। अतीन्द्रिय आनन्द का उफान, वह उफान। दूध का उफान आये, वह पोला आता है। दूध हो न पाँच सेर? नीचे अग्नि जले परन्तु वह कहीं दूध पोल में बढ़ता नहीं। वह तो पोला बढ़ता है। यह उफान आत्मा आनन्द का नाथ भगवान... आहाहा! वह **विद्यमान है जो त्रैलोक्यवर्ती जीवराशि...** आहाहा! तीन लोक में वर्तनेवाले जीव की राशि-ढ़ेर पड़े हैं जीव के। अनन्त आत्मायें हैं।

वह इस पद का अर्थात् निर्विकल्प शुद्ध ज्ञानमात्रवस्तु उसका... आहाहा! प्रभु! लो यह आया वापस। आहाहा! हे **त्रैलोक्यवर्ती जीवराशि...** तीन लोक में अनन्त जीव के ढ़ेर पड़े हैं। आहाहा! उसे सामूहिक निमन्त्रण है। कहते हैं, वह निर्विकल्प शुद्ध ज्ञानवस्तु है। जागता कहा था न? विकल्प बिना का अभेद ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान का **निरन्तर अभ्यास करने के निमित्त... 'सततं यततां'** आहाहा! ऐसा जो भगवान विद्यमान नित्यानन्द प्रभु, उसका अखण्ड धारा से, उसके सन्मुख होकर आत्मा के अनुभव का अखण्डधारा से प्रयत्न कर। आहाहा! उसे अवश्य मोक्ष होगा, उसे अवश्य मोक्ष का मार्ग उसमें से प्राप्त होगा। अन्यत्र कहीं मिले ऐसा नहीं। आहाहा! क्या कहा? लो! यह मिलता आया उसके साथ। विद्यमान खड़ा है वह।

शुद्धज्ञानमात्रवस्तु उसका निरन्तर अभ्यास करने के निमित्त... यह कार्य, यह पुरुषार्थ। अन्तर्मुख होकर उसका अभ्यास कर। आहाहा! दया, दान, विकल्प जो राग है, उससे भिन्न करके भगवान ज्ञानमात्र वस्तु प्रभु है, उसका अखण्डधाराप्रवाह अभ्यास कर। आहाहा! है? **'सततं'** निरन्तर **अखण्डधाराप्रवाहरूप यत्न करे। किस कारण के द्वारा? 'निजबोधकलाबलात्' शुद्धज्ञान...** निज अर्थात् शुद्ध और बोध वह ज्ञान अर्थात् अपना शुद्धज्ञान। पवित्र ज्ञानस्वभावी जो त्रिकाली प्रभु... आहाहा! **प्रत्यक्ष अनुभव... 'कला' 'कला'** ली है न? आहाहा! वह आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय और अनाकुल शान्ति के रस से भरपूर, उसकी कला और प्रत्यक्ष अनुभव। आहाहा! यह उसे करने का है। है?

उसका प्रत्यक्ष अनुभव, उसका समर्थपना उससे। आहाहा! **क्योंकि निश्चय से ज्ञानपद...** भगवान ज्ञान का प्रभु, उसका जो पद है स्वरूप की प्राप्ति... आहाहा! वह **जितनी क्रिया है, उससे अप्राप्य है...** आहाहा! वाणी कठिन पड़े सम्प्रदाय को। जितनी क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, तप और पूजा वह सब क्रियाकाण्ड से वह वस्तु मिले ऐसी नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह सब विकल्प की वृत्ति का उत्थान है। उत्थान वृत्ति है, राग है। आहाहा! कठिन काम बहुत। है?

निश्चय से ज्ञानपद जितनी... 'कर्म' अर्थात् क्रिया। यह कार्य। यह राग का कार्य, दया का, व्रत, तप, अपवास, भक्ति, पूजा और मन्दिर बनाना, यह सब राग की क्रिया है। कर्म अर्थात् राग। आहाहा! उस राग की क्रिया से **अप्राप्य है...** उसके द्वारा वह वस्तु मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! **और...** पहले नास्ति से बात की, अब अस्ति से करते हैं। यह विवाद अभी सबको पड़ता है। पण्डितों को और पढ़े हुए को। यह हम व्रत करते हैं, अपवास करते हैं, ऐसा करते हैं और तुम कहते हो कि धर्म नहीं? सुन न अब, धर्म कहाँ था? ऐसा तो अनन्त बार किया है। वह तो राग की क्रिया है। तुझे खबर नहीं। समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' महाव्रतादि अनन्त बार लिये और अनन्त बार किया है। उस क्रियाकाण्ड से भगवान आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया, ऐसा कहा जाता है न? समझ में क्या आया? वह तो सही परन्तु कुछ अर्थात् उसकी पद्धति समझ में आती है? उसकी रीति-रीति। आहाहा! प्रभु! यह तो ऐसी बात है। हों! प्रभु! तू अन्दर भगवान परमात्मस्वरूप ही तू है अन्दर। आहाहा! उसकी प्राप्ति के लिये अन्य क्रियाकाण्ड से प्राप्त हो, वह चीज़ ऐसी नहीं है। आहाहा! णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... किया करे। लाख-करोड़ अनन्त बार कर तो भी विकल्प है। उससे प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, ले।

मुमुक्षु : ऐसा समझकर फिर करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझकर क्या करना था? कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि है। करे तो। आ जाये वह अलग बात है। कर्ता होकर करे तो मिथ्यादृष्टि है। झूठी दृष्टि। वस्तु

आनन्दकन्द प्रभु है, उसे राग का कर्ता सिद्ध करना और राग का कर्ता बनाना, (वह मिथ्यादृष्टि है)। आहाहा! कठिन बात, प्रभु! चलते प्रवाह से दूसरा प्रकार है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अन्दर ज्ञाता, ज्ञानस्वरूपी प्रभु। आहाहा! वह क्रिया से... जितनी क्रिया, कहा न? '**कर्मदुरासदं**' '**कर्म**' अर्थात् क्रिया। '**दुरासदं**' अर्थात् अप्राप्य। '**दुरासदं**' मिले ऐसा नहीं, बापू! छह-छह महीने के अपवास करके मर जा, सूख जा क्लेश करके। वह सब विकल्प है। तुझे खबर नहीं। आनन्द के नाथ में उस विकल्प की क्रिया से मिले, वह आत्मा ऐसा है नहीं। भगवानजीभाई! ऐसी बातें है। यह तो लोगों को चढ़ा दिया बेचारों को, अरे! पर्यूषण में आठ अपवास करे, चतुर्विध आहार त्याग करे, पानी पिये बिना (निर्जल उपवास)। अर्थात्... आहाहा! ठहरा दिया बेचारों को। अरे! मर जायेगा, सुन न अब। ऐसी बातें हैं, बापू! भाई! यह क्रियायें तो तूने अनन्त बार की हैं।

नौवाँ ग्रैवेयक है एक स्वर्ग। यह शरीर खड़ा होता है न? वैसे यह चौदह ब्रह्माण्ड शरीर के आकार खड़ा है। असंख्य योजन में। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा। उसकी ग्रीवा-ग्रीवा अर्थात् यह गर्दन। वहाँ विमान है। वहाँ भी प्रत्येक जीव अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। कौन सी क्रिया (करके वहाँ गया)? यह पंच महाव्रत की। यह तो अभी ऐसे परिणाम है ही नहीं। ऐसे पंच महाव्रत की शुक्ललेश्या के भाव, लेश्या श्वेत / उजली पुण्य की, उससे यह स्वर्ग में अनन्त बार गया है। परन्तु उस क्रिया के द्वार से भगवान आत्मा प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अप्राप्य है,... 'सहजबोध' द्वारा। आहाहा! '**सहजबोध**' की व्याख्या। स्वाभाविक ज्ञान अन्दर जो पड़ा है, उसका आश्रय करने से, ज्ञानस्वरूपी भगवान का ज्ञान सहज करने से ज्ञान से ज्ञानपद की प्राप्ति होगी। इस राग की क्रिया से वह प्राप्ति होगी नहीं। कठिन बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्ष कहा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्रिया (अर्थात्) ज्ञान की स्थिरता।

यह बात मैंने एक बार की थी। (संवत्) १९८२ के वर्ष में वढवाण चातुर्मास में

जाना था। तब राजकोट से उठकर चोटीला आये। तब रतनचन्दजी शतावधानी लींबडी के थे। उनके गुरु गुलाबचन्दजी थे। गुलाबचन्दजी बहुत वृद्ध, ५५ वर्ष की दीक्षा तब थी। परन्तु मेरी छाप तो दूसरी थी न उस समय भी। इसलिए मैं तो साधु को मानता नहीं कुछ उस समय भी। उपाश्रय में साथ उतरे। बहुत प्रसन्न हुए बेचारे। प्रसन्न हुए। वृद्ध थे। ५५ वर्ष की दीक्षा। बाद में तो फिर बीस वर्ष जीवित रहे। रतनचन्दजी शतावधानी थे। लींबडी संघाडा के। उनके गुरु गुलाबचन्दजी थे। सब मिले हैं न बहुत सब। उनसे मिलने के बाद उन्होंने प्रश्न किया। इकट्ठे हुए। बहुत प्रसन्न होकर, हों! बहुत प्रसन्न होकर। ओहोहो! तुम साथ में (उतरे)। अरे! हम आहार दें तो तुम नहीं लोगे। तुमको हमारा विश्वास नहीं है। परन्तु हम तुम्हारे लिये अभी आहार ले आवें कुछ। ज्येष्ठ महीना था। आम के टुकड़े ले आऊँ तो लोगे? मैंने कहा, ले आओ, ले आओ, जाओ ले आओ। उन्हें ऐसा कि हमारे हाथ का नहीं लेंगे। हमारी ऐसी छाप थी न! वह लिया तो प्रसन्न हुए।

फिर पूछा कि ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष कहा है न शास्त्र में? कहा, कौन सी (क्रिया)? ज्ञान आत्मा का ज्ञान और क्रिया स्वरूप में स्थिरता, वह क्रिया। बात तो सत्य लगती है। उन्होंने स्वीकार किया। गुलाबचन्दजी ने। ५५ वर्ष की दीक्षा। आहाहा! तब तो मुझे १२-१३ वर्ष की दीक्षा। (संवत्) १९८२ के वर्ष। १९७० में दीक्षा है न। अभी ६४ (वर्ष) दीक्षा को हुए। यह स्वीकार किया। बात सच्ची। ऐसा अभी तो चलता नहीं। न चलता हो तो क्या करना, कहा। आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञान है, उसका ज्ञान करके और फिर उसमें—ज्ञान में स्थिर होना, वह ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष है। स्वीकार किया। हमने तो मध्यस्थता से (कहा)। कहीं किसी का विरोध या मजाक न हो। वह भी आत्मा भगवान है। किसी के साथ विरोध, वैर का तो कोई कारण नहीं। स्वीकार किया।

दूसरी बात। दो बातें स्वीकार की। शास्त्र में मूर्ति है। मूर्ति पूजा ३२ सूत्र में है। तो हमको पूरी जिन्दगी शंका में गयी कि यदि शिष्य पढ़ेंगे तो हमको नहीं मानेंगे। ३२ सूत्र में मूर्ति की पूजा, सब है। स्थानकवासी ने अलग पंथ करके उत्थापित किया है। समझ में आया? पहिचानते थे? टोलिया! तुम्हारे लींबड़ी के गुलाबचन्दजी। बाद में तो

७५ वर्ष की दीक्षा और बहुत बड़ी उम्र में (स्वर्गवास हुआ)। शास्त्र में मूर्ति है। हमको भी लगता है। कहा, परन्तु है मूर्ति। मूर्ति की पूजा, भक्ति का शुभभाव सब है। परन्तु वह शुभभाव है। आहाहा! पुण्यभाव है। भगवान का विरह हो तो प्रतिमा की पूजा का भाव धर्मी को भी आता है। उसे उड़ा देना, वह मार्ग नहीं है, कहा। बात सच्ची कहे, परन्तु हमको तो शंकायें गई कि शास्त्र में है और यदि शिष्य पढ़ेंगे तो हमको गुरु नहीं मानेंगे। ऐसी बात हो गयी एकान्त में। नौ हुए न? ऐसी बात। हमने तो एक-एक बात परीक्षा करके सब (निर्णय) किया है, पहले से।

एक बार कहा नहीं? (संवत्) १९७३ का वर्ष है, १९७३। कितने वर्ष हुए? ६०। हमारे मूलचन्दजी थे। कान्तिभाई! मूलचन्दजी नहीं? हीराजी महाराज के शिष्य। हमारे गुरुभाई। मैं जीवाभिगम शास्त्र पढ़ता था। १९७३ के वर्ष की बात है। दामनगर। उसमें यह निकला कि देवलाक में जितनी शाश्वत् प्रतिमायें है, वे जिन की ऊँचाई प्रमाण में है। ऐसा पाठ निकला। मैंने अपने आप पढ़ा इसलिए। जितने तीर्थंकरों की ऊँचाई है, ऐसे प्रमाण में प्रतिमायें हैं। तब वे लोग यक्ष की प्रतिमा सिद्ध करते हैं, वे लोग। तब मैंने एकान्त में पूछा। कोई नहीं था, अकेले सो रहे थे। वे बहुत सोते रहते थे। बहुत अधिक सोते रहते थे। मूलचन्दजी। मैं अकेला दामनगर के पीछे वाड़ा में। मैंने कहा, इस जीवाभिगम में तो ऐसा निकलता है। शाश्वत् प्रतिमायें भगवान की विराजती हैं वे जिन के ऊँचे प्रमाण में हैं। जिन के ऊँचे प्रमाण में, यह यक्ष को उपमा नहीं दी जाती। यक्ष की प्रतिमा नहीं। वे सब स्थानकवासी यक्ष की प्रतिमा सिद्ध करते हैं। उन्होंने कहा, है तो तीर्थंकर की। आहाहा! तब से हमारी श्रद्धा उठ गयी। यह लोग, अरर! एकान्त में तीर्थंकर की कहे, बाहर में यक्ष की कहे!

यहाँ तो परीक्षा किये बिना मानना एक भी चीज़ नहीं। यहाँ तो सत्य की कसौटी चढ़ाकर सत्य को देखना और अनुभव करने की बात है। आहाहा! तब से मेरी श्रद्धा उठ गयी गुरु से। वे लोग स्थानकवासी शास्त्र में तीर्थंकर की प्रतिमायें हैं, उन्हें यक्ष की सिद्ध करते हैं और उड़ा देते हैं। नहीं, बात खोटी है। यहाँ तो अभी प्रतिमा माने और प्रतिमा की पूजा की भक्ति करे राग, परन्तु उस राग की क्रिया से भगवान की प्राप्ति हो, यह नहीं। आवे अवश्य, होवे अवश्य। समझ में आया? आहा! यह कहा न यहाँ?

शुद्धज्ञान उसका निरन्तर अनुभव उसके द्वारा सहज ही प्राप्त होता है। स्वाभाविक प्राप्त होता है। आहाहा! ज्ञान का पुंज अन्दर चिद्घन है, उसके सन्मुख में, उसकी एकाग्रता में, ज्ञान के गुण में एकाग्रता, वह सहज ज्ञान से वह प्राप्त हो ऐसा है। शास्त्रज्ञान से भी वह प्राप्त हो, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! लो! यह वास्तु किया, ऐई! भगवान में वास्तु करना हो तो राग की क्रिया से नहीं होगा। शान्तिभाई! आहाहा! यह प्रभु अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, वह सर्वज्ञ जिनेश्वर कहते हैं वह, हों! दूसरे कहते हैं वह नहीं। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु अन्दर है। वह उसके स्वाभाविक ज्ञान से ही प्राप्त होता है। अन्तर्मुख के ज्ञान से, प्रज्ञाब्रह्म से वह प्राप्त होता है। उस क्रियाकाण्ड से वह आत्मा प्राप्त होता है, मोक्षमार्ग होता है—ऐसा तीन काल तीन लोक में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अब इसमें कहाँ (वाद-विवाद में) उतरना? अभी कुछ निवृत्ति (नहीं)। धन्धे के कारण निवृत्त नहीं।

मुमुक्षु : क्रियाकाण्ड को तो एकदम उड़ा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रियाकाण्ड को रखा न! राग की क्रिया है वह। वह धर्म के लिये कारण नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! यह यहाँ कहते हैं।

निरन्तर अनुभव उसके द्वारा सहज ही प्राप्त होता है। आहाहा! यह तो ज्ञानानन्द प्रभु अन्तर्मुख के स्व ज्ञान के स्वसंवेदन से, ज्ञानस्वरूप को ज्ञान द्वारा वेदन करने से... आहाहा! वह स्वरूप की प्राप्ति होती है, वह सहज है। समझ में आया? **भावार्थ इस प्रकार है कि शुभ-अशुभरूप हैं, जितनी क्रिया, उनका ममत्व छोड़कर...** आहाहा! शुभ और अशुभ। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, वह अशुभभाव है। है? उसमें है। है या नहीं? **शुभ-अशुभरूप हैं,...** है, हों! वापस। वह क्रिया है सही। परन्तु है **जितनी क्रिया, उनका ममत्व छोड़कर...** उससे मुझे धर्म होगा या लाभ होगा, यह बात छोड़ दे। आहाहा! सहजानन्द का नाथ प्रभु... यह स्वामी नारायण कहते हैं, वह सहजानन्द नहीं, हों! यह तो सहज आनन्द। तुम्हारे तो वह है न राणपुर में बहुत। है न!

यहाँ तो सहज आनन्द प्रभु आत्मा सहजात्मस्वरूप, उसकी प्राप्ति शुभराग परिणाम

द्वारा नहीं होती। आहाहा! भगवान त्रिलोक के नाथ जिनेन्द्रदेव की भक्ति से भी उस आत्मा की प्राप्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : प्राथमिक शिष्य को पहले क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले प्रथम राग की क्रिया भिन्न करके आत्मा को जानना, यह पहले प्रथम है। यह प्रथम है। ऐसा कि पहले कुछ शुभ करना, अशुभ छोड़ना, ऐसा कुछ है या नहीं? ऐसा कहता है। नारद है न, यह प्रश्न नारद है। यह अपने पहले यहाँ रहते थे। फिर इसे प्रश्न नारद नाम दिया। प्रश्न में नारद जैसे कोलाहल करता ह न? वैसे यह प्रश्न में कोलाहल करता है। कहो, अमृतलालभाई! यहाँ के हैं न?

यहाँ तो प्रभु! यह तो बात बापू! दूसरी है, भाई! अरे! चौरासी के अवतार कर-करके (कचूमर निकल गया)। यह स्वर्ग में भी दुःख है, प्रभु! यह अरबोंपति सेठिया जो कहलाते हैं, वे दुःखी बेचारे रंक भिखारी हैं। आहाहा! क्यों? कि जिसे अन्तरलक्ष्मी की खबर न हो और बाहर लक्ष्मी के याचक सब, ये याचक, भिखारी, रंक है। बराबर होगा यह? यह करोड़पति है, यह दो करोड़पति है, यह करोड़पति। यह सब बहुत पड़े हैं करोड़पति बैठे हैं। आहाहा! ये धूल के पति हैं।

आत्मा सच्चिदानन्द नाथ प्रभु सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव ने जो कहा... आहाहा! वह चैतन्य... चैतन्य की ज्ञान की क्रिया से प्राप्त हो ऐसा है। वह राग की क्रिया से प्राप्त हो, ऐसा वह आत्मा नहीं, भाई! जगत को गले उतरना कठिन। अभ्यास नहीं होता। आहाहा! देखो न! अभी सुनते हैं २०-२० वर्ष के लड़के मर जाते हैं बेचारे। जवान-जवान लड़के। अभी नहीं कहा? २५ वर्ष का। वीरजीभाई वारिया के कान्ति के पुत्र का साला। विवाह हुआ। तीन महीने का विवाह। २५ वर्ष की उम्र। इंग्लैण्ड गया। जामनगर वाला। मर गया। आहाहा! अभी एक दूसरा कहा न २८ वर्ष का? किसने कहा? अहमदाबाद। कल भाई आये थे हरिचन्दभाई। अपने बोटाद के पास, भाई! खस नहीं खस? खस में जगजीवनभाई थे। जगजीवनभाई का पुत्र हरिचन्द वहाँ अहमदाबाद में रहता है। उसका दूसरा छोटा प्रेमचन्द छोटा है। हरिचन्द से छोटा। वह वहाँ विवाहित हुआ है न? नरोत्तम स्वामी नारायण नहीं? शान्तिलाल नरोत्तम तुम्हारे बोटाद में। यहाँ तो सब खबर

है। वे आये थे। शान्तिलाल आये थे। उन्हें तार आया कि लड़का गुजर गया। २८ वर्ष का विवाहित। आँतों में कुछ हुआ होगा और ऑपरेशन कराया था। ठीक था, इसलिए आये थे बेचारे दोनों। शान्तिभाई आये थे। शान्तिलाल नरोत्तम स्वामी नारायण थे न? उस ओर घर है। और यह अपने हरिचन्दभाई, वे उनके बहनोई होते हैं। खस। दोनों परसों गये। २८ वर्ष का लड़का मर गया। नवविवाहित, अभी विवाह कराया था। बापू! यह तो देह की स्थिति जिस समय में छूटने की है, उस समय में लाख तेरे देव और इन्द्र, डॉक्टर उतारे, देह की स्थिति पूरी होनेवाली है, तब देह छूट जानेवाला है, एकदम। उसे राह नहीं देखना पड़ेगी कि इतना रोग आवे तो मरेगा और ऐसा होगा।

यहाँ तो कहते हैं, एक बार प्रभु! जैसे अकस्मात् मृत्यु होती है। ऐसा तुझे लगता है (कि) अकस्मात् (हुआ)। अकस्मात् नहीं। उस समय में होने का ही काल था। यहाँ देख तो अन्दर में आत्मा में होने का काल वह है। शुभ और अशुभ परिणाम की क्रिया का ममत्व छोड़कर और आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु ज्ञानरस के कन्द से भरपूर, उसके सन्मुख की ज्ञान की क्रिया, ज्ञानस्वभाव में ज्ञान की क्रिया, उसमें रमणता—उस क्रिया से सहज ज्ञान से आत्मा प्राप्त होता है, ऐसा है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! दुनिया के साथ तो टक्कर हो ऐसा है। क्या हो? भाई! मार्ग तो यह है। इसके बिना भटक मरा है, बापू! चौरासी के अवतार में।

उनका ममत्व छोड़कर एक शुद्धस्वरूप-अनुभव कारण है। लो! आत्मा शुद्ध चैतन्यघन प्रभु, उसका अनुभव करना। उस शुद्ध को अनुसरकर पवित्रता प्रगट करना अनुभव, वह एक ही कारण धर्म है। आहाहा! समझ में आया? **एक शुद्धस्वरूप-अनुभव कारण है।** आहाहा! पाँचेक मिनिट हैं।

गाथा - १४४

(उपजाति)

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देव-
श्चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात्।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते
ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण।।१२-१४४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ज्ञानी (ज्ञानं) विधत्ते' [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव, [ज्ञानं] निर्विकल्प चिद्रूपवस्तु, उसको [विधत्ते] निरन्तर अनुभवता है। क्या जानकर? 'सर्वार्थसिद्धात्मतया' [सर्वार्थसिद्ध] चतुर्गतिसंसारसम्बन्धी दुःख का विनाश, अतीन्द्रियसुख की प्राप्ति, [आत्मतया] ऐसा कार्य सिद्ध होता है जिससे, ऐसा है शुद्धज्ञानपद। 'अन्यस्य परिग्रहेण किं' [अन्यस्य] शुद्धस्वरूप अनुभव, उससे बाह्य हैं जितने विकल्प। विवरण — शुभ-अशुभक्रियारूप अथवा रागादि विकल्परूप अथवा द्रव्यों के भेद विचाररूप, ऐसे हैं जो अनेक विकल्प, उनका [परिग्रहेण] सावधानरूप से प्रतिपालन अथवा आचरण अथवा स्मरण, उसके द्वारा [किं] कौन कार्यसिद्धि, अपितु कोई कार्यसिद्धि नहीं। ऐसा किस कारण से? 'यस्मात् एषः स्वयं चिन्मात्र चिन्तामणिः एव' [यस्मात्] जिस कारण से [एषः] शुद्धजीववस्तु, [स्वयं] आपमें [चिन्मात्र चिन्तामणिः] शुद्धज्ञानमात्र—ऐसा अनुभव, चिन्मामणिरत्न है। [एव] इस बात को निश्चय जानना, धोखा कुछ नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार किसी पुण्यवान् जीव के हाथ में चिन्तामणिरत्न होता है, उससे सब मनोरथ पूरा होता है, वह जीव, लोहा, तांबा, रूपा — ऐसी धातु का संग्रह करता नहीं; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव के पास शुद्धस्वरूप-अनुभव, ऐसा चिन्तामणिरत्न है, उसके द्वारा सकल कर्मक्षय होता है। परमात्मपद की प्राप्ति होती है। अतीन्द्रियसुख की प्राप्ति होती है। वह सम्यग्दृष्टि जीव, शुभ-अशुभरूप अनेक क्रियाविकल्प का संग्रह करता नहीं, कारण कि इनसे कार्यसिद्धि नहीं होती। और कैसा है? 'अचिन्त्यशक्तिः' वचनगोचर नहीं है महिमा जिसकी, ऐसा है? और कैसा है? 'देवः' परम पूज्य है।।१२-१४४।।

कलश - १४४ पर प्रवचन

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देव-
श्चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात्।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते
ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण।।१२-१४४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— धर्मी जीव **सम्यग्दृष्टि जीव...** जिसे आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, उसकी जिसे दृष्टि हुई है, वह पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न भगवान निर्विकल्प आनन्द का नाथ, जिसे अन्दर में पर्याय में प्रतीति में, ज्ञान में, श्रद्धा में भेंट हुई है अन्दर में। आहाहा! क्या यह भाषा! ऐसा **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञान को अर्थात् निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु उसको निरन्तर अनुभवता है।** आहाहा!

धर्मी तो उसे कहते हैं, परमात्मा त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं, आनन्द के नाथ को अन्दर में अनुभव करे, ज्ञान को ज्ञान द्वारा अनुभव करे, वह सम्यग्दृष्टि और वह धर्मी है। आहाहा! क्या कहते हैं यह! शान्तिभाई! सब ढ़ोंग कर-करके कितना काल गया अब। बड़े-बड़े भाषण किये। इसका ऐसा हो और इसका ऐसा हो। आहा! प्रभु! तू सुन न, भाई! तेरी जाति में तो आनन्द और ज्ञान भरा है न अकेला। उसमें भी पुण्य-पाप के विकल्प से तो खाली चैतन्य प्रभु है। तो जिससे खाली है, उससे उसकी प्राप्ति होगी? उसमें ज्ञान और आनन्द भरा है, उससे वह प्राप्त होगा। आहाहा! क्या परन्तु? किस प्रकार होगा, यह कहते हैं। यह ज्ञानानन्द प्रभु चैतन्यसूर्य है। यह (बाहर का) सूर्य तो जड़ के रजकण हैं। उसका प्रकाश करनेवाला चैतन्यसूर्य प्रभु अन्दर है। उस चैतन्यसूर्य के प्रकाश को प्रकाश द्वारा पकड़कर... आहाहा! उसका अनुभव करना, यह एक ही मोक्ष का कारण-धर्म है। बाकी कोई धर्म है नहीं। विशेष कहा जायेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ६, बुधवार, दिनांक-१६-११-१९७७, कलश-१४४, प्रवचन-१५१

कलशटीका, श्लोक-१४४। निर्जरा अधिकार। निर्जरा अर्थात्? जो आत्मा वस्तु, वस्तु है आत्मा, वह अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप है। उसे राग से भिन्न करके और आत्मा का अनुभव करना, वह अनुभव कर्म को नाश करने का उपाय, अशुद्धता टालने का उपाय (और) शुद्धि की वृद्धि का उपाय है। आहाहा! ऐसी बात है। यह कहते हैं, देखो!

'ज्ञानी (ज्ञानं) विधत्ते' सम्यग्दृष्टि जीव... है पहला? जिसे धर्म प्रगट हुआ है अर्थात् सम्यग्दर्शन। अर्थात्? कि जिसे दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प जो राग है, उससे भी चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्द का दल पिण्ड प्रभु राग से भिन्न है और स्वभाव से वह एकत्व है, ऐसा अन्दर में अनुभव, आत्मा के आनन्द का अनुभव होना और उसमें प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दृष्टि। आहाहा! ऐसी बातें, ऐसी शर्तें। वह सम्यग्दृष्टि जीव।

सत्यदृष्टि अर्थात् जैसा वस्तु का—आत्मा का स्वरूप है, प्रभु परमात्मा सर्वज्ञदेव ने शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द, आनन्दघन, अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड सत्यार्थ, भूतार्थ त्रिकाली चीज़, उसका अनुभव—उसे अनुसरकर आनन्द का होना, उसमें प्रतीति (होना), उसका नाम सम्यग्दर्शन। उस सम्यग्दृष्टि जीव को धर्म होता है, उसे निर्जरा होती है। आहा! अर्थात् कि उसे शुद्धता का अनुभव है, इससे शुद्धता की वृद्धि होती है, इसका नाम भावनिर्जरा शुद्धि की वृद्धि को कहते हैं। और आत्मा के अनुभव की दृष्टि के कारण अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के कारण अशुद्धता टलती जाती है, कर्म गलता जाता है, शुद्धि बढ़ती जाती है, उसे निर्जरा और धर्म कहा जाता है। अरे! ऐसी शर्तें! ऐसा मार्ग। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञान अर्थात् निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु उसको... भगवान आत्मा निर्विकल्प अभेद चिद् ज्ञानस्वरूपी प्रभु, चैतन्यसूर्य वह आत्मा। आहाहा! वह निर्विकल्प अर्थात् अभेद है। उसमें राग तो नहीं परन्तु भेद भी नहीं कि यह पर्याय और यह द्रव्य, ऐसा भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसी जो निर्विकल्प (वस्तु), जिनेन्द्रदेव परमेश्वर ने देखी वह। अज्ञानी अपनी कल्पना से बात करे—निर्विकल्प वस्तु ऐसी है, वह नहीं। यहाँ तो

जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने इस आत्मा को रागरहित पर्याय के भेदरहित अभेद आत्मा को देखा है। वैसा जिसे देखना आवे अन्दर में... आहाहा! वह ज्ञानी जीव **निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु उसको निरन्तर अनुभवता है। 'विधत्ते'** आहाहा!

जैसे अज्ञानी अनादि काल से राग-पुण्य-पाप के राग को अनुभव कर वेदता है, वह दुःख के वेदनेवाले अज्ञानी हैं। आहाहा! समझ में आया? बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! यहाँ तो व्रत, तप, भक्ति और पूजा का भाव भी राग है। उस राग से भिन्न पड़ी हुई अन्दर ज्ञायक चीज़, ज्ञान का रसकन्द प्रभु, राग से भिन्न है, उसे सम्यग्दर्शन में यथार्थ अनुभव करके प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दृष्टि **'विधत्ते' निरन्तर अनुभवता है।** आहाहा! धर्मी सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि जो निरन्तर अतीन्द्रिय आनन्द को अनुभव करता है। आहाहा! तुमने तो पोरबन्दर में बहुत सुना है। खबर है न यह तो। वहाँ आते थे न, हमेशा आते थे। समझ में आया? आहाहा! प्रभु! मार्ग ऐसा है। आहाहा!

जिसे निज आनन्द का माल अन्दर है, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु... आहाहा! निमित्त से, राग से और पर्याय से भी विमुख होकर, त्रिकाली शुद्ध स्वभाव के सन्मुख होकर जो निरन्तर अनुभव करे। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। उसे सम्यग्दर्शन में अनुभव करके, प्रतीति करके निरन्तर अनुभव करे, उसे धर्म होता है और उसे निर्जरा होती है। आहाहा! समझ में आया? उसे **क्या जानकर...** अनुभव करे? आहाहा! उसकी पद्धति की रीति की भी खबर न हो, वह किस प्रकार सम्यग्दर्शन करे और कैसे प्रगट करे? आहाहा!

कहते हैं कि **क्या जानकर...** करे? **'सर्वार्थसिद्धात्मतया' चतुर्गतिसंसारसम्बन्धी दुःख का विनाश...** यह अर्थ सिद्धि। अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति, वह अस्ति। चार गति के दुःख का नाश, वह नास्ति, अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति, वह अस्ति। आत्मा है। **ऐसा कार्य सिद्ध होता है...** ऐसा कार्य सिद्ध होता है **जिससे, ऐसा है शुद्ध ज्ञानपद।** आहाहा! अन्तर भगवान शुद्ध ज्ञानानन्द पवित्र का पिण्ड प्रभु है। पर्याय में पुण्य-पाप के विकल्प और राग, वह दुःखरूप है। तो उससे भिन्न भगवान, अरे! वह कौन है? स्वयं देव कहा है न? अचिन्त्यदेव आया है न अन्दर? स्वयमेव देव। वह तो देव है। आहाहा! अरे!

उसका स्वभाव और उसकी शक्ति के माहात्म्य को क्या कहना! दिव्यशक्ति का धनी देव है! भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता, अनन्त आनन्द ऐसी अनन्त शक्ति, दिव्यशक्ति का धारक देव प्रभु है। आहाहा! ऐसे देव को सम्यग्दर्शन में जो निरन्तर अनुभव करता है।

क्या जानकर? चतुर्गतिसंसारसम्बन्धी दुःख का विनाश और अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति... होती है इसलिए। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा कार्य सिद्ध होता है जिससे...** इसलिए। आहाहा! क्या कहा यह? यह चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव करना, वह किसलिए? कि उसमें दुःख के भाव की नास्ति होती है, नाश होता है और अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है, ऐसे कार्य की सिद्धि होती है, इसलिए आत्मा का अनुभव करना। ऐसी बातें! और बाहर में तो अपवास करो, तपस्या करो, यह करो, वह करो। वह राग की क्रिया। वह भी कहाँ ठिकाने की है? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव (कहते हैं), अन्तर वस्तु है या नहीं? जिसकी सत्ता में यह है, यह ज्ञात होता है, वह जिसकी सत्ता में, जिसकी मौजूदगी में 'यह है' सब ज्ञात हो, वह चैतन्यसत्ता प्रभु है। वह चैतन्य की सत्ता परसत्ता से भिन्न है। लॉजिक से समझ में आता है न? और पुण्य-पाप के भाव हों, वे भी जिसकी सत्ता में ज्ञात होते हैं। ज्ञानानन्द में ज्ञात होता है कि यह राग है। ऐसी राग और पर की सत्ता से भिन्न चैतन्यसत्ता, सत्ता अर्थात् चैतन्य का अस्तित्व... आहाहा! उसका जिसे सम्यक् अनुभव है। आहाहा! अर्थात् कि जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का निरन्तर वेदन है। आहाहा! उसे किसलिए अनुभव करता है? कि दुःख के नाश और अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति के लिये। यह जानकर अनुभव करता है। समझ में आया? ऐसी बातें अब।

ऐसा है शुद्ध ज्ञानपद। आहाहा! शुद्ध ज्ञानपद। ध्रुव... ध्रुव। चैतन्य ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, शुद्ध ज्ञानपद जिसके अनुभव से दुःख का नाश और अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती हो, उसे जानकर आत्मा के ज्ञानपद को अनुभव करता है। आहाहा! समझ में आया? '**अन्यस्य परिग्रहेण किम्**' इस स्वरूप के आनन्द का परिग्रह पकड़ा है, अब दूसरे का क्या काम है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! परिग्रह। परि—समस्त प्रकार से

चैतन्यमूर्ति, ज्ञायक और आनन्द का नाथ प्रभु, उसे परिग्रह-पकड़ा है। वह आत्मा का परिग्रह है। यह धूल, पैसा-बैसा वह तो जड़ के-मिट्टी का परिग्रह है। उसे मेरा माने, वह तो कहते हैं कि अजीव हो जाये। आहाहा! यहाँ तो राग को अपना माने तो भी उसमें जीवपना नहीं रहता। आहाहा! वह अजीव जैसा हो जाता है। गाथा में है न? निर्जरा अधिकार की गाथा। मैं राग को मेरा मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। आहाहा! अब यह शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा तो कहीं रह गया। वह तो जगत की चीज़। आहाहा!

मुझमें होनेवाला दया, दान, व्रत का परिणाम—राग, उसे मैं मेरा मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। क्योंकि मेरा चैतन्यस्वरूप जागृत आनन्द का नाथ है। ऐसे राग में ज्ञान और आनन्द का जिसमें अभाव है। ऐसे राग को मेरा मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। जीव न रहूँ। आहाहा! अरे! यह बात सुनने को मिलती नहीं। वह कब विचार में आवे और कब अन्तर (में) चढ़े? आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! ऐसा मेरा स्वभाव भगवान अचिन्त्य देव, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानादि अनन्त शक्ति का सागर देव, उसके अनुभव को करनेवाले को, कहते हैं कि धर्मी को दूसरे परिग्रह से अब क्या काम है? आहाहा! दूसरा परिग्रह अर्थात्? स्पष्टीकरण करते हैं।

शुद्धस्वरूप-अनुभव उससे बाह्य है... शुद्धस्वरूप पवित्र भगवान आत्मा का अनुभव। वर्तमान में उसका अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय ज्ञान का अन्तर में-पर्याय में वेदन। आहाहा! ऐसे निज स्वरूप के परिग्रह के कारण से, उसे अन्य परिग्रह से क्या काम है? आहाहा! ऐसी बातें हैं। अन्य परिग्रह अर्थात्? विकल्प। क्या? **शुभ-अशुभ क्रियारूप...** विकल्प। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना का विकल्प और दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा के भाव का विकल्प वे सब विकल्प राग हैं। आहाहा! मुझे उस राग के परिग्रह से क्या काम है? मेरा नाथ मुझे हाथ आया। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जहाँ उछला। समुद्र के किनारे जैसे पानी का ज्वार आवे, वैसे आत्मा की पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द उछलकर अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आया। आहाहा! सूक्ष्म बातें, भाई! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। अभी तो सब नोंच डाला है। आहाहा! यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, ज्ञानस्वरूप, उसके अनुभव में रहनेवाला मैं... आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं। अन्य परिग्रह से क्या काम? शुभ-अशुभ

क्रिया। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का शुभभाव, उससे मुझे क्या काम है ? क्योंकि वह तो राग है, दुःख है। उस दुःख के परिणाम से मुझे क्या काम है ? मेरा नाथ आनन्दस्वरूप विराजमान, उसके अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के समक्ष ऐसी शुभक्रिया का राग दुःखरूप, उसका मुझे क्या काम है ? आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बातें तो हैं, भाई ! यह तो तीन लोक के नाथ, जिनेन्द्रदेव परमेश्वर वीतराग के यह सब कथन हैं। यह कोई ऐरेगैरे की (बात) नहीं। जिसके इन्द्र तलिया चाटे, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ से यह वाणी आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे।

भगवान परमात्मा तो ऐसा कहते हैं। आहाहा ! जिसे आत्मा सम्यग्दर्शन में प्रतीति में, अनुभव में आया... आहाहा ! उसे चार गति के दुःख (मिटे) और अतीन्द्रिय (आनन्द की) प्राप्ति हो। वह कार्यसिद्धि होने पर दूसरे पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रत के परिणाम से उसे क्या काम है ? आहाहा ! पूरा उलट-पुलट मार्ग है। ऐसा मार्ग है, बापू ! क्या हो ? आहाहा ! यह शुभ-अशुभ विकल्प से मुझे क्या काम है ?

अथवा रागादि विकल्परूप... यों ही प्रेम आदि दूसरे में हो, ऐसे शुभाशुभभाव, उनसे मुझे क्या काम है ? अरे ! मेरे द्रव्यों के भेद-विचाररूप ऐसे जो अनेक विकल्प का मुझे क्या काम ? आहाहा ! यह जीव है, यह जड़ है, यह राग है। **द्रव्यों के भेद विचाररूप ऐसे हैं जो अनेक विकल्प...** राग, उससे मुझे क्या काम है ? आहाहा ! सूक्ष्म बहुत। उसमें यह बाहर के तूफान। आहाहा ! पाँच-पचास लाख रुपये-धूल मिले। दो-चार करोड़ रुपये। मर गया बेचारा वहाँ फँस गया। आहाहा ! यहाँ तो धर्मी जीव अपने आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय का पकड़नेवाला, अनुभव करनेवाला, उसे धर्मी कहते हैं और वह धर्मी कहता है (कि) मेरे धर्म के काम में दुःख का नाश और अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति के लिये (मैं) अनुभव करता हूँ। और उस अनुभव में पर विकल्प का मुझे क्या काम है ? आहाहा ! **द्रव्यों के भेद विचाररूप ऐसे...** यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है। ऐसे तीन के भेद के विकल्प से भी मुझे क्या काम है ? आहाहा !

मुमुक्षु : आता क्यों है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, उसके घर में रहे। यहाँ नहीं। अन्दर में नहीं मिलते।

अनुभव में वह नहीं मिलते। उसे अनुभव करे, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

यहाँ कहा न? कि मैं तो ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द हूँ। उसका वेदन करनेवाला-अनुभव करनेवाला मैं, मुझे ऐसे विकल्पों से क्या काम है? उनसे मुझे कुछ कार्यसिद्धि नहीं होती। वे तो सब दुःखदायक है। आहाहा! समझ में आया? अरे! प्रभु का मार्ग अलग, भाई! जिनेन्द्र त्रिलोकनाथ ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं। उनके सम्प्रदायवालों को भी खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ प्रभु कहते हैं कि एक बार सुन तो सही, प्रभु! तेरा आत्मा अन्दर ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान-चेतनास्वभाव से भरपूर ज्ञाता-दृष्टा प्रभु, और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जहाँ उछलता है, उसकी पर्याय में तुझे जहाँ आनन्द का वेदन आवे, उस आनन्द की गन्ध कहीं इन्द्र के इन्द्रासनों में नहीं है। तो मुझे यह पुण्य-पाप के, दया-दान के राग से क्या काम है? आहाहा! अरे! यह तो ठीक परन्तु मैं त्रिकाली द्रव्य हूँ, मेरी शक्तियाँ अन्दर त्रिकाली गुण और वर्तमान उसकी दशा—ऐसे तीन भेद से भी मुझे क्या काम है? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : मीठी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठी बात है, नाथ! आहाहा!

परमेश्वर जिनेश्वरदेव केवली परमात्मा का यह फरमान है। सन्त आड़तिया होकर भगवान की बात करते हैं। प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? आहाहा! आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप में प्रभु है, वह तो। आहाहा! पुण्य-पाप के राग में आत्मा नहीं। वे तो अनात्मा, जड़, अचेतन। आहाहा! यहाँ तो चैतन्य अभेद अखण्डानन्द प्रभु के अनुभव के समक्ष कहते हैं कि भेद के विकल्प से मुझे क्या काम है? आहाहा! भेद का विकल्प अर्थात्? कि अनन्त आनन्द का कन्द आत्मा और उसकी अनन्त शक्तियाँ आनन्द आदि वह गुण और उसकी वर्तमान अवस्था / पर्याय—ऐसे तीन भेद के विकल्प से मुझे क्या काम है? आहाहा! आहाहा! अरेरे! इसने मार्ग सुना भी नहीं। आहाहा! वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ सम्यग्दर्शन का मार्ग यह है। समझ में आया? बाकी यह सब

उत्साह बाहर में पैसा और शरीर में उत्साह करते हैं, वे सब दुःख के घात अन्दर (होते हैं)। आत्मा की शान्ति में वह घायल होता है। आहाहा! यहाँ तो द्रव्य, गुण और पर्याय के भेद के विकल्प से भी आत्मा घायल होता है। चन्दुभाई! आहाहा!

प्रभु! एक बार सुन तो सही। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली ऐसा कहते आये हैं और प्रभु विराजते हैं वहाँ यही कहते हैं। आहाहा! वह बात यहाँ आयी है। आहाहा! भाई! तू कौन है? कितना कैसा है? तो कहते हैं कि अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति से भरपूर प्रभु आत्मा है। ऐसे अनन्त आनन्द और शान्ति के सागर को दृष्टि में लेकर, ज्ञान में ज्ञेय बनाकर स्वरूप का अनुभव करे... आहाहा! वह अनुभव निर्जरा का कारण है। आठ अपवास किये और दस किये धूल, वह सब लंघन है। समझ में आया? आहाहा! जो आत्मा निजघर,... वर बिना की बारात जोड़ दी। वह बारात नहीं कहलाती, वह तो मनुष्यों का टोला कहलाता है। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानन्द का नाथ, उसे मुख्य बनाकर अनुभव करे, उसकी पर्यायों को उसकी बारात कहा जाता है। परन्तु हाथ में वह द्रव्य आवे वर उसे। रागादि विकल्पों को तो शत्रु कहा जाता है। वे तो सब (शत्रु हैं)। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा सुनने को मिले नहीं। सुनने के लिये निवृत्ति लेनी हो तो न मिले। ऐई! शान्तिभाई! चैन कहाँ है? पाँच-दस करोड़ हों, बीस करोड़ हों तो भी चैन नहीं मिलता। आहाहा! अरे! करनेयोग्य तो यह है।

श्रीमद् तो ऐसा कहते हैं कि आजीविका के लिये मुश्किल-मुश्किल से मिलता हो तो भी मुमुक्षु को दूसरी तृष्णा करना नहीं। आहाहा! बापू! करनेयोग्य तो यह है। यह किया नहीं (तो) तूने क्या किया? आहाहा! अरे! जिसके चौरासी के अवतार में भवाब्धि-भवरूपी समुद्र में मानो पर्याय पता नहीं खाये, भाई! आहाहा! उस भवाब्धि को तिरने का उपाय यह है। दुःख से नाश कहा न? आहाहा!

भगवान आत्मा के स्वभाव में जो केवलज्ञानी परमात्मा को अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, प्रगट हुआ, अनन्त दर्शन, वीर्य, अनन्त गुणों की पूर्णता, वह सब प्रगट हुई वह कहाँ से आयी? कहीं बाहर से आती है? अन्दर पेट में—आत्मा के गर्भ में सभी

शक्तियाँ पड़ी हैं। आहाहा! ऐसी शक्ति के नाथ को सम्यग्दर्शन में सच्चा दर्शन करके अनुभव करना। उसे इस विकल्प से मुझे क्या काम है? अन्य परिग्रह का क्या काम? इसका अर्थ हुआ कि यह परिग्रह मैंने पकड़ा है। यह मेरा परिग्रह है। आहाहा!

'**अन्यस्य परिग्रहेण किम्**' शुभाशुभ विकल्प दया, दान, व्रतादि के (विकल्पों से) क्या? आहाहा! और रागादि विकल्पों से क्या? और **द्रव्यों के भेद विचाररूप ऐसे हैं जो अनेक विकल्प...** आहाहा! **उनका... 'परिग्रहेण किम्'** है? उसे पकड़ने से मुझे क्या लाभ? आहाहा! वे सब तो नुकसान करनेवाले हैं। सूक्ष्म बातें, बापू! यह समय चला जाता है। और आयुष्य पूरा होकर चला जायेगा। बड़ा समुद्र चौरासी के अवतार। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्दर में संकल्प-विकल्प कहाँ चैन लेने देते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : करता है कौन? करता है स्वयं या कोई कराता है? अज्ञानरूप से करता है स्वयं कर्ता होकर। संकल्प-विकल्प करता कौन है वहाँ? कोई कर्म इसे कराता है?

मुमुक्षु : कोई कराता है, ऐसा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी कराता नहीं। मूढ़ स्वयं अपने स्वभाव को भूलकर ऐसे संकल्प-विकल्प की जाल में फँस गया है। जैसे मकड़ी लार में फँस जाती है, वैसे फँस गया है। आहाहा! अरे! इसने घेरा डाला। पुण्य और पाप के संकल्प-विकल्प से इसने घेरा डाला है। घेरे में घिर गया भगवान। आहाहा! बापू! अब छूटने का रास्ता तो यह है। आहाहा! वह कहीं बातों से वड़ा हो, ऐसा नहीं है। शब्द से कुछ ज्ञात हो, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो देव (कहा)। देव द्रव्य, गुण और पर्याय तीन, ऐसा एक में तीन विचार करना, उस विकल्प से आत्मा को लाभ क्या है? ऐसा कहते हैं। नुकसान है। धर्मी कहते हैं कि भेद के विकल्प से मुझे क्या काम है? आहाहा! सन्तों की वाणी तो देखो! यह दिगम्बर सन्त, सनातन सन्त जैनदर्शन का पेट (अभिप्राय) खोलकर रखते हैं। कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन न। आहाहा! परन्तु उसे प्रभु कहने पर उसे कठिन पड़ता है। भाई! तेरा स्वरूप ही प्रभुस्वरूप ही है। भगवन्तस्वरूप जिनस्वरूप तेरा पूरा वीतरागस्वरूप

ही है। आहाहा! यदि वीतरागस्वरूपी न हो तो केवली को वीतरागता प्रगट होती है, वह कहाँ से आयेगी? कहीं बाहर से आवे, ऐसी चीज़ है? आहाहा!

वीतरागस्वभाव का प्रभु कन्द है। वीतरागस्वभाव की मूर्ति आत्मा है। यह तो प्रतिदिन कहते हैं न! 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन। घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन। मतमदिरा के पान सो...' यह अपना अभिप्राय-विकल्प मेरा और उसके अभिप्राय के पीनेवाले वे 'मतवाला समझे न।' यह मत के अभिप्राय अपने बाँधे हुए अभिप्राय से वे भगवान को नहीं समझते। भगवान अर्थात् यह, हों! भगवान। पर भगवान, वह नहीं। आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसे।' घट घट अन्तर भगवान बसता है। जिन बसता है। परमात्मा है। आहाहा! 'घट घट अन्तर जैन।' उस जिन को पकड़े और अनुभव करे और राग से भिन्न पड़े, वह जैन है। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं है। जैन, उस जिनस्वरूप को अनुभव करे, वह जैन है। आहाहा!

वीतराग... वीतराग... वीतराग स्वरूप से भरपूर भगवान, भाई! तुझे कठिन लगेगा, परन्तु वस्तु तो ऐसी है। आहाहा! वीतरागस्वरूप से, अकषायस्वरूप से शान्तरस से भरपूर भगवान, उसे शान्तरस के वेदन में लेना। आहाहा! वह घट घट अन्तर जैन। वह घट घट में जैन इस प्रकार कहलाता है। बाहर से लिबास (धारण करे कि) हम बनिया जैन हैं, स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी है। ऐई! आहाहा! ऐसी बातें हैं।

भगवान! तेरी चीज़ तो अन्दर पूर्णानन्द से भरपूर है न, नाथ! उसके सन्मुख देख न। यह राग और निमित्त और पर्याय के भेद के सन्मुख देखना छोड़ दे न! आहाहा! जहाँ अभेद सागर विराजता है अन्दर। अरे! कैसे जँचे? दो बीड़ी ठीक से पीवे, जब सिगरेट (पीवे), तब पाखाने में दस्त उतरे। ऐसे तो अपलक्षण। अब उसे कहना कि तू भगवान है। सवेरे डेढ़ पाव सेर चाय का प्याला पीवे, वहाँ पावर चढ़ जाये मानो... आहाहा! अरर! क्या हुआ? बापू तुझे यह? यह तेरे अपलक्षण के पार नहीं, उसे बतलाना कि तू भगवान है। कहो, रसिकभाई! यहाँ तो ऐसा है, बापू! आहाहा!

जैन शासन यह है। जिसने आत्मा को अबद्धस्पृष्ट अनुभव किया। आहाहा! राग और कर्म के सम्बन्धरहित चीज़ प्रभु अबद्ध है। अस्पृष्ट है, उसे कोई राग का और

परमाणु का स्पर्श ही नहीं। सामान्य है, एकरूप त्रिकाल है। आहाहा! ऐसी चीज़ को दृष्टि में लेकर ज्ञान में ज्ञेय बनाकर अनुभव करना। आहाहा! इतनी तो शर्तें। तब उसे तो धर्मी सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! अभी चौथे गुणस्थान में, हों! पाँचवाँ जो श्रावक का है, वह (तो अलौकिक बातें हैं)। यह (अभी) श्रावक है, वे तो समझने जैसे हैं।

मुमुक्षु : सावज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सावज ही है। राग का अपना माने, वे सब सावज हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : नाना के पिता कहते हैं उसे सावज।

पूज्य गुरुदेवश्री : सावज ही है न। राग और पुण्य-पाप के भाव में मिठास मानकर भगवान के—नाथ के आनन्द को लूटता है, वह सावज है। आहाहा! केसरी सिंह जैसे थाप मारे और हिरण की गर्दन तोड़ डाले, उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने को भूलकर ऐसे शुभ-अशुभराग को अपना मानकर अपने को मरोड़ डालता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

ऐसे जो विकल्प **उनके... 'परिग्रहेण'** परिग्रह की व्याख्या करते हैं। **उनका सावधानरूप से प्रतिपालन...** रागादि का। उसका **आचरण अथवा स्मरण उसके द्वारा कौन कार्यसिद्धि ?** आहाहा! शुभ-अशुभभाव से, रागादि के भाव से और द्रव्यों के भेदरूप विचार से (क्या कार्यसिद्धि है ?) उनमें **सावधानरूप से प्रतिपालन...** आहाहा! व्रत के भाव को बराबर पालना। आहाहा! अथवा व्रत के भाव को आचरण में लाना। व्रत का भाव तो राग है। आहाहा! उसका **प्रतिपालन अथवा आचरण...** यह परिग्रह की व्याख्या करते हैं। और उसका स्मरण। आहाहा! राग। व्रतादि, तप आदि, भक्ति आदि राग का स्मरण, उसका पालन और आचरण... आहाहा! **क्या कार्यसिद्धि ?** उससे क्या कार्यसिद्धि है ? आहाहा! थोड़े शब्द में भी रामबाण मारे हैं। बलुभाई!

मुमुक्षु : ताली दो हाथ से बजती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो हाथ से बजती ही नहीं। दो हाथ छूते ही नहीं न, बजे कहाँ से ? इकट्ठे होते ही नहीं। यह उसे स्पर्श ही नहीं करता। एक-दूसरे परमाणु को स्पर्श

करना, यह तीन काल में होता नहीं। और ऐसा हुआ, इसलिए यहाँ आवाज आयी, (ऐसा नहीं है)। आवाज तो परमाणु की परिणति होकर अन्दर से दूसरी आयी है। पूरी दुनिया से वीतराग मार्ग अलग है, बापू! यह तो जिनेन्द्र त्रिलोकनाथ परमात्मा... आहाहा! ऐसा कहते हैं भगवान, हों! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चूमता नहीं। तीसरी गाथा में नहीं आया? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता और अपने अनन्त गुण-पर्याय को चूमता है। अपनी शक्ति गुण और पर्याय को चूमे परन्तु अन्य द्रव्य को एक द्रव्य तीन काल में भी चूमता-स्पर्शता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह ढाल के दूसरी ओर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न दूसरी भटकने की। यह तो कहते हैं। दूसरी ओर है विकल्प में सावधानी और आचरण पालना। भटकने का कहते हैं न वे। यह तो कहा।

मुमुक्षु : तुम्हारी बात समझ में नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारी हाँ की। तुमको न नहीं की। यह अन्य परिग्रह में नहीं आया? बापू! तुम्हारा? '**अन्यस्य परिग्रहेण**' में आया यह। दूसरी ओर है। आहाहा!

एक ओर भगवान आत्मा अभेद का अनुभव और एक ओर यह विकल्प का जाल, यह दूसरी ओर है। परन्तु इससे मुझे क्या काम है? आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! क्या हो? अभी मार्ग को नोंच डाला है और बनियों को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं। मुश्किल से कभी घण्टा भर मिले। चौबीस घण्टे में से घण्टे भर सुनने जाये और मिले सिर पर जो कहे वह, जय नारायण। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव, त्रिलोकनाथ दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा फरमाते हैं, वह यह सन्तों के श्लोक हैं। भगवान! तुझमें भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी का स्वरूप तेरा है। उसका वेदन करना-अनुभव करना, वह निर्जरा का कारण है। चन्दुभाई गये? वेजलका। है? यह बैठे। यह चन्दुभाई की बात की थी। वड़ोदरा में गये थे। एक आर्यिका कहे, दूसरी तुम्हारी बातें चाहे जो (हो), अपवास है, वह तप है और तप है, वह निर्जरा है। आहाहा! धूल में भी नहीं, अब सुन न तेरे छह-छह महीने के अपवास। मैंने आहार छोड़ा और राग मैंने किया, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! भाई!

दुनिया से तो अलग प्रकार है यह। आहाहा! अरे! यह इसे मिले। उसे सत्य बात कान में पड़े, वह भाग्य बिना मिले, ऐसा नहीं है। धर्म तो बाद में अभी। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, धर्मी को अभेद चैतन्य का जो अनुभव हुआ, उसे अब व्रतादि के विकल्प से क्या कार्यसिद्धि है? अरे! द्रव्य, गुण और पर्याय एक को तीन भेद से देखना, ऐसे कार्य / विकल्प से क्या सिद्धि है? आहाहा! उसकी ओर का सावधानपना छोड़कर... '**अन्यस्य परिग्रहेण**' लिया है न? '**अन्यस्य परिग्रहेण**' अर्थात् अन्य की ओर का सावधानपना छोड़कर भगवान आत्मा के सन्मुख सावधान-अनुभव कर। तुझे आनन्द होगा। दुःख टलेगा और अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होगी। आहाहा! बनिया मुनाफे का धन्धा करे या नुकसान का? यह मुनाफे का धन्धा है। आहाहा! है? अर्थात् **क्या कार्यसिद्धि...** उससे। यह पुण्य पाप के पुण्य के भाव को संभारवा.... आहाहा! मैंने व्रत किये, मैंने तपस्या की, मैंने यह किया और मैंने वह किया। आहाहा! उसके स्मरण से तुझे क्या लाभ? प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

दुःखी... दुःखी... दुःखी... आहाहा! आनन्द का सागर भगवान, उसे स्पर्श नहीं किया, उसे छुआ नहीं और इस राग को स्पर्श कर माना कि मैंने कुछ कार्य किया। हैरान हो जायेगा, बापू! आहाहा! भाई! आँखें बन्द हो जायेंगी। भविष्य में आत्मा को तो अनन्त काल रहना है। यहाँ से छूटने के बाद भी अनन्त काल रहना है। कहाँ रहेगा प्रभु तू? आहाहा! यह राग और पुण्य के परिणाम मेरे और मुझे लाभ होगा, इस बुद्धि में मिथ्यात्व में अनन्त काल भविष्य में व्यतीत करेगा। आहाहा! अनन्त काल रहेगा, उसमें तो कुछ नकार नहीं। अनादि-अनन्त प्रभु है, वह कहाँ जाये? और यदि राग की एकता तोड़कर स्वरूप की दृष्टि की तो फिर पर के कार्य से क्या सिद्धि? तू कहाँ रहेगा वहाँ? आत्मा के अनुभव में रहेगा। और अनुभव में रहने से पूर्णानन्द हो जायेगा, मोक्ष हो जायेगा। पश्चात् उसे अनन्त काल मोक्ष में रहना है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें। ऐसा उपदेश कैसा? वे तो छह काय की दया पालनी, इच्छामि पडिकम्मणा इरिया वहियाये विरायणाये गमणा गमणे तस्स मिच्छामि दुक्कडम... तस्स उतरी करणेणं तावकायं ठाणेणं मोणेण झाणेणं। लोगस्स... बापू! यह तो सब राग की क्रिया की बातें

हैं। आहाहा! भाई! तेरा नाथ रागरहित है। वह तो जिनस्वरूप है। उसके अनुभव में वीतरागी दशा हो, उसे यहाँ जैनधर्म और धर्मी कहा जाता है। आहाहा!

अपितु कोई कार्यसिद्धि नहीं। क्या कहा यह? यह शुभ-अशुभभाव का पालना, शुभ का आचरण करना, शुभ को याद करना, उससे क्या कार्यसिद्धि है? आहाहा! यह व्रत और अपवास और यह विकल्प है, उसे पालना, उसका आचरण करना, उससे तुझे क्या कार्यसिद्धि है? भाई! कठिन काम, भाई! आहाहा! **ऐसा किस कारण से? 'यस्मात् एषः स्वयं चिन्मात्रं चिन्तामणिः एव'** आहाहा! **कारण कि... 'एषः'** यह **शुद्ध जीववस्तु...** भगवान शुद्ध पवित्र अनन्त आनन्द का नाथ शुद्ध पवित्र के भाव से भरपूर। ऐसी वस्तु **'स्वयम्' अपने में... 'चिन्मात्रं चिन्तामणिः' शुद्ध ज्ञानमात्र ऐसा अनुभव-चिन्तामणिरत्न है...** पर्याय। शुद्ध जो वस्तु का अनुभव, वह चैतन्य चिन्तामणिरत्न है। आहाहा! **शुद्ध ज्ञानमात्र ऐसा अनुभव-चिन्तामणिरत्न है...** भगवान आत्मा का राग से भिन्न पड़कर आनन्द का अनुभव (होना), वह अनुभव रत्नचिन्तामणि है। वह चिन्तामणि है। आहाहा! धूल के चिन्तामणि देव अधिष्ठित देव आवे और चिन्तामणि मिले, पत्थर मिले, उसमें वहाँ आहाहा! यहाँ तो शुद्ध चैतन्यप्रभु अन्तर अनन्त दिव्य गुण का भण्डार प्रभु, उसका अनुभव, उसका अनुभव, हों! उसके ओर की सावधानी से आनन्द का और ज्ञान का वेदन (हो), वह शुद्ध चैतन्यचिन्तामणि रत्न है। पर्याय, हों यह। आहाहा! क्योंकि शुद्ध चिन्तामणि प्रभु है। वस्तु तो ऐसी है परन्तु उसके अनुभव बिना शुद्ध चिन्मात्र का अस्तिपना श्रद्धा कहाँ से आवे? आहाहा! समझ में आया?

आपमें शुद्ध ज्ञानमात्र ऐसा अनुभव-चिन्तामणिरत्न है। इस बात को निश्चय जानना,... आहाहा! क्या कहा यह? इस प्रकार से कार्यसिद्धि है, यह बात निश्चित जानना। दूसरे प्रकार से किसी प्रकार से कार्यसिद्धि होगी आत्मा की, यह बात छोड़ देना कि बहुत व्रत पालन किये, बहुत अपवास किये, आजीवन का ब्रह्मचर्य पालन किया, दया पालन की, दान बहुत किये करोड़ों के, इसलिए कुछ कल्याण होगा। बात छोड़ दे उसमें से। क्या कहते हैं? परद्रव्य से तेरा कल्याण होगा? और वास्तव में तो व्रत का का राग है, वह वास्तव में तो परद्रव्य है। वह स्वद्रव्य नहीं। आहाहा! वह चैतन्यचिन्तामणि भगवान अनन्त गुण की खान, निधान, ऐसा जो अनुभव (होता है, वह) चिन्तामणि रत्न

है। आहाहा! जितना अन्दर अनुभव है, उतनी ऋद्धि बाहर आयेगी। आहाहा! वह चिन्तामणि प्रभु भगवान है। उस भगवान का अनुभव वह चिन्तामणि है। समझ में आया? अब ऐसा उपदेश किस प्रकार का? एक घण्टे में यह सब घोंटना, उसमें अभी तक माना उसमें से कुछ आया नहीं। प्रवीणभाई! सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना। अरे! बापू! यह तो सब बातें हैं। थी कब सामायिक? सम्यग्दर्शन के भान बिना सामायिक कैसी? आहाहा! सामायिक में तो समता का लाभ हो। वीतरागमूर्ति प्रभु है, उसका अनुभव करे तो समता का लाभ होता है। तब उसे सम्यग्दर्शन सामायिक कही जाती है। सम्यग्दर्शन सामायिक। आहाहा! पश्चात् स्वरूप में वीतरागता में स्थिर-विशेष जमे, तब चारित्र की सामायिक कही जाती है। आहाहा! बहुत अन्तर।

इस बात को निश्चय जानना,... ऐसा कहते हैं। **धोखा कुछ नहीं है।** अर्थात् कि चैतन्य चिन्तामणि के अनुभव से मोक्ष होगा, धर्म होगा, इसमें बिल्कुल संशय नहीं है। राग के कारण से व्रत पालते हैं, भक्ति करते हैं, तपस्या करते हैं, अपवास करते हैं तो कल्याण होगा। बिल्कुल नहीं। वह सब वृत्तियाँ और राग की क्रियायें हैं। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसे वाद और विवाद खड़े करे। यहाँ तो यह कहा, शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव, इसके अतिरिक्त परचीज़ से तुझे क्या लाभ है? यहाँ तो ऐसा कहा। व्यवहार करते-करत निश्चय होगा, यह तो आया नहीं इसमें। समझ में आया? व्यवहावर व्रत, भक्ति, पूजा, दया, और दान तथा विशाल शोभायात्रा गजरथ के हाथी के (निकाले) और दीक्षा लेता है, इसलिए उसका बड़ा जुलूस निकालो। धूल दीक्षा कहाँ थी अभी। दख्या है। राग की क्रिया में दुःख है। उसे अंगीकार करता है। आहाहा! रागरहित, दुःखरहित भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्दर में श्रद्धा और उसका अनुभव नहीं, वहाँ चारित्र कैसा और दीक्षा कैसी? आहाहा! समझ में आया? **इस बात को निश्चय जानना, धोखा कुछ नहीं है।**

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार किसी पुण्यवान् जीव के हाथ में चिन्तामणिरत्न होता है,... पुण्यवान, हों! धर्मवान नहीं। चिन्तामणिरत्न बाहर का। **उससे सब मनोरथ पूरा होता है,...** वह चिन्तामणिरत्न हो देव अधिष्ठित (होता है) इसलिए जो चाहे वह मिलता है। बँगला होओ तो बँगला होता है। चिन्तामणिरत्न। **उससे सब**

मनोरथ पूरा होता है, वह जीव लोहा, ताँबा, रूपा ऐसी धातु का संग्रह करता नहीं,... चिन्तामणिरत्न जहाँ मिला फिर चिन्तवन करे वहाँ अन्दर लाखों, करोड़ों हीरा पक जाये। मुझे करोड़ हीरा (चाहिए) तो हीरा तैयार हो। चिन्तामणिरत्न का ऐसा स्वभाव है, उसका देव अधिष्ठित होता है। वह पुण्यवन्त प्राणी को मिलता है।

उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव के पास शुद्धस्वरूप-अनुभव ऐसा चिन्तामणिरत्न है,... आहाहा! श्रावक और मुनिपना होने से पहले की बात है यह तो अभी। श्रावक-मुनिपना, बापू! वह तो कोई दशा...! आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव के पास शुद्धस्वरूप-अनुभव...** अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ को अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन से अनुभव करना। आहाहा! **ऐसा चिन्तामणिरत्न है, उसके द्वारा सकल कर्मक्षय होता है,...** उससे कर्म का नाश (होता है)। निर्जरा है न? समझ में आया? व्रत, अपवास, भक्ति और पूजा, वह तो बन्ध के कारण हैं, निर्जरा के कारण नहीं। आहाहा! बहुत अन्तर परन्तु। फिर विवाद करे। ऐई! व्यवहार का नाश करते हैं। कहते हैं भगवान को कह, यह भगवान कहते हैं। सन्त भावलिंगी मुनि आनन्द के झूले में झुलनेवाले सन्त यह कहते हैं। दिगम्बर सन्त जंगल में बसनेवाले। अतीन्द्रिय आनन्द का जिन्हें पर्याय में उफान आया है। ज्वार—लोढ़ आया है। समुद्र के किनारे जैसे पानी के लोढ आते हैं, ऐसे मुनि को पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का लोढ आता है। आहाहा! उसे मुनिपना कहते हैं। वे मुनि ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

उसके द्वारा सकल कर्म क्षय होता है। परमात्मपद की प्राप्ति होती है। अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है। आहाहा! **वह सम्यग्दृष्टि जीव शुभ-अशुभरूप अनेक क्रिया-विकल्प का संग्रह करता नहीं,...** देखा! जैसे वह चिन्तामणि मिला, वह लोहा और सोने का संग्रह नहीं करता। उसी प्रकार अनुभव मिला, वह शुभ विकल्प को ग्रहण नहीं करता, पकड़ता नहीं। आहाहा! **कारण कि इनसे कार्यसिद्धि नहीं होती। और कैसा है? वचनगोचर नहीं है महिमा जिसकी ऐसा है।** भगवान देव है आत्मा। आहाहा! पूज्य है, देव है भगवान। अरे! कैसे जँचे? विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१४५

(वसन्ततिलका)

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव
सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुम्।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद्
भूयस्तमेव परिहर्त्तुमयं प्रवृत्तः।।१३-१४५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'अधुना अयं भूयः प्रवृत्तः' [अधुना] यहाँ से आरम्भ कर, [अयं] ग्रन्थ का कर्ता [भूयः प्रवृत्तः] कुछ विशेष कहने का उद्यम करता है। कैसा है ग्रन्थ का कर्ता? 'अज्ञानं उज्झितुमना' [अज्ञानं] जीव का-कर्म का एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव वह [उज्झितुमना] जैसे छूटे, वैसा अभिप्राय जिसका-ऐसा है। क्या कहना चाहता है? 'तं एव विशेषात् परिहर्तुं' [तं एवं] जितना परद्रव्यरूप परिग्रह है, उसको [विशेषात् परिहर्तुं] भिन्न-भिन्न नामों के विवरणसहित छोड़ने के लिए अथवा छुड़ाने के लिए। यहाँ तक कहा सो क्या कहा? 'इत्थं समस्तं एव परिग्रहं सामान्यतः अपास्य' [इत्थं] यहाँ तक जो कुछ कहा सो ऐसा कहा (कि) [समस्तं एव परिग्रहं] जितनी पुद्गलकर्म की उपाधिरूप सामग्री, उसको [सामान्यतः अपास्य] जो कुछ परद्रव्य सामग्री है सो त्याज्य है-ऐसा कहकर, परद्रव्य का त्याग कहा। अब विशेषरूप कहते हैं। विशेषार्थ इस प्रकार है — जितना परद्रव्य, उतना त्याज्य है-ऐसा कहा। अब क्रोध, परद्रव्य है; इसलिए त्याज्य है। मान, परद्रव्य है; इसलिए त्याज्य है इत्यादि। भोजन, परद्रव्य है; इसलिए त्याज्य है। पानी पीना, परद्रव्य है; इसलिए त्याज्य है। कैसा है परद्रव्य परिग्रह? 'स्वपरयोः अविवेकहेतुं' [स्व] शुद्धचिद्रूपमात्र वस्तु (एवं) [परयोः] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, उनके [अविवेक] एकत्वरूप संस्कार, उसका [हेतुं] कारण है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव की जीव-कर्म में एकत्वबुद्धि है; इसलिए मिथ्यादृष्टि के परद्रव्य का परिग्रह घटित होता है। सम्यग्दृष्टि जीव के भेदबुद्धि है; इसलिए परद्रव्य का परिग्रह, घटित नहीं होता। ऐसा अर्थ यहाँ से लेकर कहा जायेगा।।१३-१४५।।

कार्तिक शुक्ल ७, गुरुवार, दिनांक-१७-११-१९७७, कलश-१४५, प्रवचन-१५२

दूसरे भाव वह कर्म या शरीर, वह सब परचीज़ है। निज शुद्ध चैतन्यवस्तु, उसमें पूर्ण आनन्द और ज्ञान से भरपूर है, वह स्वचीज़ है। और उसमें पुण्य—दया, दान, व्रत, भक्ति (अथवा) काम, क्रोध के भाव उत्पन्न होते हैं, वे परद्रव्य हैं-परवस्तु है। वह अपनी (वस्तु) नहीं है। जिसने पर और स्व की एकत्वबुद्धि छोड़ दी है, उसे मिथ्यात्व का नाश हुआ है। ज्ञान चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप और शुभ-अशुभभाव, वे दुःखरूप पर परिग्रह, वह परवस्तु है। उसकी जिसने एकत्वबुद्धि छोड़ दी है, उसने पर परिग्रह की अपनेपने की मान्यता छोड़ दी है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

यह कहते हैं **'अधुना अयं भूयः प्रवृत्तः' यहाँ से आरम्भ कर ग्रन्थ का कर्ता...** अमृतचन्द्राचार्य महाराज अथवा कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त **'अयं' कुछ विशेष कहने का उद्यम करता है। कैसा है ग्रन्थ का कर्ता?** आहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त या अमृतचन्द्राचार्य सन्त (कैसे हैं?) **'अज्ञानं उज्झितुमना'** आहाहा! अपना अज्ञान तो दूर हो गया है। राग और अपने स्वभाव की एकताबुद्धि मुनि को तो छूट गयी है, परन्तु साथ में अज्ञानी का अज्ञान छुड़ाने के लिये **'अज्ञानं उज्झितुमना'** क्या कहते हैं? देखो! **जीव का—कर्म का एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव...** आहाहा! जीव चैतन्यस्वरूप ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु और रागादि विकल्प है, वह परवस्तु, इन दो की एकत्वबुद्धि, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? है?

'अज्ञानं उज्झितुमना' जीव का—कर्म का एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव... आहाहा! कर्म शब्द से शुभराग, वह भी कर्म का फल और कर्म ही है। आहाहा! शुभराग जो दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा है, वह भाव भी राग है, परवस्तु है, वह अपनी चीज़ नहीं। आहाहा! अपनी चीज़ में राग का एकत्व मानना अथवा राग से मुझमें लाभ होगा, ऐसी मान्यता, वह राग और आत्मा की एकत्वबुद्धि मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। निर्जरा अधिकार है न!

निर्जरा—धर्म किसे होता है और अज्ञान का तथा राग का नाश (किसे होता है)? कि जिसे अपना चैतन्यमूर्ति प्रभु ज्ञायकभाव आनन्दस्वरूप से भरपूर, उसके साथ

पुण्य और पाप के भाव की एकत्वबुद्धि नाश की है और स्वरूप में—शुद्ध आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें रमणता करता है, उसे अशुद्धता का और कर्म का नाश होता है। अरे! ऐसी बात है। उसे निर्जरा (होती है)। निर्जरा अर्थात् कर्म का नाश, अशुद्धता का नाश, शुद्धि की वृद्धि, तीनों को निर्जरा कहते हैं। आहाहा! कर्म का नाश, अशुद्धता—पुण्य-पाप भाव अशुद्ध मलिन का नाश और शुद्धि निर्मल पवित्र वीतरागभाव की वृद्धि हो, उसे यहाँ निर्जरा कहा जाता है। वह निर्जरा किसे होती है?

जीव का—कर्म का एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव वह जैसे छूटे वैसा है अभिप्राय जिसका... जैसे पर की एकताबुद्धि छूटे, वैसा अभिप्राय मुनि धर्मात्मा का है। मुनि दिगम्बर सन्त कहते हैं कि जिसे राग स्वभाव से भिन्न है और स्वभाव से राग भिन्न है और राग से स्वभाव भिन्न है, ऐसी दो की एकत्वबुद्धि जिस प्रकार से छूटे, वैसे भेदज्ञान करके छोड़ना चाहिए। आहाहा! यह राग शुभ या अशुभ, उससे मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। क्योंकि नौ तत्त्व में पुण्य और पापतत्त्व भिन्न है, और आत्मा ज्ञायकतत्त्व का तत्त्व भिन्न है। आहाहा! दोनों की भिन्नता का अभ्यास करना। राग से मेरी चीज़ भिन्न है और मेरी चीज़ आनन्द से राग भिन्न है। आहाहा! इस प्रकार पहले भेदज्ञान का अभ्यास करना और उससे मिथ्यात्व का नाश होता है। आहाहा! समझ में आया?

जीव की और कर्म की। कर्म शब्द से कल आ गया है। चाहे तो व्रत का भाव हो, वह भी शुभराग है। भगवान की भक्ति का भाव हो, वह राग है। चाहे तो सम्मेदशिखर और शत्रुंजय आदि की यात्रा का भाव हो तो भी वह परसन्मुख का लक्ष्य है, वह सब राग है। आहाहा! वह राग और भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकभाव जीवतत्त्व, उसका जिस प्रकार से भेदज्ञान हो और मिथ्यात्व छूटे, ऐसा अभ्यास करना। समझ में आया? पहली क्रिया तो यह है। है? जैसे छूटे **वैसा है अभिप्राय जिसका...** जगत को कहने में मुनियों का यह अभिप्राय है।

यह देह तो जड़ भिन्न है, वह तो अजीव है। उसकी क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। वह तो मिट्टी, जड़, धूल पुद्गल है। अन्दर में कर्म जड़ हैं, उनके बन्धन को छोड़ने की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। अन्दर पुण्य और पाप के भाव शुभ-अशुभ होते हैं,

उनसे भिन्न करने का अभिप्राय मुनिराज का है। भिन्नता कराना, वह उनका अभिप्राय है। आहाहा! है? **'उज्झितुमना' छूटे वैसा है अभिप्राय जिसका...** प्रथम में प्रथम धर्मी जीव को, राग और आत्मा को भिन्न कराना, वह मुनि का अभिप्राय है। यह शरीर, वाणी, परिवार, वह तो धूल परचीज़ है, उसमें तो इसकी पर्याय में भी वे नहीं। पर्याय अर्थात् अवस्था। परन्तु शुभ-अशुभभाव तो इसकी पर्याय में है। उसका भेद कराने का अभिप्राय है। आहाहा! अब यह कब निवृत्त हो? यह निवृत्त कहाँ है!

मुमुक्षु : सहज साध्य है या पुरुषार्थ से....?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ से है, पुरुषार्थ से है।

मुमुक्षु : सहज नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। सहज का अर्थ पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न सहज साध्य। कलशटीका में है। वह सहज अर्थात् पुरुषार्थ है। स्वाभाविक सहज पुरुषार्थ है। राग से भिन्न करने का सहज स्वभाव का पुरुषार्थ है। आहाहा! अपने आप पुरुषार्थ बिना हो जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? यह कलशटीका में लिखा है न। खबर है न! इसका अर्थ वह तो सहज अर्थात् स्वाभाविक राग के विकल्प से (भिन्न) निर्विकल्प भगवान अन्दर विराजता है। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का सागर प्रभु आत्मा है। उस राग से भिन्न पड़ने का प्रयत्न जो है, उसका नाम भेदज्ञान है। अथवा राग और आत्मा भिन्न है, ऐसी प्रज्ञाछैनी मारना, वह प्रयत्न है। राग और स्वभाव के बीच प्रज्ञाछैनी—सम्यग्ज्ञानरूपी प्रज्ञाछैनी मारना, वह पुरुषार्थ से होता है। आहाहा! समझ में आया? वह पर से भिन्न भगवान चैतन्य शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् प्रभु आत्मा और ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु है। अरे! कहाँ किस दिन क्या तत्त्व है, उस ओर की झंखना (की नहीं)।

मुमुक्षु : उसमें सागर समाहित हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, समाहित हो गया। शरीर में समुद्र समाहित हो गया।

जिसका ज्ञान अपरिमित है। जिसका स्वभाव स्व-भाव, ज्ञान जिसका स्वभाव,

उस स्वभाव को हद नहीं, मर्यादा नहीं, अमर्यादित है। अमर्यादित अपरिमित है। आहाहा! बहिन के वचनामृत में एक आया है। कल कहा नहीं था? कि पुण्य और पाप के भाव की सीमा है। शुभ-अशुभभाव की मर्यादा है। अनहद-बेहद वह भाव नहीं है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा से विपरीत भाव की मर्यादा है। मर्यादा है तो विमुख होकर निज स्वभाव को प्राप्त कर सकता है। आहाहा! और आत्मस्वभाव अमर्यादित है। समझ में आया?

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो अष्टपाहुड़ में चारित्र अधिकार में तो ऐसा लेते हैं कि यह आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय अपरिमित आनन्द से भरपूर प्रभु का अनुभव करके सम्यग्दर्शन करना और तत्पश्चात् अन्दर स्वरूप में लीन रहना, वह चारित्र जो है... वह चारित्र कहीं पंच महाव्रत के परिणाम या नग्नपना, वह कोई चारित्र नहीं। आहाहा! अपरिमित आनन्द के नाथ में रमणता करना। आहाहा! चरना, रमना, ऐसी वीतरागी दशा का चारित्र... अष्टपाहुड़ में कहा है कि, वह चारित्र अक्षय और अमेय है। पर्याय। वस्तु की तो क्या बात करना! वस्तु तो बापू! वह क्या चीज़ है! आहाहा! अकेला अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का पुंज प्रभु है, कभी नजर की नहीं, कभी सुना नहीं। आहाहा!

सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव परमेश्वर का यह हुकम है कि तेरी चीज़ अन्तर अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता, ऐसी अपरिमित शक्ति से भरपूर शक्तिवान है। आहाहा! उस आत्मा को कर्म के भाव से और संयोगी पुण्य-पाप के भाव से भिन्न कराने का मुनि धर्मात्मा का अभिप्राय है। समझ में आया? आहाहा! अब यह प्रवृत्ति पूरे दिन बीस-बाईस घण्टे धन्धा-होली सुलगे। उसमें निवृत्त कहाँ हो?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फुरसत नहीं मिलती। और थोड़ी फुरसत मिले, तब और व्रत, तप, भक्ति और पूजा में मात्र रुक जाये तो वह राग की क्रिया है।

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस राग से भिन्नता करना, यह करनेयोग्य है। यह (बात) तो

चलती है। राग से भिन्नता करना। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर है। सत् शाश्वत् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार आत्मा है। राग जो अन्दर में है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव, वह सब राग है; वह राग है, वह परिमित है। विभाव है, वह हदवाली चीज़ है। तो उससे हटकर आनन्द का नाथ भगवान आत्मा के अनुभव में रहना। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह अनुभव है, वह पर्याय है। क्या पर्याय और क्या द्रव्य?

वस्तु जो है द्रव्य आत्मा भगवान, वह तो ध्रुव चिदानन्द नित्यानन्द प्रभु है। परन्तु उसका अनुभव करना, राग से भिन्न होकर चैतन्य निर्विकल्प आनन्द के नाथ का अनुभव करना, वह अनुभव राग से शून्य है परन्तु स्वभाव की शक्ति की व्यक्तता से भरपूर है। आहाहा! समझ में आया? भाई! बापू!

मुमुक्षु : दूसरा कुछ न हो तो शुभभाव करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे क्या? वह तो अनादि से करता है। क्या करना था उसमें? वह नया क्या था? वह तो अनादि से करता है। शुभभाव तो निगोद में भी होता है। भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि प्याज और लहसुन के एक टुकड़े में असंख्य शरीर वह वस्तु है। दुनिया न माने, इसलिए वह चीज़ चली जाए? एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। और एक-एक जीव को क्षण में शुभ और क्षण में अशुभभाव होते हैं। आहाहा! कभी सुना नहीं, खबर नहीं। शुभ और अशुभभाव तो इसे निरन्तर होते हैं। आत्मा है न। वस्तु की खबर नहीं। पुण्य और पापभाव तो अनादि से करता आया है। एकेन्द्रिय जीव में भी... अरे! इसे खबर कहाँ है कुछ।

अभी तक अनन्त काल में तो चार गति में भटका। वनस्पति में, लट में, कौवे, कुत्ते में अनन्त भव किये। वह एकेन्द्रिय में भी, भगवान परमात्मा जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञदेव, जिनके मत में सर्वज्ञ एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, जिन्हें तीन काल—तीन लोक का ज्ञान हो, जिन्हें वाणी ईच्छा बिना ॐ ध्वनि निकले, जिनका शरीर परमौदारिक, जिनके भामण्डल के तेज में नजर करने से सात भव दिखाई दे, ऐसे परमात्मा सर्वज्ञदेव जिनेन्द्रदेव फरमाते हैं, उन्हें परमात्मा कहते हैं। समझ में आया? वे परमात्मा फरमाते

हैं। आहाहा! भाई! प्रभु! भगवानरूप से ही बुलाते हैं। परन्तु वह भगवान क्या चीज़ है? समझ में आया? विकल्प से शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ। परन्तु वह तो नास्ति हुई। अस्ति क्या है? समझ में आया? यह तो नास्ति हुई। व्यवहार और विकल्प से शून्य हो जाओ, विकल्प से शून्य हो जाओ, उससे क्या हुआ? चीज़ क्या है कि जिससे पर से शून्य हो जाये? आहाहा! अपने शरीरप्रमाण आत्मा है और एक-एक आत्मा में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता भरी है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे आत्मा में राग से शून्य होकर स्वभाव के अस्तित्व में अनुभव करना, दृष्टि करना। आहाहा! यह कहते हैं न?

जीव का—कर्म का एकत्वबुद्धिरूप... मिथ्यात्वभाव है। चाहे तो राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का हो, परन्तु वह राग है, वह विकल्प है। भगवान आत्मा उससे भिन्न आनन्दकन्द है। दोनों की एकत्वबुद्धि करना, वही मिथ्यात्व संसार है। चौरासी लाख योनि में भटकने का वह कारण है। समझ में आया? आहाहा! आचार्य दिगम्बर सन्त अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर वेदन में है, उन्हें मुनि कहते हैं। प्रचुर स्वसंवेदन। राग से भिन्न होकर निज आत्मा के आनन्द का अनुभव तो सम्यग्दृष्टि को भी होता है। चौथे गुणस्थान में। परन्तु मुनि को तो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन होता है। प्रचुर अर्थात् बहुत। समुद्र के किनारे जैसे ज्वार आता है, वैसे सन्तों को अन्तर की दशा के किनारे अन्तर आनन्द का ज्वार आता है। समझ में आया? वह प्रचुर स्वंसेवदनज्ञान-आनन्द, वह मुनि का मुख्य लक्षण है। वे मुनि ऐसा कहते हैं, मैं दुनिया को ऐसा कहता हूँ... इस प्रकार ऐसा है कि '**अधुना**' **जीव का—कर्म का एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव वह जैसे छूटे, वैसा है अभिप्राय जिसका, ऐसा है।** आहाहा!

मुमुक्षु : अर्थात् यहाँ क्या कहना चाहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह। छूटना चाहे वह। यह तो अब विशेष कहते हैं। सामान्यरूप से तो कहा। सामान्य का अर्थ कि जितने विकल्प हैं, चाहे तो दया का, भगवान के स्मरण का हो, आहाहा! सब राग से भिन्न, सामान्यरूप से संक्षेप में सब विकार से भिन्न निजात्मा का अनुभव कराया, उसका भान कराया। परन्तु अब विशेष नाम लेकर भिन्न कराते हैं। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें! अस्तित्व भगवान

का अस्तित्व / मौजूदगी, आत्मा का अस्तित्व-मौजूदगी शरीर में शरीर से भिन्न उसकी मौजूदगी है। शरीर बाहर नहीं। शरीर मैं नहीं। शरीर के रजकण तो धूल मिट्टी हैं। परन्तु उससे भिन्न अन्दर में सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ और राग की एकताबुद्धि मिथ्यात्व है, संसार है, चार गति में रुलने का वह परिणाम है। उसको छुड़ाने का मुनि का अभिप्राय है। समझ में आया? तो सामान्यरूप से तो पहले बात की।

अब, **'तम् एव विशेषात् परिहर्तुम्'** है न? उसे अब विशेष प्रकार से **जितना परद्रव्यरूप परिग्रह है, उसको भिन्न-भिन्न नामों के विवरण सहित छोड़ने के लिए अथवा छुड़ाने के लिए। यहाँ तक कहा सो क्या कहा?** आहाहा! सूक्ष्म बात तो है, भाई! अभी तो सब गड़बड़ चलती है। विकल्प से शून्य हो जाओ, विकल्प से शून्य हो जाओ। परन्तु विकल्प शून्य हो, वह वस्तु क्या है कि जिसके अस्तित्व के अनुभव से विकल्प से शून्य हो जाये? समझ में आया? सच्चिदानन्द प्रभु देह प्रमाण भिन्न अन्दर, जैसे पानी-जल का लोटा हो और उसमें जल है। तो जल भिन्न है और लोटा भिन्न है। उसी प्रकार यह (शरीर) जड़ का-धूल का लोटा है। उसमें आत्मा-जल आनन्दकन्द जल भरा है। वही ज्ञान का लोटा है। लोटा होता है न? देखो न! काशीघाट के कलश जैसा है। भगवान अन्दर चिदानन्द प्रभु अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता से भरपूर, इन शरीर के रजकण से भिन्न भगवान अन्दर है। आहाहा! यह तो कहा, परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के भाव... वे कहते हैं न, खूब रोओ, खूब रोओ, रुदन करो, फिर निर्विकल्प होगा। रुदन करना, वह तो पापभाव है। और पहले बहुत हँसो, फिर निर्विकल्प हो जाओ। बहुत पाप करो, फिर निर्विकल्प हुआ जायेगा। (यह सब बातें) पाखण्ड है। समझ में आया?

यहाँ तो पहले से कहते हैं, शान्ति का घात करनेवाले जितने विकल्प हैं... आहाहा! शुभ और अशुभ की वृत्तियाँ उठती हैं। गुण-गुणी के भेद की भी वृत्ति उठती है, वह राग है। आहाहा! भगवान अन्दर राग से (भिन्न) अस्तित्व परमात्मस्वरूप विराजमान है। आहाहा! उसकी दृष्टि करके, त्रिकाली आनन्द के नाथ का आश्रय करके राग और सब परपदार्थ से एकत्वबुद्धि छोड़ना। यह मिथ्यात्व को छुड़ाने की पहली बात है। और मिथ्यात्व छूटे बिना व्रत, नियम और तप सच्चे होते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह इन्तजार कब तक देखना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में जब तक न मिले तब तक। बाहर में भटके कितने ? वहाँ भटकते हो अभी। देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : बहुत समय से करते हैं परन्तु अभी होता नहीं तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : दरकार नहीं। उतना पुरुषार्थ नहीं। अभी कुछ न कुछ अन्दर दूसरा भाव है। कल तो पुस्तक दी है। कहा, वह देरी से मिलेगी। इसकी अपेक्षा पहले ले जाये। वचनामृत देरी से मिले न! कहा, अभी ले जाओ पहले। बापू! मार्ग अलग है, भाई! उसकी जितनी रुचि की दरकार चाहिए, वह दरकार नहीं। आहाहा! और उसकी दरकार पूरी हो और न मिले, ऐसा तीन काल में होता नहीं। आहाहा! तीन काल में आत्मा भगवान सच्चिदानन्द अस्ति-तत्त्व तो अन्दर मौजूद प्रभु है। आहाहा! अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि अनन्त शक्तियाँ हैं। वस्तु एक है, परन्तु उसकी शक्तियाँ— गुण अनन्त हैं। और एक-एक गुण की एक समय की एक-एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्यायें हैं। वस्तु की खबर नहीं। समझ में आया ? यह वर्तमान पर्याय में-अवस्था में-हालत में रागादि उत्पन्न होते हैं और कर्म तथा शरीर आदि का संयोग दिखता है... आहाहा! उससे भेदज्ञान करने का अभ्यास कर, प्रभु! इसके अतिरिक्त तुझे नहीं मिलेगा। आहाहा! समझ में आया ? यह भक्ति करके, पूजा करें और दान देंगे और व्रत करेंगे तो उससे सम्यग्दर्शन होगा, मर जाये तो भी नहीं होगा। सुन न! वह तो राग की क्रिया है, वह तो क्लेश है। क्लेश से समाधि सम्यग्दर्शन होता है ? आहाहा! ऐसी बात है।

यह कहते हैं, विशेषरूप से भिन्न-भिन्न नाम कहकर... है न ? **यहाँ तक कहा सो क्या कहा ? जितनी पुद्गलकर्म की उपाधिरूप समाधि,...** समुच्चय। कर्म, पुण्य और पापभाव, अरे...! भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप वह आनन्द और आत्मा दो भिन्न का विचार करना, वह भी विकल्प और राग है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! क्या हो ? **जितनी पुद्गलकर्म की उपाधिरूप समाधि,...** आहाहा! **जो कुछ परद्रव्य सामग्री है, सो त्याज्य है, ऐसा कहकर परद्रव्य का त्याग कहा। उसको सामान्यरूप त्याग कहा...** देखो ? यह सामान्य (कहा)। अर्थात् ? संक्षेप में भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द

और पुण्य और पाप के विकल्प रागादि भाव और शरीरादि सब परवस्तु है, उसका दृष्टि में से त्याग कराया। सामान्यरूप से संक्षेप में सब रागादि पर और आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ स्व, उसका भेदज्ञान सामान्य रीति से कराया। आहाहा! सब पैस-बैसा का-धूल का क्या करना? आहा! अरे! इसे समय मिला नहीं। अभी बाहर से प्रवृत्ति घटाकर बाहर से निवृत्ति करना, इसका ठिकाना नहीं होता। अन्दर की बातें तो कहाँ रह गयीं।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। सन्त दिगम्बर आचार्य तो केवलज्ञानी के पथानुगामी थे। उन्हें तो प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन था। आहाहा! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द के ढगला... ढगला को क्या कहते हैं? ढ़ेर। पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का ढ़ेर आता था, ऐसी वस्तु अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का प्रभु है। ऐसी पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा... समझ में आया? समझाय छे अर्थात् समझ में आता है? भाषा थोड़ी गुजराती आ जाती है। समझ में आता है? समझाय छे कांई? यह हमारी गुजराती भाषा है।

भाई! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् विराजते हैं। यहाँ महावीर आदि तीर्थंकर, अनन्त सर्वज्ञ हुए, वे भी पूर्ण ज्ञान की, आनन्द की दशा को प्राप्त हुए और इच्छा बिना ॐध्वनि निकली। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे', आहाहा! 'रचि आगम उपदेशे, भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा! वह वाणी यह वीतराग सर्वज्ञ की है। आहाहा! वे सन्त सर्वज्ञ के पथानुगामी... आहाहा! वे कहते हैं कि हमने जगत को सामान्यरूप से राग और परपदार्थ से भिन्नता की बात तो की। एक ओर भगवान आत्मा आतमराम तथा एक ओर पुण्य-पाप, दया, दान, शरीर, वाणी, मन सब गाँव—दोनों चीज़ें अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भेदज्ञान तो प्रथम कराया। अब विशेष नाम लेकर भिन्न-भिन्न परिग्रह के नाम लेते हैं। यह कहते हैं, है?

जितना परद्रव्य उतना त्याज्य है, ऐसा कहा। अब (कहते हैं कि) क्रोध परद्रव्य है,... अब नाम अलग करते हैं। आहाहा! जरा अरुचि उत्पन्न होना, प्रतिकूल चीज़ देखकर... चीज़ प्रतिकूल है ही नहीं। चीज़ तो ज्ञेय है। ज्ञान में ज्ञेय जाननेयोग्य है। परन्तु अज्ञानी उसे प्रतिकूल मानकर अन्दर (द्वेष करता है), वह भी परिग्रह परवस्तु है। समझ में

आया? है? **क्रोध परद्रव्य है, इसलिए त्याज्य है।** आहाहा! **मान परद्रव्य है, इसलिए त्याज्य है।** मान-अभिमान करना। आहाहा! मैं पैसेवाला हूँ और मैं शरीर हूँ और मैं त्यागी हूँ, मैं पण्डित हूँ और मैं मूर्ख हूँ... आहाहा! यह अभिमान-मान है। यह मान परिग्रह है। वह परचीज़ की ममता है तो उसका त्याग कराया। प्रभु! मान छोड़। आहाहा! समझ में आया? है? **इसलिए त्याज्य है।** माया, लोभ इत्यादि। लोभ हो। परवस्तु की विकल्प-वृत्ति उठे। आहाहा! रुदन करना, वह पापभाव है; हंसना, वह पापभाव है। उस पापभाव से अन्दर आत्मा की निर्विकल्प दृष्टि होती है, यह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी पाखण्ड में खो गया है। समझ में आया? यह कहते हैं, वह भी परिग्रह है, प्रभु! आहाहा! अब जरा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : यह तो साहेब! प्रतिक्रमण में मिच्छामी दुक्कडम् हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिच्छामी दुक्कडम्, ऐसे मिच्छामी दुक्कडम नहीं होता। मिच्छामी दुक्कडम तो तब कहलाता है कि रागादि झूठे हैं और सत्य प्रभु अन्दर भिन्न है। ऐसे सत्य का आश्रय लेकर राग को भिन्न करे तो वह मिच्छामी दुक्कडम होता है। ऐसे पहाड़े बोले मिच्छामी दुक्कडम... मिच्छामी दुक्कडम... मर गया ऐसा करके। कहो, देवानुप्रिया! यह प्रश्न नारद है। आहाहा! बापू! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! अनन्त काल गया इसे। सत् समागम सच्चा मिला नहीं, मिला तो काम किया नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह बहिन का वचनामृत का पुस्तक है न? लोगों पढ़कर बहुत प्रसन्न हो जाते हैं। हमारे हसमुख तो कल कहता था, यह बहिन का पुस्तक अनुभव में निमित्त है। कहा था? भाई! वाह! पाटिया बनाये हैं। पहला इसने किया है। बहिन के वचनामृत के पाटियों की शुरुआत हसमुख ने की है। यह वस्तु क्या है बापू! और यह कल बोला था। यह बहिन के वचन अनुभव में निमित्त हों, ऐसे हैं। बोला था न? भाई! आहाहा! बापू! यह भाषा... आहाहा! आनन्द के नाथ का वेदन-अनुभव... आहाहा! उसमें यह बहिन के वचनामृत तो निमित्त हैं, ऐसा बोला था। अरे! बापू! करने का यह है। मर जायेगा, चला जायेगा। आहाहा! यह चीज़ अभी सुनने को मिलना मुश्किल पड़ती है।

यहाँ तो कहते हैं, अब जरा ध्यान रखो। **भोजन परद्रव्य है, इसलिए त्याज्य है,...**

यहाँ दूसरा विशेष नहीं लिया, किसलिए? कि मुनि है न, मुनि? मुनि को वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। जिन्हें सन्त कहते हैं, मुनि कहते हैं। सच्चे सन्त हों, उन्हें वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। ऐसी उनकी नग्नदशा सहज हो जाती है। इसलिए वस्त्र का त्याग और ऐसे नाम नहीं लिये। क्योंकि वह तो उन्हें त्याज्य ही होता है। क्या कहा? वस्त्र का त्याग और यह नहीं लिया—गहने का त्याग और पैसे का त्याग, वे मुनि को होते ही नहीं। वस्त्र रखे और मुनिपना हो, यह तीन काल—तीन लोक में नहीं होता। अज्ञानी मानते हैं। वस्त्रसहित रहकर हम मुनि और साधु हैं (ऐसा मानते हैं) वे निगोदगामी हैं। वे अधोगति में जानेवाले है। समझ में आया?

यहाँ तो तीन लोक का नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव का यह फरमान है। समझ में आया? कहते हैं, भोजन का त्याग। ऐसा लिया न? **भोजन परद्रव्य है...** क्योंकि मुनि को अभी आहार होता है। मुनि होते हैं, जो सन्त होते हैं, जिन्हें पहला आत्मज्ञान हो और फिर ज्ञान में रमणता हो। चरना-चारित्र। तब उसे वस्त्र का और वस्तु सब छूट जाती है। मुनि को तो एक मोरपिच्छी, कमण्डल बस, दो। और नग्नदशा (होती है)। जंगल में बसते हैं। आहाहा! उन्हें सच्चे सन्त और मुनि कहा जाता है। वह अपनी अपेक्षा लेकर बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! यह बातें... अभी मुनि किसे कहना? नग्नपना ले लिया और पंच महाव्रत ले लिये, इसलिए मुनि हो गये, ऐसा नहीं है।

अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ को ढंढोलकर जिन्होंने जगाया और जिनकी वर्तमान दशा में अतीन्द्रिय आनन्द की प्रचुर बाढ़ आती है, ज्वार। आहाहा! वे मुनि। वीतराग सर्वज्ञ पंथ में-मार्ग में ऐसा कहा जाता है। और इसके अतिरिक्त कोई पंथ सच्चा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! उन सर्वज्ञ भगवान के पंथ में सन्तों को वस्त्र नहीं होते। आहाहा! चेला-चेली की ममता उन्हें नहीं होती। वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते हैं। कहते हैं, वस्त्र का नाम नहीं लिया। क्योंकि वस्त्र होते ही नहीं। परन्तु भोजन का नाम लिया। क्योंकि अभी आहार होता है। भगवानजीभाई! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : पंच परमेष्ठी में ऐसे साधु को....

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें ही डाला है। दूसरा कहाँ साधु था। णमो लोए सव्व

साहूणं। बाबा होकर घूमे, वस्त्र बदले सब साधु हो गये? धूल भी नहीं। आहाहा! धूल नहीं अर्थात्? पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं। आहाहा! भाई!

मुमुक्षु : पंचम काल में तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में हलुवा बनाना हो तो पेशाब डालते होंगे? हलुवा... हलुवा... क्या कहते हैं? हलुवा। पंचम काल के हलुवे में आटे के बदले धूल डालते होंगे? घी के बदले पेशाब डालते होंगे? पंचम काल का हो या चौथे काल का हो, हलुवा तो शक्कर, घी और आटे का होता है। इसी प्रकार पंचम काल के साधु हों या चौथे काल के हों, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से (साधुपना) होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं।

भोजन का त्याग है, ऐसा कहा। देखो? **भोजन परद्रव्य है...** भोजन है, लेने की वृत्ति उठती है, परन्तु वह वृत्ति और भोजन का अन्दर में त्याग है। दृष्टि में उसका स्वीकार नहीं। आहाहा! धर्मात्मा सन्त मुनि को आहार उनके लिये बनाया हो तो वे तो लेते नहीं, उनके लिये बनाया हुआ हो, वह मुनि नहीं लेते। परन्तु निर्दोष हो, उसे लेना, उनके लिये भी अपना अभिप्राय भिन्न है। वह मेरी चीज़ नहीं। भोजन मेरी चीज़ नहीं और भोजन लेने की वृत्ति, वह भी मेरी चीज़ नहीं; मैं तो आनन्द हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान महावीर को आहार लेने की वृत्ति उठती थी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : छद्मस्थ (दशा में)। केवली होने के बाद नहीं। क्या है तुम्हारे? श्वेताम्बर का केवली का कहना है? श्वेताम्बर में आता है। भगवान को रोग हुआ और फिर आहार लिया। छह महीने में रोग हुआ। सब कल्पनायें, सब झूठी बात है। यहाँ तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर साक्षात् महाविदेह में विराजते हैं। पाँच सौ धनुष, दो हजार हाथ ऊँचे हैं। करोड़पूर्व का—अरबों वर्षों का आयुष्य है। और त्रिकाली सर्वज्ञ पूर्णानन्द के नाथ को परमात्मदशा प्रगट हुई है। दिव्यध्वनि ॐध्वनि निकलती है। समझ में आया? आहाहा! उन परमात्मा की यह वाणी है। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में वहाँ गये थे। दिगम्बर सन्त थे। वहाँ गये थे। (परमागममन्दिर में इन चित्रों में) बीच में है। यहाँ आकर यह शास्त्र बनाये हैं। यह मार्ग है। यहाँ पहले थे परन्तु वहाँ गये फिर स्पष्ट हुआ। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि धर्मी हो, राग से भिन्न अनुभव हुआ हो तो भी अभी उसे आहार का भाव, विषयभोग की वासना का भाव-वृत्ति भी होती है, परन्तु वह मेरा है, ऐसी दृष्टि नहीं। दुःखरूप लगता है। सम्यग्दृष्टि को भोग की वासना काला नाग, जहर लगता है। मुनि को तो वह है ही नहीं। आहाहा! एक भोजन। क्षुधा होती है। तो कहते हैं, वह परिग्रह भी नहीं। मैं भोजन करता हूँ और यह विकल्प मेरी चीज़ है, ऐसा नहीं। आहाहा! उसके भी ज्ञाता-दृष्टा हैं। अरेरे! ऐसी बातें! यह कहाँ... लोगों ने कुछ चलाया है न, कुछ का कुछ चलाया है न, बेचारों को भान नहीं होता। झुकानेवाले चाहिए वहाँ झुक जाते हैं। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर परमात्मा की दिव्यध्वनि ॐकार दिव्यध्वनि का यह सार है। आहाहा! भोजन का त्याग है। है? आहाहा! **पानी पीना परद्रव्य है...** पानी... पानी। वह परद्रव्य पर है। मुनि को पानी पीने की वृत्ति उठती है परन्तु वह परद्रव्य है। उसके ज्ञाता-दृष्टा हैं। मेरा है, ऐसा नहीं मानते। आहाहा! ऐसा है। परद्रव्य का त्याग करते-करते मुनिपना अन्दर डाल दिया है। मुनि कैसे होते हैं? आहाहा! यहाँ तो वस्त्र बदले और हो गये साधु। बापू! जिनेन्द्र वीतराग परमेश्वर ने कहे, उन सन्तों की कोई अलग जाति है। जिन्हें वस्त्र नहीं, पात्र नहीं। उन्हें पात्र का टुकड़ा नहीं। आहाहा! इसलिए दूसरी बात ली नहीं। परन्तु भोजन होता है, इसलिए भोजन की बात ली है, तथापि उसके भाव की ममता नहीं। आहाहा! ज्ञातारूप से वृत्ति आती है, जानते हैं। भोजन को भी जानते हैं। **पानी पीना परद्रव्य है...** आहाहा!

कैसा है परद्रव्य परिग्रह? 'स्वपरयोः अविवेकहेतुं' आहाहा! बहुत ऊँचा शब्द आया। **'स्वपरयोः अविवेकहेतुं' 'स्व' शुद्धचिद्रूपमात्र वस्तु...** ज्ञानरूप प्रभु प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! उसमें दूसरी अनन्त शक्तियाँ हैं। परन्तु ज्ञानप्रधान कथन करके चिद्रूप आत्मा कहा गया है। एक आत्मा में तो अनन्त शक्तियाँ। शक्ति अर्थात् संख्या से अनन्त गुण। आहाहा! तथापि सर्व गुणों को मुख्य नहीं लेकर, चिद्रूप-ज्ञानरूप प्रधानरूप से ज्ञानरूप कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! यह चिद्रूप **शुद्धचिद्रूपमात्र वस्तु...** यह स्व, यह स्व। और पर? **द्रव्यकर्म...** अन्दर आठ द्रव्यकर्म जड़ हैं। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी (आदि)। सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में सब बात स्पष्ट प्रत्यक्ष है। समझ में

आया? अन्दर ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म जड़ है। वह भी परवस्तु है। आहाहा!

भावकर्म... यह शुभ-अशुभ विकल्प-राग उठता है, वह भावकर्म। वह भी भगवान आत्मा से भिन्न है। वह परपरिग्रह है, वह पर है। स्व तो शुद्ध चिद्रूप आत्मा। आहाहा! वे पर भावकर्म। आहाहा! पुण्य और पाप की वृत्ति, वासना विकार है। वह पर है। स्व तो शुद्ध चिद्रूप भगवान आत्मा आनन्द। पर्याय में उसका अनुभव होना। वस्तु तो वस्तु त्रिकाल है। परन्तु वर्तमान दशा में उसका अनुभव होना। उस अनुभव में भावकर्म नहीं है। समझ में आया? आहाहा! है?

नोकर्म... यह शरीर, यह वाणी जड़, वह आत्मा में नहीं, वह परचीज़ है। आहाहा! समझ में आया? अरे! कहाँ बैठे यह बात? सुनने को मिलती नहीं। क्या करे? कहाँ जाये? आहाहा! 'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान, सेये नहीं गुरु सन्त को छोड़ा नहीं अभिमान।' सच्चे सन्त किसे कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : सुना है तो भी वापस भूल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृतलाल नाम भूल जाते हैं? नींद में हो तो भी हाँ करता है। यह तो मुफ्त का नाम है। अमृतलाल नाम है इस शरीर का? वह नाम नींद में बुलावे कि अमृतलाल! तो कहे, हाँ। वहाँ हकार देता है। वहाँ रस है। भाई! वहाँ रस चढ़ गया है। यहाँ रस नहीं है। आहाहा! शरीर का तो खोटा नाम है। इस मिट्टी को दूसरे की अपेक्षा भिन्न पहिचानने के लिये है। परन्तु यह नाम उसे स्वप्न में भी बुलावे कि अमृतलाल। हं! कहाँ से आया परन्तु हं? परन्तु यह आत्मा अन्दर अमृत का सागर भरा है वह हं (नहीं होता)। आहाहा! जिसकी सत्ता में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

नोकर्म, उनके... 'अविवेक' यह पुण्य-पाप के भाव, जड़कर्म और शरीर-वाणी, उनके एकत्वरूप संस्कार, उसका जो कारण है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! **'अविवेकहेतुम्'** है न? आहाहा! **'अविवेकहेतुम्'** राग से भिन्न, ऐसा विवेक करना चाहिए, उसके बदले राग और मैं एक हैं, (ऐसा एकत्व मानता है)। आहाहा! यहाँ तो

देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति भी राग है। राग और आत्मा को एक करना, वह अविवेकहेतु है। अविवेकहेतु है। पृथक् करने का हेतु नहीं, वह तो एकत्वहेतु है। अरे! यह कहाँ है? समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव की जीव, कर्म में एकत्वबुद्धि है... '**अविवेकहेतुं**' का अर्थ किया। आहाहा! महाप्रभु अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु और पुण्य और पाप, रागादि, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम, दो की एकताबुद्धि मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ उसे धर्म माने। व्रत करते हुए, अपवास करते हुए, तपस्या करते-करते धर्म होगा। यहाँ कहते हैं कि वे सब विकल्प और राग है। वह राग और भगवान आत्मा का एकत्व मानना, वह अविवेक का हेतु परिग्रह है। वह तो एकत्वबुद्धि में कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि के परद्रव्य का परिग्रह घटित होता है।** क्योंकि एकत्वबुद्धि है।

सम्यग्दृष्टि जीव के... सम्यग्दृष्टि, जिसे राग से भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव हुआ। मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसे आनन्द का स्वाद आया। आहाहा! वह अनादि काल से पुण्य और पाप, राग का स्वाद आता था, वह जहर का स्वाद था। आहाहा! यहाँ जहाँ आत्मा के अन्तर अनुभव में आनन्द का स्वाद आया, उस जीव को **भेदबुद्धि है...** उस आनन्द के स्वाद के समक्ष राग की आकुलता दिखती है। इसलिए राग की आकुलता से अपने को भिन्न जानता है—अनुभव करता है, उसे धर्मी कहा जाता है। आहाहा! बहुत शर्तें, बहुत जवाबदारी। आहाहा! समकिती को **इसलिए परद्रव्य का परिग्रह घटित नहीं होता।** आहाहा! राग होता है परन्तु उसे अपना मानता नहीं। अपना तो आनन्द है, ऐसा अनुभव में मानता है। समझ में आया? इसलिए धर्मी को राग और पर का परिग्रह घटित नहीं होता। अज्ञानी को राग मेरा है, ऐसा मानता है, इसलिए सब परिग्रह घटित होता है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ९, शुक्रवार, दिनांक-१८-११-१९७७, कलश-१४५-१४६, प्रवचन-१५३

निर्जरा अधिकार। १४५ कलश। अन्तिम चार लाईनें हैं। **भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव की जीव कर्म में एकत्वबुद्धि है...** चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो। उसमें अज्ञानी की एकत्वबुद्धि है।

मुमुक्षु : जिसमें एकत्वबुद्धि हो, उसमें होगा क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है, वह मैं हूँ और शुद्ध चैतन्य राग से भिन्न अस्तित्व में दृष्टि का जिसे अभाव है, उसे राग के परिणाम में अस्तित्व—वह मैं हूँ, ऐसी उसे अस्तित्व की बुद्धि, एकत्वबुद्धि है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा!

जिसे एक समय में... कल नहीं कहा था? ओहोहो! आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुणे गुण एक आत्मा में। अरे! अंगुल के असंख्य भाग में निगोद के अनन्त जीव हैं। प्रत्येक जीव को (अनन्त गुण हैं)। अंगुल के असंख्य भाग में वह अनन्त निगोद के जीव हैं। आहाहा! यहाँ। ऐसा लोक ठसाठस भरा है। तो भी उस एक-एक जीव में आकाश के प्रदेश की संख्या से अनन्तगुणी संख्या गुण की-शक्ति की है। आहाहा! ऐसी शक्ति का तत्त्व शक्तिवान जो मौजूद है, प्रगट है, व्यक्त है, उसकी दृष्टि का जिसे अभाव है। आहाहा! ऐसा महाप्रभु, उसके अस्तित्व का अन्दर में अनुभव नहीं। उसे राग में अनुभव राग का और 'राग वह मैं हूँ'—ऐसा अस्तित्व उसकी दृष्टि में वर्तता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि हो उसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे अभी वर्तता है परन्तु उस सन्मुख भले संस्कार पड़े। परन्तु अभी अन्दर वर्तता है। राग में सर्वथा एकत्वपना छूटा नहीं है।

अन्दर भेदज्ञान राग से भिन्न करके। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति हो, त्रिलोक के नाथ की, वह भी विकल्प और राग है। आहाहा! उस राग से भिन्न करने के जिसे संस्कार भी अभी अन्दर है नहीं। आहाहा! बापू! वह भगवान, वह वस्तु कोई अलौकिक है, भाई! वह बाहर से उसका कोई माप आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! अनन्त-अनन्त चैतन्य चमत्कार से भरपूर भगवान। चमत्कार अर्थात् जिसके क्षेत्र के

प्रदेश का पार नहीं, ऐसी अनन्तगुणे गुण की शक्तियों का पार नहीं। पार नहीं अर्थात्? आहाहा! क्षेत्र से तो आत्मा आ जाता है ऐसे प्याल और लहसुन (जितने प्रदेश में)। परन्तु उसका भाव एक-एक आत्मा का भाव, गुण, भाववान का, गुणी का गुण, भाववान का भाव, शक्तिवान की शक्ति अनन्त है, अमाप है। आहाहा! ऐसी अमाप शक्ति का सागर भगवान जिसे अन्तर रुचि में, दृष्टि में आया नहीं, उसे उससे विरुद्ध ऐसा जो पुण्य, दया, दान, भक्ति का भाव, वे मेरे हैं—ऐसी उसे एकत्वबुद्धि वर्तती है। आहाहा! अभी तो सब फेरफार... फेरफार हो गया है।

मिथ्यादृष्टि अर्थात् असत्यदृष्टि। जो सत्यस्वरूप प्रभु ऐसा महाप्रभु। आहाहा! उसके अस्तित्व की अन्तर में दृष्टि नहीं, आश्रय नहीं, शरण नहीं, मांगलिक नहीं। आहाहा! उसे अमांगलिक ऐसा जो विकल्प है, चाहे तो शुभ हो या अशुभ, उसके प्रति उसे प्रेम है और अनन्त गुणसम्पन्न नाथ प्रभु का उसे द्वेष है। आहाहा! ऐसी जो राग के साथ की एकत्वबुद्धि... शान्तिभाई! अलग बात है, बापू! अभी तो भगवान की भक्ति करना, गुरु की (भक्ति) करना और उससे कल्याण हो जायेगा। वह भी राग में एकत्वबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह मिथ्या अर्थात् असत्यदृष्टि। अर्थात् कि जो इस स्वरूप में नहीं, ऐसे राग और कर्म की एकत्वबुद्धि, वह असत्यदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, झूठी दृष्टि है। आहाहा!

ऐसे **जीव को...** जीव और राग से लेकर सब चीज़ें। एक ओर भगवान आत्मा राम तथा एक ओर राग से लेकर पूरा गाँव। आहाहा! जिसे राग के अंश में एकत्वबुद्धि है, उसे तीन काल—तीन लोक के पदार्थों के प्रति एकत्वबुद्धि है। आहाहा! जिसे शुभ-अशुभराग में मिठास वर्तती है, उसे तीन काल—तीन लोक के पदार्थ मेरे हैं, ऐसी उसकी मान्यता है। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर... आहाहा! उसके अस्तित्व की, अनुभव की दृष्टि आनन्द के स्वाद की नहीं। सम्यग्दर्शन अर्थात् कि अन्तर आनन्द का नाथ, उसके अनुभव में उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसमें प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन (कहते हैं)। वह सच्ची दृष्टि। और उसके अतिरिक्त राग का स्वाद आवे... आहाहा! उस आकुलता के स्वाद में रुक गया है, वह मिथ्यादृष्टि है। कठिन बात है, प्रभु! अरे रे! इसे कहीं सुनने को मिलता नहीं।

मिथ्यादृष्टि जीव को.... शब्द बहुत थोड़े हैं परन्तु भाव बहुत गम्भीर हैं, प्रभु! आहाहा! जीव और कर्म। कर्म शब्द से राग से लेकर यह सब कर्म। चाहे तो भक्ति का राग हो या दया, दान, व्रत, पूजा का, शास्त्रवाँचन-श्रवण का... आहाहा! यह राग, वह कर्म है। वह आत्मा नहीं। ऐसे कर्म में अभी एकत्वबुद्धि है। **इसलिए मिथ्यादृष्टि के परद्रव्य का परिग्रह घटित होता है।** आहाहा! उसे राग का कण मेरा (ऐसा वर्तता है, इसलिए) उसे परिग्रह घटित होता है। पूरी दुनिया का परिग्रह उसे घटित होता है। यह परि अर्थात् समस्त प्रकार से राग के कण को और रजकण को अपना स्वीकार करता है, उसमें उसे आकुलता का स्वाद आता है। आहाहा! उसे अपना मानता है, उसको पूरी दुनिया का परिग्रह है। ऐसी बात है। आहाहा!

यह देखो न! क्षणभंगुर की बात सुनी न सवेरे। सुनी? मलूकचन्दभाई! तुम्हारे पूनमचन्द। डॉक्टरों ने इनकार किया कि एक महीने बाहर नहीं निकलना। और पाँच करोड़ रुपये-धूल के ढ़ेर। मलूकचन्द। और उनका व्यक्ति-दायां हाथ अभी मर गया, तीन दिन पहले। हीरा पटेल, वह मच्छीमार। परन्तु बहुत वह हो गया था। घर से निकला कि दुकान जाता हूँ। करोड़ों रुपये के घड़ी का वह उसको सौंपा हुआ। चाबी और वह सब। इतना विश्वासपात्र व्यक्ति। करोड़ों की ऊपर-नीचे है न। आहाहा! घर से निकला। रास्ते में कहीं किसी का मकान आया। यह पूनमचन्द ने किये हुए। विक्रय किये हुए। वहाँ दर्द उठा। उठा तो ऐसे जाया जाये नहीं, ऐसे जाया जाये नहीं। वहाँ और एक व्यक्ति उस मकान का परिचित (निकला)। यह तो वह मकान अपने लिया, उनका व्यक्ति है। उसे बेचारे को अन्दर ले गया। डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आवे वहाँ... अभी उसने बात नहीं की पूनमचन्द ने। उसके उसमें है। व्याधि में। यह पाँच करोड़ और छह करोड़ के धूल के ढ़ेर तेरे। मेरे। आहाहा!

मुमुक्षु : एक को ऐसा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई सब! भगवानजीभाई! रामजीभाई कहते हैं, एक को ऐसा हुआ। सबको कहीं होता है? अरे! सब मर जायेंगे तो ऐसा ही होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : सबको ममता होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता है। बात यह है। भाई! यहाँ तो। आहाहा!

आनन्द का नाथ अन्दर अनन्त चमत्कारिक चीज़ विराजता है। आहाहा! जिसकी शक्ति के माप नहीं मिलते, आकाश के प्रदेश का माप नहीं मिलता, उससे अनन्तगुणा वह किस प्रकार? क्षेत्र से यह इतने में आ गया। आहाहा! भाई! यह शब्द अलग चीज़ है, परन्तु इसमें भरे हुए भावों का माप निकालना कठिन, भाई! आहाहा! ऐसा जो गुण जो शक्ति की संख्या का माप नहीं, ऐसे प्रभु से विरुद्ध विकल्प से लेकर पूरा शरीर आदि सब... आहाहा! उसका जिसे प्रेम है, उस मिथ्यादृष्टि को सब परिग्रह है। वह मुनि हुआ हो। आहाहा! हजारों रानियाँ छोड़कर पंच महाव्रत पालता हो तो भी उस राग की क्रिया से मुझे लाभ है और राग मेरी चीज़ है, (ऐसा मानता है)। अस्तित्व जो पूरा है, वह तो दृष्टि में आया नहीं। इसलिए कहीं तो अस्तित्व मानना तो पड़ेगा। आहाहा! बाहर में दिखती नहीं इसकी लाईन। अन्दर में इसके... आहाहा! यह राग के अस्तित्व को स्वीकार करता है। उसे पूरी दुनिया का परिग्रह घटित होता है। है न?

मिथ्यादृष्टि के परद्रव्य का परिग्रह घटित होता है। आहाहा! परि अर्थात् समस्त प्रकार से उसे पूरी दुनिया का परिग्रह है। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव को...** आहाहा! भले चक्रवर्ती का राज हो, इन्द्र का इन्द्रासन हो, करोड़ों अप्सरायें हों... आहाहा! जिसे अन्तर में राग से भिन्न पड़कर भगवान आनन्द का स्वाद जिसे आया... आहाहा! जिसे आनन्द का पिण्ड भगवान है, अनाकुल आनन्द का पुंज प्रभु है, उसके सन्मुख में आनन्द का स्वाद एक अंश आया। आहाहा! उसके स्वाद की मिठास के समक्ष **जीव को भेदबुद्धि है...** आहाहा! उसे राग से और राग के फलरूप से बन्धन और उसके फलरूप से यह धूल आदि बाहर स्त्री, पुत्र और परिवार सब पर है... पर है। आहाहा! उसमें राग से भी भिन्न पड़कर अरागी भगवान के आनन्द का स्वाद आया। आहाहा! उस सम्यग्दृष्टि को भेदबुद्धि है।

सामने-सामने है न? उसमें एकत्वबुद्धि है, यहाँ भेदबुद्धि। आहाहा! हो, राग आवे। द्वेष हो। आहाहा! समकिती तो युद्ध में भी खड़ा दिखाई दे। आहाहा! भाई! उसका तल खोजना कठिन है। कहते हैं कि उसे परिग्रह जरा भी घटित नहीं होता। आहाहा! निर्लेपनाथ को जहाँ अन्दर देखा और अनुभव किया... आहाहा! जो सम्यक्

अर्थात् सत्यसाहेब प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, उसकी सम्यक्-सत्यदृष्टि, सत्यस्वरूप की सत्य दृष्टि अन्तर वेदन में हुई। आहाहा! वह अनन्त काल में ऐसा का ऐसा कुछ न कुछ ऐसे अटकने के साधन खोजकर अटककर पड़ा है। मर गया है। आहाहा! कहते हैं कि धर्मी जीव को चक्रवर्ती का राज हो, परन्तु अन्दर के आत्मा के आनन्द के स्वाद में वह राग से भिन्न पड़ गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अरेरे! दुनिया को मिलती नहीं, कान में पड़ती नहीं, बाहर की बातों में फँसकर पड़ा है। मर जायेगा बेचारा। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव के भेदबुद्धि है... आहाहा! बहिन के वचनामृत में आया है न एक शब्द? वचनामृत। अभी हसमुखभाई ने वितरण किये न १४०० ? ३१०० प्रकाशित हुए हैं, समाप्त हो गये हैं। अभी लाखों पुस्तकें प्रकाशित हुई परन्तु उसका सर्वोत्कृष्ट सिरताज है, यह पुस्तक। ३१०० समाप्त हो गये। १६००० प्रकाशित होते हैं। परन्तु इससे पार नहीं पड़ेगा, उसमें एक शब्द है कि विकार के भाव को मर्यादा है। उसमें बहिन का शब्द है। विकार के भाव को सीमा है। ऐसा शब्द है। और प्रभु जो अन्दर है, वह तो असीम—सीमारहित चीज़ है। आहाहा! वह सीम है, वह मर्यादा है; इसलिए विमुख हो सकता है, ऐसा कहते हैं। चाहे तो मिथ्याश्रद्धा हो, रागादि, परन्तु वे मर्यादित हैं। मर्यादित अर्थात्? एक समय की है, ऐसा नहीं। परन्तु उसकी शक्ति मर्यादित है। वह अमर्यादित नहीं। आहाहा! इसलिए उससे विमुख हो सकता है और भगवान आत्मा में शक्तियों का पार (नहीं), असीम है। असीम—जिसका सीमा-मर्यादा नहीं। आहाहा! वह जहाँ अन्दर में गया, वह अब विमुख नहीं होगा। आहाहा! दिगम्बर सन्तों का कथन सम्यग्दृष्टि का अप्रतिहत का लक्षण है, समयसार में। आहाहा! है पंचम काल के साधु, परन्तु ऐसी पुकार करते हैं, हमको जो यह आत्मज्ञान-दर्शन हुआ, अब वापस गिरनेवाला नहीं है और इस दृष्टि से केवलज्ञान लेनेवाले हैं। आहाहा! ३८ गाथा में है, ९२ गाथा में है। समयसार की ३८वीं गाथा में है, प्रवचनसार की ९२वीं गाथा में है। पंचम काल के सन्त भी अन्तर की बातें (ऐसी करते हैं)। आहाहा! ऐसी बातें कहीं हैं नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो भाग्यशाली हो, उसके तो कान में पड़े, ऐसी बात है। आहाहा!

यह ऐसा कहते हैं कि हमको जो आत्मज्ञान हुआ, आगम कुशलता और स्वभाव

का आश्रय लेकर जो आत्मदर्शन हुआ, वह अब गिरे—ऐसा नहीं है। प्रभु! आप पंचम काल के सन्त और छद्मस्थ (हो न)! कहते हैं न, तू कहे और मान न! हम तो पुकार करते हैं कि हम जो सम्यक्त्व पाये हैं, वह अब गिरनेवाला नहीं है। वह सम्यग्दर्शन भले क्षयोपशम हो परन्तु क्षायिक लेकर केवलज्ञान होनेवाला है, वह हमारी चीज़ है। आहाहा! चन्दुभाई! बहुत गाथा में आता है। ३८ में, ९२ में। दूसरी बहुत जगह आता है। गजब शैली है। यदि आत्मा गिरे तो हमको हमारा दर्शन गिरे। अर्थात् कि यदि आत्मा का अभाव हो तो दर्शन का अभाव हो। आहाहा! समझ में आया?

उस **सम्यग्दृष्टि जीव के भेदबुद्धि है...** आहाहा! यह तो मुनि की बात की। परन्तु नीचे चौथे से यह बात है। आहाहा! जिसमें से-प्रभु में से केवलज्ञान प्रगट हो और वह अनन्त काल तक केवलज्ञान हुआ ही करे, सादि-अनन्त, तो भी द्रव्य तो जैसा है, वैसा का वैसा रहता है। केवलज्ञान हुआ करे, इसलिए चैतन्य के द्रव्य में कमी आयी, ऐसी बढ़-घट वस्तु में नहीं है। ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरेरे! इसने सुना कहाँ है? और कहीं का कहीं फँसकर बेचारा पड़ा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन में चैतन्य का स्वाद आया... आहाहा! वह **भेदबुद्धि है, इसलिए परद्रव्य का परिग्रह घटित नहीं होता।** परद्रव्य का परिग्रह घटित नहीं होता। चक्रवर्ती का राज भी उसका वह मानता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ममता छूट गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकत्व छूट गया, एकत्व छूट गया। आसक्ति की ममता भले हो। परन्तु उससे एकत्व छूट गया। आहाहा! समझ में आया? यह अलौकिक बातें हैं प्रभु! यह तो अन्तर की बातें हैं। आहाहा!

परद्रव्य का परिग्रह घटित नहीं होता। ऐसा अर्थ यहाँ से लेकर कहा जायेगा। लो!

कलश-१४६

(स्वागता)

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात्
ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः।
तद्भवत्वथ च रागवियोगात्
ननूमेति न परिग्रहभावम्।।१४-१४६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'यदि ज्ञानिनः उपभोगः भवति तत् भवतु' [यदि] जो कदाचित् [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीव के, [उपभोगः] शरीर आदि सम्पूर्ण भोगसामग्री [भवति] होती है — सम्यग्दृष्टि जीव भोगता है, [तत्] तो [भवतु] सामग्री होवे। सामग्री का भोग भी होवे, 'नूनं परिग्रहभावं न एति' [नूनं] निश्चय से [परिग्रहभावं] विषय-सामग्री की स्वीकारता, ऐसे अभिप्राय को [एति] नहीं प्राप्त होता है। किस कारण से? 'अथ च रागवियोगात्' [अथ च] वहाँ से लेकर सम्यग्दृष्टि हुआ, [रागवियोगात्] वहाँ से लेकर विषयसामग्री में राग, द्वेष, मोह से रहित हुआ, इस कारण से। कोई प्रश्न करता है कि ऐसे विरागी के — सम्यग्दृष्टि जीव के, विषयसामग्री क्यों होती है? उत्तर इस प्रकार है — 'पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात्' [पूर्वबद्ध] सम्यक्त्व उत्पन्न होने के पहले जीव, मिथ्यादृष्टि था, रागी था, वहाँ राग भाव के द्वारा बाँधा था जो (निजकर्म) अपने प्रदेशों में ज्ञानावरणादिरूप कार्मणवर्गणा, उसके [विपाकात्] उदय से। भावार्थ इस प्रकार है कि राग-द्वेष-मोह परिणाम के मिटनेपर, द्रव्यरूप बाह्यसामग्री का भोग, बन्ध का कारण नहीं है; निर्जरा का कारण है; इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव, अनेक प्रकार की विषयसामग्री भोगता है परन्तु रंजकपरिणाम नहीं है; इसलिए बन्ध नहीं है, पूर्व में बाँधा था जो कर्म, उसकी निर्जरा है।।१४-१४६।।

कलश - १४६ पर प्रवचन

१४६ (कलश)

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात्
ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः।

तद्भवत्वथ च रागवियोगात्
ननूमेति न परिग्रहभावम्।।१४-१४६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'यदि ज्ञानिनः उपभोगः भवति तत् भवतु' आहाहा! सन्त पुकार करते हैं। अमृतचन्द्राचार्य पंचम काल के मुनि हैं, जिनका भावलिंग, प्रचुर स्वसंवेदन जिनका भावलिंग है। आहाहा! द्रव्य से भले नग्न हो, वस्त्र का टुकड़ा नहीं, परन्तु उनका भावलिंग जो है, वह प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द का प्रचुर वेदन, वह उनका भावलिंग है। आहाहा! यह भावलिंगी सन्त का पुकार है। आहाहा! **जो कदाचित् सम्यग्दृष्टि जीव के शरीर आदि सम्पूर्ण भोगसामग्री होती है...** आहाहा! और **सम्यग्दृष्टि जीव भोगता है...** भाषा तो लोग देखे, इस अपेक्षा से बात की है। कहीं परद्रव्य को भोगता है कोई? अज्ञानी भी भोग नहीं सकता। समझ में आया? परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ जाता है और किंचित् आसक्ति होती है, इसलिए पर को भोगता है, ऐसा कहने में आता है। पर को कौन भोगे? जड़ को, शरीर और यह वाणी, माँस-हड्डियाँ, इनका भोग है? स्त्री के विषय में उस शरीर का भोग करता है यह? तीन काल में नहीं। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मानता है कि मैं उसे भोगता हूँ। उसे ठीक लगकर मजा-राग उत्पन्न होता है, उसे वह भोगता है। आहाहा! उसकी इसे अभी खबर नहीं होती। वह राग का अनुभव है, वह अनुभव यहाँ से छूट गया, कहते हैं। समझ में आया?

शरीर आदि सम्पूर्ण भोगसामग्री होती है... अर्थात् कि भोग राग का नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु दिखता है न, बाहर में तो ऐसा दिखता है। देखो! मिथ्यादृष्टि को भोग थोड़े हों, पुण्य कम (हो) और इसे तो बहुत हों। मिथ्यादृष्टि हो, उसे साधारण पाँच-पच्चीस लाख हो, इसे तो बड़ा चक्रवर्ती का राज और इन्द्रासन पुण्य के ढ़ेर पड़े हों बड़े। आहाहा! उसके शरीर में पुण्य, वाणी में पुण्य, सामग्री में पुण्य, स्त्रियों-पुत्रों में पुण्य के ढ़ेर दिखाई दें। कहते हैं कि हो। और उसे भागे भी हो, भोगने का अर्थ कि उसकी ओर वृत्ति होती है जरा तो जरा राग हो, ऐसा। समझ में आया? आहाहा!

तो सामग्री होवे। सामग्री का भोग भी होवे,... 'नूनं परिग्रहभावं न एति' आहाहा! **निश्चय से विषय-सामग्री की स्वीकारता ऐसे अभिप्राय को नहीं प्राप्त होता है।** आहाहा!

अभिप्राय में वह राग मेरा है, सामग्री मेरी, यह अभिप्राय छूट गया है। इसलिए उसके अभिप्राय में परवस्तु परिग्रह है नहीं। आहाहा! ऊँचे दर्जे की बात है, बापू! आहाहा! समझ में आया? पुण्य विशेष हो तो बाहर में सामग्री बहुत दिखती है। कहा न? आहाहा!

मुमुक्षु : भोगना ही पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन भोगता है? यह तो बात की यहाँ। कोई भोगता नहीं। यह तो पहले बात की। परन्तु यह प्रश्ननारद है न? ऐई! देवानुप्रिया! कुछ अधिक स्पष्ट कराता है। बापू! यह तो ऐसा है, भाई! वह भोगता है, ऐसी तो भाषा ली है। क्योंकि लोग ऐसा जानते हैं कि लो, सब है इसके पास, यह सब पहनता है और ऐसा है और वैसा है। आहाहा!

जिसकी दुकान की करोड़ों-अरबों रुपयों की एक दिन की आमदनी हो। ऐसा बड़ा सेठिया हो और हो समकिती। भाई! यह क्या चीज़ है, बापू! जिसमें अन्तर की एकत्वबुद्धि छूट गयी है। आहाहा! जिसे अन्तर आनन्द का नाथ नजर में पड़ा है अनुभव में। आहा! उसे कोई चीज़ मेरी है, ऐसा वह मानेगा? आहाहा! चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जहाँ उछलता है। आहाहा! समुद्र में जैसे पानी का ज्वार आवे, वैसे सम्यग्दृष्टि को पर्याय में आनन्द का ज्वार आता है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द के ज्वार के समक्ष सामग्री को भोगता है, ऐसा कहना वह तो कथन है, कहते हैं। उसे जरा झुकाव हो और आसक्ति का राग हो, इस अपेक्षा से भोगता है, ऐसा कहा। समझ में आया? आहाहा! बहुत अन्तर है, बापू! मार्ग का अन्तर बहुत है। आहाहा!

'परिग्रहभावं' विषय-सामग्री की स्वीकारता ऐसे अभिप्राय को... क्या कहा? उसमें सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की बुद्धि में शुभ-अशुभराग, अशुभ भोग का भाव, उसमें सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! अज्ञानी को उसमें सुख का नशा चढ़ता है। हम सुख को भोगते-वेदते हैं, सुखी हैं। आहाहा! उस सम्यग्दृष्टि को पूर्व का पुण्य का बहुत योग हो और उसकी ओर का जरा थोड़ा झुकाव भी हो। निर्जरा की गाथा में आया है न? भाई! दूसरी गाथा। समकिती

जीव है, उसे भी पूर्व का कोई भाव आवे। वेदन में सुख-दुःख आवे एक समय। आहाहा! पहली गाथा में द्रव्यनिर्जरा कही है, दूसरी गाथा में भावनिर्जरा। वह यह निर्जरा अधिकार है।

भावनिर्जरा अर्थात् एक समय में जरा उसे कल्पना में भी सुख-दुःख की आसक्ति की वृत्ति हो। सुखबुद्धि नहीं। परन्तु वह दूसरे क्षण खिर जाती है। उसे निर्जरा हो जाती है। आहाहा! समझ में आया? है न निर्जरा में? दूसरी गाथा। उपभोग को उल्लंघता नहीं। उपभोग उसे सुख-दुःख होता है, ऐसा दूसरी गाथा में है। होता है, इसका अर्थ? जरा वृत्ति वह आसक्तिरूप हो जाती है। आहाहा! एकत्वरूप नहीं। परन्तु वह आसक्ति दूसरे समय में नाश हो जाती है, खिर जाती है। यह दूसरी गाथा में है। आहाहा! समयसार तो एक अलौकिक चीज़ है। फूलचन्दजी कहते बेचारे, वहाँ आसाम में गये न आसाम? कौन सा गाँव कहा वह, गोहाटी गये न? व्याख्यान चलता था समयसार का। गोहाटी गये थे न जब? वहाँ फूलचन्दजी थे। और सुनकर, ओहोहो! इस जगत में अभी समयसार.... समयसार बस है। अलौकिक बात है। तब बड़ी सभा भरी थी, गोहाटी। फूलचन्दजी वहाँ थे। बापू! मार्ग अलग, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **विषय-सामग्री की स्वीकारता ऐसे अभिप्राय को नहीं प्राप्त होता है।** आहाहा! यह ठीक है—यह अभिप्राय उड़ गया है। भगवान आनन्द का नाथ ठीक है, यह अभिप्राय हो गया है अन्दर। आहाहा! धर्म वह क्या, बापू! कुछ... ? समझ में आया? क्रोध भी आवे, राग भी आवे, कहते हैं। परन्तु अभिप्राय में उसका स्वीकार उड़ गया है। आहाहा! अब यह माप तो अन्दर से निकले या बाहर से निकले? आहाहा! अज्ञानी तो ऊपरी दृष्टि से बाहर से देखता है। डाला है न भाई ने, नहीं एक जगह? समयसार में डाला है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि हो, झोंपड़ा हो और साधारण में (रहता) हो और यह बड़े अरबों के महल में हो। आहाहा! उसकी सामग्री... क्या कहलाता है तुम्हारे वह? फर्नीचर। फर्नीचर। अरबों रुपये का फर्नीचर हो उसके मकान में-बँगला में। आहाहा।

तब कहा था न? नहीं? एक बार। गत (वर्ष) मुम्बई गये थे न। एक विजय नाम

का लड़का था। यहाँ महीने-महीने कुँवारा था तो रह गया था। मस्तिष्क बहुत अच्छा। गुना का था प्रायः। टाटा में नौकरी, बड़ी नौकरी। छोटी उम्र का, २५ वर्ष का होगा। उसे किडनी का दर्द हुआ। विवाह से पहले यहाँ रह गया और बाद में भी। परन्तु बहुत रस। इस आत्मा के प्रेम का सुनना रस बहुत। तब वहाँ दर्शन देने गये थे। टाटा में बड़ी नौकरी थी। छोटी उम्र में किडनी का दर्द। बाद में तो बेचारे ने दर्शन किये। उसकी माँ ने किडनी दी। मर गया। बारह महीने का विवाहित।

पश्चात् आहार करने गये थे हमारे शान्ताबहिन के बहिन के ननदोई मणिलाल। पाँच-छह करोड़ रुपये। मुम्बई। आहार करने गये वहाँ ऊपर की मंजिल में गये, वहाँ तो ऐसे आहार किया परन्तु बाहर सर्वत्र जहाँ-जहाँ चरण कराये, वहाँ मखमल बिछा हुआ था। लगभग पाँच लाख का तो फर्नीचर होगा। आहाहा! मुझे तो वहाँ देखकर ऐसा लगा, अरे! प्रभु! इसे यहाँ से निकलना कठिन पड़ेगा। पाँच लाख रुपये मैं तो कहता हूँ, हों! फर्नीचर कितना! पैसावाला। पाँच-छह करोड़ रुपये। यह रसिकभाई नहीं आते अपने? बहिन के बहनोई राजकोटवाले। उनके बहनोई। यहाँ आते हैं। वहाँ भी आते हैं। पैसे बहुत हैं। बड़ी दुकान है कहीं अरबस्तान में। आहाहा!

यह तो कहते हैं कि इसके अतिरिक्त अरबों रुपये के फर्नीचर हो जिसे— समकिती को। आहाहा! तथापि परपदार्थ मेरे है, यह स्वीकारबुद्धि अन्दर छूट गयी है। आहाहा! समझ में आया? और हजारों रानियों को छोड़कर मुनि हुआ है, त्यागी हुआ है, परन्तु जहाँ अन्दर में राग का स्वीकार है और चैतन्य के स्वभाव का अनादर है... आहाहा! उसे सब परिग्रह घटित होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञ का मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! अभी तो निवृत्ति से विचार कि यह क्या है, सुनने को मिलता नहीं। आहाहा! और जिन्दगी चली जाती है, ऐसी की ऐसी।

कहते हैं कि **विषय-सामग्री की स्वीकारता ऐसे अभिप्राय...** हों! अभिप्राय छूट गया है अन्दर में। आहाहा! उसे—समकिती को शुभराग आवे, परन्तु काला नाग जैसे देखे और त्रास हो, वैसे उसे त्रास होता है। काला नाग देखे। भोग भुजंग, आता है न? मुनि में नहीं आया? भोग भुजंग समान। आहाहा! समकिती को अन्दर में अशुभराग भी

आ जाता है। आहाहा! परन्तु काले नाग को देखकर जैसे त्रास हो, वैसे उसे दुःख लगता है। यह अन्तर कहाँ (दिखाई दे)। समझ में आया? इसलिए वह उसके **अभिप्राय को नहीं प्राप्त होता है।** वे मेरे हैं, ऐसे अभिप्राय को वह स्वीकारता-मारता नहीं। आहाहा!

नौआखली में हुआ था न? मुसलमान का हिन्दू पर जोर बहुत हुआ। गाँधी गये थे न जब? चालीस वर्ष की जवान माता और लड़का बीस वर्ष का जवान। यह मुसलमान दोनों को नग्न करके विषय में ऐसे जोड़े। दोनों को इकट्ठा करे। आहाहा! त्रास... त्रास... प्रभु! यहाँ जमीन मार्ग दे तो समा जायें कि यह मेरी माँ-जननी। अरर्र..र..! जैसे उसे त्रास वर्तता है। वैसे धर्मी को समकिती को अशुभराग में त्रास वर्तता है।

मुमुक्षु : शुभराग में?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग में भी त्रास। भट्टी है। शुभराग भगवान की भक्ति, वह भट्टी है। यह कितने ही कहते हैं न गुरु की भक्ति करते हैं, भगवान की भक्ति करते हैं (इसलिए) हो जायेगा कल्याण। धूल में भी नहीं होगा, सुन न! आहाहा! मिथ्याशल्य दृष्टि है। भट्टी है शुभराग।

छहढाला में नहीं आया? 'राग आग दाह दहे सदा ताते समामृत सेवीये। राग आग दाह दहे सदा।' यह शुभ या अशुभराग दाह—अग्नि है। आहाहा! न्यालचन्दभाई ने तो द्रव्यदृष्टिप्रकाश में तो बहुत डाला है। न्यालचंदभाई काम करके चले गये। स्वर्ग में चले गये। मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! यह भट्टी है—शुभराग, यह भट्टी है। नहीं सुहाया न दीपचन्दजी को। सरदारशहरवाले दीपचन्दजी सेठिया को नहीं सुहाया। बहुत बार आते थे, परिचय बहुत, वाँचन बहुत। परन्तु मिथ्यात्व का जोर आया अन्दर, इसलिए कहे शुभभाव भट्टी! उस शुभ को भट्टीरूप से वेदे, वह तो तीव्र कषाय है। आहाहा! ऐसी दृष्टि हो गयी। अब लोग बदले हैं उनके। यहाँ आ गये अभी। दामाद और वे बदले हैं थोड़े अब। अरे! यह बापू! रखना-झेलना, यह तो कोई... शुभभाव भट्टी है। कषाय अग्नि है। अशुभ की तो क्या बात करना? आहाहा! शीतल शान्तरस का नाथ भगवान अकषायस्वरूपी प्रभु को राग होने पर शान्ति जलती है। जिससे जले उसके अभिप्राय में मेरा, ऐसा कैसे माने वह? समझ में आया? आहाहा! उस अभिप्राय को पाता नहीं।

किस कारण से? 'अथ च रागवियोगात्' यह बड़ा शब्द है। **वहाँ से लेकर सम्यग्दृष्टि हुआ, वहाँ से लेकर विषयसामग्री में राग, द्वेष, मोह से रहित हुआ,...** आहाहा! पाठ में '**रागवियोगात्**' इतना शब्द है। अर्थ में **राग, द्वेष, मोह (मिथ्यात्व) से रहित हुआ,...** आहाहा! यह राग अनन्तानुबन्धी। समझ में आया? आहाहा! '**रागवियोगात्**' सम्यग्दृष्टि को परसामग्री के राग का वियोग वर्तता है। आहाहा! राग का वियोग अर्थात् रागरहित रहता है। पर सामग्री मेरी, यह स्वप्न में भी नहीं देखता। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ विशेष किया। **राग-द्वेष...** यह अनन्तानुबन्धी का, हों! और **मोह...** मिथ्यात्व। उससे **रहित हुआ,...** आहाहा!

कोई प्रश्न करता है कि ऐसे विरागी के—सम्यग्दृष्टि जीव के विषयसामग्री क्यों होती है? आहाहा! ऐसा तुम कहते हो कि जिसे राग की रुचि छूट गयी और भगवान के आनन्द की दृष्टि हुई, उसे ऐसी सामग्री कैसे होती है? ऐसी सामग्री में वह खड़ा क्यों रहता है? ऐसा कहते हैं। प्रश्न करते हैं।

उत्तर इस प्रकार है—'पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात्' सम्यक्त्व उत्पन्न होने के पहले मिथ्यादृष्टि जीव था,... उल्टी दृष्टि (थी), राग का रसिया था जब मिथ्यादृष्टि... आहाहा! तब जो कर्म बँधे हुए, वे अभी पड़े हैं, उनकी सामग्री आती है। आहाहा! **सम्यक्त्व उत्पन्न होने के पहले...** असत्य दृष्टि थी। असत्य अर्थात् राग को अपना मानकर वेदता था। **रागी था,** आहाहा! **वहाँ रागभाव के द्वारा बाँधा था जो अपने प्रदेशों में ज्ञानावरणादिरूप कार्मणवर्गणा...** वर्गणा आठों कर्म की पड़ी हो। उसका विपाक **उसके उदय से।** बाहर की सामग्री हो, ऐसा कहते हैं। **भावार्थ इस प्रकार है कि राग-द्वेष-मोह परिणाम के मिटने पर द्रव्यरूप बाह्य सामग्री का भोग बन्ध का कारण नहीं है,...** आहाहा! ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु कहा। वह किस अपेक्षा से? भोग तो राग-बन्ध का कारण है। धर्मी का राग बन्ध का कारण है। आहाहा! परन्तु दृष्टि में राग का स्वीकार नहीं और जहाँ दृष्टि में भगवान तैरता है, वहाँ अनन्त आनन्द का नाथ चैतन्य चमत्कार, उनकी मुख्यता करके भोग को निर्जरा कहा। परन्तु कोई ऐसा मान ले कि भोग करे, इसलिए निर्जरा है। तो फिर भोग को छोड़कर चारित्र लेना, उसे नहीं रहता। (भोग में) मिठास आवे और अमृत के आनन्द के नाथ का अनादर करे... आहाहा! वह

तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यहाँ तो दूसरी अपेक्षा है।

छठवें गुणस्थान में मुनि ऐसा कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य। अरे! मुझे '**कल्माषितायाः**' अरेरे! मैं मुनि हुआ, सन्त हूँ। मेरा तीन कषाय के अभाव का स्वसंवेदन है। परन्तु अभी... तीसरे कलश में कहा है न? अनादि से '**कल्माषितायाः**' अभी विकल्प उठता है, वह मैल है। आहाहा! कहो, यहाँ सम्यग्दृष्टि को निर्जरा कहते हैं। वहाँ वह कहते हैं कि मुझे अभी मैल है। किस अपेक्षा से बात है, यह समझे नहीं और एकान्त खींचे कि इसे भोग आवे, वह निर्जरा है। समझ में आया? आहाहा! अनादि की मुझे '**कल्माषितायाः**' पर्याय में राग-मैल आता है। आहाहा! मुनिराज तीन कषाय का अभाव। प्रचुर भावलिंग, प्रचुर आनन्द का वेदन जिन्हें वर्तता है। अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! उसका उछाला—ज्वार आता है पर्याय में। वे कहते हैं कि मुझे भी अभी अनादि की अशुद्धता पड़ी है। वह अशुद्धता कहीं गई थी और आयी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अनादि की अशुद्धता का अंश है, मुझे मैल है, दुःख है। प्रभु! मैं यह टीका करूँ, इस टीका से मैल का नाश होओ। टीका से मैल का नाश होगा? पाठ तो ऐसा है—'**टीकाएव**'। इसका अर्थ कि मेरी दृष्टि का जोर मुझे आनन्द पर वर्तता है। उस टीका के काल में मेरा जोर स्वभावसन्मुख में विशेष होओ और यह गल जाओ। आहाहा! पाठ ऐसा है—'**टीकाएव**'। ऐसा समझे नहीं और पाठ के अर्थ करे घर के। समझ में आया? आहाहा!

यह **राग-द्वेष-मोह परिणाम के मिटने पर द्रव्यरूप बाह्य सामग्री का भोग बन्ध का कारण नहीं है, निर्जरा का कारण है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकार की विषयसामग्री भोगता है,...** एक ओर कहते हैं कि पर सामग्री को आत्मा भोग नहीं सकता। क्योंकि आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त परद्रव्य को स्पर्श नहीं कर सकता। स्पर्श नहीं कर सकता, उसे भोगे? किस अपेक्षा से बात है? ऐई! देवानुप्रिया! उसकी ओर की वृत्ति जरा आसक्ति होती है, इस अपेक्षा से उसे भोगता है, ऐसा कहने में आया है। पर क्या भोगे? जड़ को भोगा जाता होगा? शरीर, माँस, हड्डियाँ, चमड़ी, दाल-भात... आहाहा! पाठ तो ऐसा है—विषयसामग्री को भोगता है। आहाहा! अर्थात् कि उसे संयोग है और उस ओर की जरा आसक्ति का अंश आता है। समझ में आया?

परन्तु अभिप्राय में उसका स्वाद नहीं है, स्वीकार नहीं है; इसलिए खिर जाता है, ऐसा कहा जाता है। दृष्टि और दृष्टि के विषय के जोर के कारण, (ऐसा कहा जाता है)। परन्तु सर्वथा ऐसा मान ले कि नहीं। भोग सामग्री और उसके ऊपर लक्ष्य जाये, उसे कुछ बन्धन नहीं है। समझ में आया? शास्त्र के अर्थ में भी बड़ा अन्तर। अर्थ करने में अन्तर।

मुमुक्षु : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म अर्थात् पुण्य; अर्थ अर्थात् पैसा; काम अर्थात् भोग। तीनों पाप।

मुमुक्षु : और मोक्ष?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष इनसे रहित। अपवर्ग में नहीं आया? तीन वर्ग से दूसरा अपवर्ग है वह।

मुमुक्षु : उसमें धर्म कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म, यह पुण्य है। धर्म कहाँ था? उस पुण्य को व्यवहार से धर्म कहा है। आहाहा! 'पाप पाप को सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को भी पाप कहे।' आहाहा! राग है और दुःख है-दुःख है। अशुभराग भोग का, इज्जत का, मान का, महापाप दुःख आकुलता है।

परन्तु रंजक परिणाम नहीं है,... यहाँ सिद्ध करना है। भोगता है तो क्या भोगता है पर को? परन्तु पर की ओर का झुकाव है, उसमें राग का रंग नहीं। राग का स्वामी नहीं, राग में एकत्वबुद्धि नहीं। रंजित परिणाम नहीं। राग में रंग जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें अब।

मुमुक्षु : रंजित परिणाम अनुसार उपयोग को?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। एकाकार नहीं, ऐसा कहते हैं। रंजित अर्थात् एकाकार नहीं। राग में एकाकार नहीं। आहाहा! **इसलिए बन्ध नहीं है,...** देखा! राग में रंग चढ़ा नहीं राग का। भगवान का रंग है अन्दर-अन्दर। आहाहा! इसलिए **पूर्व में बाँधा था जो कर्म उसकी निर्जरा है।** इस अपेक्षा से, हों!

मुमुक्षु : निर्जरा...

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्जरा है।

मुमुक्षु : बन्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। है न। बन्ध की आसक्ति की पर्याय है, उतना बन्ध है। उसे गौण करके कहा। जैसे ११वीं गाथा में पर्याय को अभूतार्थ कहा। स्पष्ट बात। ११वीं। अभूतार्थ अर्थात् पर्याय झूठी है। '**ववहारोऽभूदत्थो**' पर्यायमात्र झूठी है, ऐसा कहा। वह किस अपेक्षा से? पर्यायमात्र झूठी तो पर्याय नहीं? यहाँ तो पर्याय को झूठी कहा। यह कहने का आशय कि पर्यायमात्र को गौण करके व्यवहार कहकर झूठी सिद्ध करके उसका लक्ष्य छुड़ाया और त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ भूतार्थ-सत्यार्थ का, सत्यार्थ को मुख्य करके, निश्चय कहकर। निश्चय को मुख्य, ऐसा नहीं। त्रिकाली चीज़ को मुख्य करके, निश्चय कहकर सत्यार्थ सत्य है, ऐसा कहा। पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर 'नहीं' ऐसा कहा। समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ भी आसक्ति के परिणाम में बन्धन है, परन्तु उसे गौण करके मुख्यरूप से स्वभाव पर दृष्टि है, इसलिए उन्हें गौण करके निर्जरा है, ऐसा कहा गया है। ऐसी बात है। उसमें कहीं एक अक्षर फेरफार हो तो सब फेरफार होगा। आहाहा! हमारे 'दास' याद आये। तुम्हारा प्रश्न था वहाँ उमराला। (संवत्) १९९१। यहाँ आये न १९९१ में। चैत्र कृष्ण तीज को यहाँ आये। उसके पहले वहाँ दास आये थे। वहाँ १४७ गाथा (चलती थी)। वेद्यावेदक का प्रश्न था उमराला में। विशेष चलेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१४७

(स्वागता)

वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्
वेद्यते न खलु कांक्षितमेव।
तेन कांक्षति न किञ्चन विद्वान्
सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति।।१५-१४७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तेन विद्वान् किञ्चन न कांक्षति' [तेन] तिस कारण से [विद्वान्] सम्यग्दृष्टि जीव, [किञ्चन] कर्म का उदय करता है नाना प्रकार की सामग्री, उसमें से कोई सामग्री-[न कांक्षति] कर्म की सामग्री में कोई सामग्री, जीव को सुख का कारण—ऐसा नहीं मानता है; सर्व सामग्री, दु:ख का कारण—ऐसा मानता है। और कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'सर्वत: अतिविरक्तिं उपैति' [सर्वत:] जितनी कर्मजनित सामग्री है, उससे मन, वचन, काय (की) विशुद्धि के द्वारा [अतिविरक्तिं] सर्वथा त्यागरूप [उपैति] परिणमता है। किस कारण से ऐसा है? 'यत: खलु कांक्षितं न वेद्यते एव' [यत:] जिस कारण से, [खलु] निश्चय से [कांक्षित] जो कुछ चिन्तवन किया है, वह [न वेद्यते] नहीं प्राप्त होता है। [एव] ऐसा ही है। किस कारण से? 'वेद्यवेदकविभावचलत्वात्' [वेद्य] वांछी [इच्छी] जाती है जो वस्तुसामग्री, [वेदक] वांछारूप जीव का अशुद्धपरिणाम, ऐसे हैं [विभाव] दोनों अशुद्ध विनश्वर कर्मजनित, इस कारण से [चलत्वात्] क्षण प्रति, क्षण प्रति औरसा होते हैं। कोई अन्य चिन्ता जाता है; कुछ अन्य होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि अशुद्धरागादि परिणाम तथा विषयसामग्री, दोनों समय-समय प्रति विनश्वर हैं; इसलिए जीव का स्वरूप नहीं। इस कारण सम्यग्दृष्टि के ऐसे भावों का सर्वथा त्याग है। इसलिए सम्यग्दृष्टि को बन्ध नहीं है; निर्जरा है।।१५-१४७।।

कार्तिक शुक्ल १०, रविवार, दिनांक-२०-११-१९७७, कलश-१४७, प्रवचन-१५४

कलशटीका, निर्जरा अधिकार। निर्जरा अर्थात्? आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति

आनन्द है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, वर्तमान पर्याय में आनन्द का वेदन होने पर वह आनन्दस्वरूप पूर्ण है, ऐसी अन्तर प्रतीति हो और उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, पर्याय में उसका स्वाद अतीन्द्रिय आनन्द का आवे, तब उसे सम्यग्दृष्टि -धर्म की पहली सीढ़ीवाला कहने में आता है। उसे निर्जरा होती है, ऐसा कहते हैं। जिसे यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अनुभव में आया, इसलिए उसे पूर्व के कर्म हैं, वे खिरते हैं। अशुद्धता गलती है और शुद्धता की वृद्धि होती है। तीनों को निर्जरा कहा जाता है। नि-विशेष झरना। नि-र्जरा। नि-विशेष झरना, खिरना। किसका? कि आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुभव होने पर उसे पूर्व के कर्म के रजकण, जितनी अशुद्धता टले, उस प्रकार से कर्म के रजकण वहाँ गले और तत्प्रमाण वहाँ शुद्धि की वृद्धि हो। शुद्धि की वृद्धि होना, वह निर्जरा है। ऐसी व्याख्या है, बापू!

संवर पहले होता है। अर्थात्? विकार की उत्पत्ति न हो और भगवान शान्त आनन्दस्वरूप की उत्पत्ति हो, उस प्रथम दशा को संवर कहते हैं। संवर, वह आत्मा की शुद्धि की शुद्धदशा है। अरे! ऐसी बातें हैं। संवर, वह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु की पर्याय में शुद्धि की (उत्पत्ति होना, वह संवर है)। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम वे तो पुण्य परिणाम मैल है। वैसे हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, वह तो पापभाव मलिन, तीव्र जहर के परिणाम हैं। ऐसे शुभाशुभभाव से रहित अपना स्वभाव जो पवित्र भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप है, उसकी पर्याय में पवित्रता प्रगट होना, वह संवर है और पवित्रता की वृद्धि होना, वह निर्जरा और पवित्रता की पूर्णता होना, वह मोक्ष है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू!

अनन्त काल से यह चौरासी के अवतार कर-करके भटक मरा है, यह दुःखी है। इसे आनन्दस्वरूप की खबर नहीं कि मेरा अतीन्द्रिय आनन्द मेरा मुझमें है। यह बाहर में मिथ्या प्रयास करे मूढ। पैसे में, स्त्री में, पुत्र में, परिवार में, इज्जत में। वहाँ से कुछ सुख होगा, (ऐसा मानता है)। वह मूर्ख का—मिथ्यादृष्टि का भाव है। झूठी दृष्टि। जिसमें सुख नहीं, उसमें से सुख लेना चाहे, वह झूठी महा पाप की पापी दृष्टि है। आहाहा! और जिसमें सुख है भगवान आत्मा में, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है वह... आहाहा! वहाँ आनन्द को न मानकर पर में मानता है, वह मिथ्यात्व के बन्धन को पाता

है। और पर में आनन्द कहीं है नहीं। इन्द्रियों के विषयों में, भोग में या यह धूल मिले पाँच, पच्चीस लाख पैसा, करोड़, दो करोड़ मिट्टी, उसमें कहीं सुख नहीं है। सुख नहीं पुण्य और पाप के भाव में, सुख नहीं पुण्य-पाप के फल के संयोग में। सुख है अन्तर भगवान आत्मा में। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी, उस मृग को कस्तूरी की कीमत नहीं। इसी प्रकार मृग जैसा यह आत्मा अनादि का अज्ञानी, इसके अन्तर में आनन्द है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! यह तो वेद्य-वेदक आनेवाला है न? दास! तुम्हारा प्रश्न। (संवत्) १९९१ के फाल्गुन महीने में। उमराला (में)। (संवत्) १९९१-९१।

मुमुक्षु : वेद्य-वेदक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वेद्य-वेदकभाव का प्रश्न था। उमराला। यहाँ १९९१ के चैत्र कृष्ण तीज को आये हैं। उससे पहले उमराला जन्मधाम है न इस देह का? वहाँ थे। वहाँ दास आये थे। यह वेद्य-वेदक का प्रश्न किया था। परन्तु उसके पहले यह भूमिका बँधती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि धर्म उसे होता है कि जो आत्मा के स्वभाव में धर्म है। धर्मी ऐसा जो आत्मा, उसके स्वभाव में धर्म है। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति, वह धर्म है अन्दर। उस धर्म का पर्याय में प्रगट होना, इसका नाम धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! इसने कभी अनन्त काल में... बाहर में स्त्री, पुत्र, परिवार, शरीर, इज्जत, कीर्ति और पैसा। मर गया, मर डाला आत्मा को। आहा! यह मेरा-मेरा मानकर मारा खड़ा किया सब।

अन्तर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ, जिसका ज्ञान अतीन्द्रिय, जिसका आनन्द अतीन्द्रिय, जिसकी शान्ति अतीन्द्रिय। आहाहा! उसे देखने को तो जिसने कभी नजरें की नहीं। आहाहा! वह जिसने नजरें अन्दर में कीं... कैसे है? चमड़... कैसे चलना, यह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, कर्म की निर्जरा उसे होती है अथवा मलिनता की अशुद्धता उसे टलती है कि जिसने यह शुद्ध चैतन्य भगवान अन्तर दृष्टि में आकर अनुभव किया हो और उस अनुभव में जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया हो... आहाहा! उसे कर्म खिरते हैं, अशुद्धता गलती

है और शुद्धि बढ़ती है। इन तीनों को निर्जरा कहा जाता है। आहाहा! अरे! बापू! यह वे बातें दूसरी हैं, भाई! इसके लिये यहाँ १४७ गाथा—श्लोक-श्लोक। कलश।

वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्
वेद्यते न खलु कांक्षितमेव।
तेन कांक्षति न किञ्चन विद्वान्
सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति।।१५-१४७।।

आहाहा! **खण्डान्वयसहित अर्थ—'तेन विद्वान् किञ्चन न कांक्षति' तिस कारण से... 'विद्वान्'** विद्वान उसे कहते हैं... आहाहा! शास्त्र का पठन पढ़ा, इसलिए विद्वान, ऐसा भी नहीं। विद्वान। वित् वित्—आत्मा की जो लक्ष्मी है आनन्द की... आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द की लक्ष्मीवाला हो, वह विद्वान् है। आहाहा! समझ में आया? दुनिया से बातों में बहुत अन्तर है। वित् अर्थात् पैसा। पैसे के अर्थी, वे दुःख के अर्थी। वे दुःखी प्राणी हैं और वित्-आत्मा की लक्ष्मी अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द। भाई! यह सूक्ष्म बातें, प्रभु! आहाहा! यह अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द की जो लक्ष्मी अनन्त चैतन्यस्वभाव का चमत्कार तत्त्व... आहाहा! उसके सन्मुख होकर शुद्धि की उत्पत्ति होना, पवित्रता की उत्पत्ति होना, उसे संवर कहते हैं और विशेष पवित्रता की वृद्धि होना, उसे निर्जरा कहते हैं। यह यहाँ कहते हैं।

ऐसा जो **सम्यग्दृष्टि जीव...** आहाहा! जिसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास आयी है। आहाहा! समझ में आया? वह दृष्टान्त नहीं दिया था शक्करकन्द का? शक्करकन्द है न? यह शक्करकन्द, शक्करकन्द। अपने गुजराती में शक्करिया (कहते हैं)। वह शक्करकन्द है, वह लाल छाल है, उसे न देखो तो अन्दर में अकेली शक्कर। शक्कर अर्थात् मिश्री का पिण्ड है। वह लाल छाल जरा है, उसके अतिरिक्त वह शक्कर का शक्करकन्द अर्थात् मिश्री का पिण्ड है वह। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, उसे पुण्य और पाप के विकल्पों की छाल है, यह शरीर-बरीर तो धूल, पर है, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के, काम, क्रोध के भाव हों, वे लाल छाल हैं। उस लाल छाल के पीछे अन्दर भगवान अतीन्द्रिय

आनन्द का कन्द है। अरे! ऐसी बातें अब। कहाँ... यह तो बाहर में वलखा मारता है, स्त्री में, पुत्र में, पैसे में, इज्जत में। आहाहा! यह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद अन्दर में, छाल से जैसे भिन्न करके शक्करकन्द शक्कर की मिठास का पिण्ड प्रभु वह शक्कर, उसी प्रकार यह शक्कर अर्थात् आनन्द का पिण्ड प्रभु... आहाहा! उसे जिसने पुण्य-पाप के राग से भिन्न पड़कर और स्वभाव की जिसने शुद्धता की एकता प्रगटी है, उस जीव को कर्म खिरते हैं, कर्म गलते हैं और उस जीव को सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! ऐसी शर्तें। आहाहा! क्या हो? भाई!

अनन्त काल से भटका है। श्रीमद् कहते हैं न, 'बिना भान भगवान, सेये नहीं गुरु सन्त को।' क्या गुरु और क्या सन्त है, इसकी उसे खबर नहीं होती। उसे सेवन नहीं किया अर्थात् कहीं उसकी सेवा कोई पैर दबाना है? उन्होंने जो कहा, वह इसने स्वीकार नहीं किया। आहाहा! 'सेये नहीं गुरु सन्त को छोड़ा नहीं अभिमान।' आहाहा! अनन्त काल हुआ, अनन्त-अनन्त काल उसमें व्यतीत हुआ है।

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि। जिसे पर का अभिमान छूट गया है और जिसे स्वरूप की श्रद्धा की दृढ़ता का भान हो गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **सम्यग्दृष्टि जीव... 'किञ्चन'** ऐसा जो धर्मी जीव, जिसे अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में वेदन आया, वह सम्यग्दृष्टि जीव। आहाहा! अभी तो ऐसा कहते हैं, यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे, नौ तत्त्व को भेद से माने, वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा लोग मानकर बैठे हैं। ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ विद्वान की व्याख्या ही की है। शब्द विद्वान है। विद्वान उसे कहते हैं। आहाहा! कि जिसे अपने स्वरूप की लक्ष्मी का भान हुआ। वित्-वान। लक्ष्मी का स्वरूप जिसे अन्दर से प्रगट हुआ। आहाहा! वह विद्वान अर्थात् सम्यग्दृष्टि। सम्यग्दृष्टि अर्थात् कि विद्वान। आहाहा! दूसरा सब भले न आता हो। पढ़ना न आवे, कहना न आवे... आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसे आत्मा अन्दर जो है, वह अनुभव में आया... आहाहा! उसे यहाँ विद्वान कहते हैं, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, उसे धर्म के मोक्षमहल की पहली सीढ़ी कहते हैं। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव, कर्म का उदय करता है नाना प्रकार की सामग्री... क्या कहते

हैं ? उस धर्मी जीव को पूर्व के किसी कर्म के कारण से सामग्री का ढ़ेर बाहर दिखाई दे। पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, इज्जत यह कर्म के उदय की सामग्री है। यह कहीं धर्म की सामग्री नहीं है। आहाहा! कर्म के उदय के कारण से... आहाहा! पोपटभाई की उम्र कितनी होगी ? ७१। तुमसे एक वर्ष बड़े। सवा वर्ष। इनके मित्र थे न! सम्प्रदाय में साथ में प्रतिक्रमण करते थे। यह अभी चार दिन पहले यहाँ थे। रात्रि में बारह बजे, आज बारह बजे उड़ गये। आहाहा! नाशवान तो नाशवान ही होगा न, उसमें क्या ?

मुमुक्षु : प्रत्येक समय नाशवान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक समय नाशवान परन्तु ऐसे पृथक् पड़े, तब इसे नाशवान अधिक लगता है। आहाहा! यह तो मिट्टी है, मिट्टी-जगत की धूल। ऐसा भी नहीं कहते ? कील लगे कुछ कील। तो कहे, मेरी मिट्टी पकाऊ है, पानी लगने देना नहीं, ऐसा कहे। वहाँ मेरी मिट्टी पकाऊ, ऐसा कहे। इसे मिट्टी कहे। और वापस ऐसा कहे कि यह शरीर मेरा है। आहाहा!

मुमुक्षु : भ्रमणा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा चिदानन्द को भूलकर भ्रमणावाले परपदार्थ की सामग्री को इच्छता है। इच्छता है, तब वह सामग्री नहीं और सामग्री आवे, तब वह इच्छा है, वह रहती नहीं, तथापि अज्ञानी इच्छता है और इच्छा के काल में सामग्री नहीं, उसकी भावना करता है। और सामग्री आवे, तब वह इच्छा थी वह काल तो चला गया है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को इच्छा होती नहीं। यहाँ ऐसा कहना है। कारण ? कि कर्म के निमित्त से प्राप्त सामग्री, उसकी कांक्षा करे। कांक्षा करे तब तो वहाँ वेदने का संयोग नहीं। और जब संयोग वेदने का आवे, तब उस कांक्षा का समय इच्छा रहती नहीं। ऐसी इच्छा के काल को और भोगने के काल को मेल नहीं है। इसलिए धर्मी उसकी कांक्षा-इच्छा करता नहीं। आहाहा! समझ में आया ? क्या कहा ?

कर्म का उदय करता है नाना... यह सब पैसा-बैसा कर्म के कारण मिलता है, हों! होशियारी के कारण नहीं। कैसे होगा ? भगतभाई! यह पोपटभाई रात्रि में बारह बजे

मर गये। दो करोड़ रुपये। यहाँ बैठे थे अभी। बुधवार को यहाँ बैठे थे। दो करोड़। छह लड़के हैं। बहुत लाखों की आमदनी। रात्रि को बारह बजे दो मिनिट में देह छूट गयी। आहाहा! परन्तु वह चीज़ कहीं इसकी थी, वह न छूटे? इसकी हो, वह छूटे नहीं और जो छूटती है, वह इसकी नहीं। आहाहा! अरे! इसे खबर नहीं होती। जीवन का काल सब पागलपने में जाता है इसका। आहाहा! बाहर में भले संसार का चतुर गिना जाये, परन्तु धर्म के लिये तो गहल-पागल है। आहाहा! परमात्मा कहते हैं....

मुमुक्षु : बाहर में तो पुण्य का बोलवाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया गहल-पागल की... पागल की क्या कहलाये? हॉस्पीटल। उसमें पागल होते हैं न सब? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनोथ तीर्थंकरदेव इन्द्रों और गणधरों की सभा के बीच में कहते थे, वह बात यह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वे सन्त वहाँ से आये हैं। वहाँ गये थे आठ दिन। भगवान विराजते हैं। महाविदेह में त्रिलोकनाथ सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकररूप से विराजते हैं। उनके पास गये, दो हजार वर्ष पहले। वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे और यह टीका करनेवाले तो गये नहीं थे तो भी शास्त्र के मर्म को खोल दिया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

धर्मी जीव को कर्म के निमित्त से प्राप्त यह धूल आदि, स्त्री, यह शरीर, पैसा, इज्जत, कीर्ति, स्त्री, कुटुम्ब सब, उसे वह सम्यग्दृष्टि वांछा नहीं करता। आहाहा! क्योंकि वांछा और इच्छा है, वह नाशवान है और जिस सामग्री को चाहता है, वह वस्तु नाशवान है। आहाहा! इसलिए जो धर्मी है, उसे तो नित्यानन्द प्रभु पर दृष्टि है। आहाहा! ध्रुव स्वरूप का ध्रुव के ध्यान के ध्येय में वह है। भले वह विकल्प में हो और बाहर में हो। आहाहा! धर्मी की दृष्टि ध्रुव चैतन्यमूर्ति ज्ञायकभाव अन्दर नित्यानन्द पर दृष्टि होने से... आहाहा! उसे कर्म के निमित्त से प्राप्त सामग्री, उसे भोगने की इच्छा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी बात, तब बाबा हो जा न अब हमारे? बाबा ही है, सुन न! वह चीज़ तो पर है। धूल और वह सब पर है। वह कहाँ तेरी है और तुझमें आ गयी है? आहाहा! माना तो चाहे जो माने। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, धर्मी जीव **कर्म की सामग्री में कोई सामग्री जीव को सुख का कारण ऐसा नहीं मानता है,...** आहाहा! है ? जिसे आत्मा में आनन्द का भान हुआ है... आहाहा! यह तो स्पष्ट बात अब रखी जाती है बाहर में। नहीं तो बात सूक्ष्म पड़े। आहाहा! जिसे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द अस्तिरूप से है, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द है अन्दर में, उसका जिसे वेदन में आनन्द आया, वह धर्मीजीव अपने आनन्द के भोग के समक्ष कर्म की सामग्री को वह चाहता नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बातें। आहाहा!

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान में होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे। यह चौथे गुणस्थान की बात है। आहाहा!

कहा नहीं अभी ? छहढाला में आता है। मोक्ष महल की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन। मंजिल पर चढ़े, तब सीढ़ियाँ होती हैं न ? सीढ़ियाँ। सोपान होते हैं न ? चौदह सोपान। उसी प्रकार यह अभी चौथा सोपान अर्थात् धर्म का पहला (सोपान)। आहाहा!

वह आत्मार्थी विद्वान सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! वह कर्म के कारण प्राप्त सामग्री, चाहे तो स्त्री का शरीर हो या उसका आत्मा हो, या पैसा हो या मकान हो... आहाहा! उसमें **जीव को सुख का कारण, ऐसा नहीं मानता है,...** कर्म के निमित्त से प्राप्त सामग्री—शरीर, स्त्री, परिवार, पैसा, इज्जत—उसमें धर्मी, यह चीज़ सुख का कारण है, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! शर्तें भी बहुत कठोर। ऐसा धर्म! बापू! जिनेन्द्र त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर तीर्थंकरदेव का यह हुकम है। आहाहा! **जीव को सुख का कारण, ऐसा नहीं मानता है,...** पैसे में, शरीर में, स्त्री में, पुत्रों में, इज्जत में... आहाहा! बड़े ४०-४० लाख-करोड़ों के बँगले हों। आहाहा! धर्मी जीव उसे कहते हैं कि कर्म की सामग्री में कहीं सुख, उल्लास, अपने आनन्द के अतिरिक्त कहीं विशेषपने आनन्द है, ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा! अरबों रुपये के ढ़ेर आते हों, करोड़ों की आमदनी हो। धर्मी को वहाँ कहीं उसे सुखबुद्धि नहीं है। उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! यह सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये और हो गये धर्मी। धूल भी धर्म नहीं। समझ में आया ? अभी सामायिक कहना किसे, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं। सन्त आड़तिया होकर वीतराग की

बात करते हैं। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर के घर का यह माल है। उनकी यह वाणी है। आहाहा! वह वाणी सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। भगवान! जिस किसी ने इस भगवान आत्मा को पहिचाना हो... आहाहा! भग अर्थात् आत्मा की लक्ष्मी, वान-स्वरूप, वह तो लक्ष्मीवान प्रभु आत्मा अन्दर है। आहाहा! वह परमात्मस्वरूप आत्मा अन्दर विराजमान है। परन्तु कहाँ बापू? नजर कब वहाँ है? आहाहा! उस परमात्मस्वरूप की जिसे अन्तर अनुभव में दृष्टि होकर चैतन्य के आनन्द का वेदन हुआ है... आहाहा! वह कर्म की किसी सामग्री में सुख का कारण है, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया? है?

सर्व सामग्री दुःख का कारण, ऐसा मानता है। अस्ति-नास्ति की है। आहाहा! यह शरीर, स्त्री, पैसा, मकान, वे सब दुःख के कारण हैं—वे दुःख के निमित्त हैं। वे दुःख नहीं। उसमें माना है कि इसमें सुख है, वह दुःख है। आहाहा! वे तो ज्ञेय हैं। परन्तु कहते हैं कि उसके ऊपर लक्ष्य जाने से, उसे राग का भाव उत्पन्न होता है, वह दुःख है। उस दुःख का कारण वह सब चीज़ है। आहाहा! कहो, यह लड्डू, दाल-भात, सब्जी, मैसूर। एक सेर चने का आटा और चार सेर घी पिलाया हुआ वह मेसूब। कहते हैं कि धर्मी को वहाँ सुख का कारण है, ऐसा नहीं मानता। वह दुःख का कारण है, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग, प्रभु! बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! अभी तो बाहर में सिरपच्ची में रच दिया है। यह व्रत पालो, तपस्या करो, अपवास करो, भक्ति करो, दान करो दो-पाँच-दस लाख के। धूल में भी धर्म नहीं वहाँ कहीं। पर सामग्री में सुख का कारण मानता नहीं। यहाँ तो कहते हैं, दुःख का कारण मानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सर्व सामग्री दुःख का कारण ऐसा मानता है। और कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'सर्वतः अतिविरक्तिं उपैति' आहाहा! **जितनी कर्मजनित सामग्री है...** यह दया, दान के विकल्प और बाहर शरीर, कर्म आदि सब। **उससे मन, वचन, काय, त्रिशुद्धि के द्वारा अति विरक्तपने अर्थात् सर्वथा त्यागरूप परिणमता है।** आहाहा! अर्थात्? शुद्ध चैतन्यस्वभाव के अनुभव के समक्ष धर्मी जीव राग का सूक्ष्म विकल्प उत्पन्न हो, तब से

लेकर सब चीजें, उसमें से अति विरक्त है। स्वरूप में रक्त है और राग से विरक्त है। आहाहा! **अति विरक्त....** कहा है। है?

अति विरक्तपने अर्थात् सर्वथा त्यागरूप परिणमता है। आहाहा! चैतन्य वीतराग -स्वरूप है, जिनस्वरूप भगवान आत्मा तो अन्दर है। उस जिनस्वरूप का वीतरागी परिणमन जहाँ है, वहाँ आगे राग से लेकर सभी सामग्री से अतिविरक्त है। आहाहा! विरक्ति तो मुनि हो, तब होती है। वह तो राग की विरक्ति। यहाँ तो उस वस्तु से अतिविरक्त—भिन्न है। आहाहा! शब्द तो विरक्ति लिया है। सब राग से लेकर सामग्री के ढ़ेर चक्रवर्ती के हो या इन्द्र के इन्द्रासन हों, सम्यग्दृष्टि परपदार्थ से अतिविरक्तपने परिणमता है। आहाहा! ऐसा क्या होगा धर्म? कितने ही कहते हैं कि यह नया धर्म निकाला। ऐसा कहते हैं। भगवान! तुझे खबर नहीं, प्रभु! वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र अथवा जिनस्वरूप आत्मा का मार्ग अनादि का यह ही है। समझ में आया? आहाहा! कर्म की सामग्री के प्रति; चाहे तो शुभभाव हो, वह भी कर्म की सामग्री है। आहाहा! चाहे तो पापभाव हो, वह कर्म की सामग्री है। आहाहा!

धर्मी जीव अपने स्वभाव में रक्त होने के कारण रागादि से लेकर कर्म की सब सामग्री से अतिविरक्तरूप से परिणमता है। आहाहा! अस्तिरूप से परिणमता है, ऐसा कहने से पर से अतिविरक्तरूप से परिणमता है। अर्थात् कि रागपने परिणमता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! '**अतिविरक्तिं उपैति**' आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा सत् अर्थात् शाश्वत् अविनाशी ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भी अविनाशी, ऐसे भगवान को जिसने देखा और अनुभव किया। सम्यग्दृष्टि को भगवान की भेंट हुई। अपने, हों! अपना भगवान। आहाहा! उसे यह रंक ऋद्धि राग की और बाहर की, उसके प्रति अन्दर में अतिविरक्त है। आहाहा! कहीं उसकी रुचि जमती नहीं। समझ में आया? रुचि जहाँ जमी है आनन्द में, उसे यह राग से लेकर बाहर के ढ़ेर चक्रवर्ती के हों, कहीं रुचि जमती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

बनिये को जैसे पोसाता हुआ माल ले। ढाई रुपये मण मिलता हो और यहाँ तीन उपजते हों तो माल ले। परन्तु ढाई रुपये में (लेता) हो और सवा दो उपजते हों, ऐसा

माल लेगा? बनिया ऐसा करेगा? इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव जहाँ मुनाफा मिलता है आत्मा में, वहाँ रक्त है। पर में से मुनाफा नहीं, वहाँ से विरक्त है। आहाहा! कठिन बातें भाई, ऐसी! यहाँ तो अभी तक ऐसा सुना है कि इच्छामि पडिक्कमणा ईरिया वहियाओ विराणयाओ तस्स मिच्छामि दुक्कडम, लो! तस्सउतरी करणेण तावकाय ठाणेणं माणेण अप्पाणं वोसरे। यह सब पहाड़े थे। समझ में आया? यह तो सब विकल्प, राग के पहाड़े थे। उसमें माना कि हम धर्म करते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! नाशवान सामग्री देखो तो सही। **मन, वचन, काय त्रिशुद्धि के द्वारा...** क्या कहा? भाषा देखी? मन, वचन और काया की अपने आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त परसामग्री से मन, वचन और काया से अतिविरक्त है। आहाहा! अरे! इसने सुना नहीं, इसकी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? **किस कारण से ऐसा है? 'यतः खलु कांक्षितं न वेद्यते एव'** आहाहा! **कारण कि निश्चय से जो कुछ चिन्तवन किया है, वह नहीं प्राप्त होता है।** अर्थात् क्या कहते हैं? कांक्षा होती है, तत्प्रमाण वहाँ सामग्री नहीं होती और सामग्री आवे, तब उस कांक्षा के भाव का काल चला जाता है। आहाहा! इच्छा हो किसी चीज़ की, तब इच्छा काल में उस चीज़ का अनुभव हो और चीज़ हो तब तो इच्छा हो ही नहीं। इच्छा है, तब सामग्री पर लक्ष्य नहीं। और सामग्री आवे और लक्ष्य हो, तब वह इच्छा रहती नहीं। आहाहा!

वेद्य-वेदकभाव। वेद अर्थात् इच्छा होना, वह कांक्षा और वेदक अर्थात् जो सामग्री आवे, उसे वेदन का भाव हो, वह वेदक। आहाहा! क्या कहा यह? वेद्य-वेदक। इच्छा होना। वेद्य अर्थात् इच्छा होना। वेदनेयोग्य चीज़ की इच्छा होना। भोगनेयोग्य स्त्री, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, उसे भोगनेयोग्य सामग्री की इच्छा होना—वह वेद्य और जब इच्छा हुई, तब उस सामग्री का भोग नहीं है, तब भोग पर लक्ष्य नहीं है। और जब सामग्री आयी और लक्ष्य गया, तब वह इच्छा रहती नहीं। आहाहा! जो नाशवान, भाव नाशवान, सामग्री नाशवान और दोनों का कहीं मिलान खाता नहीं। आहाहा! उसे कौन इच्छे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! जवाबदारी बहुत। आहाहा!

मुमुक्षु : समय-समय में पृथक् ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा करे कि इसे भोगना, तब तो वह भोगने का काल नहीं। इच्छा गयी और भोगने का काल आया, तब वह इच्छा रहती नहीं। आहाहा! दोनों नाशवान के कारण और धर्मी की दृष्टि तो द्रव्य के ध्रुव पर होने के कारण... आहाहा! नित्यानन्द प्रभु शाश्वत् पदार्थ प्रभु है, उस पर धर्मी की दृष्टि होने से, नाशवान की इच्छा और भोगने का भाव उसे नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें अब। क्या सुनकर आये तुम? कौन जाने कुछ कहते थे। यह वेद्य और वेदक को। अरे! बापू! प्रभु का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। भाई! तुझे सुनने को मिला नहीं। तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र परमेश्वर का अभी भरतक्षेत्र में विरह पड़ा। उन भगवान की वाणी यह आयी है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान का विरह है, वाणी का विरह नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी तो आयी। कहा न! परन्तु वाणी में कहे हुए भावों का उसे विरह है। पर की इच्छा करता है, उसे वाणी के भाव का विरह है। क्योंकि कांक्षा पर की करता है और सामग्री तो उस काल में होती नहीं अथवा सामग्री पर लक्ष्य नहीं होता और सामग्री पर लक्ष्य जाता है, तब वह कांक्षा या इच्छा नहीं रहती। ऐसे नाशवान को कौन इच्छे? और जो ऐसी इच्छा करे, वह सम्यग्दृष्टि नहीं। आहाहा!

जिसे नित्यानन्द का नाथ भगवान प्रभु... आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु जहाँ मिला अन्दर दृष्टि में और वेदन में... आहाहा! उसे यह पर सामग्री की इच्छा और वेदन, दोनों का मेल नहीं, इसलिए वह इच्छा करता नहीं। समझ में आया? कुछ समझ में आया कहा, अर्थात् क्या? समझ जाये, वह तो बहुत अलौकिक बात है। परन्तु क्या पद्धति है? क्या रीति है? उस रीति का ख्याल आता है? आहाहा! नाथ! तेरा मार्ग अलग, प्रभु! परन्तु तुझे खबर नहीं। आहाहा! ऐसी का ऐसी अभिमान में और अभिमान में जगत की जिन्दगी जाती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वास्तव में **जो कुछ चिन्तवन किया है, वह नहीं प्राप्त होता है।** है? इच्छा-कांक्षापना वह वेद्य है, वेद्य। इच्छा कांक्षापना वह वेद्य। वेदनेयोग्य चीज़ को वेदने की इच्छा हुई कि इसे वेदन करूँ। उस समय सामग्री नहीं है। चिन्तन किया... है? **जो कुछ चिन्तवन किया है, वह नहीं प्राप्त होता है। ऐसा ही है। किस कारण से?**

'वेद्यवेदकविभावचलत्वात्' वांछी (इच्छी) जाती है जो वस्तुसामग्री,... आहाहा! कि इस शरीर को मैं ऐसे भोगूँ। ऐसी इच्छा हुई उस काल में भोगने का काल नहीं है और भोगने की सामग्री पर लक्ष्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह वेद्य। इच्छा में आता है, यह शब्द पहला। और **'वेदक' वांछारूप जीव का अशुद्ध परिणाम,...** भोगनेयोग्य जो अशुद्धपरिणाम है उसके। जब सामग्री की ओर लक्ष्य जाता है, तब उसका वेदन अशुद्धपरिणाम का है। पहले कांक्षा थी वह गयी और सामग्री आयी, तब वेदन का भाव अशुद्धपरिणाम हुए। अशुद्धपरिणाम के समय वह कांक्षा की इच्छा नहीं। इच्छा के समय भोगने के अशुद्धपरिणाम नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है। भाव तो जैसा है, वैसा है, भाई! आहाहा! कहो, दास!

मुमुक्षु : दास का पुराना प्रश्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दास का पुराना प्रश्न है। सम्प्रदाय में (संवत्) १९९१ में थे न? उमराला में जन्म गाँव में। पश्चात् तुरन्त चैत्र कृष्ण तीज को यहाँ आये हैं। १९९१ के चैत्र कृष्ण तीज। ४३ वर्ष पूरे होंगे यहाँ। चैत्र कृष्ण तीज। ४३ यहाँ रहे। वहाँ दास ने प्रश्न किया था। उमराला। जन्म गाँव है न उमराला? ११ मील (दूर है)। आहाहा!

संक्षिप्त शब्द में लें तो जब इसे इच्छा होती है, तब इसे पर सामग्री की ओर के भोगने का भाव नहीं है। और पर की ओर के भोगने का लक्ष्य और भाव आया, तब वह इच्छा रही नहीं। इसलिए मिलान नहीं खाया कहीं। ऐसी चीज़ को कौन चाहे? आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि उसे इच्छे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! यह देखो न चले गये। एक-दो मिनिट में। बुधवार को तो यहाँ बैठे थे। पोपटलाल मोहनलाल वढवाण। मुम्बई में बड़ी पेढी। दो करोड़ रुपये। कहलाते हैं दो। इससे अधिक होंगे। छह लड़कों को बड़ी आमदनी है। उसमें एक मिनिट में रात्रि को बारह बजे, साढ़े बारह बजे। यह हिम्मतभाई को लेकर सब आये। वे और नवनीतभाई को। फोन वहाँ पहला आया। जोबालिया। बारह बजे गुजर गये और फोन आया कि पोपटभाई... क्या तुम्हारी भाषा कहलाती है? हार्टफेल। हार्टफेल अर्थात् हार्ट बैठ जाये, ऐसा। आहाहा! अरे! इसके मकान, स्त्री, पुत्र, पैसा। पुत्र भी इकट्ठे हुए नहीं। क्योंकि दूसरे लड़के सो रहे हों।

आहाहा! देह की स्थिति जिस समय में पूरी होनेवाली है, उस समय में इन्द्र, नरेन्द्र, डॉक्टर आवे तो रोक नहीं सकते। आहाहा!

एक तो नहीं कहा था? यह मलकापुर में है। स्वरूपचन्द नाम से जवान लड़का है। बड़ा व्यापारी है। कपड़े का बड़ा (व्यापारी)। दस-दस हजार का कपड़ा अन्दर रखता है। पूरा मोक्षमार्गप्रकाशक कण्ठस्थ। मोक्षमार्गप्रकाशक। मलकापुर में है। बहुत लगनवाला है। कपड़े का बड़ा व्यापारी है। हम गये तब कुंवारा था। अब विवाह किया है। परन्तु पैसा और व्यापारी बड़ा है। वह कहता था, एक बार कि मैं ऐसे बैठा था और मेरा मित्र बैठा था। २५ वर्ष का। हम दोनों जनें बातें करते थे। बातें करते हुए, ऐसा मैंने देखा, वहाँ फू हुआ, वहाँ देह उड़ गयी। नहीं रोग, नहीं कुछ। परन्तु वह तो देह की स्थिति पूरी होने पर बापू! एक क्षण है। फू इतना हुआ, वहाँ ऐसा देखा वहाँ... लोगों को वहम पड़ जाये कि... यह तो मित्र था। नहीं तो जवान व्यक्ति को हुआ क्या यह? बापू! वह तो स्थिति पूरी होने के काल में... होगी। आहाहा! उसी क्षेत्र में, उसी काल में, उसी संयोग में, उसी स्थिति से देह छूटनेवाला है, वह तीन काल में फेरफार हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, प्रभु! एक बार तू सुन! यदि तुझे तेरे स्वभाव का अनुभव और आनन्द का वेदन हो... अनादि से तो पुण्य और पाप राग का वेदन है। कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का वेदन है। तब तक वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव, वे कर्मचेतना। कर्म अर्थात् राग की कार्यचेतना और उसका अनुभव करना, हर्ष-शोक का, वह कर्मफल अर्थात् विकार के कार्य का फल, उसे कर्मफलचेतना कहते हैं। कर्म अर्थात् जड़ (कर्म का) यहाँ काम नहीं है। वह अनादि से इसने आकुलता का ही वेदन किया है। आहाहा! चाहे तो नरक में रहा, निगोद में रहा... आहाहा! और दिगम्बर साधु हुआ, नग्न। पंच महाव्रत पालन किये, परन्तु वह सब राग का वेदन, कर्मचेतना का वेदन है, दुःख का वेदन है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि जिसने आत्मा को जाना और वेदन किया... आहाहा! उसे यह राग की इच्छा या इच्छा की सामग्री को भोगना, यह भाव ही उसे नहीं होता। कहो, शशीभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : 'जिसने आत्मा को जाना, उसने सर्व जाना।'

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सर्व जाना अर्थात्? पर है, उसे पररूप से जाना। यह तो कहा था न कल? जिसे स्व का ज्ञान हुआ हो, वह पर को पररूप से जानता है। स्व के ज्ञान बिना पर को पररूप से जान ही नहीं सकता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! समझ में आया? क्या कहा यहाँ?

वांछी जाती है जो वस्तुसामग्री... इच्छा हो कि इसे मैं भोगूँ, ऐसी इच्छा, उस समय सामग्री की ओर लक्ष्य नहीं है। तब तो इच्छा है। है? **और वांछारूप जीव का अशुद्धपरिणाम,...** यह भोगने का काल है। जब सामग्री पर लक्ष्य गया, तब तो अशुद्धपरिणाम का भोगने का काल है। अशुद्धपरिणाम के भोगने के काल में कांक्षमाण— जो इच्छा है, वह रहती नहीं। और इच्छा के काल में भोगने का भाव होता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें अब। यह क्या करना? वह तो एकेन्द्रिय की दया पालना, सबको दया पालना, वह धर्म है। सीधा-सट्ट था, लो। सब उल्टा था। जयन्तीभाई!

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव इन्द्रों के समक्ष और सन्तों के, गणधरों के झुण्ड के समक्ष ऐसा फरमाते थे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **ऐसे हैं दोनों अशुद्ध,...** देखा! दोनों कौन? इच्छा होना सामग्री की-वेदन की। तब जब इच्छा गयी, तब सामग्री पर लक्ष्य गया। तब तो वेदने का भोग हो गया। वे दोनों नाशवान हैं। आहाहा! **दोनों अशुद्ध विनश्वर, कर्मजनित,...** है। आहाहा! अति संक्षिप्त में बहुत समाहित किया है। आहाहा! उसका पहले अभ्यास चाहिए, भाई! एल.एल.बी. और एम.ए. पढ़ने में भी पाँच-दस वर्ष निकालता है या नहीं? यह तो समय ही नहीं मिलता। बहुत से तो ऐसा बोलते हैं कि मरने का समय नहीं अभी हमारे। बहुत अच्छी बात, भाई! आहाहा! क्या बोलता है तू यह? अभी ऐसा धन्धा चलता है न... आहाहा!

मुमुक्षु : सोने की नदियाँ बहती हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे वहाँ गुजरात में कच्चा सोना पके—कपास। हमारे पालेज में दुकान थी न? वहाँ तो एक-एक दिन के हजारों गाड़ी कपास की। पालेज है न? भरुच और बड़ोदरा के बीच। वहाँ दुकान थी न! हमारे पिताजी की दुकान। वहाँ मैं

नौ वर्ष रहा। पाँच वर्ष तो मैंने भी वहाँ दुकान चलायी थी। परन्तु छोटी उम्र। १७ और २२। १७ वर्ष से २२। अभी हुए ८८। तब वहाँ हजारों गाड़ी कपास की (आवे)। बड़ा व्यापार। है न, अभी दुकान है। हमारे भागीदार के लड़के हैं। ३०-३५ लाख रुपये हैं। ३-४ लाख की आमदनी है। अभी लड़के हैं। सब आते हैं। यह दुकान उस दिन की है। धूल का धन्धा सब पाप का।

मुमुक्षु : धूल का या पाप का।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप का। यह पाप ही धूल है न। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, धर्मी जीव को सामग्री जो कर्मजनित है, उसे इच्छता नहीं और जब सामग्री पर लक्ष्य जाता है, तब अशुद्ध परिणाम होते हैं। दोनों नाशवान कर्मकाल में है, इसलिए उसे इच्छता नहीं। वह तो आनन्द की भावना, भगवान आनन्द का नाथ, प्रभु! उसके ओर की भावना अर्थात् एकाग्रता में वर्तता है। चाहे तो युद्ध में दिखाई दे, बोलने में दिखाई दे परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ से बदलती नहीं। ध्रुव से हटती नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अभी यह कहाँ बैठे! है?

क्षण प्रति क्षण प्रति और सा होते हैं। इच्छा भी क्षण-क्षण में भिन्न होती है और भोगने के काल में भी परिणाम क्षण-क्षण में भिन्न होते हैं। आहाहा! ऐसे नाशवान को, अविनाशी भगवान की दृष्टिवाला ऐसे नाशवान को कैसे इच्छे? आहाहा! **इसलिए जीव का स्वरूप नहीं। इस कारण सम्यग्दृष्टि के ऐसे भावों का सर्वथा त्याग है।** गजब बात है यह! इच्छा का होना और भोगने का होना—दोनों भाव का जिसे त्याग है। और भगवान आनन्द के नाथ पर जिसे ग्रहण बुद्धि है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१४८

(स्वागता)

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं
कर्म रागरसरिक्ततयैति।
रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे
स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह।।१६-१४८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'कर्म ज्ञानिनः परिग्रहभावं न हि एति' [कर्म] जितनी विषयसामग्री भोगरूप क्रिया है, वह [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीव के [परिग्रहभाव] ममतारूप स्वीकारपने को [न हि एति] निश्चय से नहीं प्राप्त होती है। किस कारण से। 'रागरसरिक्ततया' [राग] कर्म की सामग्री को आपा जानकर, रंजकपरिणाम-ऐसा जो [रस] वेग, उससे [रिक्ततया] रीता है, ऐसा भाव होने से। दृष्टान्त कहते हैं — 'हि इह अकषायितवस्त्रे रंगयुक्तिः बहिः लुठति एव' [हि] जैसे — [इह] सब लोक में प्रगट है कि [अकषायित] नहीं लगा है हरडा-फिटकरी-लोद जिसको, ऐसे [वस्त्रे] कपड़ा में [रंगयुक्तिः] मजीठ के रंग का संयोग किया जाता है तथापि [बहिः लुठति] कपड़ा से नहीं लगता है; बाहर-बाहर फिरता है, उस प्रकार। भावार्थ ऐसा है कि सम्यग्दृष्टि जीव के पंचेन्द्रिय विषयसामग्री है, भोगता भी है परन्तु अन्तरंग राग-द्वेष-मोहभाव नहीं है, इस कारण, कर्म का बन्ध नहीं है; निर्जरा है। कैसी है रंगयुक्ति? 'स्वीकृता' कपड़ा-रंग इकट्ठा किया है।।१६-१४८।।

कार्तिक शुक्ल ११, सोमवार, दिनांक-२१-११-१९७७, कलश-१४८-१४९, प्रवचन-१५५

कलशटीका १४८-कलश है।

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं
कर्म रागरसरिक्ततयैति।
रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे
स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह।।१६-१४८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'कर्म ज्ञानिनः परिग्रहभावं न हि एति' क्या कहते हैं ? जिसे आत्मा के आनन्द का रस जगा है। अन्तर आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप, उस आनन्द का रस... यहाँ रस की व्याख्या करेंगे। वेग। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का वेग चढ़ा है अन्दर। जैसे समुद्र में पानी का वेग आवे... आहाहा! निर्जरा अधिकार है न ? उसी प्रकार आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसका उसकी पर्याय में वेग-रस आनन्द का शुद्धता का परिणमन हो और जिसे आनन्द के रस की प्रीति के समक्ष परपदार्थ और परपदार्थ के प्रति राग की रुचि, राग का रंग उड़ गया है। अज्ञानी बाहर से छोड़कर बैठे। स्वर्ग के देव हैं न ? मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक (जाये)। उसे आजीवन स्त्री का भोग नहीं, तो भी उसे अन्दर में राग की एकताबुद्धि अन्दर पड़ी है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य निर्मलानन्द घन प्रभु, उसके साथ में राग का पतला कण भी एकत्वबुद्धि में पड़ा है, उस मिथ्यादृष्टि को राग का रस है। आहाहा!

मुमुक्षु : संयम नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयम नहीं और मिथ्यात्व। यहाँ तो समकित भी नहीं। समझ में आया ? क्योंकि राग है, उसकी दिशा परसन्मुख है। और परसन्मुख के रस में जिसे रंग है... आहाहा! उसे भगवान आत्मा आनन्द के रस का उसे लिप्त-खाली है वह। आहाहा!

धर्मी जीव... यहाँ तो निर्जरा अधिकार है न ? जिसे ज्ञान में कर्म और रागरस दो। अर्थात् कर्म अर्थात् क्रियायें शरीर, वाणी, मन, यह बाहर की क्रियायें, वे कर्म हैं। कर्म अर्थात् जड़ की, पर की क्रिया, उसे यहाँ कर्म कहते हैं। उस कर्म की सामग्री पर भी जिसका रस टूट गया है। जिसे अन्तर आत्मा के आनन्द का रस आया है, उस रस के समक्ष सामग्री का रस जिसे टूट गया है। आहाहा!

पहला एक शब्द कर्म रखा है। **'कर्म ज्ञानिनः परिग्रहभावं न हि एति' जितनी विषयसामग्री भोगरूप क्रिया है, वह सम्यग्दृष्टि जीव के ममतारूप स्वीकारपने को निश्चय से नहीं प्राप्त होती है।** यह सामग्री मेरी है, ऐसा अन्दर अभिप्राय छूट गया है। आहाहा! चाहे तो चक्रवर्ती के पद हों। परन्तु जिसे आत्मा के आनन्द के रस का वेग चढ़ा है। आहाहा! उसे उस सामग्री के प्रति प्रेम उड़ गया है। अर्थात् कि वह सामग्री मेरी है, यह बात उड़ गयी, नाश हो गयी। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव के ममतारूप स्वीकारपने को निश्चय से नहीं प्राप्त होती है। यह मेरे हैं, (ऐसा नहीं)। मेरा तो आनन्दस्वरूप प्रभु है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड भगवान आत्मा। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! ऐसे तो अनन्त बार शास्त्र का ज्ञान किया और मान भी लिया कि मुझे कुछ हुआ है। ऐसे अनन्त बार अभिमान में (काल गया)। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का रस जहाँ चढ़ा है अन्दर, उस अतीन्द्रिय आनन्द के रस के समक्ष धर्मी को बाह्य सामग्री की परिणति की पर्याय है, उसके प्रति ममत्व उड़ गया है। वह मैं नहीं, वे मेरे नहीं। अन्तर में, हों!

किस कारण से? कहते हैं कि बाह्य सामग्री का रस उड़ गया है, ममता उड़ गयी है, **किस कारण से? 'रागरसरिक्ततया'** आहाहा! **कर्म की सामग्री को आपा जानकर रंजकपरिणाम ऐसा जो वेग...** देखा! आहाहा! क्षण में और पल में परपदार्थ के प्रति कषाय का वेग होता है, वेग। आहाहा! वह वेग टूट गया है। आहाहा! भाषा देखी? रस का अर्थ वेग किया है? यह क्या कहते हैं? कि कर्म के निमित्त से प्राप्त (सामग्री) पैसा, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब आदि। वह पर सामग्री। उसमें से एकताबुद्धि गयी है। क्यों? आहाहा! कि उसके प्रति का कषाय का जो वेग था यह... यह... ऐसा साथ में चलता था, वह जहाँ टूट गया है। सूक्ष्म है। आहाहा! बारीक-सूक्ष्म कषाय वेग। बाह्य सामग्री बोलना, चलना, बाह्य स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा आदि, उसमें जहाँ कषाय का वेग क्षण में सूक्ष्म चला जाता है। आहाहा! और जहाँ ज्ञानस्वभाव रुंध जाता है। समझ में आया? आहाहा! उसे यह वेग अटक गया है। आहाहा! बाद में कहेंगे स्वरसो। १४९ (कलश)। स्वरस अर्थात्? पररस अर्थात् कषाय का वेग ऐसा सूक्ष्म और स्वरस अर्थात् चैतन्य के आनन्द के परिणमन में शुद्ध परिणमन, वह स्वरस। आहाहा!

चाहे तो शास्त्र का ज्ञान कम हो। दूसरे को समझाने के लिये भी क्षयोपशम कम हो। आहाहा! परन्तु धर्मी का वेग आनन्द के रस में चढ़ गया है। वह कषाय के वेग में नहीं जाता। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! लोग ऐसा मानते हैं कि हम दया पालते हैं, व्रत पालते हैं, भक्ति, पूजा, दान (करते हैं), इसलिए उसमें धर्म है। वह तो कषाय का वेग है। आहाहा! उस कषाय के वेग में अपनी बुद्धि रुक गयी है। वह तो

मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! अशुभ की तो क्या बात करना? परन्तु शुभ के राग के वेग में चढ़ गया है और यह मुझे लाभदायक है और उसमें ही उसकी लीनता है, उसे कषाय का वेग है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि-सत्यदृष्टि अर्थात् जैसा आनन्दरस है, वैसा पर्याय में आनन्दरस का परिणमन हुआ है। वह सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! बहुत फेरफार। चलते प्रवाह से बहुत फेरफार लगता है। बापू! मार्ग अलग, भाई!

कहते हैं कि ऐसा वेग। भाषा, रस का अर्थ वेग किया, देखा! धर्मी को अपने आनन्द का वेग है अन्दर। क्षण में और पल में ज्ञाता-दृष्टा के वेग में रमता है वह। आहाहा! और अज्ञानी अपने स्वभाव के अनादर में और पर सामग्री के रस के वेग में चढ़ा है, वह कषायवाला मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! भले वह बाह्य से मुनि होकर बैठा हो, नग्नपना हो, अट्ठाईस मूलगुण हों, तथापि उसे कषाय का वेग है। वहाँ शुभराग में वेग में चढ़ गया है। उसका जिसे रस है। समझ में आया?

यह **वेग, उससे रीता है,...** सम्यग्दृष्टि को क्षण में और पल में जो कषायवन्त को कषाय का वेग था... आहाहा! उससे सम्यग्दृष्टि खाली है। आहाहा! अर्थात्? परसन्मुख की सामग्री करोड़ हो, अरब हो, चाहे जो हो... आहाहा! उसके प्रति राग के रस का वेग ही खाली हो गया है। राग के रस से खाली हो गया है और आनन्द के रस से भर गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। जिनेन्द्रदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह वाणी है। आहाहा! जिसे कर्म अर्थात् बाह्य सामग्री की क्रिया, शरीर की, वाणी की, पैसे की, इज्जत की, स्त्री की, पुत्र की उनकी जो क्रिया (हो) वह कर्म, उसके प्रति का जिसे कषाय का वेग है, उनमें जिसे मिठास है, उसे कषाय का वेग है और वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु जिसे आत्मा आनन्द के रस का अतीन्द्रिय आनन्द के रस का रसिया हो गया... आहाहा! चाहे तो बाह्य सामग्री इतनी हो... आहाहा! युद्ध के प्रसंग में खड़ा हो और जरा क्रोध भी आवे, तथापि रस उड़ गया है। वस्त्र का दृष्टान्त देंगे। वस्त्र का दृष्टान्त देंगे।

उससे रीता है,... ज्ञानी-धर्मी हरक्षण पर सामग्री की ओर के कषाय के वेग से खाली है। आहाहा! हरक्षण वह ज्ञान के वेग के रस में, आनन्द के रस से वह भरपूर है।

चन्दुभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! क्या कहें? कहाँ कहना? आहाहा! यह निर्जरा अधिकार है न? जिसे आत्मा के आनन्द का रस चढ़ा है, उसे कहते हैं कि बाह्य की सामग्री और उसके प्रति राग का रस उड़ गया है, इसलिए उसे क्षण-क्षण में निर्जरा होती है ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **ऐसा भाव होने से। दृष्टान्त कहते हैं—** अर्थात् कि पर के सन्मुख के रंग के वेग के भाव से खाली होने से उसे बन्धन है नहीं। उस पर के प्रति ममत्व और अहंकार है नहीं। आहाहा! अहं। अहंपना तो चैतन्यरस में आ गया है अब। धर्मी को अहंपना—अहं—यह मैं, यह अतीन्द्रिय आनन्द में अहंपना आया है। राग और सामग्री में से अहंपना उड़ गया है। ऐसा बड़ा अन्तर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

दृष्टान्त कहते हैं—'हि इह अकषायितवस्त्रे रंगयुक्तिः बहिः लुठति एव' जैसे सब लोक में प्रगट है कि नहीं लगा है हरड़ा, फिटकरी, लोद जिसको... आहाहा! जिस वस्त्र में हरड़ और फिटकरी का रंग लगा नहीं, उसे रंग नहीं चढ़ता। वह रंग अन्दर में नहीं जाता। वह अन्दर में सफेदी है, वह रहा करेगी। आहाहा! समझ में आया? जिस वस्त्र को **नहीं लगा है हरड़ा, फिटकरी, लोद जिसको ऐसे कपड़ा में रंगयुक्ति अर्थात् मजीठ के रंग का संयोग किया जाता है, तथापि कपड़ा से लगता नहीं है...** समझ में आया? जिस वस्त्र में लोधर आदि का रंग नहीं चढ़ा, उसे दूसरे मजीठ का रंग नहीं चढ़ता। आहाहा! समझ में आया? वह तो वस्त्र श्वेत-सफेद रहेगा। उसे... आहाहा! मजीठ के रंग में भले वस्त्र को रखा हो, परन्तु उस वस्त्र को रंग नहीं चढ़ेगा। क्योंकि वहाँ लोधर और फिटकरी का रंग चढ़ा नहीं, उसे यह रंग नहीं लगेगा। आहाहा!

कपड़ा से लगता नहीं है... 'बहिः लुठति' यह मजीठ का रंग लोधर के रंग के बिना मजीठ का रंग कपड़े से बाहर लौटता है। आहाहा! कपड़े को मजीठ का रंग चढ़ता नहीं। उसी प्रकार धर्मी को राग का रस जहाँ एकत्वबुद्धि राग का प्रेम, वह सब उड़ गयी है। उस राग का जिसे रस नहीं, उसे दुनिया की सामग्री और विषय-कषाय का भाव, उसका उसे रस नहीं होता। उसका रंग उसे नहीं चढ़ता। आहाहा! मार्ग अलग, बापू! दुनिया माने भले मान बैठे उसकी कल्पना से। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव वीतराग परमात्मा सौ इन्द्रों के बीच में, गणधरों के झुण्ड थे सन्तों के, उसमें यह कहते थे, वह यह बात है। प्रभु! तुझे आत्मा का रस नहीं तो तुझे राग का और पर का रस है। भले वह त्यागी होकर बैठा हो। आहाहा! परन्तु जिसके राग के कण ऊपर (प्रेम नहीं है)। महाव्रत का राग, महाव्रत एक राग है। वह कहीं धर्म और संवर-निर्जरा नहीं। आहाहा! आस्रव है। उस राग का जिसे रंग चढ़ा है... आहाहा! उसे आत्मा का रंग लगता नहीं। उसे ज्ञानरस आता नहीं। और जिसे आत्मरस भगवान सच्चिदानन्द प्रभु का रस जहाँ जमा है अन्दर में... आहाहा! उसे कर्म अर्थात् बाह्य की सामग्री के कार्य और उनके प्रति का रंग है, उससे वह ज्ञानी खाली है। आहाहा! फेरफार अन्तर की दृष्टि और पर की दृष्टि में फेरफार है। (जैसी) दृष्टि, वैसी सृष्टि। आहाहा!

जिसे आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द, उसकी जिसे दृष्टि हुई है, अर्थात् कि पर्याय में आनन्द का आस्वाद आया है। आहाहा! ऐसे दृष्टि हुई है इतना नहीं, परन्तु वह दृष्टि तब हुई कहलाती है कि शक्ति में अनन्त आनन्द है, उसकी व्यक्ति में अनन्त आनन्द का अंश आवे। समझ में आया? तब उसकी दृष्टि द्रव्य पर है, ऐसा कहने में आता है। और जिसकी दृष्टि चाहे तो त्याग करके बैठा हो परन्तु अन्दर में राग के कण पर जिसका रस है, वह धर्म की भावना रस से खाली है। चाहे तो वह पंच महाव्रत पालता हो। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि उसे सामग्री कोई इन्द्र के इन्द्रासन की, करोड़ों अप्सराओं की सामग्री हो, क्रिया, वह तो पर अजीव की क्रिया पर की है। और उसके प्रति का राग रस है, वह तो जिसने आत्मा का रस नहीं चखा, उसे पर का-राग का रस है। आहाहा! एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। समझ में आया? जिसे राग का रस है, उसे प्रभु चैतन्य का रस नहीं और जिसे चैतन्य का रस है, उसे राग का रस नहीं। आहाहा! इसलिए उसे कर्म की निर्जरा होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

बाहर बाहर फिरता है, उस प्रकार। भावार्थ ऐसा है कि सम्यग्दृष्टि जीव के पंचेन्द्रिय विषयसामग्री है,... कर्म था न, जो कर्म शब्द? उस बाह्य सामग्री के ढ़ेर हों।

वे तो ज्ञेय हैं। ज्ञान में वे तो ज्ञेय हैं। उसके बदले ज्ञान में ऐसा माने कि वे मेरे हैं, वह तो मिथ्यात्वभाव राग का रस चढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि जीव के पंचेन्द्रिय विषयसामग्री है, भोगता भी है।** अर्थात् वह तो लोग देखे, इसलिए भोगता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु उसके ओर की जरा आसक्ति का राग है, इसलिए भोगता है, ऐसा कहने में आता है। पर को भोग सके, वह तो अज्ञानी भी कहीं शरीर को, हड्डी-चमड़ी को भोगे आत्मा? आहाहा! स्त्री के रमण में स्त्री के शरीर को वह भोगता है? उसमें उसके साथ रमता है ऐसे? आहाहा! यह मुझे ठीक पड़ता है, ऐसे राग के रस में रमता है। आहाहा! धर्मी को ऐसी सामग्री और सामग्री के प्रति राग का रस उड़ गया है। आहाहा! कहाँ मेरा नाथ आनन्द का सागर! और कहाँ यह राग और यह सामग्री! अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर में भान वर्तता है, उसे पूर्व के कर्म का उदय खिर जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अर्थात् क्या साहेब! उसका ज्ञान मन्द हो गया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द हो गया है पर के लिये। पर के स्वाद से मन्द हो गया है। अन्तर के स्वाद में जागृत हो गया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह सब पढ़े-गुने, वे सब समझने जैसे हैं। यह तो अलग जाति है। आहाहा!

बहिन का शब्द तो बहुत बार कहते हैं न? सादी भाषा। सिद्धान्त का रहस्य। सादी भाषा। **जागता जीव ध्रुव है न, वह कहाँ जाये?** यह क्या शब्द है? भगवान ज्ञान के स्वभाव से जागृत खड़ा / ध्रुव है न? आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप से जागृत चैतन्य त्रिकाल खड़ा अर्थात् ध्रुव है न? वह ज्ञायक चैतन्य ध्रुव... वह ११वीं गाथा में भूतार्थ कहा, वह शब्द यहाँ गुजराती सादी भाषा में है। आहाहा! जागती ज्योति चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु! जागती ज्योति ध्रुव स्थित है न? वह कहाँ जाये? वह ध्रुवपना कहाँ जाये? कहीं पर्याय में आवे? कहीं राग में आवे? जाये कहाँ? आहाहा! उस ध्रुव चैतन्य की सत्तावाला तत्त्व, चैतन्य और आनन्द के अस्तिवाला तत्त्व, चैतन्य और आनन्द के अस्तिवाला तत्त्व ध्रुव है। वह नया नहीं आता पर्याय में, नहीं आता राग में। आहाहा! उस जीव को, कहाँ जाये वह ध्रुव? **अवश्य प्राप्त होता है।** आहाहा! वहाँ उसकी दृष्टि

का राग का रस छोड़कर और आत्मा के आनन्द के रस के वेग में जाये तो अवश्य प्राप्त होगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! यह शास्त्र के पठन-बठन भी जहाँ काम नहीं करते। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। जैसे उस वस्त्र को लोधर का रंग नहीं लगा फिटकरी का, उसे मजीठ का रंग नहीं लगता। उसी प्रकार जिसे... आहाहा! राग के रंजित परिणाम जिसे नहीं है, जिसे आनन्द के स्वभाव के प्रेम का रस चढ़ा है, उसे राग और बाहर की चीज़ें राग उत्पन्न नहीं कर सकती, उसे राग का रंग नहीं होता। ऐसी बातें हैं। ऐसा धर्म कैसा होगा? धर्म तो दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, यात्रा करना, सम्मेदशिखर और गिरनार की (यात्रा करना)। बापू! वह तो सब विकल्प और राग है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! उस राग के रस में चढ़ा, वह आत्मा के रस का लुटेरा है। आहाहा!

जिसे आत्मा का रस चढ़ा है, वेग चढ़ा है, खुमारी चढ़ी है। आहाहा! 'जिनराज सुजस सुण्यो में' आया है न? जिनराज अर्थात् जिनस्वरूप जिसका सुजस अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का रस जिसे ख्याल में आ गया है। 'जिनराज सुजस सुण्यों में काहु के कहे अब कबहु न छूटे, लोकलाज सब डारी।' दुनिया कैसे मानेगी? कैसे कहेगी? वह उसके घर में रही। आहाहा! 'जैसे अमली अमल करत समये लाग रही खुमारी।' यह अफीम के पीनेवाले को अमल चढ़े और खुमारी चढ़े। आहाहा! 'जैसे अमली अमल करत समये लाग रही खुमारी, जिनराज सुजस सुण्यो में।' जिनराज अर्थात् यह जीव, हों! उसका सुजस अर्थात् चैतन्य की परिणति में आत्मा जागृत हुआ। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : घर में से निकाल देंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर तो यहाँ है। कौन निकाल देंगे? इसके भाई के साथ रहना है न इसे। ऐसा यदि कहे तो निकाल देंगे घर में से। परन्तु वह तो लोभ के कारण नहीं निकाले। मर जायेगा तो कहाँ देगा? अपने को ही देगा न। आहाहा! देवानुप्रिया! यह तो संसार ऐसा है, बापू, भाई! क्या हो? जगत के सब लुटेरे हैं यह तो। नियमसार में आया है न? स्त्री, पुत्र, परिवार, पुत्र को पिता तथा पिता को पुत्र, यह सब ठगों की टोलियाँ

है। आहाहा! सन्तों ने प्रसिद्ध किया है कि जितनी सामग्री बाहर की तुझे यह स्त्री, पुत्र, परिवार, पुत्र की बहू, तेरी स्त्री, यह सब ठगों की टोली, बापू! तेरा श्वास होगा, तब तक तुझे अनुकूल लगेगा। फिर लम्बा खिंचे और ब्याधि में खिंचे तो अब झट पलंग खाली हो तो ठीक, नहीं तो जागते रहना पड़ता है। मरता नहीं और रात्रि जागरण करना पड़ता है। दुःखी होते हैं। ऐसा करके खाट (पलंग) खाली (होने की राह देखते हैं)। हमको तो अनुभव हो गया है।

एक लड़का मुम्बई में ताव लगा हुआ। तब क्या कहलाता है वह? पानी लगा हुआ। तुम्हारे ताराचन्दभाई, सोमचन्द का पुत्र। एकदम जवान, हों! जोबालिया, नागनेश था। वह ताराचन्दभाई कहे। मरने की तैयारी। जीवित रहने का तो नहीं ही, अब निश्चित हो गया। परन्तु दिन के दिन जाये और रात्रि में जागना पड़े। क्योंकि (लोग ऐसा कहे कि), तुम जागते नहीं थे, मर गये तब? इसलिए रात्रि जागरण करना पड़े। इसलिए (ऐसा कहे), अरेरे! दुःखी होता है। ऐसा करके झट खिसकता नहीं। आहाहा! विवाहित, हों! विवाहित जवान मुम्बई का। उसके पिता का पिता हमसे आकर बात करता था। अरे! वह दुःखी है। और वह मरे... दुःखी हैं इसलिए अब तुझे झट अब खाली हो तो रात्रि जागरण मिटे, इसके लिये है। भगवानजीभाई! यह जगत की क्रीड़ायें सब ऐसी हैं। आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं, यह सब लुटेरों की टोली है। सब ठग है ठग, ठग।

मुमुक्षु : यह ठग मीठे लगते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व में मीठे ही लगे न! सर्प का जहर चढ़ा हो, उसे नीम कड़वा नहीं लगता। जिसे सर्प का जहर चढ़ा है, उसे नीम इसीलिए चबवाते हैं कि जहर चढ़ा है या नहीं? चढ़ा हो तो उसे कड़वा नहीं लगेगा। जहर न चढ़ा हो तो कड़वा लगेगा। आहाहा! इसी प्रकार जिसे पर मेरा, ऐसे मिथ्यात्व का जहर चढ़ गया है न, आहाहा! उसे वह परवस्तु पर है, वह मेरी नहीं, ऐसा उसे नहीं लगता। आहाहा!

यह नहीं कहा भाई ने? हुकमचन्दजी ने लिखा है न भाई! भगवान का लेख लिखा। बहुत सरस। हुकमचन्दजी अभी पण्डित पका है। ४१ वर्ष की उम्र, परन्तु बुद्धि... बुद्धि... बुद्धि... और यहाँ की बात एक-एक रसवाली। बैठ गयी। उन्होंने महावीर का लेख

लिखा है। महावीर ने विवाह क्यों नहीं किया था? अन्तिम तीर्थंकर २२-२३-२४वें ने विवाह क्यों नहीं किया था, क्योंकि उन्हें समय थोड़ा और स्त्री से विवाह करे तो एकदम दुर्घटना खड़ी हो। आहाहा! और इतना काल नहीं था। बहुत थोड़ा काल था। स्त्री से विवाह करे तो भोग की सामग्री, उसे प्रसन्न रखना, उसे यह करना पाप का बड़ा फैलारा। आहाहा! दुर्घटना शब्द (लिखा है)। बड़ा लेख है। पत्रिका में आ गया। बड़ी दुर्घटना है, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! अर्थात् उसे प्रसन्न रखना, उसके साथ भोग के पाप सेवन करना, उसकी क्रीड़ा में रहना, उसके पुत्र हो और उसे प्रसन्न रखना... आहाहा! महापाप लेकर कुँए में पड़ा अन्दर। दुर्घटना शब्द प्रयोग किया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि धर्मी जीव है, वह तो अन्दर आनन्द के उसमें पड़ा है। अर्थात् कहीं किसी चीज़ को मेरी है, ऐसा उसे स्वप्न में भी नहीं होता। आहाहा! स्वप्न भी यह आवे उसे कि मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! यह कहीं शास्त्र को वाँचन कर धारण कर ले तो यह वस्तु आ जाये, यह नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवानजीभाई! पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। जगत से बड़ा अन्तर है।

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि जीव के पंचेन्द्रिय विषयसामग्री है,...** भोगता है इसका अर्थ? विषय सामग्री भोगता है, (ऐसा नहीं है)। पर की सामग्री तो कोई अज्ञानी भी भोग नहीं सकता। भाषा तो ऐसी है। वह किस नय का लक्ष्य है? नय व्यवहार का वचन है। उसके ऊपर लक्ष्य जाता है, उसे वह भोगता है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? **परन्तु अन्तरंग राग-द्वेष-मोहभाव नहीं है,...** यहाँ तो अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष, मिथ्यात्व सम्बन्धी का राग यहाँ गिनने में आया है। समझ में आया? ऐसा मानकर कोई ऐसा माने कि सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए फिर अब उसे राग ही नहीं और राग का बन्ध भी नहीं, आस्रव भी नहीं, (तो) वह एकान्त में चढ़ जायेगा। समझ में आया? आहाहा! समकितदृष्टि को जितना आसक्ति का भाव है, उसे उसके प्रति रस नहीं परन्तु है, उतना आस्रव है, बन्ध है, रोग है, दुःख है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो बन्ध नहीं ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ न, वह तो अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व सम्बन्धी के बन्ध की बात है। वहाँ ऐसा ही मान ले कि कुछ बन्ध नहीं अब। ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। किस अपेक्षा से? उल्टी खतौनी खताकर मार डाले आत्मा को।

यहाँ तो ज्ञानी के भोग का अर्थ, उसे अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष और मिथ्यात्व नहीं, इसलिए उतनी कषाय उसे अज्ञान के एकपने का नहीं है। उतना एकपने के करण जो बन्ध था, उतना बन्ध उसे नहीं है। बन्ध ही नहीं है, (ऐसा नहीं है)। वह तो दसवें गुणस्थान तक राग का बन्ध है। यह बड़ी गड़बड़ उठी है न? देखो! ज्ञानी को तो बस, भोग निर्जरा का हेतु है। क्या है? मर जायेगा आश्रय लेकर बातें करने जायेगा वहाँ। समझ में आया? आहाहा! उसे एकत्वबुद्धि का रस उड़ गया है। उतना एकत्वबुद्धि से जो बन्ध था, वह बन्ध अब उसे नहीं है। परन्तु आसक्ति का जितना राग है, अरे! मुनि को भी जितना राग है, भावलिंगी सन्त, जिन्हें अनन्त आनन्द का उफान आया है। चौथे (गुणस्थान) में तो थोड़ा है परन्तु मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन है, प्रचुर आनन्द का वेदन विशेष बढ़ गया है। आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। समझ में आया? उसे भी अभी जो महाव्रतादि का रागभाग रह गया है, वह बन्ध का कारण है। यह महाव्रत का विकल्प, वह जगपंथ है। आहाहा!

वह तो कहा नहीं था? मोक्ष अधिकार, ४०वाँ बोल (काव्य)। समयसार नाटक। ४०वाँ बोल कहा था। बातें तो बहुत आ गयी हैं। बापू! यहाँ तो वह महाव्रत का विकल्प उठे, वह जगपंथ है और आत्मा की ओर अन्दर जाये, वह शिवपंथ है। अतीन्द्रिय आनन्द में अन्तर में रमता है, वह शिवपंथ है। जितना राग में आया, उतना जगपंथ है। आहाहा! मुनि को, हों! जिन्हें तीन कषाय का अभाव, वीतरागता (वर्तती है)। आहाहा! उन्हें भी यह संज्वलन का विकल्प उठा, पाँच समिति-गुप्ति का व्यवहार भाव का... आहाहा! उसे बन्ध का कारण। उतना अभी संसार है। आहाहा! ऐसा ही मान ले सम्यग्दृष्टि के नाम से... नाम से, हों! भाववाला तो ऐसा नहीं मानता। आहाहा! हमारे भी यह कर्म का उदय था, वह आकर खिर जाता है। मर जायेगा चौरासी के अवतार में। निगोदगामी है। आहाहा! यहाँ तो ऐसी बात है, बापू! आहाहा! कपड़े का एक टुकड़ा

रखकर भी मुनिपना माने, मनावे, (उसे) निगोदगामी कहा है। बड़ा दण्ड होगा? ककड़ी के चोर को फाँसी। बड़ा दण्ड, बापू! तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : पर तत्त्व को अपना मान ले....

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ तत्त्व की भूल—नौ तत्त्व की भूल है। वस्त्र का एक टुकड़ा रखे और मुनिपना माने तो उसे नौ तत्त्व की भूल है। अजीव का संयोग मुनि को इतना नहीं होता, तो संयोग माना, वह अजीव की भूल। उसे आस्रव का विकल्प, यह वस्त्र का नहीं होता और माना, यह आस्रव की भूल। संवर की दशा में उन्हें वस्त्र ग्रहण का विकल्प नहीं होता, उस संवर की दशा में उसने विकल्प (वस्त्र) ग्रहण लेने का भाव माने, वह संवर की भूल है, निर्जरा की भूल है। उस समय वस्त्र ग्रहण का विकल्प है, उसे वह बन्ध का कारण है, उसके बदले हमको अब निर्जरा होती है, हम मुनि हुए हैं। निर्जरा की भूल, बन्ध की भूल, मोक्ष की भूल, जीवतत्त्व की भूल, नौ की भूल है। अरे! इतनी बात में नौ की भूल? तो अभी यह भोग के भाव को ऐसा माने... आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दर्शन के रस के समक्ष जो राग है, उसकी एकत्वबुद्धि नहीं है। इसलिए उसे एकत्वबुद्धि का बन्ध नहीं है। चन्दुभाई! यहाँ तो भाई जिसे दोरे दोरो हो (तत्प्रमाण बात होती है)। कुछ भी न्याय से एक का अन्तर (हो) तो पूरा चक्कर बदल जायेगा। आहाहा! अनादि का स्वच्छन्द से आत्मा ने ऐसा ही काम किया है। आहाहा!

यहाँ **अन्तरंग राग-द्वेष-मोहभाव नहीं है,...** कितना राग-द्वेष-मोहभाव नहीं? अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व सम्बन्धी का राग-द्वेष-मोह नहीं। इतना यहाँ लेना। राग-द्वेष बिल्कुल है ही नहीं, भोग भोगता है न! आहाहा! समझ में आया? भोग भोगता है, यही आसक्ति है। आहाहा! समझ में आया? **इस कारण कर्म का बन्ध नहीं है,...** इस प्रकार के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी का कर्मबन्ध नहीं है, ऐसा लेना। कर्मबन्ध है ही नहीं, ऐसा ले तो उसे छठवें गुणस्थान में तो अभी सात-आठ कर्म का बन्ध है। वह किसके कारण होगा? मुफ्त में? मुनि, जिन्हें भावलिंग प्रगट हुआ, प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का वेग जगा अन्दर। चौथे में वेग है आनन्द का, उसकी अपेक्षा पाँचवें में विशेष

और उससे छठवें में विशेष है। आहाहा! उसे भी जितना विकल्प उठा है, उतना अभी संसार है। सात-आठ कर्मबन्ध का कारण है, आस्रव है, बन्ध है। भावबन्ध है, द्रव्यबन्ध है। यहाँ इनकार करते हैं, उसे पकड़े वहाँ। आहाहा! किस अपेक्षा से कहते हैं? तेरे स्वच्छन्द से तू ऐसा वाँचन करे और विचार करे तो? यहाँ तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा!

निर्जरा है... बन्ध नहीं, परन्तु निर्जरा है। जितना आनन्द के रस में चढ़ गया है, उतनी अशुद्धता नहीं, वह अशुद्धता थोड़ी हो पहली, वह निर्जरित हो जाती है। आनन्द के रस के वेग में। आहाहा! **कैसी है रंगयुक्ति? कपड़ा-रंग इकट्ठा किया है।** क्या कहते हैं? वह मजीठ का रंग लग गया है न? उसे लोधर का रंग लग गया है, उसे मजीठ का रंग लगता है। इसी प्रकार जिसे राग का रस है, उसे रंग की युक्ति है। समझ में आया? राग के साथ एकत्वबुद्धि है, उसे राग के रंग की युक्ति है—सम्बन्ध है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी चीज़, बापू! यह तो धीर का काम है, भाई! आहाहा! वह भाषा नहीं आयी? क्या कहा? बहुत बार कहते हैं न हम? वह शब्द नहीं आता? चिन्ता बिना का? निभृत-निभृत। निभृत शब्द है। निभृत शब्द है। जिसे कोई चिन्ता नहीं, ऐसे निभृत पुरुषों का काम है। कलश में है, कलश में है। आहाहा!

यहाँ तो गुणी भगवान और गुण आनन्द—ऐसा भेद का विकल्प उठे, वह भी राग है। आहाहा! यहाँ तो मिथ्यात्व सम्बन्धी और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी रंग नहीं, इसलिए उसे राग होने पर भी और परवस्तु होने पर भी, उसे एकत्वबुद्धि नहीं। समझ में आया? आहाहा! भाई! वीतराग का मार्ग बहुत अलौकिक है, बापू! यह साधारण का काम नहीं है। आहाहा! **कपड़ा-रंग इकट्ठा किया है।** युक्ति। ऐसा। वह मजीठ का रंग लगा न उसे? लोधर लगा, इसलिए मजीठ का रंग लगा। एकत्वबुद्धि है, इसलिए उसे राग का रंग हो गया। १४८ गाथा हुआ। आहाहा! अब इसका विशेष स्पष्टीकरण करते हैं।

कलश-१४९

(स्वागता)

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्
सर्वरागरसवर्जनशीलः।
लिप्यते सकलकर्मभिरेषः
कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न।।१७-१४९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'यतः ज्ञानवान् स्वरसतः अपि सर्वरागरसवर्जनशीलः स्यात्' [यतः] जिस कारण से, [ज्ञानवान्] शुद्धस्वरूप अनुभवशीली है जो जीव, वह [स्वरसतः] विभावपरिणमन मिटा है, इस कारण, शुद्धतारूप द्रव्य परिणमा है; इसलिए [सर्व राग] जितना राग-द्वेष-मोहपरिणामरूप [रस] अनादि का संस्कार, उससे [वर्जनशीलः स्यात्] रहित है स्वभाव जिसका—ऐसा है। 'ततः एषः कर्ममध्यपतितः अपि सकलकर्मभिः न लिप्यते' [ततः] तिस कारण से, [एषः] सम्यग्दृष्टि जीव, [कर्म] कर्म के उदयजनित अनेक प्रकार की भोगसामग्री, उसमें [मध्यपतितः अपि] पंचेन्द्रिय भोगसामग्री भोगता है, सुख-दुःख को प्राप्त होता है तथापि [सकलकर्मभिः] आठों प्रकार के हैं जो ज्ञानावरणादि कर्म, उनके द्वारा [न लिप्यते] नहीं बाँधा जाता है। भावार्थ इस प्रकार है कि अन्तरंग चिकनापन नहीं है, इससे बन्ध नहीं होता है; निर्जरा होती है।।१७-१४९।।

कलश - १४९ पर प्रवचन

१४९।

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्
सर्वरागरसवर्जनशीलः।
लिप्यते सकलकर्मभिरेषः
कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न।।१७-१४९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'यतः ज्ञानवान् स्वरसतः अपि सर्वरागरसवर्जनशीलः

स्यात्' जिस कारण से... 'ज्ञानवान्' शुद्धस्वरूप-अनुभवशीली है... 'ज्ञानवान्' की व्याख्या यह। शास्त्र वाँचन किये और पढ़ा इसलिए '**ज्ञानवान्**' ऐसा नहीं। आहाहा! **शुद्धस्वरूप-अनुभवशीली** वह ज्ञान। यह '**ज्ञानवान्**' ज्ञान और आनन्द का अनुभवशील। अनुभवशील—अनुभव जिसका स्वभाव हो गया है। आहाहा! शील अर्थात् यहाँ स्वभाव। अनुभवशील। '**ज्ञानवान्**' की व्याख्या। आहाहा! ज्ञानी ज्ञानवान उसे कहते हैं... आहाहा! जिसे शुद्ध स्वरूप के अनुभव का स्वभाव हो गया है। आहाहा! **शुद्धस्वरूप-अनुभवशीली है जो जीव वह... 'ज्ञानवान्'** की व्याख्या। आहाहा! इतना ग्यारह अंग का ज्ञान किया, इतना चौदह पूर्व का, अमुक की यहाँ बात नहीं। अथवा दूसरे को समझाना आया, इसलिए '**ज्ञानवान्**' (ऐसा नहीं।) आहाहा! बापू! यह वस्तु बहुत दूसरी है। '**ज्ञानवान्**' अर्थात् ज्ञान जिसका रूप है, अर्थात् ज्ञानानन्द जिसका स्वभाव अनुभवशील है। आहाहा! जो ज्ञान और आनन्द को अनुभवशीलवाला जीव है।

जो जीव वह... 'स्वरसतः' अब उसे '**ज्ञानवान्**' '**स्वरसतः**' की व्याख्या की है। आहाहा! **विभाव परिणमन मिटा है,...** पहले नास्ति से बात की। पाठ में अस्ति से है। '**स्वरसतः**' अस्ति से है। परन्तु पहले नास्ति से बात करके फिर कहेंगे। '**स्वरसतः**' **विभाव परिणमन मिटा है,...** यह नास्ति से बात की। अब पाठ में है, वह बात करते हैं। **शुद्धतारूप द्रव्य परिणमा है,...** यह स्वरस। स्वरस इसका नाम। आहाहा! जिसे आनन्द का रस परिणम गया है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उछला है अन्दर से और पर्याय में जिसकी शुद्धता अतीन्द्रिय आनन्द की परिणम गयी है, उसे स्वरस कहते हैं। आहाहा! यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ का पंथ है, भाई! यह कोई ऐरे-गैरे का कथन नहीं है। आहाहा! '**स्वरसतः**' जिसे शुद्धस्वरूप का रस परिणमित हुआ है, ऐसा कहते हैं। शुद्धस्वरूप का अनुभवशील, उसे '**स्वरसतः**' जिसकी शुद्धता परिणम गयी है अन्दर, परिणमन हो गया है। जैसा शुद्धस्वरूप त्रिकाली है, वह पवित्रता का पिण्ड प्रभु है, वैसी ही पवित्रता पर्याय में जिसे परिणम गयी है। आहाहा! समझ में आया?

तब दिल्ली में बात हुई थी न? विद्यानन्दजी है न? बड़े दस-दस, बीस-बीस हजार लोगों की सभा भरती है। लोगों को अनुकूल पड़े ऐसी भाषा है और बड़ा... विद्यानन्दजी दिगम्बर। मैं बडौद में था। फिर वहाँ आये। वहाँ हम गये थे तो नीचे उतरे

और बातचीत हुई। उन्होंने ऐसा कहा कि यह समयसार में १५५ गाथा में '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' कहा है न? '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' दिल्ली गये थे तब। कहा, अर्थात् क्या? जीवादि का श्रद्धान, वह समकिती अर्थात् मानना, इतनी व्याख्या है इसकी? यह श्रद्धा का अन्दर आनन्द का, ज्ञान का परिणमन होना। समयसार की १५५ गाथा में है। सुनी भी कहाँ यह बात अभी (चलती है)? वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप प्रभु है, शुद्ध ज्ञान पवित्र का पिण्ड प्रभु है। शुद्धता के सागर से भरपूर भगवान है, उसकी पर्याय में शुद्धता की बाढ़ आना, शुद्धता का परिणमन होना, इसका नाम समकित और श्रद्धा, इसका नाम समकित है। यह नौ तत्त्व की श्रद्धा की, इसलिए समकित है, अब करो व्रत और चारित्र। धूल में भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, '**स्वरसतः**' आहाहा! शुद्धस्वरूप द्रव्य परिणमा, यह स्वरस की व्याख्या। पहले नास्ति से बात की। अस्ति से तो यह है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ स्वयं अतीन्द्रिय आनन्दरूप से वर्तमान पर्याय में परिणम गया है, वह '**ज्ञानवान्**' स्वरस में रसिक है। आहाहा! हो दूसरे विकल्प आदि, परन्तु उसके ध्रुव के ध्यान को चूककर दूसरी बात उसे नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। दुनिया के साथ मिलान खाओ, न खाओ... आहाहा!

शुद्धतारूप द्रव्य परिणमा है,... भाषा देखो! टीका करनेवाले कैसे हैं! इसमें से बनारसीदास ने समयसार नाटक निकाला है। इस कलशटीका में से। जिसका शुद्ध स्वभाव पवित्रता का पिण्ड, अनन्त गुण का पवित्र का पिण्ड सागर प्रभु, उसकी दृष्टि करने से उसे दृष्टि में दृष्टि का दाबन करने से यह मैं हूँ, ऐसा अनुभव करने से पर्याय में शुद्धता का परिणमन हो, वह आत्मा का स्वरस कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? '**तस्वरसतः**' **इसलिए...** यह '**स्वरसतः**' है इसलिए... विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १२, मंगलवार, दिनांक-२२-११-१९७७, कलश-१४९-१५०, प्रवचन-१५६

१४९, फिर से। निर्जरा अधिकार है। वहाँ सम्यग्ज्ञान की प्रधानता से कथन है। **जिस कारण से... 'ज्ञानवान्' शुद्धस्वरूप-अनुभवशीली...** यह '**ज्ञानवान्**' की व्याख्या। यह आत्मा चैतन्य ज्ञानस्वभाव, नित्य ध्रुव का ज्ञान होने पर उसे '**ज्ञानवान्**' कहते हैं, उसे शुद्धस्वरूप के अनुभव स्वभाववाला कहते हैं। सम्यग्दर्शन होने पर उसे '**ज्ञानवान्**' कहते हैं। उसे शुद्ध स्वरूप के अनुभव स्वभाववाला कहते हैं। वह राग का अनुभव और सामग्री का अनुभव करनेवाला नहीं है। अज्ञानी भी कहीं सामग्री का अनुभव नहीं करता। परन्तु अपने स्वरूप का चैतन्य ज्ञायकभाव के अभान के कारण अज्ञान से पर को भोगता हूँ, ऐसी मान्यता से, मिथ्यात्व से वह बन्धन करता है। धर्मीजीव को... बहुत सूक्ष्म बात।

वह **शुद्धस्वरूप-अनुभवशीली है जो जीव वह,... 'स्वरसतः'** स्वरस। जिसे आनन्द का रस प्रगट हुआ है। आहाहा! **विभावपरिणमन मिटा है,...** यह नास्ति से बात की। शब्द का अर्थ तो **शुद्धतारूप द्रव्य परिणमा है,...** द्रव्य जो वस्तु है शुद्ध चैतन्य, वह परिणमन पर्याय में शुद्धरूप से हुआ है। उसे ज्ञानवान और उसे धर्मी कहते हैं। **इसलिए जितना राग-द्वेष-मोहपरिणामरूप अनादि का संस्कार, उससे रहित है।** आहाहा! यहाँ तो मिथ्यात्व सम्बन्धी की बात है। ...वस्तु का-द्रव्य का परिणमन है। वह द्रव्य जो शुद्ध है, वैसा जिसका परिणमन है। समझ में आया? वह जितने मिथ्यात्व सम्बन्धी राग-द्वेष-मोहरहित है। यहाँ यह लेना है। मिथ्याश्रद्धा, चैतन्यस्वरूप की दृष्टि छोड़कर राग के रस की प्रीति में पड़ा है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे जो राग है, वह राग सम्यग्दृष्टि को नहीं है। समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें।

स्वभाव जिसका... राग की एकताबुद्धि टली है और शुद्ध चैतन्यद्रव्य का निर्मल परिणमन हुआ है, ऐसा जिसका स्वभाव है। आहाहा! '**ततः एषः कर्ममध्यपतितः अपि सकलकर्मभिः न लिप्यते' तिस कारण से सम्यग्दृष्टि जीव कर्म के उदयजनित अनेक प्रकार की भोगसामग्री उसमें...** कर्म शब्द से यह। कर्म के उदय से प्राप्त सामग्री पैसा,

स्त्री, कुटुम्ब, मकान, वस्त्र, गहने, यह **कर्म के उदयजनित अनेक प्रकार की भोगसामग्री उसमें... 'मध्यपतितः'** मध्य में रहा है। चारों ओर घेराव (हो), कर्म के निमित्त से प्राप्त सामग्री के घेराव में पड़ा है। आहाहा!

पंचेन्द्रिय भोगसामग्री भोगता है,... इस अपेक्षा से बात की है। भोग को कोई भोग नहीं सकता। परन्तु पंचेन्द्रिय के विषय की ओर की जरा आसक्ति है, उसे वह भोगता है। आहाहा! यह भोग पड़ा है तथा **सुख-दुःख को प्राप्त होता है...** आहाहा! पर्याय में ज्ञातापना शुद्धस्वरूप का परिणमन होने से उसे सुख-दुःख के परिणाम थोड़े होते हैं। परन्तु उसका वह ज्ञाता-दृष्टा रहकर उसकी उसे निर्जरा होती है। **तथापि... 'सकलकर्मभिः' आठों प्रकार के हैं जो ज्ञानावरणादि कर्म, उनके द्वारा नहीं बाँधा जाता है।** वहाँ मिथ्यात्व सम्बन्धी जो अज्ञान है, उससे बँधता नहीं, इतना यहाँ सिद्ध करना है। कोई ऐसा ही मान ले कि सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए अब उसे जरा भी बन्ध ही नहीं, आस्रव नहीं, यह बात ऐसी नहीं है। जब तक स्वरूप में चारित्र की रमणता न जमे, आनन्द के नाथ में रमणशील न हो, तब तक उसे राग होता है। परन्तु यहाँ अज्ञान सम्बन्ध राग और मिथ्यात्व नहीं है, इसलिए वह अज्ञानपना नहीं प्राप्त करता। भोग सामग्री में आसक्तिरूप से भोगने पर भी अज्ञानपना नहीं पाता। आहाहा! इसलिए कर्म से बँधता नहीं। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि अन्तरंग चिकनापन नहीं है,... राग की मिठास नहीं। आहाहा! आत्मा के आनन्द की मिठास के समक्ष धर्मी को राग की मिठास नहीं लगती। राग का दुःख लगता है। आहाहा! यह चक्रवर्ती के राज या इन्द्र के इन्द्रासन हों, परन्तु धर्मी को वह दुःख के निमित्त लगते हैं उसमें। आहाहा! अज्ञानी उसे सुख के निमित्त और सुख की सामग्री में सुख मानता है। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि का यह अन्तर है। समझ में आया? पूर्व के कर्म के, उदय के कारण सामग्री आवे, और उसकी ओर जरा सुख-दुःख की कल्पना भी हो, परन्तु अज्ञानपना नहीं है। मैं आनन्द का सागर प्रभु आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसे आनन्द के स्वाद के समक्ष यह राग का स्वाद उसे दुःखरूप लगता है। इसलिए उसे अज्ञान नहीं होता। अज्ञानी को थोड़े में थोड़ा राग आवे, परन्तु उसकी उसे मिठास वर्तती है। क्योंकि दृष्टि राग पर है। चैतन्यद्रव्य है, उसकी ओर का उसे

झुकाव नहीं है। आहाहा! चाहे तो राग की मन्दता हो, परन्तु अज्ञानी की दृष्टि में, पर्यायबुद्धि में रागबुद्धि है। इसलिए अज्ञानी मिथ्यादृष्टि भोग की सामग्री से बँधता नहीं, परन्तु भोग की ओर के झुकाववाला मेरा मिथ्यात्वभाव, उससे बँधता है। मेरा माना है न! आहाहा! बहुत अन्तर।

अन्तरंग चिकनापन नहीं है,... राग की एकताबुद्धि नहीं। स्वभाव की एकताबुद्धि छूटती नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग। **इससे बन्ध नहीं होता है, निर्जरा होती है।** कहते हैं कि यह जरा आसक्ति के रागादि हों, पर्याय में सुख-दुःख का वेदन जरा आवे, वह भी निर्जरित हो जाता है। समझ में आया? अज्ञान और मिथ्यात्व की अपेक्षा से यहाँ बात की है। कोई ऐसा ही मान ले कि सम्यग्दृष्टि हुआ, उसे अब फिर रागादि हों, भोग के राग और राग से जरा भी बन्धन नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? मिथ्यात्व का बन्धन नहीं है और वही मुख्य संसार का कारण है, उसका यहाँ अभाव है। इसलिए उसका मिथ्यात्व सम्बन्धी बन्धन और अज्ञान सम्बन्धी होता है, वह नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह १४९। (कलश पूरा हुआ)।

कलश-१५०

(शार्दूलविक्रीडित)

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथञ्चनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्सन्ततं
ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव।।१८-१५०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — यहाँ कोई प्रश्न करता है कि सम्यग्दृष्टि जीव, परिणाम से शुद्ध है तथापि पंचेन्द्रिय विषय, भोगता है सो विषय को भोगते हुए, कर्म का बन्ध है कि नहीं है? समाधान इस प्रकार है कि कर्म का बन्ध नहीं है। 'ज्ञानिन् भुंक्ष्य' [ज्ञानिन्] भो सम्यग्दृष्टि जीव! [भुंक्ष्व] कर्म के उदय से प्राप्त हुई है जो भोगसामग्री, उसको भोगते हो तो भोगो, 'तथापि तव बन्धः नास्ति' [तथापि] तो भी [तव] तेरे [बन्धः] ज्ञानावरणादि कर्म का आगमन [नास्ति] नहीं है। कैसा बन्ध नहीं है? 'परापराधजनितः' [पर] भोगसामग्री, उसका [अपराध] भोगने में आना, उससे [जनितः] उत्पन्न हुआ। भावार्थ इस प्रकार है — सम्यग्दृष्टि जीव को विषयसामग्री भोगते हुए, बन्ध नहीं है; निर्जरा है। कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव, सर्वथा अवश्यकर परिणामों से शुद्ध है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। परिणामों की शुद्धता रहते हुए, बाह्य भोगसामग्री के द्वारा, बन्ध किया नहीं जाता। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। यहाँ कोई आशंका करता है कि सम्यग्दृष्टि जीव, भोग भोगता है सो भोगते हुए रागरूप अशुद्धपरिणाम होता होगा, सो उस रागपरिणाम के द्वारा, बन्ध होता होगा, सो ऐसा तो नहीं। कारण कि वस्तु का स्वरूप ऐसा है, जो शुद्धज्ञान होनेपर, भोगसामग्री को भोगते हुए, सामग्री के द्वारा अशुद्धरूप किया नहीं जाता। कितनी ही भोगसामग्री भोगो तथापि शुद्धज्ञान अपने स्वरूप — शुद्धज्ञानस्वरूप रहता है। वस्तु का ऐसा सहज है। ऐसा कहते हैं — 'ज्ञानं कदाचनापि अज्ञानं न भवेत्' [ज्ञान] शुद्धस्वभावरूप परिणमा है आत्मद्रव्य, वह [कदाचन अपि] अनेक प्रकार भोगसामग्री को भोगता हुआ, अतीत, अनागत, वर्तमान काल में, [अज्ञान] विभाव अशुद्धरागादिरूप [न भवेत्] नहीं होता। कैसा है ज्ञान? 'सन्ततं भवत्'

शाश्वत् शुद्धत्वरूप जीवद्रव्य परिणमा है; मायाजाल के समान, क्षण विनश्वर नहीं है। आगे दृष्टान्त के द्वारा वस्तु का स्वरूप साधते हैं — 'हि यस्य वशतः यः यादृक् स्वभावः तस्य तादृक् इह अस्ति' [हि] जिस कारण से [यस्य] जिस किसी वस्तु का [यः यादृक् स्वभावः] जो स्वभाव, जैसा स्वभाव है, वह [वशतः] अनादि-निधन है, [तस्य] उस वस्तु का [तादृक् इह अस्ति] वैसा ही है। जिस प्रकार शंख का श्वेत स्वभाव है, श्वेत प्रगट है; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का शुद्धपरिणाम होता हुआ शुद्ध है। 'एषः परैः कथञ्चन अपि अन्यादृशः कर्तुं न शक्यते' [एषः] वस्तु का स्वभाव, [परैः] अन्य वस्तु के किये, [कथञ्चन अपि] किसी प्रकार [अन्यादृशः] दूसरेरूप [कर्तुं] करने को [न शक्यते] समर्थ नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि स्वभाव से श्वेत शंख है सो शंख, काली मिट्टी खाता है, पीली मिट्टी खाता है, नाना वर्ण (की) मिट्टी खाता है। ऐसी मिट्टी खाता हुआ शंख, उस मिट्टी के रंग का नहीं होता है; अपने श्वेतरूप रहता है। वस्तु का ऐसा ही सहज है। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव, स्वभाव से राग-द्वेष-मोह से रहित, शुद्धपरिणामरूप है, वह जीव, नाना प्रकार भोगसामग्री भोगता है तथापि अपने शुद्धपरिणामरूप परिणमता है। सामग्री के रहते हुए, अशुद्धरूप परिणमाया जाता है—ऐसा वस्तु का स्वभाव है; इसलिए सम्यग्दृष्टि के कर्म का बन्ध नहीं है; निर्जरा है।।१८-१५०।।

कलश - १५० पर प्रवचन

१५०।

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथञ्चनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्सन्ततं
ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव।।१८-१५०।।

है यहाँ? वजन यहाँ है। '**अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं**' बस इतनी बात। वजन यहाँ देना है।

खण्डान्वयसहित अर्थ—यहाँ कोई प्रश्न करता है कि सम्यग्दृष्टि जीव परिणाम

से शुद्ध है, तथापि पंचेन्द्रिय विषय भोगता है, सो विषय को भोगते हुए कर्म का बन्ध है कि नहीं ? यह प्रश्न है।

समाधान इस प्रकार है कि कर्म का बन्ध नहीं है। किस अपेक्षा से ? ज्ञान का अज्ञान नहीं होता, उसे विषयभोग में राग दुःखरूप लगता है, इसलिए उसे ज्ञान का अज्ञान नहीं होता। इसलिए अज्ञान का उसे बन्ध है नहीं। आहाहा! '**ज्ञानिन् भुंक्ष्व**' आहाहा! **भो सम्यग्दृष्टि जीव! कर्म के उदय से प्राप्त हुई है जो भोगसामग्री उसको भोगते हो तो भोगो...** ऐसा मुनि कहते हैं ? भाषा तो ऐसी है। इसका अर्थ परद्रव्यजनित अपराध तुझे नहीं है। पर की क्रिया हो, इससे तुझे अपराध हो, ऐसा नहीं है। अपराध तो यह क्रिया मेरी है और राग में मिठास है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, अज्ञानभाव, उस भोग की सामग्री में प्रीति कराकर बन्धन कराता है। आहाहा! शर्तें इतनी अधिक हैं। आहाहा!

भोगते हो तो भोगो... है न ? पाठ है, हों! '**ज्ञानिन् भुंक्ष्व**' है न अन्दर चौथा पद ? भोग, इसका अर्थ यह कहना चाहते हैं कि परद्रव्य की किसी पर्याय से तुझे नुकसान हो, ऐसा नहीं है। नुकसान तो तू परद्रव्य को मेरा (है, ऐसा) माने और राग को मेरा (है ऐसा) माने—ऐसे भाव से तुझे नुकसान है। ऐसा सिद्ध करने के लिये परद्रव्य को भोग अर्थात् कि परद्रव्य को तो अज्ञानी भी भोग नहीं सकता। परन्तु परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है तो हो राग। ऐसा कहते हैं। परन्तु अज्ञानरूप से नहीं। राग की मिठास नहीं, इसलिए तुझे बन्धन नहीं है। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! यहाँ खींचकर फिर वहाँ ऐसा ले जाये कि सम्यग्दृष्टि को जरा भी राग नहीं, बन्ध ही नहीं। ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। किस अपेक्षा से ? बापू! आहाहा! ज्ञानी मुनि होते हैं, तो भी जिन्हें तीन कषाय का अभाव होकर प्रचुर स्वआनन्द का प्रचुर वेदन जिन्हें है, ऐसे मुनि को भी जो पंचमहाव्रत का विकल्प उठता है, वह संसार है, दुःख है, बन्धन का कारण है। आहाहा!

एक ओर यहाँ कहे कि मिथ्यादृष्टि को पंच सामग्री है जड़ की, पर की। भोग। अर्थात् कि पर को तो तू स्पर्शता ही नहीं। वह तो अज्ञानी मानता है कि मैं पर को स्पर्श कर भोगता हूँ। वह तो मान्यता में विपरीतता है। ज्ञानी को वह पर को स्पर्शता ही नहीं,

छूता ही नहीं। और जरा राग होता है, उसका वह स्वामी नहीं। आहाहा! स्वामी चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्द का नाथ, उसका स्वामी। जिसका खजाना घर में मिल गया बड़ा। अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति का सागर प्रभु ऐसा खजाना जिसे मिला दृष्टि में, वह राग का स्वामी कैसे होगा? समझ में आया? आहाहा! इस अपेक्षा से बात है। बाकी सम्यग्दृष्टि क्या, मुनि हो तो भी राग का भाग है, वह संसार है उसे। खींचतान... खींचतान... आहाहा! एक कहे शुभोपयोग मोक्ष का मार्ग है। उसका बड़ा विवाद चेलेंज अभी चलता है। पण्डितों-पण्डितों में। दूसरा कहे, शुभोपयोग मोक्ष का मार्ग नहीं। बन्ध का मार्ग है। अब यह चर्चा अभी ४३ वर्ष से उठी। आहाहा! भाई! वह तो शुभोपयोग तो ज्ञानी को भी बन्ध का ही कारण है।

यहाँ जो कहते हैं कि उसे बन्ध नहीं है, वह तो शुभ उपयोग मेरा है और उससे मुझे लाभ है, यह दृष्टि गयी है। मेरा तो चैतन्यस्वरूप, ज्ञानानन्द, सहजात्मस्वरूप जो आनन्द का भरचक समुद्र है। आहाहा! जो ज्ञान का अमाप अमाप शक्ति का सागर है। जो प्रभुता की शक्ति से भरपूर पूर्ण ईश्वर है। आहाहा! उसकी जिसे सम्यग्दृष्टि हुई है, उसे पर के भोगने के प्रति कुछ उसकी आसक्ति हो, परन्तु पर के कारण से आसक्ति नहीं। वह निर्बलता के कारण आसक्ति है। और उस आसक्ति का भी स्वामी नहीं होता। इस अपेक्षा से यहाँ सम्यग्दृष्टि को भोग भोगने पर भी बन्ध नहीं है, ऐसा कहा है। उसमें से कोई फेरफार करे तो बड़ा फेरफार हो जाये, ऐसा है। समझ में आया?

भोग... है न? **भोग...** ऐसा शब्द है। '**भुंक्ष्व**' है न? चौथे पद में। '**ज्ञानिन् भुंक्ष्व**' इसका अर्थ '**परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव**' देखो! चौथा पद है न? परपदार्थ के अपराध के कारण से देह की क्रिया हो, शरीर की हो, वाणी की हो, उसके कारण तुझे बन्ध है—ऐसा नहीं है। यह शंका टालने के लिये उसे निःशंक दृष्टि में रहना, उससे मुझे बन्ध होगा, यह छोड़ दे। उस समकिती को वह दृष्टि होती नहीं। आहाहा! क्योंकि जिसे द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि है, परमात्मा आनन्द का नाथ भगवान, अनन्त-अनन्त अमाप शक्ति, अमाप गुण का पिण्ड है। आहाहा! जिसकी शक्ति कहो या गुण कहो, वह अमाप है। अमाप है... आहाहा! प्रमाणज्ञान में आवे, परन्तु अमाप है। अमाप का माप आता है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा यह?

वस्तु है, उसमें इतनी शक्तियाँ हैं कि जिनका अन्त नहीं। आहाहा! जैसे आकाश का कहीं अन्त नहीं। क्या कहते हैं यह? कोई नास्तिक हो, परन्तु इतना तो विचारेगा या नहीं, यह ऐसे का ऐसे क्षेत्र जाता है चारों ओर। बाद में क्या? बाद में क्या? बाद में क्या? बाद में क्या? बाद में क्या? यह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त वर्ग से वर्ग करो, वर्ग करो। अर्थात्? अनन्त को अनन्त से एक बार गुणा करो। इसी प्रकार जो गुणाकार हुआ उसे वापस दूसरी बार गुणा करो अनन्त को अनन्त बार, इसी प्रकार अनन्त बार उसे अनन्तगुणा, ऐसा जो वर्ग, उसकी संख्या आवे तो भी वहाँ पार आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसकी अपेक्षा भी अनन्तगुणा तो यहाँ गुण (आत्मा में भरे हैं)। भाई! यह बात भाषा में... भाषा भले आवे, परन्तु यह वस्तु क्या है यह?

जिसके गुण की संख्या का माप नहीं। माप नहीं अर्थात्? अमाप है। तथापि ज्ञान में माप आवे, वह वस्तु ऐसी नहीं यहाँ। अनन्त को अनन्तरूप से ज्ञान जाने। ऐसी अमाप शक्ति को अमापशक्तिरूप से ज्ञान जाने। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग। क्षेत्र से तो यह शरीरप्रमाण ही है। परन्तु उसके भाव से, उसकी शक्ति की संख्या से संख्यातीत। स्वभाव की शक्ति संख्यातीत अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे स्वभाव का जिसे अनुभव हुआ... आहाहा! उसे परपदार्थ को भोगने की वृत्ति नहीं होती। आहाहा! उसे आनन्द का भोगवटा अनन्त अमाप ऐसे परमात्मस्वरूप का जिसने माप लिया। आहाहा! अमाप का माप लिया। पर्याय में तो प्रमाण में तो उसका ज्ञान आ जाता है न? आहाहा! गहरा... गहरा... अनन्त गुण का समुद्र भगवान। अमाप गुण का (भण्डार) भगवान का जहाँ माप सम्यग्दर्शन-ज्ञान में आ गया। आहाहा! उसे अब जगत के विषय रागादि और परसामग्री, राग दुःखरूप लगता है। परसामग्री तो परज्ञेयरूप से ज्ञात होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : परसामग्री, वह दुःखरूप लगती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःखरूप नहीं, राग दुःखरूप लगता है, ऐसा कहा। ऐसा कहा कि राग दुःखरूप लगता है और सामग्री ज्ञेयरूप लगती है, ऐसा कहा। भाषा ऐसी आयी

है। राग दुःखरूप लगता है, परवस्तु ज्ञेयरूप ज्ञात होती है। मेरे रूप से नहीं। है, ऐसे परज्ञेयरूप से जानता है। आहाहा! अज्ञानी को राग का रस है, वह दुःख का रस है। और परसामग्री को भोग नहीं सकता, परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ है तो मानो उसको भोगता हूँ, ऐसी दृष्टि में विपर्यासपना है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत श्रुतज्ञान को समुद्र, आप कहते हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह श्रुतज्ञान पर्याय में कहा न? श्रुतज्ञान की पर्याय में माप आया परन्तु अमाप का माप आया। वहाँ माप ही है, उसमें ज्ञान नहीं मापा। लोग नहीं कहते कि अनन्त-अनन्त है, उसका ज्ञान आया तो वहाँ अन्त आ गया, ऐसा नहीं। अनन्त-अनन्तरूप से ज्ञान में आया है। ऐसा यह अनन्त अमाप आत्मा के गुण, उसे ज्ञान में माप अनन्त अमाप है, ऐसा आया है। लॉजिक से तो बात चलती है। आहाहा! अरे! इसने कब अपने घर में (देखा है)? इसका घर कितना बड़ा है, इसकी खबर नहीं होती। ऐसे प्रभु के बड़े के घर में जो प्रविष्ट हुआ... आहाहा! उसे अपने भगवान की मिठास के समक्ष, ज्ञानी को इन्द्राणी के सुख में भी राग आवे, वह दुःख लगता है। जैसे काला नाग देखे और त्रास हो, वैसा उसे त्रास है। आहाहा!

मुमुक्षु : काले नाग से तो भाग जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस काले नाग को भी छूने देता नहीं न यहाँ तो। राग को काला नाग देखता है परन्तु उसे छूता नहीं-स्पर्श नहीं करता। स्पर्श तो चैतन्य को करता है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग जिनेन्द्र सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जानकर, देखकर, अनुभव करके कहा है। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं नहीं है, हों! आहाहा! ऐसी चीज़ अन्यत्र नहीं है, ऐसा भगवान ने कहा। ऐसी चीज़ अन्यत्र नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **भोगो, तो भी तेरे बन्ध अर्थात् ज्ञानावरणादिकर्म का आगमन नहीं है।** किस अपेक्षा से? अरे! धर्मी, सन्त भोग को भोगने का कहे? पाठ तो यहाँ ऐसा है। भोग, ऐसा कहा। इसका अर्थ कि पर के जड़ की पर्याय से तुझे नुकसान हो, ऐसी शंका मिटायी है। वह तेरी पर्याय में अपराध होता है, उससे बन्ध है। उस सामग्री का

बन्ध नहीं। बहुत सामग्री हो तो उसे बहुत बन्ध हो और अल्प सामग्री हो तो अल्प बन्ध हो—ऐसा है ? उस सामग्री के प्रति एकताबुद्धि जो है और स्वभाव के प्रति विरक्तबुद्धि है, उसका उसे बन्ध है। धर्मी स्वभाव के प्रति रक्त है और राग से विरक्त है। आहाहा! भले विरतिपना जो मुनि है, ऐसा न हो, तथापि धर्मी विद्यमान उस राग से विरक्त है। विरक्त ही है, राग से पृथक् पड़ा है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! इसलिए यह सब विवाद उठते हैं न ?

कल तक ऐसा डालते हैं, देखो! सम्यग्ज्ञानदीपिका में ऐसा कहा है, वे सोनगढ़वाले कहते हैं। सम्यग्ज्ञानदीपिका तो क्षुल्लक ब्रह्मचारी की कही हुई है। कल तक आया था उसमें। आया है न चेतनजी ? आहाहा! प्रभु! क्या करता है तू यह ? सम्यग्ज्ञानदीपिका में धर्मदासक्षुल्लक... यहाँ तो दिगम्बर के शास्त्र प्रकाशित होते हैं। इसलिए पण्डितों की, आचार्यों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। उसमें यह क्षुल्लक ब्रह्मचारी की भी प्रकाशित की है। इससे वह अभिप्राय हमारा है... और वह भी उनका अभिप्राय खोटा नहीं। आहाहा! वह तो इतना कहना चाहते हैं कि जिसके सिर पर पति हो और कोई भूल हो जाये पर से तो वह बाहर में नहीं आता, दुनिया नहीं देखती।

इसी प्रकार धर्मीजीव आत्मा के प्रेम के रस में पड़ा है, उसे कदाचित् कोई रागादि का—अशुभादि का भाव आया तो वह पति सिर पर ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु पति है, इसलिए वह दोष बाहर नहीं आता। लोग जान सकें, इस प्रकार से नहीं आता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बाकी दोष तो दोष ही है। आहाहा! यह कल अभी आया है। पहले बाहर प्रसिद्ध कर दी है बात कि यह सम्यग्ज्ञानदीपिका का लेख है। सोनगढ़ का नहीं। यहाँ सोनगढ़ में तो दिगम्बर शास्त्रों को प्रसिद्ध करते हैं। यह पण्डित का प्रसिद्ध किया सम्यग्ज्ञानदीपिका यह धर्मदासक्षुल्लक का है। उसमें यह लेख है कि सोनगढ़वाले ऐसा मानते हैं, ऐसा करके....

मुमुक्षु : उन्हें आलोचना करनी है, इसलिए ऐसा ही कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहीं आलोचना दूसरी करे नहीं। शुभयोग से धर्म मानते नहीं। क्रमबद्ध मानने में पुरुषार्थ रहता नहीं और क्रमबद्ध मानते हैं। ऐसा करे तो अभी

(ठीक है)। यह तो अत्यन्त झूठा है। आहाहा! निमित्त को मानते हैं, तथापि निमित्त से होता है, ऐसा नहीं मानते, ऐसा कहे तो भी बराबर है। उसकी दृष्टि से। परन्तु ऐसा अन्धाधुन्ध झूठ। सम्यग्ज्ञानदीपिका का लेख सोनगढ़ ने प्रकाशित किया, इसलिए वे लोग परस्त्री के भोग में पाप नहीं मानते। अरर्र! प्रभु! तू क्या कहते है? भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव है, जिसे सहजानन्दस्वरूप का भान हो गया है और जिसे आनन्द की लहर अन्दर से उठती है। आहाहा! उस जीव को कहते हैं कि परद्रव्य के कारण से तुझे बन्ध होता है... परद्रव्य के कारण से बन्ध हो, ऐसा होगा कभी?

मुमुक्षु : अपने कारण से।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने कारण से है तो वह तुझे नहीं। मिथ्यात्व जो है कि पर में सुख है, पर से धर्म है, वह बात तो तुझे है नहीं। इससे तुझे मिथ्यात्व सम्बन्धी बन्ध हो वह पर सामग्री से नहीं होता, वह तो मिथ्यात्व के कारण होता है, वह तुझे नहीं है। आहाहा! इसलिए परद्रव्य को भोग अर्थात्? उसकी ओर का लक्ष्य जाता हो तो हो, परन्तु उससे नुकसान होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : भोगता, इसका लम्बा अर्थ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बा... दूसरा क्या हो? यहाँ तो '**भुंक्ष्व**' कहा। सन्त भोग भोगने का कहेंगे? महादिगम्बर सन्त प्रचुर आत्म संवेदन में स्थित हैं। जिन्हें भावलिंग अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन है, वे पर को भोगने का कहेंगे? पाठ तो यह है। परन्तु उसका आशय क्या? भाई! तू सम्यग्दृष्टि है और तुझे आत्मा की शान्ति का भान हुआ है। तुझे शान्ति कहीं दिखती नहीं तो परद्रव्य के भोग में तुझे पाप हो, ऐसा नहीं है। तेरे मिथ्यात्वभाव से तुझे बन्ध होता है, वह मिथ्यात्वभाव तो है नहीं। राग की मिठास नहीं, परद्रव्य मेरे हैं, यह दृष्टि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? अर्थात् कि स्वद्रव्य मेरा है और आत्मा में मिठास है, यह दृष्टि हुई है। इस कारण से परद्रव्य के भोग में तुझे बन्ध है, यह बात नहीं है। अज्ञानी को भी कहीं परद्रव्य की क्रिया से बन्ध है, ऐसा नहीं है। अज्ञानी को अज्ञान के भाव से बन्ध है। समझ में आया? यह देह की शारीरिक क्रिया

हो, वह कहीं बन्ध का कारण नहीं। आहाहा! विषय भोग में शरीर की क्रिया हो, वह कहीं बन्ध का कारण नहीं। अन्दर में राग होता है और मुझे ठीक पड़ता है, वह मिथ्यात्व है, वह मिथ्यात्व बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, यह जरा विचारे नहीं, मिलावे नहीं और एकदम (विरोध करे)। आहाहा!

यहाँ पाठ तो यह आया। '**ज्ञानिन् भुंक्ष्व**' भोगने का कहे मुनि? इसका अर्थ कि परद्रव्य की तो सामग्री तेरी नहीं, ऐसा तू मानता है और इसीलिए उसकी ओर के झुकाव का राग होता है, उसकी मिठास तुझे नहीं है। सेठ! आहाहा! इसलिए भोग अर्थात् लोग देखते हैं कि यह भोगता है, यह छूता है, इस अपेक्षा से भोग—ऐसा कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्दर की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर की बात है, भाई! आहाहा!

'**परापराधजनितः**' देखो! शब्द आया। '**पर**' अर्थात् **भोगसामग्री, उसका भोगने में आना, उससे उत्पन्न हुआ...** अपराध, वह तुझे नहीं है। आहाहा! है? **सम्यग्दृष्टि जीव को विषयसामग्री भोगते हुए बन्ध नहीं है, निर्जरा है। कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा अवश्यकर परिणामों से शुद्ध है।** सम्यग्दर्शन के और सम्यग्ज्ञान के और स्वरूपाचरण के शुद्ध परिणाम से सर्वथा शुद्ध है। **जीव सर्वथा अवश्यकर परिणामों से शुद्ध है।** इसका अर्थ भी सर्वथा शुद्ध है, अर्थात् आसक्ति का भाव हुआ, वह भी शुद्ध है, ऐसा नहीं। उसे दृष्टि और सम्यग्ज्ञान के शुद्ध परिणाम हैं, वे सर्वथा शुद्ध हैं। समझ में आया? उसमें से ऐसा ही ले लेवे कि सम्यग्दृष्टि चाहे जैसे भोग का राग करे और वह शुद्ध है, ऐसी यहाँ बात नहीं है। उसे दृष्टि के परिणाम और आनन्द का वेदन वह सर्वथा शुद्ध है। समझ में आया? आहाहा!

इन अमाप शक्तियों का भी जिसने सम्यग्ज्ञान में माप ले लिया। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय की महत्ता कितनी! अनन्त-अनन्त अमाप शक्ति, आकाश के अमाप के प्रदेश से भी। क्षेत्र भले छोटा, परन्तु उसकी शक्ति की संख्या अमाप... आहाहा! उसकी जिसने श्रद्धा में उसका माप ले लिया। प्रतीति, वह वस्तु नहीं आयी श्रद्धा में, परन्तु जितनी जैसी वस्तु है, उतनी प्रतीति अन्दर में हो गयी। आहाहा! अरेरे! ऐसी चीज़!

मनुष्यपने में और जैन सम्प्रदाय में जन्मा, वह यह वस्तु न समझे, प्रभु! कब (करेगा)? बाहर के झगड़े... झगड़े पास में रख। आहाहा!

जिसने अमाप शक्ति के तल देखे। आहाहा! क्या है यह? उस चीज़ की शक्तियों की संख्या अमाप, इतनी शक्तियाँ और गुण हैं कि जो अमाप है। आहाहा! क्षेत्र भले असंख्य प्रदेशी है और एक परमाणु लो तो भी क्या? उतने ही अमाप गुण उसमें हैं। यहाँ वस्तु का क्षेत्र देखने का नहीं। उसकी शक्तियाँ कितनी हैं? ऐसी जो अमाप शक्ति का जिसने श्रद्धा में माप ले लिया। आहाहा!

मुमुक्षु : अमाप का और माप?

पूज्य गुरुदेवश्री : माप हो गया। अनन्त का अनन्तरूप से ज्ञान हो गया। अमाप का अमापपने ज्ञान हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा मिलता नहीं कहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है नहीं। सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है। और यह जँच जाये ऐसा है। आहाहा! यह करणानुयोग का नहीं, ऐई! देवानुप्रिया! यह करणानुयोग की बात नहीं, यह द्रव्यानुयोग की बात है। तब कहा था न कि करणानुयोग की बात है। मैंने वह संख्या और वह सब कहा है न? कहे, यह तो करणानुयोग का है। ऐई! देवानुप्रिया! आहाहा! बापू! क्या कहें?

मुमुक्षु : करणानुयोग में से सम्यग्ज्ञान निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : करणानुयोग कर्म की बात है। वह अलग वस्तु है। वह स्व के ज्ञान बिना कर्म का ज्ञान यथार्थ नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? यह तो धीर का काम है, भाई! यह कहीं... आहाहा! बड़े भाषण करना और बड़े यह करना, (ऐसा नहीं)। उसमें यह वस्तु ऐसी है, बापू! चीज़ कोई दूसरी है, भाई! आहाहा!

भगवान तीर्थंकर परमेश्वर ने जो आत्मा देखा, परमाणु देखे, अरे! द्रव्य देखे। आहाहा! एक (-एक) कालाणु देखा भगवान ने। तो कहते हैं कि कालाणु में तीन काल की पर्याय से एक कालाणु में अनन्त गुण हैं। परन्तु तीन काल की अपेक्षा एक कालाणु में अनन्त गुण? अरे! तीन काल की पर्याय से एक कालाणु की अनन्तगुण की

एक समय की अनन्त पर्याय तीन काल के समय से अनन्तगुणी हैं। आहाहा! यह सब हमको स्वज्ञान होने पर सबका पर का ज्ञान पर्याय में आ जाता है। स्व का ज्ञान होने से पर का ज्ञान आ जाता है। ऐसा स्वभाव है। आहाहा! भाई! इसे स्वयं अपनी चीज़ का- शक्तियों का अमापपना क्या है, यह इसके ज्ञान में आया नहीं। आहाहा! उस ज्ञान में जिसका—अमाप का माप हो गया... आहाहा! अब उसका रस राग और पर से उड़ गया, कहते हैं। समझ में आया?

उसे यहाँ कहा कि **विषयसामग्री भोगते हुए बन्ध नहीं है, निर्जरा है। कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा अवश्यकर परिणामों से शुद्ध है।** किस अपेक्षा से? सब परिणाम से शुद्ध है, ऐसा नहीं। दृष्टि और सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा से, स्वरूपाचरण की अपेक्षा से शुद्ध है।

मुमुक्षु : उसकी भूमिका प्रमाण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसकी भूमिका प्रमाण जो परिणाम है, वे सर्वथा शुद्ध हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि के भोग और राग और युद्ध में खड़ा हो क्रोध में, तो भी शुद्ध है, ऐसा यहाँ नहीं है। उसे वह दृष्टि-ज्ञान और स्वरूपाचरण है, वह सर्वथा शुद्ध है। आहाहा! ऐसा है। है?

सर्वथा अवश्य परिणाम... दो शब्द है। **सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा अवश्यकर परिणामों से शुद्ध है।** ऐसा कहते हैं वापस। वापस लिया अवश्य। वहाँ ऐसा ही लगा दे कि सम्यग्दृष्टि को आसक्ति के परिणाम आवे, भोग के आवे, वे सब शुद्ध हैं। ऐसा नहीं है। जो सम्यग्दर्शन में चैतन्य भगवान जहाँ प्रतीति में आया और उसका ज्ञान हुआ, वह श्रद्धा, ज्ञान और उसकी रमणता, वह सर्वथा शुद्ध है। उसमें किंचित् मैल का भाव है नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा... अरे! इसने उसे सुना नहीं। इसकी चीज़ क्या है, उसकी इसे खबर नहीं। और जहाँ खबर पड़ी... आहाहा! वह ज्ञान अब शुद्ध है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

इसमें से ऐसा निकाले कि सम्यग्दृष्टि को तो चाहे जैसे परिणाम हों परन्तु उसे दुःख भी नहीं, मलिनता भी नहीं, सब शुद्ध है। ऐसा नहीं है। यहाँ तो मात्र द्रव्य का भान

हुआ और द्रव्य की प्रतीति (हुई), अमाप का माप आ गया, ऐसे जो परिणाम, वे शुद्ध हैं। वे परिणाम, वे सर्वथा शुद्ध हैं। आहाहा! अरेरे! निवृत्ति कहाँ? फुरसत कहाँ? मूल चीज़ देखने को, जानने को... आहाहा! एक बार कौतुहल तो कर। नहीं आता? '**कौतूहली**' '**कौतूहलीसन्**' आता है न? आहाहा! प्रभु! तेरी चीज़ में कौतुहल तो कर एकबार कि क्या है परन्तु यह? इतनी-इतनी महिमा जिसकी सर्वज्ञ करे। आहाहा! वह है क्या अन्दर? कौतुहल तो कर। परवस्तु की विस्मयता देखकर तुझे कौतुहलता आती है। जरा शरीर की सुन्दरता देखे, पैसा देखे, मकान-बँगले देखे, ऐसे पाँच-पच्चीस लाख के फर्नीचरवाले। क्या कहा यह? फर्नीचरवाला मकान। वहाँ ऐसा हो जाता है। आहाहा! क्या है प्रभु तुझे? वहाँ तुझे कौतुहलता आती है। तो यह अन्तर वस्तु भगवान है, वहाँ एक बार कौतुहल तो कर। आहाहा! कौतुहल शब्द से (आशय) विस्मयता तो कर, महिमा तो कर कि यह क्या चीज़ है यह वह! भाषा से नहीं, शास्त्र से नहीं; तेरे भाव से अन्दर। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : तेरा अजायब घर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अजायबी घर है। आता है न, बहिन में (बहिनश्री के वचनामृत) आता है। यह अजायब घर है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानावरणी का क्षयोपशम न हो तो क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम का यहाँ काम नहीं। यहाँ तो आत्मा को जानने का काम है, बस। इतना क्षयोपशम होता ही है। संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणी को इतना तो क्षयोपशम होता ही है। स्व को जान सके इतना क्षयोपशम तो होता ही है।

मुमुक्षु : चारों ही गति में संज्ञी को?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों ही गति में संज्ञी को। सातवें नरक का नारकी। प्रभु! यह तो सुने तो खबर पड़े। यह ३३ सागर की स्थिति में मिथ्यादृष्टि होकर गया। उसकी एक समय की पीड़ा, बापू! वह सहे। आहाहा! यह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जैसे वहाँ नीचे पड़े हैं। आहा! बड़े सेठिया, अरबोंपति पड़े हैं। मरकर नरक में (गये हैं)। बड़ा मिल और उसमें पानी के धोध और उसमें मछलियाँ मरे, बिल्ली मरे, कौवे मरे। आहाहा! यह

बड़े-बड़े मिल होते हैं न ? गर्म-गर्म पानी के हौज भर रखे हों। सर्प गिरे, कौवे गिरें, वे सब मरें। आहाहा! यह वहाँ की पीड़ा, बापू! नरक में... आहाहा! ऐसी पीड़ा में भी आत्मा की कौतुहलता होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। आहाहा! यहाँ तो कहे अमुक कुछ सुविधा थोड़ी हो, अमुक हो—अमुक हो फिर मैं कुछ करूँगा। लड़के कुछ ठिकाने लगे, लड़कियाँ भी कुछ विवाह हो और सही ठिकाने घर के प्रमाण में वापस घर मिले। साधारण में जाये लोग कहे, उसमें तुमने कैसे दी ? आहाहा! इसी और इसी में रुकने से बेचारा रह गया अन्दर में से। यह यहाँ कहते हैं।

सर्वथा अवश्यकर परिणामों से शुद्ध है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूपाचरण और आनन्द का वहाँ भाव आया, वह सर्वथा शुद्ध है। भले अंश है। समझ में आया ? आहाहा! इसमें से ले लेवे कितने ही खेंचते हैं, देखो! सम्यग्दृष्टि को बिल्कुल दुःख और राग होता नहीं। आहाहा! उसमें तो बन्ध नहीं कहा है। उसमें देखो! अवश्य परिणाम सब शुद्ध ही है, ऐसा कहा। देखो! इसमें। यहाँ तो निर्जरा की विशेषता है और बन्ध अल्प है। उस अल्प को गौण करके अशुद्धता टली है, उसे मुख्य रखकर निर्जरा कही है। आहाहा! उसमें उसका कोई न्याय बदले तो पूरी वस्तु बदल जाये ऐसी है, बापू! आहाहा!

परिणामों की शुद्धता रहते हुए... किस प्रकार से ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण और आनन्द के परिणाम की शुद्धता के समक्ष.... आहाहा! भाई! **भोगसामग्री के द्वारा बन्ध किया नहीं जाता।** आहाहा! **ऐसा वस्तु का स्वरूप है। यहाँ कोई आशंका करता है कि सम्यग्दृष्टि जीव भोग भोगता है, सो भोग भोगते हुए रागरूप अशुद्ध परिणाम होता होगा...** देखो! यह भी नहीं। (जिस) परिणाम में शुद्धता है, उस परिणाम में उसे नहीं। आहाहा! **अशुद्ध परिणाम होता होगा सो उस रागपरिणाम के द्वारा बन्ध होता होगा, सो ऐसा तो नहीं।** किस अपेक्षा से ? आहाहा! अरे! गजब बापू! शुद्धता बढ़ती है, अशुद्धता गलती है, इस अपेक्षा से उसे बन्ध नहीं, ऐसा कहा गया है। अशुद्धता नहीं, ऐसा कहा गया है। आहाहा!

वस्तु का स्वरूप ऐसा है कि शुद्ध ज्ञान होने पर, देखा! **भोगसामग्री को भोगते**

हुए, सामग्री के द्वारा अशुद्धरूप किया नहीं जाता। देखा! सामग्री द्वारा, परद्रव्य द्वारा अशुद्धता नहीं होती। और अपनी दृष्टि में तो शुद्धता वर्तती है, दृष्टि की अपेक्षा से। इस अपेक्षा से यहाँ बात ली है। आहाहा! **भोगसामग्री को भोगते हुए, सामग्री के द्वारा अशुद्धरूप किया नहीं जाता। कितनी ही भोगसामग्री भोगो तथापि शुद्धज्ञान अपने स्वरूप-शुद्ध ज्ञानस्वरूप रहता है।** लो! **वस्तु का ऐसा सहज है।** यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान और परिणाम जो शुद्ध प्रगट हुए, अनन्त गुण की व्यक्तता के अंशों से जो शुद्धता प्रगट हुई, वह शुद्धता तो शुद्धता ही है। आहाहा! उससे उसे बन्ध नहीं है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १३, बुधवार, दिनांक-२३-११-१९७७, कलश-१५०, प्रवचन-१५७

कलशटीका, कलश-१४९, पश्चात् १५०। यहाँ तक आया है। **वस्तु का ऐसा सहज है।** क्या कहते हैं? '**ज्ञानं कदाचनापि अज्ञानं न भवेत्**' आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य अमाप शक्ति का प्रभु सागर, उसका अन्तर में अनुभव हुआ, अर्थात् कि वस्तु का ज्ञान हुआ, और वस्तु का वेदन पर्याय में आया। उसकी बात है अभी यहाँ। वह राग से और पर से भिन्न पड़कर... अरे! यह चौरासी के अवतार में भटकता है, वह दुःखी है। उस दुःख से मुक्त होने का उपाय, यह राग का विकल्प है सूक्ष्म में सूक्ष्म, उसकी भी जहाँ कीमत / महत्ता उड़ जाये और चैतन्यचमत्कारी पदार्थ प्रभु, अपने स्वरूप की महिमा आकर अन्दर के वेदन में आवे, तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द का आस्वाद आता है। तब उसे धर्मी और सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा!

वास्तव में तो चारित्र धर्म है, परन्तु उसका कारण यह सम्यग्दर्शन है। जहाँ सम्यग्दर्शन सत्य प्रभु, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त शक्ति-गुण का सागर भगवान आत्मा की महिमा होकर अन्तर वेदन में आया, उस जीव को यहाँ सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी और शान्ति का वेदन करनेवाला कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : किसी समय कहते हो कि आनन्द का वेदन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शान्ति कहो। शान्ति चारित्र की अपेक्षा से कहा। आनन्द सुख की अपेक्षा से कहा। चारित्र अर्थात् आत्मा में शान्ति अनन्त पड़ी है। उसका वेदन शान्ति का आवे आंशिक, ऐसा आनन्द पड़ा है, उसमें सुख का वेदन आवे। शान्ति का वेदन, वह वीतरागी पर्याय शान्त अकषायभाव और आनन्द की पर्याय सुख का वेदन आनन्द की पर्याय, वह आनन्दगुण की पर्याय है। शान्ति, वह चारित्रगुण की पर्याय है। आहाहा! यह अजब-गजब बात है, भाई यह तो! अन्तर की बातें, बापू! ऐसी है। आहाहा! यह तत्त्व ही ऐसा अलौकिक है।

ऐसे चैतन्य के तत्त्व में जो अनन्त शक्तियाँ और गुण भरे हैं, उस अमाप शक्ति का धारक द्रव्य, उसकी दृष्टि और वेदन में आने पर... आहाहा! अनादि से पुण्य और पाप,

राग और द्वेष कर्मचेतना का वेदन है। पर का नहीं। स्व का नहीं। पुण्य और पाप के, राग और द्वेष के भाव का उसे वेदन है। वह दुःख को वेदता है। वह दुःख से उकताया नहीं है। दुःख में मजा मानकर दुःख को वेदता है। वह आत्मा जब यह दुःख का जो भाव जो राग है, उससे भी भिन्न प्रभु अन्दर है। आहाहा! यह अध्यात्म-अध्यात्म करते हैं न? यह अध्यात्म, बापू! सूक्ष्म बात, भाई!

मुमुक्षु : दुःख तो पुद्गल की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कही पुद्गल की पर्याय? वह तो निकल जाता है, इस अपेक्षा से (कहा)। (बाकी तो) जीव की पर्याय है। चारित्रगुण और आनन्दगुण की विपरीत पर्याय है। वह तो निकल जाती है, इस अपेक्षा से पुद्गल कहा है। वेदन है दुःख का, वह अन्दर की दशा है। आहाहा! यह जहर का प्याला पीता है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। उसे भूलकर पुण्य-पाप के जहर के प्याले का वेदन है। आहाहा! वह जब उससे पृथक् मेरी चीज़ है, ऐसा अनुभव करता है... आहाहा! वह अनन्त काल में, अनन्त भव में अनन्त (बार) साधुपना लिया— दिगम्बर मुनि (हुआ) ऐसा, उस भव में भी इस आत्मा के आनन्द का उसने वेदन नहीं किया। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जगत से बहुत अलग प्रकार है। यह क्रियाकाण्ड के शुभ-अशुभभाव हैं, वे सब दुःखरूप हैं। वे आत्मा की पर्याय में होते हैं। उनसे भिन्न पड़कर चैतन्य सर्वज्ञ परमेश्वर हुए, वे सर्वज्ञस्वभावी वस्तु में से हुए हैं। आहाहा! यह भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी और उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव, उसका जहाँ अन्तर्मुख होकर वेदन शान्ति का और आनन्द का और ज्ञान का तथा वीर्य का आवे, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

उसे **ज्ञान अर्थात् शुद्ध स्वभावरूप परिणमा है...** देखा न? भगवान आत्मा। ज्ञान अर्थात् आत्मा। शुद्धस्वरूप भाव, जैसा उसका पवित्र शुद्ध स्वभाव है, वैसी पवित्रता की पर्यायरूप परिणमा है। आहाहा! यह शुभ-अशुभ अपवित्रतारूप परिणमन था, वह संसार में बीज-दुःख था। आहाहा! यह भगवान आत्मा अनन्त अमाप गुण की पवित्रता का पिण्ड, उसका परिणमन ऐसा हुआ। जैसा द्रव्य और गुण शुद्ध है... आहाहा! वैसा

उसके सन्मुख होने पर शुद्ध स्वभाव का परिणमना—दशा हुई... आहाहा! इसका नाम ज्ञानी और इसका नाम सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है प्रभु का।

शुद्ध स्वभावरूप परिणमा है आत्मद्रव्य... कहा न? **'कदाचन अपि' अनेक प्रकार भोगसामग्री को भोगता हुआ...** उस सामग्री को भोगते हुए, तो निमित्त के कथन हैं। परन्तु सामग्री की ओर लक्ष्य जाता है, इसलिए सामग्री को भोगता है, ऐसा कथन किया गया है। आहाहा! **भोगसामग्री को भोगता हुआ अतीत, अनागत, वर्तमान काल में...** तीनों काल में, कहते हैं। **'अज्ञानं न भवेत्'** अज्ञान नहीं होता, ऐसा सिद्ध करना है। क्या कहते हैं? कि जहाँ चैतन्यस्वरूप का ज्ञान और भान हुआ, उसके स्थान आगे पूर्व के कर्म के कारण प्राप्त सामग्री, उस पर जरा लक्ष्य जाता है, तथापि वह सामग्री और वह लक्ष्य अज्ञानरूप कर नहीं सकता। आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत, भाई! अपूर्व बात है न, प्रभु! इस चीज़ की महिमा इसे आयी नहीं। सर्वोत्कृष्ट महिमावन्त चीज़ हो तो यह प्रभु स्वयं है। इसके जैसी सर्वोत्कृष्ट महिमावाली कोई चीज़-चमत्कारिक कोई चीज़ ही जगत में नहीं है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा चैतन्यरत्न, उसका जिसे वेदन हुआ, उसे भोग सामग्री उस वेदन को अज्ञान नहीं कर सकती। आहाहा! सामग्री तो निमित्त से कथन किया, परन्तु सामग्री की ओर लक्ष्य जाये तो भी उस लक्ष्य का विकल्प उस ज्ञानी को ज्ञान का अज्ञान कर सके, ऐसी सामर्थ्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

सर्वोत्कृष्ट चैतन्य चमत्कारिक पदार्थ प्रभु है। चौदह ब्रह्माण्ड में अपना चैतन्य चमत्कारिक सर्वोत्कृष्ट ऐसा जो भगवान आत्मा स्वस्वरूप से विराजमान है, उसकी अस्ति का भान हो और पुण्य-पाप की नास्ति—इसमें अस्ति नहीं। आहाहा! उसकी राग की विभक्तता और स्वभाव की एकता जहाँ प्रगटे... आहाहा! तब उसे भोग की सामग्री उस ज्ञानी को ज्ञान में अज्ञान नहीं कर सकती। सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व वह सामग्री उत्पन्न नहीं कर सकती। सामग्री या सामग्री की ओर का लक्ष्य, वह मिथ्यात्व नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें! आहाहा!

बापू! मार्ग वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर आश्चर्यकारी सर्वज्ञदशा, आश्चर्यकारी उसका सर्वज्ञस्वभाव। उन सर्वज्ञ भगवान ने जगत के पदार्थों का वर्णन करके कहा, कि जिसे इस सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का वेदन आया, राग का-कषाय का वेदन तो अनादि काल से

है, वह कहीं नयी चीज़ नहीं है। वह दु:ख का वेदन दु:खी आकुलता है, उसके आकुलता के परिणाम से भी भिन्न करके जिसने सम्यग्दर्शन और आनन्द का वेदन प्रगट किया, उस जीव को पूर्व की सामग्री कर्म के कारण इन्द्र के इन्द्रासन हो या चक्रवर्ती पद हो, वह ज्ञानी के ज्ञान को अज्ञान कर सके, ऐसी ताकत किसी में नहीं है। समझ में आया? अब ऐसा उपदेश है, लो! छह काय की दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, कैसी सरल बात थी। वह तो सब भटकने की बात थी। आहाहा! भाई! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं। तेरा माहात्म्य जगत में कोई चीज़ घात सके, ऐसी सामर्थ्य नहीं है। आहाहा! ऐसी चीज़ से भरपूर भगवान अन्दर, ऐसे भगवान का भान हुआ, उस भान को कोई जगत की सामग्री अभान कर सके, ऐसी सामर्थ्य किसी की नहीं है। आहाहा! है?

अनेक प्रकार भोगसामग्री को भोगता हुआ... तीन काल में **विभाव-अशुद्ध-रागादिरूप...** अज्ञान की व्याख्या की। अज्ञान कर नहीं सकता अर्थात् क्या? ज्ञानी के ज्ञान को भोग की सामग्री अज्ञान नहीं कर सकती, अर्थात् क्या? **विभाव-अशुद्ध-रागादिरूप नहीं होता।** आहाहा! ऐसा मिथ्यात्व का अशुद्ध भाव, हों! यह। समझ में आया? यह अशुद्ध परिणाम होने पर भी मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की अशुद्धता वे नहीं कर सकते। आहाहा! अब ऐसा धर्म उपेदश, लो! भोगसामग्री भोगते हुए उसे **विभाव...** अज्ञान की व्याख्या की। **विभाव...** अर्थात् **अशुद्ध-रागादिरूप...** अर्थात् मिथ्यात्व सम्बन्धी के राग और मिथ्यात्व सम्बन्धी के भावरूप **नहीं होता।** आहाहा! समझ में आया? बात तो ऐसी ली है। भोगसामग्री। इसका अर्थ यह है कि भोगसामग्री तो ज्ञेय पर है। परन्तु उसकी ओर का उसका धर्मी का लक्ष्य जरा जाता है, तथापि वह लक्ष्य जाता है, विकल्प उठता है, वह आत्मा के ज्ञान को मिथ्यात्वरूप कर सके, ऐसी ताकत उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है ज्ञान? 'सन्ततं भवत्' आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव चैतन्य शाश्वत् पदार्थ है। **शाश्वत् शुद्धत्वरूप जीवद्रव्य परिणमा है,...** आहाहा! भगवान शाश्वत् शुद्ध चैतन्यमूर्ति, वह शुद्धरूप परिणमा है, शुद्धरूप हुआ है। यह मायाजाल की भाँति वह चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। है? पहले मायाजाल आ गया है एक बार। १२८ पृष्ठ पर। १२८ पृष्ठ पर आ गया है। है न? वहाँ भी मायाजाल कहा था। १२८ पृष्ठ, दूसरी लाईन।

इसकी पहली लाईन। **कैसा है मायाजाल ?** यहाँ दूसरी लाईन में है। यहाँ पहली में है। **मायाजाल की भाँति क्षणविनश्वर नहीं।** आहाहा! क्या कहा यह ? यह सब मायाजाल क्षण विनाशीक। आहाहा! यह कल संध्या देखी शाम को। ऐसे जहाँ नजर की वहाँ संध्या खिली हुई। दूसरे मिनिट में ऐसे नजर की वहाँ काला धब्बा। कल लाल बादल हुए थे। इस ओर वह पर्वत है न वहाँ पर्वत है। वहाँ सूर्य अस्त होने पर उसकी लालिमा वहाँ इतनी अधिक आ गयी ऐसे, परन्तु एक मिनिट (रहकर) एकदम चली गयी। संध्या के रंग जैसी चीज़ है यह। आहाहा!

मायाजाल यह संसार पूरा। शरीर, वाणी, मन सब। क्षणविनाशी। एक क्षण में। कल तो किसे क्या हुआ, यह लोगों ने नजर नहीं की होगी। मेरी नजर गयी पाट के ऊपर से ऐसा देखा। दरवाजे के लकड़ी के ऊपर पीलापन आया बाहर। कहा, यह क्या ? सूरज तो नहीं। सूरज तो गया। फिर ऐसे देखा वहाँ खिली हुई संध्या। ऐसी खिली हुई... ऐसी खिली हुई... जरा फिर ऐसे जहाँ देखा वहाँ समाप्त हो गयी। क्योंकि वह सूरज नीचे चला गया। यहाँ तो पूरे दिन ऐसा ही होता है न ? आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ तो कहते हैं कि शुद्ध चैतन्य शाश्वत् द्रव्य है, उसका वेदन हुआ वह कोई मायाजाल की बात जैसी नहीं कि नाश हो जाये। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! उसकी ज्ञान की पर्याय में स्व ज्ञान का ज्ञान हुआ, शाश्वत् वस्तु का ज्ञान हुआ, ऐसा कहना है। भगवान शाश्वत् अनादि है और नित्यानन्द प्रभु अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव, उसका जिसे ज्ञान हुआ, वह मायाजाल की भाँति नाशवान हो सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कहकर अप्रतिहत ज्ञान है, ऐसा बताते हैं। आहाहा! चैतन्य शाश्वत् प्रभु अन्दर (विराजता है)। आहाहा! जिसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव विस्मयकारी वस्तु ही ऐसी है। अरे! इसने कभी अन्तर कहाँ देखा है ? आहाहा!

आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... का कहीं अन्त नहीं। क्या है यह चीज़ ? इस बात को पहुँच जाना, वह सूक्ष्म बात है। ऐसा आकाश का माप जहाँ कहीं अन्त नहीं। इस प्रकार से काल का कहीं माप नहीं। शुरुआत कहाँ और अन्त कहाँ ? आहाहा! यह तो वस्तुस्थिति ही ऐसी है। इस प्रकार से भाव का क्या माप ? आहाहा! एक-एक वस्तु में... यह सब दिखता है, वह सब जड़... जड़... जड़... जड़

का अस्तित्व उसे दिखता है। पत्थर, दीवार, यह... यह... इससे मानो जगत में यही चीज़ हो नहीं! परन्तु इससे अनन्तवें भाग में जितने परमाणु हैं, पूरे लोक के, हों! उसके अनन्तवें भाग जीव भगवान विराजता है। आहाहा! अनन्त आत्मायें, उनके अनन्तवें भाग अनन्तगुणे भगवान विराजते हैं और एक-एक भगवान में अनन्त भाव विराजते हैं। आहाहा! वे भाव कितने? कि तीन काल के समय से और परमाणु की संख्या से अनन्तगुणे भाव एक द्रव्य में है। ऐसी शाश्वत् वस्तु है वह। आहाहा! इसने ध्रुव को ध्येय में लेकर कभी ध्यान किया है? ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे जिसने जाना और वेदन किया, कहते हैं कि वह तो द्रव्य स्वयं शुद्ध है, वह परिणमा है। कोई मायाजाल और रागादि है कि चले जायें, ऐसी वह चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा यह?

आनन्द का नाथ प्रभु अनन्त अमाप शक्ति का सागर द्रव्य / पदार्थ, वह स्वयं ही शुद्धरूप परिणमा है, कहते हैं। शाश्वत् वस्तु जो है आत्मा, अनादि-अनन्त नित्य प्रभु, वह स्वयं शुद्धरूप हुआ है, वह अब कहाँ जाये? आहाहा! वह किस प्रकार नाश हो? ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ऐसा कहना है कि चाहे जितनी भोग की सामग्री पर लक्ष्य जाये तो भी शाश्वत् परिणमा है, उसमें अज्ञान कैसे हो? समझ में आया? आहाहा! अरे! इसने कभी इसकी ओर के झुकाव के मन्थन और विचार भी किये नहीं। बाहर की होली सुलग कर पड़ा है ऐसा का ऐसा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसा जो भगवान अनन्त-अनन्त गुण का सागर शाश्वत् वस्तु, उसके ऊपर नजर जाने से वह शुद्धस्वरूप से जिस प्रकार से है, उस प्रकार से परिणमन में शुद्धपना परिणमता है। वह शुद्धपना परिणमन मायाजाल की भाँति नाशवान नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात अध्यात्म की कहाँ है? बापू! स्वदेश में भी कठिन पड़ती है। परदेश में कहाँ था? बातें करते हैं अमेरिका में ऐसा है और ढींकणा में ऐसा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह **मायाजाल के समान क्षण विनश्वर नहीं है।** क्या कहा यह? है तो परिणमन पर्याय का, परन्तु मायाजाल की भाँति क्षणविनश्वर नहीं है। वह परिणमन निर्मल, जैसे शाश्वत् वस्तु है, उसका परिणमन भी ऐसा का ऐसा शाश्वत् चालू ही रहेगा। आहाहा! अब इसमें जवान का शरीर जवान हो, उसमें पाँच-पच्चीस लाख पैसे

हों, रूपवान शरीर हो रहा। उसमें यह अरे...! बापू! तू कौन है? भाई! आहाहा! यह सब जवानी मायाजाल की भाँति नाशवान है। क्षण में फू हो जाये। यहाँ परसों एक गरासिया मर गया गाँव में। ४०-४२ वर्ष की उम्र। सर्प को क्या कहा जाता है? नागिन को वह पकड़ता था। इस प्रकार से पकड़ता होगा ऐसे। सिर पकड़े तो काट न सके, ऐसी उसे कला होगी। कितनों को पकड़कर बाहर डाल आया होगा। उसमें यह पकड़ा और पकड़कर मदिरा पीये हुए। और नागिन थी। लपेटा मारा। पकड़ा होगा। ऐसे लटके न तो यहाँ लपेटा मारा और यहाँ कुछ पोची रह गयी होगी ऐसे जरा और मदिरा पीये हुए तो डंक मारा। डाल आया। परन्तु यहाँ रात्रि में मर गया। ४०-४२ वर्ष का गरासिया था। बापू! ऐसे तो नाशवान क्षणभंगुर... आहाहा! इसी प्रकार आत्मा के शुद्ध द्रव्य का परिणमन ऐसा नाशवान नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानधारा, ज्ञानधारा ज्ञायक में से आयी, उस ज्ञानधारा को कोई अज्ञान कर सके, (ऐसी सामर्थ्य नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? भोग, वह तो सामग्री की बात की, परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य जाये न जरा लक्ष्य? वह राग है। परन्तु वह राग उस ज्ञानी के ज्ञान को अज्ञान कर सके, (ऐसी) सामर्थ्य उसमें नहीं है। भोग सामग्री तो पर है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु उसकी ओर के झुकाववाली वृत्ति है, उस वृत्ति की सामर्थ्य नहीं कि इस परिणमित शुद्ध को मिथ्यात्व कर सके। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मायाजाल के समान क्षण विनश्वर नहीं है। आगे दृष्टान्त के द्वारा वस्तु का स्वरूप साधते हैं—'हि यस्य वशतः यः यादृक् स्वभावः तस्य तादृक् इह अस्ति' जिस कारण से जिस किसी वस्तु का... 'यादृक्' अर्थात् **जो स्वभाव...** भगवान आत्मा का जो स्वभाव है... आहाहा! **वह अनादि-निधन है... 'वशतः'** अनादि है। **'तस्य' उस वस्तु का... 'तादृक् इह अस्ति' वैसा ही है।** जैसा स्वभाव है अनादि का, वैसा ही वह स्वभाव है। परमाणु का भी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श स्वभाव है। वैसा अनादि का ऐसा का ऐसा है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा... अरे! आत्मा को कहाँ... एक जरा सी सब्जी अनुकूल आवे वहाँ फिदा-फिदा हो जाये। आम का रस ठीक सा हो और पूड़ी घी की

पिलायी हुई पूड़ी और रस खाये वहाँ मानो क्या हो गया। अरे! बापू! कहाँ गया तेरा? तू कहाँ खिंच गया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिसे आत्मा का वेग जगा है... आहाहा! आत्मा का रस जगा है। आया था न '**स्वरस**' पहले में आया था। '**स्वरसतः**' आहाहा! जिसे राग के रस का प्रेम छूट गया है... आहाहा! तब राग से विरुद्ध शाश्वत् तत्त्व भगवान आत्मा का रस जिसे जगा है। समझ में आया? आहाहा! उसे जैसा है, वैसा ही रहनेवाला है। वस्तु तो जैसी है, वैसी ही है, परन्तु यह तो उसका परिणमन है, वह भी वैसा का वैसा ही रहनेवाला है। आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा, बापू! लोगों को आत्मा की खबर नहीं। आत्मा-आत्मा भाषा करे। आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ऐसी शक्तियाँ अमाप-अमाप शक्तियों का तो सागर है प्रभु। आहाहा! उसका अन्दर माप लेने जाये, तब माप की पर्याय अनन्त ताकतवाली हो जाती है। वह ज्ञान की पर्याय अमाप का माप लेने जाये या प्रतीति करने जाये तो पर्याय में अमापपना आ जाता है। आहाहा! ऐसी पर्याय का परिणमन शुद्ध का, उसे यह मायाजाल जगत के विकल्प आदि या सामग्री कौन उसे मिथ्यात्व कर सकता है? आहाहा! यहाँ मूल वजन मिथ्यात्व और अज्ञान (के ऊपर है)। पाठ में आया था न? अज्ञान कहा था न? '**कदाचनापि अज्ञानं न भवेत्**' वजन यह है। समझ में आया? राग-द्वेष के परिणाम होते हैं, परन्तु वे ज्ञानी के ज्ञान को वे राग-अज्ञान कर सकें, ऐसा है नहीं। आहाहा!

उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का... अब दृष्टान्त देते हैं। **जैसा स्वभाव है, वह अनादि-निधन है, उस वस्तु का वैसा ही है। जिस प्रकार शंख का श्वेत स्वभाव है,...** दृष्टान्त। शंख है, वह सफेद है। वह **श्वेत प्रगट है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का शुद्ध परिणाम होता हुआ शुद्ध है।** देखो! बात परिणाम की ली है। आहाहा! जैसा शंख का प्रगट स्वभाव सफेद है। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का शुद्ध परिणाम होता हुआ शुद्ध है। वस्तु भगवान पूर्णानन्द की प्रतीति और ज्ञान करने से वह शुद्ध है। जैसे शंख का प्रगट सफेदपना है, उसी प्रकार भगवान आत्मा की शुद्ध परिणति, वह सफेद/शुद्ध है। आहाहा! यह तो धर्म की बात है न! समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि का शुद्ध परिणाम होता हुआ... आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण और अनन्त शक्तियाँ शुद्ध है। उसे परिणमन किया, जहाँ अन्तर में सन्मुख होकर, अनन्त काल में कभी नहीं किया था, कभी दृष्टि में प्रभु को लिया नहीं था। प्रभु अर्थात् यह भगवान आत्मा, हों! यहाँ। आहाहा! उस प्रभुता की प्रभुता को पर्याय में प्रतीति में, ज्ञान में, वेदन में आयी। आहाहा! वह तो शुद्ध है, कहते हैं। जैसे शंख का प्रगट स्वभाव सफेद है, वैसे धर्मी का शुद्ध परिणमन शुद्ध है। आहाहा! क्योंकि स्वयं शुद्ध स्वभाव त्रिकाल है, उसका परिणमन, वह शुद्ध है। आहाहा!

यह आठ-आठ वर्ष के बालक राजकुमार जब धर्म-सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं... आहाहा! और पुरुषार्थ उछलता है। आहाहा! माता के समक्ष माँग करते हैं, माँ! शरीर की माता! आता है न चरणानुयोग में? आहाहा! चरणानुयोग के पाठ में, प्रवचनसार। माता! आज्ञा दे, माँ! मैं मेरा आत्मा आनन्दस्वरूप को साधने जाता हूँ, मैं अकेला वन में जाता हूँ। आहाहा! वह हीरा के पलंग में सोता हुआ, रेशम के गद्दे पर, दो-दो, तीन-तीन गद्दे में ऊपर सोता हुआ, वह जंगल में चला जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : एकदम पलटा हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक क्षण में पलट गया। आहाहा!

मुमुक्षु : वे सब हलुकर्मी थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु हलुकर्मी अर्थात् क्या? कर्म कम थे, वे इसलिए हुए, ऐसा है हलुकर्मी? दृष्टि स्वयं सुलटी की, इसलिए हलुकर्मी था। ऐसा कहते हैं, हम सब भारी कर्मी हैं, इसलिए नहीं (होता) और वे हलुकर्मी थे। ऐसा कहते हैं। यहाँ कर्मी-फर्मी की बात ही नहीं है, देवानुप्रिया! आहाहा! यहाँ तो कर्म तो है ही नहीं, परन्तु अशुद्धता भी जहाँ नहीं। उसकी यहाँ तो बातें चलती हैं। कर्म तो जड़-मिट्टी हैं। 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' परन्तु यहाँ तो भूल जो अशुद्धता है, वह क्षणिक है, नाशवान है और जिसने अविनाशी भगवान की भेंट की अन्दर, उसकी परिणति को नाशवान क्षणिक चीज़ शुद्ध को अशुद्ध कर दे, (ऐसी) जगत में किसी की ताकत नहीं है। समझ में आया? आहाहा! बापू! यह तो वीतराग के, राजा वीतराग राजा का राजमार्ग है। आहाहा!

परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव जिन्हें अनन्त समृद्धि पर्याय में प्रगट हो गयी। आहाहा! चैतन्य की ऋद्धि जो अनन्त है, वह जिन्हें पर्याय में पूर्ण प्रगट हो गयी। वैसे तो समकिती को भी ऐसा लिया है शास्त्र में तो। 'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा।' आहाहा! धर्मी जीव को ऋद्धि अन्दर में दिखायी देती है। यह धूल की ऋद्धि, वह नहीं। शरीर नहीं। वह तो मिट्टी, हड्डी, चमड़ी है। 'ऋद्धि-सिद्धि-वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा।' आहाहा! पूर्ण आनन्द, और पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता। ऐसी अनन्त शक्ति की ऋद्धि धर्मी को अपने स्वभाव में दिखती है। सिद्धि होती है, वह अपने स्वभाव में देखता है और वृद्धि। आहाहा! शुद्धि की वृद्धि समय-समय होती है। आहाहा! अज्ञानी को समय-समय में जैसे मलिनता और मिथ्यात्वभाव में पुष्टि होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे धर्मी को क्षण-क्षण में शुद्धता की... आहाहा! पुष्टि-वृद्धि होती है।

उस शंख के श्वेत को... आहाहा! **सम्यग्दृष्टि का शुद्ध परिणाम होता हुआ शुद्ध है। 'एषः परैः कथञ्चन अपि अन्यादृशः कर्तुं न शक्यते'** है? **'एषः' वस्तु का स्वभाव अन्य वस्तु के किये किसी प्रकार दूसरे रूप करने का नहीं समर्थ है।** आहाहा! (संस्कृत में से कुछ लिखा है।) देश काल द्रव्यान्तर, ऐसा शब्द संस्कृत में पड़ा है। देश कोई ऐसा क्षेत्र नहीं। कोई ऐसा काल नहीं, कोई द्रव्यान्तर—अन्य कोई द्रव्य नहीं। आहाहा! संस्कृत में शब्द है। अध्यात्म... आहाहा! **'कथञ्चन अपि'** है न? **कोई भी...** भगवान आत्मा के स्वभाव का जहाँ शुद्ध परिणमन हुआ, अब कोई क्षेत्र चाहे जो हो—नरक क्षेत्र हो। आहाहा! तिर्यंच का क्षेत्र हो, चाहे जो क्षेत्र बाह्य। मध्य में हो, अधोलोक में हो या ऊर्ध्व में हो। कोई क्षेत्र उसे शुद्धता के परिणमन को बदल सके, ऐसी सामर्थ्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कोई काल ऐसा नहीं कि जहाँ शुद्ध वस्तु है शाश्वत्, उसे कोई कर सके नहीं और उसके परिणमन को भी कोई काल बदल नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसी प्रकार कोई द्रव्यान्तर—अपने द्रव्य से अन्य द्रव्य—कोई द्रव्य ऐसा नहीं कि उसे शुद्धता की अशुद्धता कर दे। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बातें हैं, प्रभु!

यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ, जिनेन्द्र वीतराग परमात्मा का प्ररूपित मार्ग है। यह

कहा हुआ अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा! यह आश्चर्यकारी, विस्मयकारी पदार्थ है, भाई! जिसकी कीमत नहीं। आहाहा! चक्रवर्ती के राज और इन्द्र के इन्द्रासन, जिसके शुद्ध के परिणमन के समक्ष तो कुछ कीमतरहित तिनके के तौल में भी नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वयं भगवान स्वरूप से ही ऐसा है, उसके स्वरूप का परिणमन होने पर कोई ताकत द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की नहीं कि उस शुद्धता को अशुद्धता-मिथ्यात्व कर सके। आहाहा! समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म है, भाई! यह तो अपूर्व—पूर्व में नहीं की हुई की बातें हैं। बाकी तो सब थोथा किया अनन्त बार। आहाहा!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में साहेब आता है कि समयं गोवं मा पमाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आता है, सब समझने जैसा है। वह सब व्यवहार की बातें आती हैं बीच में, परमार्थ वस्तु बहुत अलग बातें हैं, बापू! क्या कहें? दिगम्बर सन्तों ने कही हुई बातें कोई अलौकिक है, बापू! वे केवलज्ञान के पथानुगामी थे। केवल परमात्मा के पन्थ में-पन्थ में जाते हुए केवलज्ञान लेनेवाले थे। यह केवलज्ञान प्राप्त कराने के लिये यह सब बातें हैं। आहाहा!

जहाँ भगवान शान्तरस से शाश्वत् है, आनन्दरस से शाश्वत् है, उसका अन्दर में परिणमन हुआ, आनन्द और शान्ति के रस का... आहाहा! कहते हैं कि कोई अन्य द्रव्य,... जैसे शंख सफेद है... यह कहेंगे। **किसी प्रकार दूसरे रूप करने का नहीं समर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है कि स्वभाव से श्वेत शंख है, सो शंख काली मिट्टी खाता है,...** आहाहा! वह सफेद शंख काले जीव खाये। समुद्र में हों उन्हें (खाये)। काली मिट्टी खाये परन्तु उस सफेद को काला कर सके, ऐसी ताकत उनकी नहीं है। आहाहा! शंख तो समझते हो न? शंख-शंख? शंख ही कहते हैं। शंख। आहाहा! **शंख काली मिट्टी खाता है, पीली मिट्टी खाता है,...** पीली मिट्टी होती है न? सफेद शंख और पीली मिट्टी खाये, परन्तु सफेद का पीला हो जाये, (ऐसा नहीं होता)। आहाहा! दृष्टान्त तो देखो! शंख काले कीड़े खाये, बारीक, काले। परन्तु शंख को कोई काला कर सके, ऐसी ताकत नहीं है। आहाहा! यह तो पर्याय की बात है, हों! परिणमन की। आहाहा! शंख सफेदरूप हुआ है, परिणमा है, वह काले कीड़े और काली मिट्टी और पीली मिट्टी

खाये तो भी उस सफेद को कोई काला कर सके, यह किसी की ताकत नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

नाना वर्ण मिट्टी खाता है। अनेक वर्ण की, ऐसा कहते हैं। काली, लाल, हरी। हरे रंग की मिट्टी होती है न? हरे रंग की मिट्टी होती है। रास्ते में हमने बहुत देखा हो न! एक जगह ऐसी हरी मिट्टी देखी, ऐसी हरी दिखे। हरी मिट्टी खाये तो भी सफेद स्वभाव को हरा कर सके... (ऐसा नहीं है)। आहाहा! **ऐसी मिट्टी खाता हुआ शंख उस मिट्टी के रंग का नहीं होता है,...** मिट्टी के रंग का शंख नहीं होता। आहाहा! **अपने श्वेतरूप रहता है। वस्तु का ऐसा ही सहज है।** देखा! वहाँ से शुरु हुआ था। वस्तु का सहज स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

उसी प्रकार... यह दृष्टान्त हुआ। **सम्यग्दृष्टि जीव...** जहाँ सत्यदृष्टि प्रगट हुई आत्मा के आनन्द की और शुद्ध चैतन्यघन की, शाश्वत् भगवान अन्दर विराजता है, प्रभु! उसकी जिसे दृष्टि अन्तर में सन्मुख होकर प्रगट हुई... आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन के परिणाम **सम्यग्दृष्टि जीव स्वभाव से राग-द्वेष-मोह से रहित शुद्ध परिणामस्वरूप है,...** है न? यहाँ तो यह लेना है न? वह राग होता है, वह इसका स्वरूप नहीं। यह तो सम्यग्दृष्टि तो राग-द्वेष-मोहरहित उसका परिणमन है। यहाँ तो मिथ्यात्वरहित की बात करनी है न? समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव स्वभाव से राग-द्वेष-मोह से रहित शुद्ध परिणामरूप है,.. आहाहा! **वह जीव नाना प्रकार भोगसामग्री भोगता है...** नाना अर्थात् अनेक प्रकार। **तथापि अपने शुद्ध परिणामरूप परिणमता है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और शान्ति का परिणमन है, उस प्रकार से ही वह परिणमता है। अनुभव प्रकाश में तो ऐसा कहा है कि तेरी शुद्धता तो बड़ी, परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी। तेरे मिथ्यात्व और अशुद्धता के परिणाम से परिणमा, तुझे तीन लोक के नाथ तीर्थंकर आवे तो भी तू बदलता नहीं। समवसरण में गया। साक्षात् तीन लोक के नाथ की वाणी सुनी, सौ इन्द्र अन्दर सभा में बैठे देखे। सिंह... सिंह। सैकड़ों सिंह भगवान के समवसरण में, बाघ, काले नाग, सैकड़ों ऐसे देखे। वहाँ सुनने बैठा। आहा! परन्तु मिथ्यात्व माना है, उसे

छोड़ता नहीं। भगवान की वाणी से भी छोड़ता नहीं। ऐसी तेरी अशुद्धता बड़ी तो शुद्धता की तो बात क्या करना! आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव स्वभाव से राग-द्वेष-मोह... मिथ्यात्वरहित और मिथ्यात्वसहित के राग-द्वेष लेना है। उन **रहित शुद्ध परिणामरूप है,...** आहाहा! **वह जीव नाना प्रकार भोगसामग्री भोगता है,...** तथापि आगे कहेंगे, हों! कहकर तुरन्त ही कहेंगे। तुझे इच्छा है न भोगने की? या नहीं? कामाचारी है या नहीं? इच्छावान है? मर जायेगा। भोग भोगने से बन्ध नहीं कहा इसलिए तू ऐसा कर, इच्छा से भोग को भोग प्रेम के रस से और उसमें निर्जरा होती है। मर जायेगा। समझ में आया? आहाहा!

यह श्लोक कहकर तुरन्त ही श्लोक कहेंगे। वरना यहाँ तो '**भुंक्ष्व**' कहा। भोग। यह भोगने का नहीं कहा। उसे परद्रव्य से तुझे नुकसान होता है, यह शंका मिटायी है। परद्रव्य तुझे क्या नुकसान करे? समझ में आया? नुकसान तो तूने तेरे मिथ्यात्वभाव से किया है। आहाहा! प्रभु पवित्रता के पिण्ड की विपरीत मान्यता की, वह तो तूने की है। आहाहा! समझ में आया? यह मान्यता तो भगवान की वाणी सुनी, ग्यारह अंग किये, वांचन किया, पढ़ा। अरबों-अरबों श्लोक कण्ठस्थ किये, बापू! परन्तु उससे क्या हुआ? आहाहा! यह अशुद्धता छोड़कर शुद्धता का परिणमन तूने किया नहीं। आहाहा! जहाँ उस अशुद्धता को छोड़ता नहीं, अनुकूल सामग्री के समय भी, तो धर्मी को शुद्ध परिणमन सम्यक् चैतन्यमूर्ति भगवान, शाश्वत् वस्तु का परिणमन हुआ, उसे दूसरी चीज़, रागादि या दूसरी चीज़ किस प्रकार उसे मिथ्यात्व कर सकता है? समझ में आया? यहाँ वजन इसके ऊपर अधिक है।

अपने शुद्ध परिणामरूप परिणमता है,... है? **नाना प्रकार भोगसामग्री भोगता है...** सामग्री-सामग्री का शब्द लिया है, यह तो उसके ऊपर लक्ष्य है, इसलिए लिया है। बाकी कहीं पर को कोई अज्ञानी भी भोग नहीं सकता। परन्तु उसकी ओर का लक्ष्य जाता है, इसलिए सामग्री को भोगता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? भले कहे कि उसकी ओर थोड़ा लक्ष्य जाता है, परन्तु मिथ्यात्व को वह कर सके... आहाहा! वह राग का, आसक्ति का भाव जीव के मिथ्यात्व परिणाम को कर सके, सम्यक् परिणमन को छोड़कर, ऐसी ताकत नहीं है। समझ में आया? ऐसा कैसा

उपदेश! सुनने की बात हो, उसमें एक भी आवे नहीं इसमें। दया पालना, व्रत पालना या अपवास करना, भक्ति करना, यात्रा करना... आहाहा!

सामग्री के रहते हुए अशुद्धरूप परिणमाया जाता नहीं... सामग्री के रहते हुए अशुद्धरूप परिणमाता नहीं। आहाहा! यह राग का जरा भाव होता है, तो भी वह मिथ्यात्वरूप परिणमाता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **सामग्री के रहते हुए अशुद्धरूप परिणमाया जाता नहीं, ऐसा वस्तु का स्वभाव है, इसलिए सम्यग्दृष्टि के कर्म का बन्ध नहीं है,...** लो। इस अपेक्षा से, हों!

मुमुक्षु : इसमें तो ऐसा लिखा है कि सम्यग्दृष्टि को कर्म का बन्ध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न बन्ध नहीं। मिथ्यात्व सम्बन्धी यहाँ बात है न? मिथ्यात्व सम्बन्धी की अपेक्षा की बात है। और भाई जयसेनाचार्य में तो ऐसा लिया है कि यह पंचम गुणस्थान के ऊपर की बातें हैं। वह उसमें लिया है। छठवें तक उसमें लिया है। मुख्यरूप से, हों! मुख्यरूप से। वहाँ भी मुख्यरूप से लिया। वहाँ सर्वथा तो बन्ध नहीं तो दसवें तक बन्ध है (ऐसा कैसे कहा?) आहाहा! परन्तु उसे ज्ञेयरूप से गिनकर बन्ध नहीं, ऐसा कहा गया है। है तो बन्ध। न हो तो वीतरागता पूर्ण होनी चाहिए। पूर्ण अनन्त आनन्द प्रगट हो, तब पूर्ण दशा हो। तब बन्ध नहीं है। यथाख्यातचारित्र प्रगट (हो उससे) पहले... यह तो आस्रव अधिकार में आ गया है। पूर्ण यथाख्यात स्वरूप की जैसी वस्तु है, वैसी प्रसिद्धि अन्दर में पूर्ण प्रसिद्धि न हो तब तक उसे राग होता है और उतना आस्रव और बन्ध तथा दुःख होता है। एक ओर ऐसा और एक ओर ऐसा (कहे)। किस अपेक्षा से कहा? यहाँ दृष्टि की अपेक्षा से बात है और वहाँ अस्थिरता भी थोड़ी हो तो भी उसे आस्रव और बन्ध है, ऐसा सिद्ध करना है। भाई! यह तो अनेकान्त मार्ग है। वीतराग का, जिस अपेक्षा से कहे उस अपेक्षा से ही आना चाहिए।

यहाँ तो **बन्ध नहीं है, निर्जरा है।** ऐसा कहा। वह अशुद्ध परिणाम की जो तीव्र अमुक दशा है, वह स्वभाव के शुद्ध परिणाम के जोर से अशुद्धता टलती जाती है। टलती जाती है, इसलिए निर्जरा कही जाती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-१५१

(शार्दूलविक्रीडित)

ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किञ्चित्तथाप्युच्यते
भुंक्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम्।।१९-१५१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'ज्ञानिन् जातु कर्म कर्तुं न उचितं' [ज्ञानिन्] हे सम्यग्दृष्टि जीव! [जातु] किसी प्रकार कभी भी, [कर्म] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड, [कर्तुं] बाँधने को [न उचितं] योग्य नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीव के कर्म का बन्ध नहीं है। 'तथापि किञ्चत् उच्यते' [तथापि] तो भी [किञ्चित् उच्यते] कुछ विशेष है, वह कहते हैं — 'हन्त यदि मे परं न जातु भुंक्षे भोः दुर्भुक्तो एव असि' [हन्त] कड़क वचन के द्वारा कहते हैं। [यदि] जो ऐसा जानकर भोगसामग्री को भोगता है कि [मे] मेरे [परं न जातु] कर्म का बन्ध नहीं है—ऐसा जानकर, [भुंक्षे] पंचेन्द्रियविषय भोगता है तो [भोः] अहो जीव! [दुर्भुक्तः एव असि] ऐसा जानकर, भोगों का भोगना अच्छा नहीं। कारण कि वस्तुस्वरूप इस प्रकार है — 'यदि उपभोगतः बन्धः न स्यात् तत् ते किं कामचारः अस्ति' [यदि] जो ऐसा है कि [उपभोगतः] भोगसामग्री को भोगते हुए, [बन्धः न स्यात्] ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध नहीं है [तत्] तो [ते] अहो सम्यग्दृष्टि जीव! [कामचारः] स्वेच्छा आचरण [किं अस्ति] क्या ऐसा है? अपितु ऐसा तो नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीव के, कर्म का बन्ध नहीं है। कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव, राग-द्वेष-मोह से रहित है। वही सम्यग्दृष्टि जीव, यदि सम्यक्त्व छूटे, मिथ्यात्वरूप परिणमे, तो ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध को अवश्य करे; क्योंकि मिथ्यादृष्टि होता हुआ, राग-द्वेष-मोहरूप परिणमता है — ऐसा कहते हैं- 'ज्ञानं सत् वस' सम्यग्दृष्टि होता हुआ, जितने काल प्रवर्तता है, उतने काल, बन्ध नहीं है 'अपरथा स्वस्य अपराधात् बन्धं ध्रुवं एषि' [अपरथा] मिथ्यादृष्टि होता हुआ [स्वस्य अपराधात्] अपने ही दोष से- रागादि अशुद्धरूप परिणमन के कारण, [बन्धं ध्रुवं एषि] ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध को तू ही अवश्य करता है।।१९-१५१।।

कार्तिक शुक्ल १५, गुरुवार, दिनांक-२४-११-१९७७, कलश-१५१, प्रवचन-१५८

कलशटीका, १५१ कलश है।

ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किञ्चित्तथाप्युच्यते
भुंक्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम्।।१९-१५१।।

निर्जरा अधिकार है। '**ज्ञानिन् जातु कर्म कर्तुं न उचितं**' ज्ञानी अर्थात् सम्यग्दृष्टि। जिसे आत्मा के आनन्द के स्वभाव की रुचि-अनुभव हुआ। भगवान आत्मा शरीर, वाणी, मन से तो भिन्न परन्तु पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न, परन्तु अपने अनन्त-अनन्त अमाप गुणों से भिन्न नहीं। ऐसे स्वभाव का जिसे... आहाहा! सम्यक् दर्शन अनुभव हुआ। वह अनुभव क्यों नहीं? कि अनादि से राग और पुण्य-पाप के भाव को अपना मानकर और उसके राग को, विकार को वेदता है; इसलिए उसे अनुभव और सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है। उसका आदर छोड़कर राग का कण और एक रजकण को अपना माने, उसने अपना त्रिकाली शुद्धस्वभाव का उसने अनादर किया है। जिससे उस राग के कण को या रजकण को, एक रजकण भी... पैसा-बैसा धूल तो बहुत कहीं बाहर रह गयी। एक रजकण को, राग के कण को भी अपना माने तो वह मिथ्यादृष्टि अनन्त संसार के परिभ्रमण के बीज को सेवन करनेवाला है। आहाहा! जिसे यह भान हो गया कि अरे! मैं तो यह राग, पुण्य-पाप के भाव भी नहीं और मैं एक समय की वर्तमान दशा उतना भी मैं नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो कितना?

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरा अस्तित्व पूर्ण है। मेरी अस्ति अन्दर अमाप गुण के स्वभाव से भरपूर समुद्र हूँ। आहाहा! ऐसी जिसे अन्तर में दृष्टि और वेदन हुआ, वह ज्ञानी और उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

हे सम्यग्दृष्टि जीव! किसी प्रकार कभी भी... किसी भी प्रकार से और कभी भी **ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड... 'कर्तुं' 'कर्तुं'** की यह व्याख्या की है—बाँधना। एक तो ऐसा कहना है कि सम्यग्दृष्टि जीव कब और किसी प्रकार से भी राग के कण की मिठास वह करता नहीं। राग के प्रेम में पड़कर राग को करता नहीं। जिसे भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु का जिसे प्रेम लगा है। समझ में आया? क्षेत्र से भले शरीर प्रमाण है, परन्तु भाव से वह अमाप है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह छहों द्रव्यों को है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छहों द्रव्य है। परन्तु दूसरे हैं, उनकी उन्हें कहाँ खबर है? इसे (जीव को) खबर है कि मैं यह हूँ और यह नहीं। उसे जाननेवाला बादशाह तो स्वयं है। आहाहा! दूसरे की अस्ति को भी, उस अस्ति की दूसरे को कहाँ खबर है? जड़ को जड़ की अस्ति की खबर है? इसी प्रकार आत्मा की अस्ति की जिसे खबर है, उसे ही पर की अस्ति की खबर है। खबर है, ज्ञान है। वे पर मेरे हैं, मैं उनका हूँ, यह बात तो धर्मी को होती नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि हे ज्ञानी! **'कर्तुं न उचितं'** शब्द तो ऐसा है। परन्तु इसका अर्थ यह किया कि तू कर्म बाँधने के योग्य नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म कोई चीज़ अपूर्व है। आहाहा! धर्मी ऐसा जो आत्मा, धर्म अर्थात् उसके अनन्त स्वभाव का धारक, धर्मी ऐसा जो भगवान आत्मा, प्रत्येक देह में भगवान भिन्न विराजता है। वह परमात्मस्वरूप स्वयं धर्मी है और उसके अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अमाप उसके धर्म हैं। आहाहा! वह यह धर्म करना, यह नहीं। उसका यह धर्म स्वभाव है। जब कोई ऐसा माने कि मुझे धर्म करना है तो उसका अर्थ हुआ कि उसकी वर्तमान दशा में धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : जिसे हुआ हो वह ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे करना है। धर्म करना है, उसे पहले मेरी दशा में धर्म नहीं। तो उसे धर्म करना है, तब उसको कहाँ दृष्टि करना? कि जिसमें वस्तु का धर्म जो अनन्त भरा है, उस पर दृष्टि करने से उसे पर्याय में धर्म होता है। राग पर दृष्टि करने से

पर्याय में अधर्म होता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो तीन प्रकार कहे। द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य, वह वस्तु आत्मा है, उसमें अमाप, अनन्त अमाप धर्म अर्थात् स्वभाव है। स्वभाववान प्रभु और स्वभाव उसके अनन्त हैं। परन्तु ऐसे अनन्त स्वभाव का एकरूप ऐसी जो वस्तु, उसकी जिसे दृष्टि हुई, उसे पर्याय में धर्म आया। द्रव्य-गुण में तो स्वभाव था। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें। बापू! आहाहा! देखो न यह पोपटभाई की बात की न? हिम्मतभाई ने। घण्टे भर तो सोये। नींद आ गयी थी। और घण्टे भर बाद जाना है परलोक, परभव। अररर! क्षण-पल में देह नाशवान है। किस काल में देह छूटेगी, इसका उसे निर्धर नहीं परन्तु निश्चय है, उसे भले निर्धार न हो। जिस समय में छूटनेवाली है, उसका केवलज्ञान में निर्धार है। आहाहा! और यहाँ बात करते ऐसा हुआ कि... पैसे करोड़ों कितने, दो करोड़ के ऊपर। आहाहा! (वढवाण) कांपवाले कोई आये होंगे तो कुछ पैसा चाहिए होगा तो पच्चीस हजार दिये। यहाँ सो रहे थे। एक घण्टे तो नींद आ गयी। कहो, यह संसार। जगे और जाना है परभव में। आहाहा! वह वस्तु नाशवान है, उसका भरोसा कहाँ? आहाहा! एकदम दर्द उत्पन्न हुआ और घबराहट हुई। टोकरी बजावे, लड़के आवे वहाँ तो श्वास चला, असाध्य हो गये। आहाहा! चल दिये। बुधवार को तो यहाँ थे। बैठे थे। यहाँ बैठे थे।

मुमुक्षु : आज बुधवार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस बुधवार को।

देह की क्षण की नाशवान दशा। यहाँ यह तो ठीक परन्तु अन्दर राग हो—दया, दान का, पुण्य-पाप के भाव, वे भी विकारी नाशवान चीज़, उसकी जिसे प्रीति और रुचि है, वह भले महाव्रत पालता हो, परन्तु है मिथ्यादृष्टि। आहाहा! मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि। जो स्वरूप सत् है, त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु जो है, उसकी दृष्टि नहीं अर्थात् सत्यदृष्टि नहीं। और राग के कण को और रजकण को अपना माने, वह असत्य मिथ्यादृष्टि है और वह मिथ्यादृष्टि अनन्त परिभ्रमण का कारण है। वह अनन्त भव करने का बीज है। भगवान आत्मा भव के अभावस्वभाव का वह तो कारण है। वस्तु, वह पर के अभाव का ही कारण है। क्योंकि भव और भव के भाव उसमें नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : भव उसमें नहीं, इसलिए उसकी पर्याय में नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में अभी कहाँ है? पर्याय में तो रागादि है।

स्वभाव में भव और भव के भाव का अभाव अर्थात् आनन्दकन्द प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा की जिसे दृष्टि हुई, उसे दृष्टि में लिया, उसे जिसने ज्ञान की वर्तमान पर्याय में ऐसे पूर्ण ज्ञायक को ज्ञेय बनाया... आहाहा! उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। जो अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी नहीं हुआ था।

यह जीव को कहते हैं, तुझे **पुद्गलपिण्ड बाँधने को योग्य नहीं है।** भाषा तो ऐसी है। अर्थात्? शुभ-अशुभराग को करनेयोग्य तू नहीं अब। समझ में आया? जिसे भगवान वीतरागमूर्ति जिनस्वरूप प्रभु, स्वीकार में दृष्टि में आया, हे धर्मी! अब तुझे विकार के परिणाम करना, उसके योग्य तू नहीं है। इसलिए उससे बन्ध हो, उस बन्ध के लिये तू योग्य नहीं है। समझ में आया? पाठ तो ऐसा है कि **ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड बाँधने को योग्य नहीं है।** इसका अर्थ यह कि राग-द्वेष के परिणाम को करने के योग्य अब तू नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। प्रभु! तू तो स्वभाव चैतन्य है, उसका तूने स्वीकार किया न? जो अनादि से पुण्य और पाप के भाव जो असंख्य प्रकार के हैं, उनका स्वीकार था, तब तू तो मिथ्या-झूठी दृष्टिवन्त था। परन्तु जो स्वरूप है, बेहद ज्ञान-आनन्दादि... आहाहा! जिसके गुण का माप नहीं। जो स्वभाववान वस्तु भगवान, उसके गुण जो है ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि, उन गुण की शक्ति का जिसे माप नहीं। आहाहा! इतनी अमाप शक्तियाँ हैं। ऐसे अमाप शक्तिवन्त को जिसने दृष्टि में स्वीकार किया, उसकी दृष्टि भी महा अमेय अक्षय हो गयी। आहाहा! वह दृष्टि अक्षय अर्थात् क्षय बिना की और अमेय अर्थात् मर्यादा बिना की प्रतीति हो गयी। जयसुखभाई! ऐसी बातें हैं बहुत सूक्ष्म।

मुमुक्षु : चारित्र में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र का दोष है, उसका कर्ता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। इसलिए कर्म बाँधता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो मिथ्यात्व सम्बन्धी जो बन्ध है, वह बन्ध नहीं, यह सिद्ध करना है। राग है परन्तु उसका कर्तापने यह मेरा है, इस प्रकार कर्ता नहीं; इसलिए उसे मिथ्यात्व नहीं, इसलिए उसे कर्मबन्धन नहीं है। आहाहा!

अभी-अभी देखो न तीन सेठिया चले गये। अभी थोड़े समय में। भाई गये—नवनीतभाई। करोड़ोंपति। चालीस करोड़वाला शान्तिप्रसाद। अब यहाँ आये और यहाँ बैठे थे। व्याख्यान सुने अभी दो-तीन-चार महीने से। वे गये। उनकी उम्र तो बहुत छोटी-६६। नवनीतभाई की ७८ और पोपटभाई की ७१। चले गये, लो! जिसके भव कहाँ? आहाहा! भगवान तो नित्य है, आत्मा तो नित्य है। देह के नाश से कहीं उसका नित्यपना चला जाता नहीं। आहाहा! वह तो कायम रहनेवाला है। परन्तु जिसकी दृष्टि में राग और पुण्य के परिणाम का कर्तापना है, वह सदा मिथ्या और भ्रमणा में रहनेवाला है। पर का तो कर सकता नहीं। स्त्री, परिवार का, कमाने का, धन्धे का, शरीर का तो कर सकता नहीं। यह माने तो भी कर नहीं सकता। आहाहा! मात्र मैं यह करूँ इस धन्धे का, यह धन्धा और दुकान की गद्दी पर बराबर बैठे ध्यान रखकर, यह तो मिथ्यात्व का अभिमान है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जिसे राग का कर्तापना छूट गया है, पर का कर्तापना तो कर सकता नहीं और था भी नहीं, परन्तु राग और पुण्य-पाप के भाव का कर्तापना था; था, वह छूट गया है। कैसे छूटा है? कि स्वरूप ज्ञाता-दृष्टा अनन्त आनन्द का प्रभु—सागर, उसके स्वीकार में उसके ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम के कर्तापने में उसे राग का कर्तापना छूट गया है। इसलिए उसे राग के कर्तापने के-मिथ्यात्व से जो बन्ध था, वह बन्ध उसे नहीं है। समझ में आया? आहाहा! है?

'**कर्तुं न उचितं**' आहाहा! इस विकार के परिणाम को करने की तू योग्यतावाला ही नहीं। मिथ्यादृष्टि विकार के परिणाम करने की योग्यतावाला है। क्योंकि उसने वस्तु को देखा-जाना अनुभव किया नहीं। आहाहा! बहुत मार्ग ऐसा है, भाई! तूने तो आत्मा को देखा है न, कहते हैं। आहाहा! चैतन्यमूर्ति भगवान अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त-अनन्त ईश्वर, प्रभुता—ऐसी अनन्त-अनन्त अमाप शक्ति का सागर प्रभु... आहाहा! क्या है यह वह? ऐसी जिसकी शक्ति की संख्या का माप नहीं। ऐसे अमाप शक्ति के सागर को जिसने अनुभव करके प्रतीति में लिया, उसे अब राग का कर्तापना रहता नहीं। वह राग आवे, उसका वह ज्ञाता है। चन्दुभाई! ऐसी बात है। आहाहा!

यह '**कर्तुं**' इसलिए फिर अर्थ किया। वह राग करने के योग्य नहीं, इसलिए बाँधने के योग्य नहीं, ऐसा इसका अर्थ किया। समझ में आया? **भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीव के कर्म का बन्ध नहीं है।** यहाँ मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के परिणाम का जो बन्ध है, वह बन्ध नहीं, इतनी बात करनी है। उसमें से कोई ऐसा ही ले लेवे... आगे तो कहेंगे। १५२ में '**त्यागैकशीलो मुनिः**' मुनि शब्द लेंगे। १५२ है न? अन्तिम शब्द है। १५२ श्लोक का अन्तिम शब्द–'**मुनिः**'। परन्तु अर्थ में करेंगे सम्यग्दृष्टि जीव। वजन वहाँ देना है न? आहाहा!

तेरे घर में इतना फर्नीचर पड़ा है—तेरे घर में इतना फर्नीचर पड़ा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसे अनन्ता अनन्त अमाप शक्ति का फर्नीचर पड़ा है। आहाहा! उसका जिसे प्रेम लगा, उसे राग के कण का प्रेम छूट जाता है। इसलिए उसे राग के प्रेम के मिथ्यात्वभाव से जो बन्ध होता था, वह उस सम्यग्दृष्टि को नहीं होता। इतनी ही यहाँ बात लेना। सर्वथा बन्ध नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु यह मिथ्यात्व और अनन्त संसार का कारण अनन्तानुबन्धी, उससे जो बन्ध होता था, वह बन्ध नहीं है। और वास्तविक बन्ध ही वह, मिथ्यात्व ही, वह संसार का कारण है। मिथ्यात्व, वह संसार; मिथ्यात्व, वही आस्रव और मिथ्यात्व, वही बन्ध है। आहाहा! आता है न? आहाहा! परन्तु मिथ्यात्व और सम्यग्दर्शन के बीच विभाजन क्या, यह कठिन काम है। आहाहा! कोई शरण नहीं। शरण अन्दर भगवान आत्मा है, वहाँ जाता नहीं। कहते हैं कि जो अन्तर में गया, उसे अब राग का कर्तापना रहता नहीं। इसलिए उसे बन्धन नहीं। उस प्रकार का बन्धन नहीं। आसक्ति है, उसका बन्धन है। उसे यहाँ गौण करके सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी के अभाव की मुख्यता करके उसे बन्धन नहीं है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा!

'**तथापि किञ्चित् उच्यते**' तो भी कुछ विशेष है, वह कहते हैं—'**हन्त यदि मे परं न जातु भुंक्षे भोः दुर्भुक्तो एव असि**' अरे! हम खेद से कहते हैं कि... आहाहा! है न? **कड़क वचन के...** खेद से कहते हैं कि भोगने में तुझे प्रेम है और भोगता है और तू कहता है कि हम भोगते नहीं, हमको बन्धन नहीं। ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! हम सम्यग्दृष्टि हैं, इसलिए पाँच इन्द्रिय के विषय के भोग हम भोगें तो भी

हमारे बन्ध नहीं है, ऐसा तुमने जो कहा है, बापू! वह भोग में प्रेम है न, भोगने का तुझे प्रेम है या प्रेम नहीं, यह प्रश्न कर। यदि तुझे भोगने का प्रेम है, तब तो तू मिथ्यादृष्टि है। तूने आत्मा जाना नहीं। आहाहा!

जिसे आत्मा के आनन्द का अनुभव / भोग हुआ, उसे पर को भोगने में प्रेम बिल्कुल नहीं हो सकता। आहाहा! उसे आसक्ति का भाव आवे परन्तु जैसे काला नाग देखे, वैसा उसे दुःख लगता है। विषय-वासना के राग को, अरे! दया-दान के राग को। अपनी शान्ति के समक्ष उस राग को वह दुःख और अशान्ति देखता है। देवजीभाई! ऐसी बातें हैं। अज्ञानी उस राग में, पुण्य और पाप के भाव में मजा है, ठीक है, हर्ष है, वीर्य के उल्लसित में हर्षित हो जाता है। वह मिथ्यादृष्टि है। वह अनन्त संसार के बीज का सेवन करता है। आहाहा! यह कहते हैं।

जो ऐसा जानकर भोगसामग्री को भोगता है कि मेरे कर्म का बन्ध नहीं है। ऐसा जानकर पंचेन्द्रियविषय भोगता है तो अहो जीव! अरे... आत्मा! तू यह क्या करता है? आहाहा! सम्यग्दृष्टि नाम धराकर भोग की सामग्री के प्रेम से भोगता है, यह क्या तुझे शोभा देता है? आहाहा! समझ में आया? बात सूक्ष्म है। जिसे अन्दर राग में रस है और कहता है कि हम सम्यग्दृष्टि हैं और हम राग के रस को रस से हम भोगते हैं। '**दुर्भुक्तः**' आहाहा! तू जहर पीनेवाला है। तू विष्टा खानेवाला है। '**दुर्भुक्तः**' भोगने के योग्य नहीं, उसे तू भोगता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

अरे..! अनन्त काल... अनन्त काल, बापू! उसके काल की मर्यादा विचारी कब है इसने? इससे पहले कहाँ... कहाँ... कहाँ... कहाँ... कहाँ... था? ऐसे था... था... था... था... था... तो ऐसे अनन्त काल में कहाँ था? आदि नहीं, ऐसे अनन्त काल में कहाँ था? दुःख में था। राग के दुःख में था, प्रभु! आहाहा! वादिराज मुनि कहते हैं न? वादिराज मुनि को शरीर में कोढ था। बाद में तो पुण्य का उदय और भक्ति से कोढ मिट गया, ऐसा कहा जाता है। मूल तो पुण्य का उदय और ऐसा होनेवाला था। फिर कहते हैं, स्वयं मुनि हैं, आनन्द के रसिक हैं, परन्तु जरा विकल्प उठता है न, उसके कारण ऐसा कहते हैं, प्रभु! मैं मेरे अनन्त काल के दुःख को स्मरण करता हूँ तो मुझे आयुध की

चोट लगती है। इसका अर्थ तो यह है कि विकल्प उठता है, उसका मुझे दुःख लगता है। समझ में आया?

मैं अनन्त काल में कहाँ रहा? मुनि, हों! जिन्हें एक भव में मोक्ष जाना है। स्वर्ग में जाकर। आहाहा!आयेगा। दोपहर का अधिकार नहीं? '**एको मोक्षपथो**' यह आयेगा न आज? उसमें लेंगे कि जिसे तीन भव में तो मोक्ष ही जाना है अब। इस भव में भले न जाये। पंचम काल के हैं इसलिए। टीका में है, संस्कृत टीका में। आहाहा! जिसे यहाँ से स्वर्ग में और वहाँ से मनुष्य। ऐसे तीन भव तो हों, तथापि वह मोक्षपंथ में है। उसे तीसरे भव में तो संसार का अन्त आकर केवलज्ञान, सादि-अनन्त केवलज्ञान प्रगट होगा। आहाहा!

यहाँ एक प्राणी राजा हो और महामिथ्यात्व को सेवन करता हो। माँस और शराब का खुराक न हो। वह जैसे यहाँ से छूटकर निगोद में जाता है। आहाहा! वह अनन्त काल में निगोद में से निकलकर एकेन्द्रिय होना मुश्किल, ऐसी स्थिति में जाता है। यह आत्मा का ज्ञान और अनुभवी जीव, मुनि की प्रधानता से बात लेनी है कि वे यहाँ आत्मा के अनुभव में रहे, भले राग थोड़ा बाकी है, परन्तु उसका कर्तृत्व नहीं, उसका अब प्रेम नहीं। आहाहा! हाथ में नाग पकड़ा हो, उसे अब प्रेम है? परसों मर गया न यहाँ गरासिया? परसों यहाँ। ४०-४२ वर्ष की उम्र का। सर्प को हाथ से पकड़ता था। उसे आदत थी। सर्प का मुख पकड़े। बड़ी नागिन थी, उसे पकड़ा। ऐसे बहुतों को पकड़कर डाल आया था। परन्तु बराबर शराब पिये हुए और उसे पकड़ा। उसने—नागिनी ने यहाँ से लपेटा लिया। नागिनी को लपेटा लिया। उसमें कुछ यहाँ पोचा पड़ गया। डंक मारा। अविवाहित था। कोई नहीं था। अकेला गरीब व्यक्ति। वह रात्रि में सो रहा था, मर गया। हो गया। सवेरे देखा तो मर गया। जहर चढ़ गया, जहर। आहाहा!

जिसे राग मेरा, पुण्य मेरा —ऐसे मिथ्यात्व का जहर चढ़ गया है, वह अन्धेरे में —अज्ञान में सो गया है। आत्मा के स्वभाव की जीवित ज्योति को उसने मार डाला है। महाप्रभु चैतन्य आनन्द का नाथ, उससे विरुद्ध राग के प्रेम में ऐसा आत्मा पूर्णानन्द का अमाप शक्ति का स्वामी, उसका अस्वीकार किया अर्थात् उसका नकार किया। आहाहा!

तब सम्यग्दृष्टि जीव अमाप ऐसी शक्ति का सागर प्रभु, ऐसा जिसका अन्तर ज्ञान की और आनन्द की पर्याय में वेदन आया। आहाहा! वह अब अल्प काल में केवलज्ञान लेनेवाले हैं। राग है, उसका वह अब कर्ता नहीं। इसलिए उसका फल भवादि भी उसे नहीं है। समझ में आया? आहाहा! एक-दो भव हो, वे ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? उसे अल्प काल में केवल (होनेवाला है)। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल अब आनन्द में रहेगा, यह उसकी दशा। वह (अज्ञानी की) अनन्त-अनन्त काल निगोद में-दुःख में दशा। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि हे सम्यग्दृष्टि! तू पंचेन्द्रिय विषय को भोगता है। है? **भोगता है तो अहो जीव! ऐसा जानकर भोगों का भोगना अच्छा नहीं। 'दुर्भुक्तः'** हो। वह भोगने के योग्य नहीं, उसे तू भोगता है। मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का नाम लेकर विषय भोगने को निर्जरा कहा और बन्ध नहीं, ऐसा कहा, इसलिए तू भोगने के प्रेम से भोगता है तो **'दुर्भुक्तः'** है। जहर को पीता है। याद रख। वहाँ पोपाबाई का राज नहीं है। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं, पहला तो कहा था, भोग। आया था? **'भुक्तः'** वह तो **'भुक्तः'** कहा था अर्थात्? कि परद्रव्य से तुझे नुकसान है, यह दृष्टि छोड़ दे। परद्रव्य तुझे नुकसान करे, यह बात नहीं है। तू तेरे स्वभाव से विरुद्ध भाव कर, वह तुझे नुकसान है। ऐसा सिद्ध करने के लिये यह कहा है कि भोग अर्थात् परसन्मुख के लक्ष्यवाला राग हो तो हो। परन्तु उसके कर्तापने का भाव नहीं और भोगने का प्रेम नहीं, इसलिए तू उसका भोक्ता नहीं है। समझ में आया? ऐसी बातें।

यहाँ कहते हैं कि तू सम्यग्दृष्टि नाम धराकर पाँच इन्द्रिय के विषय के भोग के प्रेम में फँसा है और मुझे निर्जरा होती है, ऐसा मानता है तो तू **'दुर्भुक्तः'** है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि—जिसे आत्मा के आनन्द का भान आया। आहाहा! सम्यग्दृष्टि अर्थात्? धर्म की पहली सीढ़ी। उस सम्यग्दर्शन में तो अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, प्रभु! अनन्त गुण का सागर ऐसा उसे दृष्टि में, अनुभव में आया। उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! सत्यदृष्टि। सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टि, सच्ची दृष्टि। जैसा वह पूर्णानन्द का नाथ भगवान पूर्ण अनन्त आनन्द का सागर है, ऐसी ही पर्याय में अपरिमित श्रद्धा और

ज्ञानदशा में आनन्द की दशा भी आयी। आहाहा! उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि धर्म के-मोक्ष के महल की पहली सीढ़ी कहा जाता है। आहाहा!

वह जीव ऐसा कहे कि... उसे यहाँ ऐसा कहा, जिसे सम्यग्दृष्टिपना—आत्मा शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनन्द का जिसे वेदन आया और अनुभव में प्रतीति हुई, उसे अब पाँच इन्द्रिय के विषय भोग। तुझे बन्ध नहीं, ऐसा कहा था। वह किस अपेक्षा से कहा था? वह तो तुझे अन्दर में आसक्ति का जरा रागभाव, प्रेम बिना आवे, उसे तू भोग—ऐसा कहने से सम्यग्दर्शन और आनन्द के भोग के अतिरिक्त तुझे राग का भोगने का प्रेम नहीं, इसलिए भोग, ऐसा कहा था। आहाहा! और ऐसा समझकर सम्यग्दृष्टि हैं, इसलिए अब चाहे जितने विषय सेवन करें, भोग भोगें तो हमको बन्ध नहीं। (ऐसा मानेगा तो) मर जायेगा। आहाहा! यह पुण्य के परिणाम, दया, दान, व्रत के परिणाम राग, उस राग का भी भोक्ता और कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि है। उसके बदले तू कहता है कि यह पंचेन्द्रिय के विषय भोगकर मुझे निर्जरा है, बन्धन नहीं। ऐसा नहीं है। आहाहा! अजर प्याला है। समझ में आया? यह कहा।

जो ऐसा है कि भोगसामग्री को भोगते हुए ज्ञानावरणादि कर्म का बन्ध नहीं है तो अहो सम्यग्दृष्टि जीव! तेरे... '**कामचारः**' है। उसे भोगने की तुझे इच्छा है? और भोगता है? क्या है यह तुझे? आहाहा! '**कामचारः**' भाव है तुझे भोगने का? राग का-पुण्य के पाप के भाव का तुझे भाव है? तुझे इच्छा है? इच्छा से भोगे तो तू मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! धर्मी जीव को तो आत्मा के आनन्द की मिठास के समक्ष भोग की वासना काले नाग जैसी लगती है। काला नाग जैसे देखे और त्रास हो, वैसे धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव को विषय की वासना का भाव काला नाग जैसा, जहर जैसा दिखता है। उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और तू कहे कि मुझे तो सम्यग्दृष्टि है और मुझे भोगने की इच्छा भी है (तो) '**दुर्भुक्तः**' है। भोगने के योग्य नहीं, उसे भोगे तो मिथ्यादृष्टि है।

(श्रेणिक राजा) आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है! समझ में आया? वह पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त गुण का सागर आत्मा,

उसके ज्ञान की पर्याय में वेदन आना, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आवे, उसमें प्रतीति (हो), उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उस सम्यग्दृष्टि को भोग, इन्द्र के, इन्द्राणी के या चक्रवर्ती के हों। भरत चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं। परन्तु वह भोग की वृत्ति थी, वह जहर जैसी, काले नाग जैसी दिखती थी। आहाहा! अस्थिरता के कारण राग था, परन्तु काला नाग देखे, वैसे उसे त्रास होता था—सम्यग्दृष्टि को। और जैन नाम धरावे और दृष्टि में राग की मिठास हो और भोग में प्रेम हो (तो) वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान, सेये नहीं गुरु सन्त को, छोड़ा नहीं अभिमान।' क्या चीज़ है? आहाहा! वह कौन? सर्वज्ञ, जिनेन्द्र। परमेश्वर ने कहा आत्मा। दूसरे जो कहते हैं, वह तो देखे बिना कल्पना से बातें करते हैं। परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिनेन्द्रदेव ने जो आत्मा, अनन्त आत्मायें देखे... आहाहा! वह आत्मा किसने देखा? कैसे देखा? आहाहा! ऐसा स्तुति में आता है। 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल। प्रभु तुम जाणग रीति।' सीमन्धर भगवान तो महाविदेह में विराजते हैं। साक्षात् तीर्थंकर त्रिलोकनाथ विराजते हैं। आहाहा! पाँच सौ धनुष का देह, करोड़ पूर्व का आयुष्य, सौ-सौ इन्द्र जिनकी सभा में जाते हैं। अभी महाविदेह में विराजते हैं। स्तुतिकार कहता है, 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल। निज सत्ता से शुद्ध सबको पेखता हो लाल।' सबको देखते हैं, प्रभु! हमारा आत्मा जो निज सत्ता से शुद्ध आनन्दकन्द है, उसे तुम आत्मा कहते हो, उसे तुम आत्मा जानते हो। यह शरीर मिट्टी, धूल वह तो अजीव धूल-मिट्टी है। अन्दर पुण्य और पाप के भाव हों—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के, वह तो राग है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना के भाव हों, वह पापराग है। आहाहा! वह राग आत्मा नहीं। भगवान ने उसे देखा नहीं। नौ तत्त्व में जो राग है, वह तो पुण्य-पापतत्त्व में जाता है। शरीर, वाणी, कर्म, वह तो अजीवतत्त्व में जाता है। भगवान जो आत्मा अन्दर है, वह ज्ञायकतत्त्व में आता है। वह तो शुद्ध-चैतन्य आनन्दघन है। 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता' निज सत्ता से शुद्ध—हमारा आत्मा अस्तिरूप से शुद्ध है, पूर्ण आनन्द है, उसे आपने आत्मा देखा है। उसे आपने आत्मा कहा है। आहाहा! ऐसी बातें! अरे! इसने कभी.... अनन्त काल परिभ्रमण

करते-करते द्रव्यलिंगी साधु अनन्त बार हुआ, परन्तु आत्मा अन्दर राग से भिन्न अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, उसका सम्यग्दर्शन और आनन्द का वेदन उसने नहीं किया। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव राग-द्वेष-मोह से रहित है। क्या? राग-पुण्य के परिणाम भी मेरे हैं, ऐसे मिथ्यात्वभाव का जिसे नाश हो गया है और अनन्तानुबन्धी जो परवस्तु को अनुकूल देखकर राग, प्रतिकूल देखकर द्वेष (होता था), ऐसा जो अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष का नाश हो गया है। चन्दुभाई! आहाहा! ऐसी बात, बापू! अरे! उसने संसार में हर्ष में चौरासी के अवतार यह राग के, प्रेम के हर्ष में उसने अनन्त अवतार किये। आहाहा! परन्तु राग से भिन्न भगवान अन्दर अनन्त गुण का नाथ है, उसे कभी देखा नहीं, जाना नहीं, स्वीकार नहीं किया, माना नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं।

ज्ञानी **राग-द्वेष-मोह से रहित है।** इस प्रकार के। जो राग का भाव दया-दान का है, वह भी राग है। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि, भगवान का स्मरण, वह सब विकल्प है, वृत्ति है, राग है, विकार का उत्थान है। आहाहा! उसका जिसे प्रेम नहीं, रुचि नहीं; रुचि आत्मा के आनन्द की है, उसे मिथ्यात्व का राग नहीं है। आहाहा! उसे भ्रमणा नहीं और भ्रमणा सम्बन्धी में राग-द्वेष जो अनुकूल-प्रतिकूल देखकर करता था, वह नहीं। निर्बलता के कारण राग-द्वेष है, उन्हें यहाँ गिना नहीं है। आहाहा!

माता-जननी हो और उसके साथ भोग लेने का करे कोई? तो कैसा उसे होता होगा? मिठास लगती होगी? आहाहा! नौआखली में हुआ था न? नौआखली नहीं? गाँधी गये थे। नौआखली में मुसलमानों ने माँ और पुत्र को नग्न करके दोनों को भिड़ा दिया नग्न करके। आहाहा! अरे! जननी और मैं, यह क्या है यह? क्या होता है? जमीन मार्ग दे तो समा जायें। जैसे उसे वहाँ प्रेम नहीं। देखने को निवृत्त नहीं। देखे नहीं। आहाहा!

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को भोग के राग और माता के प्रेम के साथ भोग करना ऐसा भोग मानता है। आहाहा! बापू! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, वह कोई अलौकिक

बात! उसके बिना सब थोथा है। यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र परमेश्वर वीतराग साक्षात् महाविदेह में विराजते हैं। महावीर भगवान आदि तो णमो सिद्धाणं में गये। वे तो दूसरे पद में गये। यह तो पहले पद में विराजते हैं। णमो अरिहंताणं में। चार कर्म गये, चार कर्म बाकी हैं। आहाहा!

अभी आया था न एक व्यक्ति, लो! तीर्थंकर होकर आया हमारे पास। आहाहा! अरे! प्रभु! तू यह क्या करता है? कहा। महाराज! मैं सत्य कहता हूँ। मैं तीर्थंकर हूँ। मुझे चार कर्म का नाश हुआ है। चार कर्म बाकी हैं। भगवान को चार कर्म बाकी थे तो पैसा नहीं था। मैं गरीब हूँ। मैं हूँ केवली। अरर! यहाँ आया था मेरे पास। सब बैठे थे। व्याख्यान सुना और फिर अन्दर स्वाध्याय में जाकर बैठा। मैं सत्य कहता हूँ, महाराज! अरे... भाई! क्या करता है तू यह? आहाहा! अरे! केवली किसे कहा जाता है? तीर्थंकर किसे कहा जाता है? बापू! तुझे खबर नहीं। किस गाँव का कहा वह?

मुमुक्षु : प्रतापगढ़।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतापगढ़ (का) चाँदमल था। वापस ऐसा कहा, बापू! तू यह क्या करता है? मिथ्यादृष्टि है, भाई! तीर्थंकर और केवली किसे कहें, बापू! अभी साधु किसे कहें, उसकी खबर तुझे नहीं है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि है। हमने तो शान्ति से कहा। अपने कहीं किसी व्यक्ति का... भाई! तेरी यह दृष्टि मिथ्या है। तो भी सुने। खड़े होकर फिर चरण छुए, अरे! बापू! तूने यह क्या किया? आहाहा! एक विपरीतता घुस जाती है न?

यहाँ कहते हैं, सम्यग्दृष्टि नाम धराकर तू भोग को भोगता हो तो इच्छा है या नहीं? इच्छा है भोगने की तो तू सम्यग्दृष्टि नहीं। और इच्छा नहीं तो उसे मिथ्यात्व सम्बन्धी के मिथ्या राग-द्वेष और मिथ्यात्व नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें! है? **वही सम्यग्दृष्टि जीव...** जिसे राग-द्वेष-मोह मिथ्यात्व... भोग के भाव में जहर देखता है। उसे राग आता है शुभभाव, उसे वह भट्टी देखता है। समकिती किसे कहें, बापू! तुझे खबर नहीं। यह शुभभाव आवे, उसे कषाय अग्नि-कषाय का अंश है वह। आहाहा! तेरी शान्ति में वह शुभराग अशान्ति है, ऐसा धर्मी सम्यग्दृष्टि जानता है। समझ में आया?

उसे उस सम्बन्धी के—मिथ्यात्व सम्बन्धी के राग-द्वेष नहीं हैं। आहाहा!

यदि सम्यक्त्व छूटे... आहाहा! इस राग के कण का भी यदि प्रेम और रुचि हो और आनन्द की रुचि नाश हो जाये। भगवान ज्ञाता-दृष्टा प्रभु, वह तो ज्ञान का सागर है। आहाहा! जो सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है। सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्त होते हैं, वे कहाँ से हुए? सर्वज्ञ पर्याय आयी कहाँ से? बाहर से आती है कहीं से? बापू! तुझे खबर नहीं। तेरा सर्वज्ञस्वभाव है। भगवान! तेरी शक्ति सर्वज्ञ है। उसमें से सर्वज्ञ पर्याय आती है। आहाहा! जयसुखभाई! यह वकालत अलग प्रकार की है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ तीर्थंकर प्रभु साक्षात् विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। आहाहा! सन्तों ने उसका स्पष्टीकरण किया है। सन्त आड़तिया होकर भगवान का माल देते हैं। माल तो तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर का है। वे आड़तिया होकर जगत को कहते हैं। एक बार सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता में राग और द्वेष का अंश नहीं। ऐसी तेरी अन्दर प्रभुता भरी है। उसका जिसे सम्यग्दर्शन भाव हुआ, उसे राग के कण की मिठास उड़ जाती है, उसे 'राग आग दहे सदा, तातै समामृत सेवीये।' राग का कण है, वह भी आग-दाह है। आहाहा! अरे! भाई! तुझे कैसे बैठे उसे? भगवान आत्मा तो शान्त सागर है। उसमें राग का कण उठे, शुभ हों!... आहाहा! दया, दान, व्रत, तप के विकल्प उठे, वह 'राग आग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेवीये।' अमृत का सागर भगवान समता से भरपूर। आहाहा! उसे सेविये। आहाहा!

'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन' घट में जिन प्रभु विराजता है अन्दर। आहाहा! आत्मा जिनस्वरूप ही है। जिनस्वरूप 'घट घट अन्तर जिन बसे, अरु घट घट अन्तर जैन।' उस जिनस्वरूप का भान होकर, राग की मिठास तोड़कर आनन्द की मिठास आयी है, उसे जैन कहते हैं। वह जैन घट में अन्दर में है। घट-शरीर, वाणी में कुछ नहीं आता जैनपना। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन, परन्तु मतमदिरा के पानसो...' अपने मत की मदिरा पीये हुए वे 'मतवाला समझे न' वह मतवाला चैतन्य भगवान आनन्द के नाथ को जानते और पहिचानते नहीं। आहाहा! अपने अभिप्राय के मत में चढ़ गये, वे जैन के

अतिरिक्त स्वरूप की खबर नहीं अन्दर उसे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

ऐसे जैन समकित दृष्टि को मिथ्यादृष्टिपना नहीं, राग-द्वेष नहीं। आहाहा! **मिथ्यात्वरूप परिणमे...** वह राग की मिठास के प्रेम में जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। आहाहा! राग, वह व्यभिचार है। व्यभिचार के प्रेम में चढ़ा, उसे आत्मा ब्रह्मानन्द भगवान, ब्रह्म के आनन्द का; ब्रह्म अर्थात् आत्मा और आनन्दस्वरूप, उसका उसे प्रेम का नाश हो जाता है। आहाहा! अब यह ऐसी कठिन बातें... वे तो कहे, छह काय की दया पालन करो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो। अरे! भगवान! तू सुन न प्रभु! वह सब क्रियायें तो विकल्प हैं, राग है। आहाहा! रागरहित भगवान अन्दर विराजता है। उसकी श्रद्धा और ज्ञान से यदि भ्रष्ट हुआ, तब तो मिथ्यादृष्टि हुआ। आहाहा! भले क्रियाकाण्ड वह के वह रहें। **राग-द्वेष-मोहरूप परिणमता है—ऐसा कहते हैं। विशेष बात है। 'ज्ञानं सन्'** परन्तु आत्मा के आनन्द का ज्ञान अनुभव कर उसमें रहे न। राग के अनुभव में भोग में सम्यग्दृष्टि कैसे जाये? विशेष बात है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १५, शुक्रवार, दिनांक-२५-११-१९७७, कलश-१५१-१५२, प्रवचन-१५९

कलशटीका, १५१ कलश। अन्तिम शब्द हैं। पाँच लाईन। यहाँ तक (आया है)। **क्योंकि मिथ्यादृष्टि होता हुआ राग-द्वेष-मोहरूप परिणमता है...** है? क्या कहते हैं? अपना जो ज्ञानानन्दस्वभाव नित्य ध्रुव, उसकी जिसे दृष्टि नहीं, आश्रय नहीं, ऐसा जो मिथ्यादृष्टि, वह राग के भाव को पुण्य या पाप का भाव, उसका कर्ता होकर और उसका रस भोगता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं। जिसे आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूपी प्रभु की जिसे दृष्टि नहीं अर्थात् कि जिसे आत्मा के आनन्द का रस नहीं, और राग का रस है। आहाहा! वह राग के रसवाला मिथ्यादृष्टि, राग-द्वेष-मोहरूप होता है। समझ में आया? आहाहा! चाहे तो वह बाहर से त्यागी हो, परन्तु अन्दर में चैतन्य आनन्दस्वरूप वस्तु जो पूरी ध्रुव, अनन्त गुण का समूह, ऐसे भगवान आत्मा की जिसे अन्तर में रुचि नहीं, जिसका परिणमन हुआ नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं अर्थात् कि उसकी निर्मल आनन्द की दशा का होना नहीं, वह राग और द्वेष और मोहरूप होता है, वह कर्मबन्धन को करता है। ऐसी बातें हैं।

अब कहते हैं, '**ज्ञानं सन् वस**' इतना शब्द है। ज्ञान होता हुआ वश। अर्थात्? सम्यग्दृष्टि जीव (ऐसा मानता है कि) मैं तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञान, वह आत्मा और आत्मा, वह ज्ञान। यह रागस्वरूप मैं नहीं। चाहे तो दया, दान, व्रत के विकल्प उठें—राग, वह भी मैं नहीं। मैं तो '**ज्ञानं सन् वस**' ज्ञानस्वरूपी भगवान का अनुभव करके उसमें वश तो तुझे कर्मबन्धन नहीं है, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व सम्बन्धी की मुख्यता से बात है। मिथ्यात्व महाश्रद्धा विपरीत, उसके जैसा कोई संसार और आस्रव और बन्ध नहीं है। और सम्यग्दर्शन जैसा कोई संवर और धर्म नहीं है। शुरुआत। उसे यहाँ मुख्यता से वर्णन किया है। आहाहा!

भगवान आत्मा तो जिनस्वरूपी वीतरागस्वरूप है। उसकी रुचि छोड़कर, उसका पोषण आनन्द का पोषण छोड़कर राग की आकुलता का जिसे पोषण है, वह मिथ्या—झूठी दृष्टि है। आहाहा! उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप पर्याय में उसका परिणमन होता

है, इसलिए वह कर्म को बाँधता है। अरे! ऐसी बातें। कहो, शर्तें कितनी? और '**ज्ञानं सन् वस' सम्यग्दृष्टि होता हुआ...** अर्थात्? भाषा तो इन्होंने सरल कर दी है। कहना है कि आत्मा ज्ञान, आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि करके उसमें रहा है, वह समकिती है। समझ में आया? आहाहा! राग का कण भी मेरा है और राग का रस जिसे है, उसे आत्मा का रस नहीं। और जिसे आत्मा का रस है, उसे राग का रस नहीं। राग हो, परन्तु रस नहीं। अर्थात् कि एकत्वबुद्धि नहीं। अर्थात् कि दुःख को अपने स्वभाव के साथ समकिती मिलाता नहीं। अरेम! ऐसी बातें हैं।

'**ज्ञानं सन्**' ज्ञानी। अर्थात् ज्ञानस्वरूप होता हुआ, ऐसा। मैं तो चैतन्यस्वरूप ज्ञान-आनन्द उस स्वरूप मेरा रूप है। वह मैं हूँ। ऐसा जिसे अनुभव होकर, ज्ञान अर्थात् आत्मा का अनुभव होकर, जो ज्ञान आत्मा वह मैं हूँ—ऐसा जिसे बसा है, दृष्टि में आत्मा बसा है। है? **जितने काल प्रवर्तता है, उतने काल बन्ध नहीं है।** मिथ्यात्व सम्बन्धी की अभी बात लेनी है। आहाहा! वह तो राग से लेकर पूरी दुनिया, (का रस नहीं)। और जिसे राग का रस है, कर्तापने की बुद्धि है, उसका रचनेवाला मैं हूँ, ऐसी बुद्धि में पूरी दुनिया के कर्तापने की वह मान्यता है। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : बहिनश्री के बोल में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह है। उसमें भी है न! वैसे तो राग का कर्ता हो, वह हो गया, पूरी दुनिया का कर्ता है। भगवान आत्मा का कर्ता नहीं। आहाहा! वह यहाँ है। वह यहाँ कहा न?

'**ज्ञानं सन् वस**' राग के वश पड़ा है, वह तो मिथ्यादृष्टि पूरे संसार में रुलने के कारणरूप को सेवन करता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सादी गुजराती भाषा सादी है। एक ओर भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु और एक ओर राग के कण से लेकर रजकण और जगत, दो चीज़। जिसे भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु का जिसे पोषाण, रुचि, अनुभव नहीं... आहाहा! उसे राग का अनुभव है और उसमें उसे मिठास और रस है। वह झूठी दृष्टिवन्त मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष-मोहरूप परिणमकर आठों कर्म को बाँधता है।

परन्तु ज्ञान-आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसे आनन्द में रहकर '**वस**' आहाहा! '**ज्ञानं सन्**

वस' स्वरूप होकर वश। चैतन्यस्वरूप। आहाहा! यह अनाकुल आनन्द का रसकन्द प्रभु, उसका अनुभव करके उसमें वश (तो) तुझे बन्धन नहीं है। समझ में आया? उसे राग का कर्तापना उड़ गया है। इसलिए उसके फलरूप से बन्धन और फलरूप से संयोग उसे नहीं है। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! एक ओर प्रभु का प्रेम, तो उसे राग का प्रेम नहीं। जिसे राग का प्रेम, उसे भगवान आत्मा का प्रेम नहीं। आहाहा! बहुत अन्तर। धर्म ऐसा। वह दया पालना, व्रत पालना सरल था, लो! उसमें ऐसा कठिन निकाला। एक व्यक्ति कहता था। कठिन निकाला है यह, हों! आहाहा!

'**ज्ञानं सन् वस**' तो तुझे जितना काल आत्मा ज्ञाता-दृष्टारूप वर्ते, रहे, उतना काल उसे बन्ध नहीं। यहाँ बन्धन मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की मुख्यता से बन्धन कहा है। वह बन्धन है परन्तु उसे गौण कर दिया है। आहाहा! '**अपरथा स्वस्य अपराधात् बन्धं ध्रुवं एषि**' आहाहा! '**अपरथा**' जिसे ज्ञान और आनन्द में दृष्टि और रुचि नहीं। '**अपरथा**' अपर अर्थात् राग के रस में जो पड़ा है। अपर। स्वरूप से पर में रहा है। आहाहा! जिसे राग की रुचि है, जिसे राग पोसाता है, जिसे राग मीठा लगता है। आहाहा! ऐसा '**अपरथा**' **मिथ्यादृष्टि होता हुआ... 'स्वस्य अपराधात्' अपने ही दोष से...** कर्म के कारण से नहीं। अपने दोष से। यह आनन्द और ज्ञान प्रभु, उसके रस का प्याला छोड़कर जिसने राग के रस का प्याला पीया, कहते हैं, वह अपने अपराध से बँधता है। आहाहा! ऐसी बातें। समझ में आया?

'**अपरथा**' अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि से अपर-दूसरा। जिसे राग का रस है। आहाहा! जिसे भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ, उसके प्रति का रस नहीं, ऐसा अपर मिथ्यादृष्टि जीव अपने ही अपराध से होता हुआ। **अपने ही दोष से...** देखा! **रागादि अशुद्धरूप परिणमन के कारण...** यह राग मेरा है, ऐसा परिणमता हुआ। आहाहा! मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध को। यहाँ '**बन्धं ध्रुवं एषि**' निश्चय से बन्ध को पायेगा। अवश्य कहा न? अवश्य। निश्चय से। वह बन्ध को—अवश्य मिथ्यात्व के बन्ध को पायेगा। आहाहा! बहुत संक्षिप्त है, परन्तु गम्भीर है। यह यहाँ पूरा हुआ।

कलश-१५२

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः।।२०-१५२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'तत् मुनिः कर्मणा नो बध्यते' [तत्] तिस कारण से [मुनिः] शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव, [कर्मणा] ज्ञानावरणादि कर्म से [नो बध्यते] नहीं बँधता है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'हि कर्म कुर्वाणः अपि' [हि] निश्चय से [कर्म] कर्मजनित विषयसामग्री-भोगरूप क्रिया को [कुर्वाणः अपि] करता है — यद्यपि भोगता है, तो भी 'तत्फलपरित्यागैकशीलः' [तत्फल] कर्मजनित सामग्री में आत्मबुद्धि जानकर, रंजकपरिणाम का [परित्याग] सर्वथा प्रकार स्वीकार छूट गया, ऐसा है [एक] सुखरूप [शीलः] स्वभाव जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीव के विभावरूप मिथ्यात्वपरिणाम मिट गया है, उसके मिटने से अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रियसुख, अनुभवगोचर हुआ है। और कैसा है? 'ज्ञानं सन् तदपास्तरागरचनः' ज्ञानमय होते हुए, दूर किया है रागभाव जिसमें से, ऐसा है। इस कारण कर्मजनित हैं जो चार गति की पर्याय तथा पंचेन्द्रियों के भोग, वे समस्त आकुलतालक्षण दुःखरूप हैं। सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसा ही अनुभव करता है। इस कारण जितना कुछ साता-असातारूप कर्म का उदय, उससे जो कुछ इष्टविषयरूप अथवा अनिष्टविषयरूप सामग्री, सो सम्यग्दृष्टि के सर्व अनिष्टरूप है। इसलिए जिस प्रकार किसी जीव के अशुभकर्म के उदय रोग, शोक, दारिद्र आदि होता है, उसे जीव छोड़ने को बहुत ही करता है, परन्तु अशुभकर्म के उदय नहीं छूटता है; इसलिए भोगना ही पड़े। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव के, पूर्व में अज्ञानपरिणाम के द्वारा बाँधा है जो सातारूप-असातारूप कर्म, उसके उदय अनेक प्रकार विषयसामग्री होती है, उसे सम्यग्दृष्टि जीव, दुःखरूप अनुभवता है, छोड़ने को बहुत ही करता है परन्तु जब तक क्षपकश्रेणी चढ़े, तब तक छूटना अशक्य है; इसलिए परवश हुआ भोगता है। हृदय में अत्यन्त विरक्त है;

इसलिए अरंजक है, इसलिए भोगसामग्री को भोगते हुए, कर्म का बन्ध नहीं है; निर्जरा है। यहाँ दृष्टान्त कहते हैं — 'यत् किल कर्म कर्तारं स्वफलेन बलात् योजयेत्' [यत्] जिस कारण से ऐसा है, [किल] ऐसा ही है; सन्देह नहीं कि [कर्म] राजा की सेवा आदि से लेकर जितनी कर्मभूमिसम्बन्धी क्रिया, [कर्तारं] क्रिया में रंजक होकर-तन्मय होकर करता है जो कोई पुरुष, उसको [स्वफलेन] जिस प्रकार राजा की सेवा करते हुए द्रव्य की प्राप्ति, भूमि की प्राप्ति; जैसे—खेती करते हुए अन्न की प्राप्ति — [बलात् योजयेत्] अवश्यकर कर्ता पुरुष का क्रिया के फल के साथ, संयोग होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो क्रिया को नहीं करता, उसको क्रिया के फल की प्राप्ति नहीं होती; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को बन्ध नहीं होता; निर्जरा होती है। कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव, भोगसामग्री-क्रिया का कर्ता नहीं है; इसलिए क्रिया का फल, कर्म का बन्ध नहीं है; वह तो सम्यग्दृष्टि के नहीं है। दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं — 'यत् कुर्वाणः फललिप्सुः ना एव हि कर्मणः फलं प्राप्नोति' [यत्] जिस कारण से पूर्वोक्त नाना प्रकार की क्रिया [कुर्वाणः] कोई करता हुआ, [फललिप्सुः] फल की अभिलाषा करके क्रिया को करता है—ऐसा [ना] कोई पुरुष, [कर्मणः फलं] क्रिया के फल को [प्राप्नोति] प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है — जो कोई पुरुष, क्रिया करता है, निरभिलाष होकर करता है, उसको तो क्रिया का फल नहीं है।।२०-१५२।।

कलश - १५२ पर प्रवचन

अब, १५२।

कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः।।२०-१५२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'तत् मुनिः कर्मणा नो बध्यते' तिस कारण से... मुनि की व्याख्या की है यहाँ। **शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव...** मुनि की व्याख्या ही यह की है यहाँ। आहाहा! मैं पवित्र शुद्ध चैतन्य हूँ, अपवित्र ऐसे रागादि

मेरी चीज़ ही नहीं, ऐसा जो पवित्र स्वभावरूप से परिणमन कर विराजमान है, ऐसा जो सम्यग्दृष्टि। मुनि की व्याख्या ऐसी की। **शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव...** आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसके वेदन में विराजमान। आहाहा! है? **शुद्धस्वरूप अनुभव...** अनुभव है न? आनन्द के अनुभव से विराजमान है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव सत्य जो वस्तु आनन्द और ज्ञान, उसके वेदन में वह विराजमान है। आहाहा! धर्मी जीव अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान को वेदता है। आहाहा! यह यात्रा में कितने लोग इकट्ठे हुए होंगे। हो... हा... हो... हा... मानो धर्म हो गया।

मुमुक्षु : ३५ हजार।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो १०-१५ हजार लोग होंगे मुश्किल से। एक व्यक्ति कहता था, १५ हजार थे। उन लोगों को कहाँ... परन्तु बहुत इतने लोग दिखाई दे... आहाहा! परन्तु वे सब माननेवाले (ऐसे कि) मानो हमने धर्म किया। आहाहा! बापू! धर्म चीज़ तो ऐसी है। आहाहा! यह यात्रा की ओर का जो शुभराग, राग का जिसे रस है... आहाहा! उसे आत्मा के आनन्द का रस नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! चाहे तो पंच महाव्रत का राग हो, परन्तु उस राग का जिसे रस और उसका कर्तापना है, (वह मिथ्यादृष्टि है)।

कहते हैं कि **शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव...** उसके कर्तापने की बुद्धि जिसकी छूट गयी है। शुभराग का कर्तापना भी जिसे दृष्टि में से छूट गया है। आहाहा! मैं ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसी जिसे ज्ञान और आनन्द के काम की रचना जिसे हुई है, वह मेरा काम है। आहाहा! भारी कठिन शर्तें। **शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानावरणादि कर्म से नहीं बँधता है।** यहाँ मिथ्यात्व सम्बन्धी की बात रखी है। आचार्य ने मुनि शब्द प्रयोग किया है और टीकाकार उसका अर्थ अभी सम्यग्दृष्टि करते हैं। यह अधिकार चला आता है न! आहाहा!

'हि कर्म कुर्वाणः अपि' आहाहा! **निश्चय से कर्मजनित विषयसामग्री भोगरूप क्रिया को करता है—यद्यपि भोगता है...** यह दूसरी अपेक्षा ली है। सामग्री को आत्मा

कोई करे और भोगे, यह तो हो सकता नहीं। परन्तु उस ओर के राग के झुकाव की वृत्ति कुछ है, उसरूप परिणमता है, उसे भोगता है—ऐसा कहा जाता है। सामग्री भोगता है। तथापि उस परिणमन का स्वामी नहीं और धर्मी ज्ञानानन्दस्वरूप का स्वामी है। इसलिए उसे राग का प्रेम और राग का स्वामीपना नहीं है और पृथक्पना राग से आत्मा का वर्तता है, इसलिए उसे बन्ध नहीं है। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया? **भोगरूप क्रिया को करता है...** ऐसा कहा यहाँ तो। एक ओर कहे कि पर के शरीर की क्रिया आत्मा कर नहीं सकता। यहाँ कहे, भोग की क्रिया करता है। यह तो अन्दर राग की वृत्ति होती है, उसे भोग की सामग्री पर लक्ष्य है, इसलिए भोग की सामग्री की क्रिया करता है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग।

चौरासी लाख में लुट गया है। दुःखी, दुःखी के... दुःख के वेदन में असाध्य हो गया है। असाध्य अर्थात्? जिसे स्वरूप क्या है, उसका साध्य नहीं। जयसुखभाई! यह यहाँ असाध्य नहीं हो जाते? खबर बिना के असाध्य हो जायें। इसी प्रकार यहाँ राग के रसवाले स्वरूप के साध्य बिना के असाध्य हैं। असाध्य (शब्द) हिन्दी में प्रयुक्त होता है या नहीं?

सम्यग्दृष्टि अब असाध्य नहीं, कहते हैं। वह भोगसामग्री की क्रिया अर्थात् उसकी ओर का जरा झुकाव है, उसमें उसे रस नहीं। रस उड़ गया है। सुखबुद्धि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल, उसमें सुखबुद्धि है, इसलिए भोग की सामग्री की ओर के झुकाव के भाव में सुखबुद्धि नहीं। वह भोग की क्रिया करता है, ऐसा कहा जाता है। तथा उसे भोगता है। कहीं जड़ सामग्री को भोग नहीं सकता। शरीर को, दाल, भात, रोटियाँ या यह पैसा, मकान या कोई भोग भोग सकता है? परन्तु उसकी ओर का जरा झुकाव का राग है, इसलिए सामग्री को भोगता है, ऐसा (कहा)। उस राग को वेदता है न जरा? वेदन है। सम्यग्दृष्टि को भी जितना परसन्मुख का झुकाव जाता है, उतना वेदन है, तथापि उस वेदन की मिठास नहीं है। आहाहा! जिसने आनन्द का नाथ देखा, जाना, अनुभव किया, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, उसे पर की मिठास सर्वत्र से उड़ जाती है। समझ में आया?

यह आठ वर्ष की कन्या हो और समकिती भी हो, तथापि विवाह करे, परन्तु अन्दर से रस उड़ गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं! जिसने आनन्द के नाथ को देखा, अतीन्द्रिय त्रिलोकनाथ... आहाहा! ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु, उसे जिसने अनुभव किया और उसका जो स्वामी हुआ... आहाहा! उसे राग का सब रस उड़ जाता है, इसलिए उसे बन्धन है नहीं। राग की वृत्ति आवे, उतना परिणमन है, वह कर्ता कहलाये, क्रिया कहलाये और उसमें वेदन है, उसका भोक्ता है। पश्चात् सामग्री को करे और भोगे, वह तो निमित्त से कथन है। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि को चैतन्यस्वरूप का जहाँ आश्रय है... आहाहा! उसे वह शुभ-अशुभभाव जहर जैसे लगते हैं। इसलिए उसे उनका वेदन होने पर भी उसकी वेदना की मुख्यता नहीं है। आनन्द और ज्ञान के वेदन की मुख्यता है। इसलिए क्रिया को भोगता और करता है, तथापि उसे बन्धन नहीं है, ऐसा कहना है। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! अब धमाधम में से ऐसा मार्ग अन्दर....

'**तत्फलपरित्यागैकशीलः**' देखो! क्या कहते हैं? धर्मी जीव, जिसे आनन्द का स्वाद आया आत्मा में... आहाहा! वह '**तत्फलपरित्यागै**' वह जो राग होता है, उसका कर्ता नहीं और उसके फल का त्यागी है। उसका फल वह चाहता नहीं। कर्ता होता नहीं, इसलिए फल का त्यागी है। है? **कर्मजनित सामग्री में आत्मबुद्धि जानकर रंजक परिणाम का सर्वथा प्रकार (स्वीकार छूट गया...)** त्याग है। है? आत्माबुद्धि जानकर कि यह राग है, वह मेरा है, ऐसी बुद्धि जानकर उसका त्याग है। उसे बुद्धि है नहीं। आहाहा! **आत्मबुद्धि जानकर रंजक परिणाम का...** यह राग है, वह मेरा स्वरूप है और राग का रस उसमें है, यह बात उसे उड़ गयी है। आहाहा! छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखाई दे, परन्तु वह तो राग से भिन्न वर्तता है अन्दर। आहाहा! समझ में आया? राग से भिन्न वर्तता है अन्दर। आहाहा!

आत्मबुद्धि जानकर रंजक परिणाम का... '**परित्याग**' शब्द है न? '**परित्याग**' '**परि**' अर्थात् सर्वथा। '**परित्याग**' **सर्वथा प्रकार स्वीकार छूट गया है...** आहाहा! मुख में शक्कर खाते हुए साथ में कोई कंकर आ जाये तो उसकी उसमें हेयबुद्धि है। आहाहा! इसी प्रकार आनन्द के स्वाद के समझ राग का भाग उसे कंकर के जहर जैसा दिखता है।

इसलिए परित्याग है। उसका परि अर्थात् सर्वथा प्रकार से त्याग वर्तता है। दृष्टि में उसका परित्याग है। आहाहा! उस राग के प्रेम में उसे सर्वथा भगवान का परित्याग है। राग का कण भी जिसे प्रेम है, उसका स्वामी होता है, उसे भगवान आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा! और आत्मा के आनन्द का जिसे प्रेम है, उसे राग के रस के प्रति प्रेम सर्वथा उड़ गया है। आहाहा! समझ में आया?

सर्वथा प्रकार स्वीकार... स्वीकार। किस प्रकार? **आत्मबुद्धि जानकर रंजक परिणाम का सर्वथा प्रकार स्वीकार छूट गया है...** यह मेरे हैं, ऐसी एकत्वबुद्धि होकर जो राग का रस है, वह छूट गया है। आहाहा! अब ऐसे मार्ग को पहुँचना! कितनी तैयारी चाहिए! आहाहा! चले जाते हैं, देखो न! **सर्वथा प्रकार स्वीकार छूट गया है...** आहाहा! **ऐसा है सुखरूप स्वभाव जिसका,... 'एक'** का अर्थ किया। अर्थात् क्या? कि राग को अपनापन मानना, ऐसा दोकलापन वहाँ रहा नहीं। वह तो आत्मा एकरूप है, उसके प्रति का अनुभव एक को रहा है। वह सुखरूप है। आहाहा! एकड़े एक और बिगड़े दो। एक में राग में मिलावे तो बिगड़े और उसे दुःख हो। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भगवानभाई! आहाहा!

जिसे राग का कण, (उसमें) मिठास, बहुत स्वाद आता है और ठीक पड़ता है, वह आत्मा के स्वभाव का सर्वथा परित्यागी है। और जिसे आत्मशुद्धि से राग का रंजितपना—वह मेरा है, ऐसा प्रेम जिसे उड़ गया है, उसे राग का सर्वथा परित्याग है। ऐसी बात है। विवाद यह सब अभी तकरार करते हैं न? व्यवहार क्रिया... क्रिया। परन्तु व्यवहार क्रिया का प्रेम है, तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह व्रत, तप और भक्ति के भाव जो राग, उस राग में एकत्वबुद्धि—आत्मबुद्धि, मुझे उससे लाभ होगा, ऐसे राग के रंग में चढ़ गया हुआ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

धर्मी जीव को उस राग के रंग का रस उड़ गया है। आहाहा! दृष्टान्त आया था न? कपड़े को लोधर आदि का रंग लगाये बिना उसे मजीठ का रंग नहीं लगता। मजीठ का रंग नहीं लगता। आहाहा! इसी प्रकार जिसे राग का रंग नहीं, उसे मिथ्यात्व का रंग नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश, लो! कुछ करना हो, तब तो करे।

यात्रा करे, पैसा खर्च करे, व्रत पालना (ऐसा होवे तो करे)। ऐसा तो, बापू! व्रत तो यह है। स्वरूप को अनुभव करके राग का जहाँ अस्वीकार है और फिर स्वरूप में लिपट जाये स्थिर होकर लीन हो, उसका नाम निश्चय से व्रत है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। लोग ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वालों ने नया (मार्ग) निकाला। यह किसका लेख है? यह तो पहले से चला आता है। आहाहा! यह व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि के परिणाम, उनका जिसे रस है... आत्मबुद्धि, ऐसा आया न? **आत्मबुद्धि जानकर रंजक परिणाम का...** त्याग है। अज्ञानी को आत्मबुद्धि—यह मेरे हैं—ऐसा जानकर स्वभाव का परित्याग है। उनका स्वीकार है। यह लॉजिक से तो बात है। उसे अन्दर उतारना चाहिए, भाई!

जिसे राग का—व्यवहार, व्रतादि के परिणाम का स्वीकार है, उसे स्वभाव का स्वीकार नहीं। इसलिए वह मिथ्यादृष्टि कर्मबन्धन को बाँधता है। आहाहा! और ज्ञानी को राग का रस छूट गया है, तथापि अशुभभाव भी आया... समझ में आया? परन्तु जिसकी मिठास और रस उड़ गया है। आहाहा! और ज्ञानस्वरूपी भगवान का जिसे स्वीकार हुआ है। उसे अशुभभाव से भी मिथ्यात्व का बन्धन नहीं, ऐसा कहते हैं। अस्थिरता का है, उसे अभी गौण कर दिया है। समझ में आया? आहाहा! यह विषयभोग में, इज्जत में, कीर्ति में, राग में अन्दर मिठास का जो रस चढ़ जाता है, वह मिथ्यात्वभाव है। और ज्ञानी को अशुभभाव आता है, परन्तु उसका अब रस नहीं है। आहाहा!

सर्प को पकड़ा हो अँगुली से। अब तो जैसे बने उसे छूटने का भाव है या रखने का भाव है? आहाहा! इस प्रकार धर्मी को राग आवे परन्तु जैसे सर्प को पकड़ता है। आया परन्तु उसे छोड़ने के लिये है। उसके प्रेम और रस के लिये नहीं। आहाहा! वह गरासिया गुजर गया न? उस दिन नागिन पकड़ी थी या नहीं? सर्प को पकड़ता था। गरीब व्यक्ति गरासिया कुँवारा था। अकेला। सर्प को पकड़ता था। उसका मुख पकड़कर ऐसे पकड़े। ऐसा करके डाल आवे। उस समय पकड़ा हुआ और मदिरा पीये हुए। सर्प का लपेटा लिया तो दो अँगुली छूट गयी और डंक मारा। डाल आया। सो रहा था और मर गया। कब मर गया कुछ खबर नहीं पड़ी। आहाहा!

इसी प्रकार जिसे राग की मिठास के मिथ्यात्व का जहर लगा है, उसे सर्प काटा है। उसने डंक मारा है। वह मर गया है। उसने अन्दर चैतन्य को मार दिया। जागती ज्योति भगवान आत्मा, पूर्णानन्द का नाथ, प्रभु! आहाहा! उसका उसे अस्वीकार हुआ और राग का—जहर का उसे स्वीकार हुआ; इसलिए उसे बन्धन है। ज्ञानी को राग का स्वीकार नहीं, स्वीकार परमात्मा के स्वरूप का है। इसलिए उसे बन्धन नहीं है। आहाहा! है?

सुखरूप स्वभाव जिसका, ऐसा है। आहाहा! **सुखरूप स्वभाव जिसका, ऐसा है।** अर्थात् क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि को तो आनन्दरूप स्वभाव मेरा है, ऐसा वह अनुभव करता है, जानता है। राग मेरा स्वभाव है और मेरा अनुभव करनेयोग्य, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! और अज्ञानी ने स्वभाव देखा नहीं, इसलिए राग का ही अनुभव, वह मेरा स्वरूप है, ऐसा वहाँ आत्मबुद्धि से रंग गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। **सुखरूप स्वभाव जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीव के विभावरूप मिथ्यात्व परिणाम मिट गया है,...** देखा! इतनी बात है यहाँ। मिथ्यात्व की। राग का भाव आता तो है परन्तु वह मेरा है और उसमें रस है, यह बात उड़ गयी है। इसलिए उसे मिथ्यात्वभाव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। है न?

सम्यग्दृष्टि जीव के विभावरूप मिथ्यात्व परिणाम मिट गया है, उसके मिटने से अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय सुख अनुभवगोचर हुआ है। इसलिए राग का त्याग होकर स्वरूप के आनन्द का ग्रहण होकर अतीन्द्रिय आनन्द के सुख को ग्रहता है। अतीन्द्रिय आनन्द के सुख को वह वेदता है। आहाहा! ऐसा धर्म, लो! यहाँ तो यात्रा की, भक्ति की, पूजा की धमाधम। उसमें और २५-५० लाख, दो लाख खर्च करे तो मानो कि ओहोहो! अपने भाई गुजर गये न सेठ? साहूजी। उन्हें श्रावक शिरोमणि की उपमा दी। श्रावक शिरोमणि। और स्वयं बेचारे कहे कि मैं तो श्रावक भी नहीं और कुछ मेरे पास है नहीं। मैं तो व्रत भी नहीं करता और रात्रि में खाता हूँ। परन्तु दुनिया, पैसा दे इसलिए.... उसमें और पाँच-दस लाख रुपया दे कुछ वहाँ तो ओहोहो! परन्तु क्या है?

मुमुक्षु : आशीर्वाद तो मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका आशीर्वाद? आहाहा!

भगवान आत्मा राग से रहित है, उसका जहाँ स्वीकार नहीं, वहाँ आगे उस राग की क्रिया का स्वीकार है, वह मिथ्यादृष्टि है। भले वह दस लाख या करोड़, पाँच करोड़ खर्च किये हों, परन्तु उसमें वह राग कदाचित् मन्द किया हो तो। प्रतिष्ठा और दुनिया देखे, इसलिए किया हो तो पाप। दिखावट के लिये, दूसरे देखे कि मैंने ऐसे खर्च किये २५ हजार-५० हजार। तो इस प्रकार मैं इतने में बाहर आऊँगा (प्रसिद्ध होऊँगा) तब तो पाप है। परन्तु कदाचित् राग की मन्दता की हो किन्तु उसका जिसे रस है कि यह मुझे लाभदायक है, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? ऐसी बातें, लो! आहाहा! एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर आतमराम और एक ओर राग से (लेकर) पूरा संसार। आहाहा! जिसे राग का स्वीकार है, उसे पूरे संसार का स्वीकार है। जिसे भगवान का स्वीकार है, उसे मोक्षमार्ग का स्वीकार है। स्वयं मुक्तस्वरूप है, उसका स्वीकार है। आहाहा! समझ में आया? वह और भक्ति में ठहरावे। कितने ही व्रत-तप में ठहरावे। भगवान—देव-गुरु की भक्ति करो। वह साधन है और उससे होगा। सब एक जाति के हैं।

तीन लोक के नाथ तीर्थंकर भी ऐसा कहते हैं कि हमारे सामने देखकर तू भक्ति कर तो तुझे राग है। क्योंकि हम परद्रव्य हैं। '**परदव्वादो दुग्गइ**' आहाहा! यह भगवान ऐसा कहे। तेरे हिसाब से हम परद्रव्य हैं। और परद्रव्य—हमारे ऊपर तेरा लक्ष्य जायेगा तो तेरी दुर्गति है। ऐई! चन्दुभाई! मोक्ष अधिकार १६वीं गाथा। आहाहा! यह वीतराग कहे। क्योंकि राग, परद्रव्य पर लक्ष्य राग बिना जाता ही नहीं। जो परमात्मा की भक्ति है, वह भी राग है। और राग से मुझे लाभ होगा, वह राग में आत्मबुद्धि है। आहाहा! उसे तो मिथ्यादृष्टि जीव को... है?

और कैसा है? 'ज्ञानं सन्' यह तो धर्मी की बात आती है। '**ज्ञानं सन्**' उसमें आया था न? '**ज्ञानं सन् वस**'। '**ज्ञानं सन् तदपास्तरागरचनः**' **ज्ञानमय होते हुए दूर किया है रागभाव जिसमें से...** क्या कहा? **ज्ञानमय...** अर्थात् आत्मामय। शुद्ध चैतन्य वस्तु की दृष्टि हुई और वेदन हुआ, वह ज्ञानमय हुआ, आत्मामय हुआ। आहाहा! वह रागभाव जिसमें से दूर किया है। है न? **ज्ञानमय होते हुए दूर किया है रागभाव जिसमें**

से ऐसा है। इस कारण कर्मजनित है जो चार गति की पर्याय... आहाहा! है? चार गति, उसमें स्वर्ग लिया, सेठाई ली, अरबोंपतिवाले। वे पंचेन्द्रिय के भोग, वे सब आकुलता लक्षण दुःखरूप है, ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता है। वह सब चार गति, सामग्री और वह सब दुःखरूप है। आहाहा! है?

पंचेन्द्रियों के भोग... आहाहा! यह हलुवा और भुजिया और यह पतरवेलिया उड़ाता हो। परन्तु कहते हैं कि वह तो भोग का भाव, वह दुःख है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा **भोग वे समस्त आकुलतालक्षण दुःखरूप हैं। सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा ही...** मानता है। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा ही अनुभव करता है।** दुःखरूप है ऐसा है—ऐसा सम्यग्दृष्टि अनुभव करता है। **पंचेन्द्रियों के भोग...** चार गति, सब आकुलतालक्षण है, ऐसा ज्ञानी जानता है। आहाहा! लो! मनुष्यगति मिली, इसलिए अच्छा ऐसा? यह नहीं। वह पर्याय है। दुःखरूप है, गति भी दुःख का निमित्त है। लो! मनुष्यगति में केवलज्ञान होता है न? चारित्र भी मनुष्यगति में होता है, अन्यत्र नहीं। परन्तु गति में होता है, वह गति के कारण नहीं होता। गति पर्याय तो दुःखरूप ही है। आहाहा! ऐसी बात है। है?

इस कारण जितना कुछ साता-असातारूप कर्म का उदय,... साता के उदय के कारण ढ़ेर इन्द्र का इन्द्रासन हो, असाता के उदय के कारण सातवें नरक के दुःख के संयोग हों, परन्तु सम्यग्दृष्टि उन्हें अपना नहीं मानता। आहाहा! **कर्म का उदय, उससे जो कुछ इष्ट विषयरूप...** स्वर्गादि का। **अथवा अनिष्ट विषयरूप सामग्री...** नरक की। **सम्यग्दृष्टि के सर्व अनिष्टरूप है।** यह स्वर्ग की सामग्री और नरक की सामग्री दोनों अनिष्टरूप है। आहाहा! यहाँ बड़े अरबोंपति हों तो वह अनिष्टरूप है, ऐसा कहते हैं। अरे! कैसे माना जाये? है न? कहा है न यह? इष्ट और अनिष्टरूप दोनों अनिष्टरूप हैं। धर्मी को तो सर्व अनिष्टरूप ही है। कौन? जो कुछ इष्ट विषय और अनिष्ट विषय, दोनों अनिष्टरूप है। आहाहा! सुन्दर शरीर, सुन्दर सामग्री, करोड़ों-अरबोंपति और करोड़ों रुपये का अन्दर फर्नीचर... क्या कहा यह? फर्नीचर। कहते हैं कि वह सब दुःख का निमित्त है, दुःख का कारण है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जानता है। आहाहा! बहुत लम्बा अन्तर।

यह बात सुनने को मिलती नहीं, वह कब समझे? आहाहा! बाहर में धमाधम करके जिन्दगी पूरी कर ले, जाओ। आहाहा! कहते हैं कि, सर्व अनिष्टरूप उसे मानता है। आहाहा! है?

इसलिए जिस प्रकार किसी जीव के अशुभ कर्म के उदय रोग,... रोग आवे। **शोक, दारिद्र आदि होता है, उसे जीव छोड़ने को बहुत ही करता है, परन्तु अशुभ कर्म के उदय नहीं छूटता, इसलिए भोगना ही पड़े।** यह दृष्टान्त। **उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को, पूर्व में अज्ञान परिणाम के द्वारा बाँधा है जो सातारूप-असातारूप...** आहाहा! साता बाँधी हो, उसका ढ़ेर मिला हो अनुकूल, असाता की नरक की प्रतिकूल सामग्री (मिली)। आहाहा! **उसके उदय अनेक प्रकार विषयसामग्री होती है, उसे सम्यग्दृष्टि जीव दुःखरूप अनुभवता है...** आहाहा! असाता के उदय को तो दुःखरूप अनुभव करता है परन्तु साता के उदय को भी दुःखरूप अनुभव करता है। आहाहा! बहुत बदलना पड़े।

बड़े मकान तीन-तीन करोड़, चार करोड़ के। है न वहाँ? यह वह नहीं? कैसे? भाई? वह तीन करोड़ का नहीं है? हम नहीं गये थे? मैसूर। मैसूर-मैसूर। राजा का तीन करोड़ का बँगला है। खाली है। समाप्त कर दिया और सरकार के... खाली पड़ा था खाली। लोग देखने जाते हैं। तीन करोड़ का। उस समय का तीन करोड़ का। अभी... एकदम खाली पड़ा है। आहाहा! वह तीन करोड़ का क्या, दस करोड़ का और अरब का मकान हो, परन्तु सम्यग्दृष्टि उसे अनिष्टरूप मानता है। वह अनुकूल संयोग हुआ ठीक (हुआ), ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा! बहुत अन्तर। दृष्टि में अन्तर। यहाँ तो जरा पाँच-पचास लाख मिले, धूल मिली कुछ अनुकूल हो तो... आहाहा! हम अब सुखी हैं। ईश्वर की कृपा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **पूर्व में अज्ञान परिणाम के द्वारा बाँधा है जो सातारूप-असातारूप कर्म उसके उदय अनेक प्रकार विषयसामग्री होती है, उसे सम्यग्दृष्टि जीव दुःखरूप अनुभवता है...** आहाहा! आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष धर्मी जीव को इष्ट सामग्री भी दुःखरूप लगती है। आहाहा! अब ऐसी मान्यता का अन्तर। लो! सत्तर

लाख का मकान। गत वर्ष उतरे थे न? समुद्र के किनारे? रमणीकभाई आमोदवाले। ८७वीं जयन्ती (के समय) उनके मकान में (उतरे थे)। ७० लाख का मकान। एक मकान ७० लाख, समुद्र के किनारे। तीन-चार-पाँच करोड़ होंगे। दोनों भाई। बहुत विनती की। आहाहा! ७० लाख का तो एक मकान! ऐसे मकान और इज्जत बड़ी, पैसा बहुत। आमोदवाले। पालेज के पास आमोद है न? वहाँ के हैं। आहाहा! उसमें तो यह समुद्र के ऊपर... समुद्र निकट है। समुद्र के ऊपर नजर गयी, वहाँ सैकड़ों बगुले उड़ते थे। मछलियाँ खोजते थे। आहाहा! देखो न यह! मैंने पूछा, कहा, यह बगुले समुद्र में आगे कहाँ तक जाते होंगे? तो २०-२० मील तक बगुले जाते हैं। आहाहा! वहाँ कोई वृक्ष-वृक्ष नहीं। बगुले समझते हो? २०-२० मील तक चले जाते हैं मछलियाँ पकड़ने। २० मील वापस आवे। आहाहा! देखो! यह राग की मिठास। मछलियाँ खावे, पकड़े। वहाँ वृक्ष-वृक्ष कुछ नहीं होता। ऐसे के ऐसे २० मील चले जायें। क्योंकि उन्हें देखकर वे मछलियाँ-बछलियाँ ऊपर न आवे, अन्दर घुस जाये। कोई ऊपर आवे और पकड़े। आहाहा! बगुले २०-२० मील तक मछलियों को पकड़ने जाते हैं। बिना आधार के। अरर्र! उसमें आनन्द माने, मछलियाँ खाकर। आहाहा! उसी प्रकार यहाँ जगत में व्यापार की बड़ी मजदूरी कर-करके आगे-आगे पाप में जाये और मजा माने। संसार समुद्र में भर समुद्र में जाता है वह। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह उदय अनेक होते हैं, उन्हें **दुःखरूप अनुभवता है, छोड़ने को बहुत ही करता है।** जैसे वह असाता के उदय और दरिद्रपना आवे तो कुछ छूटे नहीं, उसी प्रकार यह धर्मी को बहुत छोड़ना चाहे, परन्तु अन्दर अभी चारित्र का वीतरागभाव हुआ नहीं, इसलिए अभी रागभाग है। इसलिए छोड़ना चाहे परन्तु वे छूटते नहीं। है? **परन्तु जब तक क्षपकश्रेणी...** यहाँ लिया, देखा! उन मुनि को भी ऐसा राग आवे, कहते हैं। आहाहा! धारा ली है। क्षपकश्रेणी की धारा ली। आहाहा! मुनि को भी राग आवे। पूर्व में बाँधा हुआ है, इसलिए राग आवे। परन्तु दरिद्र को जैसे असाता के कारण से दरिद्रपना आवे, वह छूटता नहीं, उसी प्रकार इसकी पर्याय की दरिद्रता के कारण अन्दर राग आता है परन्तु उसमें-राग में सुखबुद्धि नहीं मानता। आहाहा! वह श्रेणी चढ़ेगा, जब अन्दर धारा सातवें-आठवें में (बढ़ेगा), तब फिर राग नहीं रहेगा। ऐसा यहाँ तक

लिया है। छठवें-सातवें.... छठवें-सातवें में.... राग आता है न? सातवें में से वापस... आहाहा! राग आवे, परन्तु उसमें आनन्द नहीं मानता। छूटता नहीं प्रमाद है इसलिए। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

क्षपकश्रेणी चढ़े तब तक छूटना अशक्य है,... देखा! आहाहा! छठवें गुणस्थान तक भी राग होता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! जब तक स्वरूप में स्थिरता न हो। श्रेणी की धारावाही वीतरागपने की धारावाही सीढ़ी चढ़ता न हो, तब तक उसे राग का भाव आता है। असाता के उदय से दरिद्रपना आवे परन्तु छोड़ा न जाये, उसी प्रकार यह राग आवे, उसे छोड़ा न जाये। दृष्टि में से छूट गया है, परन्तु अस्थिरता से छूटा नहीं। इसलिए उसका कर्ता नहीं और उसके फल का भोक्ता भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखा! यहाँ तक ले गये। छठे-सातवें तक। सातवें से फिर श्रेणी तक ले गये। क्योंकि सातवें में जाकर फिर वापस आवे, वहाँ तक अभी राग आता है। आहाहा! मुनि कहा था न? पाठ में तो मुनि है। फिर उन्होंने सम्यग्दृष्टि किया। इसलिए उसे यह दृष्टि ली। आहाहा!

'**यत् किल कर्म कर्तारं स्वफलेन बलात् योजयेत्**' है? **क्षपकश्रेणी चढ़े तब तक छूटना अशक्य है, इसलिए परवश हुआ भोगता है।** अर्थात् कि राग के वश होने पर अस्थिरता से हो जाता है। उसका स्वामी और उसकी सुखबुद्धि है नहीं। आहाहा! कठिन काम है। अरंजित है। हृदय में अत्यन्त विरक्त है। आहाहा! **अत्यन्त विरक्त है, इसलिए अरंजक है।** अब उसे राग का रंग नहीं। आहाहा! भगवान आनन्द के रंग में रंगा... आहाहा! उसे राग का रंग छूट गया है, कहते हैं। राग छोड़ना चाहे परन्तु अभी ऊपर गये बिना छूट नहीं सकता। श्रेणी चढ़ता नहीं तब तक। यहाँ ऐसा लिया। उन्होंने भी सम्यग्दृष्टि लिया। मुनि को, मुनि का अर्थ किया सम्यग्दृष्टि और यहाँ मुनि की धारा से आगे ले गये। आहाहा!

यहाँ दृष्टान्त कहते हैं। जिस कारण से ऐसा है, ऐसा ही है, सन्देह नहीं... दृष्टान्त देते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण २, रविवार, दिनांक-२७-११-१९७७, कलश-१५२-१५३, प्रवचन-१६०

निर्जरा अधिकार है। अर्थात् क्या ? कि जो आत्मा अपना ज्ञान और आनन्दस्वभाव है, उसे भूलकर कोई भी शुभ-अशुभराग, उसे अपने में एकत्वबुद्धि करे, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे कर्म के फल बाँधे हुए उसे भोगने पड़ते हैं। निर्जरा अधिकार है न, जरा सूक्ष्म बात है अन्दर। आहाहा! और जिसने आत्मा अन्तर चैतन्यज्योति, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, ऐसे आत्मा को राग के विकल्प से भिन्न पड़कर जिसे अन्तर अनुभव आनन्द का हुआ हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! इतनी शर्तें रखीं।

धर्म की पहली सीढ़ी-धर्म का / मोक्षमहल का पहला सोपान। छहढाला में आता है। 'मोक्ष महल की पहली सीढ़ी।' आहाहा! यह सम्यग्दर्शन। यह सम्यग्दर्शन अर्थात् यह आत्मा अन्दर पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान शक्ति—गुण से अनन्त गुणवाला तत्त्व है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अमाप गुण का पिण्ड है। ऐसी द्रव्य पर जिसकी दृष्टि पड़ने से... चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, परन्तु वह राग बन्ध का कारण है। उससे पृथक् पड़कर... आहाहा! उससे भेदज्ञान करके जिसने आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसकी जिसे दृष्टि में प्राप्ति हुई है, उसने आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरसकन्द है, उसकी दृष्टि होने पर उसे अनाकुल आनन्द का आस्वाद आता है। आहाहा! और उसके बिना जितना क्रियाकाण्ड करे दया, व्रत, भक्ति, पूजा, वह सब आकुलता का भाव है। क्योंकि वह राग है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

अरे! इसने अनन्त काल में भटकते हुए चौरासी लाख योनि में एक-एक में अनन्त अवतार किये। यह अपने स्वभाव में नहीं, ऐसी चीज़ को अपनी माना। सूक्ष्म में सूक्ष्म राग का भाग हो, उसे चैतन्य निर्मलानन्द वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसके साथ एकत्वबुद्धि करे, वह चौरासी लाख योनि में रुलता है। आहाहा! परन्तु जिसे इस राग के विकल्प से अन्तर्मुख भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का रसकन्द प्रभु, उसकी जिसे अनुभवदशा—उस शुद्ध चैतन्य का अनुभव, ऐसी दशा—सम्यग्दर्शन हुआ, उसे पूर्व के अज्ञानभाव से बँधे हुए कर्म उदय आवे, और पूर्व के पुण्य के कारण सब भोगसामग्री मिली हो, उसमें जरा उसका लक्ष्य भी आसक्ति का, राग का जाये। तथापि राग से भिन्न

पड़ा हुआ प्रभु चैतन्य का अनुभव और दृष्टि होने से उस भोग की सामग्री की ओर के झुकाव के राग में होने पर भी उसे निर्जरा हो जाती है। शर्तें बहुत हैं, बापू! आहाहा! वीतराग का मार्ग प्रथम शुरुआत ही महादुर्लभ है। यह यहाँ दृष्टान्त से कहते हैं। है? कहाँ आया?

मुमुक्षु : 'यत् किल कर्म'

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। '**यत् किल**' शशीभाई! '**किल कर्म**' आया? भोगीभाई! कहाँ आया? '**किल कर्म**'। सूक्ष्म विषय है।

निर्जरा का विषय है। निर्जरा अर्थात्? आत्मा के शुद्धस्वरूप के अनुभव की दृष्टि होने पर उसे पूर्व के कर्म खिर जाते हैं। एक प्रकार। निर्जरा का एक प्रकार। दूसरा प्रकार—शुद्धता के स्वरूप की दृष्टि के जोर से अशुद्धता टल जाये, वह दूसरे प्रकार की निर्जरा और चैतन्यस्वरूप की दृष्टि के अनुभव के जोर से शुद्धि की वृद्धि होती है, वह तीसरे प्रकार की निर्जरा है। ऐसी बातें हैं। पहले तो इसकी बात / भाषा समझना कठिन। ऐसा मार्ग है प्रभु का। आहाहा!

जहाँ आत्मा (को) राग के, दया, दान के, व्रत के विकल्प के साथ प्रेम है और उससे मुझे लाभ है, वह चीज़ मेरी है, ऐसी जब तक उसकी मान्यता है, तब तक वह मिथ्यादृष्टि है और उसे पूर्व के कर्म के उदय की सामग्री आवे, उसे राग से भोगता है और उसके फलरूप से भी उसे रागबन्धन होगा। आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि का विषय चलता है। दृष्टान्त है, देखो! '**यत् किल कर्म कर्तारं स्वफलेन बलात् योजयेत्' जिस कारण से ऐसा है, ऐसा ही है, सन्देह नहीं कि राजा की सेवा आदि से लेकर...** कोई मनुष्य राजा की सेवा करे, उसे **कर्मभूमिसम्बन्धी क्रिया, क्रिया में रंजक होकर-तन्मय होकर करता है...** आहाहा! है? **राजा की सेवा आदि से लेकर जितनी कर्मभूमिसम्बन्धी क्रिया, क्रिया में रंजक...** रंग। जिसका उसे रंग चढ़ गया है। आहाहा! वह लकड़ी होती है न लकड़ी? लड़कों को नहीं पट्टी-पट्टी। पट्टी होती है न, उसे रंग चढ़ाते हैं। है? यह तो सब हमने देखा हुआ, सब किया हुआ छोटी उम्र में। वह लकड़ी होती है न, उसे विविध रंग की वह होती है न मोटी जाड़ी।

इसलिए उसे छुआवे तो लाख का रंग चढ़ जाये। लकड़ी पर पूरा रंग चढ़ जाये। उसी प्रकार जिसे आत्मा के आनन्द के स्वरूप का भान नहीं, उसे पुण्य और पाप के राग के रंग चढ़ गये हैं। आहाहा! वह जितनी कुछ क्रिया करे दया, दान, व्रत, भक्ति की, वह सब उसे मिथ्यात्व में जाता है और मिथ्यात्व से उसे बन्धन मिलता है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, **जिस प्रकार की सेवा करते हुए द्रव्य की प्राप्ति, भूमि की प्राप्ति, जैसे खेती करते हुए अन्न की प्राप्ति—अवश्यकर कर्ता पुरुष का क्रिया के फल के साथ संयोग होता है।** उस सेवा करनेवाले को कर्ताबुद्धि होने से उसके फल को वह अवश्य भोगेगा। दुःख को भोगेगा। आहाहा! **अवश्यकर कर्ता पुरुष का क्रिया के फल के साथ संयोग होता है।** वह राजा की सेवा करे, उसे बाहर के फल मिलें, उसे भोगेगा और दुःखी होगा। जमीन मिली, इसलिए सुखी होगा, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। परपदार्थ की ओर के झुकाव का भाव, वह दुःख है और भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु की ओर के झुकाव का भाव, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह सुखरूप है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि राजा की सेवा करनेवाले को जैसे चीज़ मिले तो वह दुःख को भोगेगा।

भावार्थ इस प्रकार है कि जो क्रिया को नहीं करता, उसको क्रिया के फल की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार जो क्रिया रागादि की करता ही नहीं, जिसकी कर्ताबुद्धि उड़ गयी है... आहाहा! सूक्ष्म वस्तु बहुत, भाई! ज्ञाता-चैतन्य भगवान ज्ञानस्वभाव का सागर स्वयं उछलता है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, वह अन्दर डोलायमान (होता है)। आहाहा! भरपूर अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान सागर है। यह आत्मा। उसे जो कुछ राग की क्रिया कर्तावाले हैं कि मैं करता हूँ, उसका उसे फल भोगना पड़ेगा। परन्तु जिसे यह आत्मा आनन्द का नाथ प्रतीति में, अनुभव में आया, वह राग की क्रिया कर्तारूप से करता नहीं। निर्बलता के कारण राग आता है, परन्तु उसके कर्तापन की रुचि से वह करता नहीं, इसलिए उसे बन्धन नहीं है। अरे! ऐसी बात है।

यहाँ बन्धन मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का लेना है। सम्यग्दृष्टि को फिर जो आसक्ति का भाव आवे, उतना बन्धन है, परन्तु उस बात को यहाँ गौण करके उसने मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का नाश किया है। अर्थात्? भगवान आनन्दस्वरूप की अन्तर अनुभव, प्रतीति की है और आंशिक उसके स्वरूपाचरण-स्वरूप में स्थिर हुआ

है। उसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ है। इसलिए वह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के पाप को वह नहीं करता। रागादि आवें, परन्तु अपने मानकर नहीं करता; इसलिए उसे मिथ्यात्व का कर्मबन्ध नहीं है। अरे! ऐसी बातें हैं। पूरा जन्म-मरण को... दुःखी है चौरासी लाख में। यह करोड़ोंपति, अरबोंपति राजा, सेठिया और देव, सब दुःखी हैं बेचारे। वे दुःख के पर्वत में सिर फोड़ते हैं। (आत्मा) आनन्द का सागर है, उसे भूल जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का रसकन्द प्रभु है। वह जिनस्वरूप है। कहा था न? परसों कहा था। 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन, परन्तु मतमदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।' 'घट घट अन्तर जिन बसे।' भगवान जिनस्वरूपी विराजमान आत्मा जिनस्वरूपी ही है। आहाहा! अभी, हों! 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।' जैन भी घट घट अन्दर में (विराजता है)। जिसने आत्मा के आनन्द की परिणति प्रगट की और राग की एकता तोड़ी है, वह जैन घट में अन्दर में होता है। उसका कहीं शरीर में और राग में उसका भाग दिखाई दे, ऐसा वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बात है।

ऐसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह पंच महाव्रत, व्यवहार पाँच समिति, गुप्ति, आजीवन शरीर का ब्रह्मचर्य, सत्य बोले, वस्त्र का टुकड़ा न रखे, ऐसे पंच महाव्रत भी पालन किये, परन्तु वह तो दुःखरूप भाव है, कहते हैं। आहाहा! क्योंकि वह राग है, वह आस्रव है, वह दुःखरूप है। ऐसा करने पर भी 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो' अंश भी सुख नहीं मिला। उसका अर्थ यह सब दुःख है। आहाहा! यह शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के भाव राग, वह दुःख है। आहाहा! क्योंकि ऐसा करने पर भी आत्मज्ञान पाया नहीं। अर्थात् आत्मा के ज्ञान के सुख को पाया नहीं। तो इसका अर्थ यह (कि) सब परिणाम दुःखरूप हैं। आहाहा! अब जो परिणाम दुःखरूप हैं, उनसे मेरा कल्याण हो... आहाहा! यह महाव्रत पालने से कल्याण हो, भक्ति करने से कल्याण हो, यह मिथ्यात्वभाव है। और उस मिथ्यादृष्टि को राग का कर्तापना होने से उसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी अनन्त संसार की वृद्धि होती है। तब सम्यग्दृष्टि को... यह कहते हैं, देखो!

उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को बन्ध नहीं होता,... है ? आहाहा ! मेरा आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु, आनन्द की मूर्ति-अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा है। ऐसी जिसे अन्तर में सम्यग्दृष्टि हुई है अर्थात् कि पूर्ण आत्मस्वभाव का जहाँ दृष्टि में स्वीकार हुआ है और रागादि का स्वीकार छूट गया है। आहाहा ! ऐसा मार्ग। उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं और उस सम्यक् जीव को बन्ध नहीं होता। आहाहा ! उसे कोई अज्ञान के कारण से पहले कर्म बँधे हुए थे, उनके कारण भोगसामग्री अर्थात् कि राज आदि मिले, परन्तु उसमें उसका रस नहीं। उस ओर के झुकाव के भाव को वह दुःख मानता है। समझ में आया ? अज्ञानी सभी सामग्री अरबों की, करोड़ों की मिलने पर वह सन्तुष्ट हो जाता है, हर्षित हो जाता है। वह दुःख को वेदता है और दुःख को भोगता है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग, बापू ! अभी बहुत फेरफार हो गया है। आचार्यों, दिगम्बर सन्तों ने तो बहुत पुकार किया है।

कहते हैं कि **सम्यग्दृष्टि जीव....** पूर्व कर्म के कारण सामग्री मिली हो और उसे भोगे। भोगे अर्थात् ? पाठ तो ऐसा है कि भोगे। सामग्री को भोग सकता नहीं। वह परसामग्री स्त्री का शरीर, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, मकान, दाल-भात, मौसम्बी, वह तो पर जड़ पदार्थ हैं, उन्हें आत्मा कैसे भोगे ? पाठ ऐसा लिया है कि भोगता है। इसका अर्थ कि उस ओर की जरा आसक्ति का राग होता है, उसे भोगता है, तथापि मेरेपने भोगता नहीं; इसलिए उसे कर्म की निर्जरा हो जाती है। ऐसी बातें हैं।

निर्जरा होती है। देखा ! **कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव भोगसामग्री-क्रिया का कर्ता नहीं है,...** आहाहा ! छह खण्ड का राज हो, परन्तु वह मेरी क्रिया नहीं। आहाहा ! उसकी ओर जानेवाला जरा राग, वह भी मेरी क्रिया नहीं, वह तो स्वरूप से भिन्न है। आहाहा ! धर्मी सम्यग्दृष्टि अभी श्रावक और मुनि होने से पहले (ऐसा मानता है कि) मेरी क्रिया तो आनन्द और ज्ञान का परिणमन, वह मेरी क्रिया है। शशीभाई ! ऐसी बात है। आहाहा !

अरे ! चौरासी के अवतार में, एक-एक योनि में अनन्त-अनन्त अवतार किये। उनके दुःख का वेदन इसने इतना किया कि देखनेवाले को आँख में से धारावाही आँसू आवे। बापू ! ऐसे दुःख में यह रहा है। इस मिथ्यात्व के कारण (रहा है)। मिथ्यात्व वह संसार और मिथ्यात्व, वह आस्रव और मिथ्यात्व, वह बन्ध है। आहाहा ! यह मिथ्यात्व

अर्थात् कि दया, दान का व्रत का विकल्प है, वह मेरा है—ऐसा भाव, उसे यहाँ मिथ्यात्व कहते हैं। आहाहा! और स्वयं अनन्त आनन्द और ज्ञान का सागर, वह मेरा, यह भूल जाता है। जो स्व है, उसे भूलता है और पर है, उसे अपना मानता है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, पैसा, मकान वह तो परवस्तु है। वह कहाँ तेरी थी और तुझमें थी? परन्तु चिपटा है उसे कि वे मेरे हैं। यह पुत्र मेरा है और कर्मी जगा है। कुछ पैसे दो-पाँच लाख पैदा करता हो। मार डाला। आहाहा! जो चीज़ तुझमें नहीं, उसे तूने मेरा माना। आहाहा! इस मिथ्यात्व जैसा महा संसार और पाप नहीं है। और जो चीज़ अपने में है और रागादि, पर आदि अपने में नहीं। उसे अपने में (है), उसे अपनी माना नाहीं और अपने में है आनन्द, ज्ञान, उसको अपना माना, उसे सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ी (कहते हैं)। आहाहा! उसे निर्जरा है।

इसलिए क्रिया का फल नहीं है कर्म का बन्ध, वह तो सम्यग्दृष्टि के नहीं है। भोग सामग्री, संयोग हों, उन पर जरा लक्ष्य भी जाये, परन्तु वह लक्ष्य जाये उसका मिथ्यात्वभाव नहीं उसे। वह लक्ष्य जाता है, वह मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ तो अन्तर आनन्द और ज्ञानस्वरूपी विराजमान प्रभु, जिसका द्रव्यस्वभाव, पदार्थस्वभाव पूर्ण आनन्द है, वह मेरी चीज़ है। ऐसी दृष्टि के जोर के कारण **क्रिया का फल नहीं है कर्म का बन्ध, वह तो सम्यग्दृष्टि के नहीं है।** आहाहा! कठिन बात है, भाई! यह निर्जरा अधिकार है न!

'दृष्टान्त से कहते हैं—'यत् कुर्वाणः फललिप्सुः ना एव हि कर्मणः फलं प्राप्नोति' आहा! **जिस कारण से पूर्वोक्त नाना प्रकार की क्रिया कोई करता हुआ फल की अभिलाषा करके क्रिया को करता है, ऐसा कोई पुरुष क्रिया के फल को प्राप्त होता है।** यह राग करने से राग का फल मिठास, उसे वेदता है और उसका फल भी मुझे अच्छा आयेगा, ऐसा मानता है। उस मिथ्यादृष्टि जीव को उस राग के फलरूप से सामग्री मिलेगी, उसमें भोगने में वह जुड़ जायेगा। आहाहा! बात बहुत सूक्ष्म है। अकेला प्रभु आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्य, उसे राग का, दया, दान, व्रत के विकल्प का भी संयोग नहीं। वह संयोगी भाव स्वभाव में नहीं। आहाहा! क्योंकि वह संयोगी भाव है दया, दान, व्रत, भक्ति, वह तो पुण्यतत्त्व है और यह धन्धे के, व्यापार आदि के, स्त्री, पुत्र को सम्हालने के और उनका ध्यान रखने का भाव, वे पापतत्त्व हैं। आहाहा!

नौ तत्त्व में इन पुण्य और पापतत्त्व से ज्ञायक जीवतत्त्व तो भिन्न है। है न? नौ है न? आहाहा! शरीरादि अजीवतत्त्व। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना पापतत्त्व। और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा वह पुण्यतत्त्व और वे दोनों अजीव और पुण्य-पापतत्त्व से भिन्न वह आत्मा ज्ञायकतत्त्व चैतन्य है। आहाहा! ऐसे तत्त्व को अनुभव करता हुआ सम्यग्दृष्टि राग की क्रिया को नहीं करता। (राग) होता है, परन्तु कर्ताबुद्धि उड़ गयी है। सम्यग्दृष्टि की किसी भी पुण्य-पाप के परिणाम में सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! कितना फेरफार करना? मिथ्यादृष्टि की बुद्धि पाप के परिणाम में और पुण्य परिणाम में सुखबुद्धि चिपटी है। आहाहा! इस दृष्टि के कारण ऐसी सृष्टि उत्पन्न होती है। अर्थात् कि पर्याय में मिथ्यात्वभाव है, वह पुण्य और पाप के भाव में सुखबुद्धि है। उसे मिथ्यात्व की उत्पत्ति होकर मिथ्यात्व के फल को भोगेगा। धर्मी को पुण्य-पाप के भाव में कर्ताबुद्धि और मिठासबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा!

नौआखली की बात नहीं की थी? नौआखली में गाँधी गये थे न जब? मुसलमान हिन्दू बहिन और भाई, माँ और पुत्र दोनों को नग्न करते। मुसलमान। बहुत तूफान का जोर था, तब गाँधी वहाँ गये थे न? बीस वर्ष का पुत्र और चालीस वर्ष की माँ, उन्हें नग्न करके ऐसे विषय में भोग (करावे)। अरर्र! उन्हें अन्दर में ऐसा हो कि अरे! जमीन मार्ग दे तो समा जाऊँ। यह क्या होता है? मेरी माँ के सामने देखा जाये नहीं... आहाहा! उसके बदले यह क्या करते हैं? यह क्या होता है?

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! राग और संयोग के फल में, जैसे माता के साथ भोग लेना, वैसे पर का भोग उसे ऐसा लगता है। कठिन बात है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग इसने कभी एक सेकेण्ड भी स्वीकार नहीं किया। ऐसा का ऐसा अभिमान में और अभिमान में जिन्दगी व्यतीत करे, अवतार चले जाते हैं। आहाहा!

देखो न! बुधवार को तो यहाँ बैठे थे। यहाँ बैठे थे। पोपटभाई। आज तो रविवार है। यह बुधवार नहीं और उस बुधवार को तो यहाँ बैठे थे। दो करोड़ रुपये। कहते हैं इतने, परन्तु इससे अधिक (होंगे)। लड़के हैं और बड़ी आमदनी। बहुत आमदनी बहुत। शनिवार की रात्रि में... आहाहा! एक घण्टे सोये ग्यारह बजे। यह नाशवान चीज़,

उसे कौन रखे और कौन छोड़े? आहाहा! कांपवाले लोग आये हुए। पैसेवाले लोग, इसलिए पैसेवाले लेने आवें। कोई अस्पताल या कुछ है। उसे पच्चीस हजार दिये। वह देकर सो गये ग्यारह बजे। बारह बजे। एक घण्टे सोये। अरर! दो मिनिट बाद परभव में जाना है। आहाहा! है खबर उसे? आहाहा! वे बारह बजे उठे। बहिन रंभाबहिन साथ में सो रहे थे। घर से स्त्री, (उसे) जगाया। मुझे दुःखता है। आहाहा! सात तो कमरे। पाँच-छह लड़कों के और स्वयं का। एक-एक कमरा पाँच-पाँच लाख का। पैंतीस लाख के सात तो कमरे हैं। वह पैसा और दूसरी पूरी अलग चीज़। बहिन को कहा, मुझे दुःखता है। वहाँ तो कहे, मुझे घबराहट होती है, अब घबराहट होती है। ऐसा कहते हैं, वहाँ बहिन टोकरी बजाती है। वे लड़के ऊपर सो रहे हों न, वे आवें वहाँ तो असाध्य हो गये। धड़कन चली। आहाहा! कहो, लड़कों के साथ बात करने का समय नहीं रहा। वह नाशवान चीज़, परचीज़, उसका तुझे किसका प्रेम लगा?

अरे! यह तो ठीक, परन्तु अन्दर पुण्य और पाप के विकारी भाव, प्रभु! दुःखरूप और नाशवान, उसका तुझे प्रेम किसका लगा? तू कहाँ व्यभिचार में चढ़ गया? आहाहा! तेरा आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है। आहाहा! उसके सन्मुख में उसमें जा न, तुझे आनन्द आयेगा। और जिसे सम्यग्दर्शन में आनन्द आया, कहते हैं कि वह कर्म की क्रिया में नहीं जुड़ता, राग का कर्ता नहीं होता। उसे सब कर्म खिर जाते हैं। आहाहा! और पंच महाव्रत पालता हो साधु, वह राग मेरा है और मुझे लाभदायक है, (ऐसा मानता है, वह) महामिथ्यात्व का कर्म बाँधकर अनन्त संसार को बढ़ाता है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग दूसरा अलौकिक है, भाई! उसे प्राप्त करने के लिये अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। वह कहीं साधारण रीति से मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। यह यहाँ कहते हैं।

अभिलाषा करके क्रिया को करता है, ऐसा कोई पुरुष क्रिया के फल को प्राप्त होता है। जो कोई पुण्यक्रिया करे और निरभिलाष करके करे—समकिती। (मिथ्यादृष्टि) राग करता है, उसकी अभिलाषा प्रेम से करता है तो उसे संसार का फल मिलता है। परन्तु निरभिलाष-राग आवे परन्तु अभिलाषा बिना निर्बलता के कारण अन्दर राग हो

जाता है तो निरभिलाष है। है ? **निरभिलाष होकर करता है, उसको तो क्रिया का फल नहीं है।** उसे बन्धन ही नहीं है। आहाहा! यहाँ मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की (मुख्यता से बात है)। जितना राग है, उतना बन्धन है। समकिती को भी जितना संयोगी सामग्री की ओर लक्ष्य जाता है, उतना राग है। परन्तु यहाँ उसे गौण कर दिया है। यहाँ तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी जो अनन्त संसार का कारण, उसे बन्धनरूप से गिनने में आया है। आसक्ति का बन्धन है, उसे गौण करके बन्धन नहीं है, ऐसा कहा है। परन्तु ऐसा मानकर कोई यही मान ले कि सम्यग्दृष्टि को अब जरा भी बन्धन नहीं है, यह तो एकान्त है। जितना राग आता है, भले कर्ताबुद्धि नहीं, सुखबुद्धि नहीं, परन्तु जितना राग आवे, उतना आस्रव है, उतना बन्ध है। समझ में आया ? और उतना दुःख भी है।

सम्यग्दृष्टि को जितना राग आता है—शुभ या अशुभ, उतना दुःख का वेदन भी है। यहाँ इस बात को गौण करके सम्यग्दर्शन के जोर में आनन्द के स्वाद के प्रेम में उसे पुण्य के परिणाम का भी प्रेम उड़ गया है, इसलिए उसे सुखबुद्धि नहीं है, इसलिए उसे मिथ्यात्व नहीं है, इसलिए उसे मिथ्यात्व सम्बन्धी का बन्धन नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! यह वापस वे और ऐसे लग जाते हैं न ? यह कहा था न वह सेठिया ? सोगानी का पढ़कर। सोगानी ने द्रव्यदृष्टिप्रकाश में लिखा है। आया है न ? आया है ? ठीक! मेरे पास तो सब रखूँ। उसमें आया है कि समकिती को शुभभाव भी भट्टी लगता है। आता है ? सोगानी न्यालचन्दभाई की बहुत निर्मल दृष्टि। शुभराग भी भट्टी लगी। यह उन्हें नहीं जँचा। दीपचन्दजी सेठिया। अपने यहाँ बारम्बार बहुत आते थे। हें! भट्टी लगे तो तीव्र कषायवाले को लगे। सम्यग्दृष्टि को ऐसा कि दुःख लगता ही नहीं, दुःख का वेदन होता ही नहीं। ऐसा नहीं है।

यहाँ तो जो कहा है, वह तो सम्यग्दृष्टि की मुख्यता लेकर कहा है और मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व के कारण बन्धन कहा है। परन्तु उसमें से एकान्त खींच जाए कि सम्यग्दृष्टि को तो विषय-वासना का राग आवे, वह भी सुखरूप है। (यह मान्यता) मिथ्यात्व है। आहाहा! वह राग आता है, वह दुःखरूप है। उस दुःख को वेदता है। सम्यग्दृष्टि भी जितने अंश में स्वभाव-सन्मुख होकर आनन्द आया, उतना आनन्द का वेदन है और

जितना राग है, उतना दु:ख का वेदन है। दोनों एकसाथ हैं। भगवानजीभाई! बड़े मानधाता खो जाते हैं। उन्हें कितना अभ्यास, यहाँ आते थे। तो भी उनके लोग मान गये। उनके दामाद और बहनोई... सब वैष्णव हैं और वे आ गये। बापू! ऐसा नहीं है। एकान्त नहीं खींचा जाता।

जहाँ ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि को भोग और भोग की सामग्री से भी निर्जरा है, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? अरे! पंच महाव्रत का विकल्प आवे, वह भी परन्तु बन्ध का कारण और दु:ख है। मुनि को उतना दु:ख है। ऐसा खींच जाये कि बस, सम्यग्दृष्टि है इसलिए दु:ख जरा भी नहीं, अकेला आनन्द ही है (तो ऐसा नहीं है)। अकेला आनन्द परमात्मा को, अकेला दु:ख मिथ्यादृष्टि को, सम्यग्दृष्टि को थोड़ा आनन्द और थोड़ा दु:ख ऐसा मिश्र है। पोपटभाई! ऐसा है, बापू! यहाँ किसी का पक्ष नहीं कि इसे प्रसन्न रखना। ....बात झूठी दृष्टि से। आहाहा!

यहाँ जो लिया है उस अपेक्षा से वापस खींचकर सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए भोगसामग्री भोगता है। वापस लेख ऐसा आता है उसमें, ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। किस अपेक्षा से? सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से, उसे मिथ्यात्व का बन्धन नहीं और इतनी अशुद्धता टलती जाती है, ऐसा। परन्तु भोग है, वह तो राग है। वह निर्जरा है? अरे! मुनि होते हैं, उन्हें भी पंच महाव्रत के परिणाम, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग दु:ख है। यहाँ मानकर वह एकान्त निकाल डाले, ऐसा नहीं चलता। आहाहा! राग की एकताबुद्धिवाले मिथ्यादृष्टि को अकेला दु:ख। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा को अकेला आनन्द और साधक सम्यग्दृष्टि हुआ चौथे, पाँचवें या छठवें (गुणस्थान में), उसे जितना आत्मा का आश्रय लेकर आनन्द आया, उतना सुख और जितना परसन्मुख के झुकाववाला राग का विकल्प उठता है, उतना दु:ख है। ऐसी बात है, भाई!

यहाँ से खींच जाये ऐसे अर्थ में से (कि) देखो! उसे तो भोग निर्जरा का हेतु है। बापू! किस अपेक्षा से कहा? उसे तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी नहीं, इसलिए उतनी अशुद्धता वहाँ नहीं है। वह खिर जाती है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? और दूसरी कषायें हैं, उनका राग है, वह आस्रव है, बन्ध है और दु:ख भी है। जयसुखभाई!

ऐसी बात है, बापू! यहाँ कोई पक्ष नहीं कि यहाँ का माननेवाला निकला और फिर यह माने, इसलिए (अब ऐसा नहीं कहा जाता)। यहाँ छनावट की है कि दृष्टि खोटी है। भाई तो पहिचानते थे अपने सेठ दीपचन्दजी को। छह-सात वर्ष से सब आना बन्द हो गये। वे अभी और आ गये दो व्यक्ति। यह वे मेरु। सुमेरु वैष्णव है न? वे भी उनके पक्ष में चढ़ गये थे। नरम, अभी आ गये दोनों व्यक्ति। उनके बहनोई मालचन्दजी, वे आ गये। अभी उनके पुत्र और वे आये नहीं। वह ज्ञानचन्दजी वहाँ हैं दिल्ली में। उन्हें पक्ष है। सम्यग्दृष्टि को दुःख होता ही नहीं। कौन सा दुःख नहीं होता? उसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का दुःख नहीं होता। वाडीभाई! परन्तु दूसरे तीन कषाय हैं, चौथे गुणस्थान में, उनका दुःख है। पाँचवें में दो कषाय है, उनका दुःख है, छठवें में एक कषाय संज्वलन की है, उतना भी दुःख है। ऐसा नहीं चलता, यह वीतरागमार्ग है। हम सम्यग्दृष्टि हैं, अब हमारे भोग में निर्जरा है। मर जायेगा। समझ में आया? आहाहा! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमारे सामने नजर करेगा तो तुझे राग होगा। हम परद्रव्य हैं। तुझे दुःख होगा। तू तेरे सन्मुख देख और उसमें स्थिर हो। उसमें तुझे सुख होगा। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! रजकण-रजकण और राग-राग का लेखा है यहाँ तो।

यहाँ कहा है वह तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जिसे नाश हो गया और जिसे राग की कर्ताबुद्धि उड़ गयी है, राग में सुखबुद्धि टल गयी है, इस अपेक्षा से उसे राग का भाव भोग की ओर का आने पर भी उसे दृष्टि के जोर की अपेक्षा से निर्जरा कही गयी है। परन्तु इस बात को भूल जाये कि राग है, वह दुःख है। भूल जाये तो वह यह बात उसे बैठी नहीं पूरी। आहाहा! जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक पूर्ण सुख नहीं है। न्याय समझ में आता है? आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान की वाणी है। समवसरण में प्रभु यह कह रहे हैं। विराजमान हैं। आहाहा! वह यह वाणी है। उसमें एक भी न्याय बदले तो वस्तु बदल जाये।

यहाँ तो कहा, क्रिया करे, उसका फल नहीं समकिती को। निरभिलाष करता है। यह अपेक्षा या उसकी भावना नहीं राग करने की। राग सुखरूप है, यह बुद्धि नहीं, इसलिए निरभिलाष करता है, ऐसा कहा। परन्तु जितना राग होता है, वह सम्यग्दृष्टि को भी उतना दुःख है और उतना बन्धन का कारण है। जब तक यथाख्यात्चारित्र पूर्ण दशा

न हो, आस्रव अधिकार में आता है, तब तक उसे आस्रव है, बन्ध है। आहाहा! ऐसी अनेकान्त वाणी किस अपेक्षा से कहना है, उसे न समझे (और) एकान्त खींच जाये तो वह मार्ग नहीं चलता। समझ में आया? आहाहा!

शास्त्र में तो यहाँ तक कहा कि शुभयोगी जो मुनि हैं, शुभरागवाले पंच महाव्रतादि (पालन करते हैं), वे सास्रवी हैं—आस्रववाले हैं, ऐसा प्रवचनसार में कहा है और यहाँ इनकार करते हैं। वह किस अपेक्षा से? यहाँ दृष्टि और दृष्टि के वेदन की जोर की अपेक्षा से, राग से सुखबुद्धि उड़ गयी है; इसलिए निर्जरा कही जाती है। परन्तु यहाँ तो ऐसा कहा, मुनि है, तीन कषाय का जिन्हें अभाव है, आनन्द की लहर लहर उठती है, जिन्हें अन्दर ज्वार (आता है) उन्हें भी जो पंच महाव्रत का विकल्प आता है, वह आस्रव है। उन्हें सास्रवी कहा है। और सातवें गुणस्थान में जब स्थिर होते हैं, तब निरास्रवी कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो इनकार ही किया। समकिती को आस्रव, बन्धन है ही नहीं। समझ में आया? यह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का राग उड़ गया है, ऐसा बन्धन उन्हें नहीं, इस अपेक्षा से बन्धन नहीं, ऐसा कहा है। परन्तु दूसरे कषायभाव हैं, समकिती जानता है कि इतना राग है, दुःख है, उतना मैं दुःख का वेदन करनेवाला हूँ। आहाहा! वह दुःख टालने के लिये प्रयत्न भी है। परन्तु प्रयत्न होने पर भी जब तक प्रयत्न से राग टला नहीं, तब तक दुःख है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा, **निरभिलाष होकर करता है,...** करता है, ऐसा कहा। अभिप्राय में राग में सुखबुद्धि है, यह बुद्धि नहीं और राग करनेयोग्य है, ऐसी बुद्धि नहीं; इसलिए उसे अभिलाषरहित कहा गया है। परन्तु राग है, उतना तो दुःख और बन्धन है। पर्यायदृष्टि से देखने पर जितना राग है, उतना बन्धन है। द्रव्यदृष्टि से देखने पर उसे राग की निर्जरा है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग है। १५२ (कलश) हुआ। आहाहा!

कलश-१५३

(शार्दूलविक्रीडित)

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किंत्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः।।२१-१५३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — 'येन फलं त्यक्तं स कर्म कुरुते इति वयं न प्रतीमः' [येन] जिस सम्यग्दृष्टि जीव ने [फलं व्यक्तं] कर्म के उदय से है जो भोगसामग्री, उसका [फलं] अभिलाष-[त्यक्तं] सर्वथा ममत्व छोड़ दिया है, [सः] वह सम्यग्दृष्टि जीव, [कर्म कुरुते] ज्ञानावरणादि कर्म को करता है, [इति वयं न प्रतीमः] ऐसी तो हम प्रतीति नहीं करते। भावार्थ इस प्रकार है कि जो कर्म के उदय के प्रति उदासीन है, उसे कर्म का बन्ध नहीं है; निर्जरा है। 'किन्तु' कुछ विशेष — 'अस्य अपि' इस सम्यग्दृष्टि के भी 'अवशेन कुतः अपि किञ्चित् अपि कर्म आपतेत्' [अवशेन] बिना ही अभिलाष किये, बलात्कार ही [कुतः अपि किञ्चित् अपि कर्म] पहले ही बाँधा था जो ज्ञानावरणादि कर्म, उसके उदय से हुई है जो पंचेन्द्रियविषयभोगक्रिया, वह [आपतेत्] प्राप्त होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार किसी को रोग, शोक, दारिद्र बिना ही वांछा के होता है; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव के जो कोई क्रिया होती है, सो बिना ही वांछा के होती है। 'तस्मिन् आपतिते' अनिच्छक है सम्यग्दृष्टि पुरुष, उसको बलात्कार होती है भोगक्रिया, उसके होते हुए 'ज्ञानी किं कुरुते' [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव, [किं कुरुते] अनिच्छक होकर, कर्म के उदय में क्रिया करता है, तो क्रिया का कर्ता हुआ क्या? 'अथ न कुरुते' सर्वथा क्रिया का कर्ता, सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है। किसका कर्ता नहीं है? 'कर्म इति' भोगक्रिया का। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'जानाति कः' ज्ञायकस्वरूपमात्र है। तथा कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? 'अकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितः' निश्चल परमज्ञानस्वभाव में स्थित है।।२१-१५३।।

कलश - १५३ पर प्रवचन

१५३।

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किंत्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः।।२१-१५३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—'येन फलं त्यक्तं स कर्म कुरुते इति वयं न प्रतीमः' जिस सम्यग्दृष्टि जीव ने कर्म के उदय से है जो भोगसामग्री... है? **उसका अभिलाष सर्वथा ममत्व छोड़ दिया है...** वे मेरे हैं, ऐसा छूटा है और उसमें सुख है, यह छूटा है। सर्वथा ममत्व छोड़े, अर्थात् वह भी जितना भोग का राग है, उस राग की ममता मेरा है, ऐसा छोड़ा है। परन्तु राग है, उतनी तो वस्तुस्थिति है। समझ में आया? आहाहा! **सर्वथा ममत्व छोड़ दिया है, वह सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानावरणादि कर्म को करता है, ऐसी तो हम प्रतीति नहीं करते।** दर्शन के जोर की अपेक्षा से (बात है)। आहाहा! उस राग के प्रेम को छोड़कर भगवान पूर्णानन्द के नाथ का प्रेम किया... आहाहा! और जिसे राग शुभ हो, उसका प्रेम हो तो पूर्णानन्द के नाथ का उसे द्वेष है। वाडीभाई! क्या कहा? यह राग का कण है, उसका जिसे प्रेम है, उसे वीतरागस्वरूपी जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा के प्रति उसे द्वेष है। यह आनन्दघनजी में आता है। 'द्वेष अरोचक भाव' आनन्दस्वरूप, वीतराग ज्ञानस्वरूप जिसे रुचता नहीं और दया, दान, व्रत के विकल्प जिसे रुचते हैं, वह द्वेष अरोचक भाव—आत्मा रुचता नहीं, वही द्वेष है। आहाहा! समझ में आया? अरे! द्वेष की व्याख्या ऐसी।

यह यहाँ कहते हैं, **सर्वथा ममत्व छोड़ दिया है, वह सम्यग्दृष्टि जीव...** वह कर्म बाँधता है या नहीं? अल्प अस्थिरता का अल्प स्थिति, रस का कर्म बन्ध पड़ता है, उसे गौण करके मिथ्यात्व सम्बन्धी और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी जो कर्मबन्धन है, वह उसे नहीं है (ऐसा कहा है)। समझ में आया? आहाहा! इसलिए **कर्म को करता है, ऐसी**

तो हम प्रतीति नहीं करते। भावार्थ इस प्रकार है कि जो कर्म के उदय के प्रति उदासीन है,... देखा! है तो सही वस्तु। परन्तु वैराग्य है। आहाहा! मेरा नाथ आनन्दस्वरूपी प्रभु, उससे मैं, राग से तो मैं उदास हूँ। मेरा आसन, उद्-आसन आनन्दस्वरूप प्रभु में मेरा आसन है। आहाहा! इसका नाम उदासीन कहा जाता है। राग में मैं बैठा हूँ, ऐसा नहीं। राग से उदासीन आनन्दस्वरूप में मैं तो बैठा हूँ। मेरा आसन वहाँ है। आहाहा! उद्-आसन। उदासीन है। स्वरूप सन्मुख की प्रतीति का अस्तित्व है और राग की ओर से उदासीन है। ऐसी सम्यग्दृष्टि को ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ होती हैं। जिर्नरा अधिकार में यह पहले आ गया है। समझ में आया? आहाहा! कितना याद रखना? बात-बात में अन्तर है।

उदय के प्रति उदासीन है, उसे कर्म का बन्ध नहीं है, निर्जरा है। देखा! **किन्तु कुछ विशेष—इस सम्यग्दृष्टि के भी बिना ही अभिलाष किये बलात्कार ही पहले ही बाँधा था जो ज्ञानावरणादि कर्म, उसके उदय से हुई है जो पंचेन्द्रिय विषयभोगक्रिया,...** विषय के भोग की क्रिया, वह तो अज्ञानी भी कर नहीं सकता, परन्तु उसकी ओर के झुकाव की जरा वृत्ति है, उसे भोग की क्रिया कहा जाता है। **बिना ही अभिलाष किये...** आहाहा! **पंचेन्द्रिय विषयभोगक्रिया, वह प्राप्त होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार किसी को रोग, शोक, दारिद्र बिना ही वांछा के होता है,...** रोग की इच्छा होती है? किसी को दरिद्रता की इच्छा होती है? परन्तु आये बिना रहे नहीं पूर्व के कारण से। यहाँ तो दृष्टान्त है। देखो! **रोग, शोक, दारिद्र बिना ही वांछा के होता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव के जो कोई क्रिया होती है, सो बिना ही वांछा के होती है।** यह हो, ऐसी अभिलाषा बिना होते हैं। आहाहा! यहाँ सम्यग्दृष्टि की महिमा वर्णन की है। और उसे राग आवे अशुभ, तो उसे अन्तर (में) दुःख लगता है और काले नाग की भाँति त्रास आता है। काला नाग जैसे बड़ा देखे और उसे त्रास हो, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को विषय की वासना आवे उसका उसे त्रास है। आहाहा! अज्ञानी को उस वासना के प्रेम की मिठास में नशा चढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **बिना ही वांछा के होती है।** सम्यग्दृष्टि जीव को जो कुछ क्रिया (है, वह) वांछा बिना होती है।

अनिच्छक है सम्यग्दृष्टि पुरुष, उसको बलात्कार होती है भोगक्रिया,... एक

ओर कहते हैं कि कोई कर्म बलजोरी से आत्मा को विकार कराता नहीं। यहाँ कहते हैं कि... है ? **बलात्कार होती है भोगक्रिया,...** इसका अर्थ यह कि अन्दर रुचि नहीं, प्रेम नहीं, पूरा रस उड़ गया है। आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन और करोड़ों इन्द्राणियाँ हों। समकिती है। शकेन्द्र। पहले देवलोक का इन्द्र अभी सौधर्म (देवलोक में)। बत्तीस लाख विमान हैं और बत्तीस लाख विमान में एक-एक में असंख्य देव हैं। कोई विमान छोटा है। बाकी बहुत में तो असंख्य (देव) हैं। यह बत्तीस लाख विमान का साहेबा, परन्तु कहते हैं कि वह कोई मेरी चीज़ है (ऐसा) वह मानता नहीं। आहाहा! करोड़ों अप्सराओं का भोग है, परन्तु उसमें उसे मिठास उड़ गयी है। जहर दिखता है। आहाहा! अरेरे! यह वासना जहर। आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव, उसे उस दुःख को वेदता है। समझ में आया ? यहाँ तो मात्र सम्यग्दृष्टि के दर्शन और स्वरूप की स्थिरता के जोर की अपेक्षा से राग की करने की बुद्धि नहीं, इसलिए अभिलाषा नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया ? आहाहा! अब ऐसी बात भी कोई समझे नहीं।

अनिच्छक है सम्यग्दृष्टि पुरुष, उसको बलात्कार होती है भोगक्रिया,... कहो, भोगक्रिया बलजोरी से होती है, इसका क्या अर्थ ? भोग की क्रिया में राग होता है, उसका अपना निर्बल पुरुषार्थ है, निर्बल पुरुषार्थ है। परन्तु यहाँ उसे न गिनकर दृष्टि के जोर में उसकी आसक्ति का रस नहीं, इसलिए उसे भोगक्रिया बलजोरी से होती है, ऐसा कहा जाता है। ऐसी अपेक्षायें न समझे और... आहाहा! खींचतान करे, ऐसा नहीं चलता, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है। जिस अपेक्षा से कहा, उस अपेक्षा से समझना चाहिए। दूसरी अपेक्षा लक्ष्य में रखना चाहिए।

यहाँ कहते हैं, भोगक्रिया बलजोरी से होती है। एक ओर ऐसा कहे कि कर्म का उदय भी बलजोरी से आत्मा को विकार कराता नहीं। कमजोरी है। प्रेम नहीं, रस नहीं। स्वरूप की रुचि है और (राग की) रुचि नहीं; इसलिए बलजोरी से अन्दर राग में जुड़ जाता है। इसलिए बलजोरी से, वह अपनी पुरुषार्थ की विपरीतता है। परन्तु उस विपरीतता का स्वामी नहीं, स्वामी नहीं, प्रेम नहीं, रस नहीं, इसलिए बलजोरी से जुड़ जाता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

भोगक्रिया, उसके होते हुए... आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव अनिच्छक होकर कर्म के उदय में क्रिया करता है...** करे अर्थात्? होती है। कर्तापने की बुद्धि नहीं है। वह **क्रिया करता है तो क्रिया का कर्ता हुआ क्या? सर्वथा क्रिया का कर्ता सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है।** कर्तापने की बुद्धि नहीं है, इस अपेक्षा से कर्ता नहीं है। परिणमन में राग नहीं, ऐसा नहीं है। परिणमन में तो जितना राग है, उतना कर्ता है। आहाहा! प्रवचनसार ४७ (नय में) आया है। गणधर हो या तीर्थंकर हो छद्मस्थ में, जितना राग है, उसका वह कर्ता है। ४७ नय, प्रवचनसार। आहाहा! परिणमे उतना कर्ता, इस अपेक्षा से। और जितना राग है, उसका भोक्त भी समकिती है। यह ४७ नय में ज्ञानप्रधान कथन है। यहाँ दृष्टिप्रधान कथन में इस बात को गौण करके उसे कहा है। परन्तु उसे निकाल ही डाली है, उसे बिल्कुल राग है ही नहीं (तो ऐसा नहीं है)।

यह है, देखो! यह **सर्वथा क्रिया का कर्ता सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है। किसका कर्ता नहीं है? भोगक्रिया का।** आहाहा! रुचि का प्रेम नहीं, इस अपेक्षा से भोग के राग का कर्ता नहीं। परन्तु राग में परिणमन है, उतना परिणमन राग का है और उतना दुःख का भोक्ता भी है। यह दोनों बातें लक्ष्य में लेना चाहिए। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)